ॐ ओ३म्

स्त्री-शिक्षा अर्थात् गृहस्थाश्रम का सत्रहवां एडीशन।

ईश्वर को कोटानुकोट धन्यवाद देने के पश्चात् सर्व सज्जनों पर प्रकट हो कि इस पुस्तक का प्रथम एडीशन पांच वर्ष के पूर्ण परिश्रम के पश्चात् सन् १८९१ ई० में प्रकाशित हुआ था, उस समय मुझ अल्पबुद्धि को निश्चय न था कि सर्व मान्य पुरुष और साधारण जन मेरी इस पुस्तक का इतना मान्य करेंगे कि जितना आप सज्जनों ने किया, फिर भी मैं आप लोगों का धन्यवाद देता हूं और इस सत्रहवीं एडीशन को आप की सेवा में भेंट करता हूँ आशा है कि आप इस को स्वीकार कर मेरे विशेष परिश्रम का परिचय देकर मेरे उत्साह को बढ़ावेंगे।

मेरी अब सर्व महाशयों से यही प्रार्थना है कि एक बार प्रेम-पूर्वक इसका अवश्य ही पाठ कर दोषों को त्यागकर उत्तम गुणों का प्रचार करें, जिस से संसार का कल्याण हो। हे परमेश्वर! आप सर्व सामर्थ्यवान् हैं, आप मेरी इस प्रार्थना को स्वीकार कीजिये। आप तेजस्वरूप हैं, उसी में से कुछ हम भारत वासियों को भी प्रदान कीजिये। हे परमात्मन्! आप ज्ञानमय हैं, उसमें से कुछ हम अज्ञानियों को भी प्रसाद दीजिये; क्योंकि—

त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देव देव॥

हे जगदीश! आप माता हो, पिता हो, बन्धु हो, मित्र भी आप ही हो और कुछ जो सब आप ही हो, सब आप ही का राज्य है, इस लिये मन, काया, वचन इन्द्रियां, बुद्धि, आत्मा सब मैं आप के ही अर्पण करता हूँ। प्रभो! आप ही आर्त-जनों का उद्धार करने वाले हो मुझ दास को भी दया-दृष्टि कर दीजिये जिस से हम सब ऐक्य और प्रेम के साथ सुकर्म में प्रवृत्त हो जावें जिस से भारत-भूमि फिर से स्वर्णमय दृष्टि आने लगे।

देश का शुभ-चिन्तक—

तिलहर
फरवरी १९२६ ई० } चिम्मनलाल वैश्य,

कासगञ्ज निवासी।

* ओरेम् *

मंगलाचरणम् ।

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः-
शान्तिरोषधयः शान्ति । वनस्पतयः शान्ति-
र्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्मशान्तिः सर्वꣳ शान्तिः
शान्तिरेव शान्तिः सामा शान्तिरेधि ॥

अर्थ-हे सर्व शक्तिमान् प्रभु ! आपकी शक्ति और कृपा से (द्यौ०) जो सूर्यादि लोकों का प्रकाश और विज्ञान है वह सब दिन हमको सुखदायक हो, तथा जो आकाश में पृथ्वी, जल, औषधि, वनस्पति वटादि वृक्ष, संसार के सब विद्वान् (ब्रह्म) जो वेद यह सब पदार्द और इन से भिन्न भी जो जगत् में हैं वे सब हमको सब काल में सुख देने वाले हों, तथा सम्पूर्ण पदार्थ हमारे अनुकूल रहें, जिससे हम लोग सुख पूर्वक रहें । हे भगवान् ! सब भांति से हमको विद्या, बुद्धि, विज्ञान, आरोग्यता और सब उत्तम सहायता को अपनी कृपा से दीजिये और हम लोगों और सब जगत् को उत्तम गुण वा सुख के दान से बढ़ाइये ।

यतोयतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु ।
शन्नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः ॥

अर्थ--(यतोयतः) हे परमेश्वर ! आप जिस २ देश (जगत्) के रचने और पालन के अर्थ चेष्टा करते हैं उस २ देश से भय-रहित कीजिये अर्थात् किसी देश से हमको किञ्चित् भी भय न हो, (शन्नःकुरु०) वैसे ही सब दिशाओं में आपकी प्रजा और पशु आदि हैं उस से भी हम को भय रहित करें, हमसे उन को सुख हो और उनको भी हमसे भय न हो, आपकी प्रजा में जो मनुष्य आदि हैं उन सबके लिये जो धर्म, अर्थ, काम मोक्ष, पदार्थ हैं, वे आप की अनुग्रह से हमको भी सब शीघ्र प्राप्त होवें ।



* पुस्तक बनाने का कारण *

ईश्वर के गुणानुवाद और धन्यवाद के पश्चात् निवेदन है कि सं० १८७१ ई० में श्रीपरमहंस परिव्राजकाचार्य श्री स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी महाराज भ्रमण करते हुये कासगंज जिला एटा में विराजमान हुए और कई मास निवास कर समस्त नगर-निवासियोंको अपने सत्य उपदेश और व्याख्यानों से कृतार्थ किया। उक्त महात्मा के अमृतरूपी मनोहर कथन को श्रवण कर मैं भी सन्मार्ग पर जा लगा और अपने गृह में सत्य उपदेश करने लगा, एक दिन गृहस्थाश्रम के विषय में समझा रहा था कि मेरी बहिन "जिसका नाम नारायणीदेवी था उस" ने कहा कि भाई ! कोई ऐसी पुस्तक देवनागरी में नहीं कि जिस में गृहस्थाश्रम के कर्त्तव्यकर्मों की व्याख्या हो जिसको हम पढ़ तदनुकूल चल कर आनन्द भोगें, मैंने विचार किया तो उस समय कोई ऐसी पुस्तक न जान पड़ी तब मैंने कहा कि यदि शरीर वर्त्तमान है तो शीघ्र समस्त गृहस्थियों के अर्थ ऐसी पुस्तक लिखूंगा।

मान्यवरो ! मैंने परमेश्वर का नाम लेकर इस के लिखने का आरम्भ कर दिया, परन्तु समय ने किसी का चारा नहीं कि इसी बीच मेरी प्यारी बहिन का स्वर्गवास हो गया, माता और चची ने भी इस असार संसार को त्याग परलोक गमन किया, तदुपरान्त समय ने मुझको और भी झोंके दिये जिसके कारण इस पुस्तकके मुद्रित होने में देर हो गई। इस पुस्तक का नाम अपनी प्यारी बहिन के नाम "नारायणीशिक्षा" अर्थात् गृहस्थाश्रम रक्खा है क्योंकि उसकी इच्छानुसार इस पुस्तक के रचने का आरम्भ किया था।

प्यारे भ्रातृगणों ! मेरी सामर्थ्य न थी जो इस कार्य को पूरा कर सकता परन्तु परमेश्वर की कृपा और परोपकारी विद्वान् महात्माओं की सहायता से यह कार्य पूर्ण हो गया। आओ प्यारे भाई बहिन, सब मिलकर उस पिता परमात्मा सर्वव्यापक से प्रार्थना करें कि हे पिता जी ! अब हम पर ऐसी दया कीजिये कि हम आप की कृपा से सदा पुरुषार्थ को बढ़ा कर शुभ कर्मों के करने में उद्यत रहें और किसी प्रकार का भय चित्त में न लावें।

ओ३म् शांति शांति शांति।

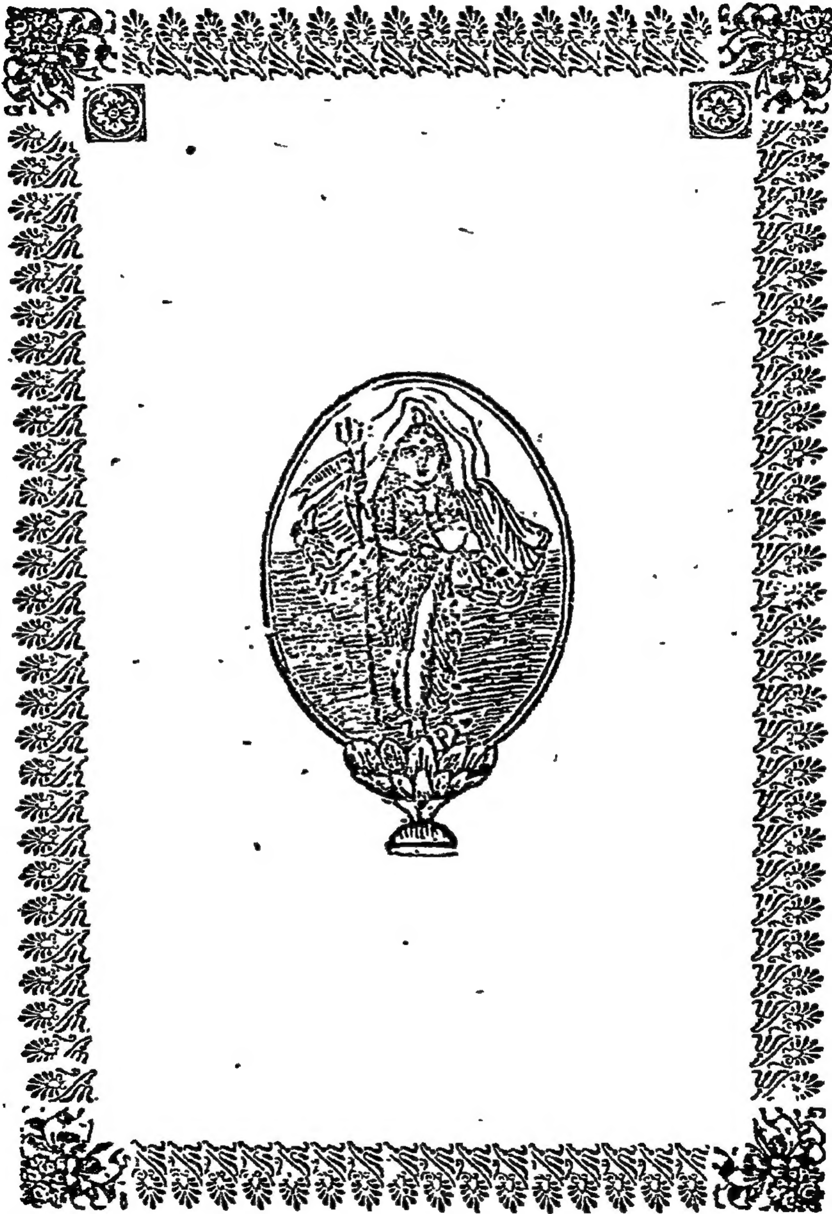
विषय-सूची।

॥ इति ॥

सब प्रकार की पुस्तकें मिलने का पताः——

चिम्मन लाल भद्रगुप्त

तिलहर जि० शाहजहांपुर ॥



॥ ओ३म् ॥

नारायणीशिक्षा अर्थात् गृहस्थाश्रम

प्रथम भाग ।

स्वास्थ्य और तन्दुरस्ती ।

जिस समय मानवीय शरीर में वात, पित्त और कफ यह तीन दोष रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र और ओज यह आठ धातु तथा मूत्र, पुरीष (पाख़ाना) पसीना आदि मल समूह उपयुक्त (ठीक ठीक) मात्रा में रहे तथा जिसकी आत्मा और मन प्रसन्न हो उसे स्वास्थ्य कहते हैं जैसा कि वैद्यकाचार्यों का उपदेश है ।

समदोषः समाग्निश्चसमधातु मलः क्रिया ।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनः स्वस्थमित्यभिधीयते ॥

स्वास्थ्य को ही आरोग्यता तथा तन्दुरस्ती कहते हैं अथर्ववेद कांड १९ सूक्त ५५ में उपदेश है कि ईश्वर की उपासना, विद्वानोंका संग, अग्नि-होत्र योगाभ्यास-व्यायाम द्वारा सम्पूर्ण इंद्रियों तथा मनको दृढ़ बना, स्वास्थ्य को प्राप्तकर धन धान्यकी वृद्धि करे । महर्षि वाग्भट्ट का कथन है कि दिनचर्या, रात्रिचर्या और ऋतुचर्या के अनुसार कार्य करने से आरोग्यता की प्राप्ति होती है जैसा कि—

दिनचर्यांनिशाचर्यामृतुचर्यांयथोदिताम् ।
आचरन्पुरुषः स्वस्थसदातिष्ठतिनान्यथा ॥

उत्तम संतान—उत्तम जीवन, तीव्र बुद्धि, पुरुषार्थ, दीर्घायु, श्रेष्ठ और अखंडनीय विचार, स्वतंत्रता, कर्तव्यपालन, धनोपार्जन और महत्वकी आकांक्षा आरोग्यता से ही होती है और यही, धर्म, काम, मोक्ष का मूल कारण है जैसा कि कहा है—

धर्मार्थ काम मोक्षणा मारोग्यं मूलकारणम् ॥

बिना आरोग्यता के सांसारिक तथा पारमार्थिक दोनों प्रकार के सुख और आनन्द में अन्तर पड़ जाता है इस लिये स्वास्थ्यरूपी सर्वोत्तम पदार्थ को खो देना मानो मनुष्य जीवन के उद्देश्य का सत्यानाश मारना है इस लिये अथर्ववेद कांड ३ सूत्र १० मं० १ में उपदेश है कि मनुष्यों को अनंत परमेश्वरीय प्रकृति से सूक्ष्म और स्थूलरूप के ज्ञानसे उपकार लेकर संतानों सहित धनी, स्वस्थ और चिरंजीवी बनना योग्य है।

संवत्सरस्य प्रतिमा यांत्वा रात्र्युपास्महे।
सान आयुष्मतीं प्रजां रायस्पोषेण संसृज ॥

स्वास्थ्य के साधन।

प्रातःकाल उठना, वायु सेवन करना, शौच, व्यायाम, पानी, स्नान, अंजन लगाना, सोना, वस्त्र धारण करना, मकान बनवाना, ब्रह्मचर्य, विद्या पढ़ना, न्यूनावस्था में विवाह न करना, धर्म के दस लक्षणों का पालन, उत्तम भोजन, पंचयज्ञों का करना, धनोपार्जन, दान, व्रत और योगसाधन आदि बातों के ज्ञान एवं अभ्यास से ही हम शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को प्राप्त कर सकते हैं इन्हीं का हम यथा क्रम इस पुस्तक में वर्णन करेंगे।

प्रातःकाल उठना।

परमेश्वर ने दिन काम करने के लिये और रात्रि आरामके हेतु बनाई है। ऋग्वेद अ० ४ मं० ५ सूत्र ७७ में ईश्वर ने उपदेश किया है कि जिस प्रकार सूर्य और पृथिवी आदि नियमानुकूल कार्य करते हैं उसी प्रकार सब मनुष्यों को प्रति दिन रात्रि के चौथे पहर में उठ कर जगन्नियन्ता प्रभु के बनाये नियमों का आश्रय लेकर सब स्थानों और सब कालों में महान् पुरुषों के समान उन्नति करनी चाहिये क्योंकि ईश्वरीय नियमों पर चलने से ही आरोग्यता, बल, बुद्धि, पुरुषार्थ, आयु और कीर्ति आदि की वृद्धि होती है जैसा कि अथर्ववेद कांड १०। ७। ३१ तथा कारण्ड २० सूत्र १४२ मं० २ में लिखा है।

नामनाम्ना जोहवीतिपुराखूर्यात् पुरोषसः। यदजः प्रथमं संबभूव
सहतत् स्वराज्यमियाम यस्मान्नन्यत्परमस्तिभूतम् ॥

अर्थात् इस जगत् से पूर्व ईश्वर की सत्ता एवं जगत्प्रसिद्ध स्वराज्य विद्यमान है इस लिये प्रातः ऊषाकाल में उठ कर अजन्मा उस प्रभु की स्तुति कर अन्नादि धन कीर्ति और आनन्द के लिये प्रयत्न करे। महर्षि चरक का उपदेश है।

ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय स्वस्थो रक्षार्थमायुषः।
तत्रसर्वाघ शान्त्यर्थं स्मरेच्च परमेश्वरम्॥

आयु एवं आरोग्यता की इच्छा करने वाले और पापों से बचने वाले पुरुषों को ब्रह्ममुहूर्त में उठ कर प्रभु की स्तुति करनी योग्य है। अथर्ववेद कांड १० सूक्त ६० मंत्र १ में ईश्वर आज्ञा देता है कि सूर्य के पहिले ऊषाकाल में उठना चाहिए उठने का यही उत्तम समय है। इसी समय प्रभु को धन्यवाद दे और स्तुति कर अपने कार्यों में लगना चाहिए ऊषाकाल में श्रेष्ठ ज्योति एवं ईश्वरीय महिमा से पूरित दृश्यों को देखने से बुद्धि बल और आयु की वृद्धि होती है प्रसन्न वदन रहनेका स्वभाव रहता है स्वास्थ ठीक रहता है आत्मबल बढ़ता है। जो ऊषाकाल में उठता है उसके मस्तिष्क की शक्ति प्रबल और चेहरे की चमक दुगुनी हो जाती है। जिस प्रकार ऊषा अंधकार को मिटा देती है वैसे ही ऊषाकाल में शुद्ध हृदय से की हुई प्रभु प्रार्थना मनुष्यों के अज्ञान को मिटाती हुई मानवी हृदय पटल पर सच्ची दया शुद्ध संकल्प और शुभ कामना का प्रभाव डालती है और मनुष्यों के जीवन को आदर्शमय बनाती है। सुश्रुत, चरक, पुराण, स्मृति एवं पाश्चात्य देशीय समस्त विद्वानों और एतद्देशीय सम्पूर्ण तत्ववेत्ताओं ने एक स्वर से यही उपदेश किया है कि प्रत्येक नर नारी को स्वास्थ रक्षा के लिये ब्रह्ममुहूर्त (ऊषाकाल) अर्थात् ४ बजे गरमी के दिनों में और जाड़ों में ५ बजे अवश्य उठ बैठना चाहिए। परन्तु बिना जल्दी सोये प्रातः ४ बजे उठने से शरीर की दुर्बलता, आलस्य और आंखों में जलन पड़ती है इस लिये सायंकाल ९, १० बजे सोजाना चाहिये। जिससे प्रातःकाल उठने में कोई कष्ट न हो।

किसी कवि ने क्या ही अच्छा कहा है:—

सदा राति को सोय के, जो जागें बड़ भोर।
खोवे रोग शरीर सों, गहत ज्ञान की डोर॥
जो काटै मद पान कर, सारी रैन अचेत।
प्रात होत सोवे सदा, सो बोवे दुख खेत॥

वायु प्रातकी चलत है, तन मन के अनुकूल ।
उठकर जो उस समय में, सोवै ताकी भूल ॥
ताके मुख की छवि बढ़ै, अंग होय बलवान् ।
मनकी कुज कलिका खिले, बुद्धि होय बलवान ॥
जो मांगे उठ प्रात में, प्रभु में ध्यान लगाय ।
सो पावे भगवान सों, दुःखकी आंच बुझाय ॥
प्रात समयमें चलत है, वायु स्वर्ग की आय ।
तामें आनन्द होत सब, मन प्रमोद को पाय ॥

इसी समय बस्ती के बाहर बागों की शोभा देखने में बड़ा आनन्द मिलता है क्योंकि पेड़ोंसे स्वच्छ प्राणप्रद वायु निकलता है जो बाहर आने वालों की श्वांस के साथ भीतर जाता है जिसके प्रभाव से मन कली की भांति खिल जाता है और शरीर प्रफुल्लित रहता है।

जैसा कि किसी कवि का वचन है:—

दिन निकलत जो बाग की शोभा देखें जाय ।
फल फूलहिं अरु पेड़ की तरी देखि हरिखाय ॥
तिनके मन आलस कभी नहिं होवें श्रम पाय ।
देह खेद की बात को नहिं जाने कस आय ॥

इस लिये प्यारे भाइयो और बहनों ! प्रातःकाल जागने का अभ्यास करो और इस समय को लौकिक वा पारलौकिक कार्यों में व्यय करो। देखो प्रातः काल चिड़ियां कैसी चुहचुहाती हैं। कोयल कूं कूं करती, मैना तोता आदि सब उस सृजनहार परमेश्वर के स्मरण में चित्त लगाते और मनुष्यों को जगाते हैं, फिर कैसे शोक का स्थान है कि हम सबसे उत्तम होकर पक्षी पखेरुओं से भी निषिद्ध कार्य करें और उनके जगाने पर भी चैतन्य न हों। इसके उपरांत यही समय योगाभ्यास वा ईश्वराराधन के लिये नियत है। जितने सुजन और ज्ञाता आज तक हुए वे सब प्रातःकाल ही उठते थे। कैसे पश्चात्ताप का स्थान है कि इन अकथनीय लाभों पर भी भारतवासीगन करवटें लेते ही लेते नौ बजा देते हैं कि जिस के कारण उन्हें नाना प्रकार के रोग घेरे रहते हैं।

वायु ।

पदार्थ विद्या से यह सिद्ध है कि जिस प्रकार पानी के बड़े २ समुद्र पृथ्वी पर हैं उसी प्रकार हवा भी है। जिस भांति मछलियां पानी में रहतीं और बिना उस के चन्द मिनट में मर जाती हैं, इसी तरह हम भी हवा में

और बिना उसके हमारा जीवन नहीं हो सकता क्योंकि बिना हवा के न आग जलती न शब्द सुनाई पड़ता है न वर्षा आदि होती है। प्राणपद वायु द्वारा प्राणी जीते हैं यह बड़ी तीक्ष्ण होती है इसमें कई वस्तुएं मिली हैं। नाये ... न: इस से जलता दीपक बुझजाता है यह हवा में प्राणपद से चौगुनी होती ... कारबोनिक एसिड यह भारी होती है इसमें दीपक बुझजाता है वनस्पति का जीवन है वह इस को खींचती है और बदले में प्राणपद को देती है ... भाप यदि यह हवा में न होती तो सूर्य्य की गरमी से सब हवा गर्म हो जाती फिर स्वास द्वारा मनुष्यों के शरीर झुलस जाते खून में हरारत उत्पन्न होती, वृक्ष मुरझा जाते इस लिये परमेश्वर ने जो सब हकीमों का ... है इन उपरोक्त वस्तुओं को मिलाकर वायु को जीव धारियों के ... लिये बनाया ॥

जैसे ... बाहर शुद्धता होती है, वैसे ही श्वास द्वारा ... की शुद्धता ... मनुष्य श्वास लेता है तो हवा अंदर जाती है उसमें का प्राणपद वायु ... जाता है जो अशुद्ध खून को साफ़ करता तथा शेष भाग हवा ... लेकर बाहर निकल जाता है उसमें बहुत कम और जो बाहर आता है ... कारबोनिक एसिड गैस होता है। इसके अनुकूल कितनी गंदगी ... बाहर आती है लेकिन प्रति समय ही आभ्यन्तरिक स्नान होना रहता इतनाही नहीं बल्कि जितनी हवा परमेश्वरीय नियमों से बिगड़ती है उतनी ही शुद्ध भी होती रहती है वायु के शुद्ध करने के लिये परमेश्वर ने नाना प्रकार के पुष्पादि सुगंधित वस्तुओं को उत्पन्न किया है।

हमारे आप के मल मूत्र त्यागने, नहाने, आग जलाने से जो वायु बिगड़ती है उसके शुद्ध करने के लिये ऋषियों ने वेदानुकूल नित्य प्रति हवन करने की आज्ञा दी है उसी के अनुकूल परम धर्म समझ कर प्रति दिन हवन करना योग्य है जिसके लाभ आगे वर्णन करेंगे।

शौच

प्रातः उठकर नगर के बाहर कुछ दूर चल कर शौच जाना अभीष्ट है वर्तमान समय में गृहों के भीतर टट्टी जाते हैं इस से गृहवासियों की बड़ी हानि होती है—पाखाना पतला अथवा सूखा होना अच्छा नहीं—वरन् सर्प के समान शौच होना भला है बहुधा मनुष्यों को शौच देर में होता है किसी किसी को

शौच के समय में शब्द होते हैं यह भी खराब है इस हेतु इन सब बातों पर ध्यान कर शौच शुद्ध होने का यत्न करना चाहिये जो आरोग्यता की जड़ है। शौच करे पश्चात् गुदा को शीतल जल से अच्छे प्रकार धोने से दुर्भाग्यता अपवित्रता आदि का नाश हो बुद्धि शुद्ध होती तथा आयु बढ़ती है जैसा कि चरक अ० ५ में आज्ञा है—

मेध्यस्पवित्रमायुष्यम् लक्ष्मी कलिनाशनम्।
यद्दियो मलमार्गाणां शौचाधानम भीक्ष्णशः॥

गरम पानी से आबदस्त न ले क्योंकि ऐसा करने से बवासीर आदि रोग होजाते हैं। मूत्रेन्द्रिय को भी पेशाब जाने के बाद शीतल पानी से धो डालना चाहिये इस से स्वप्नदोष आदि की बीमारी नहीं होती बीमारी की दशा में वैद्य की सम्मति से कार्य करना चाहिये महर्षि सुश्रुताचार्य का उपदेश है कि—

आयुष्यमुषसिप्रोक्तं मलादीनां विसर्जनम्।
तदत्रकूंजनाध्मानोदरगौरव न्वारणम्॥

अर्थात् प्रायः सूर्योदय से प्रथम ही शौच जाने से आंतों का गुड़गुड़ाना पेट का फूलना तथा भारीपन दूर होकर आयु की वृद्धि होती है और जो स्त्री पुरुष धूप निकलने पर पाखाना जाते हैं उनकी बुद्धि मलिन-मस्तक न्यून बल वाला तथा शरीर में अनेक रोग होजाते हैं बहुधा जन आलस्यमें ... कर मल ... त्र के वेग को रोकते हैं जिससे पथरी मूत्र कृच्छ-शिररोग ... में दर्द और पीठ में पीड़ा हो जाती है इसी भांति छींक, डकार, हिचकी अपान वायु को भी न रोकना चाहिये। इससे भी अनेक रोग हो जाते हैं पाखाना फिरने में ज़ोर न लगाना चाहिये क्योंकि इस से वीर्य्य गरमी पाकर पेशाब की राह निकल जाता है जिससे कमजोरी आजाती है पाखाना साफ़ होने के लिये सबसे अच्छा उपाय यह है कि चारपाई पर से उठकर २०×२५ मिनट टहले फिर पाखाना जावे या नाक बन्द करके ५। ६ घूंट बासी पानी पीवे उसके १०। १५ मिनट के बाद पाखाना जावे। यदि बहुत ही क़ब्ज़ रहता हो तो रातको २।३ मुरब्बे की हड़गुठली निकालकर खाले ऊपर से पावभर गुनगुना दूध मीठा डालकर पीने से प्रातः दस्त साफ़ आता है आठवें दिन पावभर गुनगुने दूधमें दो तोला घी खूब गरम कर डाले और माफ़िक़ से कुछ ज्यादह मीठा। इसके सेवन से मलाशय साफ़ होजाता है। चतुर्मास अर्थात् वर्षा के दिनोंमें कमसेकम एक बार हर माहमें

जवान आदमी को ४ तोला कोस्टूल दूध में पीलेना चाहिये इससे पेटसाफ़ होकर कोई रोग नहीं रहता यदि कब्ज़ अधिक रहता हो तो वैद्यक विषयमें लिखे हुये दस्तावर प्रयोगों को वर्तना चाहिये।

पाखाने से आकर हाथों को पहिले खूब मल मल कर पीली चिकनी मिट्टी से धोये जिससे पाखाने की दुर्गंध तथा विषदूर हो जावे फिर पैर, मुंह, नाक, को अच्छे प्रकार धोवे। कुल्ले खूब कई बार करे आँखों के कीचड़ छुटा धीरे २ ठंडे पानी के छींटे मारे इससे मल-थकावट दूर हो आँखों में तरावट आती है।

इसके उपरांत मसूढ़े बचाकर नीम, खैर, बड़, कीकर, मौलसिरी, सहोड़ा आदि कडुवे चरपरे दूध वाले पेड़ोंकीहरी पतली डालियों की दातौन करनी चाहिए जैसा कि चरक अ० ५ में लिखा है।

आपौत्थितायं द्वौकालौ कषायंकटुतिक्तकम्।
भक्षयेद्दन्त पवनंदन्तमांसान्य बाधयन्॥

दातौन के एक सिरे को दाढ़ से दबा दबा कर बुर्श या कूची के सदृश बना मसूढ़ों को बचा कर दातौन करे। दातौन करने से मुख की दुर्गंध और विरसना (वेज़ायक़ा) दूर हो जिह्वा दांत और मुख का मैल दूर हो कर भूख में रुचि बढ़ती है। सोना, चांदी, तांबा, सीसा अथवा पीतल की नरम और टेढ़ी जीभ खुरचने की जिह्वी बनावे और उससे जीभ को साफ़ करना चाहिये। इससे जीभ की जड़ में इकट्ठा हुआ मल जो सांस को रोकता है दूर हो जाता है।

जिनके गले होठ जिह्वा वा दांतों में दर्द, मुंह में छाले वा सूजन हो और खांसी, कै, अफ़रा, हिचकी, बेहोशी, मिचली, सिरदर्द, थकावट, लक़वा, दर्दकान, आंखों की बीमारी, नवीन बुखार और मुंह से खून जाता हो तो दातौन न करना चाहिये। इसके उपरांत दांतों की स्वच्छता और सर्व रोग विनाश के हेतु और मुंह में सुगन्धि करने के अर्थ नीचे लिखे मंजनों में से किसी एक को लगाना चाहिये।

(१) सेंधानोन, सोंठ, भूनाजीरा इन तीनों को बारीक पीसकर दांतों पर मले अथवा मँजीठ २ तोला, कोयला ढाक १ तोला, नमक १ रत्ती, माजू १ तोला, रूमी मस्तगी १ तोला इनको बारीक पीसकर मले।

(२) इलायची छोटी, त्रिफला, माजूफल, बड़ी हड़, कपूर खैरसार लोहे का बुरादा, सुपारी, अनार के छिलके, वंशलोचन, नीलाथोथा, मँजीठ

रूमीमस्तगी, सुपारी जली हुई, लोध फिटकरी इन सबको बराबर२ लेकर चूर्णकर लगाने अथवा बबूल के छिकल में आठवां भाग फिटकरी भूनकर पीस ले और लगावे।

(३) मूंगाकी जड़की भस्म ६ माशा, वंशलोचन, धनियां, इमली के बीज की गिरी, चिकनी सुपारी एक २ तोला, माजूफल कहरवां, पपरिया कत्था छः२ माशे बारीक पीस कर लगाने से दांतों के सब प्रकार के रोग दूर होकर दांत मजबूत हो जाते हैं।

यदि दांत उखड़ गये हों और उसमें खून निकलता होतो नीचे लिखे मंजन को दांत में लपेट उखड़ी हुई जगह पर धर कर दूसरे दांत से दबाये रक्खे और उसके चारों तरफ मंजन खूब लगादे दाँत जम जायगा॥

नीलाथोथा, कत्था पपरिया चौदह २ माशा, सेंधानिमक७माशा, जीरा सफेद ३॥ माशा, धनिया भुनी हुई ७ माशा, सोंठ१॥ माशा, मिर्चकाली १॥। माशा, मस्तगी, कसीस, कपूरकचरी, कबाबचीनी, मौलसरी हरएक पौने दो माशे। इनमें नीलाथोथे को आग पर भूने। मस्तगी और कसीस को अलग पीसे फिर सबको मिलाले। इसको प्रातः सायंकाल दांतों पर मलने से दांतों का दर्द, हिलना, सूजन खून निकलना दूर हो दांतों की बीमारिया नष्ट हो जाती हैं।

क्षौर।

अथर्व वेद कांड ८ सूक्त२-मन्त्र १८ में लिखा है कि मनुष्य केश छेदन अर्थात् क्षौर कराके सुख और जीवन की शोभा बढ़ावे।

यत्क्षुरेठा मर्कयतासुतेजसा वप्ता वपसिकेशश्मश्रु।
शुभं सुखं मान आयुः प्रमोषीः॥

महर्षि सुश्रुताचार्य जी कहते हैं कि बाल बनवाने और नाखून कटवाने से शरीर सुन्दर-हल्का, उत्साही होजाता है चित्त प्रसन्न रहता है। आरोग्यता बनी रहती है क्योंकि सिर तथा मुख के बाल बनवाने से छिद्रखुल जाते हैं। जिससे खराब प्रमाणु निकलते रहते हैं तथा उत्तम वायु उन के भीतर जाती रहती है इसलिये समस्त कार्यों को छोड़कर आठवें दिन हजामत बनवानी चाहिये। बहुधा हमारे देश के मनुष्य अंग्रेज साहिबान की देखादेखी सम्पूर्ण सिर पर बाल रखते हैं परन्तु यह नहीं सोचते कि

वह सर्द देश के रहने वाले हैं उनके लिये लाभदायक है भारतवर्ष देश गर्म है इसलिये हमारे लिये लाभदायक नहीं।

हजामत बनवाकर पहिले तेल लगाना फिर पानी डालना चाहिए क्योंकि बिना तेल लगाये पहिले ही पानीके धोने से बालोंकी जड़ें कमज़ोर हो ठंड के रोग तथा सफेदी शीघ्र आजाती है।

उबटन—गेहूँके आटेमें तेल पानी और थोड़ी हल्दी डालकर उबटन लगाने से धातु और लोहू की वृद्धि होती है शरीरकी त्वचा (खाल) नरम, मुख पर कांति तथा दृष्टि तेज होती है। चनों के मखता-चिरौंजी और नारंगी के छुकले बराबर २ ले पीसकर मुँह पर उबटन करने से मुँह का कालापन और झाईं दूर होती है साबुन की जगह उबटन लगाना विशेष गुणकारी है।

तैल की मालिश।

जैसे तेल लगाने से मिट्टी का घड़ा, तेल लगाया हुआ चमड़ा और गाड़ी का धुरा मज़बूत हो जाता है वैसे ही कड़वे तेल की मालिश करने से शरीर दृढ़, हलका खाल सुन्दर और चिकनी हो जाती है वायु के राग नहीं होते और न थकावट रहती है। (शरीर पर तेल लगा कर व्यायाम करने से तेल रगरग को बल पहुँचाता है।) आठवें दिन कानोंमें तेल डालने से हनुग्रह, ऊँचा सुनना और बहरापन दूर होता है। (पाँवों में तेल लगाने से) खरदरापन, रूखापन, सूखारोग, थकावट, पावों का सुन्न हो जाना, चींटी सी रेंगना आदि रोग नष्ट हो जाते हैं। (पांव नरम और बलवान् रहते हैं (नेत्रों की दृष्टि तेज रहती है।) देह में गृध्रसी नामक वाला रोगनहीं होता न पावों में बिवाई फटती है। सिर पर नित्य प्रति तेल मलने से सिर दर्द नहीं होता। गंज, खाज, बालों का सफेद होना तथा गिरना बन्द हो जाता है। ग्रीष्म ऋतु में आंवले का तेल लगाने से बाल काले एवं लम्बे हो जाते हैं और गहरी नींद आती है। (खालिस कड़वे तेल को सूर्य निकलने से पहले नाक के नथुनों में सुड़कने से मस्तक बलवान होता है तथा नज़ले की बीमारी नहीं होती।) पुराने बुखार, खाँसी और तपेदिक़ में लाक्षादि तेल का, वायु रोग में माषादि, विष गर्भ और नारायणी तेल तथा

मस्तक पर लगाने के लिये महाचन्दनादि तेलोंकी मालिश करना श्रेष्ठ है। नये ज्वर वाले, कब्ज़ वाले, जुल्लाब लेने वाले और उल्टी करने वालोंको तेलकी मालिश न करनी चाहिए क्योंकि नवीन ज्वर और अजीर्ण में तेल लगानेसे असाध्य रोग होजाते हैं और उल्टी तथा कैकी दशामें मंदाग्नि हो जाती है। बाज़ारी स्प्रिटके तेलोंको भी सिर पर न लगाना चाहिए क्योंकि उन तेलों में मट्टी के तेल का मिलाप होता है जिसके लगानेसे चक्कर तथा मस्तक के अनेक रोग हो जाते हैं इस लिये इनकी जगह पर वैद्यक द्वारा बने तेल का व्यवहार करना चाहिए।

तैल के गुण।

तेल—सामान्य से तेल गरम, तीक्ष्ण, पाक में मधुर, मनको प्रसन्न करने वाले, पुष्टकारक खाल को चिकना करने वाला, कोमलता, मांसकी स्थिरता, बुद्धि, वर्ण और बाल का बढ़ाने वाला, नेत्रों को हितकारी, मूत्र को रोकने वाला, रसमें कसीला, पाचक, वादी और कफ़ का नाश करने वाला, कृमि रोग नाशक, योनि राग, सिर, कान की पीड़ाओं को शान्त करने वाला, गर्भाशय शोधक, और जले हुये आदि के लिये परम हितकारी है।

अरण्डीका तेल—मधुर, त्वचाको हितकारी, योनि और उदर रोगों को दूर करने वाला है। अलसी का तेल—वादीका नाश करनेवाला, गरम, भारी और पित्तकर्ता है। तिल्ली का तेल—स्वादु, मधुर, पित्तकर्ता, विष्ठा और मूत्र को रोकने वाला, कफ़ वात नाशक, बलकर्ता, तथा बुद्धि और अग्नि का बढ़ाने वाला है। सरसों का तेल—खुजली, कृमि, कोढ़ और वादी के रोगों को दूर करने वाला और हल्का है। खालिस सरसों और तिल्ली के तेल के बनाये पदार्थ बलकर्त्ता हैं लेकिन पित्त प्रकृति वालों को तेल के बने पदार्थ न खाने चाहियें। प्रत्येक गृहस्थी को कड़वे तेल की यदि रोज़ न होसके तो आठवें दिन अवश्य मालिश करनी चाहिए गर्भिणी स्त्री प्रसूति स्त्री को भी कड़वा तेल लगा कर स्नान करना चाहिए शिशुकुमारों के भी कम से कम चौथे दिन तेल लगावे इससे शरीर

दृढ़ होता है और खराब पानी का असर शरीर पर नहीं होता। इस के अतिरिक्त सिर पर अनेक फूलों के तेल लगाने का रिवाज पड़ गया है बहुतायत से उनका प्रयोग करना हानिकारक है तो भी फूलों के गुणों के साथ हमने उनका वर्णन आगे कर दिया है जिनको जो जो तेल लगाने हों गुणों पर विचार कर सेवन करें बाजारी तेलों के स्थान पर महाचन्दनादि देशी तेलों के लगाने से अनेक प्रकार के लाभ होते हैं।

फूलों के गुण और प्रयोग।

केवड़ा—मधुर, हलका, ठंडा, कफनाशक नेत्रों को हितकारी है इस का अर्क पिया जाता है और इत्र सूंघा जाता है इसकी वाख होती है। मोतिया—इसका फूल ६ पखुरियों वाला महासुगन्धित सफेद होता है यह गरम, मुख रोग और कोढ़ में इसका तेल व इत्र लगाया जाता है। गुलाब—शीतल, हृदय को प्रिय हल्का और वीर्य वर्द्धक होता है इसका अर्क दाद को नाश करता है और खून विकारों को दूर करता है दुखती हुई आंख में दो चार बूंद डालने से लाली भी कट जाती है। चमेली—ठंडी सुगन्धित कोमल पंखुरियों के फूल होवे हैं इसका तेल सिर दर्द, मुख रोग और खूनकी विकारोंको दूर करता है। हिना—इसके महासुगन्धित फूलों का इत्र मस्तक को तरावट देने वाला होता है। जुही—महासुगंधित नन्हें २ से फूल होते हैं इसका तेल शीतल, कफ और वातकारक तथा मुख, दांत, नेत्र, मस्तक के रोगों को दूर करने वाला होता है। कनेर—के सफेद और पीले व लाल फूल होते हैं इनके फूलों को सूंघना नहीं चाहिये किन्तु शोभाके लिये गुलदस्तों में लगाना चाहिए। चम्पा—इस की भीनी भीनी सुगन्ध वाले पीले फूल होते हैं यह मधुर शीतल होते हैं और इसका तेल कीड़ों, पेशाब में फड़क और खून विकार को दूर करता है। इसके वृक्ष मालवे में होते हैं। मौलसिरी—के फूल महासुगन्धित होते हैं फूल गोल होता है इसके तेल की तासीर गर्म है। कमल—महा सुगन्धित फूल लाल और सफेद रंग के होते हैं इस के फूलों का इत्र वा अर्क भी खींचा जाता है जो दाह और पित्तनाशक है।

व्यायाम अर्थात् कसरत ।

मनुष्य के शरीर की बनावट घड़ी या यन्त्रों के पुर्ज़ों के समान है। यदि घड़ी को असावधानी से पड़ी रहने दें, कभी न झाड़ें फूकें, न उसके पुर्ज़ों को साफ़ करावें तो थोड़े ही दिनों में वह बहुमूल्य घड़ी निकम्मी हो जायगी और उसके सब पुर्ज़े, बिगड़ जांयगे। और जिस प्रयोजन के लिये वह बनाई गई कदापि सिद्ध न होगा। यही दशा मनुष्य के शरीर की है जीवन भी लोहू की चाल पर निर्भर है। और कसरत ही ऐसी वस्तु है जो लोहू की चाल को तेज़ बना देती है। जिस प्रकार पानी किसी ऐसे वृक्ष को जो शीघ्र सूख जाने वाला है फिर हरा भरा कर देता है उसी प्रकार शारीरिक व्यायाम भी शरीर के किसी भाग को निकम्मा नहीं होने देता।

शारीरिक बल दृढ़ रखने के अर्थ कसरत अर्थात् व्यायाम की महती आवश्यकता है। मनुष्य के शरीर में लोहू की चाल उस नहर के पानी के समान है जो किसी बाग़ में हर पटरी में होकर निकलता हुआ सम्पूर्ण वृक्षों की जड़ों में पहुंच सारे बाग़ को सींच कर प्रफुल्लित करता है। प्यारे भाइयो इस वाटिका में जितने हरे भरे वृक्ष रङ्गबिरङ्गे पुष्प अपनी छवि दिखलाते, नाना भांति के फल अपनी २ सुन्दरता-से मन को हरते हैं, यह उसी पानी की माया है यदि उसकी नालियां न खोली जांय तो सम्पूर्ण वाटिका के पेड़ बेलबूटे मुर्झा जाते और फूल फल कुम्हला कर शुष्क हो जाते हैं कि जिस से उस आनन्द युक्त बाग़ में उदासी बरसने लगती है और मनुष्य के नेत्रों को जो उनके देखने से तरावट वा सुख मिलता है उसके स्वप्न में भी दर्शन नहीं होते। इस के उपरान्त अथर्ववेद काण्ड ३ सूक्त ११ मंत्र २। ३ में लिखा है कि प्राण और अपान वायु की गति ठीक न रहने से रुधिर जमकर रोगों को उत्पन्न करता है इसलिये मनुष्यों को उचित है कि व्यायाम के द्वारा अपने प्राण और अपान वायु को ठीक रखकर अपनी शारीरिक अवस्था को सुधारें और दुराचारों से बचा कर अपने जीवन को शुभ कामों में लगावें। जैसा कि—

इहैवस्तंप्राणापानौ मापगातमितोयुवंशरीर मस्यांगानिजरसेवहतंपुनः। प्रविशतंप्राण पानावनड्वाहाविवव्रजं अयन्येयन्तु मृत्यवो यानाहुरितराञ्छतम्॥ चरक सूत्र स्थान अ० ७ में लिखा है—

लाघवंकर्म सामर्थ्यं स्थैर्य क्लेश सहिष्णुता।
दोषक्षयोऽग्निवृद्धिश्च व्यायामादुपजायते॥

मात्रावत (न बहुत अधिक न कम) व्यायाम करने से देहमें हल्कापन-हर काम करने की सामर्थ, दृढ़ता, परिश्रम के काम में रुचि, दोषों का नाश और जठराग्नि की वृद्धि होती है।

कसरत जाड़े और वसन्त ऋतु में लाभदायक होती है परन्तु जो पुरुष चिकने और ताकतके भोजन प्रति दिन करते हैं उन्हें प्रतिदिन कसरत करने से हानि नहीं होती। जो केवल सूखी रोटी खाते हैं उनको कसरत नहीं करनी चाहिये तथा जिनको रक्तपित्त मूखा, सांस, खांसी, उरःक्षत और क्षय रोग हो वह भी कसरत न करें। यद्यपि वैद्यक ग्रन्थों में कसरत करने का समय शीत काल और वसंत बतलाया गया है परन्तु भारत वर्ष में वर्षा ऋतु में अधिकता से कसरत की जाती है इसका कारण यह है कि वर्सात में भोजन ठीक नहीं पचता इसलिये कसरत करने से भोजन पच जाता है और चतुर्मास में होने वाले रोग नहीं होते और कसरत के पश्चात् जो मट्टी लगाई जाती है उससे शरीर की रगें और पट्ठे मजबूत हो जाते हैं यह इंग्लैंडके प्रसिद्ध पहलवान गामा एवं भारत के प्रख्यात पराक्रमी भीम मिस्टर राममूर्त्ति का कथन है—

(१) कसरत शरीर को बलावल और देश काल को देखकर करनी चाहिये। अधिक अभ्यास के अर्थ शनै २ बढ़ाना आवश्यक है।

(२) कसरत करने के समय में स्त्री प्रसंग से बचना योग्य है वरन् अति विषयों से क्षय रोग हो जाता है।

(३) कसरत करने के पीछे ठंढाई वा पानी वा शरबत न पीना चाहिये वरन् एक घण्टे बाद उत्तम गौ व भैंस का गर्म दूध मीठा डालकर पीना, अथवा गाजर वा बादाम का हलुआ मालपुआ, रबड़ी, मलाई अथवा बादाम १०, इलायची सफेद ४, धनियां १ माशा, सफेद जीरा १ माशा, ५ कालीमिर्च सिल पर पीस दो तोला मिश्री मिलाकर पीवें अथवा १० बादामों को मिश्री के साथ चबाना अच्छा है परन्तु अपने शरीर के बल को देखकर सदा खाता पीता रहे।

(४) कसरत करते २ जब शरीर में थकावट जान पड़े दम फूलने लगे मुंह सूखने लगे उसी समय कसरत बंदकर देनी चाहिये।

(५) कसरत करने के पीछे भूलकर के भी स्नान न करे वरन् गठिया, कमर और छातीमें दर्दहो जाता है शरीर की नसें ढीली पड़जाती हैं। हां ३ घंटे के पीछे स्नान करना आवश्यक है।

(६) इन सब बातों के अतिरिक्त अपने २ देशकी कसरतें अन्य देशी कसरतों से लाभदायक हैं इसलिये भारतवासियों को दण्ड, बैठक मुग्दर, कुश्ती दौड़ने आदि की देशी व्यायाम ही सदा करनी चाहियें। क्योंकि यह कसरतें भारत देश के ऋतु और शरीर की बनावट के अनुकूल हैं अन्य देशी कसरतें उन्हीं देशों को अधिक लाभ देती हैं। इसके उपरांत कसरत के समय पर आसनों का अभ्यास भी करना चाहिए जिनसे शरीर के भीतरकी बारीक रगोंपर प्रभाव पड़ता है और वह सरल भी हैं प्राचीन समय में इसका बड़ा प्रचार था, आसन अनेक हैं जिनमें ८४ मुख्य करगिने जाते हैं जिनका वर्णन हम आगे योग विषय में करेंगे। सचतो यह है कि इसी व्यायाम के बल से प्राचीन भारतवासी पुरुष नीरोग्य, सुडौल, बलवान्, बुद्धिमान, कीर्तिमान एवं वीरेश्वर कहाये क्या आपको नहीं मालूम कि इसी व्यायाम के प्रताप से पांडवों ने कौरवों से विजय पाई, श्रीराम ने धनुष को तोड़ा, महात्मा लछमण ने मेघनाथको मारा और मिष्टर राममूर्ति ने कलियुगी भीम की उपाधि को धारण किया इसी व्यायाम के कारण हनूमान और अगंद आदि वीरों की ललकारसे शेर कोसों भागते थे और इसी के प्रताप से भारतवासियों ने समस्त भूमण्डल को अपने आधीन कर रखा था परन्तु वर्तमान समय में वीर शक्ति का नाम ही नहीं रहगया। ८० फ़ीसदी भारतवासी कब्ज़ की शिकायत किया करते हैं भला ध्यान तो दीजिये आये दिन जिन बीमारियों में फंसे हुये हैं उन्हीं के दूर करनेके लिये हमारे पुरुषा कसरत किया करते थे जिससे अन्न शीघ्र पच जाता था भूख खूब लगती थी और गर्मी सर्दी के सहन करने की शक्ति भी उनमें खूब थी इसमें संदेह नहीं कि इस व्यायाम के कारण वीर्य सम्पूर्ण शरीर में रम जाता है जिससे शरीर शोभायमान बल युक्त बन बादी की मुटाई दूर होजाती है। कसरती मनुष्य के शरीर में सदा उत्साह बना रहता है यही निर्भय हो पहाड़, खोह, दुर्गम जंगल और संग्राम आदि स्थानों में बेखटके चले जाते हैं अपनी मनोरथ सिद्धि को दिखलाते तथा गृहकार्यों को सुगमता से कर लेते हैं चोर आदि को घरमें नहीं आने देते सचतो यह

है कि चोर ऐसे मार्ग होकर भी नहीं निकलते। कसरत करते रहने से और खूब तरावट के माल खाने से कुरूप मनुष्य भी अच्छे जान पड़ते हैं और बुढ़ापा शीघ्र नहीं आता इसलिये इन सब बातों को विचार अपनी अपनी संतानों को प्रति दिन व्यायाम कराना चाहिये जिससे भारत में फिर से वीर शक्ति आजावे। कसरत करते समय देश-काल और शरीर के बल को भी देखना उचित है और शक्तिसे अधिक भी व्यायाम न करना चाहिये क्योंकि ऐसा करने से प्यास, सांस, खांसी, रक्त, पित्त, भ्रम, ग्लानि ज्वर, छर्दि और क्षय रोगहो जाता है तथा रक्त, पित्त, कफ़, श्वांस, शरीर में घाव, पेट भरे, स्त्रियों के संसर्ग से क्षीण और भ्रमार्त को कसरत नहीं करना चाहिये जैसा कि:-

रक्तपित्ती कफःशोषी श्वासकासक्षतातुरः
भुक्तवान् स्त्रीपुप्रक्षी गोभ्रमार्तश्च विवर्जयेत्॥

पानी।

प्रत्येक मनुष्य को आरोग्यता के लिये वायु के समान शुद्ध पानी की भी आवश्यकता है विना इसके किसी जीवधारी का जीवन नहीं रह सकता। जैसा यजु अ० १२ में बतलाया गया है-

श्वात्राः पीता भवतयूयमापो अस्माकमन्त रुदरेसुशेवाः।
ता अस्मभ्यमयक्ष्माअनमीवा अनागसः स्वदन्त देवी स्मृता ऋता विधिः॥

अर्थात् जठराग्नि को बलवान, हृदय के रोगों को दूर करने वाले, आरोग्यता, फुर्ती और सब प्रकार से शरीर की उन्नति करने वाले, अमृत के समान स्वादिष्ट उत्तम जल का ही सेवन करना चाहिये।

मनुष्य के शरीर में पानी का भाग दो तिहाई से भी अधिक रहता है अर्थात् जिसके शरीर का बोझ ७५ सेर हो उसमें ५६ सेरपानी होता है यदि इतना पानी शरीर में न हो तो लोहू स्वच्छ न रह गाढ़ा पड़जाय और खून के गाढ़े हो जाने से उसका चलना बंद होकर आरोग्यता में अंतर डाल दे इसलिये श्रेष्ठ जलका पीना लाभदायक है। उत्तम जल वही है जिसमें गंध न आती हो। मधुर, तिक्त आदि कोई रस जिसमें प्रकट न हो जिसके पीने से प्यास बुझ जाय तथा जो शीतल, हलका, हृदय को हितकारी और भोजन को शीघ्र पचाने वाला हो। क्योंकि शीतल जल रक्त,

पित्त, विकार, गर्मी, दाह, विष भ्रम, त्रिदोष, प्यास और मूर्छा रोग को दूर करता है। एवं हलका और हितकारी होता है इसलिये स्वादिष्ट शीतल जलको ही भोजन के बीच में तथा भोजन करने के दो घण्टे बाद या जब आवश्यकता हो पीना चाहिये। भोजन के बाद केवल कुल्ला कर डाले क्योंकि भोजन के पश्चात् बहुत जल पी लेने से पेट डबक जाता है खाना ठीक नहीं हजम होता और पेट की नसें कमज़ोर हो जाती हैं तथा पेट आगे को निकल आता है। अरुचि, जुकाम, कोढ़, नेत्ररोग, सूजन, क्षय और पेट फूलने वाले कमज़ोर बच्चों को पानी थोड़ा पिलाना चाहिये। भोजन के पहिले खाली पेट, पाखाने से आकर, रातको सोते से उठकर, कुश्ती व्यायाम के बाद, स्त्री प्रसंग के बाद, तरबूज़ आदि फलों को खाकर पसीने में सरबोर हुए और शोक की अवस्था में जल नहीं पीना चाहिये। मद्यपान, ज्वर, वमन, मूर्छा और विष सन्निपात में पानी को औटा ठण्डा कर पिलाना तथा अफरा, पेटके दर्द, कब्ज़, जुल्लाब लेने पर, नवीन ज्वर, बायगोला, खांसी, श्वास, हिचकी, चिकनाई के सेवन करने पर, जुकाम, वादी, मंदाग्नि, पसली रोग, शरीर में दर्द, और जच्चा स्त्री को गुनगुना पानी पिलाना चाहिये। बासी पानी पीने से कफ़ की वृद्धि होती है। खारी पानी पित्तकर्ता, कफनाशक, दीपक और हलका होता है। बरसाती पानी में क्वार के महीनेका जल लाभदायक है इसी को आकाशीय वा गंगा जल भी कहते हैं। महर्षि सुश्रुताचार्य जी ने कहा है कि वर्षा के जल पीने से थकावट प्यास, जम्हाई, और जलन दूर होती खून साफ़ होता और पाचन शक्ति बढ़ती है परन्तु प्रत्येक मनुष्य को ऐसा पानी मिल नहीं सकता। हां धनी पुरुष इस का प्रबंध कर सकते हैं कि वर्षा के दिनों में ऊंचे पर कपड़ा तान नीचे से पानी लेकर सोने चांदी के वर्तनों में रख छोड़ें। सामान्य जन शुद्ध जलों की निम्न रीति से परीक्षा कर पीवें।

रोगकारक जल की पहिचान।

जो जल छूने में चिकना, और गाढ़ा हो किसी तरहका रंग या ऊपर उसके कुछ तेल सा मालूम हो, जिस में दुर्गन्ध आती हो, या जो जलपीतल तांबा धातु डालने से काला पड़ जाय, जिस में सूरज की रोशनी न पड़े, जो गंदला हो और जिस में पत्ते पड़ कर सड़ते हों वह जल रोग कारक है उसको न पीना चाहिये।

❀ कुआ ❀

कुयें बनवाने के समय नीचे लिखी हुई बातों पर अवश्य ध्यान रखना योग्य है:—(१) कुयें उथले न हों अर्थात् गहरे हों क्योंकि गहरे कुओं का पानी मीठा होता है। (२) कीचड़ या ढलाव के स्थान पर कुआं न बनवाना चाहिये। (३) निकास का तथा आस पास का पानी उस में रिस रिस कर न जाने पावे। (४) कुओं के आस पास की मुडेल कई फुट चौड़ी होनी चाहिये। (५) कुओं पर लोहे या लकड़ी की जाली होना आवश्यक है, कुओं के ऊपर कोई स्नान न करे, कपड़े न धोये और न कुओं के आसपास पाखाने हों, इन सब से पानी खराब हो जाता है (६) पत्ते वा कूड़ाकरकट भी न गिरने पावे। (७) स्वच्छ डोल वा रस्सी से पानी भरना चाहिये। इस प्रकार के सुरक्षित कुओं का मीठा जल पीना योग्य है।

तालाब।

(१) बहुधा जन तालावोंमें स्नान, दातौन कुल्ला भी करते हैं, (२) अशुद्ध कपड़े उसमें धोते तथा उनका खराब पानी उसमें निचोड़ देतेहैं, (३)तालावों के किनारे पर पाखाने जाते फिर उसमें शौच करते हैं, (४) गाय भैंसादि पशुओंको स्नान कराते तथा कभी कभी सुअर तक चले जाते हैं, (५) सन आदि सड़ने को डालते हैं, (६) जब गर्मियों में तालाव सूख जाते हैं तब उस के भीतर पाखाने जाते हैं (७), तालाबों में बर्तन मांजते धोते हैं। अतएव मनुष्यों और पशुओं के लिये पृथक् २ तालाब होने आवश्यक हैं, उनके किनारे पर हरे पेड़ों का होना भी आवश्यक है, परन्तु पत्ते न जाने पावें। तालाब का पानी बादी करता है, कफीला और पाक में कड़वा होता है।

❀ नदियों का पानी ❀

नदियों का जल बादी, रुक्ष और अग्निदीपकहै, और जिन कारणों से तालावों का पानी खराब होता है उन्हीं बातों से नदियों का पानी बिगड़ जाता है, अतः उन बातों से नदियों के पानी को बचावें तथा हैजे से मरे हुए आदमी और बच्चों को नदी में न डालें, न उसके किनारे गाड़ें। मुर्दे जला कर उनकी राख तथा हड्डियों को भी उसमें न फेंके इत्यादि बातों से नदियों के पानी को स्वच्छ रखना चाहिये। दलदल का पानी पीना योग्य नहीं, क्योंकि इसके पीने से बुखारादि रोग हो जाते हैं। यदिसंयोग-

वश कहीं ऐसा ही पानी पीने को मिले तो औटा और ठंडाकर पीवें। कुछ रीतियां पानी के स्वच्छ करने के लिये लिखते हैं, आवश्यकता पड़ने पर काम में लाना योग्य है।

(१) फिटकरी वा निर्मली को घिस कर डाले। (२) पानी को गर्म करने से भी दूषित परमाणुओं का नाश होजाता है। (३) थोड़ी देर पानी को वर्तन में रखने से उसमें की तलछट बैठ जाती है। (४) बहुत प्रकारके छन्ने बनाये गये हैं। (५) बादाम की मिंगी को पीसकर डालने से पानी अच्छा हो जाता है। (६) नदी के किनारे गड्ढा खोदने से पानी अच्छा मिल जाता है। (७) बहुधा कोयलों से भी पानी को स्वच्छ करते हैं। बहुधा स्टेशनों पर एक तिपाई पर पानी के तीन घड़े रक्खे होते हैं और जिनमें ऊपर के दो घड़ों की पेंदी में छेद होता है जिससे पानी टपक २ दूसरे में होता हुवा तीसरे घड़े में जाता है, उसमें सबसे ऊपर वाले घड़े में पानी और बीच के घड़े में कोयला और बालू रहती है। इसी प्रकार जल को स्वच्छ कर लेना चाहिये।

मित्रवरो! कुछ ईश्वरीय नियमों से भी पानी बिगड़ जाता है, जैसा बहुधा जानवरों का जो उसने उत्पन्न किये हैं मरकर सड़ना और बहुधा घासें जो उसमें पैदा होती हैं सड़कर मिलजाती हैं। उनके दूर करने का उपाय भी ईश्वर ने करदिया है अर्थात् मछलियां उत्पन्न करदी हैं जो उस की सम्पूर्ण गन्दगी को दूर करदेती हैं। उनको भी बहुधा लोग मारकर खाजाते हैं। शोक है उन मनुष्यों पर जो ईश्वरीय नियम को तोड़कर संसार के लाभों को मेटते हैं। मछलियों के भक्षण करने की हानि को हम आगे वर्णन करेंगे।

❀ पानी ठंडा करने के उपाय ❀

(१) पानी को ऐसे स्थान में रखना जहां वायु आती हो, (२) पानी को उछालना, (३) बालू में पानी के बर्तन को रखना, (४) लाटी में पानी के लोटे को बांध के घुमाना। (५) पंखा करना (६) छींके पर रखना। (७) पानी के घड़े के चारों तरफ भीगा कपड़ा लपेटना। (८) बरफ में पानी के बर्तन को रखना॥

स्नान ।

ऋग्वेद मं० १०।१७ और यजुर्वेद अ० ४ मं० २ में उपदेश है कि श्रेष्ठ नदी वा कुओं के जल में स्नान करने से रोगों की निवृत्ति मन की प्रसन्नता और हृदय में शुद्धभाव उत्पन्न होते हैं ।

आपो अस्मान् मातरः शुन्धयन्तु घृतेननोघृत प्वः पुनन्तु । विश्वंहरि प्रंप्रवहन्ती देवी रुदि दाभ्यः शुचिरायूतएमि ॥ महर्षिचरकका कथन है ।

पवित्रंवृष्यमायुष्यं श्रमस्वेदमलापहम् ।
शरीरबल संधानं स्नान मोजस्करं परम् ॥

शरीर के मार्जन एवं स्नान करने से शरीर की दुर्गन्ध, भारीपन, तन्द्रा, खुजली, मैल, अरुचि, पसीना, भयानकपन और थकावट दूर होकर देह शुद्ध और पुष्ट होती है । ऐसाही सुश्रुत में लिखा है—

स्नान करने से उंघाई, जलन दूर होती है चित्त प्रसन्न उत्साहयुक्त और खूब साफ हो जाता है भूंख खूब लगती है । स्नान दो प्रकार से किया जाता है एक गरम जल से दूसरे ठंडे जल से । भाव प्रकाश में भाव मिश्र जी के कथनानुसार गरम जल से स्नान से बल की वृद्धि और वात तथा कफ़ का नाश होता है । गरम जल का स्नान अतिसार, पीनस, नेत्र, मुख और वात के रोगियों तथा नजले वालों, छोटे बच्चों और बूढ़ों को करना चाहिये बाकी सब को शुद्ध तालाब नदी और कुओं के जल से ही स्नान करना योग्य है क्योंकि गरम जल से स्नान करने से सन्धियों के बंधन ढीले पड़ जाते हैं वीर्यको भी हानि पहुंचती है नेत्रों का प्रकाश कम हो जाता है सिर पर तो गरम पानी भूल कर भी न डाले क्योंकि सिर पर गरम जल डालने से मस्तक की रगों को बहुत हानि पहुंचती है ।

बावड़ी—तालाब या जिन कुओं से जल न निकाला जाता हो वहां स्नान करने से नेमोनिया आदि रोग हो जाते हैं तथा वर्षा ऋतु में गंगा आदि नदियों में भी न्हाना योग्य नहीं क्योंकि प्रथम तो वर्षा का पानी कच्चा होता है जिसमें न्हाने वा पीने से ज्वर कब्ज़ पेट के विकार वा फोड़ा फुंसी और नहरुआ आदि रोग हो जाते हैं दूसरे विष्टा—मूत्र—घास और लाशों आदिके बह आनेसे नदियों का पानी विषयुक्त और गंदलाहो जाता है इसी लिये बर्सात में नदियों में कदापि स्नान न करना चाहिये ।

बुखार–दस्त–सफ़रा–पीनस–अजीर्ण–गठिया आदि वायु के रोग में, मैथुन के बाद तीन घंटे तक तथा पसीने में सरबोर होने पर स्नान कदापि न करना चाहिये। किन्तु नीरोग्य स्त्री पुरुषों और बच्चों को शीतल जल से स्नान करने से धातु की क्षीणता, गर्मी के रोग, रुधिर का कोप, शरीर की दुर्गंध, मृगी, उन्माद, रक्तपित, मूर्छा, स्वप्नदोष आदि रोग दूर होजाते हैं। भूख खूब लगती है बुद्धि चैतन्य होती है सम्पूर्ण शरीर को आराम जान पड़ता है मार्ग के खेद को दूर करता है आलस्य पास नहीं आने देता यह बात तो सब जानतेही हैं कि शरीर में असंख्य छोटे २ छेद हैं इन्हीं छिद्रों के द्वारा शरीर के भीतर का विकारी पानी और दुर्गंधित वायु निकल कर उत्तम वायु का प्रवेश होता है परन्तु जब स्नान न करने से यह छेद बन्द हो जाते हैं तब उपरोक्त क्रियायें भी बन्द होकर खाज, दाद फोड़ा, और फुंसी आदि रोग हो जाते हैं जिनके कारण बहुधा कष्ट झेलने पड़ते हैं। इस लिये गर्मी और वर्षा के गरम दिनों में दो बार और शीतकाल में कम से कम एक बार अवश्य नहाना चाहिए और आठवें दिन आंवले या सरसों को पीसकर मुलतानी मिट्टी से सिरको मींज कर अवश्य धोया करे क्योंकि केवल कंधे से नहाने से मस्तक बहुत ही कमज़ोर हो चक्कर रतौंधी और सिर दर्द के रोग होजाते हैं स्नान करते समय पेट को खूब कर धोने से पाखाना साफ़ होजाता है इसके अतिरिक्त नहाने के समय अंग और प्रत्यंग को अच्छे प्रकार साफ़ करना चाहिये क्योंकि जो भाग अच्छे प्रकार नहीं धोया जाता वह दुर्बल हो जाता है। गर्भिणी स्त्री और बच्चों को ठंड के दिनों में तेल लगाकर स्नान कराना चाहिये जिन को स्वप्न दोष होते हों तथा नींद कम आती हो उनको सोने से पहिले मुंह–हाथ और पांव को शीतल जल से धोकर अंगोछे से पोंछ कर सोना लाभदायक है स्नान करने के पीछे गाढ़े के अंगोछे या तौलियासे शरीरको अच्छे प्रकार पोंछना उचित है क्योंकि जांघ आदि स्थानों में पानी रहजाने एवं गीले कपड़े पहरने से दाद आदि रोग हो जाते हैं कुओं के पास साफ़ चट्टान या स्नानागार (गुसलखाने) में नहाना उचित है जिस में प्रकाश और वायु भी आती हो। स्त्रियों को नङ्गा कदापि न नहाना चाहिये।

अनुलेपन।

स्नान करने के बाद ग्रीष्मऋतु में चन्दन, सफेद, कपूर, सुगन्धवाला

एक २ माशा घिसकर १ रत्ती पेपरमेंट मिलाकर तथा शीतकाल में चन्दन लाल, केसर, काली अगर में १ रत्ती कस्तूरी मिलाकर माथे पर लेपकरना चहिये इससे सिर दर्द नहीं होता, चित्त प्रसन्न रहता है बदबू दूर होती है बेहोशी दाह का भी नाश होता है ऐसा महर्षि चरक सुश्रुताचार्य तथा भावमिश्र जी का उपदेश है इस लिये नहाने के बाद आरोग्यता के लिये लेपन अवश्य करना चाहिये।

स्नान और अनुलेपन के बाद संध्या, प्राणायाम और हवन करना चाहिए जिनके लाभों का वर्णन हम आगे करेंगे।

———— :o: ————

अंजन लगाना।

प्रति दिन नेत्रों में अंजन लगाना चाहिये क्योंकि इससे खुजली, पानी आना, दर्द, वायु तथा धूप के विकार नष्ट होकर नेत्रों का प्रकाश सुन्दर युक्त हो जाता है। साधान्यतया से सुरमा प्रातःकाल स्नान के पीछे तथा रात्रि को शयन करने के समय लगाना चाहिए परन्तु दिन में कोई ऐसा तेज अंजन न लगावे जिससे आँखों से पानी निकलने लगे क्योंकि ऐसा होने से नेत्र सूर्य का बल सहन नहीं कर सकते। वैद्यक ग्रन्थों में बहुत प्रकार के सुरमे बनाने की रीतियों का उल्लेख है परन्तु हम उन में से एक की विधि जिसका हमने अनुभव किया है लिखते हैं।

प्रथम काले सुरमे की डेली को आग में गरम कर सात बार त्रिफला के रस में फिर स्त्री के दूध तदुपरान्त गौ मूत्र में पांच २ बार पृथक् २ बुझा महीन पीस कर नेत्रों में लगावे परन्तु भोजन और स्नान करने के पीछे रात को जाग कर फ़ौरन और बुखार में सुरमा न लगावे। दृष्टि रक्षा के लिये निम्नलिखित बातों पर ध्यान बनाये रहे।

१-सिर को ठण्डा और पैरों को गरम रक्खे। २-जहां यथेष्ट प्रकाश न हो वहां बारीक अक्षरों को न पढ़े। ३-नशों का सेवन न करे। ४—मुख और नेत्रों को नित्य शीतल जल से अथवा चौथे आठवें दिन विशेष कर बसन्त ऋतु में त्रिफला के पानी से धोना। ५-प्रातःकाल बिना कुछ सूक्ष्म पदार्थ खाये आंखों पर बहुत बल न डालना। ६-पांचवें सातवें दिन रात को पलकों पर रसोत का लेपन करना। ७-कठिन धूप में न चले, आंच को बहुत देर तक न देखें, गरम जल से नेत्रों को न धोवे,

रूखा भोजन न करे, मिट्टी के तेल की रोशनी में न पढ़े क्योंकि इसकी रोशनी में पढ़ने से आँखें ख़राब हो जाती हैं इसके धुएँ से आँखों में चरचराहट, पानी बहना, खुजली आदि रोग हो जाते हैं। अधिक परिश्रम न न करे। ८—सूरज की ओर टिकटिकी लगा कर न देखे क्योंकि इससे ज्योति नष्ट हो जाती है। ९-बहुत रोने, शोक और ग़ुस्सा करने, लाल मिर्च तथा खटाई खानेसे भी आंखोंका प्रकाश कम होता है। १०-मक्खन. मिश्री और गोला अथवा घी, बूरा और कालीमिर्च मिलाकर खाना। ११—उत्तम तेलों को सिर पर लगा कर स्नान करना। १२—रात को सोते समय पांव के तलवे में तेल लगवाना। ताजे गौ के घी को ६ माशा पीना वा थोड़ा हुलास लेना। १४-हरी वस्तुओं के देखने से दृष्टि को लाभ होताहै। इस लिये बाग़ों में फिरना और टहलना आदि उपायों से नेत्रों की रक्षा करना योग्य है॥

बालों का काढ़ना।

कङ्घी या कङ्घे से बालों को काढ़ने से नेत्रों का प्रकाश बढ़ता है बाल साफ़ हो जाते हैं जुएँ आदि नहीं पड़ते। कम से कम स्नान के बाद एक बार अवश्य कङ्घी डालनी चाहिये इससे बालों की जड़ में जमा हुआ मैल दूर हो बालों की जड़ों के छेद खुल जाते हैं जिससे स्वच्छ वायु का संचार होता है॥

आवश्यक बातें।

१—पगड़ी पहरने से शरीर की शोभा, बालों की रक्षा, कफ़ का नाश होता है इस लिये हल्की पगड़ी अवश्य बांधना चाहिये बहुत भारी डुपट्टा बांधने से पित्त एवं नेत्ररोग हो जाता है।

२—दर्पण के देखने से मङ्गल होता है और शोभा बढ़ती है परन्तु बार बार देखना योग्य नहीं।

३—छाता के लगानेसे नेत्रोंको आनन्द, उत्साह, और सुख मिलता है सिर की रक्षा होती है, गर्मी में धूप से, वर्षा में पानी से बचाता है जिस से ज्वरादि रोग नहीं होने पाते।

४—छड़ी रखने से हाथ की शोभा होती है। कुत्ता, बिल्ली आदि से बचाती है भय का नाश होता है।

५—जूता पहरने से पाओं को आराम मिलता है कांटा आदि अशुद्ध वस्तुओं के लगने से पांव बचते हैं।

६—खड़ाऊँ भोजन के पहिले या पीछे पहनने से पैरों के रोग दूर हो जाते हैं आयु और शक्ति की वृद्धि और नेत्रों को हित होता है।

७—लालटैन यदि अँधियारी रात को कहीं जाना हो तो लालटैन अवश्य ले लें। इससे मार्ग में सर्प आदि जन्तुओं अथवा शत्रुओं का भय नहीं होता।

सोना।

भाग्यशील वे मनुष्य हैं जो दिन भर कार्यों में व्यतीत कर रात को सोते हैं। उनको गहरी नींद के पश्चात् जागने पर बड़ा आनन्द आता है परन्तु यह सब लाभ उन मनुष्यों को नहीं होता जो दिन में सोकर अपने समय को व्यर्थ खोते हैं वे रात भर करवटें लेते झपकी की दशा में लेटे रहते हैं तो भी प्रातःकाल सुस्ती तथा काहली जान पड़ती है वारम्बार जम्हाइयां आती हैं इस लिये निरोग्यता चाहने वाले मनुष्यों को दिन में कदापि न सोना चाहिये क्योंकि दिनमें सोने वा रात्रिके जागरणसे खांसी, तप, अंग में पीड़ा और सिर भारी हो जाता है पाचनशक्ति कम हो जाती है। हां गर्मी के दिनोंमें एक घंटा सो रहना अच्छा है परन्तु यह भी स्मरण रहे कि ८ घंटे से अधिक और ६ घण्टे से कम कदापि न सोना चाहिये। कुसमय सोने अथवा प्रमाण से अधिक सोने अथवा विल्कुल ही न सोनेसे मनुष्य के सुख और आयुकाल रात्रि के ऊषाकाल की तरह नष्ट हो जाते हैं जैसा कि चरक अध्याय २१ में लिखा है—

अकालेऽतिप्रसङ्गाच्च न च निद्रानिषेविता।
सुखायुषीपराकुर्यात्कालोपेवागतानरम्॥

और ठीक रीति के सोने से सुख और दीर्घआयु मनुष्य शरीर में ऐसी आती है जैसे सिद्ध द्वारा योगी के पास सत्य बुद्धि चली आती है अथर्ववेद कांड ६ सूत्र ४६ मं० १ में लिखा है कि दिन में परिश्रम करने

वालों को रात्रिमें सोने से सुख मिलता है और नियम विरुद्ध सोनेसे आयु घटती है ॥

बच्चों और बूढ़ों के लिये यह नियम नहीं है कि ६ घंटे ही सोवें वरन् उनकी जितनी इच्छा हो सोवें । सोने का कमरा तथा घरों में रोशनदान और खिड़की वायु आने के लिये अवश्य लगाना चाहिये । कमरोंको जाड़े के दिनों में गुलाबी वर्षा में सफेद तथा गर्मी में हरे रंग से रंगवाना उचित है । चारपाई साढ़े तीन हाथ लम्बी, ढाई हाथ चौड़ी, एक हाथ ऊंची होनी चाहिये । पर यह भी स्मरण रहे कि एक स्थान पर अधिक मनुष्य न सोवें क्योंकि उनके स्वांस लेने से हवा बिगड़ कर रोग उत्पन्न करदेती है । इसलिये प्रत्येक के लिये ४८ वर्ग फ़ीट जगह होनी आवश्यक है चारपाई में खटमल आदि भी नहीं, बिछौने के अर्थ तोषक वा गद्दा, गर्मियों में गलीचा वा दरी आदि हो, दो एक तकियों का होना आवश्यक है । सोने के स्थान में कोई पशु न बांधे क्योंकि इससे हवा बिगड़ जाती है । गर्मी के दिनों में मुखको खोलकर सोना चाहिये परन्तु भीगे कपड़े पहिन वा पैर को पानी में डुबो कर या बिल्कुल नंगा होकर न सोवे । जाड़े के दिनों में लिहाफ़ ओढ़ कर सोना चाहिये परन्तु लिहाफ़ में मुंह छिपाकर या किसी मर्द या औरत के साथ एकही बिस्तर पर एक ही लिहाफ़ के भीतर न सोना चाहिये इसके उपरान्त मकान के भीतर कोयला वा लकड़ी जलाकर और दर्वाज़ा बन्द करके सोना बहुत बुरा है, क्योंकि 'कारबोनिकगेस' मनुष्य के स्वांसों के साथ शरीर में आकर प्राण हर लेता है । इस लिये इस छोटी सी बात की ओर हमारे देश भाइयों का ध्यान होना बहुत ही आवश्यक है, क्योंकि समाचार पत्रों के पढ़ने से जाना जाता है कि जो मनुष्य इस बात का विचार नहीं रखते वे अवश्य ही मर जाते हैं । कई एक स्थानों में ऐसा हो चुका है इसलिये इस बात को सदा स्मरण रखना चाहिये ।

यदि आगको भीतर रखने की ज़रूरत हो तो बाहर से खूब जला कर और सुर्ख करके भीतर रखना योग्य है । मिट्टी का चिराग़ जलता छोड़ कर बन्द मकान में सोने से भी ऐसे ही रोग हो जाते हैं, इस लिये सोने से पहिले चिराग़ को ज़रूर ठण्डा कर देना चाहिये । इस के अतिरिक्त ऐसा प्रबन्ध भी करे जिससे तीव्र वायु वा अन्य तुच्छ कारणों से निद्राभंग न हो सब चुप चाप होकर सोवें खलबली कोई न मचावे अर्थात् इन्द्रिय

निग्रह कर शांति चित्त होकर सोवे। उस समय करवट का विचार अच्छे प्रकार से रक्खे क्योंकि करवट का असर नींद पर बहुत पड़ता है जैसाकि बेआराम और तङ्ग करवट से नींद रुक जाती है, अतः अच्छे प्रकार करवट लें, क्योंकि तन्दुरुस्त मनुष्य के लिये पीठ के बल लेटना हानिदायक है और जब दिल निर्मल होता है किसी दिमागी रोगोंमें या रगोंकी निर्बलता में इस प्रकार लेटने में खून सिरके पिछली तरफ़ को रुजू हो जाता है तो भयानक स्वप्न दीख पड़ते हैं। इस के उपरांत जिन मनुष्यों की छाती तङ्ग होती है या किसी रोग से पीठ के बल सो नहीं सकते प्रायः नींद में ज़ोर २ से खुर्राटे के शब्द करते हैं। उसका कारण भी करवट पर न सोना है, क्योंकि उनका नरम तालू और कौआ ज़बान पर लटक पड़ता है पुनः ज़बान पीछे को हटकर हवाकी नाली का रास्ता कुछ बन्द करदेती है। साथ ही घुर्राटों का शब्द निकालना शुरू हो जाता है। इसलिये उचित है कि करवट पर सोये, विशेष कर दाहिनी करवट पर सोना योग्य है, क्योंकि जो मनुष्य के शरीर की बनावट अच्छे प्रकार से जानते हैं वे इस बातको समझते हैं कि दाहिनी करवट सोनेसे भोजन मेदे के भीतर से सुगमता के साथ अन्तड़ियों में चले जाते हैं विपरीत दशा में भोजन मेदे से दूसरी ओर पड़ा रहता है। इसके उपरान्त बाईं करवट सोने से क़ल्ब भी दबजाता है, अतः प्रथम दाहिने करवट सोना योग्य है जब थक जाय तो दूसरी करवट बदल ले, कतिपय वैद्यकादि ग्रन्थों में बाईं करवट सोने का ही उपदेश है। बहुधा जन सोते से उठ जल पीकर तत्काल सो जाते हैं यहभी योग्य नहीं क्योंकि यह जल शरीर की आरोग्यता को हरता है। प्रकट हो कि पलंग या चारपाई पर सोने से त्रिदोष का नाश, पृथ्वी पर सोने से दोष की वृद्धी, तथा काष्ट पर सोने से वायुका कोप रहता है।

इसके अतिरिक्त सोने में दक्षिण की ओर पांव न करना चाहिये क्योंकि मनुष्य के भेजे में एक शक्ति है जिसको अंगरेज़ी में 'मैगनेट' तथा अरबी में 'कुव्वत ज़ाज़बा' कहते हैं। उस शक्ति का धड़कने वाला भाग अधिकतर मनुष्य की चोटी की ओर होता है। जब उसका सिर उत्तर की ओर होता है तब उसकी गति नियुक्त संख्या से बढ़जाती है। देखो ध्रुव यन्त्र को जिसको अंगरेज़ी में 'कम्पास' और उर्दू में 'क़ुतुबनुमा' कहते हैं। लोहे में इस शक्तिका अधिक भाग होता है अतः वह सुई जो क़ुतुबनुमा

में लगाई जाती है सदा हिला करती है उसका एक सिरा सदा उत्तर की ओर रहता है क्योंकि उस शक्ति का यही स्वभाव है। बस जब कि मनुष्य दक्षिण की ओर पांव करके सोवेगा और देह गति का कम्प भेजे में न पहुंचेगा और भेजा स्थिर होगा तो वह शक्ति (मेगनेट) जो भेजे में है अपना जोर करेगी और धड़कने लगेगी और रात भर नियुक्त संख्या से (जो दूसरी ओर रहने से कम धड़कती है) अधिक तर धड़केगी जिससे भेजे में हानि होगी। यदि कोई मनुष्य सदा दक्षिण की ओर पांव करके सोवे और उसके भेजे का मेगनेट उत्तर की ओर रहे तो निःसंदेह उस का भेजा डामाडोल हो उसमें नाना प्रकार के मस्तक के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। रात्रि में भेड़िया आदि दुष्टजीवों तथा चोर डाकू आदि शत्रुओं से बचने के लिये उत्तम पहिरेदारों को रख अपनी रक्षा करनी चाहिये जैसा कि अथर्ववेद काण्ड १६ में लिखा है।

सा पश्चात् याहि सपुरः सोत्तरादधरादुत।
गोपायनोविभावरिस्तोतारस्ताइहस्मसि ॥

—— :o: ——

वस्त्र।

वस्त्र सदा देश काल के अनुसार पहिनने चाहियें, परन्तु प्रसम्प्रति तो जो जी में आता है पहनते हैं देखिये गर्मी के दिनों में अपने देश में काला कपड़ा अधिक पहिना जाता है। यह मानी हुई बात है कि उष्ण वस्तु में गर्मी अधिक घुस कर बहुत काल तक ठहरती है। उसी हेतु काले वस्त्र में प्रवेश की हुई गर्मी शरीर के अंदर व्याप्त रस, रक्त और वीर्यादि को अधिक गर्म बना देती है जिस के कारण उत्तम भोजन खाने पर भी धातु क्षीण और रक्त विकार आदि रोग घेरे ही रहते हैं इसी लिये प्राचीन पुरुषाओं ने नीलाम्बर और कृष्णाम्बर वस्त्रों का निषेध कर पीताम्बर एवं सफेद स्वच्छ वस्त्रों के धारण करने की आज्ञा दी है उसी के अनुसार हम को कपड़े पहनने चाहियें तथा उन की स्वच्छता पर विशेष ध्यान रखना योग्य है क्योंकि शरीर के स्वच्छ रहने पर भी यदि हमारे वस्त्र मलीन हैं तो भी हमारे शरीर में नाना प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं उन की

नोट-शरीर की बनावट जानने के लिये हमारी बनाई पुस्तक शरीर विज्ञान को देखिये मूल्य ॥)

दुर्गंधि से अन्य जन हमें पास बैठाखने से घृणा एवं निन्दा करते हैं इस लिये (वस्त्र) चाहे कितने ही अधिक मूल्य वा न्यून दामों के क्यों न हों (आठवें दिन अवश्य साफ़ कर लेना चाहिये क्योंकि साफ़ वस्त्रों के धारण करने से) ही (कांति, यश और आयु की वृद्धि होती है दरिद्रता का नाश और चित्त में हर्ष रहता है।) श्रीमानों की सभा में जाने योग्य होता है इस के अतिरिक्त लाल और भीगे कपड़ों को भी न पहरना चाहिए। इन सब बातों के उपरांत अपने देशीय वस्त्रों को सब काम में लाना योग्य है जिससे अपने भारतवर्ष की उन्नति हो और यहां का ६० करोड़ रुपया बाहर को न जावे। हमारे भारत देश में बड़े २ उत्तम और दृढ़ वस्त्र बनते हैं देखिये (प्राचीन काल में यहां के सौदागर और व्यापारीगण रोम और ग्रीस में जाकर माल बेचते थे। यूरूप देशीय कोमलाङ्गी ललनाएं यहाँ के बुने हुए बारीक और सुन्दर वस्त्रों को देख चकित होती थीं। ढाके की घटिया मलमल के १० गज़ के थान का वज़न ८ तोला ४ रत्ती होता था और यहीं के बुने हुये मसलिन नामक कपड़े के थान फूंक से उड़ सकते थे इस समय भी मुर्शिदाबाद की रेशमी वस्तुयें, काशी का कमख़ाब और सलमें का काम, दिल्ली में सलमें के काम की अनेक वस्तुयें कश्मीर में शाल दुशालों में सुई का काम, कश्मीर, आगरा, मिर्ज़ापुर, जयपुर, अजमेर, बीकानेर, मैसूर और पूना में क़ालीन और दरी का काम बहुत अच्छा होता है। कासगंज, ब्यावर, बिस्वाँ में महीन कपड़े उत्तम बनते हैं परन्तु हम को अपने देश के बुने खद्दर वा महीन वस्त्रों के धारण करने में लज्जा आती है और विदेशीय वस्त्रों को पहन तथा विदेशीय चाल ढाल यानी फैशन से रहनाही हमारा मुख्य काम हो गया। मान्यवरो ज़रा तो विद्वानों की बातों पर विश्वास कर अपने पूर्व पुरुषाओं की चाल ढाल को विचार कर देशीय वस्त्रों को धारण करने का प्रण कीजिये जिस से धन, धान्य और धर्म की वृद्धि हो और शरीर भी आरोग्य रहे।

नगर, गांव, मकान।

वर्तमान समय में नगर और गांव की बनावट उत्तम रीत पर नहीं हैं,

प्राचीन समय में जितना लम्बा चौड़ा नगर वा गांव होता था उसके आस पास उतना ही लम्बा चौड़ा जंगल छोड़ा जाता था ।

प्यारे पाठकगणों ! विचार कर देखो तो नगर से आठगुणी पृथ्वी जंगल के लिये रहती थी । यही कारण था कि जिस प्रकार से प्रत्येक नगर के न्यारे न्यारे नाम होते थे इसी भांति प्रत्येक नगर के नीचे जो जंगल होते थे उनके पृथक् २ नाम होते थे, यही कारण था कि श्रीराम चन्द्र जी महाराज एक बन से उठ दूसरे बन और वहां से उठ तीसरे बन, और इसी प्रकार बराबर बनों ही बन में ठहरते हुए चले गये । पाठक गणों को ज्ञात हो कि हमारे देश के राजाओं को इतने ही बनों से सन्तोष नहीं था जिनका हमने वर्णन किया है, प्रत्येक प्रांत में पहाड़ों के निकट नदियों के किनारे किनारे बड़े बड़े बन होते थे जिन बनों में ऋषिगण निवास किया करते थे और वानप्रस्थ वाले महात्मा लोग उन्हीं जंगलों में रह धर्मोपार्जन करते थे जिनका विद्या की उन्नति करना प्रति दिन का काम था इन सब के अतिरिक्त जंगलों के होने से नगर वा ग्राम वालों को भी अति उत्तम पवन मिलती थी जिससे वे सदा हट्टे कट्टे रहकर नाना प्रकार के उद्यम कर अनेकानं प्रकार के सुखों को भोगते थे । तदनन्तर जङ्गलों में गौवों का पालन अच्छे प्रकार होता था, दूध घी की अधिकता रहती थी इन्हीं गौवों का गोबर खेतों के लिये उत्तम खाद था, ईंधन की अधिकता का यही कारण था एवं अधिक वृद्धि का हेतु यह बन ही थे इस लिये जंगलों का अधिक होना अभीष्ट है ।

सज्जनो ! नगर की रचना और बनों के न होने से नाना प्रकार की हानि हो रही है तिस पर तुर्रा यह है कि वर्तमान समय में हमारे और आपके गृह अर्थात् निवास स्थान भी विपरीत दशा पर बनाये जाते हैं कि जिससे उत्तम वायु के स्वप्न में भी दर्शन नहीं होते । क्योंकि मकानों का निकट २ होना, कुर्सी आदि नीची, सहन का नाम भी नहीं ।

इसके उपरांत अत्यन्त छोटे तिसपर भी भोजन बनाने और सोने तथा उठने बैठने का काम एक ही स्थान से लिया जाता है । कमरों के निकट ही पाखाना होता है जिससे बहुत बड़ी हानियां होती हैं इस लिये निम्नलिखित बातों का ध्यान रख कर मकान बनाने चाहियें ।

---

* मकान बनाने की रीति *

वेदों में शाला (मकान) बनवाने के विषय में बहुत कुछ लिखा है उसमें से कुछ हम यहां लिखते हैं। अथर्ववेद कांड १ सूक्त १२ में उपदेश है कि जब गृह बनवानेका विचार हो तो प्रथम योग्यप्रवीण शिल्पी विश्वकर्मा से चित्र (नक्शा) खिंचा कर अपने विद्वान् सम्बन्धियों तथा मित्रों से सम्मति ले प्रथम ईंट, पत्थर, चूना इत्यादि सामग्री इकट्ठा करे फिर सर्व सम्मति से निश्चय किये हुए के अनुसार यथायोग्य स्थान पर लम्बे चौड़े तथा छोटे बड़े दिखनौत कमरों को बनवावे प्रत्येक जगह के जोड़ मज़बूती से जोड़े जावें। दर्वाज़े और उनमें चटखनी इस प्रकार की लगाई जावें जो सरलता से खुल मुँद सकें। और पठन, पाठन, विचार, शयन, मन बहलाव, रसोई, भोजन करने, अतिथिशाला, कोष रखने के लिये गुप्त घर तथा तल घर, रोगियों के लिये और पशुशाला, भण्डार आदिके लिये पृथक् २ स्थान बनवावे जिसमें रहने वाले स्त्री पुरुष आदि परिवार सुरक्षित एवं आनन्द से रह सके जिस प्रकार पक्षी अपने घोसलों में, जठराग्नि शरीर में तथा गर्भस्थ बालक गर्भ में आनन्द से रहता है। कांड ३ सू० १२ मंत्र १ में लिखा है कि घरों को मज़बूत और उत्तम विभागों से बनवावे जिसमें वायु और धूप अच्छे प्रकार से आवे जिससे सब परिवार हृष्ट, पुष्ट और आरोग्य रहे। कांड ६ सूक्त ३ मंत्र १ में लिखा है कि उत्तम सामग्री से भले प्रकार सुथरे, सुन्दरे, दिखनौत और चोरोंसे सुरक्षित मकानों को बनवावे। और काण्ड १० मंत्र १२ में लिखा है कि जब मकान बन जावें तब विधिवत यज्ञ कर गृह प्रवेश कर परमात्मा से प्रार्थना करे कि हे प्रभो! जो शालायें (मकानात) मैंने बनाये हैं वह धन, धान्य, वीर सन्तानों, गौ, घोड़ा आदि पशुओं से भरपूर रहें। जैसा कि—

इहैवध्रुवां निमियोमिशालांक्षे मेतिष्ठाति घृतमुक्षमाणा। तांत्वाशाले सर्ववीरः सुवीरा अरिष्टवीरा उपसंचरेम्। इहैवध्रुवां निमिनोमिशालांक्षे मेतिष्ठाति०००० त्वां००००सर्ववीराः सुवीराअरिष्टवीरा उपसंचरेम्००० अश्वावती, गोमती सुनृतावती ऊर्जस्वती घृतवती पयस्वत्युच्छ्यस्वमहते सोभगाय ॥

मकान बनवाने में निम्नलिखित बातों का भी ध्यान रखना चाहिये। (१) घर की कुर्सी ऊँची हो उसके आगे सहन हो। (२) नगर के मार्ग

खुले रहें। (३) एक घर से दूसरा घर कुछ अंतर से हो। (४) मकान सम चौरस हो। (५) चारों द्वारों से वायु खूब आती रहे। (६) मकान के जोड़ और चिनाई मजबूत हों। (७) स्त्रियों का कमरा अलग और पुरुषों का अलग हो (८) रसोई बनाने और भोजन पाने के स्थान भी अलग २ हों। एक स्थान मनुष्यों के मिलाप के लिये हो जिसको वर्तमान समय में बैठका कहते हैं।

इसके उपरान्त स्त्रियों के बैठक में उत्तम योग्य स्त्रियों के चित्र और पुरुषों के कमरे में धर्मात्मा और आदर्श पुरुषों के चित्र शीशे और चौखटों में लगवा कर तथा **सत्यंवद, धर्मंचर, मागृधः कस्यचिद्धनम्, पाप से बचो, भलाई करो, अपने शरीर से किसी प्राणी को दुःख न दो, सत्य के द्वारा सदाचारी पुरुष दुखों से बचते हैं, चोरी करवाना बड़ा पाप है, ब्रह्मचर्य व्रत पालन करने से मृत्यु पर विजय मिलती है, लालच न करो, शुद्ध पवित्र रहो। संतोष का फल मीठा होता है, धर्म करने से सुख मिलता है। स्वाध्याय करने से ज्ञान और शान्ति की प्राप्ति होती है, प्रभु की भक्ति करने से धन धन्य और मुक्ति की प्राप्ति होती है, दूसरों का उपकार करना परमधर्म है, बड़ों की आज्ञा माननी चाहिए।** इत्यादि वेद के उत्तम मन्त्रों, उपनिषदों के वाक्यों, सत्पुरुषों के आदेशों को मोटे सुन्दर अक्षरों में लिख कर घर की दीवारों पर टाँग देना चाहिए इससे गृह की शोभा होती है और धार्मिक पुरुष एवं स्त्रियों के चरित्रों के स्मरण से नर नारियों के जीवनों पर उनके आदर्शमय जीवन का प्रभाव पड़ता है, अग्निहोत्र के लिये भी एक स्थान नियत कर लेना योग्य है प्रत्येक कमरेकी छत ऊँची पाटनी चाहिये। मकानमें रोशनदान भी अवश्य रखने योग्य हैं। किसी ओर से ऐसी आड़ न हो कि जिस में सूर्य का प्रकाश न आसके। कुएँ पक्के उत्तम, पाखाने का स्थान कुएँ से पृथक् और पशुशाला भी अलग हो तथा (१) बहुत से मनुष्यों का एक स्थान पर रहना (२) घर के निकट मुर्दों का गाड़ना व जलाना वा अधूरा

जलाकर छोड़ना वा घूरे का इकट्ठा रखना। (३) मुर्दों वा मरे हुये पशुओं का आस पास सड़ना। (४) दुर्गंधित वस्तुओं और पाखानों के मैले उठाने का उत्तम उपाय न करना। (५) घरका आंगन बाहर की धरती से नीचे में होना। (६) छतों पर पाखाना जाना। (७) आंगन ऐसा न हो जिसमें पानी भरा रहे या उसके आस पास पानी इकट्ठा रहे। (८) चमार, रङ्गसाज़, छीपी, क़साई आदि के घर निकट न होने चाहियें।

प्यारी बहिनों! मकानों की बनावट ठीक न होने से आसपास बाग़ों वा फुलवाड़ियों का होना अति कठिन होगया है जिस के कारण गृहीजनों को उत्तम वायु नहीं मिलती। परन्तु जीवधारियों को उत्तम वायु की वैसी आवश्यक्ता है जैसे मछलियों को पानी की, अतएव उत्तम वायु ही हमारे जीवनका मूल है। अन्नको त्याग कर एकदो दिन जी भी सकते हैं लेकिन बिना वायु के पलमात्र जीना कठिन है और अशुद्ध वायुके सेवन से नाना रोग हो जाते हैं। वर्तमान समय में हमारे गृहों में छोटे हरे पौदे और फुलवाड़ी के दर्शन तक नहीं होते। हे युवतियों! यह हरे पौदे नाना भांति के पुष्पों से सुशोभित केवल नेत्रों को तरावट ही नहीं देते वरन् हमारे अपान प्राण के लिये भी बड़े गुणदायक हैं, क्योंकि यह पौदे यथाशक्ति अशुद्ध पवन को खैंच लेते हैं, उसके बदले कलियां और पुष्प स्वच्छ पवनका हमें दान देते हैं, उनकी कोमल पत्तियाँ चित्त को हरती हैं। हमारी समझ में स्त्री पुरुषों पुत्र पुत्रियों आदि के मनोरंजन और चित्त-विलासके अर्थ गृहमें छोटी २ क्यारियां बनाने, हरे २ पौदों को जलसे सींचने और नये २ पत्ते और नरम २ कोपलों तथा शोभायमान पुष्पों के दर्शन से अधिक कोई काम नहीं। इनके पालन पोषण के अर्थ किसी बात की चिन्ता नहीं करनी पड़ती क्योंकि उनका आधार और जीवनमूल निर्मल जल है, कभी कभी गुड़ाई करनी पड़ती है सो दोनों कार्यों को छोटे से छोटा बच्चा भी कर सकता है।

प्यारी बहिनों! प्रतिदिन अग्निकुण्ड से होम के समय सुगन्धितपदार्थों का धुआं हमारी इस छोटी सी पुष्पावली के हरे २ पत्तों और रमणीक फूलों को चूसता हुआ शनैः२ श्वांस लेकर आघ्राण करनें में किस आर्य्य को प्यारा न लगेगा? किसको उसकी अभिलाषा न होगी और पुष्पवाली

से होम का योग अवलोकन कर किसको आनन्द न होगा ? अन्य देश के निवासी अपने गृहों में बेल बूटे कैसी रुचि के साथ रखते हैं आप पानी देते अथवा देख भाल करते हैं जिसके कारण प्रत्येक गृह फूलों का उपवन दृष्टि आता है। इस बातकी साची के लिये बङ्गदेश पर दृष्टिडालिये तो स्पष्ट प्रकट होता है कि वहां कोई घर ऐसा न होगा कि जहां हरे २ खजूर और नारियल के वृक्ष के वृक्ष तथा केले के स्तम्भ न लहलहाते हों। यदि हमारे तुम्हारे घरों में सहन नहीं तो मिट्टी के गमलों से काम लेना चाहिये और बांसकी खपच्चों पर बेलोंको चढ़ाकर अपना कार्य्य पूर्ण कर सकते हैं इसके उपरांत विशेष वृक्ष और बेलोंसे विशेष लाभ होते हैं जैसे-

तुलसी

वृक्षकी वायु दुर्गंधित वायु से उपन्न होने वाले बुखार को दूर करती है उसकी ५ पत्ती ५ काली मिर्च डाल पीस एक छटाँक जल में मिला थोड़ा गुनगुना कर मुवाफ़िक़ का निमक डाल पीने से इकतरा, तिजारी और चौथिया ज्वर तथा १ माशा रस में थोड़ा शहद मिलाकर चाटने से खांसी, ३ माशा रसमें २ माशा शक्कर डाल पीने से छाती का दर्द वा खाँसी–केवल ३–४ पत्ती चबाने से मुंह की दुर्गंधि–पत्तों का रस सूंघने से सिर दर्द और कान में डालने से कानका दर्द दूर हो जाता है। इन मुख्य प्रयोजनों को न जान स्त्रियां तुलसी और सालिग्राम का विवाह करती हैं जो केवल अज्ञानता है इसलिये यथार्थ गुणों को जानना चाहिये। पीपल वृक्ष से वायु शुद्ध रहती है इसके तने में चिपटने से निर्बलता, छाया में रहने से कोढ़, छाल को पानी में घिसकर लगाने से फोड़ा और बाल तोड़, इसकी लकड़ी के कोयले से बुझे पानी पीने से दाह, पीपली को छाया में सुखा कूट पीस बराबर की मिश्री मिला दूध के साथ सेवन करने से वीर्य दोष दूर हो जाते हैं और दूध में छाल भिगो जख्म पर रखने से जख्म जल्दी भर जाते हैं इसकी सूखी छालसे संखिया, हड़ताल और चांदी आदि फूंकी जाती है। नींम के वृक्ष से वायु शुद्ध होती है तथा इसकी लकड़ी जलाने से विषैले कीड़ों और छाल को घिसकर लगाने से फोड़ा, फुंसी दूरहो जाते हैं तथा घोटकर पीने से रक्त शुद्धि होती है इसकी दातौन करने से मुंह की दुर्गंधि दूर हो दांत साफ होजाते हैं। इसी प्रकार अन्य वृक्षोंको जान लाभ उठाना चाहिए। घरसे कुछ दूर छोटे बगीचे भी बनवाने

चाहियें जिसमें कुछ चौड़ा घास का मैदान भी रखना योग्य है जिस को उद्यान कहते हैं और इसी मैदान में प्रातः वा सायंकाल बाल बच्चों और स्त्रियों के साथ हवा खाना और बच्चों को गेंद से उस उद्यान में खिलाने कुदाने से आरोग्यता की वृद्धि होती है। प्राचीन समय में स्त्रियां बागों की सैर को जाया करती थीं परन्तु अब धूर्तों के कारण नहीं जातीं तथा पुरुष स्त्रियों पर निर्लज्जता का दोष लगाते हैं कैसे शोक का स्थान है कि मेले दशहरे पर तो स्त्रियों को इतनी स्वतंत्रता दे देते हैं कि वह खुले मुंह गुण्डों के धक्के खाती हैं और नियमानुसार आरोग्यता की वृद्धि के लिये बागों के जाने में रुकावट। प्यारे भाई और बहनों! प्राचीन गून्थ और इतिहासों पर ध्यान दो देखिये बाल्मीकि रामायण अयोध्या कांडके सर्ग ६७ श्लोक ३२ में लिखा है कि जब सुमन्तजी राम लक्ष्मण सीताजी को छोड़कर घर आये तो कौशिल्या जी ने पूंछा कि सीताजी की क्यादशा है? तब सुमन्तजी ने उत्तर दिया कि आप कुछ चिंता न करें सीता जी आनन्द से महाराज रामचन्द्र जी के साथ वास कर रही हैं, जैसे निर्भयहो कर यहां सीताजी फुलवाड़ी में घूमा करती थीं, इसी प्रकार वहाँ भी निर्जन वन में घूमा करती हैं।

इसके अनन्तर शकुन्तला नाटक में लिखा है कि शकुन्तला एक वाटिका को अपने हाथों से सींचती थी और हरी लता वा पत्तियों तथा पुष्पों की तरावट देखने के निमित्त सखियों समेत बाग सेवन के हेतु जाया करती थी इसलिये प्यारी बहिनों! तुमभी सीता आदि की इस उत्तम बात को गृहण कर अपने पति के साथ वायु सेवनार्थ जाया करो। यदि किसी कारण से ऐसा सम्भव न हो तो अपने ही गृह में अवश्यमेव बेल बूटे छोटी छोटी क्यारियां बांधकर रक्खो और प्रति दिन उनको सींचाकरो।

गृह आदि का स्वच्छ रखना।

अथर्व कायड ८ सूक्त ६ मन्त्र १४ में उपदेश है कि घर, पाकशाला, आंगन में कूड़ा कर्कट इकट्ठा करने से घरमें गर्मी होकर रोगकारक कीड़े उत्पन्न होजाते हैं इसलिये सब स्थानों को शुद्ध रखना चहिए।

येपूर्वे बध्वोयन्ति हस्तेश्रृङ्गाणि बिभ्रतः।
आपाकेष्ठाः प्रहासिनस्तम्बेयेकुर्वतेज्योतिस्तानितोनाशयामसि॥

हे गृहरक्षणियों! गृहको साफ़ सुथरा रखनेसे आरोग्यता तथा बल

और बुद्धि की वृद्धि होती है स्वच्छ रहने का प्रयोजन यह है कि उस की भीतें किसी प्रकार मैली न होने पावें। बहुधा लड़के लड़कियां कोयले आदि से भीतों पर अनेक खेल और लकीरें खैंच देते हैं सो कदापि न करने देवे घर के आगे द्वार को भी साफ़ रक्खे वहां कूड़ा करकट इकट्ठा न करे और ऐसा भी न करे कि फल खाकर उसके बीज या छिल्के जहां तहां फेंक दे कि जिससे आँगन में मक्खी भिनकने लगें। कोई २ स्त्री जहां जी चाहा वहां हाथ या मुँह धो स्नान कर पृथ्वी भी गीली कर देती हैं जिससे दुर्गंधि आने लगती है जो वायु के साथ पेट में जाकर खांसी, सर्दी आदि रोग उत्पन्न कर देती है इस लिये ऐसा न करना चाहिए। सम्पूर्ण गृह को सदा देखती भालती रहो ऐसा न हो कि कहीं घूस ने मिट्टी निकाल रखी हो किसी स्थान पर कुछ पड़ा कहीं पर कुछ, इससे भी वायु ख़राब होती है और उन जगहों में बहुधा जानवर रहने लगते हैं जो कभी खाने पीने की वस्तुओं में घुस जाते हैं जिनके खाजाने से अनेक रोग हो जाते हैं जिससे अनेक क्लेश भोगने पड़ते हैं कभी २ वे छोटे २ जीव बच्चों के ऊपर चढ़ जाते हैं जिसके कारण उनकी नींद जाती रहती है तथा अनेक प्रकार से दुःखी हो जाते हैं। अतः प्रत्येक वस्तु को जहां की तहां रख दिया करो, नहीं तो खटमल, पिस्सू उत्पन्न होकर बहुत दुःखी करते हैं। सदा वर्ष के भीतर दो बार मकान को चूने वा मिट्टी से पुतवा दिया जावे इससे एक तो भीतें उत्तम जान पड़ती हैं, दूसरे देखने वालों के चित्त को हरती हैं, तीसरे रहने वालों को उसकी तरावट से प्रफुल्लता बनी रहती है, चौथे जो वायु इकट्ठा होकर घर में आती है उसके दोषों को चूने की तरावट स्वच्छ तथा निर्मल कर देती है जिसके कारण गृहनिवासियों के शरीर नीरोग्य एवं बलवान् बने रहते हैं। बहुधा धनाढ्य जन हज़ारों रुपये व्यय करके पक्के गृह बनवाते हैं परन्तु सफ़ाई पर ध्यान नहीं रखते, इस कारण उनको लाभ नहीं होता वरन् उपरोक्त दुःखी ही सदा बने रहते हैं।

अनेकानेक जन घर के द्वारों अर्थात् चौतरों पर गाय भैंस आदि पशु बांधते वा छोटे बच्चे खोद कर बिगाड़ देते अथवा उनका गोबर पेशाब वहीं दिन भर पड़ा रहता है और मोरियों के चहबच्चों में बहुत दिनों तक पानी भरा रहता है जिससे सड़ांध पैदा होकर गृह में मार्ग के चलने वालों को नाना क्लेश देती है अतः दूसरे तीसरे वा चौथे दिन भङ्गी से पानी से

धुलवा देना चाहिये और इन मोरियों और पाख़ाने के क़दमचों वा ज़मीन को अवश्य पक्का बना दे ।

इस उपरोक्त कथन से प्रकट है कि मकान कच्चा हो या पक्का जब तक स्वच्छ न रहेगा तब तक कुछ लाभ न होगा । कहीं २ ऐसा देखागया है कि बहुधा स्त्री जन अपने घर को तो स्वच्छ बनाये रखती हैं परन्तु आने जाने के मार्ग पर कुछ ध्यान नहीं देतीं इस कारण उनको पूर्ण लाभ प्राप्त नहीं होते इस लिये सम्पूर्ण गृह और उसके आस पास पूर्ण प्रकार से स्वच्छता पर दृष्टि बनाये रहे । मोरी के ख़राब पानी को भङ्गी आदि से भरवाकर शहर के बाहर खेतों में फिंकवा देना चाहिए जैसा कि वर्तमान समय में इसके लिये भङ्गी नौकर हैं । मोरी की डाट को खोल कर दुर्गंधित पानी को मार्ग में भी न डालना चाहिये ।

बहुधा स्त्रियां उस पानी को दर्वाजे के सामने छिड़कवा देती हैं इन दोनों सूरतों में वायु मलिन हो जाती है जिससे हैज़ा आदि रोग उत्पन्न हो कर सैकड़ों मनुष्यों को मार डालते हैं और दर्वाजे की शोभा बिगड़ जाती है उस मार्ग से निकलने वाले मनुष्य बुरा कहते हैं । इसके उपरान्त जब कोई बीमार होता है तो दवाई तो बड़े ज़ोर शोर से करते हैं परन्तु घर की स्वच्छता पर ध्यान नहीं रखते कि जिससे बीमारी असाध्य हो जाती है बहुधा तो अपने प्राणको अर्पण कर देते हैं और जो जीते जागते बच जाते हैं वे भी नाना प्रकार के क्लेश भोगते हैं और सैकड़ों रुपयेसे हकीमों तथा अत्तारों की भेंट कर व्योपार आदि को खो बैठते हैं और अन्य गृहनिवासियों को दुःख सहन करने पड़ते हैं रात दिन बीमारियां बनी रहती हैं इस लिये घर की पवित्रता पर विशेष ध्यान रखना चाहिये जिससे घर में सब आरोग्य रहें और बल-बुद्धि-आयु तथा सुखों की प्राप्ति हो प्रातःकाल सूर्य निकलने से पहिले उठकर सब दर्वाजों और खिड़कियोंको खोल देना चाहिए जिससे रात का दुर्गंधित वायु निकल कर स्वच्छ वायु भीतर भर जावे घर के आंगन को ८वें दिन अवश्य लीप डालना चाहिये ।



* द्रव्य स्थानीय *

मेरा निवेदन।

सभ्य सज्जनो और देवियो ! पहले एडीशन में गर्भाधान के विषय का वर्णन यहां पर था, परंतु इस पुस्तकको बहुशः पुत्र पुत्रियां भी पढ़ती हैं और ब्रह्मचर्यावस्थामें ऐसे विषयोंपर दृष्टि डालना अनुचित है अतएव मैंने सुविज्ञ पण्डितों वा सुयोग्य मित्रोंके अनुरोध से उक्त विषयको निकालकर इस ग्रन्थको आबाल वृद्ध बनिताओं के उपयोगी बना दिया है। लेकिन गर्भाधान एवं उत्तम संतान उत्पन्न करने की विधि, गर्भवती का नौमास का अहार, विहार आसन्न प्रसवाके लक्षण और उसकी रक्षाके उपाय प्रसवके पश्चात् उपयोगी कार्य्य, स्तनरोग एवं उसकी चिकित्सा, नवजात बालकको होने वाले साध्य असाध्य रोगोंकी चिकित्सा, बालक को पुष्ट रखने एवं सुविज्ञ बनानेकी रीतिका यथेष्ठ रीत्यानुसार वर्णन मैंने गर्भाधान-विधिनामक पुस्तकमें पृथक् किया है। अतएव उपरोक्त विषयको देखनेवाले सज्जनपुरुष औरसुयोग्य देवियां "गर्भाधान-विधि"को मँगाकर देखें। जो अब तक पंद्रह बार छपचुकी है। मू० भी स्वल्प ≡) मात्रहै।

निवेदकः—
चिम्मनलाल वैश्य, तिलहर।

कुमार और किशोर अवस्था।

जब बालक के दूध के दांत निकल आवें वा बालक बोलने लगे तब सुन्दर वाणी से बड़े छोटे मान्य आदि के सम्भाषण कहने, बैठने, उठने की रीति आदि की शिक्षा देनी चाहिए जिससे उनका सर्वत्र मान्य होता रहे और वे वृथा लड़ाई न करने पावें तथा मिट्टी धूलादि के खेलादि से भी वर्जित रहें। उनको सदा प्रातःकाल उठाना, पाखाना पेशाब कराना मुँह हाथ धोना आदि भी बतलाया जावे।

प्रकट हो कि संतान जगत्कर्ता परमेश्वर की एक उत्तम धरोहर है जिसके उत्तरदाता माता पिता हैं, और यह ऐसी धरोहर है कि जिसमें विद्या आदि गुणों के सीखने की स्वाभाविक प्रकृति है परन्तु इससे यह न समझना चाहिये कि सन्तानको हमारे पढ़ाने लिखाने की कुछ आवश्यकता नहीं। देखिये रेलवे के इञ्जन में चलने फिरने, बोझ लेजाने की स्वाभाविक प्रकृति है पर जब तक उसकी कलों को घुमाया न जाय तब तक वह बिल्कुल निकम्मा निठल्ला रहेगा, इसी प्रकार जब तक माता पिता स्वसंतानोंको भलीभांति शिक्षा न करेंगे तबतक उनकी स्वाभाविक प्रकृति निष्प्रयोजन तथा निष्फल है इसके उपरांत संतान अतिही प्यारी वस्तु है कि जिससे बढ़कर इस संसार में कोई पदार्थ नहीं, फिर भला कैसे शोक का स्थान है कि ऐसी अमूल्य संतान को विद्यारूपी रत्न से शोभित न करें जिसके कारण उनको नाना प्रकार के क्लेश भोगने पड़ें तथा माता पिता के नाम पर भी धब्बा आवे इसी लिये वेदोंमें लिखा है कि माता पिता ऐसा प्रयत्न करें कि उनकी सन्तान बुद्धिमान्, धर्मात्मा और सर्व हितैषी होवे जिसके कारण सब लोग माताके समान प्रीति करें तथा सन्तानोंको उत्तम और सतोगुणी भोजन करावे जिससे नेत्रों में कभी अंधकार न होवे वरन् सदा ज्योति बनी रहे और वह सदा सत्य नियमों पर चल कर विद्वानों के अगुआ होते रहें। जब संतान ५ वर्ष की हो जावे तो प्रथम देवनागरी का अभ्यास करावें फिर अन्य देशीय भाषाओंको भी सिखावे। परन्तु प्रथम अन्य देशीय भाषा न सिखलाना चाहिये क्योंकि अपनी मातृभाषा का निरादर करना अत्यन्त मूर्खताकी बात है और इसके प्रथम सीखनेसे अन्य भाषा का सीखना अत्यन्त सुगम हो जाता है आज इस प्रथाके न रहने से

देशभाषा की प्रतिष्ठा प्रतिदिन कम होती जाती है और मातृभाषा के शब्द बोलने में लजाते हैं तथा उनकी जगह दूसरी भाषा के शब्द बोलने का अभ्यास बढ़ाते जाते हैं जैसा कि नमस्ते, नमस्कार वा रामराम आदि के स्थानों में सलाम, बन्दगी, तसलीमात और गुडमार्निंग बोलना अपनी प्रतिष्ठा का कारण समझते हैं तथा अपनी संतानोंको भी ऐसाही सिखलाते हैं इसी प्रकार विद्या आरम्भ संस्कार का नाम मकतब होना या बिसमिल्लाह होना बोलते हैं। जिसकी देखा देखी हमारे पण्डे भी बड़े हर्षके साथ कहते हैं कि आज हमारे यजमान के लड़के की बिसमिल्लाह है। धन्य है इनकी बुद्धि को कि फ़ारसी में अलिफ़ के नाम लट्ठा तक नहीं जानते परन्तु लल्लो पत्तो तथा योग्यता जतलाने के अर्थ बिना फ़ारसी बोले कल नहीं पड़ती। इसी कारण हमारी मातृभाषा संस्कृत विद्याका भारतसे लोप होगया और हमारी सन्तानों को उक्त विद्याकी उत्तमता का निश्चय नहीं रहा कि जिससे धर्म में भी नाना प्रकार के रोग उत्पन्न हो गये हैं। अतएव प्रियसभ्य महोदयो! सब से पहले अपने लाभ और मातृभाषा की प्रतिष्ठा और उद्धार के लिये स्वसंतानों को संस्कृत विद्याका पढ़ाना योग्य है, फिर अन्य देशीय भाषा पढ़ाना चाहिये देखो अँग्रेज प्रथम अंग्रेजी और मुसलमान अरबी, फ़ारसी पढ़ा फिर अन्य विद्याओं को सिखाते हैं किंतु हमारे देशीय बंधुगण विपरीत अर्थात् प्रथम अपने घर की विद्याको जो विद्याओं में शिरोमणि है, त्याग कर दूसरी विद्याओं को सिखाते हैं कि जिससे उन को ओ३म् के स्थान पर 'बिस्मिल्लाह रहमन् उल्लरहीम' तथा ईश्वर के स्थान पर खुदा, गाड इत्यादि कहने का स्वभाव पड़ जाता है। इसके अनन्तर संस्कृत अथवा देवनागरी के न जानने से अपने धर्म को भी पानी दे देते हैं अर्थात् बहुधा मुसलमान वा ईसाई हो जाते हैं, तथा जो इधर उधर के जाने से बचे रहते हैं उनके आचरण वेद आदि सत्यशास्त्रों के विरुद्ध रहते हैं।

प्यारे बन्धुगण! संस्कृत विद्या की ओर ध्यान दो जो सब विद्याओं का कोष है। यह विद्या सृष्टि के आरम्भ से प्रचलित हुई। इसी में समस्त भूमण्डल के अर्थ परमेश्वर ने सकल विद्याओं का उपदेश किया। इसी कारण इस में प्रत्येक विद्या यथावत् रूप से पाई जाती है। इसका न्यायशास्त्र-समस्त देशोंके न्यायशास्त्र से बढ़कर है वैद्यकशास्त्र भी अद्वितीय

है देखो यूनान वालों ने इस विद्या को अपनी भाषा में उल्था कर कैसा नाम पाया व्याकरण ऐसा उत्तम है कि जिसकी प्रशंसा सम्पूर्ण जगत् के विद्वान् करते हैं। इसी प्रकार ज्योतिष, खगोल, गान, शिल्प, तत्वविद्या आत्मविद्या आदि इस में ऐसी २ हैं कि जिन के पारावार का वर्णन कोई नहीं कर सकता, सच तो यह है कि इस विद्या के शिरोमणि होने से बहुधा विद्वानों के वचन पाये जाते हैं, जो इसी सृष्टि के सृजनहार परमेश्वर का प्रतिपादन करते हैं, उसी भांति सम्पूर्ण ज्ञानी महात्मा विद्वान योग्य इस विद्या की उत्तमता, लालित्यता तथा श्रेष्ठता योग्यता का दम भरते हैं तथा इसी विद्या को सम्पूर्ण विद्याओं का कोष बतलाते हैं।

अन्य देशीय लोग भी इस समय इस की बड़ी प्रतिष्ठा करते हैं। देखिये जर्मन में कैसी चर्चा है कि जहां वेदों के खण्ड प्रत्येक के पास रहते हैं, ऐसे ही इङ्गलैंड में मोक्षमूलर इसी विद्या में अद्वितीय प्रसिद्ध हो गये। निदान जितनी विद्यायें इस समय अन्य भाषाओं में दीख पड़ती हैं सब इसी से निकली हैं। डाक्टर हण्टर ने अपने इतिहास में लिखा है कि यह सब भाषाओं की मां है अर्थात् सब भाषा इसी से उत्पन्न हुई हैं। शोक का स्थान है कि हमारे स्वदेशीय भाई उसके पठन पाठन की ओर किञ्चित ध्यान नहीं देते फिर बेचारी देवनागरी को कौन पूंछता है जैसा कि पंडित गंगारामजी बरेली निवासी ने एक सवैया में कहा है--

जग जाहिर काव्य शिरोमणिसे अब हिंदके मानीविलायगये।
यश आगरी नागरी के बिरवा सुख सींचतही मुरझायगये॥
नागरी धीरज कैसे धरे विधना बुध बाल भुलाय गये।
गुण ग्राहक भारतवासिन के ऋषिराज तू हाय हिरायगये॥

परंतु प्यारे मित्रों! अब गवर्नमेंटने आप की हिंदी भाषा की उन्नति के लिये दर्वाजा खोल दिया है, इस लिए उनका धन्यवाद देते हुये तन मन धन से नागरी भाषा की उन्नति में लग जाओ और संस्कृत पाठशालायें खोल दो।

❋ उर्दू की मीमांसा ❋

उर्दू भाषा में एक बड़ी हानि यह है कि जैसा उसमें लिखा जाता है वैसा पढ़ा नहीं जाता, किंतु लिखा कुछ जाता है और पढ़ा कुछ जाता है और नाम, गांव, ठांव तो कभी किसी से पढ़े ही नहीं जाते । भला कोई निरा उर्दू जानने वाला ऐसा मनुष्य भी है जो संस्कृत और अंग्रेजी शब्द उर्दू अक्षरों में लिखे हुये ठीक २ पढ़ दे तथा उच्चारण करदे ? कोई भी नहीं, एक भी नहीं । परन्तु देवनागरी में जैसा लिखा जाता है वैसा ही पढ़ा जाता है अर्थात् लिखने पढ़ने में कुछ भी अंतर नहीं पड़ता । इसका कारण यह है कि देवनागरी अक्षरों में १६ स्वर होते हैं और उर्दू अक्षरों में केवल तीन स्वर हैं जो १६ स्वर का काम देते हैं, इस कारण एक २ स्वर का कई २ प्रकार से उच्चारण होता है । उर्दू की लिखावट विंदुओं पर है परंतु सरकारी अदालतोंमें और मुंशीलोग विंदु लगाते ही नहीं, इस कारण जाल भी खूब बनता है व्यापारियों को भी बड़ी हानि पहुंचती है। इसके उपरांत बहुत से अक्षर एक ही प्रकार के होते हैं, उनके उच्चारण भी एक से ही होते हैं । जिस प्रकार उर्दू में स्वर थोड़े होते हैं उसी तरह व्यञ्जन भी बहुत थोड़े हैं । इसके अतिरिक्त दो दो तीन तीन अक्षर मिल कर एक अक्षर बनता है जिससे नाना प्रकार की हानि होती है । देखिये, इस विषय में देवनागरी प्रचारणी सभा मेरठ के मंत्री पण्डित गौरीदत्तजी कैसा लिखते हैं---

उर्दू छल से लूटे खाते, ठोल बना के जाल बनाते ।
उर्दू में यों बनता जाल, लिखो माल और करदो ताल ।।
उर्दू खत में लिखा था ताऊ, मुन्शी जी ने पढ़ दिया नाऊ ।
उर्दू का मुन्शी है भोला, लिखता भूला पढ़ता झोला ।।
रील रेल उर्दू में एक, एक लेख है ठीक और ठेक ।
उर्दू ऐसी भोली भाली, मंगाई नाली अरु आई ताली ।।
उर्दू मुन्शी नुक्ते भूला, लिखा था पूला पढ़ा उसे लूला ।
उर्दू में नहीं नुक्ते देते, अटकल पच्चू हैं पढ़ लेते ।।
जेर पेश कोई नहीं देते, किश्ती को कुश्ती पढ़ लेते ।

उर्दू के यह देखो खेल, मँगाया नील आया तेल ॥
उर्दू लिख मंगवाई पाली, मुन्शी जी पढ़ते हैं बाली ।
उर्दू खत हमने पढ़वाया, घुरका को घरका बतलाया ॥
मुन्शी जी ने रिशवत खाई, छुरी लिखी थी छड़ी सुनाई ।
उर्दू खत में लिखा था "सितार" वहां मुन्शी ने पढ़ा 'सुनार ॥
नागरी में जब लिखा सितार सितार, ही लेकर आया यार ।
नुक्तों से होती चाल, उर्दू में यों बनता जाल ॥
उर्दू हरफ़ों में है ऐब, उर्दू पढ़ा न जाने गैब ।
स्वाद सीन से हरफ़ बनाये, एक आवाज़ है तीन बताये ॥
ज़ोय ज्वाद और ज़े र और ज़ाल, चार हरफ़ों की एकही चाल ॥
ते तोय की एक आवाज़, हमें बताओ इसका राज़ ।
लाम अलिफ क्यों वृथा बनाया, मीम अलिफ़ क्यों नहीं दिखलाया ॥
तीन स्वरों से लेवें काम, अलिफ़ वाव ये जिनका नाम ।
नागरी अक्षर उर्दू बोली, ठीक बराबर कांटे तोली ॥
उर्दू बोली नागरी अक्षर, इसका नाम है नागरी दफ्तर ।
वोही उर्दू वोही हिंदी, अक्षर भेद से दोनों ज़िंदी ॥
उर्दू हिंदी कुछ नहीं भेद, उर्दू अक्षर दे हैं खेद ।
हमने माना उर्दू दफ्तर, उर्दू बोली नागरी अक्षर ॥
अङ्गरेज़ी राज और उर्दू जारी, जिसके हरफ़ करे हैं ख्वारी ।
उर्दू दफ्तर यहां चलाया, अङ्गरेज़ों ने धोखा खाया ॥
उर्दू मुन्शी मुन्शी भारी, एक नुक्ते से मारी कटारी ।
जेर ज़बर से करदे खून, एक शोशे से बदले जून ॥
उर्दू मुन्शी हाथ में खप्पर, फिकवादो फुकवा दिए छप्पर ।
जब साहब ने उसे बुलाया, तब उर्दू का दोष बताया ॥
रुक्के में था पित्त का रोग, पढ़ कर तप उसे दे दिया भोग ।
जब उसने वह खाई दवाई, हुई बीमारी और सवाई ॥
खत में लिखा था कि बहली आवे, उर्दू मुन्शी भेली बतावे ।

पैर जो खत लिखवाया, पीर पूनो पढ़ के सुनाया ॥
कहो उर्दू मुन्शी कैसी कही, 'भी' लिखा था पढ़ दिया 'वही' ।
क्यों मुन्शी जी क्या है सही, 'वही' पढ़ो या तुम 'दही' ॥
'अजमेर गया' खत लिखवाया, मकतूलअइलह ने खत पढ़वाया ।
'आज मर गया' पढ़के सुनाया, सारे घरको खूब रुलाया ॥
उर्दू खत में लिखा था बाबू, तुक्का देकर पढ़ दिया याबू ।
लाठी लेकर बाबू आया, तब उर्दू का दोष बताया ॥
बैल मँगाए खत लिखवाया, बेल मँगाई पढ़ के सुनाया ।
पत्थर मारा निकली जान, उसी आन होगया चालान ॥
पेश मुकद्दमा हुआ जब, मुन्शी पढ़ दिया थप्पर तब ।
मुन्शी अपना काम बनाया, मारने वाला साफ छुड़ाया ॥

इसके उपराँत उर्दू और फ़ारसी में बहुधा किताब इश्क़बाज़ी और माशूक़ के खतोख़ाल की प्रशंसा में और बहुत सी नाचने गाने में और बहुधा दुराचार और व्यभिचारियों के क़िस्से कहानियों में और अनेक तावीज़ गण्डे मंत्र मारण मोहन वशीकर उच्चाटन में हैं, जैसी लज़्ज़ातइश्क़ फरदे इश्क़, बहार इश्क़, मसनवीजुलेखा, मसनवीग़नीमत, बहारदानिश, इन्दरसभा, मदारीलाल और अमानत, फ़िसानेअजायब, नैरङ्गतिलस्म, इंद्रजाल नक्शसुलेमानी, हुज्जतुलनिशां तथा सब दीवानात अथवा बासोख्त, बारह मासे इत्यादि किताबें हैं जिनमें से बहुधा तो मियां जी शौक़िया, पढ़ाते हैं। जुलेखा, ग़नीमत, बहारदानिश का तो क्या कहना, ये तो मकतबोंमें तालीम का कोर्स है कि जिनके पढ़ने से आप उन बालकों तथा नवयुवकों में दुराचार अथवा व्यभिचारादि अवगुण उत्पन्न होजाते हैं, इस पर तुर्रा यह है कि मियांजी ऐसी ऐसी कितबों के हर मिसरे और फ़िक़रे को बड़े हास्य भाव से समझाते हैं, मानों इश्क़ की सूरत दिल पर नक़्श कर देते ह कि जिसका यह फल प्रत्यक्ष हो रहा है कि सम्पूर्ण भारतवर्ष के नवयुवकों में बालकों के साथ कुचेष्टा, रण्डीबाज़ी, शराबख़ोरी, गोश्तख़ोरी स्त्रियों के समान बदन पर श्रृङ्गार करना, नाज़ोअदासे चलना, बदन का फड़काना, नाक भौंहों से कटाक्ष करना आदि दुर्व्यसन उत्पन्न होगए हैं कि जिन से भारत का सत्यानाश होगया और हो रहा है ।

इस लिये प्यारे सज्जन पुरुषो ! अपने बालकों को देवनागरी अच्छे प्रकार से पढ़ाओ परन्तु इन्द्रजाल, इन्द्रसभा, बारहमासे आदि जो बुद्धि बल, धर्म नाशक पुस्तकें भाषा में हो गई हैं न दिखलानी चाहियें, वरन् ऐसी ऐसी खराब पुस्तकों के अवगुण सुना देना योग्य है कि जिससे उन की रुचि स्वयं ऐसी अनुचित पुस्तकों के देखने की न हो फिर यदि उर्दू सिखलाना ही हो तो करीमा, खालकबारी, अहमदनामा, दस्तूरसुबियां मस्दरफयूज, गुलिस्तां आदि पढ़ाना योग्य है ।

हे देशके शुभचिंतको, लेखको ! अब कृपा कर आगेको ऐसी पुस्तकों का बनाना छोड़ दो कि जिससे देशका देश साफ हुआ जाता है, जिसका पाप आपके सिर चढ़ता है जिसके प्रभावसे आपको जन्मजन्मन्तर में नाना क्लेश भोगने पड़ेंगे । अतएव यदि आपको अपना नाम चिरायु करना है तो पूर्वोक्त ऋषि, मुनि, महात्मादि सत्पुरुषों की भांति देशोपकारक विषयों में अपनी लेखनी को दौड़ाइये क्योंकि ईश्वर की कृपासे देवनागरी की उन्नति हो रही है और उसको राष्ट्रीयभाषा बनाने के लिये नाना प्रकार के उद्योग हो रहे हैं यदि इसी प्रकार भारत के निवासी तन, मन, और धन से लगे रहेंतो अवश्यही नागरीभाषा जगत्मान्य होजायगी। इसके अतिरिक्त यह बात विशेष ध्यानमें रखनी चाहिये कि पादरी अर्थात् मिशन स्कूलोंमें भी बालक या बालिकाओं को शिक्षा के निमित्त न भेजना चाहिये क्योंकि वे उनके धर्म कर्म ईसा को खुदा का बेटा मान उसके वसीले से स्वर्ग का जाना, उसका क्वाँरी कन्या से पैदा होना और शूली देने के तीन दिन पीछे कबर से उठकर सातवें दिन आसमान पर जाना, गुनहगारका ईसा पर विश्वास लाने ही से गुनाहों से निजात पाना, मुर्दे को मोजिजों से जिलाना, आंखें देना इत्यादि महाअनर्थ और मिथ्या बातोंको नित्यप्रति सुनाते हैं। हमारे प्राचीन सत्यग्रन्थों अथवा महात्माओं में अनेकान दूषण बताते हैं, जैसा कि वेद को ५००० व ६००० वर्ष का बना हुआ कहना इसके उपरांत राम कृष्ण आदि महापुरुषों और महात्माओं की नाना भांति से राम परीक्षा, कृष्ण परीक्षा, धर्मतुला मुक्ति आदि अनेक पुस्तकोंमें खिल्ली उड़ाते हैं ऐसे विषयों की सैकड़ों किताबें छपवा कर प्रकाशित भी की हैं और हर रविवार को बालकों को स्कूलों में बुला कर नाना भांति के भजन गाकर सुनाते हैं, बाजे बजाते तथा उनको किताबें देते हैं अन्त को दुआ में शा-

मिल कर लेते हैं, जिसको सण्डे स्कूल कहते हैं क्योंकि क्रिश्चियनों के मतानुसार परमेश्वर ने छः दिन में सब संसार के पदार्थों को रचा और सातवें दिन विश्राम किया अर्थात् थकावट को दूर किया यही कारण है कि ईसाई उस दिन आराम करते और दुआ मांगते हैं, तत्पश्चात् ख्रीष्ट मत को सब मतों से श्रेष्ठ बतलाते हैं, प्रत्येक प्रकार से उन्हीं आचारों को उन बालक और बालिकाओं में प्रवेश करने का उपाय करते हैं।

प्यारे पाठकगण ! अब विचारिये कि इन बातों का भारत पर कैसा असर हुआ है कि जिससे हजारों हमारे तुम्हारे भाई ईसाई होगये क्योंकि सतसङ्ग का अवश्य ही प्रभाव होता है, यथा——

दोहा——संगति ही गुण ऊपजै, संगत ही गुण जाय।
बांस फांस औ मीसरी, एकै भाव विकाय ॥

बहुधा पादरी स्कूलों में या अन्यत्र देशी मिसें गाना गाती तथा अंग्रेज़ी बाजा बजाती हैं, ऐसे स्थानों पर बहुत भीड़ इकट्ठा हो जाती है, उनमें से कोई २ उनकी मीठी आवाज़ सुन कर ऐसे मोहित हो जाते हैं कि प्रति दिन ईसाइयों के पास आते जाते तथा उनकी बातचीत सुनते हैं, तब वे लोग नाना प्रकार के भरोसे देते हैं। इधर हमारे भाई बिल्कुल बेसुध रहते हैं उधर वह सब प्रकार से मुड़ जाते अर्थात् कृष्टीन हो जाते हैं और मिस के साथ हाथ में हाथ मिलाये हुए गली और बाज़ारों में घूमते अथवा होटल में डबलरोटी बिसकुट खाते मानो दूसरे पादरी बन जाते हैं।

बहुधा ग़रीब लड़कों को जिनको शाम तक रोटी मुश्किल से मिलती है उनका वजीफ़ा मिशन में कर देते हैं जिससे वे लड़के मदरसे के समय के अतिरिक्त भी पादरी साहब के बँगले पर आते जाते हैं। तब उनको समय २ पर थोड़े २ उपदेश तथा नौकरी आदि के लालच दिखलाये जाते हैं जिसके कारण वह कृष्टीन हो जाते हैं।

प्यारे सज्जनों ! जो बालक उनके फन्दे से बच जाते हैं उनके मन डामाडोल हो जाते हैं, वे अपने वैदिक धर्म को तुच्छ मानने लगते हैं और संध्यादि का नाम भी नहीं लेते, यज्ञोपवीत को मिथ्या तथा वेदोंको मनुष्य कृत मानने के अनंतर मांसादि खाने लग जाते हैं।

इसके अतिरिक्त बड़े २ नगरों में ईसाई मेमें स्त्रियों के पढ़ाने तथा मोजे, गुलूबन्द आदि बनाना सिखलाने के अर्थ प्रतिष्ठित २ गृहस्थों के घरों में जाती हैं और वहां जाकर अपना दिली मतलब सिद्ध करने के

निमित्त नाना प्रकार के जाल फैलाती हैं। विशेष कर विधवाओं के चित्तों को हरती हैं जिसका अन्तिम फल यह होता है कि वे ईसाई बन कर उन का साथ देती हैं। इस लिये हे सुजनों! इन सब बातों को हानिकारक समझ यथार्थ रीति से इनका परित्याग करना चाहिये तथा घरों में प.ी लिखी शुद्ध आचरण वाली स्त्रियों को शिक्षा और शिल्पकारी सिखाने के लिये नियत करें ताकि घरों में पुत्रियों की शिक्षा उत्तम हो और हमारी संतानें धूर्तों के फंदों से बचें।

आभूषण पहनना।

संतानों को चाँदी सोने के आभूषण न पहनाने चाहिए वरन् उनकी आत्मा को विद्यादि गुणों से भूषित करना योग्य है कि जिससे उनकी आयु नाना प्रकारके सुख चैनमें व्यतीत हो इसके उपरांत उपरोक्त आभूषण के धारण करनेसे अभिमान आदि दोष उत्पन्न होजाते हैं कि जिससे बालक गुण ग्रहण करने में मन नहीं लगाते जिसके कारण समस्त आयु नाना प्रकार के क्लेश भोगने पड़ते हैं। इसके उपरान्त लालची मनुष्य बहुधा बालकों को मार डालते हैं जिसके कारण अनेक घरानों के दीपक बुझ जाते हैं, उस समय अपनी प्यारी संतानों के लिये हाथ मलते अथवा कर्म ठोकते रह जाते हैं, यह सब बातें प्रत्यक्ष में देखते हुए भी दुःख सहते हैं। परन्तु शोक तो इस बात का है कि बिना आभूषण पहनाये कल नहीं पड़ती हालांकि हमारी गवर्नमेंट नाना भांति से शिक्षा करती है परन्तु हमारे देश भाइयों के मनमें शेखीका भूत ऐसा प्रविष्ट हुआ है कि इन सब बातों को क्लेश होने पर भी नहीं मानते। अतएव प्यारे सज्जनों! इस बुरी रीति को शीघ्र दूर करदो। कुछ साहूकारी या बड़प्पन दो चार दस बीस पचास रुपये के आभूषण धारण करने से ही नहीं होती, फिर कौनसा लाभ आभूषणोंके धारण करने में है? इन सबके अतिरिक्त कलाई तथा पिंडिलियां बलयुक्त नहीं रहतीं, अर्थात् पतली पड़ जाती हैं जो शोभा को भी कम कर देती हैं उपरोक्त हानियों के कारण अन्य देशी लोग अपने बालकों को सोने चांदी के आभूषणों से भूषित नहीं करते क्या वे सब कंगाल हैं? अथवा उनको पेटभर रोटी नहीं मिलती? देखलो वही अङ्गरेज़ हैं जो हज़ारों की तन्ख़्वाह तथा हज़ारों ही ख़र्च करते हैं। परन्तु भूषणों का नाम तक नहीं लेते, हाँ अपनी सन्तनों को विद्या

आदि सद्गुणों से अच्छे प्रकार भूषित करते हैं कि जिसके कारण वे नाना प्रकार के सुखों को भोगते हैं, अतः ये सब बातें जान कर सोने चांदी के आभूषणों का धारण कराना त्याग कर उनपर मुख्य प्रेमअर्थात् उनको विद्या आदि गुणों से भूषित कीजिये कि जिससे इस लोक और परलोक दोनों में आनन्द प्राप्त हों।

जुआ खेलना।

ऋग्वेद १०। ३४। १३ में उपदेश है कि "अक्षैर्मा दीव्यः" फांसा आदि से जुआ मत खेलो। लालमुर्गादि का दांव लगा कर तथा शतरञ्ज, गंजीफ़ा, चौसर आदि का खेल भी भला नहीं क्योंकि जुआ की हार और जीत दोनों प्यारी होती हैं। जब मनुष्य जीतता है तो लालच में आकर खेलता ही रहता है, यदि हार गया तो जीतने की आशा पर घर बार को भी खो बैठता है। देखो पूर्वकाल में भी जुआ अर्थात् ताश पत्ते आदि खेलने ही के कारण राजा नल और दमयन्ती को वनवास हुआ और जुये होने युधिष्ठिरादि पांडवों को बारह वर्ष वन में अकेला फिराया, सब चैन आराम को छुड़ाया, जब इस पर भी न रहा गया तब अन्त को युद्ध हुआ जिसके कारण भारत का सत्यानाश हो गया। जुआरियों की दशा प्रत्यक्ष प्रकट है कि उनकी क्या २ दुर्दशा हो रही है, तिस पर जुआरी की बात पर कोई भरोसा नहीं करता, जब उन की हार होती है तो एक रुपये का माल दो आने में देकर नंगे बन जाते हैं कि जिसके कारण भूखों मरने लगते हैं तब चोरी आदि दुष्कर्म करते हैं कि जिसके कारण कारागार भोगते हैं, बदमाशी का तमग़ा मिलता तथा बाप दादे का नाम डूबता है।

अतएव हे पुत्रो! ऐसे कर्मों को तुम कदापि न करो। हमारे देश में इस बुरे कर्म को दिवालीके दिन सब स्त्री, पुरुष, बालक, बालिकायें बिना रोक टोक के अच्छे प्रकार करते हैं। वाह! शोक है इन भारतवासियों को कि ऐसे बुरे कर्मको त्योहारके दिन करते हैं कि जिससे यह बुरा कर्म पीढ़ी दर पीढ़ी चला जाता है और एक दिन सब जुआरी बन जाते हैं। कहते हैं कि "कौरव पांडव" खेले थे। हाय! क्या ही आश्चर्य की बात है कि उन पांडव और कौरव के अन्तिम फल पर दृष्टि नहीं डालते कि जिसको मैंने ऊपर वर्णन किया। अतः प्यारे गृहस्थियो! यह बुरे कर्म कदापि न करो

और सदा अपनी सन्तान को भी शिक्षा करते रहो, इस विषय में मनु जी ने लिखा है—

"द्यूत कर्म वा समाह्वय" इनको राजा अपने राज्य में न होने दे क्योंकि यह दोनों दोष राज्य का नाश करने वाले हैं।

प्राणरहित पासा आदि से दांव लगा के क्रीड़ा करना 'द्यूत' कहाता है, प्राण सहित मेढ़ा, भैंसा, लाल मुर्गा, आदि से दाव लगा कर क्रीड़ा करना 'समाह्वय' कहाता है।

कतिपय पुरुषों का कथन है कि हम मन बहलाव के लिये जुआ खेलते हैं परन्तु इसका परिणाम यह होता है कि मन बहलाव कहते ही कहते दिवाली के दिनों के बाद भी जुआ होता रहता है और करोड़ों रुपये का माल स्वाहा कर दिया जाता है। इस प्रकार के जुए में साधारण पुरुष ही नहीं वरन् पढ़े लिखे एन्ट्रेंस और ग्रेजुएट की उपाधि प्राप्त किये हुए पण्डित बाबू और मुंशी महोदय अपने अमूल्य समय, धन और कीर्ति का नाश करते दिखाई दे रहे हैं। शोक उनकी बुद्धि और विद्या प्राप्तिपर ! सज्जनों और महिलाओं ! विचारो तो सही क्या शतरंज, चौसर, गंजीफ़ा आदि में अमूल्य समय को व्यतीत करने के लिये ही ईश्वर ने आप को मनुष्य शरीर दिया है क्या जुआ खेलना ही धर्म और मनुष्य जीवनका उद्देश्य है।

पशु और पक्षीपालन और उनके लाभ।

यजुर्वेद अ० २४ मं० १३ व १४ में उपदेश है कि गाय-बैल-ऊंट-हाथी आदि पशुओं का पालन करते हुए उनके गुणों से शिक्षा ग्रहण कर अपने कार्य्यों की सिद्धि करे जैसे—

गाय सूखा भूसा और घास खाकर कैसा उत्तम दूध देती है, खेती और सवारी के लिये बछड़े, गृह पवित्र करने तथा खेतों में खाद डालने के लिये गोबर और भोजन बनाने को कंडे देती है इससे यह शिक्षा ग्रहण करे कि संतोष पूर्वक रूखा सूखा खाकर मनुष्यको तन मन धन से परोपकार करना चाहिये।

सिंह छोटी या बड़ी शिकार को प्रबल प्रयत्न से करता है वैसे ही मनुष्यको योग्य है कि प्रत्येक कार्य को पूर्ण साहस से करे।

हाथी के पकड़ने वाले वन में गढ़ा खोदकर उसके ऊपर तिनकों की छत डाल कागज़ की बनावटी हथनी उसके ऊपर खड़ी कर देते हैं जिसकी सुन्दरता को देख हाथी की इच्छासे वहाँ जा गढ्ढे में गिर परतन्त्र होजाता है इसी तरह जो मनुष्य रूप आदि पर मोहित हो जाते हैं वह नाना प्रकार के दुःख उठाते हैं।

हरिण बांसुरी या वीणा के शब्द पर मोहित होने के कारण मारा जाता है उसी प्रकार रसीली बातों में मनुष्य को अपना जीवन नष्ट नहीं करना चाहिये।

कुत्ता बहुत खाने की शक्ति रहते भी थोड़े में ही संतुष्ट रहना गाढ़ निद्रा रहते भी झट पट जग जाना और स्वामी की भक्ति करना यह बातें कुत्तों से सीखनी चाहिये। इसके अतिरिक्त यह रात को चौकसी भी करता है।

गदहा अत्यन्त थक जाने पर भी स्वामी के कार्य को करना–गर्मी सर्दी को सहन कर संतोष पूर्वक विचरना इनको गदहे से सीखे।

यजुर्वेद अ० १४ मं० १७ में कहा है कि पक्षियों के स्वाभाविक गुणों से भी लाभ उठाना चाहिये जैसे—

बगुला इंद्रियों का संयम कर अपने कार्य की सिद्धि करता है वैसे ही मनुष्यों को करना चाहिए।

मुर्गा ठीक समय पर जागना–लड़ाई के लिये तय्यार रहना भाइयों को उनका भाग देना यह शिक्षा मुर्गे से लेनी चाहिये।

कौआ धैर्य्य करना, यथा समय पर घर बनाना, सावधान रहना छिप कर मैथुन करना, किसी पर विश्वास न करना यह बातें कौएसे सीखनी चाहियें।

बतक सब शरीर को पानी के ऊपर रख कर तैरती है तथा रातको इनके गिरोह में से एक पहरा देती रहती हैं बाकी सब आराम से सोती हैं किसी के ज़रा छेड़ देने पर अथवा चोर आदि के आ जाने पर सब चिल्लाने लगती हैं इन से घर की रक्षा अच्छी होती है। बतक की भांति मिलकर प्रेम रखना चाहिये तथा जैसे यह पानी के ऊपर

तैरती हैं वैसे ही संसार में रहते हुए मोह आदिमें न फँस जगत् की नष्टता एवं मृत्यु का भय करते हुए श्रेष्ठ कर्मों से अपने जीवन को व्यतीत करना चाहिए।

पतंग रूप पर मोहित हो दीपकमें जलकर मर जाता है वैसेही मनुष्य को भी तथा सुवर्णादि चमकीली वस्तुओं पर मोहित न हो अपने जीवन को शीघ्र नष्ट करना योग्य नहीं है।

मधुमक्खी बड़े परिश्रम से शहद इकट्ठा करती है और मनुष्य उसके शहद को ले लेते हैं इसलिये मनुष्य को उचित है कि परिश्रम से इकट्ठे किये धनको उपकार में लगाता हुआ अच्छे प्रकार से भोग भी करे क्योंकि कंजूसी से छोड़े हुए धनको दूसरे लोग हर लेते हैं।

मछली जीभ के स्वाद से जीवन को नष्ट कर देती है ऐसे ही स्वादिष्ट भोजनों की चाह में मनुष्यों को अपना जीवन नष्ट नहीं करना चाहिए।

इसी प्रकार प्राकृतिक वस्तुओं से भी शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।

अग्नि यह प्रत्येक वस्तु को भस्म कर देती है वैसे ही मनुष्यों को अपने दोष दूर कर अग्नि के समान तेजस्वी होना अभीष्ट है।

जल स्वभाव से शीतल और कोमल छूने से ठण्डक और देखने से आनन्द होता है वैसे ही मनुष्यों को अपना आत्मा और मन शुद्ध एवं कोमल रखना चाहिए।

पृथिवी नाना प्रकार से खोदने और अधम से अधम पुरुषों के रौंदने पर उत्तम २ अन्न फल और भांति २ के रत्न देती है उनको क्षमा करती है उसी प्रकार दुष्टों के कष्ट देने पर भी क्षमा करना चाहिए।

आकाश यह वर्षा से गीला और सूर्य के तप से गरम नहीं होता उसी भांति आत्मा को शरीर के सुख और दुःख का स्पर्श नहीं होता।

सूर्य जिस प्रकार अपनी किरणों से पानी को खींचता और फिर बादल होकर बरसाता है परन्तु खींचने और छोड़नेका अभिमान नहीं करता उसी भांति प्रत्येक मनुष्य को अपने गुणों का अभिमान नहीं करना चाहिए।

समुद्र वर्षात् का पानी गिरने और अगणित नदियों के मिलने पर अपनी सीमा से बाहर नहीं निकलता और न बहुत गर्मी पड़ने से सूखता है उसी प्रकार भोगोंके मिलनेसे अत्यन्त प्रसन्न और न मिलने पर दुःखी नहीं होना चाहिए।

भारत प्रसिद्ध हकीम यूसुफ़ ने अपनी अमूल्य पुस्तक में लिखा है कि मनुष्यों को संसार के प्राणियों की अनेक प्रकार की इच्छाओं तथा स्वभावों से अच्छे और बुरे की परीक्षा करनी चाहिए और कुत्ते की कृतज्ञता, शेर की वीरता, लोमड़ी की मक्कारी, चीते की गुस्सा और ऊँटकी गम्भीरता आदि स्वभावों से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।

वास्तव में चित्रमय जगत् के प्रत्येक पदार्थ एवं प्राणियों से कुछ न कुछ शिक्षा अवश्य मिलती है तथा प्रभु ने किसी प्रयोजन के लिये ही उन को बनाया है। जर्मन आदि देशों में बन्दरों से मशीन चलाने, पंखा खींचने और कुत्तों तथा कबूतरों से डाक पहुँचाने आदि का काम लिया जाता है। लालतितली, मुनियां, पतङ्ग, मैना और तोता आदि रंग विरंगे पक्षियों को देख कर ही विदेशियों ने नाना प्रकार के चित्र विचित्र रंग के कपड़ों को बनाया और उनमें अनेक प्रकार के रंग दिये प्राचीन भारत निवासी उपरोक्त गुण ग्राहकता के लिये ही पशु पक्षियों का पालन करते थे और उनसे नाना प्रकार के लाभ उठाते थे न कि आज कलके मनुष्यों की भांति लड़ाई लड़वाने में समय को व्यर्थ खोने के लिये। इस लिये आप भी पशु पक्षियों के पालन करने के यथार्थ लाभोंको जान अपनी सन्तानों को भी वैसी ही शिक्षा दीजिये। इसके उपरांत मिथ्या खेल और तमाशों से भी संतानों को बचाना चाहिये क्योंकि उनसे भी नाना प्रकार की हानियां हैं जैसे मोंहचंग बजानेसे एक तरफ़की मूंछके बाल उड़ जाते हैं। पतंग उड़ाने से बहुधा लड़के छतों पर से गिर कर मर जाते हैं इत्यादि मिथ्या कार्यों में धन और समय भी व्यर्थ जाता है।

* ब्रह्मचर्य्य *

वीर्य्य रक्षा और विद्याध्यन का समय।

प्रिय सज्जन पुरुषों! "ब्रह्मणेवेदादि विद्यायै चर्यंत इति ब्रह्मचर्यम्" अर्थात् ब्रह्म वेदविद्या को कहते हैं और उसके सीखने के लिये जो व्रत

किया जाता है उसको 'ब्रह्मचर्य' तथा उस व्रत के पूर्ण करने वाले को 'ब्रह्मचारी' कहते हैं। यजुर्वेद अ० १५ मं० ३५ में लिखा है कि विद्वान् मनुष्यों को योग्य है कि संसार में दो कार्य निरन्तर करें पहिले ब्रह्मचर्य और जितेन्द्रियता आदि की शिक्षा से शरीर रोग रहित बल से युक्त पूर्ण अवस्था वाला, दूसरे विद्या तथा क्रिया की कुशलता से आत्मा का बल अच्छी तरह से साधें कि जिससे सब काल में आनन्द भोगें। ऋग्वेद अ० २। ७। व० ८। मं० २। अ० ३। सू० २७। मं० १० में लिखा है कि बिना ब्रह्मचर्य धारण किये कदापि पूर्ण आयु वाले नहीं होते।

इसके अतिरिक्त य० अ० २१ मं० २० में लिखा है कि जैसे प्रसिद्ध अग्नि, बिजली, पेट की आग, वड़वानल ये चार और प्राण, इन्द्रिय तथा गाय आदि पशु सब जगत् की पुष्टि करते हैं वैसे ही मनुष्यों को ब्रह्मचर्य आदि से अपना और दूसरों का बल बढ़ाना चाहिये। और अ० २८ मं० में कहा है कि जो मनुष्य ब्रह्मचर्य, औषधि पथ्य और सुन्दर नियमों के सेवन से शरीर की रक्षा करें तो उनके शरीर दृढ़ होते हैं और जिस प्रकार शरीर का पृथ्वी आदि का घर है उसी भांति जीव का यह शरीर घर है जैसा—

ऊर्जाते परि वृङ्धि नोऽश्मो भवतु नस्तनूः।
सोमो अधि ब्रवीतु नोऽदितिः शर्मयच्छतु॥

इसके उपरांत चार आश्रम चार प्रयोजनों की पूर्ति के लिये परमात्मा ने नियत किये उन सबसे पहिला आश्रम ब्रह्मचर्य विद्या और शिक्षा के लिये है इस हेतु यजु० अ० १२ मंत्र १८ में कहा है कि चारों आश्रमों के यथावत् पूर्ण होने के अर्थ ब्रह्मचर्य आश्रम का पालन करना चाहिये और अथर्ववेद कांड ११ अनु० ३ व० १५ में लिखा है सब प्राणों की रक्षा ब्रह्मचर्यव्रत से होती है। ऐसा ही शतपथ कां० ११ प्र० ३ बा० कां० २ में व्यास जी ने कहा है, कपिलमुनि का वाक्य है कि इसी के बल से मनुष्य ऋषिलोक को जाता है, सनत् सुजात् का वचन है कि ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने वालों को मोक्ष प्राप्त होती है, ऐसा ही मनु जी ने भी कहा है। प्रश्नोपनिषद् में लिखा है कि जो मनुष्य बाल्यावस्था से ब्रह्मचारी रह कर तपस्या करता है उसको इसी जन्म में ब्रह्मज्ञान हो जाता है, ऐसे ही श्रीकृष्ण महाराज ने गीता के ५ अध्याय के २८ श्लोक में लिखा है कि जो मनुष्य मन बुद्धि से जितेन्द्रिय होते हैं वही जीवन्मुक्त हैं। महाभारत में

ऊर्द्ध्वरेता बालब्रह्मचारी भीष्मपितामह ने युधिष्ठिर महाराज से कहा है कि इस संसार में उत्पन्न होनेसे मरण तक जो ब्रह्मचारी रहता है उसके लिये कोई उत्तम बात ऐसी नहीं जिसको वह प्राप्त न कर सके।

इसी के कारण अनगणित ऋषि और मुनियों ने आनन्द स्वरूप परमात्मा के सच्चे ज्ञान को प्राप्तकर मुक्तिके सुखों को पाया और इसी के बल से ब्रह्मचारी को सब लोकों की गति हो जाती है, अथर्ववेद कांड ११ सूत्र ५ में लिखा है कि औषधि वनस्पति, पत्ती और बिना पंख वाले ग्राम और जंगल के पशु, पार्थिव और आकाश के पदार्थ और जीव जंतु ब्रह्मचारी रह कर बली और दीर्घजीवी होते हैं।

शुकदेव जी ने राजा जनक से कहा है कि जिसने ब्रह्मचर्य में चित्त की शुद्धी की है उसी कोअन्य आश्रमों में आनंद मिलता है। छान्दोग्य उपनिषद् में लिखा है कि जिस कर्म को कर्मकांडी लोग यज्ञ कहते हैं वह ब्रह्मचर्य्य ही है जिसको इष्टि कहते हैं। वह भी ब्रह्मचर्य ही है। जो वेदोक्त कर्मों को करना चाहे वह भी ब्रह्मचर्य है। मौन भी इसको कहते हैं। पातञ्जलि जी योग सूत्र में लिखते हैं कि ब्रह्मचर्य से ही लाभ होता है—

ब्रह्मचर्य्यप्रतिष्ठायां वीर्य्यलाभः।

शरीर का उत्तम तप और अकाल मृत्युके जीतनेकी परमौषधी यही है इसी ब्रह्मचर्यके प्रतापसे मनुष्य देवता तथा मुनि होतेथे। श्रीकृष्ण महाराज ने संजय से कहा है कि इन्द्र ने देवताओं में उत्तम बनने के लिये ब्रह्मचर्यव्रत को ही धारण किया था। इसी से परतन्त्रताकी बेड़ियों से मुक्त हो कर मनुष्य अपने जीवन को स्वतंत्र रीतिसे व्यतीत करते हैं। देखिये बाल ब्रह्मचारी भीष्मपितामह स्वामी शंकराचार्य एवं महर्षि स्वामी दयानन्द जी अखंड ब्रह्मचर्यव्रत के कारणही ऊर्द्ध्वरेता कहलाये और समस्त भारतवासियों को बतला दिया कि यदि तुम अपने जीवन को आदर्शमय एवं स्वतन्त्र बनाना चाहते हो तो इसी संजीवनी का सेवन करो गौतम स्मृति में लिखा है कि बिना ब्रह्मचर्य के आयु, तेज, बल, वीर्य, बुद्धि, श्री, धनादि का नाश हो जाता है, जैसा कि—

आयुस्तेजो बलं वीर्यं प्रज्ञा श्रीश्च महायशः।
पुण्यंच मत्प्रियत्वं च हन्यतेऽब्रह्मचर्यया॥

अमृतसिद्ध नामक ग्रन्थ में लिखा है कि जो ब्रह्मचारी नहीं उसकी कभी सिद्धि नहीं होती, जन्म मरणादि क्लेशों को भोगता रहता है—

अविद्धं तं विजानीय यान्तरब्रह्मचारिणम्।
जरा मरण संकीर्णं सर्व क्लेश समाश्रयन्॥

इनके उपरांत यह भी लिखा है कि जिस पुरुष के इन्द्रिय द्वारा वीर्य चलायमान रहता है उसका चित्त भी चलायमान रहता है।

चरक से प्रकट होता है कि पूर्व ऋषिगण इसी रसायन का सेवन कर अपनी आयु को बढ़ाते थे। इसी लिये उन ऋषियों ने वेदानुकूल मनुष्यमात्र के लिये यही उपदेश किया है कि यदि तुमको आयु बढ़ाना है तो इसी ब्रह्मचर्य को सेवन करो जैसा कि चर० चि० अ० १ पाद दो में लिखा है।

इसी का नाम अमृत है जिसको भीष्मपितामह जी ने यथार्थ पानकर असंतान होते हुये भी पितामह कहलाये और इच्छानुसार मृत्युको प्राप्त हुये जिससे आज तक उनका नाम चला जाता है इसी को अमर कहते हैं।

प्रियवरो! पूर्ण आयु तथा कल्याणदाता, निरोगता प्रदान करने वाला मनको प्रफुल्लित रखने वाला सब पुण्यों में उत्तम ब्रह्मचर्य ही है! अमरकोश और वैद्यक ग्रन्थों में वीर्य का नाम शुभ है अर्थात् पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने और वीर्य रक्षा से ही मानवीय शरीर में ब्रह्मविद्या और संजीवनी विद्या के सीखने की शक्ति उत्पन्न होती है प्राचीन समय में शुक्राचर्य ने वीर्य रक्षा से ही यह उपाधि प्राप्त की थी और अपनी संजीवनी विद्या के द्वारा ही असुरोंका नाश कर प्यारे शिष्य कचको जीवित किया था अमरकोष में असुनाम प्राणों का आपा अर्थात् प्राणों में रमण करने की जिसमें शक्ति हो वही कष्ट देने वाले शत्रुओं का नाश कर दीर्घ आयु वाला हो सकता है और पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने से शुक्राचार्य बन सकते हैं वही संजीवनी विद्या सीख दूसरोंको अमर बना सकता है वही सम्पूर्ण ऐश्वर्यवान बन शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिकोन्नति कर सकते हैं संसार में प्रत्यक्ष है कि जो मनुष्य अपने वीर्य का नाश कर जल्दी युवा होते हैं वही जल्दी मृत्यु को पाते हैं मानो वीर्य का नाश मार अपने आप मृत्यु को बुलाना है। शतपथ ब्राह्मण प्र० ११। ३। ६। २ में लिखा है जो जितेन्द्रिय हैं वह कभी दुःखी नहीं होते किन्तु उनका चेहरा खिला हुआ रहता है और प्रत्येक कार्य को बड़े उत्साह से करते हैं। सचमुच ब्रह्मचर्य परही मनुष्य का जीवन निर्भर है इसीसे मानवीय शरीर

आरोग्य रहता है शक्ति तेज, सामर्थ, उत्साह, निर्मलबुद्धि, उत्तमसिद्धि और ऐश्वर्य आदि श्रेष्ठ गुणों की प्राप्ति होती है स्वामी रामतीर्थ जी ने अपने एक व्याख्यान में उपदेश दिया कि ऐ भारत जननी के प्यारे पुत्र और पुत्रियों ! जिस प्रकार कच्चे एवं सड़े बीज से उत्तम वृक्ष नहीं उग सकता इसी प्रकार पतले एवं दोष युक्त वीर्य से श्रेष्ठ संतान कदापि उत्पन्न नहीं हो सकती और जिस तरह कच्चा घड़ा पानी भरते ही फूट जाता है उसी भांति अल्पायु में विषय करने वाले शीघ्र यमपुर चले जाते हैं । यादरक्खो जिन कोमलाङ्गियों का सत्संग छोटी अवस्थाओं में हुआ उनकी योनि सम्बन्धी रोगों में ही मृत्यु हुई जैसे निःसत्व घास को अग्नि शीघ्र जला देती है वैसे ही निःसत्व कुमारों को बाल्यावस्था में स्त्री प्रसंग की अग्नि भस्म कर देती है इसलिये यदि तुम दीर्घ काल तक जीवित रहना चाहते हो तो कम से कम २५ वर्ष तक ब्रह्मचारी बनो तुम्हें हर समय यह ध्यान रखना चाहिये कि युवावस्था में कमर में दर्द शरीर में निर्बलता आंखों में निस्तेजता, दृष्टि की मंदता, हाथ पैरों की कृशता, जाड़ों की शिथिलता आदि बुढ़ापे के चिह्न ब्रह्मचर्य के धारण न करने ही से प्रतीत होते हैं इस लिये अपना अपने कुटुम्ब का और अपनी भावी संतानों का अधःपतन मत करो किंतु सबकी रक्षा और सबकी उन्नति एवंउद्धार के लिये ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना योग्य है ।

वास्तव में शरीर के भीतर सब खेल धातु अर्थात् वीर्यरूपी राजा के हैं । जब इस की उपरोक्त प्रकार से रक्षा नहीं होती तो फिर भला किस प्रकार शरीर रूपी वृक्ष में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष आदि फल लग सकते हैं कदापि नहीं । जिस तरह सेना का राजा भाग जाता है तब उस की सब तरह से दुर्दशा होती है, उसी भांति नाक, कान, हाथ, पांव, नेत्र त्वचा, जीभ, वाणी आदि दश रिसालों की शरीर रूपी सेनासे जब वीर्य रूपी राजा निकल जाता है तो यह सब रिसाले जिधर जिस की इच्छा होती है चले जाते हैं । अर्थात् नाक, कान, नेत्र अपना कार्य करने के योग्य नहीं रहते फिर भला बल, पौरुष, पराक्रम, धैर्य, ज्ञान आदि सुखकैसे मिल सकते हैं ? कदापि नहीं ।

वर्त्तमान समय में ब्रह्मचारी के माता पिता आचार्य कुछ सुध नहीं लेते वरन् नाम तक भी नहीं जानते कि ब्रह्मचारी किसको कहते हैं और

न वह उनके लाभों को यथावत् जानते हैं क्योंकि वे आप भी ब्रह्मचारी नहीं बने न सत्यशास्त्रों का पठन किया न उनको वर्त्तमान समय के नाम मात्र के आचार्यों ने समझाया, वरन् उक्त तीनों न्यून अवस्था में विवाह होना ही उत्तम जानते हैं। वे कहते हैं कि आज हमारे ललुआ के मुनुआ हो जावे तो हमारे नेत्रों को आनन्द मिले और चैन आवे वेद पढ़ाकर हम को फ़क़ीर थोड़ा ही बनाना है। इसी कारण यज्ञोपवीत के समय वेदारम्भ का नाम ही रह गया है। जब हमारे देशके माता पिता आचार्यों की यह दशा हो गई तबही तो भारत रसातल को चला गया, इसमें आश्चर्य क्या? यहां न कोई वेद पूछता है न शास्त्र। फिर क्या है, देख लो क्या था क्या होगया। मुख्य कारण ब्रह्मचारी होकर विद्या पढ़ना ही है क्योंकि वीर्य शरीर में पकने से उत्साह, उत्साह से विद्या, विद्या से ज्ञान, ज्ञान से धर्म, धर्म पर चलने से सब तरह के यथावत् सुख मिलते हैं। वही पदार्थ विद्यामें उन्नति कर सकता है, वही सब आनन्द तथा परमानन्द अर्थात् मोक्ष सुख को पाता है, क्योंकि बिना ब्रह्मचर्य सेवन के काया और विद्या का नाश हो जाता है, फिर सुख कैसा?

हे सुजनो! जिसके शिर पर काम सवार हो जाता है, वह तृण सेभी हल्का हो जाता है, राज पाट खोता तथा प्रतिष्ठा और मान को धूलमेंमिला कर संसार में अपकीर्ति पाता है, परलोक में भी दण्डभागी होता है वन वन फिरता है, नदी नाले लांघता है। इसी काम के कारण सीता के हरने पर लङ्कापति रावण और तारा के अपहरण करने से बालि तथा द्रौपदी को ग्रहण करने की इच्छा में कीचक (जो राजा विराट का साला था) मारा गया।

लंकेश्वरो जनकजा हरणेन वाली तारापहारक तथाप्यथ कीचकाख्यः।
पाञ्चालिका ग्रहणतो निधनं जगाम तस्मात्तथापि परदाररतिं न कांक्षेत्॥

इसके उपरांत राजा पुरूरवा उर्वशी अप्सरा के साथ निरंतर रमण करने की चिंता में नष्ट होगया। इस लिये जीवनरक्षा के हेतु पराई स्त्री के साथ रमण करने की कभी इच्छा न करे।

उर्वशी सुरत चिन्तया ययौ संक्षयं किल पुरूरवानृपः।
रक्षणाय निज जीवितस्य तत्सं भजेत्परवधूं न कामतः॥

प्यारे सज्जन पुरुषो! भारतवासियों ने भी इसके फन्दे में फंस कर

सर्वस्व दे दिया। प्राचीन इतिहासों के अवलोकन से स्पष्ट प्रकट है कि पूर्व समय में भारतवासी जन अपनी योग्यता तथा निपुणता में समस्त भूमण्डल में अद्वितीय तथा अपूर्व गिने जाते थे।

यही भारत जो वर्त्तमान समय में अविद्या के समुद्र में डूबा हुआ है, प्राचीन समय में विद्या के प्रकाश से सूर्य के समान दीप्तमान हो रहा था। यहां की विद्या रूपी नदी ने देश देशांतरों को सींच कर हरा भरा कर रक्खा था। यहां तक कि मिश्र यूनान के प्राचीन निवासी जो गणित वैद्यक ज्योतिष आदि विद्याओं के उत्पन्नकर्ता समझे जाते हैं, इन आर्यों के शिष्य थे कि जिनसे पहले इस संसार में किसी दूसरी जातिकी उत्पत्ति इतिहासों से प्रकट नहीं होती। उनकी संस्कृत विद्या की लालित्य और मधुरता प्रकट है, व्याकरणकी अपूर्वता विदित है, शिल्प तथा पदार्थ विद्या में उस समय जो उन्नति थी उस का वर्णन करना कठिन है, विश्वकर्मा के बनाये हुये पुष्पकविमान कि जिस पर श्रीरामचंद्र जी लङ्का से अयोध्या को आकाश मार्ग होकर आये थे जिनके सन्मुख रेलादि का बनाना कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। इन्हीं महात्माओं ने सूत कातने का चरखा, कोल्हू, हल इत्यादि, मयदैत्य ने राजा युधिष्ठिर के यहां सुधर्मा नाम ऐसी अपूर्व सभा बनाई थी कि जिसमें जल के स्थान पर थल तथा थल की जगह जल जान पड़ता था। तत्पश्चात् इस भूमि के गुणियों ने सूक्ष्मदर्शक, दूरदर्शक, यंत्र, धर्म, घड़ियां, जेबी घड़ियां तथा कलों के द्वारा बोलने वाले पक्षी आदि अद्भुत अथवा अनोखे यंत्रकला बनाये थे। वैद्यकशास्त्र को अश्वनीकुमार व धनवन्तरि ने मनुष्यों के सुख चैन तथा आरोग्य रहने के लिये बनाया था कि जिसमें निघण्टु, निदान वा चिकित्सा का ऐसा वर्णन किया कि जिनको पढ़ कर यूनानवालों ने नाम पाया, इस विद्या में चरक, सुश्रुत, वागभट्टादि आचार्यों ने भी बड़े २ अपूर्व ग्रन्थ रचे। ज्योतिष विद्या ऐसी है कि जिसकी समता दृष्टि नहीं आती, ज्योतिष में आकाश पृथ्वी विषयक दो प्रकार का ज्ञान है, आकाश विषय में वह ज्ञान है कि जिसमें ग्रह नक्षत्रादि का प्रमाण, चाल, गृहण होने के कारण आदि का वर्णन है, पृथ्वी विषयक ज्ञान में पृथिवी, पहाड़, नदी आदि का वृत्तान्त विदित होता है, ज्योतिष में गणित मुख्य है जो समस्त विद्याओं में उपयोगी है, जिसको 'पितामह' तथा 'भास्कराचार्य' ने निकाला है मीमांसा शास्त्र को जैमिन ने,

वैशेषिक को कणादमुनि ने, योग को पतञ्जलि ने, सांख्य को कपिलदेव तथा वेदान्त को व्यास जी ने निर्माण किया था, जिनमें से आत्मविद्या के जानने वाले योगी जन दूर दूर से बातें करते थे, नाना प्रकार की शक्ति रखते थे, क्योंकि योग ही द्वारा वह मन की वृत्तियों को अपने आधीन कर लेते थे। गानविद्या में पूरी योग्यता रखते थे, इन्होंने ही आठ राग चौंसठ रागनियां निकाली थीं जिनके ताल स्वर न्यारे २ थे, यही कारण है कि इनके गानमें जो रस आता है वह किसी देश के गानमें नहीं आता है ऐसे ही युद्ध विद्या में बड़ी विज्ञता रखते थे, जो सालून, दलगन इत्यादि शस्त्रों से लड़ते थे, तदुपरान्त वह विष भरी वायु से अरिसेनाओं को लपेट कर पवन में भयंकर शब्द उत्पन्न करके उनको विध्वंस कर डालते थे और आकाश में डरावनी सूरत बनाकर शत्रुओं को भयभीत करते थे। सच तो यह है कि इस भूमि में पाणिनि कात्यायन, पतञ्जलि, यास्क, गौतम आदि तत्ववेत्ता, कालिदास, भवभूति बाणादि कवि शिरोमणि, धन्वंतार आदि आयुर्वेद चिकित्सक। अर्जुन, भीम धनुर्विद्या में, गान विद्या में गन्धर्वसेन नारदादि, गणितज्ञों में भास्कराचार्य, योगीश्वरों में श्रीकृष्ण, उपदेशकों में व्यासदेव सरीखे। सत्य बोलने में युधिष्ठिर महाराज धर्मात्मा क्षत्रिय, जितेन्द्रियों में भीष्मपितामह, सुविज्ञ गुरु द्रोणाचार्य, निर्लोभ दानियों में कर्ण, विचारशीलों में विदुर महाराज, पिता के आज्ञाकारी सर्वण और रामचन्द्र, धर्मपालन में राजा हरिश्चन्द्र, वाक्य पूरा करने में राजा बलि। इसी प्रकार स्त्रियों में सीता, अनुसुइया, द्रौपदी, दमयन्ती, गार्गी इत्यादि धुरन्धर पूर्ण गुणवान्, विद्वान्, और अनेक मार्गके दिखलाने वाले सच्चे भक्त इस भारतभूमि में हो गये हैं। परन्तु हे सभ्य सज्जनों! यह सब हम तुमने मैथुन में खोदिया क्योंकि जैसा हमने वीर्य्य का नाश मारा वैसे ही हमारा नाश मारा गया। विचार की बात है कि जिस वीर्य के निकालने के आनन्द से हाड़ोंकी माला बन जाते हैं, भला उसके डाटने के आनन्दों को कौन वर्णन कर सकता है। अतः अब इसके यथार्थ गुणों को जान अपने २ पुत्र पुत्रियों को यथावत् ब्रह्मचर्य रहने के अर्थ तन मन धन से उनकी रक्षा कर विद्या पढ़ाओ, और सदा उनको वीर्य के डाटने तथा विद्या के पढ़नेके लाभ सुनाते रहो, कभी कभी भीम, कर्ण, हनुमान, अंगदादि बली पुरुषों के चित्र दिखाते रहो, उनको प्रति दिन सत्यशास्त्रों में से यहां की विद्या तथा गुण आदि के व्याख्यान भी सुनाते रहो कि हे

ब्रह्मचारी ! तेरी सकल कामना अथवा मनोरथ अखंड ब्रह्मचर्य सेवन तथा विद्याध्ययन से ही पूर्ण होंगे । क्योंकि पूर्ण आनन्द और सुख प्राप्ति की महौषधी यही है इस लिये हे पुत्र पुत्रियो तुम इस तप को मन, वच, कर्म से पूर्ण कर सच्चे वीर बनो, तब ही भारतमाता की सच्ची सेवा कर सकते हो अन्यथा नहीं ।

—०—

ब्रह्मचारियों को शिक्षा ।

हे ब्रह्मचारी ! तुम उबटन तथा सुगन्धित पदार्थों को शरीर में न लगाओ पुष्पों की माला तथा शरीर की शोभा देने वाले तिलक छापादि को धारण मत करो । नाचने गानेकी ओर ध्यान न दो । मनुष्योंके समूह में गाने या सुनने का स्वभाव न डालो क्योंकि ऐसे विद्यार्थियों का चित्त पठन पाठन में नहीं लगता । इस लिये धर्मशास्त्र के कर्त्ताओं ने जिन गोष्ठी का निषेध किया है और परीक्षासे जाना गया है कि गप्पी जप्पी विद्यार्थियों को विद्या नहीं आती । अतः तुम इधर किंचित् ध्यान न दो । रात्रि में अकेले सो सब प्रकार से वीर्य्य की रक्षा करो क्योंकि इस समय की रक्षा करने से मरण तक कोई रोग प्रबल नहीं होता । कहा भी है कि जो बिंदु को मारेगा वह सिंद को पछाड़ेगा । अतः स्त्री का ध्यान, उसकी वार्ता, स्पर्श, दर्शन, आलिंगन, एकान्तवास, समागम, इन आठ प्रकार के विषयों को त्यागना आवश्यक है । इनसे बचने का सबसे अच्छा सरल उपाय यही है कि विषयों की वार्तो को न सुने न ऐसे मनुष्यों के पास बैठे, न ऐसे स्थानों में जावे जहां स्त्रियों के झुंड आते जाते हों, न कभी उनकी कथा कहानियों को सुने । यदि स्त्री सम्मुख आ जावे तो अपनी दृष्टि नीचे कर ले और कभी किसी सुन्दर स्त्री का हृदय में स्मरण भी न करे वरन् सीधे सादे रहन सहन-जैसे गुरुकुल वृन्दावन और महाविद्यालय ज्वालापुर में ब्रह्मचारियों का निवास है अर्थात् स्वदेशी वस्त्रों के पहराव, स्वच्छ पवित्र स्वल्पाहार करने, शीतल गङ्गा या कुएँ के जल से स्नान करने, कभी २ व्रत यानी उपवास करने, सायंकाल जल्दी सोने, प्रातःकाल ४ बजे उठने, लँगोट बाँधने, दिनचर्या के अनुकूल पढ़ने लिखने और आचार्य की शिक्षा से दृढ़ प्रतिज्ञ रहने, उच्च ध्येय और अपने जीवन को पवित्र एवं श्रेष्ठ आदर्शमय बनाने, एकान्त वास करने, शुद्ध वायु में रहने, खड़ाऊँ के पहरने, नियम पूर्वक कार्य करने, और अपने धर्म पर आरूढ़ रहने, प्राणायाम,

संध्या, व्यायाम एवं प्रभु भक्ति करने से यथावत् वीर्य्य रक्षा हो सकती है इन सब बातों का वर्णन इस पुस्तक में ही यथा स्थानों किया गया है विशेष रूप से वहीं वहीं देख कर उनका यथावत पालन करना योग्य है।

वर्तमान समय में बहुधा सेठ साहूकारों के कमरा में स्त्रियों की तसवीरें टँगी रहती हैं इनके देखने से भी संतानों पर बुरा प्रभाव पड़ता है इस लिये अश्लील चित्रों को कमरों में न टांग कर अच्छे महात्मा, विद्वान्, संन्यासी, योगीराज, वीरेश्वर पुरुषोंके चित्र टांगना उचित है। विषय करते हुए पशु पक्षियों को देखना वा बालकों को दिखाना योग्य नहीं है क्योंकि उनके देखने से मन में बुरे भाव पैदा होते हैं। लालमिर्चों की चाट, खटाई का सेवन भी ब्रह्मचर्य की दशा में नहीं करना चाहिये क्योंकि इन पदार्थों के सेवन से वीर्य्य पतला होकर स्वप्न दोष आदि के द्वारा नष्ट हो जाता है।

क्या आपने महात्मा लक्ष्मणजी का वृत्तान्त नहीं सुना जो प्रति समय सीता जी के साथ रहते थे और उपरोक्त आठों प्रकार के मैथुनों को त्यागे हुये यथार्थ ब्रह्मचारी बने हुये थे। ऋष्यमूक पर्वत पर जब सुग्रीव ने सीता के आभूषण और वस्त्र लाकर दिये और लक्ष्मण जी से कहा कि आप इनको देखिये, उसके उत्तर में लक्ष्मण जी ने कहा कि मैं कुण्डलोंको नहीं जानता क्योंकि मैंने कभी दृष्टि भर सीता जी के मुंह की ओर नहीं देखा और न मैं बाजूबन्दों को जानता हूँ, वरन् इन बिछुओं को मैं अच्छे प्रकार से जानता हूँ क्योंकि मैं प्रति दिन उनके चरणों को छूता था।

भूषणंनैव जानामि नैव जानामि कुण्डलम्।
नूपुराण्येव जानामि नित्यं पादाभि वन्दनात्॥

क्या हमारा आज ऐसा पवित्र विचार है। क्या हमको ऐसे उच्चभाव का ध्यान है, क्या हम ब्रह्मचारी बनने की इच्छा रखते हैं, क्या पराई स्त्री को माताके समान देखते हैं। यदि संसारकी भलाई और अपना सुधार करना है तो लक्ष्मण महाराज की भांति पवित्र विचारवान् अर्थात् पवित्र संकल्पी बनना चाहिये क्योंकि इसमें संदेह नहीं कि उच्च विचार और शुभ संकल्पों से ही हम श्रेष्ठ बन सकते हैं और हमारा ब्रह्मचर्य पूर्ण हो सकता है। ऊपर के दृष्टान्तसे आपको मालूम होगया कि शुद्ध ग्रन्थों के स्वाध्याय और सत्संगति के द्वार इन्द्रियों के दमन से ही महात्मा लक्ष्मण पूर्ण ब्रह्मचारी थे इसी पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रतके धारण करनेसे ही लक्ष्मणने वीर मेघनाद को मारा था।

बहुधा सज्जन कह दिया करते हैं कि आजकल कलियुग के समय में कोई ब्रह्मचारी बन ही नहीं सकता उनके लिये ब्रह्मचारी रामसूर्ति तथा गुरुकुलों के कई एक स्नातकों के वीरता के कौतुकों को देखना चाहिये। जिन्होंने महर्षि स्वामी दयानन्दजी के वतलाये हुए उत्तम नियमों का पालन कर संसार में नाम पाया।

स्वामी जी की शिक्षा ब्रह्मचर्य पालन करने के लिये वही है जो वेदारम्भ संस्कार के समय की जाती है जिसका वर्णन संस्कारविधि में किया गया है उस पर ध्यान देना तथा ब्रह्मचर्य पूर्ति के लिये सत्सङ्ग करना उचित है।

—०—

सत्संग महात्म ।

माता पिता आदि को योग्य है कि अपनी सन्तानों को दुष्टों के संग से पृथक् रख श्रेष्ठों के सत्सङ्ग में प्रवृत्त करा कर धार्मिक तथा चिरंजीवी बनावे जिससे वृद्धावस्था में भी अप्रियाचरण न करें यजुर्वेद अ० १६ मंत्र ३८ में लिखा है।

अग्नआयूंषिपवसऽआसुवोर्ज मिषंचनः। आरे बाधस्वदुच्छुनाम॥

प्यारे सुजनों! सङ्गत का बड़ा प्रभाव होता है अर्थात् जो मनुष्य जैसी संगत करता है वैसा ही बन जाता है इसी लिये महात्मा तत्त्वदर्शी-ज्ञानी एवं सज्जन पुरुषों ने यही उपदेश दिया है कि मनुष्य को यदि इस लोक और परलोक में सुख की अभिलाषा हो तो उत्तम-भले आचरण वाले नाना प्रकार की विद्या और गुणों के जानने वाले पुरुषों और जितेन्द्रिय विद्वानों का संग करना योग्य है।

तुलसीदास महाराज ने कहा है कि उत्तम जन काम, क्रोध, लोभ, मोह, मत्सरता, मोह ईर्षा, द्वेष को छोड़ जप, तप, व्रत, नियम, संयम, शम दम, शांति, त्याग, प्रेम, धीरता, पुरुषार्थ विवेक, इत्यादि गुणों में लवलीन और दूसरोंके दुःख में दुःखी और सुखमें सुखी अर्थात् समदर्शी होते हैं। कोमलचित्त दीनों पर दया, ईश्वर में भक्ति, मन, वच, कर्म से परोपकार करने वाले वाणी में जिन के सत्यता मधुरता और सरलता होती है— उनके चरित्र कपास के समान अनेक कष्टोंको सहन कर दूसरों की भलाई करते हैं और तन-धन-धाम इत्यादि; वैभव में किसी प्रकार का अभिमान नहीं करते सदा प्रसन्न चित्त और पवित्र होते हैं ईश्वर आज्ञा मानने में

दत्तचित्त अपनी प्रसंशा सुन कर सकुचाते और अन्य पुरुषों की महिमा सुन कर प्रसन्न तथा दुष्टों के वचनों को सुन शांति चित्त रहते हैं।

भर्तृहरिजी कहते हैं श्रेष्ठ पुरुषों की बात पत्थर की लकीर तथा वह भीतर से नारियल के फल के समान मीठे, और कोमल होते हैं उनमें धन के साथ विवेक, विद्या के साथ विनय और बल के साथ नम्रता होती है श्रेष्ठ जन आपत्ति आने पर भी अपने उत्तम स्वभाव को नहीं बदलते और किसी प्रकार से नीच कर्म नहीं करते वरन् विपत्ति में धीरता, बुद्धि में क्षमा, सभा में वचन की चतुराई, युद्ध में शूरता, यश में रुचि, वेद में प्रेम यह सब लक्षण स्वभाव ही से अच्छे पुरुषों में होते हैं देखो चन्दन में बार बार घिसे जाने पर सुगंध और ऊँख बारबार पेली जाने पर सुस्वाद रहती है, सोना अनेक बार जलाने पर भी सुन्दर शोभायमान बना रहता है इसी भांति श्रेष्ठजन अनेकान कष्ट पड़ने पर भी अपनी मर्य्यादा को नहीं तोड़ते चाणक्य ने कहा है कि समुद्र प्रलय के समय अपनी मर्य्यादा को छोड़ देता है सागर भेदकी इच्छा रखते हैं परन्तु उत्तम जन अपनी मर्य्यादा को नहीं छोड़ते महाभारत शांतिपर्व में महात्मा भीष्म और विदुर महाराज ने धृतराष्ट्र से कहा है कि जिस में क्षमा, धृति, अहिंसा, इन्द्रिय निग्रह, धीरज, स्थिरता, संतोष, दया शीलता, इत्यादि गुण हों वेही श्रेष्ठ हैं। श्रीमद्भागवत स्कंद ३ अध्याय २५ श्लोक २० में कहा है जिस प्रकार सूर्य कमल को, चंद्रमा कुमोदनी को खिलाता है मेघ बिना मांगे पानी देते हैं उसी भांति श्रेष्ठ जन बिना कहे उपकार करते हैं। इसके अतिरिक्त नदियां अपना जल आप नहीं पीतीं वृक्ष अपने फल भी आप नहीं खाते, मेघनाना प्रकार के अन्न उत्पन्न कर स्वयं नहीं खाते उसी भांति सज्जनों का धन सम्पत्ति परोपकारके लिये होती है—ऋग्वेद में मनुष्यों की गणना दैवी और आसुरी सम्पत्ति की है अर्थात् अच्छे पुरुषों में तेज, दृढ़ता, क्षमा, शौच, अद्रोह अहिंसा, सत्य और अक्रोध होते हैं। और बुरोंमें दम्भ, अभिमान, क्रोध, लोभ, और काम इत्यादि होते हैं तुलसीदास महाराज कहते हैं कि दुष्ट पुरुष अन्य के दोष को हजार नेत्रों से देखते हैं और गृध के समान दूसरे के हित को मक्खी के समान बिगाड़ देते हैं और बिना प्रयोजन ही शत्रु बन जाते हैं खलों का तेज अग्नि के समान प्रचण्ड होता है जो मिलकर छापा मारते हैं उनके हृदय दूसरों के वैभव को देखकर जलते हैं पराई निन्दा सुन कर प्रसन्न होते हैं वह कामी—क्रोधी—लोभी—हिंसक—कपटी कुटिल—मिथ्या-

वादी और लोलुप होते हैं उनका सब व्यवहार अपने प्रयोजन साधन का होता है। बातें मीठी२ बनाते हैं परंतु हृदयमें कुछ और होता है। परधन, परस्त्री की इच्छा वाले होते हैं अन्य को विपत्ति में देख कर ऐसे प्रसन्न होते हैं मानों उनको राज्य मिल गया हो अपने स्वार्थ में मस्त, माता, पिता गुरु आचार्य्य आदि बड़ों की अवज्ञा करने वाले ईश्वर की आज्ञा के विरुद्ध कार्य करने में प्रवीण विद्या, बल, धनको पाकर ऐसे बौरा जाते हैं जिस भांति छोटी नदी थोड़े जल से उतरा जाती है दुष्टजन जिससे बड़ाई व प्रभुता है प्रथम उसी का नाश करते हैं।

चाणक्य जी ने कहा है कि सांप के दांत में, मक्खी के सिर और बिच्छू की पूछ में विष रहता है परंतु दुर्जन के सब अंगों में विष पूर्ण रीतिसे भरा रहता है। और भी कहा है दुर्जन और सांप इनमें सांप अच्छा है दुर्जन नहीं क्योंकि सांप काल आने पर काटता है परंतु खल पद पद पर।

शांतिपर्व अध्याय १०३ में बृहस्पति ने इन्द्र से कहा है कि जो परोक्ष में दोषों को कहे उसको दुष्ट जानना चाहिए। श्रीरामचंद्र ने भरत से तथा विदुरजी ने धृतराष्ट्र से कहा है कि जिस में सहन, विद्या, त्याग, दान और वचन की रक्षा नहीं वही दुष्ट है।

महर्षि चाणक्य ने कहा है कि बुरे आचरण वाले, बुरे स्थानों में रहने वाले, पाप बुद्धि पुरुषों से मैत्री करने वाले शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। इस लिये कल्याण की इच्छा रखने वाले पुरुष नीच का संग कदापि न करें क्योंकि नीचों के संग से मनुष्य नीच बन बुद्धि से भ्रष्ट हो गौरव उन्नति और प्रशंसा का नाश मार लेते हैं। भर्तृहरि जी ने कहा है कि बन तथा पर्वतों पर रहना अच्छा, पर मूर्ख के साथ इन्द्र भवन में भी रहना अच्छा नहीं। शुक्राचार्य का कथन है कि काले सर्प का संग अच्छा, परन्तु दुर्जन का नहीं। हितोपदेश में लिखा है कि जिस प्रकार कुत्ते की पूंछ चिकनाने वा मलनेसे सीधी नहीं होती वैसेही नित्य सेवा करने से भी नीच अपनी नीचता को नहीं छोड़ते। विष्णुशर्मा ने कहा है कि प्राण त्यागना अच्छा पर नीचों के पास जाना अच्छा नहीं जैसा कि—

वरप्राणत्यागो न पुनरधर्मानामुपगमः।

इस लिये ऋग्वेद अ० १ मं० १ सूक्त १८ मंत्र ४ में ईश्वर से प्रार्थना की गई है कि हे प्रभु! धर्म से रहित अर्थात् छल कपट आदि से युक्त

मनुष्यों से हमारी रक्षा कीजिये जिस से हमारे सम्पूर्ण कार्य निर्विघ्नता से पूर्ण हों। और मं० १ अ०८ सूक्त ४२ में उपदेश है कि मनुष्य दुष्ट कर्म करने वाले, दुष्ट वचन बोलने वाले तथा दुष्ट व्यवहार करने वाले पुरुषों का संग एवं विश्वास कभी न करे। अतएव अपनी भलाई की अभिलाषा से नीचों के कुसंग को त्याग उत्तम पुरुषों की सेवामें तत्पर रहो उन का ही सहवास करो क्योंकि शांति चित्त शांत स्वभाव और शांत मार्ग प्रदर्शक विद्वान् एवं महात्माओं की संगति से ही उत्तम जीवन–उत्तम संतान और बहुत धन की प्राप्ति होती है। विदुरजीने धृतराष्ट्र को उपदेश दिया है कि सुख की प्राप्ति के लिये उत्तम पुरुषों का ही संग करना योग्य है। मान्यवरो! मनुष्य जन्म का उत्तम फल विना सत्संग के नहीं मिलता इसी से अंतःकरण की शुद्धि एवं धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति होती है। यथार्थ में सत्संग ऐसी ही औषधि है जिससे मनुष्य तीनों तापों से छूट कर आनन्द धाम को पाते हैं। भर्तृहरि तथा चाणक्यजी ने कहा है कि चंद्रमा की शीतलता प्रसिद्ध है परन्तु सज्जनों के संग से चन्द्रमा से भी अधिक शांति की प्राप्ति होती है तथा सांसारिक अथवा पारलौकिक सर्व प्रकार के आनन्द सत्संग से ही प्राप्त होते हैं जैसा कि कहा है—

चन्दनंशीतलं लोके चंदनादपि चंद्रमा ।
चंदनाच्चन्द्रमश्चैव शीतलासाधुसंगतिः ॥
साधूनांदर्शनंपुण्यंतीर्थं भूताहि साधवः ॥

इसी से मूर्ख, कुमार्गी पुरुष ज्ञानी और महात्मा हो जाते हैं जिन के उदाहरण इतिहास में भरे पड़े हैं ऋग्वेद अ० १ सूक्त १७मंत्र४में लिखा है कि मनुष्यों को योग्य है कि आलस्य रहित हो नित्य प्रति विद्वानों का समागम कर अविद्या और दरिद्र को जड़ मूल से दूर करें।

युवाकुहिशचीनां युवाकुसुमतीनाम्। भूयाम वाजदान्नाम् ॥

प्रिय सज्जन पुरुषों उपरोक्त कथन से प्रत्यक्ष प्रकट होगया कि मनुष्य का कल्याण अच्छे अर्थात् भले आदमियों का संग करने से होता है परंतु वर्त्तमान समय में उन पुरुषों का संग किया जाता है जिनमें न विश्वास न तप न ज्ञान न शक्ति न गुण न धर्म जिनको भर्तृहरिजीने पशु के समान माना है कि जैसा कि—

येषां न विद्या न तपो न दानं ज्ञानं न शीलं गुणो न धर्मः ।
ते मृत्यु लोके भुविभार भूता मनुष्य रूपेण मृगाश्चरन्ति ॥

इस पर तुर्रा यह है कि मौजूदा जमानेमें अनपढ़ों के अतिरिक्त बहुत्रा पढ़े लिखे पुरुष, नाम मात्र के साधु-वैरागी बाबा जी मन्दिरों के पुजारी-अध्यापक-गुरु-अचार्य-उपदेशक लाला-बाबू-ओहदेदार--पंडित-मौलवी-सेठ-साहूकार-मुनीम इत्यादि छोटे बड़े पतङ्ग उड़ाने वाले, शतरंज-चौसर गंजफा-नक्की मूठ् खेलने वाले नौटंकी रासलीला-थियेटर आदि के देखने में समय व्यतीत करने वाले। चरस, भंग, अफ़्यून, शराब इत्यादि नशे पीने वाले अथवा रात दिन लड़ाई झगड़े और मुक़दमेबाज़ी में लगे रहने वालों का संग करते हैं और अपने माता पिता इत्यादि से शत्रुता करते हैं। इस प्रकार के पुरुषों के साथ से भला कभी भारत का सुधार हो सकता है वरन् आगे आने वाली सन्तानों के स्वभाव बिगड़ते जाते हैं और भारत रसातल को चला जाता है।

इस लिये मृगतृष्णा के समान संसार को क्षण में नष्ट होने वाला जान नाना प्रकार के आनन्दों और मोक्ष प्राप्त करने के लिये उन पुरुषों का सत्संग करो जिन्होंने विद्या पढ़ कर अपने आचरणों को सुधार के संसार में यश प्राप्त किया हो और उनमें उपरोक्त और अन्य दोष न हों क्योंकि प्राणीमात्र की प्रतिष्ठा गुणों से होती है न कि ऊँचे आसन पर बैठने से। क्या कोठे के ऊपर के भाग में स्थित कौआ गरुड़ हो जाते हैं कदापि नहीं! इसके उपरान्त अपने अमूल्य समय को व्यर्थ न खोना चाहिए क्योंकि वह समय लाखों की ढेरी करने पर भी नहीं मिलता जैसा किसी कवि ने कहा है—"गया वक़्त फिर हाथ आता नहीं"। इस लिये ऋग्वेद अ० १ अ० ३ व० ३० मं० १ अ० ८ सू० ४४ मं० १० में लिखा है कि मनुष्य अपने समय को व्यर्थ न खो सर्वदा उत्तम कार्य्यों में व्यय करे।

सच पूछो तो सब उन्नतियों की जड़ यह गमन शील समय ही है जो इसका सद् उपयोग करते हैं वह उन्नति को हासिल कर सब तरह के सुखों आनन्दों को भोगते हैं क्योंकि काल व्यापक और नित्य है जो पुरुष इसकी तेज चाल को जानते हैं वह इसको अपने आधीन कर सब दशाओं में सब स्थानों पर मन, प्राण, इन्द्रियोंको अपने वशमें कर ब्रह्मचर्यसे विद्या पढ़ श्रेष्ठ कर्म करके विद्वान्, बलवान्, धनाढ्य, विचारवान्, तत्वदर्शी, योगी, परोपकारी आदि उच्चादि और महान् कीर्ति का लाभ कर संसार

के कृपण बन जाते हैं और जो समय को व्यर्थ और निरर्थक खोते हैं उन का मन कुकर्म, कुसंस्कारों का भंडार बन जाता है जिसके कारण सभ्य समाज में उनकी प्रतिष्ठा नहीं होती वरन् अनेकानेक तरह से बदनाम हो कर हर एक स्थान पर अप्रतिष्ठित होते हैं धन के न होने से महान् दुःखों और कष्टों को भोगते हैं रात दिन अस्वस्थ अर्थात् रोगी बने रहते हैं। इस लिये इस समय को कभी व्यर्थ न जानें दो वरन् शुभ कर्मों में व्यतीत करो जिस से किसी तरह की हानि न हो। शरीर की आरोग्यता और मन बहलाव के लिये अपने समय में से समय नियत कर वायुसेवन, व्यायाम, पुस्तक, समाचार पत्रों के पढ़ने इत्यादि कार्यों में व्यय करना अभीष्ट है और पतंगबाजी, जुआ इत्यादि मिथ्या खेलों और गुप्पशुप्प लड़ाई, झगड़े इत्यादि में ऐसे अमूल्य समय को न खोओ जिसके सुपयोग से हम संसार में कीर्ति प्राप्त कर परलोक में मोक्ष पद को प्राप्त कर सकते हैं देखो संसार की कौमों में इस समय इँगलैंड, फ्रांस, अमरीका, इटली, जापान आदि इसी समय से यथार्थ कार्य्य लेने से कैसे २ संसारिक सुखों को भोग रहे हैं उनका एक पल भी व्यर्थ नहीं जाता तुम वेदों के मानने वाले प्राचीन ऋषियों की सन्तान होते हुये वर्त्तमान काल में (समय) से यथार्थ कार्य न लेकर अन्य देशों की अपेक्षा किस तरह दुःख उठा रहे हो उठो, समयसे कामलो तो पूर्ण आशा है कि बहुत शीघ्र भूमण्डल पर नाम पैदा कर अपनी पुरानी कीर्ति को चिरस्थाई कर जाओगे। क्योंकि जो मनुष्य अपने समय को व्यर्थ नहीं खोते उनका वह काल ही सर्व कार्यों को सिद्ध करने वाला होता है जैसा कि ऋग्वेद मं० १ अ० ६ सू० ३० के मंत्र २२ में कहा है।

अतएव अपने समय को ऋषि प्रणीत ग्रन्थों और उत्तम उत्तम पुस्तकों के अवलोकन करने, समाचार पत्रों के पढ़ने और धार्मिक व्याख्यानों तथा सुशील वृद्ध जनों के तजुर्बे की बातें सुनने में लगाओ क्योंकि उन्हीं मनुष्यों की सदा विजय, राज्य, धन, प्रतिष्ठा, बड़ी अवस्था, बल और विद्या बढ़ती है जो अपने सत्यवादी सुशील बड़े पुरुषों के सत्सङ्ग में ही अपने समय को व्यतीत करते हैं जैसा यजु० अ० २६ मं० ४६ में उपदेश है।

इस लिये आरोग्यता और दीर्घ जीवी बनने, सुख से आयु व्यतीत करने तथा मातृभूमि की प्रतिष्ठा स्थिति की अभिलाषा है तो सम्यक रीति से ब्रह्मचर्य व्रत पूर्ण करने के लिये उसके नियमों के पालन में तत्पर हो

विद्वानों का सत्संग कर अपने समय को यथावत् रीति से उपयोग में ला मन से उसके पूर्ण करने का यत्न करो क्योंकि जब तक तुम्हारा मन से ध्यान न होगा तब तक माता पिता की शिक्षा यथावत् उपकार न कर सकेगी क्योंकि यदि तुम्हारा विवाह भी माता पिता ने २५ वर्ष से प्रथम न किया, परञ्च तुमने वीर्य को अन्य क्रियाओं के द्वारा स्खलित कर दिया तो क्या पूर्ण लाभ हो सकता है ? कदापि, नहीं अतः तुमको ही पूर्णतया ध्यान देना अभीष्ट है ।

बहुधा बालक बालापन से दुष्टों की संगति में पड़ कर नाना भांति से वीर्य का नाश मार देते हैं जिससे थोड़े ही दिनों में उनकी सूरत पीली होजाती है, आंखों में वह प्रकाश नहीं रहता, मांस ढीला पड़ जाता है, मन उदास रहता तथा स्मरण शक्ति न्यून होजातीहै और उनकी आंखों के चारों ओर कालापन-मुख में दुर्गन्ध आने लगती है तथा किसी रोग के न होने हुये दुर्बलता-मुख पर फुंसियां और कालापन बुद्धि की मन्दता कब्ज, बार २ दस्तजाना, छाती की कमजोरी, कफ़, खांसी, क्षय, संधियों का ढीलापन, अङ्गों का कांपना, हाथ पैरों में से आग निकलना, गर्मी सर्दी सहन न होना, पिंडिलियों में दर्द, छाती में गड्ढे, अंडकोषों का बढ़जाना, बिना गर्मी के ही पसीना आना, चटपटी चीजों में रुचि होना, गालों पर लाली न रहना, शरीर का बोझ कम होजाना, चेहरे पर प्रसन्नता का न रहना आदि चिन्ह दिखाई देते हैं और शरीर में वीर्य्य न रहने से ही डर-पोक, निरुत्साही, चिन्तित, आलसी, बातूनी, मलिन विचार वाले, कुसङ्ग प्रेमी बनजाते हैं दिन रात सिरदर्द और चक्करों की शिकायत रहती है प्रमेह बवासीर आदिरोग हो जाते हैं जिससे जन्म भर के आनन्दों पर पानी पड़ जाता है जैसा किसी कविने कहा है—

हे प्रिय भ्रात सुनो ममबात तो वीर्य खोय कहा तुम लह्यो ।
धन संचय देख घमन्ड करो तेहि चार दिना में खोय गमइयो ॥
रोग प्रमेह प्रचन्ड दवागिन सोन शरीर में दाग लगइयो ।
देत फिरो धन वैद्य हकीमन ऐसो कहा फिर वीरज पइयो ॥ —

और ऐसाही किसी महात्माने कहा है—

शुक्रं तस्माद्विशेषेण रक्षेन्नारोग्य मिच्छता ।
धर्मार्थ काममोक्षाणा मारोग्य मूल कारणम ॥
चित्तायत्तं नृणांशुक्रं शुक्रायत्त च जीवितम् ।
तस्माच्छुक्रं मनश्चैव रक्षणीयं प्रयत्नतः ॥

अतएव प्यारे सुजनों ! यदि आपको इस बूढ़े आर्यवर्त के सुधारने का ध्यान है तो अपने पुत्रों को इस रसायन का सेवन कराइये फिर देखिये कैसा आनन्द आता है। हे परमात्मन् ! हम सब भारत वासियों को दुःख भोगते बहुत दिन होगये अब आप हमको साहस का दान दीजिये जिससे हम सब ब्रह्मचर्य रूपी अमृत का पानकर कृतकृत्य हों।

विद्या ।

इसकी महिमा और आवश्यकता ।

प्यारे पाठकगणों और सुयोग्य महिलाओ ! जिससे सब प्राणियोंको आनन्द, आराम, चैन या सुख मिलता है उसको विद्या कहते हैं जैसा यजुर्वेद अ० ४० मं० १४ में लिखा है 'विद्ययाऽमृतमश्नुते'। श्वेता श्वेतो पनिषद् में कहा है जिसका कभी नाश न हो उसको विद्या कहते हैं। केनोपनिषद का वचन है कि विद्या से सब आनन्दों की प्राप्ति और सब पदार्थों की वृद्धि होती है जैसा कि "विद्ययाविन्दतेऽमृतम्" वैशेषिक दर्शनकार का कथन है कि अविद्यासे विपरीत वस्तु को विद्या कहते हैं जैसाकि "अविद्याच-विद्या लिंगम्" महर्षि पातंजलिने अपने योग सूत्रपाद २ में स्पष्ट उपदेश दिया है कि जिससे अनित्य को नित्य तथा नित्यको अनित्य, अशुद्ध को शुद्ध तथा शुद्ध को अशुद्ध दुःख को सुख तथा सुख को दुख, अनात्मा को आत्मा और आत्मा को अनात्मा अर्थात् जिससे विपरीत ज्ञान हो उसको अविद्या कहते हैं। यह अविद्या ही सम्पूर्ण क्लेशों की जड़ है तथा जिस प्रकार कुल्हाड़ी द्वारा जड़ सहित काटा हुआ वृक्ष फिर नहीं उगता वैसेही एक मात्र विद्यासे अविद्या का नाश हो जाता है इसी लिये चारों वेद आदि सत्ग्रन्थ एक स्वर होकर कह रहे हैं कि मनुष्यमात्र को ज्ञान की प्राप्ति एवं सांसारिक और पारलौकिक सुखों के लिये सबसे प्रथम ब्रह्मचर्य के साथ विद्या पढ़नी चाहिये। ऋग्वेद मं० २ सूक्त ६४ मं० २५ में लिखा है कि वेदवाणीके समान अन्य कोई भूषण नहीं अतः जो पुरुष विद्यारूपी आभूषण को धारण करते हैं वह सहस्रों प्रकार के भूषणों की शोभा को प्राप्त होते हैं जैसा कि—

त्वंसोम विपश्चितं पुनानो वाच मिष्यसि ।
इन्द्रो सहस्र भर्णसम् ॥

सूर्य के प्रताप और महत्व के आगे जिस प्रकार पृथिवी आदि लोकों की गणना स्वल्प है उसी भांति पूर्ण विद्या वाले पुरुष की महिमा के आगे मूर्ख का कुछ महत्व नहीं ।

आगे यह ही उपदेश दिया है कि विद्या और शारीरिक बलसे ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति होती है इसी के बलसे ईश्वर रचित जगत् के पदार्थों के गुण जाने जाते हैं विद्या ही उनके उपयोग में लाने का कारण है कोई भी मनुष्य विद्या और उसकी उत्तम शिक्षा पर चलने के बिना दीर्घायु और सभा में बोलने के योग्य नहीं होता उन्हीं के सुदिन होते हैं जो उत्तम विद्या और उत्तम शिक्षा का संग्रह कर पूर्ण विद्वान् बनते हैं वेही जन "जिस प्रकार प्राणीमात्र सूर्यके प्रकाश में अपने शुद्ध नेत्रों से मूर्तिमान् पदार्थों को देखते हैं उसी भांति निर्मल विज्ञान् और उत्तम विचार से सब आनन्दों से युक्त" अपनी आत्मा में जगदीश्वर को देख कर मोक्ष के सुख को प्राप्त करते हैं ।

यजुर्वेद में लिखा है कि जो जन प्रथम अवस्था में धर्मयुक्त ब्रह्मचर्यसे पूरी विद्या पढ़ते हैं उनके न कोई चोर न दाय भागी और न उनको भार होता है एक ओर सैकड़ों सेना और दूसरी ओर एक विद्या विजय के देने वाली है जिस प्रकार पृथिवी, मेघ और ईश्वर सब की रक्षा करते हैं उसी प्रकार विद्या और विद्वान् सबका पालन करते हैं ।

अथर्ववेद में कहा है कि विद्या का रस सांसारिक स्वादिष्ट, मिष्टान्न आदि रोचक पदार्थों से बहुत ही रसीला, लाभदायक और उपकारी है देखो इसके बल से निर्धन मनुष्य धनवान, दुर्बल बलवान, अविश्वासी विश्वासपात्र और कुरूप स्वरूपवान् बन जाता है । राजसभाओं और पंचायतों में बड़ाई होती है इसके उपरांत विद्वानों के घरों में सदा आनन्दों की वर्षा होती है क्योंकि इससे कुमति जाती है सुमति आती है । विद्या बल से आत्मदोष जान पड़ते हैं उनका निवारण भी विद्या से होता है इसी से तीव्र बुद्धि होती है जिससे विचार करने की शक्ति बढ़ती है फिर जीवन सुफल होता है इसके बलसे विद्वान् लोग नाना प्रकार के आविष्कार करके पुष्कल धन और भूमंडल पर नाम कर जाते हैं इसी के प्रताप से नाना प्रकार की हिंसाओं से बच आनन्द भोगते हैं इससे मिथ्या ज्ञान का नाश

और तत्वज्ञान का प्रकाश होता है। इसी से धर्म, उपासना और ईश्वर का यथार्थ बोध होता है। फिर लिखा है कि विद्वान् पुरुष ही ज्ञानियों की सभा में शोभा पाते हैं विद्वान् जितेन्द्रिय पुरुष अपने अपूर्व बल और तीव्र बुद्धि से संसार में चक्रवर्ती राज्य कर यश को प्राप्त करता है।

भर्तृहरि जी ने कहा है कि सुन्दरता, यश, सुख, बल, धन और सत्कार की प्राप्ति विद्या से ही होती हैं यही गुप्त धन और विदेश में बन्धु के समान है।

विद्या नामनरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्न गुप्तं धनम्।
विद्या भोगकरीयशः सुखकरी विद्यागुरुणांगुरुः॥
विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्यापरं दैवतं।
विद्या राज सुपूज्यनेनहिधनं विद्या विहीनः पशुः॥

भविष्य पुराण में लिखा है कि विद्या कामधेनु के समान फल देने वाली है यह एक प्रकारका गुप्त धन है। भोज प्रबन्धकार कहते हैं कि माता संतान का अल्पावस्था तक ही पोषण करती है परन्तु विद्यारूपी माता समस्त आयु पालन करती रहती है और जिस प्रकार पिता हित का उपदेश देता है वैसे ही विद्यारूपी पिता सम्पूर्ण आयु धर्मोपदेश कर सन्तानों को कुमार्ग से बचाता है तथा जिस प्रकार पतिव्रता स्त्री अपने पति को सब प्रकार के दुःखों से बचाकर आनन्द देती है वैसे ही विद्यारूपी सहधर्मिणी नाना प्रकार के क्लेशों से बचाकर सुखी बनाती है। हितोपदेश में विष्णुशर्मा ने विद्या को अक्षय धन कहा है। विदुरमहाराज ने तृप्ति का मूल कारण तथा चाणक्य जी ने सर्वत्र यश प्राप्ति का मुख्य साधन विद्या को ही माना है इसी से नम्रता, नम्रता से योग्यता, योग्यता से धन, धन से धर्म और धर्म से सुख प्राप्त होता है। महाभारत शांतिपर्व में भीष्मपितामह ने कहा है कि विद्या के समान संसार में कोई नेत्र नहीं। शुक्रनीति में लिखा है कि विद्यारूपी धन सब धनों में श्रेष्ठ है क्योंकि यह देने से न्यून नहीं होती किन्तु बढ़ती है। जो विद्या का भले प्रकार उपयोग करते हैं वेही धनवान् होते हैं। ऋग्वेद में कहा है कि जो कन्या ब्रह्मचर्य के साथ समस्त विद्याओं का अभ्यास करती है वह इस संसार में प्रशंसित हो नाना प्रकार के सुखों को भोग करती हुई जन्मांतर में उत्तम सुख को प्राप्त होती है और मं० ३ अ० १ सूक्त ३ मं० ७ में लिखा है कि जो मनुष्य अपनी संतानों को योग्य आहार विहार से अच्छे प्रकार पोषण कर उनको विद्या और

उत्तम शिक्षा से योग्य बनाते हैं उनकी वही संतान सदैव विद्वानों के सङ्गसे धर्म मार्ग में चलती हुई बुद्धिमान बनती है।

मनुमहाराज ने अपनी स्मृति में लिखा है कि विद्या से सब सुखों की प्राप्ति होती है अतः प्राचीन समय में तपकी उन्नति तथा शरीर की पवित्रता के अर्थ-ऋषियों ब्राह्मणों और गृहस्थों ने विद्या को अच्छे प्रकार प्राप्त किया था जैसा कि—

तपो विद्या च विप्रस्य निःश्रेयस्करं परम्।
तपसा किल्विषंहंति विद्ययाऽमृत मश्नुते॥
ऋषिभिर्ब्राह्मणैश्चैवागृस्थैरेव सेविता।
विद्यातपो विवृद्धयर्थं शरीरस्य च शुद्धये॥

और अ० २ श्लोक ३५ में कहा है कि धन, बन्धु, अवस्था उत्तम कर्म और विद्या-यह पांच मान्य के स्थान बतलाये हैं उनमें सब से अधिक प्रतिष्ठा करने की आज्ञा विद्वान् के लिये दी है।

इस हेतु जिन राजा महाराजाओं ने विद्वानों का आदर सत्कार किया उनके राज्य में भी आनंद रहा और उनके नाम भी आज तक चले आते हैं ऐसा कौन मनुष्य है जो विक्रम भोज को नहीं जानता।

इसी हेतु राजा को वेदों में उपदेश है कि यदि तुम प्रजा को पुत्र के समान पालना चाहते हो, भ्राता के समान हितैषी बनना चाहते हो, पति के समान रक्षा और माता के समान कल्याण करना चाहते हो तो उनको पूर्ण रीतिसे शिक्षा दो-इसी में तुम्हारी भी भलाई है अर्थात् राजाको प्रजा से और प्रजाको राजासे सुख की प्राप्ति का प्रबल उपाय विद्या ही है बरन् जिसके राज्य में प्रजा मूर्ख होगी उस राज्य में नाना प्रकार के उत्पात बने रहते हैं और राजा को कभी चैन नहीं मिलता। अतः जो प्रतापी राजा स्वार्थ को छोड़ विद्या दानादि में धन व्यय करता है वह विद्या बल से धन बढ़ाता हुआ संसार को बहुत लाभ पहुँचाता है राजा का यही अक्षय कोष है राजा जितना जितना विद्या का दान करता है उतना २ उसका मान अधिक होता है। वास्तव में शत्रुओं से विजय और चक्रवर्ति राज्य की प्राप्ति का साधन विद्या ही है यदि मनुष्य का श्रेष्ठ रूप सुन्दर यौवन तथा उत्तम कुल में जन्म भी हो परंतु विद्या के बिना उसकी शोभा ढाक के फूल के समान नहीं होती जैसा कि चाणक्य ने कहा है—

रूपयौवन सम्पन्ना विशाल कुलसम्भवाः।
विद्याहीन न शोभन्ते निर्गन्धाश्चकिंशुकाः॥

वेद का जानने वाला यदि दरिद्री हो तौ भी उस मूर्ख से जो बहुत रत्नों से युक्त हो श्रेष्ठ है उत्तम नेत्र वाली स्त्री के वस्त्र पहरने पर भी उस नेत्रहीन स्त्री से जो नाना प्रकार के सुवर्ण के आभूषण धारण किये हो शोभावान होती है।

वरंदरिद्री यदि वेदपारगो न धायिमूर्खो बहुरत्न संयुतः।
सुलोचनाजीर्ण पटोऽपिशोभते न नेत्रहीना कनकैरलंकृता॥

विद्या के बल से ही सत्पुरुषों के नाम युगानुयुग तक लिये जाते हैं। देखो विश्वकर्मा अथवा मयदैत्य ने शिल्प विद्या, अश्वनीकुमार तथा धन्वंतिरि ने वैद्यक, पितामह ने ज्योतिष, जैमिन ने मीमांसा, कणाद ने वैशेषिक, गौतम ने तर्क, पातंजलि ने योग, कपिल ने सांख्य तथा वेदान्त को व्यासजी ने बनाया जिनको मरे बहुत काल हो चुका परंतु इनके नाम आज तक प्रशंसा के साथ लिये जाते हैं और जो कोई इनको पढ़ते हैं वे विद्वान् हो सर्वत्र प्रतिष्ठा और राज्य सम्मान से भी अधिक मान को पाते हैं। जैसा कि चाणक्य मुनि का वचन है।

विद्वत्वं च नृपत्वं च नैवतुल्यं कदाचन।
स्वदेशेपूज्यते राजा विद्वान्सर्वत्र पूज्यते॥

इसके उपरांत पशु पक्षी और मनुष्य आदि योनियों में सब से श्रेष्ठ योनी स्त्री और पुरुष की मानी जाती है वेदों में इस चोले का महत्वं सब से अधिक बताया है क्योंकि और योनियां भोग योनी हैं पुरुष कर्तव्य योनी है देखिये चाणक्य नीतिकार अपनी नीति में लिखते हैं—

आहारनिद्राभयमैथुनानि सामानि चैतानिनृणांपशू नाम।
ज्ञानं नराणामधिको विशेषोज्ञानेनहीना पशुभिः समानाः॥

भोजन करना, पानी पीना, निद्रा और भय, मैथुन यह सब पशु और पक्षियों में एक समान हैं यदि कोई विशेषता है तौ यही है कि मनुष्यों में ज्ञान और अन्यों में नहीं इसी हेतु उन्हीं महात्मा ने कहा है कि तारों का भूषण चन्द्रमा, नारियों का भूषण पति, पृथ्वी का भूषण राजा और सब का भूषण विद्या है जैसाकि—

नक्षत्रभूषणं चन्द्रो नारीणांभूषणं पतिः।
पृथिवी भूषणं राजा विद्यासर्वस्यभूषणम्॥

वेदों में भी यह उपदेश है कि जो पुरुष व स्त्री कायिक अर्थात् शारीरक, वाचिक अर्थात् वाणी और मानसिक सुखों को चाहे तो बालकपन जवानी और बुढ़ापे में विद्या का प्रचार रूपी व्यवहार करे जैसा कि—

शुचिपावको अद्भुतोमध्वायज्ञ मिमिक्षित।
नरासंशिरादिवो देवोदिवेषुयज्ञियः॥

जिस प्रकार सूर्य अन्धकार का नाश, दिन की उत्पत्ति और जलकी वृष्टि कर सम्पूर्ण संसार को सुखी करता है उसी भांति विद्वान् लोग विद्या का प्रचार और अविद्या का नाशकर सबको आनन्दित करते हैं अब आप इस स्थान पर विचार करें कि जिस स्त्री और पुरुष ने बालकपन में विद्या ही नहीं पढ़ी फिर तरुणाई और बुढ़ापे में विद्या का प्रचार क्योंकर कर सकते हैं और बिना विद्या प्रचार के उपरोक्त तीनों प्रकार के सुखकी प्राप्ति कैसे हो सकती है। इसके उपरांत मनुष्य प्रथम ब्रह्मचर्य आश्रम में रह कर विद्या पढ़ बालपन का ऋण युवावस्था में गृहस्थाश्रम में पहुंच धन और संतान उत्पन्न कर तरुणाई का ऋण तथा वानप्रस्थ और संन्यास लेकर वृद्धापन का ऋण यह चार ऋण हैं इसी के लिये वेदों में आज्ञा है कि इन चारों ऋणों को चुका कर पवित्र हो मनुष्य योनि के आनन्द को प्राप्त करे। अब जब हम ब्रह्मचर्य धारण कर विद्या ही नहीं पढ़ते अर्थात् बालपन का ही ऋण नहीं चुकाते तब अन्य ऋणों का भार कैसे उतार सकते हैं द्विजत्व अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र का मूल कारण विद्या ही है जैसा कि ऋग्वेद अ० २१ सू० १५० मं० ५ में कहा है कि मनुष्यों का एक जन्म माता पिता की विद्या और शिक्षा से तथा दूसरा जन्म आचार्य की शिक्षासे होता है उसही को द्विज कहते हैं अर्थात् विद्या और आचरणों की श्रेष्ठता से ही वर्णों की व्यवस्था होती है इस के उपरांत विद्या सकल आपदाओंको टालती है विद्यारूपी धन को चोर चुरा नहीं सकता, भाई बन्धु सहोदर बांट नहीं सकते, अग्नि उसको जला नहीं सकती, मनुष्य को विपत्ति तथा दरिद्र की दशा में विद्याही पूरा साथ देती है, जब कि भाई, बन्धु, स्त्री, मित्र उसको त्याग देते हैं। प्यारे सभ्यगणों और योग्य विदुषियों यह वह बाग नहीं जिस को पतझड़ सता सके, यह वह दर्पण नहीं जिस को जङ्ग चढ़ कर जाय, यह वह प्रकाश नहीं जो सूर्य के उदय होते ही छिप जाय, वरन् विद्या वह अंजन है जिसके लगाते ही कपाट के नेत्र खुल जाते हैं, यह वह जड़ाऊ आभूषण है जिस के शृङ्गार के देखने की अभिलाषा होती है, यह वह अमृत रूपी जल है जिसको पान कर मनुष्य मनुष्यता के पद पर पहुँच अमर हो जाता है, यह वह बल है जिसके सम्मुख सिंह और सर्प से दुष्ट जीव आधीन हो जाते हैं, यह वह

पदार्थ है जिसका प्रकाश शरीर के साथ रहता है, यह वह अङ्ग है जिस पर ध्यान रखने की आवश्यकता नहीं।

पाठको अब तो आप को विद्या की महिमा प्रकट हो गई। कतिपय विद्वानों ने १४ विद्या और उनकी ६४ कलायें लिखी हैं परन्तु वेदों का कथन है कि विद्यायें अनन्त हैं और जिस तरह पक्षी अपने २ बल के अनुसार आकाश में उड़ उसका अन्त न पा अपने निवास स्थानपर लौट आते हैं, जिस तरह हिरन सरीखे वेगवाले पशु बनों का अंत न पा थक जाते हैं, उसी तरह ईश्वर रचित विद्याओं का पार बड़े २ विद्वान और योगी न पा सके फिर अल्पबुद्धि वाले मनुष्यों की क्या गणना! केवल मानवीय शरीर का मुख्य उद्देश्य यही है कि यथाशक्ति और यथावकाश विद्याभ्यास कर अनेक सुखों का भोग करे तथा वेही माता, पिता, आचार्य, गुरु, और सम्बन्धी धन्य कहे गये हैं जो अपने मन को विद्या विलास में तत्पर कर अपनी संतानों को उत्तम विद्या, शिक्षा तथा श्रेष्ठ गुण, कर्म और स्वभाव से उनकी आत्माओं को सुभूषित कर सत्य भाषण आदि नियम पालन कराने और दानादि वेदोक्त कर्मों में लगा परोपकार में अपने जीवन को व्यतीत करते हैं जैसा कि—

> विद्या विलास मनसो धृत शील शिक्षा।
> सत्य व्रतारहित मानमलापहाराः॥
> संसार दुःख दलनेन सुभूषिताये।
> धन्यानरा विहितकर्म परोपकाराः॥

इस लिये ऋग्वेद अ० ३ में लिखा है कि मनुष्यों को ऐसी इच्छा करनी चाहिए जिससे विद्या की वृद्धि हो।

---

* गुरु अर्थात् आचार्य *

प्रिय सज्जन पुरुषो और योग्य महिलाओ!

जब विद्या का महत्व इतना महान् है वेदों में उसकी महिमा गाई गई है। ऋषि, मुनि, महात्मा, पंडित और तत्ववेत्ता आदि सभी जन विद्या को उत्तम रत्न मान रहे हैं यहां तक कि बिना विद्या के इस लोक और परलोक के कार्यों को कोई योग्यता से नहीं कर सकता। अतः उसके शिक्षक अ-

र्थात् गुरु या आचार्य महान् पुरुष ही होना चाहियें। भगवान् वेद उपदेश दे रहे हैं कि अध्यापकों का संसार में सब से ऊँचा पद है इस लिये शिक्षा करने वाले स्त्री पुरुष विद्या वृद्ध और तपो वृद्ध हों जिन्होंने स्वयं ब्रह्मचर्य के साथ गुरु के समीप रह कर शब्द और अर्थ सम्बन्ध के साथ वेदों को पढ़कर प्रसिद्धि को प्राप्त किया हो तथा जो नदी के समान निर्मल, पवित्र, शांतचित्त, बिजली के तुल्य तीव्र बुद्धि वाले हों उन्हीं की शिक्षा और उपदेश से शिष्य जन सूर्य के समान प्रकाशित होते हैं।

ऋग्वेद सूक्त ६२ अ० ५ मं० ३ में लिखा है कि जिन्होंने प्रत्यक्षादि प्रमाणों द्वारा पृथिवी से लेकर परमेश्वर पर्यंत पदार्थों का साक्षात्कार कर सत्य विद्या के आचरण की वृद्धि में धर्मपूर्वक प्रवृत्ति की है वे ही गुरु अध्यापक बनाने तथा सत्कार करने योग्य हैं। मं० १ सू० ८६ अ० १४ में कहा है कि सम्पूर्ण विद्याओं के ज्ञाता, शुभ लक्षणों से युक्त, दृढ़ांग, पुरुषार्थी एवं धार्मिक गुरुओं से ही विद्या पढ़नी चाहिए। अ० १७ मं० १ सूक्त ११७ में उपदेश है कि सुयोग्य पुरुष एवं स्त्रियां पुत्र तथा पुत्रियों को ब्रह्मचर्य व्रत पूर्वक नियमानुसार उत्तम जीवन बना उनके दूसरे विद्या जन्म को सिद्ध कर समय पर उनके माता पिता को दे देवे। यजु० अ० १६ मं० २ में लिखा है कि गुरु शिष्यों को धर्म तथा राजनीति की शिक्षा दे पापों से बचा कर कल्याणरूपी कर्मों के आचरण सिखलावें। अ० ७ मं० १४ में कहा है कि जो पुरुष कुमार और कुमारियों को वेद और उसके अङ्गों की शिक्षा देकर उनके शरीर को पुष्ट तथा इन्द्रिय अन्तःकरण और मन को शुद्ध कर सके उनको आचार्य वा शिक्षक नियत करे। आगे यह भी लिखा है कि अग्नि और सूर्य के समान विद्वानों से विद्या पढ़नी चाहिए।

अग्निर्ज्योतिषाज्योतिष्मान् रुक्मोवर्चसावर्चस्वान्।
सहस्रदा असि सहस्रापित्वा॥

अथर्वकांड १९ में लिखा है कि वृद्ध, अनुभवी, उत्साही एवं उत्तम आचार्यसे नम्रता पूर्वक शिक्षा ग्रहणकर अपने ऐश्वर्य को बढ़ाना योग्य है।

शुक्रनीति अध्याय ४ में लिखा है जो मनुष्य मंत्र और अनुष्ठान में सम्पन्न वेदवित, कर्म में तत्पर, जितेन्द्रिय, लोभ, मोह से रहित, वेद के व्याकरण आदि छः अङ्गों और धनुर्विद्या तथा धर्म का जानने वाला हो जिसके क्रोध के भय से राजा भी धर्मनीति में तत्पर होजावे उसी को पुरोहित व आचार्य बनाना योग्य है। शिवपुराण ज्ञानसंहिता अध्याय १६ में

लिखा है कि शास्त्र की प्राप्ति के लिये गुरु किये जाते हैं। इसके अतिरिक्त गुरु शब्द के अर्थ पर विचार किया जाय तो स्पष्ट प्रकट होता है कि अंधकार के दूर करने वाले अर्थात् अज्ञान के नाश करने वाले को गुरु कहते हैं। लिंगपुराण उत्तरार्द्ध अ० २० में लिखा है कि गुरु मान्य, पूज्य और सदा शिव है। वह गुरु शास्त्रवेत्ता, तपस्वी, बुद्धिमान, लोकाचार का जानने वाला, लोक प्रिय, तत्ववेत्ता, गुणसम्पन्न, मोक्ष देने में सामर्थ, सब क्रियाओं में कुशल, आत्मज्ञानी हो क्योंकि ज्ञानी गुरु ही आप अपना भला कर शिष्य का बेड़ा पार कर सकता है तथा अज्ञानी, पशु के समान गुरु से मनुष्यों को कुछ लाभ नहीं होता जैसे एक शिला दूसरी शिला को नदी पार नहीं कर सकती जैसा कि श्रीमद्भागवत स्कन्द ११ अ० ३ श्लोक २१ में लिखा है।

तस्माद्गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेयमुत्तमम्।
शाब्देमरीचेविष्णाहं ब्रह्मण्युपशपाश्रमम् ॥

शुक्रनीति अध्याय १ में लिखा है "शास्त्राय गुरुसंयोगः" अर्थात् विद्या पढ़ने के लिये गुरु किये जाते हैं ऐसा ही उपनिषदों में लिखा है।

त्रयो धर्मस्कन्धा यज्ञाध्ययनदानमिति प्रथमस्तप एव।
द्वितीयो ब्रह्मचर्य्या चार्यकुलवासी तृतीयोऽत्यन्तमात्मा ॥
नमाचार्यकुले अवसादयत्सर्व एते पुण्यलोका भवन्ति।
ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति। छान्दोग्योपनिषद् अ०खं० ॥२३॥

धर्म के तीन स्कन्ध अर्थात् अंश हैं—एक यज्ञ अर्थात् पदार्थों की संगति करण (क्रिया कौशल विद्वानों का सत्कार अग्निहोत्रादि), दूसरा ब्रह्मचर्यव्रत को धारण करके आचार्य के समीप निवास करना, तृतीय क्लेशों को सहन करके बहुत काल तक सर्व विद्या सम्पन्न होना। श्रीमद्भागवत पञ्चम स्कन्द के अध्याय ५ में लिखा है कि वह गुरु ही नहीं जो मृत्यु से बचने का उपाय न बतावे।

गुरुर्नसस्यात्स्वजनोन सस्यात्पितानसस्याज्जननीनसस्यात्।
दैवं न तस्यान्नपतिश्च सस्यान् न मोचयेद्यस्समुपैतमृत्युम् ॥

इस कथन से प्रकट होता है कि आत्मिक ज्ञान के लिये गुरु किये जाते हैं क्योंकि बिना उसके मृत्यु के क्लेश से कोई नहीं बचा सकता। पद्मपुराण तृतीय सर्गखण्ड अध्याय ५२ में लिखा है कि ज्ञान वा सबका साधन भी गुरु है गुरु से परे विचित्र भूषण कोई नहीं। लिंग पुराण

अध्याय ८६ श्लोक १०१ में लिखा है कि गुरुकी ही कृपा से निर्मल ज्ञान की प्राप्ति होती है। यथा इत्थं प्रसन्नं निशान्तं गुरुसम्पर्कजं ध्रुवम् ॥

शुक्रनीति में लिखा है कि—'शिक्षणो गुरुः' अर्थात् शिक्षा पाने के अर्थ गुरु किये जाते हैं। श्रीमद्भागवत स्कन्ध ११ अ० ९ में दत्तात्रेय ने कहा है कि भ्रम की निवृत्ति के लिये गुरु किये जाते हैं। शंखस्मृति अ० ३ श्लोक २ में लिखा है कि गुरु वही है जो वेदों को पढ़ावे ऐसा ही लिङ्ग-पुराण अ० २९ में लिखा है कि श्रद्धा पूर्वक गुरुसे वेद पढ़े, फिर विचार करे और धर्मों को जाने। हारीतस्मृति अ० ३ मं० १ में लिखा है—

उपनीतो माणवको वसेत गुरुकुलेषु च।

शिष्य जनेऊ कराकर गुरुके पास जाकर रहे। ऐसा ही संवर्त स्मृति अ० १ श्लोक ५ वा व्यास स्मृति अ० १ श्लोक १६ में भी लिखा है—

उपनीतो द्विजो नित्यं गुरवे हितमाचरेत्। संवर्त०।

उपनीतो गुरुकुले वसेन्नित्यं समाहितः। व्यास०।

उपनीयतु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद्द्विजः।

सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते। मनु अ० २।१४०॥

आचार्य शिष्यों को उपनयन कराकर वेदादि विद्याओं को पढ़ावे तथा सदाचार भी सिखलावै। ऐसा ही श्रीमद्भागवत स्कन्ध ११ अ० ११। १७ में कहा है।

इसके उपरान्त जाबाल ऋषि तथा यास्कमुनि का भी यही सिद्धान्त है विष्णु और लिंग पुराण में लिखा है राजा जनक महाराज ने कहा है कि गुरु के उपदेश के बिना ज्ञान और ज्ञान बिना मोक्ष नहीं होती इससे गुरु द्वारा ज्ञान प्राप्त करना ही गुरु करने का मुख्य प्रयोजन है। गीता के अ० ४ श्लोक ३४ में श्रीकृष्ण महाराज ने अर्जुन से कहा है कि मुक्तिकी रीति तत्वज्ञान जानने वाले गुरुके द्वारा प्राप्त होती है व्यासस्मृति अ० १ श्लोक १४ में लिखा है कि गुरु तीनों वर्णों के ब्रह्मचारियों को होमकराकर गायत्री का उपदेश करे मार्कण्डेय पुराण अ० २८ में मंदालसा ने अपने पुत्र से कहा कि यज्ञोपवीत के पश्चात् ब्रह्मचारी गुरु के समीप जाकर एक वा दो व चारों वेद पढ़कर गुरुदक्षिणा दे गृह से जाने की इच्छा करे और शुक्र नीति अध्याय १ श्लोक ८ में लिखा है कि गुरु वही है जो विद्या अभ्यास कराकर शिष्यका सुधार करे अथर्व कांड१ सूक्त २ में कहाहै जिस

प्रकार वैद्य भीतरी और बाहरी दोनों प्रकार के रोगों को दूर करता है उसी भांति आचारी विद्या प्रकाश से ब्रह्मचारी के अज्ञान को दूर करे।

मनुस्मृति अ० २ श्लोक ५८ में मनुमहाराज ने स्पष्ट आज्ञा दी है कि गुरुजन यज्ञोपवीत कराकर संध्योपासन की शिक्षा देकर आचार सिखलावें फिर अध्याय ३ श्लोक १२ में लिखा है कि ब्रह्मचारी गुरु से अखंड ब्रह्मचर्य्य रहकर तीन वेद अथवा दो व एक वेद पढ़कर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करे। इनके उपरांत याज्ञवल्क्य स्मृति अध्याय १ श्लोक ५१, विष्णु स्मृति अ० १ श्लोक १५, संवर्त स्मृति अ० १ श्लोक ३४, शांखस्मृति अ० ३, श्लोक १५ व्यासस्मृति अ० १ श्लोक २४ दक्षस्मृति अ० १ श्लोक ७, ८, हारीतस्मृति अ० ३ श्लोक १२, मार्कण्डेयपुराण अ० २८ श्लोक १४, १५, विष्णुपुराण अ० ३ श्लोक ६, भविष्यपुराण अ० ३ अग्निपुराण अ० १५३ श्लोक १३, श्रीमद्भागवत् स्कंद ११ श्लोक १८ में भी ऐसा ही लिखा है।

प्रिय सज्जन पुरुषों! इन्हीं उपरोक्त आज्ञाओंके अनुकूल प्राचीनकाल में राजा और प्रजा के बालक बालकायें यज्ञोपवीत कराकर गुरु जनों के समीप विद्या पढ़ने जाया करते थे देखो ब्रह्माजीने अग्नि वायु आदि ऋषियों से वेदों का अध्ययन किया था तथा ब्रह्माजी के निकट जाकर देव मनुष्य तथा असुरों ने विद्याऽभ्यास किया था भृगुजी ने अपने पिता वरुण के समीप, पिप्पलाद ऋषि के पुत्र अङ्गिरा और सनत्कुमार दोनों ने अथर्व ऋषि के पास, सनत्कुमार के पास नारदजी महाराज ने, उद्दालक ऋषि के निकट याज्ञवल्क्य जीने तथा याज्ञवल्क्य जी के समीप रह कर मधुक जी ने, मधुक जी से चूल ने, महात्मा परशुराम जी ने कश्यप जी महाराज के समीप, ऐसे ही द्रोणाचार्य ने अग्निवेश मुनिके पास जाकर ब्रह्मचर्य सहित गुरु सेवा कर विद्या पढ़ी थी। सुमन्त, वैशम्पायन, जैमिन तथा पलको व्यासजी ने पढ़ाया था, ब्रह्मा ने प्रजापति को, प्रजापति ने मनुको, मनु ने प्रजाको पढ़ाया था, राजा जनक ने पंचशिख नामक महात्मा तथा याज्ञवल्क्य जी से पढ़ा था, वसिष्ठजी महाराज ने राजा दशरथ और रामचन्द्र जी को पढ़ाया था, विश्वामित्र से भी श्रीरामचन्द्रजी ने पढ़ा था श्रीकृष्ण महाराज ने उज्जैन नगर में निवास कर सन्दीपन नाम पण्डित से पठन किया था, इसी भांति पंजाब के राजा द्रुपद ने अग्निवेश ऋषि के पास

निवास कर पढ़ा था, भीष्मपितामह ने द्रोणाचार्य की परीक्षा लेकर कौरव और पांडवोंको पढ़ाया था तथा गुरुकुलमें रहने के लिये उन्होंने सब प्रकार का प्रबन्ध किया था, इसी भांति सर्वत्र आर्य शिरोमणों ने गुरुकुल में रह कर विद्याध्ययन किया था।

अथर्ववेद में लिखा है गुरु ब्रह्मचारियों को विद्या समाप्ति तक अपने पास रखे और समावर्तन के समय ऐसा उपदेश करे जिससे परिश्रम के साथ आत्म त्योग अर्थात् आपा छोड़कर संसार का उपकार करें। इसी प्रकार यह भी उपदेश है कि संतानों को ऐसी शिक्षा देवे जिससे वे सत्य नियमों पर चलकर विद्वानों के अगुआ बनें तथा ब्रह्मचर्य रूपी तपके द्वारा शारीरिक—सामाजिक और आत्मिकोन्नति कर सकें।

इसके अतिरिक्त वेदों में अन्यत्र लिखा है कि गुरु विद्यार्थी को समझावे कि हे ब्रह्मचारी आज तेरी विद्या पढ़ने का व्रत ब्रह्मचर्य्य के साथ समाप्त होना है तो भीइस बातका स्मर्ण रखना कि यह शरीर दश इन्द्रियों का समूह है इसकी दश शक्तियां जो उसकी विभूती हैं तप करने से उन्नति को प्राप्त होती हैं इसलिये तुम कभी विषय लोलुप न होना। काम, क्रोध, लोभ—मोह से यथावत काम लेना—देख मैंने जो विद्या का अक्षय कोष तुझको दिया है उसको धर्म की उन्नति में व्यय करना। इस अनुपम रत्न को जुआ आदि खोटे कामों के करने में खर्च न करना सदा वेदोक्त मार्ग पर चल उदाहरण बन श्रेष्ठ जीवन के साथ गृहस्थाश्रमको स्वर्गधाम बना फिर नियम के अनुसार संसार के उपकार के लिये वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम को धारण कर और पूर्व ऋषियों की भांति वेद का मनन कर संसार के सब मनुष्यों के हित के लिये वेद विद्या का प्रचार करना। देख इसमें सब विद्याओं के अंकुर मौजूद हैं उनके तत्वज्ञान का अनुभव कर प्राणीमात्र को उन पर चलाना क्योंकि बिना ज्ञान के मनुष्य तनक्षीण मन मलीन और धनहीन होकर महाकष्टोंको पाते हैं। इसके उपरांत तुम कभी किसी दशा में भी ईश्वर को एक स्थानी न समझना क्योंकि जो ऐसा समझते हैं वे श्वास प्रश्वास से हीन हो निर्बल हो जाते तथा शरीर और आत्मा से उत्साह रहित होकर संसार में अपकीर्ति पाते हैं। इसलिये सच्चे प्रेम से भगवानके भक्त बन वेदानुकूल आचरण करते हुए देशका कल्याण कर यशके पात्र बनना। प्रभुकी आज्ञा पालन से ही आनंद को प्राप्त हो स-

कोगे इस प्रकार के अनेकों उपदेश देश, काल और समय को देख कर किया करते थे अभी थोड़ा ही समय व्यतीत हुआ है कि महात्मा स्वामी विरजानन्द सरस्वती जी ने विद्या समाप्ति के दिन प्राचीन रीति के अनुसार स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी से अपनी भेंट मांगी दयानन्दजी ने नम्रभावसे निवेदन किया मैं अपनी सामर्थ्य के अनुसार भेंट देने को उपस्थित हूँ उस समय उस त्याग मूर्ति ने देशकी आवश्यकता पर विचार कर कहा कि हे शिष्य तू शास्त्रों का उद्धार, मतमन्त्रों की अविद्या को मिटा संसारमें वैदिक धर्म का प्रचार कर भूमण्डल का भला कर। प्रिय सज्जनों स्वामी दयानन्द सरस्वती ने हर्ष पूर्वक उपरोक्त आज्ञा को स्वीकार कर अपने जीवन पर्यंत उसका तन, मन, से निर्वाह कर सारे संसार को चैतन्य कर दिया।

प्यारे पाठक गणों जिस समय में पूर्ण विद्वान् अनेकान् काल कौशलों के ज्ञाता, धर्मकी मूर्ति, परोपकारी दूसरों के लिये तन मन न्यौछावर करने वाले जितेन्द्रिय, शूर, वानप्रस्थी नगरों गांवों और नदियों के निकट उपवनों में अपने २ आश्रमों पर दस दस बीस बीस ब्रह्मचारियों को विद्या और सदाचार की शिक्षा दिया करते थे और ब्रह्मचारीगण भिक्षाके अर्थ नगर-गांव और बास्तयों में आ, भवतिभिक्षादेहि, आदि कह कर भिक्षा मांगते थे। उस समय सदाचारी गृहस्थ अपना परम धर्म समझ अपने पुत्रों के तुल्य उन ब्रह्मचारियों को जान प्रथम से ही बुद्धि, बल और स्वास्थ के हितकारी उत्तम २ भोजन, साग, दूध आदि पदार्थ तय्यार कर नियत समय पर उनको समर्पण कर अपने को कृतार्थ मानते थे। ब्रह्मचारी कुमार और कुमारियां आनन्द पूर्वक खुली वायु में रहकर साधारण वस्त्र आदि के साथ नियम पूर्वक वेद आदि विद्याओं का अध्ययन किया करते थे। उस समय सम्पूर्ण देशों में स्वाध्यायव्रती, दृढ़ व्रतधारी, सत्यशील परोपकारी स्त्री पुरुषों से संसार सुशोभित था और विशेष कर भारत का यश चहूंओर फैल रहा था। परन्तु प्यारे सुजनों जब से इस उत्तम परिपाटी को त्यागा भारत चौपट हो गया उसके शिर का मुकुट अन्य देशों के नरेशों के शिर पर चला गया क्योंकि वर्तमान समय के निक्षर गुरुओं ने विवाह करा ब्रह्मचर्य्य व्रत और विद्या पढ़ाने की परिपाटी को दूर कर दिया जब स्त्री पुरुष विद्या ही नहीं पढ़ते फिर संन्यास कौन धारण करे और अगर वर्तमान समय की भांति गेरुए कपड़े रंग भी लें तो वह बिना

विद्या के आप ही शांतिवान, विचारवान नहीं हुए फिर ब्रह्मचारियों को क्योंकर अपने २ आश्रमों पर विद्या और शिक्षा देकर संसार का उपकार करने वाला बना सकते हैं। इन निरक्षर साधुओं ने देश २ नगर २ गांव२ फिर-नशों का बाज़ार गर्म कर दिया, बल का नाश मार, वेद और ईश्वर की आज्ञाओं पर पानी फेर दिया जिस के कारण गृहस्थाश्रम स्वर्गधाम से नर्क धाम बन गया और संसार की काया पलट गई।। वर्ण और आश्रमों का उलट फेर हो गया नाना प्रकार के अज्ञानी एवं सदाचार से भ्रष्ट गुरु वा आचार्य बनाने लगे। सनातनधर्म के ग्रन्थों में ऐसे गुरुओं के समीप तक जाने की आज्ञा नहीं। देखिये महाभारत में विदुर महाराज से कहा है कि बिना शिक्षा करने वाले गुरु तथा पुरोहितों से मनुष्यों को सम्बन्ध तक न रखना चाहिये जैसा कि—

षडिमान पुरुषो जह्याद्भिन्नां नावमिवार्णवे।
अप्रवक्तारमाचार्य मनधीयानमृत्विजम्॥

चाणक्य ने राजनीति में लिखा है कि 'विद्याहीनंगुरुं त्यजेत्' अर्थात् विद्याहीन गुरु को छोड़ देना चाहिये। इसके अतिरिक्त शुक्रनीति अध्याय४ श्लोक ६२ में स्पष्ट कहा है कि जो पढ़ा हुआ न हो वह गुरु नहीं होसक्ता जैसा—

योऽधीतविद्यः सकलः ससर्वेषां गुरुर्भवेत्।
न च जात्या नाधीतो यो गुरुर्भवितुमर्हति॥

इस के उपरान्त अयोध्याकाण्ड सर्ग २० श्लोक १३ में लिखा है कि राजा को योग्य है कि जो गुरु कार्य वा अकार्य को न जाने, कुमार्ग में चले कामादि में फँस निंदित कर्म करने लगे तो उसको भी दण्ड देवे।

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः।
उत्पथं प्रतिपन्नस्य कार्यं भवति शासनम्॥

ऐसा ही शुक्रनीति अ० ४ श्लोक ४७ में लिखा है।

देखो य० अ० मं० २९ मं० २७ में कहा है जो जन स्वयं पवित्र बुद्धिमान वेदशास्त्र के वेत्ता नहीं होते वे दूसरों को भी विद्वान और पवित्र नहीं कर सक्ते।

नराशंऽँसस्य महिमानमेषामुपस्तोषामयजतस्य यज्ञैः।
ये सुक्रतव शुचयो धियन्धा स्वदन्ति देवा उभयानि ह० या॥

ऋग्वेद अ० १। अ० ७। व० २४। मं० १। अ० २६। सू० १०६ मं० ६ में लिखा है कि विद्यार्थियों को छली एवं कपटी अध्यापकों का संग छोड़ आप्त पुरुषों के समीप रह पूर्ण विद्या और उत्तम स्वभाव से युक्त होकर धर्माचरण पूर्वक व्यवहार करना चाहिए।

अब आप ही बतलाइये कि बिना विद्वान् धर्मात्मा गुरु किये संसार का भला हो सकता है? क्या बिना उत्तम गुरुओं की शिक्षा के भारत सन्तान के हृदय पवित्र हो सकते हैं और बिना धर्मोपदेश के नवजीवन शिशुओं का कोमल एवं शुद्ध आत्मा आदर्श जीवनमय बन सकता है? नहीं नहीं कदापि नहीं। पस यदि आपको अपनी सन्तानोंसे प्रेम है। यदि भारत में उनके यश की पताका फहराना है। यदि पुत्रों को सच्चा कर्मवीर बनाना है तो मूर्ख पुरुषों को अपनी संतानों का गुरु बनाने की प्रथा को एकदम दूर कर दीजिये। इन गुरुओं की शिक्षा से स्कूल, मदर्सा या कालिजों की शिक्षा किसी अंश में अच्छी है परन्तु जितना प्रेम प्राचीन काल के निर्लोभ वानप्रस्थियों तथा संन्यासियों और त्यागी ब्राह्मणों में होता था वह प्रेम मासिक लेकर शिक्षा देने वाले स्कूल और कालिज के अध्यापकों में कहां? जहां पहिले विद्यार्थी गुरुओं को धर्मपिता समझते थे और गुरु वा आचार्यजन उनको पुत्रवत् शिक्षा दे उनके हृदय को पवित्र बनाते थे वहां स्कूलों व कालेज के विद्यार्थी पढ़ाने के समय तक ही टीचरों को शिक्षक मानते हैं फिर न उनका प्रेम न उनकी श्रद्धा। पूर्व समय में विद्यार्थी गुरुजनोंकी सेवा करना अपना धर्म समझते थे और उनकी आज्ञा पालन करना अपना कर्तव्य कर्म परन्तु आज कल सेवा का नाम ही नहीं। स्कूल या कालेज में शिक्षा पाते पाते ही उनके शरीर अनेक रोगों के घर बन जाते हैं तिस पर नागरिक खेल तमाशों के दर्शन एवं सहवास से उन के आचार विचार की दशा का अनुमान आप स्वयं कर सकते हैं। तथा जब आचार विचारों की यह दशा फिर देश का प्रेम जाति की सेवा और परोपकार करने की लगन उनके हृदय में स्थान कैसे पा सकती है। और माता पिता की सेवा करने का उत्साह उन्हें कैसे हो सकता है सच तो यह है कि इस शिक्षा प्रणाली ने भारत का और भी चौपट कर दिया इसलिये आवश्यकता है कि हम प्राचीन परिपाटी के अनुसार अपने पुत्रों का यज्ञोपवीत संस्कार (जिसका हम आगे वर्णन करेंगे) करा गुरुकुलों में भेजें।

वर्तमान समयमें गुरुकुलकांगड़ी, गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर, तथा गुरुकुल वृन्दावन आदि कई गुरुकुल विद्यमान हैं। जहां ब्रह्मचर्य के साथ २५ वर्ष की आयु तक बनों, जंगलों की खुली हवा में गुरु शिष्य रहकर तप के साथ विद्या ध्ययन करते हैं प्यारे सुजनों आप ध्यान दें इतने बड़े भारतवर्ष में दो तीन चार गुरुकुल क्या कर सकते हैं। इस लिये आप आइये और उपरोक्त परिपाटी को प्रचलित कीजिये जिससे कुछ काल में योग्य पुरुष पैदा हो जायं और वह वानप्रस्थ धारण कर अनेक आश्रमों पर दस दस बीस २ विद्यार्थियों को ब्रह्मचर्य के साथ शिक्षा देने लगें तब ही भारत का कल्याण होगा फिर गृहस्थाश्रम, गृहस्थाश्रम कहलाने योग्य हो सकता है वरन् जिन क्लेशोंमें इस समय हम और आप दुःख उठा रहे हैं उनसे अन्य प्रकार से कभी नहीं बच सकते, सच मानिये यही एक उपाय है जिससे सम्पूर्ण रोगों की शांति हो सकती है। यह औषधि परमपिता की बनाई हुई है जितना हमने उसका तिरस्कार किया उतना ही हमारा सत्यानाश हो गया, उठो और इस सर्व रोगनाशक उपाय का तन, मन, धनसे प्रचार करो परमेश्वर तुम्हारा हमारा और संसार का कल्याण करेंगे।

———:o———

* स्त्री-शिक्षा *

प्यारे सुजनों ! देश और धर्म की उन्नति स्त्रियों पर बहुत कुछ निर्भर है, जिस घर की स्त्रियां सुशिक्षिता नहीं वह घर दुःख का स्थान, जिस परिवार में स्त्रियों को उत्तम शिक्षा नहीं मिली वह परिवार संग्राम भूमि, जिस देशों की स्त्रियां विद्या से शून्य हैं वही सुविचार, आचार और सर्व प्रकार की उन्नतियों से रहित हैं। जब सितार के तार टूट जाने से उत्तम राग नहीं निकलता तो फिर क्योंकर गृहस्थाश्रम रूपी सितार के स्त्रीरूपी आधे तार टूटे हुए होने पर मर्यादारूपी राग ठीक ठीक निकल सकता है कदापि नहीं ! जैसे मूर्ख राजा अपनी प्रजा का नाश कर देता है, अज्ञ सेनापति अपनी सेना का वध करा देता है और मूर्ख सारथी घोड़े समेत रथका चकनाचूर कर देता है ठीक उसी भांति अनपढ़ माता अपनी संतानों के शारीरिक, आत्मिक, सामाजिक उन्नतियों का सर्वनाश करने वाली होती है इसके अनन्तर विद्वान् के संग से विद्या में रुचि और मूर्ख के संग

से उसमें अरुचि बढ़ती है, इसी प्रकार साधु का संग हममें साधुपन तथा व्यभिचारी का संग व्यभिचारीपन उत्पन्न करता है, प्रबन्धकर्त्ताओं के साथ रहने से प्रबन्ध करने का ढँग उत्पन्न होता है। देखो भला जिस माता के संग हमारा इतना गूढ़ सम्बन्ध है क्या उसका स्वभाव हमारे लिये तारने वाला या डुबाने वाला न होगा? देखिये, वैशेषिक दर्शन में कहा है— [कारण गुण पूर्वकं कार्य्यगुणः] अर्थात् कारण के गुण कार्य में आते हैं, इसकी पुष्टि वैद्यवर धनवन्तार जी ने भी सुश्रुत में की है 'कारणानुरूपं कार्य्यमिति' जब माता अनपढ़ी और कुढङ्गी होती है तो उस की संतान भी फूहड़ होती है, क्योंकि जो जो रङ्ग ढङ्ग सन्तानें अपने माता पिता आदि का देखती व सुनाती हैं वही स्वयं करने लग जाती हैं। जैसा कि—

नवमृत्स्नां समादाय सुकरोति यथामतिः।
तथैव माता बालंच भावयेच्च यथारुचिः॥
यावन्न साक्षरा माता तावत्ताद्बलबालिका।
निरक्षराहि तिष्ठन्ति विनोपायसहस्रकैः॥

जैसे कुम्हार नवीन मिट्टी को लेकर मनमाना बासन बनाता है और चित्रकारी करता है उसी भांति माता सन्तान को भली बुरी शिक्षा देकर योग्य व अयोग्य बना सकती है। इसी हेतु महाभारत अनुशासन पर्व अध्याय १० में कहा है कि 'नास्तिमातृसमो गुरुः' अर्थात् माता के समान संतान का कोई गुरु नहीं। और मनु जी ने भी अपनी स्मृति में लिखा है कि—

उपाध्यायान्दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता।
सहस्रन्तु पितृन् माता गौरवेणातिरिच्यते॥

उपाध्याय से दश गुणा आचार्य, और आचार्य से सौ गुणा पिता, पिता से हजार गुणा माताका गौरव है, इस हिसाब से उपाध्यायसे जननी में दशलाख गुरुओं की शक्ति है। अथर्ववेद में लिखा है कि प्रथम माता की शिक्षा से मनुष्य में उत्तम संस्कार उत्पन्न करे तब वह मनुष्य विद्वान् बलवान और धनवान होकर संसार में कीर्ति पाता है शतपथ में भी प्रथम मातृमान् पुनः पितृमान् तदन्तर आचार्यमान् कहा है, इसके उपरांत यजुर्वेद

अध्याय १४ मं० १ में लिखा है कि विदुषी पढ़ाने वाली स्त्रियों को योग्य है कि कुमारी कन्याओं को ब्रह्मचर्य अवस्था में गृहस्थाश्रम तथा धर्म की शिक्षा देकर उनको श्रेष्ठ करें यथा—

ध्रुवक्षितिर्ध्रुवयोनिर्ध्रुवासि ध्रुवं योनिमासीद साधुया।
उख्यस्य केतुं प्रथमं जुषाणा अश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा॥

अथर्व कां० ११ प्रपाठक २४० मंत्र १८ में लिखा है कि जिस प्रकार पुत्र ब्रह्मचर्य्य धारण करते हैं उसी भांति पुत्री भी ब्रह्मचर्य धारण कर तरुण अवस्था में अपने समान पति को प्राप्त हों यथा—

ब्रह्मचर्य्येण कन्या युवानं विंदते पतिम्।

श्रौत सूत्र में लिखा है कि स्त्री को पुरुषों के समान ब्रह्मचर्य होना चाहिये। य० अ० १३ मन्त्र ५३ में कहा है कि सब मनुष्यों और स्त्रियों को वेद पढ़ा, जगत् के वायु आदि पदार्थों की विद्या में निपुण कर कार्य साधन में सहायता लेना योग्य है।

जिस भांति अध्यापक, उपदेशक और अतिथि लोग बालकों को उत्तम शिक्षा देकर उनके दोषों को दूरकर विद्याको प्राप्त करावें उसीभांति स्त्री भी कन्याओं को उत्तम आचरण कर वैद्यक शास्त्र रीति से शरीर के अङ्गों को अच्छे प्रकार परीक्षा कर औषधि देवे। य० अ० १९ मन्त्र १५ में लिखा है कि कुमारियों को योग्य है कि ब्रह्मचर्य्य का सेवन कर व्याकरण धर्म विद्या और कार्य विद्या सीख कर शरीर को आरोग्य रक्खें।

सोमस्य रूपं क्रीतस्य परिस्रुत्परिषिच्यते।
अश्विभ्यां दुग्धं भेषजमिन्द्रायैन्द्रꣳ सरस्वत्या॥

और मन्त्र ३४ में आज्ञा है कि जिस प्रकार पुरुष ईश्वर की सृष्टि के कामों के निमित्तों को जानकर विद्वान् हो शास्त्रों का उपदेश करते हैं उसी भांति स्त्रियां सृष्टि क्रम के निमित्तों को जान वेदार्थसार का उपदेश करें। अ० १७ मन्त्र ४५ में सभापति को आज्ञा है कि जिस प्रकार पुरुषों को युद्ध विद्या की शिक्षा करते हो उसी भांति स्त्रियों को भी उक्त विद्या की शिक्षा कराओ कि जिससे वह पुरुषों की भांति युद्ध करने में समर्थ हों।

अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसꣳशिते।
गच्छामित्रान् प्रपद्यस्व मामीषां कंचनोच्छिषः॥

अ० २९ मं० ५० में आज्ञा है कि जिस भांति राजा और राजपुरुष

विमानादि रथ घोड़े के चलाने तथा युद्धादि व्यवहारों को जानें उसीभांति उनकी स्त्रियां भी जानें। इसके अतिरिक्त जिस भांति राजनीति और विद्या को राजा पढ़ा हो उसी भांति रानी भी पढ़ी हो जैसा कि यजु अ० १३ मं० २६ में कहा है तथा अ० १० मं० २६ में उपदेश है कि पुरुषों के सन्मुख स्त्रियां भय और लज्जा से यथावत बोल वा पढ़ नहीं सकतीं इसे लिये स्त्री स्त्रियों का और पुरुष पुरुषों का न्याय करें। ऐसा ही ऋग्वेद अ० २ सूक्त २७ मन्त्र में कहा है।

स्योनामासीद सुषदामासीद् क्षत्रस्य योनिमासीद।

इसके उपरान्त मनुमें लिखा है कि स्त्रियों की गवाही स्त्रियां ही दें। "स्त्रीणां साक्ष्यं स्त्रियः कुर्युः" और अ० २० मन्त्र ६२ में लिखा है कि सन्तान अपनी माता से प्रार्थना करे कि हे सरस्वती! बहुत विद्या से युक्त तू हमारी (पाहि) रक्षा कर और अ० २६ मं० ४१ में लिखा है कि विदुषी माता अपने पुत्रों को अच्छे प्रकार पुष्ट करती है जैसा कि "मातेवपुत्रविभृतास्वुपास्ये" अ० १० मन्त्र ६ में कहा है कि सन्तान का सुधार जबही होता है जबकि विद्वान् माता से प्रसिद्ध पदार्थों के ज्ञान की प्राप्ति होती है वही अपने पतियों को सदुपदेश द्वारा कुकर्म से बचा सकती है, और अ० १७ मन्त्र २४ में कहा है कि जिस घर में धार्मिका विद्यावती प्रशंसायुक्त स्त्रियां होती हैं वहां दुष्ट कर्म नहीं होते। ऋग्यवेद अ० ५। सू० ५२ मन्त्र ७ में कहा है कि जो स्त्री विद्या विनय को जानती है वही पति को प्रसन्न कर सकती है य० अ० ३७ १२ में कहा है कि सुलक्षणा पत्नी सब प्रकार से पति को सुख देती है।

अब आप इन वचनों को विचारिये और बतलाइये कि क्या विनय आदि लक्षण विना विद्या और उत्तम शिक्षा के आ सकते हैं? कदापि नहीं। इसके सिवाय गृह प्रबन्ध स्त्रियोंके अधीन होता है, क्या यह प्रबन्ध विना उत्तम बुद्धि के उत्तम प्रकार से चल सकता है? नहीं २। इस लिये य० अ० २० मन्त्र ८६ में लिखा है कि कन्याओं को चाहिये कि ब्रह्मचर्य से विद्या और सुशिक्षा को ग्रहण करके अपनी बुद्धि को बढ़ावें।

ऋग्वेद अ० २ अ० अ० १ सू० ३ मन्त्र ८ में लिखा है कि एक माता दूसरी पढ़ाने वाली औरतीसरी उपदेश करने वाली स्त्रियों के समीप रहने से बुद्धि और विद्या की नित्य बढ़ती होती है।

सरस्वतीसाधयन्ती धि इन्नइला देवी भारतीविश्वमूर्तिः ।
तिस्रो देवीः स्वधया वर्हिरदेमच्छि द्रंपान्तुशरणंनिषद्या ॥

क्योंकि य० अ० ३७ मं० ४ में कहा है कि हे मनुष्यो ! जब तक स्त्रियां विदुषी अर्थात् विद्यावती नहीं होतीं तब तक उत्तम शिक्षा भी नहीं बढ़ती । इसी हेतु ऋग्वेद अ० २ सूक्त ३१ । मं० ५ में कहा है कि जिस भांति पुरुष ब्रह्मचर्य से विद्या पढ़के सब पदार्थों के गुण कर्म स्वभावों को जानकर विद्वान् होते हैं उसी भांति स्त्रियां भी हों । क्योंकि सुशिक्षित पशु भी उत्तम कार्य सिद्ध कर लेते हैं तो फिर क्या विद्या की शिक्षा से युक्त पुरुष और स्त्री सब उत्तम कार्य सिद्ध नहीं कर सकते ?

इस लिये य० अ० १२ मन्त्र ५३ में कहा है कि माता पिता और पढ़नेहारी विद्यावती स्त्रियों को योग्य है कि कन्याओं को अच्छे प्रकार बुद्धिमती करें ।

चिदसी तया देवतयांगिरस्वन् ध्रुवासीद ।
परिचिदांस तया देवतयांगिरस्वद् ध्रुवासीद ॥

शतपथ में भी स्त्रियों को वेदाधिकार अर्थात् वेद पढ़नेकी आज्ञा है ।

अथ वेदेपत्नी विस्रअंसयति इत्यारम्भ यजुषा ।
चिकीर्षे ते नैव कुर्यात इत्यन्तं द्रष्टव्यम् ॥

यम ऋषि ने कहा है कि पहले समय में स्त्रियां यज्ञोपवीत धारण कर वेदाध्ययन तथा गायत्री का जप यह सब कार्य पुरुषों के समान करती थी ।

पुराकल्पेषु नारीणां व्रतबन्धनमिष्यते ।
अध्यापनं च वेदानां सावित्रीवाचनं तथा ॥

इसके उपरांत गर्भाधान संस्कार में—"ओं आदित्यं गर्भ" "सूर्यो नो दिवस्पातु" "जोषा सवितर्यस्य", चक्षुर्नोदेव, 'चक्षुर्नोधेहि' 'सुसंदृशंत्वा' आदि मन्त्र और सीमन्तोन्नयन, निष्क्रमण, अन्नप्राशन तथा चूड़ाकर्म में "ओं वादसूस्त्वं" ओंयदश्चन्द्रमसि" "त्वमग्न पतिरमाद्दे" । 'वर्धमानो भूयः" 'ओं त्वं जीव शरदः वर्धमानः, इन मन्त्रों के उच्चारण करने की आवश्यकता पड़ती है तथा विवाह संस्कार में बहुधा स्थानों परमन्त्र बोलने का काम पड़ता है तथा प्रतिज्ञा वेद मन्त्रों से करनी होती है ।

इसके उपरांत शिवजी महाराज पार्वती जी को समझाते हैं कि विद्या

पढ़ने से स्त्रियों को बहुमूल्य रत्न हाथ लगते हैं क्योंकि इसी के बल से वे पतिकी सेवा तथा ईश्वर की आज्ञा पालन कर सकती है। वात्स्यायनऋषि के बनाये हुए त्रिवर्ग शास्त्र के सूत्रों में जो विद्या समुच्चय नाम तीसरे अध्याय के दूसरे सूत्र में लिखा है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्री अत्यन्त चाण्डाल आदि सब मनुष्यों की मुक्ति विद्या से होती है, यथा—

स्त्रियोवा यदिवाशशूद्रो ब्राह्मणः क्षत्रियः परे।
मुक्तिं या विद्यया प्राहुरिहभोगं तयासह ॥

बाबा नानक माताको आदि गुरु कहते थे, वेद तो पुकार कर कह रहे हैं कि बिना माता की शिक्षा के सन्तान कभी सुयोग्य नहीं हो सकती।

इसलिये आप "स्त्री शूद्रौ नाधीयतामित श्रुतेः" इस बनावटी श्रुति को हृदय से निकाल स्त्रियों को पुरुषोंके समान विद्याध्ययन कराइये—क्योंकि दोनोंके समान अधिकार हैं। जीव की जाति नहीं, जिस प्रकार के शरीर में जाता है वैसाही उसका नाम हो जाता है। इसी कारण उसको पुरुष, स्त्री, और नपुंसक कुछ नहीं कह सकते, जैसा श्वेताश्वेत उपनिषद के अध्याय ५ श्लोक १० में लिखा है—

नैवस्त्री नपुमानेष नचैवाऽपुंनपुंसकः।
यद्यच्छरीरमादत्तेतेनतेन समुच्यते ॥

हां कर्मानुसार स्त्री पुरुष आदि योनि में जीव जाता है और शरीर को पाता है, य० अ० ११ मं० ५५में स्त्री को कोमल स्वाभाव वाली और इसी अध्याय के ५० मंत्र में स्त्री को जल की उपमा दी है जो कोमल द्रव्य है। मं० ५६ में लिखा है कि वह आदर सत्कारके योग्य है इसी भांति अध्याय १३ मं० १६ में पतिको अग्नि से उपमा दी है और उसी को स्त्री की रक्षा करने वाला कहा है महर्षि पतंजलि ने अपने महाभाष्य नाम ग्रन्थ में लिखा है कि जिसके कड़े रोंगटे हों वह पुरुष और जिसके कोमल स्तन हों वह स्त्री प्रत्येक इनमें से अपने जीवन के समान उद्देश्य अर्थात् धर्म अर्थ काम और मोक्ष के समान अधिकारी है। इसी भाँति ब्रह्मचर्य, गृहस्थ वानप्रस्थ, संन्यास इन चारों आश्रमों में स्त्री अपने स्त्रीपन की पूर्ण उन्नति करती हुई मोक्ष को प्राप्त कर सकती है। प्यारे मित्रो! जब स्त्री को ब्रह्मचर्य आश्रम करने की आज्ञा है तो विद्या पढ़ना उसका मुख्य धर्म है। इसके उपरांत ज्ञान कर्म उपासना और विज्ञान जिनकी सिद्ध के लिये

चारों आश्रम हैं, इनके प्राप्त करने का प्रत्येक को समान अधिकार है, क्योंकि दोनों के जीवन उद्देश्य मुक्तिप्राप्त करना है, उसके साधन दोनों के समान हैं देखो य०अ०११ मं०६२में पतिको स्त्रीका मित्र कहा है। भला आप ही बतलाइये विना तुल्य गुण कर्म स्वभाव के कभी मित्रता निभ सकती है ? कदापि नहीं। इसके अतिरिक्त अध्याय ६मं०३४ में स्त्रीको देवी और धन कमाने और अन्यकार्योंमें पतिकी सहायता करने वाली बतलाया है, क्या यह विना विद्या के देवी हो सकती है ? और मूर्खा होने पर धन कमाने और अन्य कार्यों में क्या सहायताकर सकती है। अध्याय १२ मं० ५४ में स्त्री को मोक्ष प्राप्त करने की आज्ञा है। अ० ११ मं० ४८ में व्याकरण पढ़ने का उपदेश है। अ० १३ मं० १६ में राजनीति की शिक्षा देने की शिक्षा है। ऋग्वेद अ० १ । अ० ७ व १४ मं०३अ०३०सू० ३१ मं० ५ में लिखा है कि पुरुषों की भांति पदार्थ विद्या से पदार्थों के गुण कर्म और स्वभावों को जान, पदार्थ विद्या में विद्वान् होने, अ० १३ मं० ३४ में वेद के अर्थों को जान, उपदेशक बन उपदेश करनेकी आज्ञा है और अध्याय १२ मं० ५३ में पूर्ण विदुषी बनने का उपदेश है। अ० ८ मं० १२ में भोजनादि भोगों को समान रीति से भोगने की शिक्षा है अ० ११ मं० ४० में स्त्री को क्षत्रियों के गुण धारण करने और वीर नारी बनने तथा य० अ० ११ मं० ४४ में उत्तम सन्तानों के उत्पन्न करने, अ० २० मं० ५६ में वैद्यक विद्या सीखने, अ० १७ मं० ४५ में युद्ध में जाने और करने, अ० १३ मं० १६ में स्त्रियों को स्त्रियों के न्याय और अ०११ मं० ६६ में अपनी उन्नति करते हुये पति की उन्नति करने में सहायक होने, अ० २० मं० ८६ में सुशिक्षा ग्रहण करके बुद्धि बढ़ाने की आज्ञा है। इसके उपरांत जब स्त्री विवाह करना चाहे तब य० अ० ११, ३८, ८७, १२ के मं० ७१, २७०, ११, ६२के लेखानुसार अपने से अधिक बलविद्या धर्माचरण तथा धनवान एक ही स्त्री का चाहने वाला और जिसका पिता ब्रह्मचारी नाना पदार्थ संयुक्त शुद्ध स्वभाव वाला हो, ऐसे गुणों से संयुक्त वर को स्वीकार करे परन्तु चोरी आदि दुष्कर्म करने वाले के सम्बन्धी को कभी अपना पति न बनावे।

अब आपही विचार कीजिये कि विना विद्या के वह क्योंकर अपने पति की परीक्षा कर सकती है तदनन्तर विवाह में स्त्री पति से जो प्रतिज्ञा

करती वह विना ज्ञानके क्योंकर पूर्णकर सकती है। इसी लेखके अनुसार प्राचीन काल में स्त्रियों को वेदानुकूल शिक्षा होती थी, उस समय पुरुषों के समान स्त्रियां कार्य करती थीं। देखो महर्षि पञ्चशिख बाल ब्रह्मचारी और संन्यासी थे तो इधर गार्गीदेवी बालब्रह्मचारिणी, इधर राजा जनक योगविद्या में प्रवीण और प्रसिद्ध थे तो उधर बालब्रह्मचारिणी सुलभा इसी विद्या में अद्वितीय थी, जिसने राजा जनक से योग्य पुरुष को चक्कर में डाल उस विद्या की अनेक आश्चर्ययुक्त सूक्ष्म क्रियायें राजा को बतलाई थीं और वह इतनी विद्या पढ़ी थी कि उस समय उसने अपने समान वर न मिलने के कारण ब्रह्मचर्य आश्रमसे संन्यास धारण कियाथा।

इधर याज्ञवल्क्य महर्षि ब्रह्मवादी थे, तो उधर मैत्रेयीदेवी ब्रह्मवादिनी थीं। इधर श्रीराम, अर्जुन आदि स्त्रीव्रत करने वाले थे तो उधर सीता, द्रौपदी, दमयन्ती इत्यादि पतिव्रत के पालने वाली उपस्थित थीं। इधर राजा दशरथ, कर्ण, अर्जुन और भीमसेनादि संग्राम भूमिमें शत्रुओं के मान हरने वाले थे तो उधर कैकई, दुर्गावती, राना जयचन्दकी रानी और तारा बाई कूर्मदेवी इत्यादि शूरवीरा थीं। जिन्होंने शत्रुओंके साथ लड़कर अपने पतियोंकी सहायता की और पद्मावती की बुद्धिमत्ता तो प्रकटही है कि उसने अपने पतिको वन्दीगृह से निकाल अपने धर्मकी किस योग्यता से रक्षाकी। इधर पिताकी आज्ञा पूर्ण करने के लिये रामचन्द्र महाराज ने चौदह वर्ष वनोवास में व्यतीत किये तो उधर श्रीराम के साथ सीता और पाण्डवों के साथ द्रौपदी; नल के साथ दमयन्ती इत्यादि ने नाना प्रकार के कष्ट सहन किये वरन् इससे भी अधिक कृष्णकुमारी ने अपने पिता की प्रतिष्ठा रखने के लिये उनके भेजे हुए विष के प्याले को पीकर अपना बलिदान कर दिया। दान करने में यदि राजा हरिश्चन्द्र ने कष्ट उठाया तो उधर उसकी रानी ने उसका साथ देने में कोई न्यूनता नहीं की। यदि राजानल ने अपनी भूलसे राजपाट खोया तो उसकी रानीने ऐसे समय में पति को नहीं त्यागा वरन् राजा के त्यागने पर अपनी बुद्धिमानी से राजाको खोज पति स्नेह का पूर्ण उदाहरण दिखलाया। शकुन्तला ने अपने पतिके त्यागने पर कैसा सारगर्भित निवेदन किया था। यदि इधर बहुत से राजा प्रजापालक और धर्मात्मा हुए तो उधर भी अहिल्याबाई, रानी स्वर्णमयी इत्यादि धर्म करने वाली और प्रबन्धकारिणी उपस्थित थी। यदि महात्मा

अत्रि, वशिष्ठ, जरत्कार इत्यादि वानप्रस्थ आश्रम में थे तो उधर देवी अनुसूइया, अरुन्धती और जरत्कार मुनि की स्त्री भी उनके साथ इसी आश्रममें उपस्थित थीं। इधर महात्मा बुद्ध संन्यास आश्रममें थे तो उनकी रानी वसुन्धरा भी संन्यासिनी थी। जिस प्रकार समय २ पर श्रीरामकृष्ण युधिष्ठिर इत्यादि उपदेश करते थे उसी भांति स्त्रियांभी अपने पति पुत्रऔर अन्य स्त्री और पुरुषों को सदोपदेश करती थीं। देखो मन्दोदरी ने सीता-हरण करने पर रावणको बड़ी उत्तम रीति से शिक्षा तथा रामचन्द्रजी से संग्राम न करने के विषय में अनेक युक्तियों से निवेदन किया। कौशिल्या ने सीता, सुमित्रा ने लक्ष्मण, तारा ने वालि को नाना भांति के उपदेश किये थे। इसके उपरांत कुन्ती ने अपने पुत्रोंको शूरवीरता का कैसा ध्यान दिलाया था और मन्दालसा ने अपने पुत्रों को ब्रह्मज्ञान की कैसी शिक्षादी थी। राजा गोपीचन्दका योगी होना उनकी माताका उन्हें उपदेश करनाही था द्रौपदी जी ने सत्यभामा को पतिव्रतकी शिक्षादी थी। गङ्गादेवी और गुरु गोविन्दसिंह जी की स्त्रियों को देखिये जिन्होंने अपनी अपनी सन्तानों को जितेन्द्रिय बना उनमें कैसे कैसे उच्च भाव उत्पन्न किये थे, जिस के कारण उन्होंने धर्म के अर्थ अपने तन मन धनको लगाकर संसार की काया पलटने के लिये बिजली का काम किया। इसके अतिरिक्त स्त्रियां पुरुषों से शास्त्रार्थ भी करती थीं, देखिये जनक के साथ सुलभा और याज्ञवल्क्य के साथ गार्गी ने शास्त्रार्थ किया था और शास्त्रार्थ की मध्य-स्थिका भी स्त्रियां होती थीं जैसे शङ्कर और मण्डन के शास्त्रार्थकी मध्य-स्थिका विद्याधरी हुई थी जिसने अपने पतिके परास्त होनेपर शंकरस्वामी से महात्मा को किस युक्तिसे परास्त कर अपने कार्य को सिद्ध किया। जिस प्रकार वेदों की श्रुतियों के द्रष्टा बहुत से ऋषि हुए वैसे ही ऋग्वेद मं० अनु० २३ सू० १७९ की द्रष्टा लोपामुद्रा देवी और मं०८ अनु० ६ सू० ९१ की आलोपादेवी हुई। तथा शिव और विदुला ने भी वेदों को बड़ी योग्यता से पढ़ा। तिलोत्तमा की विद्या का प्रभाव संसार में होही रहा है कि उसने अपने मूर्ख पति को कवि कालिदास बना दिया कि जिस की कविता के सामने आज बड़े २ कवियों के छक्के छूटते हैं। रानी मन्दो-दरी ने अपने पतिको हिंसा से बचाने के लिये शतरञ्जका खेल निकाला था, विद्याधरी के उपदेश से राजा पृथु की रानी शिक्षा पर दश लाख रुपया व्यय करती और आपही परीक्षा लिया करती थी।

जिस भांति गानविद्या में गांधर्वसेन नारद आदिहो गये उसी भांति मृगनयनी और रानी रूपवती इत्यादि ने इस विद्या में नाम पाया था। जिस भांति वैदिक धर्म की उन्नति के लिये शङ्कर स्वामी ने अपना सर्वस्व लगाया था तद्वत् काशी के राजाकी पुत्री ने वैदिकधर्म की मर्यादा को जाते हुए देखकर अपनी अटारी पर से कुमारिल भट्ट से प्रार्थना की थी सच तो यह है कि बिना विद्याओं के जाने कभी मनुष्य जन्म सुफल नहीं होता और न पवित्रता होती है जैसाकि वेदोंमें कहा है। इस हेतु सब स्त्रियों और पुरुषों को विद्या पढ़ना चाहिये । अब मैं प्राचीन समय की विद्वान् स्त्रियों के संक्षेप से जीवन सुनाता हूं। सुनकर विचार कीजिये ।

——:०:——

प्राचीन समयकी योग्य स्त्रियों के संक्षेप जीवन ।

गार्गी देवी—यह महर्षि याज्ञवल्क्य जी की पत्नी थी । जो संस्कृत विद्या में निपुण होने के कारण उक्त महात्मा की द्वितीय पत्नी के साथवर्त्तमान की स्त्रियों के समान डाह न करती हुई प्रेम प्यार से रहती थी ।

काशीके राजाकी एक कन्या—जब भारतवर्ष में बौद्धमत फैला और काशी के राजा भी शिखा सूत्र त्याग बौद्धमतावलम्बी होगये थे तब इस कन्या ने जिसके मनमें वैदिकधर्म का प्रकाश होरहा था, अपनी अटारी पर से एक मनुष्य को शिखा सूत्र धारण किये हुये देख कर कहा:—

'किं करोमि क्वगच्छामि को वेदानुद्धरिष्यति' ।

अर्थात् 'क्या करूँ कहां जाऊं' कौन वेदों का उद्धार करेगा' ? यह सुन कुमारिल भट्टाचार्य जी ने जो उस समय महलों के नीचे जा रहे थे उसकी पुकार सुन उत्तर में कहा कि—

'मा चिन्तयवरारोहे ! भट्टाचार्योऽस्ति भूतले' ।

'ऐ धार्मिका कन्या ! तू इतनी चिन्ता मत कर, अभी भट्टाचार्य वेदों के उद्धार्थ उपस्थित हैं, प्यारी बहनों ! इस राज्य कन्याकी ओर ध्यान दो कि कितना धर्म प्रभाव और वेदों का गौरव उसके हृदय में था आज तुम वेदों के नाम सुनने और पढ़ने के योग्य ही न रहीं ।

देवहूती—यह मनु महाराज की पुत्री थी। विवाह होने पर अपने माता पिता के शीशमहलादि को छोड़ अपने सुयोग्य विद्वान् पति के साथ वन को गई और विद्या में पूर्ण योग्ता प्राप्त की जिसके एक कपिल नाम पुत्र हुआ एवं उसकी शिक्षा का फल स्वरूप ही महात्मा कपिल ने सांख्यशास्त्र को निमार्ण किया जिसके विचारसे बड़े २ बुद्धिमान आनन्द उठाते हैं, क्या यह स्त्री शिक्षा का फल नहीं है।

महात्मा पातञ्जलिकी स्त्री—महा विदुषी और शास्त्रार्थ में प्रवीण थी जो अपने पतिके साथ रहकर परमात्मा के ध्यान में मग्न रहती और आनन्द पूर्वक अपनी आयु को व्यतीत करती थी।

लक्ष्मीदेवी—यह व्याकरण और अनुवादमें बड़ी प्रवीण थी, इसने मिताक्षरास्मृति की टीका की जो बल्लभ भट्ट के नामसे आज प्रसिद्ध है।

बीबी रत्नकुंवरी—इसने पद्यमें प्रेम रत्न रचा था।

मायावती—यह वेद मन्त्रों के अर्थों की व्याख्या भले प्रकार से करती थी, इसी लिये वेदों के प्रचार और विद्या की उन्नति के लिये अपने पति को समझाया करती थी।

सत्यभामा—इसने विद्यामें पूर्णयोग्यता प्राप्त की थी, और इसी योग्यता के बल से धर्म विषयों पर व्याख्यान तथा पातिव्रत धर्म का उपदेश करती थी। एक बार पातिव्रत धर्म के विषय में महारानी द्रौपदी से भी सम्भाषण हुआ था।

रानी रति—इसने श्रीकृष्ण महाराजकी रानी पद्मनीको पढ़ाया था।

लीलावती—यह राजा भोज की विदुषी पत्नी थी। आप का विद्या से बड़ा प्रेम था अतएव अपने राज में पुत्री शिक्षा का प्रबन्ध अत्युत्तम किया था। एक समय जब कि राजा भोज लीलावती सहित बैठे थे। एक पाठशाला की अध्यापिका ने निम्न लिखित वचन उन दोनों से कहा—

आयेबालेलीलावतिकुरुमतिम्भोजनृपतेः।
त्वमप्येवदैनन्दिनमुभययोरर्जनविधौ॥
सुविद्यासल्लक्ष्म्योस्त्यजतिनयथापाणियुगलम्।
यथोरेकादक्षंपरमपियराहस्तमनिशम्॥

अर्थ-हे लीलावती और हे राजा भोज! तुम दोनों प्रीतिपूर्वक अपने दोनों हाथों से दोनों लक्ष्मियों को ऐसा बढ़ाओ कि दाहिने हाथ को विद्या-लक्ष्मी और बाएं को धन लक्ष्मी कभी छोड़ने को मन न करे। और भी कहा है-

द्वयोसहायेननरान्स्वनीवृतिस्त्रियश्चनित्यंकुरुते धनाढ्यान्।

विद्यावतीचापि यथालमीयुरमीतथामूरुभयत्रसौख्यम्॥

फिर आप दोनों ही इन दोनों लक्ष्मियोंसे स्त्री पुरुषों को अच्छी तरह सम्पन्न कीजिये जिससे वे दोनों लोकों में सुखी हों।

द्रौपदी—यह बड़ी पंडिता और पतिव्रता थी, जैसा महाभारत वनपर्व अध्याय २७ में लिखा है। इसी के बल से इसने बड़े २ दुखों को सहन किया, बारह वर्ष तक अपने पति के साथ वन में रही। संग्राम में पुत्रों के मारे जाने पर अश्वत्थामा को नहीं मारने दिया।

रुक्मिणी—यह श्रीकृष्ण महाराज की स्त्री थी, इन्होंने कई बार उनको पत्र लिखे थे जो भागवत से प्रकट हैं।

यशोवती यह दत्तात्रेय की शिष्या थी इसने राजा एकांध को कई वेद मंत्रोंकी व्याख्या कर समझाया था।

मन्दालसा यह बड़ी विदुषी और ज्ञानवती स्त्री थी। इसने अपने विक्रान्त, सुबाहु और अरिमर्दन नामक तीनोंपुत्रोंको गर्भावस्थामें ही ब्रह्मज्ञानका उपदेश दियाथा जिसके कारण वह सब ब्रह्मचर्य आश्रमसे ही ब्रह्मचर्य की प्राप्ति के लिये वनको चले गये और अर्क नामक चौथे पुत्र को गृहस्थ धर्म का बहुमूल्य उपदेश निम्न रीति से किया कि हे पुत्र! अपने पति की इच्छानुसार मैं तुझे गृहस्थ धर्म का उपदेश देती हूं तू उसी के अनुकूल कार्य कर मेरे स्वामी के चित्त को संतुष्ट कर तथा मित्रों का उपकार करता हुआ संग्राम भूमि में एक छत्र राज और प्रजा पालन कर सुखी हो, धर्मसे देव पदवी प्राप्त कर यज्ञों में ब्राह्मणों को भोजन दान दे, भाई बन्धुओं की इच्छा की पूर्ति तथा दूसरों की भलाई करने का मन से सदा ध्यान रख, पर स्त्री गमन से सदा बचते रहना, राज्य करते समय मित्रों को प्रसन्न कर साधु सेवा के

साथ यज्ञ कर दुष्टों का नाश कर, अश्वमेध आदि यज्ञ करना और गुरु ब्राह्मण की भलाई के लिये प्राण भी जाय तो चिन्ता न करना। जब अलर्क के पिता वृद्धावस्था को प्राप्त हुये तब उन्होंने इसी पुत्र को राज्य दे मंदालसा सहित तप करने के लिये वन चलने की इच्छा की उस समय फिर मंदालसा ने अपने पुत्र से कहा कि जब तुमसे भाई, बन्धु शत्रु अथवा धन के नाश हो जाने पर दुःख सहा न जाय तब तुम इस अँगूठी को जो मैं तुम्हें देती हूं जिसमें (तुम्हारे धैर्य्य होने के वास्ते) थोड़े अक्षरों में श्लोक लिखे हैं उनको पढ़कर घर को छोड़ देना।

सङ्गः सर्व्वात्मना त्याज्यः सचेत्युक्तं न शक्यते।
संसङ्गि सह कर्त्तव्यः सतां सङ्गो हि भेषजं॥

संसारी पुरुषों की संगति छोड़ देना चाहिये और जो न छूट सके तो साधु लोगों की संगति करे क्योंकि साधुओं की संगति ही संसार की औषधि है।

कामः सर्व्वात्मना हेयो हातुञ्चेच्छक्यतेन सः।
मुमुक्षा प्रतितत्कार्य्यं सैव तस्यापि भेषजं॥

सब प्रकार से निष्कर्मी अर्थात् फल की इच्छा न करते हुये कर्म करना तथा मुक्ति की इच्छा से सम्पूर्ण कामनाओं को त्याग देना ही उत्तम है *।

रोमशा—इस महाविदुषी देवी ने ऋग्वेद प्रथम मंडल १८ अनुवाक १२६ सूक्त ७ ऋचाओं की टीका की है।

लोपामुद्रा—इसने ऋग्वेद १ मंडल १८ अनुवाक १७८ सूक्त १ और २ मंत्र की व्याख्या की है।

अपला—इसने भी मंत्र ६ अनुवाक ८१ सूक्त की व्याख्या की है।

अरुन्धती—जो वशिष्ठ मुनि की पुत्री थी, जिसका पढ़ा लिखा होना पोथी अरुन्धती से प्रकट है।

कौशिल्या—यह राजा दशरथ जी की धर्मपत्नी और महात्मा रामचन्द्र जी की माता थीं। जब श्रीरामचन्द्र जी वन जाने के लिये माता से मिलने और आज्ञा लेने के लिये उनके समीप गये थे उस समय उक्त माता

*इनका विस्तार पूर्वक जीवन पृथक् छपा है मूल्य ।)॥ डा० व्य० ।=)

जी रेशमी वस्त्र धारण किये परमानन्द के साथ नित्यव्रत में लगी हुई मंत्र पढ़ २ कर अग्नि में आहुति दे रही थीं जैसा कि अयोध्याकाण्ड सर्ग २० श्लोक १४ में लिखा है।

साक्षौमवसनाहृष्टा नित्यं व्रतपरायणा।
अग्निंजुहोतिस्म तदा मंत्रवत्कृतमङ्गला॥

सीता—यह राजा जनक की पुत्री और महात्मा रामचन्द्र जी की धर्मपत्नी थीं, वनवास के समय में शीशमहलों के सुखों को छोड़ पतिव्रत धर्म के यथावत् पालन करने के लिये पति के समझाने पर भी उनके साथ गई थीं। जब उनको लङ्का का राजा रावण हर ले गया तो उस समय बड़े धैर्य के साथ उसको नाना भांतिकी शिक्षा देकर अपने पतिव्रतधर्म की रक्षा की। यह बड़ी बुद्धिमती और सुयोग्य थी, नित्य कर्म करने एवं साधुओं की सेवा में बहुत प्रीत रखती थी।

———:०———

❀ वेदवती ❀

वेदवती कुशध्वज सुकुमारी। परम पण्डिता आज्ञाकारी॥ १॥
ऋषि कन्या तपस्विनि भारी। धर्म अधर्म को परखन हारी॥ २॥
करि हिमवान् शिखरपर वासा। हवन यज्ञ करे सायं प्राता॥ ३॥
ताने घोर व्रत यह धारा। ब्रह्मचर्य्य रक्खूं जीवन सारा॥ ४॥
ब्रह्मचर्य्य अखण्डित हेतू। यम और नियमका बांधासेतू॥ ५॥
वेदवती की जो थी आज्ञा। लङ्का का आया था भूपाला॥ ६॥
राक्षस अधम काम वसीभूता। देख के ऐसी कन्या स्वरूपा॥ ७॥
मन में विचार क्यों सुकुमारी। ऐसी करत तपस्या भारी॥ ८॥
ऐसी युवती क्यों वन माहीं। वास करे क्यों कष्ट उठाई॥ ९॥
बोला सन्मुख ऐ सुकुमारी। किसकी कन्या किसकी नारी॥ १०॥
क्यों यह घोर वन है धारा। रूप अपने को काहे बिगारा॥ ११॥
वेदवती उसे जान अतिथी। बोली वाणी मुख से मीठी॥ १२॥
मैं कुशध्वज की हूं सुकुमारी। ब्रह्मचर्य व्रत लीना धारी॥ १३॥
सुनके वचन यूं रावण बोला। रूप अपने को काहे बिगारा॥ १४॥
चल तू साथ मेरे बन रानी। भोग विलास करो मनमानी॥ १५॥

मैं पटरानी तुम्हैं बनाऊं । षटरस स्वाद तुम्हैं खिलाऊं ॥१६॥
लाखों होंगी तेरी दासी । काहे प्रिया तू रहे बनवासी ॥१७॥
वेदवती क्यों कष्ट उठाओ । चढ़ो विमान पै लंका धाओ ॥१८॥
वेदवती सुन वचन यूं बोली । क्रोध वस ज्यों सर्पिन घोली ॥१९॥
तप प्रभाव से मैंने जाना । तू है राक्षस रावण राना ॥२०॥
पाप हृदय में तेरे समाया । काल तेरा अब निकट है आया ॥२१॥
मैं ब्रह्मचर्य अखण्डित पालूं । भोगविलास सभी तुच्छ मानूं ॥२२॥
अधम पापी मत छेड़ो मुझको । श्राप से दूंगी जला मैं तुझको ॥२३॥
सुन के रावण बात विचारी । यूं नहीं माने बात हमारी ॥२४॥
भुजा के बल से मैं ले जाऊं । चढ़ विमान पय लंका धाऊं ॥२५॥
ऐसा विचार कर नीचे उतारा । वेदवती को केशों खैंचा ॥२६॥
कन्या तपस्विनि ने बल धारा । बड़े वेग से दिया झटकारा ॥२७॥
अपने केश यूं उसने छुड़ाये । वचन बाण यूं फिर बरसाये ॥२८॥
राक्षस अधम पिशाच मलीना । घोर पाप तूने है कीना ॥२९॥
व्रत यह मेरा था ऐ पापी । छूऊंगी न पर अंग कदापी ॥३०॥
व्रत यह मेरा तू ने तोड़ा । मैं न जीऊंगी काल भी थोड़ा ॥३१॥
यज्ञकुण्ड की अग्नि मांही । निश्चित ही अब देह जलाई ॥३२॥
प्राप्त-यज्ञ के जो फल मुझको । तिन प्रभाव से श्रापूं तुझको ॥३३॥
मृत्यु कारण हुआ तु मेरा । स्त्री कारण वध हो तेरा ॥३४॥
यह कह वेदवती सुकुमारी । तुरत ही देह भस्म कर डाली ॥३५॥

दमयन्ती ।

जिस समय राजा नल जुये में अपना सब राजपाट हार गये और वन यात्रा की तय्यारी की । उस समय पतिव्रत दमयन्ती ने भी पति के साथ ही वन चलने को आग्रह किया । राजा नल ने बहुत समझाया कि तुम सुकुमार बाला हो, मत चलो परन्तु रानी दमयंती ने राजा नल का साथ न छोड़ा एक दिन वनमें राजा नलने दमयंती से कहा कि हे प्यारी! तुमतो निरपाधिनी हो मेरे पापों के साथ तुम दुःख क्यों भोग रही हो तुम्हारे कोमल तलवे कांटों से घायल होगये । तुम्हारा फूल सा चेहरा सूर्य की कड़ीधूप में मुरझा गया । प्राण प्यारी ! तुम्हारा दुःख यह मुझ

से देखा नहीं जाता तुम अपने पिता के यहाँ चली जाओ मैं अपने पापों के फलों को भुगतूंगा । इस को सुन कर दमयन्ती ने कहा प्राणनाथ आप मेरा कुछ ध्यान न करें मुझे आपके साथमें बनके कांटे फूलके समान और धूप चांदनी के तुल्य मालूम पड़ती है और मैं हर्ष पूर्वक इन दुखों को झेलूंगी दमयन्ती का यह उत्तर सुन कर राजा नल चुपचाप बन में रहने लगे एक दिन दमयंती को सोती छोड़ चले गये। दमयंती ने कई दिन ढूंढा अंत को निराश हो बन से नगर की राह ली । मार्ग में एक बहेलिए ने इसके पतिव्रत को नष्ट करना चाहा परंतु वीर क्षत्राणी ने उस को खूब ही धुधकारा । जिस से वह भाग गया और दमयन्ती अपने पिता के यहां पहुंच गई । पितृगृह में पहुंचने पर भी दमयन्ती का चित्त केवल राजा नल में ही लगा रहता था जैसा कि नीचे के श्लोकसे प्रतीत होताहै।

चेतोन लङ्कामयते मदीयम् । चेतोन लङ्कामयते मदीयम् ॥
चेतोन लङ्कामयते मदीयम् । चेतोन लङ्कामयते मदीयम् ॥

अर्थात् मेरा चित लङ्कापति रावण तथा अन्य किसी को नहीं चाहता किन्तु पूर्ण रीति से मेरा मन राजा नल ही में लगा है उनकी ही चाह है यस यदि राजा नल न मिले तो अग्नि में प्रवेश कर तन को जारूंगी यही मेरा चित्त चाहता है । अहा इस प्रकार पति भक्तिके कारण ही तो दमयन्ती की गणना उच्च श्रेणी की पतिव्रताओं में हुई । और मन की सच्ची लगन के कारण स्वयंवर के बहाने की युक्तिसे अपने प्यारे पतिको पाकर जीवन पर्यंत सुख का अनुभव किया ।

पार्वती—यह महाराजा हिमाचल की पुत्री थी । इन्होंने कुमार अवस्था में बड़ा ही तप किया इन का हार्दिक प्रेम महात्मा, योगिराज, तपस्वी एवं प्रतापी शिवजी के साथ था इसी लिये इन्होंने यह प्रतिज्ञा की थी कि मैं महादेव के साथ विवाह करूंगी या आयु पर्यंत कुमारी रहूंगी अन्त को वाञ्छित पति के साथ विवाह कर आप इतनी पतिव्रता हुई कि आप का नाम महाभारत में सती के नाम से प्रसिद्ध हुआ ।

रेणुका—यह धर्मशास्त्र को अच्छे प्रकार जानती थी, इस लिये अपने समय में बड़ी चतुर स्त्रियों में गिनी जाती थी।

उत्तरा—यह राजा विराट की पुत्री थी, इसने पूर्ण योग्यता प्राप्त की थी जो महाभारत से प्रकट है ।

विद्योत्तमा—यह बड़ी विदुषी विख्यात स्त्री थी, जिसने अपने विद्या के प्रभाव से बड़े२ पण्डितों को परास्त कर दिया था और उनसे यह प्रण किया था कि जब मेरे समान विद्वान् पति मिलेगा तब मैं अपना विवाह करूँगी इधर जब पंडितोंका बल उसकी विद्याके सम्मुख न चला तब सबने सम्मति की कि इसका विवाह एक मूर्ख से कर देना चाहिये, जिस से इसको अपनी विद्या के अभिमान के बदले में महा मूर्ख पति मिल जावे। इतने में उन पण्डितों ने एक बकरियां चराने वाले मनुष्य को ढूंढ़, उससे कहा कि हम अभी तेरा विवाह एक उत्तम विदुषी स्त्री के साथ कराये देते हैं, परन्तु तू मौन रहना कुछ बोलना नहीं और तुझे जो कहना हो संकेत से कहना। वह विवाह का नाम सुनते ही प्रसन्न हो गया तब वे सब कपटी पण्डित उस मूर्ख को विद्योत्तमा के निकट ले गये और उससे कहा कि योग्य मौनी पण्डित आये हैं जो तुम से संकेत से शास्त्रार्थ करेंगे और यदि वह तुम्हारे दो तीन प्रश्नों का उत्तर संतोषजनक देदेंगे तो तुमको उनके साथ विवाह करना उचित होगा। जबदोनोंने इसी प्रकार स्वीकार कर लिया तब एक स्थानपर शास्त्रार्थ हुआ, वहां विद्योत्तमा ने पहिले एक अँगुली उठाई जिससे उसका प्रयोजन यह था कि आत्मा एक है, तब उस मूर्ख ने यह समझा कि यह कहती है, कि मैं तेरी आंख फोड़दूंगी तो उसने दो अंगुलियां उठा दीं कि मैं तेरी दोनों फोड़ दूंगा। परन्तु उस विदुषी स्त्री ने यह समझा कि यह कहता है कि एक जीवात्मा और एक परमात्मा है। फिर उसने पांच उंगली उठाई जिससे उसका प्रयोजन यह था कि तुम्हारी पांचों इन्द्रियां तुम्हारे आधीन हैं ? तब उस मूर्ख ने यह समझा कि यह कहती है कि मैं तेरे थप्पड़ मारूंगी इस लिये उसने मुट्ठी बांधकर उसकी ओर संकेत किया कि मैं तेरे मुक्का मारूँगा, जिससे वह समझी कि यह कहता है कि मैंने सब इन्द्रियों को अपनी मुठ्ठी में कर लिया है। जब उसकी इस प्रकार कपट से परीक्षा कराई गई और विद्योत्तमा उसको पंडित समझ गई तो प्रतिज्ञा के अनुसार दोनों का विवाह हो गया। परंतु जब रात्रि को पण्डिता ने सम्भाषण किया तो वह महामूर्ख मालूम हुआ जिस को जान उन पण्डितों का कपट समझ विद्या के प्रभाव से धैर्य को धारण कर परमेश्वर के भरोसे पर उसको शिक्षा देना आरम्भ किया, जिसका अंतिम फल यह हुआ कि वह कवि कालिदास के नाम से प्रसिद्ध हुआ

तथा जिनकी रचित पुस्तक रघुवंश, मेघदूत, शकुन्तला नाटक इत्यादि आज तक भारतवर्ष आदि देशों में प्रसिद्ध हैं। प्यारी बहिनों! विचारो, कि विद्या का कैसा प्रभाव है कि विद्योत्तमा ने अपने मूर्ख पति को पण्डित बनाकर आप सुख उठाया और संसार में उसका नाम प्रकाशित कर दिया।

मन्दोदरी—यह तमाल देशके राजा की बेटी थी, जिसका विवाह लंका के राजा रावण के साथ हुआ था, जिसको सरनद्वीप कहते हैं। यह बड़ी सुन्दर और बुद्धिमतीथी, जो रावण के यहां पटरानी करके प्रसिद्ध थी जिससे कई बलवान् पुत्र उत्पन्न हुये थे। जब रावण अयोध्या के राजा रामचन्द्र की रानी सीता को बनसे हर ले गया तब मन्दोदरी ने उसको लौटाने के विषय में कई बार समझाया तथा अपने पति को हिंसा से बचाने के लिये शतरंज का खेल निकाला था।

कुन्ती—इस के नाम को इतिहास के पढ़ने वाले अच्छे प्रकार से जानते हैं। यह मथुरा के राजा शूर की बेटी थी, और इसका चन्द्रवंश के राजा पाण्डु के साथ विवाह हुआ था।

एक समय कोई स्त्री अपने सम्पूर्ण आभूषण आदि पहन कर कुन्ती के पास आई और कहा कि तू भी अपने आभूषण मुझको दिखा उसने अपने पुत्रोंको सम्मुख खड़ा कर कहा कि इन आभूषणों के उपरांत मेरे पास कोई आभूषण नहीं हैं। इनसे मेरी बड़ी प्रतिष्ठा है। इसके पश्चात् जब श्रीकृष्ण विराटनगर से कुरु पाण्डवों की संधि कराने के लिये हस्तिनापुर आये तब कुन्ती ने पुत्रों के लिये यह संदेशा भेजा था, ऐ बेटो! समय को अपने हाथ से न जाने देना, तुमको योग्य है कि अपने पिता के राज्य के लेने के लिये युद्ध करने में किंचित् विलम्ब न करना चाहिये, तुम शीघ्र अपना राज्य उनसे लेलो क्योंकि तुम क्षत्रिय हो। व्योपार करने वा खेत बोने और भीख मांगने के लिये तुम उत्पन्न नहीं हुए हो शस्त्र बांधना और मरना मारना तुम्हारा कार्य है—अप्रतिष्ठा के साथ जीने से मरना हजार गुणा अच्छा है। तुम सांसारिक पुरुषों पर प्रकट करदो कि वीरवती कुन्ती हमारी माता है। इन शत्रुओं के कारण ही जो २ दुख तुम्हारे घराने को हुए हैं वह कथन के योग्य नहीं हैं। जब मैं यह सोचती हूं कि तुम्हारी कोमलाङ्गिनी पत्नी द्रौपदी के बाल पकड़ कर किस प्रकार घसीटा तो सब

दुःख इस अप्रतिष्ठा के सम्मुख न्यून जान पड़ते हैं, यदि तुमने इसका पलटा कौरवों से न लिया तो संसार में तुम्हारा जीना वृथा है तुमको योग्य था कि जिस दिन यह अप्रतिष्ठा हुई, उसी दिन उस का पलटा लेते या उसी स्थान पर मरकर ढेर हो जाते । अब वह समय चलागया अब शीघ्रता करो। प्यारी बहनों ! विचारो, क्या कोई बिना विद्यावती होने पर ऐसी सच्ची शूरवीरताकी शिक्षा कर सकती है ? उसकी इस शिक्षाका यही फल हुआ कि कौरवों का सत्यानाश हुआ युधिष्ठिर राजा हुए। कुन्ती ने राजसूययज्ञ किया । अब उसकी सब आशाएं पूर्ण हो गई तब वह धृतराष्ट्र और गान्धारी के साथ गंगा किनारे तपस्या करने चली गई जहां आयु के दिन पूरे होने पर वन में आग लग जाने से परलोक यात्रा की ।

विदुला—यह एक राज कन्या थी जिसने अनेक शास्त्र पढ़े थे, जब इसका पुत्र सिन्धुराज से परास्त हो उत्साह और उद्योग रहित होगया, उस समय उसको इस प्रकार शिक्षा की कि तू मेरा पुत्र नहीं है जो पुरुषार्थ रहित हो गया, यदि तू कल्याण चाहता है तो फिर से पुरुषार्थ कर और कायर पुरुषों की भांति जो थोड़ी सी वित्ति से सन्तुष्ट हो जाते हैं ऐसा न कर । देख कुत्ते की भांति नीच वृत्ति अवलम्बन करके मरना अच्छा नहीं अरे जीने की आशा को त्याग कर आकाश में उड़ने वाले बाज पक्षी की भांति शत्रुओं पै ऊपर गिरकर लोक में विख्यात हो, क्योंकि इस प्रकार के जीने से संग्राम में लड़ कर मरना सौ गुणा अच्छा है। देखो दान, तपस्या, सत्य, विद्या और धन के उपार्जन करने में जिसका यशपृथिवी पर विख्यात नहीं वह माता का पुत्र कहलाने योग्य नहीं है । अन्त को माताके वचनों से प्रोत्साहित हो पुत्र ने पुनः युद्ध कर विजय लाभ किया ।

गान्धारी—इसने महाभारत होने से प्रथम दुर्योधन को समझाया था कि तू वृद्धों के वचनों तथा माता पिता और मेरी बात को न मानकर ऐश्वर्य जीवन और सुख की आशा को छोड़कर शत्रुओं के हाथ से मारे जाने का यत्न कर रहा है । हे मूर्ख ! तू क्यों अत्यन्त लोभवश होकर योग्य पुरुषों की उत्तम सम्मति को नहीं मानता देख अन्त को बारम्बार पश्चात्ताप कर प्राणों का त्याग करेगा । इसलिये श्रीकृष्ण आदि महान्

---

* हमारे यहां पांचों पांडवों तथा युधिष्ठिर दुर्योधनादि के विस्तार युक्त जीवन तैयार हैं, मूल्य भी बहुत थोड़ा है, मंगा कर देखिये।

पुरुषों की इच्छानुसार कार्य कर आनन्द को भोग। परन्तु दुर्योधन ने न माना जिसका उसे उचित फल भी मिला।

सुमित्रा—यह महाराज दशरथ की द्वितीय स्त्री थी, इसने अपने पुत्र धर्मात्मा लक्ष्मण को श्री रामचंद्र के साथ वन में जाने के लिये निम्न-लिखित शिक्षा की थी,

रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम् ॥
अयोध्यामटवीं विद्धि गच्छ तात ! यथासुखम् ॥

हे तात ! तुम रामचंद्र को दशरथ और सीता को मेरे समान और वन को अयोध्या जानते हुए सुख पूर्वक जाओ और उनकी सेवा कर यथार्थ धर्म का पालन करो जो कि तुम्हारा कर्त्तव्य है।

तारा—यह तामिल देश के राजा की पुत्री थी, जिसका विवाह वालि के साथ हुआ था। यह अत्यन्त सुशीला और योग्य स्त्री थी। इसने पति को रामचन्द्र के आधीन रहने के अर्थ बहुत समझाया था, परंतु जब उसने न माना और वह संग्राम के लिये चला तब मन्त्र जानने वाली तारा ने विजय की इच्छा से 'स्वस्तिवाचनादि' मंगल पाठ पढ़ा था। जैसा कि किष्किन्धाकाण्ड सर्ग १६ श्लोक १२ में लिखा है—

ततः स्वस्त्ययनं कृत्वा मन्त्रविद्विजयैषिणी ॥
अन्तः पुरं सहस्त्रीभिः प्रविष्टा शोक मोहिता ॥

और जब वालि मारा गया और वह अपनी सखियों के साथ वालि के शव पर गई तब उसने निम्न लिखित वाक्य कहते हुए शोक प्रकट किया जिसको सुन वज्र के समान हृदय भी पीड़ित होता था—

नाना विधि विलाप कर तारा। छूटे केश न देह संभारा ॥
पुनि पुनि तासु शीश उर धरई। वदन विलोकि हृदय मंह हरई ॥
मैं पति तुम्हें बहुत समझावा। काल विवश कछु मनहिं न आवा ॥
अंगद कहं कछु कहन न पायहु। बीचहि सुरपुर प्राण पठायहु ॥

इस प्रकार जब तारा रुदन करने लगी तब श्री रामचन्द्र ने उसको उपदेश किया—

क्षिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित यह अधम शरीरा।
प्रकट सो तनु तव आगे सोवा। जीवनित्य तुमकेहि लगि रोवा ॥

इसको सुन वह कुछ शांत हुई तब राम ने कहा कि अब वालि की क्रिया करो, फिर अङ्गद का राज्य देख शांत हो आनन्द करो, इस पर तारा ने हनुमान से कहा कि एक ओर अङ्गद के समान सौ पुत्र हों और एक ओर मारे हुये वीर वालि के अङ्गों का लिपटाना हो तो भी पुत्रों के सुख से मृतक पति के अङ्गों का लिपटाना श्रेष्ठ है। कहिये क्या बिना ज्ञान के पातिव्रत धर्म की महिमा कोई कर सकता है ? कदापि नहीं।

विद्याधरी—यह पूर्ण विदुषी विख्यात पण्डिता काशी के निवासी प्रसिद्ध पण्डित मण्डन मिश्र जी को व्याही थी। विद्याधरी तथा मण्डन मिश्र की विद्या की कीर्ति संसार में चहुं ओर फैली हुई थी। प्रयाग में इनकी विद्या का प्रभाव सुन स्वामी शंकराचार्य शास्त्रार्थ के निमित्त इलाहाबाद से काशी चले। चलते चलते जब काशी के नगर में पहुंचे तब मंडन मिश्र का घर न जानने के कारण कुएं पर पानी भरती हुई कहारियों से मण्डन मिश्र का घर पूंछा तब कहारियों ने निम्न लिखित श्लोक से उत्तर दिया—

> स्वतःप्रमाणं परतःप्रमाणं कीराङ्गना यत्र गिरं गिरन्ति ।
> द्वारेतुनीडान्तर सन्निरुद्धा अवेहि तन्मण्डनमिश्रधामा ॥

हे दण्डी ! जिसके द्वार पर दो चिड़ियां पींजड़े में बैठी हुई जीव और ब्रह्म के विषय में वार्तालाप कर रही हैं वह प्रत्यक्ष घर मण्डन मिश्र का जानों। शंकर इस बात को सुन चकित हो मन में विचार करने लगे कि जहांकी कहारी इतनी पढ़ी हैं तो मंडन मिश्र क्यों न बड़े विद्वान् होंगे। तो भी यह सोच कर कि डरना भला नहीं, परमात्मा का भरोसा रख उनके गृह पर पहुंचे। मंडन मिश्र उस समय ब्राह्मणों को भोजन करा रहे थे, इन को भी सत्कार पूर्वक गृह में लिया और भोजन करा तथा कुशल पूंछ कर कहा कि आप कैसे आये हैं ? शंकराचार्य ने उत्तर में कहा कि मैं आप से शास्त्रार्थ करने के लिये आया हूं। मंडन ने कहा कि हमारे और आप के बीच में मध्यस्थ कौन रहेगा ? शंकर ने उत्तर दिया विद्याधरी (जिसका द्वितीय नाम उभयभारती था) मध्यस्थ रहे। जब नियम निर्णय हो चुके तब शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। जब मंडन मिश्र हार गये तब विद्याधरी ने न्याय पूर्वक कहा कि "कविर्दण्डी, कविर्दण्डी, कविर्दण्डी न संशयः" अर्थात् स्वामी शङ्कराचार्य की विजय में संशय नहीं, परन्तु हे दण्डी मेरे पति को आपने समस्त नहीं जीता क्योंकि अभी उनकी अर्द्धांगिनी मैं बैठी हूं जबतक आप

मुझको भी अपना शिष्य न बना लेंगे तब तक विजय पत्र नहीं पा सकते, अर्थात् मुझको भी शिष्य बनाइये, जैसा—

अपितु त्वयाऽद्य न समग्रजितः प्रथिताग्रणीर्मम ततिर्यदहम्।
वपुरर्द्धमस्य नजितामतिमन् अपिमां विजित्यकुरुशिष्यमिमाम्॥

तब शंकराचार्य ने उत्तर दिया कि महा यशस्वी स्त्रियों से शास्त्रार्थ नहीं करते। दंडी जी का यह वचन सुन विद्याधरी बोली—

यदिवादिवादकलहोत्सुकतां प्रतिपद्यते हृदयमित्यवले।
तदसांप्रतंनहिमहायशसो महिलाजनेन कथयन्तिकथाम्॥

अर्थात् जो अपने पक्ष को खण्डन करे उसका उत्तर अवश्य देना चाहिये, और जो आप यह कहते हैं कि स्त्रियों के साथ पुरुष शास्त्रार्थ नहीं करते तो सुनिये—

स्वमतं प्रभेत्तुमिह यो यतते स वधूजनोस्तु यदि वास्त्वितरः।
यतितव्यमेव खलु तस्य जये निजपक्षरक्षणपरैर्भगवन॥
अतएव गार्ग्यभिधया कलहंसहयाज्ञवल्क्यमुनिराडकरोत्।
जनकस्तथा सुलभयाऽबलया किममी भवन्ति नयशोनिधयः॥

कि क्या आप नहीं जानते कि गार्गी ने याज्ञवल्क्य से और जनक ने सुलभा के साथ शास्त्रार्थ किया और उनको हार जाने पर भी क्या याज्ञवल्क्य और जनक का संसार में अपयश है? नहीं २। शंकराचार्य जी इस का कुछ उत्तर न दे शास्त्रार्थ करने पर उद्यत हुये। प्यारी बहिनों! सुयोग्य भाइयो! फिर क्या था दोनों का समारोह से १७ दिन तक शास्त्रार्थ होता रहा शास्त्रार्थ भी कैसा? अर्थात् वेद और शास्त्रों के प्रमाण सहित तथा बुद्धि और तर्क से एक एक शब्द को सिद्ध किया जाता था जैसा कि कवि ने कहा है—

अथ सः कथाप्रववृतेस्म तयोरुभयोः परस्परजयोत्सुकयोः।
मतिचातुरीरचितशब्दभरी श्रुतिविस्मयी कृतविचक्षणयोः॥

पाठको! अन्तिम दिवस उभयभारती ने प्रश्न किया कि बतलाइये काम की भीतरी और बाहरी कितनी कला हैं, जिसका उत्तर उन्होंने दिया कि मैंने ब्रह्मचर्याश्रम से ही संन्यास ले लिया है इस लिये मैं नहीं जानता अर्थात् शंकराचार्य को बुद्धि और तर्क द्वारा हरा अपने पति की प्रतिष्ठा को रक्खा।

क्या कोई स्त्री बिना विद्या के ऐसी बुद्धिमत्ता की बात निकाल अपने पति की प्रतिष्ठा को रख सकती है।

मृगनयनी—यह गुजरात के राजाकी पुत्री और ग्वालियर के राना की रूप और सुन्दरता में अद्वितीय पत्नी थी जो गान विद्या में योग्यता रखती तथा विशेष कर संकीर्ण राग को अद्भुत प्रकार से गा राजा को प्रसन्न करती रहती थी।

मीराबाई—यह मिरता के राठौर की (जो मारवाड़ देश में सब से उच्च वंश माना जाता है) पुत्री और चित्तौर के महाराजा कुम्भ की रानी, अत्यन्त रूपवती, गुणवती और कवीश्वरा थी जिसकी परम ललित और मधुर कविता गीतगोविंद राजा और उनकी रानीको अतिप्रिय थी भाषाकी कविता में बाई भी भाषा के कवीश्वर जयदेव जी से कुछ कम न थीं किंतु उसके बनाये हुये भक्तिरस प्रकाशित करने वाले भजन आज तक वैष्णवों के मन्दिरों में गाये जाते हैं, उसे सांसारिक विषयों से वैराग्य था।

रूपवती—यह रूपवती और विदुषी स्त्री थी, जो गान विद्यामें विशेष योग्यता रखती थी।

पद्मावती—रानी पद्मावती के रूप गुण और बुद्धिकी तीव्रता और पतिव्रतधर्म प्राण दे देने की प्रशंसा बहुधा कवियों ने की है। यह राना हमीरसिंह चौहान सिंहलद्वीप की पुत्री थी। अत्यन्त सुन्दर होने के कारण इसका नाम पद्मावती रक्खा गया और लक्ष्मणसिंह के चचा भीमसिंह को व्याही गई थी। अलाउद्दीन ने इसके रूप पर मोहित हो १२७२ में चित्तौर पर चढ़ाई की। जब कोई उपाय अपनी अभिलाषा की पूर्ति का न देखा तो राजा से विनयपूर्वक कहला भेजा कि यदि आप मुझे उस परम सुन्दरी के दर्शन मात्र करादें तो मैं सन्तोष कर दिल्ली चला जाऊं। राजाने स्वीकार कर लिया क्योंकि उस समय परदा का रिवाज न था, बादशाह राजपूतों के सत्य और धर्म पर भरोसा कर थोड़े मनुष्यों को साथ लेकर गढ़ के भीतर गया और रानी के दर्शन कर अपनी अभिलाषा को पूर्ण कर लौटते समय बहुत कुछ निवेदन किया कि मेरे कारण आपको इतना क्लेश हुआ अब आप क्षमा कीजिये, हमारी आपकी मित्रता आगे को बनी रहेगी राजा ने मनमें सोचा कि बादशाह हमारे ऊपर विश्वास कर गढ़ में अकेला चला आया है, इसलिये हमको उचित नहीं कि हम इसके वचन पर वि-

ख्याल न करें, उसके पहुंचाने के लिए क़िलेके बाहर तक वे बादशाह के साथ चले गए, परन्तु बादशाह के मनमें कुछ छल था, । बातों ही बातों में राजाको अपने लश्कर तक ले आया और उसको क़ैद कर लिया और निर्लज्ज होकर राजासे स्पष्ट कह दिया कि जब तक आप अपनी रानीको हमको न देंगे तब तक हम तुम्हें न छोड़ेंगे।

जब इस समाचारको रानीने सुना तो उसने तुरन्त अपने चाचा और भाई आदिको सम्मति करनेके लिए बुलाया और कहा कि कौनसा उपाय ऐसा किया जावे कि जिससे राजा छूटकर यहां आजावें और मेरी प्रतिष्ठा में बट्टा न लगे। सबकी यह सम्मति ठहरी कि आप शाहके साथ जानेका बहाना करके राजाको उस विश्वासघाती से छुड़ा लावें। रानीने बादशाह से कहला भेजा कि मैं अपनी सब सखी सहेलियों के साथ आपके पास आती हूँ। बादशाहने प्रसन्नता पूर्वक स्वीकार कर लश्कर में सिपाहियोंको आज्ञा दी कि रानी पद्मावती आती है, कोई मनुष्य किसी प्रकार का उपद्रव न करे वा किसी स्त्री का परदा न खोले और उसकी सहेलियों के लिये सात सौ डोलियां तैयारकी गईं, जिनमें से प्रत्येक के भीतर एक एक शस्त्रधारी रणधीर क्षत्रिय और बाहर छः छः डोली के कहारों के भेष में, बादशाह के लश्कर में पहुंचे। वहां एक तम्बू के भीतर डोलियां उतार दी गईं। रानी ने राजा से भेंट करने के लिये शाह से आध घण्टेका अवकाश मांगा। रानी की विनतीपर उसको करुणा आई कि एक बार तो उसे और अपने पति से मिलने की आज्ञा देदेना चाहिये नहीं तो फिर कहां मिलना होगा, अब वह दूसरे की स्त्री हुई जाती है। बादशाह फूले नहीं समाते थे कि अब तो ऐसी रूपवती स्त्री हमारे हाथ आगई। इसी आशा में मग्न बैठा हुआ घड़ी के मिनटों को देख रहा था कब आध घण्टा हो कि परम सुन्दरी हमारे सम्मुख आवे। इधर कुछ और ही कौतुक हुआ अर्थात् राजा और रानी शीघ्रगामी घोड़ों पर सवार होकर चित्तौड़ को चले गये और ७०० सिपाहियों ने कपट रूप त्याग कर शाह के लश्कर को मार कर भगा दिया। बादशाह दिल्ली को लौट आया परंतु बादशाह मारे लज्जाके प्रतिदिन इसी उपाय में डूबा रहता कि किस प्रकार चित्तौड़ हाथ आये और यह मेरी लज्जा संसार से जाय। सन् १३०३ में फिर बड़ी धूमधाम से चढ़ाई की। बादशाह के सिपाही प्राणों का दांव लगा कर धावा करते थे, जब राजपूतोंने देखा कि टीड़ी दलके सम्मुख हमारा बल और कुछ काम न

देगा, अप्रतिष्ठा से कुत्ते की मौत मरना अच्छा नहीं। क्षत्रियों की शोभा इसी में है कि तलवार की धारसे रणभूमि में मारे जावें। इस लिये ऐ युवतियो! आओ तुम सब इस दहकती अग्निमें प्रवेश करो हम सब कल स्वर्ग में मिलेंगे। निदान सब की सब जिसमें सुकुमार पद्मावती भी थी, जल कर भस्म होगई। फिर क्षत्रियों ने केसरिया वस्त्र पहिन कर किले का फाटक खोल दिया और सब के सब लड़ कर कट मरे। बादशाह पद्मावती के मिलने की आशा में चूर होरहा था, ज्योंही वह किले के भीतर गया त्योंही रानी के कोमल शरीर से धुआं उठते देख हाथ मार रह गया और निराश हो कर क्रोधमें आ जो कुछ स्त्री पुरुष उस किले में बचे थे सबको भेड़ बकरी के समान काट डाला। हवेलियां और सुन्दर स्थान जो बने थे, उनको तुड़वा डाला, केवल उस रङ्गमहल को पद्मावती के आदरार्थ छोड़ दिया जिसमें वह निवास करती थी।

प्यारी बहिनो! उक्त रानीने प्रथम युक्ति से अपने पति को बन्दी से छुड़ाया अपने पतिव्रतधर्म की रक्षाकी जिस से उस का आज तक यश गाया जाता है। क्या विना विद्या और धार्मिक शिक्षा के ऐसे योग्य कार्य को कोई कर सकता है? कदापि नहीं। इसलिए पद्मावती की भांति विपत्ति के समय धैर्य्य और साहसी बनने के लिये विद्या पढ़ो जब ही तुम पतिव्रतधर्म का पालन कर सकती हो।

एक सभ्य स्त्री--एक नगर में विद्वान पण्डित और उनकी विदुषी स्त्री रहती थी। दोनों में परस्पर बड़ा प्रेम था। पति स्त्री से प्रसन्न स्त्री पति से एक दिन पण्डित जी के एक मित्र विदेश से आये भोजनादि पाने पर मित्र ने भोजनों की प्रशंसा कर कहा कि आपकी स्त्री बड़ी योग्य है। पण्डितजीने पूछा कि आपने उसकी योग्यता किस प्रकार से जानी? मित्रने कहा कि गृह में सफाई वस्त्रादि सब साफ, भोजन अति रुचिकारक आदिसे जाना जाताहै। पण्डितजीने कहा कि हमको इस स्त्री के पीछे संसार में परमानन्द है महाशय यह बड़ी गुणवती और बुद्धिमती है। मैं अभी आप को इसकी योग्यता और सभ्यता का पूर्ण परिचय दिखलाता हूं। इतना कह पंडित जी ने पंडितानी को बुलाकर कहा कि मैं अपने मित्र के साथ परदेश जाना चाहता हूं तुम्हारी क्या सम्मतिहै, स्त्रीने निम्न लिखित श्लोक पढ़कर कर कहा कि—

मायाहीत्य परमंगलं व्रजपुनः स्नेहेन हीनं वचः,
तिष्ठेति प्रभुतायथा रुचि कुरुष्वैवाप्युदासीनता ।
नोजीवामि विनात्वयेति वचसा सम्भाव्यतेवानवा,
तन्मांशिक्षयमित्रयत्समुचितं गन्तु त्वयि प्रस्थिते ॥

रोकहिं जो तो अमंगल होय, औ प्रेम नसै जो कहैं पिय जाइये ।
जो कहैं जाहु न तौ प्रभुता, जो कछु न कहैं तौ प्रेम नसाइये ॥
जो हरि चन्द्र कहैं तुमरे बिन, जीहैं न तौ यह क्यों पतिआइये ।
तासों पयान समय तुमरे, हम का कहैं, आप हमैं समझाइये ॥

यह सुन मित्र ने पंडित और पंडितानी जी को धन्यवाद दे कहा महाराज शिक्षा का यही फल है, विद्यासेही सभ्यता आती है, विद्या कामधेनु गाय है, जो कोई विचार पूर्वक इसको दुहता है वही अमृत अर्थात् आनन्द को पाता है ।

संयोगता—यह कन्नोज के राजा जयचन्द की परम सुन्दरी गुणवती पुत्री थी पृथ्वीराज और जयचंद में ईर्षाद्वेष चला आता था पृथ्वीराज ने अश्वमेध यज्ञ किया जयचन्द को ईर्षा उत्पन्न हुई और उसने राजसूय यज्ञ करने की तैयारी की, यज्ञशाला उत्तम प्रकार से सजाई गई जहां भारतवर्ष के सम्पूर्ण राजे महाराजे एकत्रित थे, केवल पृथ्वीराज ही ईर्षा के कारण नहीं आये । राजा ने उनकी निन्दा करने के अर्थ पृथ्वीराज की मूर्ति बनाकर ड्योढ़ी पर खड़ी करादी । यज्ञ समाप्ति पर राजा ने अपनी बेटी का स्वयंवर भी किया, जिस समय राजकन्या जयमाल ले यज्ञमंडलमें आई और जिस शूरवीर गुणी पृथ्वीराज को मनमें चुनाथा, उसे न देख कर अपने पिता की अप्रसन्नता और द्वेषका कुछ विचार न कर सब सभाके सम्मुख पृथ्वीराज की मूर्ति के गले में जयमाला डालदी । तब पिताने क्रोधित हो कहा कि तूने मेरे शत्रु के गले में जयमाला डालदी उस समय संयोग्यताने नम्रतासे कहा कि हे पिता ! आप क्रोध न कीजिये क्योंकि आपने मुझको स्वयंवर की आज्ञा दी थी, इस लिये जिसको मेरे मन ने स्वीकार किया उसके जयमाला डालदी । हां आपने यह क्यों नहीं कह दिया, तुम मेरी आज्ञा से अमुक राजा से विवाह करलो । इस लिये अब आप अपने वचनानुसार क्षत्रियवंश की प्रतिष्ठा को सदा नियत रहने के लिये निर्वाह कीजिये । सभा और पिता इस वचन को सुन मन में शान्त हो

गये परन्तु ईर्षा की अग्नि ने फिर भी उसको शान्त न दी और राजा ने कहा मैं जीते जी प्रसन्नता पूर्वक विवाह नहीं करूंगा। जब पृथ्वीराज ने यह समाचार सुने तब वह एक दिन अचानक चुने हुये सवार और प्रधान गण साथ ले सब के देखते देखते राजमहलों से उसे लेकर चले आये, साथ ही ५ दिन तक बड़ा युद्ध हुआ अन्त को रानी समेत वह दिल्ली पहुंच गया रानी के प्रेम में राजा ऐसे डूब गये कि एक वर्ष व्यतीत होते न जान पड़ा, इतने में राजदूतों ने समाचार दिया कि महाराज यवनों की सेना चढ़ी आती है उस समय रानी ने अपना भेष बदल कर राजा से कहा कि उठिये यह समय भोगविलास का नहीं है आप क्षत्रिय हैं और क्षत्रिय का धर्म प्रजा की रक्षा है इस लिये अस्त्र शस्त्र सँभालिये, संग्राम की तय्यारी कीजिये क्षत्रिय वंश ने अपनी मान प्रतिष्ठा के निमित्त अपने प्राणों को देडाला है उसका नाम इतिहास में संग्राम में विजय पाने या रण में मरने से होता है आपके साथ मैं भी स्वर्ग को चली जाऊंगी। यह सुन पृथ्वीराज ने कमर बांधी परन्तु शोक कि उसके बहुत से सुभट और वीर योधा कन्नौज में काम आ चुके थे तो भी उसने सेनाके चलने की आज्ञा दी और अपनी माता आदि से मिलने के पश्चात् जब वह रानी से मिले तब दोनों की अति प्रेम के कारण टकटकी लग गई। प्यारी के हाथ से सुवर्ण के कटोरे में जल पान कर सेना के डंकों का शब्द सुन चल दिये। जब पीछे की सेना संयोगता को सौंप कर गया तो सती को व्याप गया कि राजा का अब द र्न होना दुर्लभ है इतने में राजा पकड़ा गया और गले पर छुरा फेर कर मारा गया। शहाबुद्दीन गोरी ने रानी को बहुत समझाया परन्तु उस सती ने एक न माना और सतीधर्म की रक्षाके लिये वह उसी समय पति के साथ भस्म होगई।

शकुन्तला—यह महात्मा कण्व की पुत्री थी। राजा दुष्यन्त ने इससे गन्धर्व विवाह किया था। चलते समय अंगूठी देकर वह अपने राज्य को चला आया, फिर उसको नहीं बुलाया। तब उक्त महात्मा की आज्ञानुसार उसके चेले उसको लेकर राजा के पास गये। परन्तु शोक कि राजा ने उसको नहीं जाना। तब शकुन्तला ने कहा कि महाराज प्राण पुरुष अर्थात् परमेश्वर को साक्षी देकर जब आपने विवाह किया था, अब आप भूलते हैं। हे स्वामिन्! जो गृह कार्य्यों में दक्ष, जिन्होंने पुत्र का प्रसव

क्रिया तथा जो पतिव्रता है वही भार्या है मनुष्यों का स्त्री आधा अङ्ग है, भार्या सबसे बढ़कर साथी है, भार्या ही इन तीनों वर्गों की जड़ है, भार्या ही संसार के पार करने का कारण, जिनके भार्या है वही गृह वासी हैं, उत्तम भाषण करने वाली और एकान्त में सम्मति देने वाली है, वही मित्र के समान है, धर्म कर्म में हितैषी पिता के समान है, पीड़ा की दशा में स्नेहवती, मातृवती और रूखे मार्ग में पथिक पति का विश्राम स्थल है, इसके उपरांत जिसके भार्या होती है उसी का लोग विश्वास करते हैं, सच तो यह है कि चतुर भार्या ही पति को सांसारिक नरकों अर्थात् दुःखों से छुड़ाती है, इस लिये अति क्रोधित होने पर भी पति को पत्नी का अप्रिय कार्य न करना चाहिये। क्योंकि रीति, प्रीति और धर्म सबही भार्या के हाथ में हैं, स्त्रियां आत्माकी सनातन पवित्र क्षेत्र हैं। ऋषियों की भी ऐसी शक्ति नहीं है कि स्त्री के बिना प्रजा रचें। देखिये सैकड़ों कूपों की प्रतिष्ठा से एक तालाब की प्रतिष्ठा श्रेष्ठ है। सहस्रों तालावों से एक यज्ञ और सैकड़ों यज्ञों से एक पुत्र और सहस्रों पुत्रों से एक सत्यनिष्ठ श्रेष्ठ है सर्व वेदों का पठन सब तीर्थों में स्नान एक सत्य के समान होता है, सत्य के समान धर्म नहीं, असत्य से अधिक कुछ नहीं, मिथ्या से बढ़कर कोई पाप नहीं आपने मुझसे जो नियम किया उस का उल्लंघन न कीजिये। इसके पीछे राजा को होश आया और शकुन्तला को पहचाना, फिर दोनों ने आनन्द से आयु व्यतीत की। उनका सुपुत्र भरत इस देश का राजा हुआ। जिस के नाम से यह देश भारतवर्ष प्रख्यात हुआ।

कृष्णाकुमारी—यह उदयपुर के राजा की पुत्री थी जिसका जन्म सन् १८७२ में हुआ था। यह अत्यन्त रूपवती और सुन्दर थी इसकी मन्द चाल और मृदुभाषण ऐसा मनोहर था जिससे उस देश के लोग उस को राजस्थान का कमल कहते थे। इसका विवाह जोधपुर के महाराज के साथ ठहराथा जो विवाह होने से प्रथम ही परलोकवासी होगये, तब उसके विवाह की बात चीत जयपुर के महाराज के साथ होनी आरम्भ हुई और कुछ काल में टीका भी हो गया, इनमें द्वितीय जोधपुर धीश ने जो उन मृतक महाराज के पीछे गद्दी पर बैठे, कहला भेजा कि प्रथम इसकी शादी महाराज जोधपुर से नियत हुई थी इस कारण इसका पाणिग्रहण हमारे साथ होना चाहिये। इस प्रकार दोनों राजे बरने के लिये वहां पहुंचे और

राजा को धमकाने भी लगे कि यदि कन्या हम को न दोगे तो तुम्हारे राज्य को विध्वंस कर डालेंगे। राना का वंश और पदवी सब राजाओं से अधिक मानी जाती थी परंतु उस समय वह इतना बल न रखता था कि दोनों अथवा एक को लड़ कर परास्त करता। दोनों राजा इधर उधर के लुटेरों की सेना इकट्ठी करने लगे और सेनाओं ने उदयपुर में लूटमार मचादी। राजा हैरान था कि क्या करें। अंत को अमीरउद्दीन ने सम्मति दी कि आप इस पुत्री ही को क्यों न पृथक् करदें तो यह सब बखेड़े जाते रहें। राजा इस घोर हत्या करने और निष्पापिन के मारने को उद्यत न हुआ, परन्तु इन दोनों राजाओं के मारे बेकल था। वह अमीरउद्दीन उपरोक्त सम्मति ही देताथा जिसको राजा ने फिर स्वीकार कर लिया। परंतु इस भयंकर पाप को करने के लिये कोई बधिक नहीं मिलता था, अंत को सब लोग राजा के एक सम्बन्धी की ओर संकेत करने लगे कि यह इस कार्य को कर उदयपुरकी प्रतिष्ठा को रक्खेंगे। वह क्षत्रिय इन कायरों के इस घोर विचार को सुनते ही कांप उठा और ऊंचे स्वर से राज सभा में कहनेलगा धिक्कार है। उस पुरुष को जो मुझ से उस निर्दोष कन्या के वधके लिये कहे, खाकपड़े उस सम्बन्ध पर जो इस अत्याचार करने पर शेष रहे तब राजा का एक भाई इस कार्य्य के लिये बुलाया गया कि उदयपुर की लज्जा इसी में रहती है कि तुम इसका वध कर आओ। तब वह बड़ी कठनाई से बरछी मारने पर राजी हुआ, जब वह महलों में पहुंचा जहां वह सुन्दरी, नवयौवना, कन्या, (जो साक्षात् लक्ष्मी के समान थी) बैठी हुई देखी। उसकी भोली आकृति देख बधिकका पाषाण हृदय कमल के समान कोमल होगया और उसका हाथ उस निरपराधिनी कन्या पर न उठ सका और घबराहट के कारण उसके हाथ से बरछी गिर पड़ी परन्तु यह सब भेद कृष्णाकुमारी और उसकी माता पर प्रकट होगया और वह मनुष्य अपनी दुष्टतापर लज्जित हो लौट गया। माता स्नेह वश अपनी निरपराधिनी कन्या के मारने वाले को अनेक दुर्वचन कहने लगी और शोकग्रस्त हो ऊंचे स्वरसे-रुदन करने लगी परंतु वह विद्यावती वीरकन्या अपने पिता, वंश प्रजा और देश के हित के लिये अपने जीवन का आप बलिदान करने को उद्यत होगई। इधर बरछी के बदले विष देने का विचार हुआ। तब एक राज सेवक ने रोते रोते राजा की आज्ञा से विष का प्याला लाकर कृष्णा कुमारी के हाथ में दिया। उस परम धैर्य्यवती गुण-

वती कन्या ने चित्त को दृढ़ करके पिता की आज्ञा उनकी आयु, धन, सम्पति की रक्षा और वृद्धि के अर्थ परमेश्वर से प्रार्थना करती हुई शिर झुकाकर पीलिया और मृत्यु के भय से उसके नेत्रों में से एक आंसू तक न निकला। जब माता प्रेमवश होकर दुःख से पीड़ित हो हत्यारे लोगों को दुर्वचन कहती तो वह शीलवती पुत्री अपनी दुखी माता को यों समझाती थी, मेरी प्यारी माता तुम मेरे लिये इतना क्यों शोक करती हो ? क्या यह अच्छा नहीं है कि मैं इस प्रकार के दुःखों से जीवन भर के लिये छुटकारा पा जाऊं ? मुझे मरने का किंचित् भय नहीं, क्योंकि उत्पन्न होने के समय से ही काल मेरी आंखों के सम्मुख नाच रहा है।

पिता जी की यह महती कृपा थी कि उन्होंने मुझको इतने दिनों तक जीते रहने दिया। इतने में जब राजा ने देखा कि विष का कुछ प्रभाव न हुआ तब दूसरा प्याला उसके हाथ में दिखलाया। उस सुन्दरी ने उसको भी पीलिया, जब उससे भी कुछ न हुआ तबतो राजाने तीसरी बार तीक्ष्ण विष भरकर पुत्रीको दिखलाया, उस समय कृष्णाकुमारी ने हंस और धैर्य को यथावत् धारण कर और यह कहकर कि मेरा जीव ऐसा निर्लज्ज हो गया है, झट उसको भी पी लिया जिसके नशे में ऐसी चूर होकर सो गई कि प्यारी कृष्णाकुमारी इस संसार में न जागी।

जब उदयपुर में यह शोकमय समाचार धीरे २ फैल गया. तब कोई कृष्णाकुमारी के लिये रोते थे और राना को धिक्कारते थे, शत्रु भी इस अपार कौतुकको सुन अत्यन्त दुःखित होकर अपने २ निज भवनको लौट गये, अभागिन माता ने अन्न और जल को छोड़ थोड़े ही दिनों में अपने प्राण को भी खो दिया।

प्यारी बहिनों ! क्या कोई ऐसी सुकुमारी कन्या आप के देश में अब उपस्थित है जो पिता की प्रतिष्ठा, देश के युद्ध और प्रजा के हानि का ध्यान कर प्राण देने को उद्यत हो। धन्य है ! कृष्णाकुमारी तुम्हारा यह बलिदान अब भी पाषाण हृदय को रुलाने वाला है।

राजपूताने में रामगढ़ नाम एक छोटी सी राजधानी है वहांके ठाकुरके एक सुन्दर कन्या थी जिसको मुसलमान हरना चाहते थे, इस कारण बड़ी भारी सेना लेकर चढ़ाई की; जब वहां की राजपूत स्त्रियों ने देखा कि यह सब हार जायेंगे, तो अपने देश की प्रतिष्ठा बचाने के लिये सब एकत्र हुई

और कमेटी की। उसमें यह निश्चय किया कि खानपान शस्त्र आदि सामान के लिये आभूषण उतार उतार कर सब लगा दो।

फिर युवा लड़ने के लिये उद्यत हुईं। वृद्धाओं ने रोटी आदि बनाकर पहुंचाने का काम और बालकों ने जलले जाने का भार अपने ऊपर लिया फिर क्या था सब मुसलमान भाग गये और शूरवीर स्त्रियों की सहायता से धर्म और धनादि सब बच गया।

कूर्म्मदेवी—यह समरसिंह चित्तौड़ के राजा की वीर रानी थी। जब इनका पति पृथ्वीराज की सहायता करने में मारा गया और दिल्ली कन्नौज पर विजय पानेके पश्चात् शाहबुद्दीन ने उसके सहायकों को दबाने के अर्थ अपने नायब कुतुबुद्दीन को चित्तौड़ पर भेजा और जब वह उसके निकट पहुंचा तो उसकी रानीसे कहला भेजा कि गढ़की ताली हमारे पास भेज दो और तुम हमारे आधीन हो जाओ, यह सुन रानी ने प्रति उत्तर में समाचार भेजा कि शूरवीर ऐसे कायरों के समाचार नहीं भेजते, क्या मैं अपने होते अपने पति की प्रतिष्ठा में धब्बा आने दूंगी। यह सुन वह बढ़ा और युद्ध का बाजा बजा, जिसको सुन रानी ने अपनी थोड़ी सी सेना ले और आप घोड़े पर सवार हो हाथ में भाला लेकर संग्राम भूमि में आकर बड़े प्रभावशाली शब्दों में अपनी सेना के मनुष्यों को ललकारा—"जिसको अपने प्राण प्रिय हों, जो अपनी सन्तान पर मोहित हों वे अभी भाग कर चले जावें और जिनको यह निश्चय हो गया हो कि संग्राममें लड़ना हमारा धर्म है और शरीर अनित्य है जो एक दिन अवश्य ही जावेगा वह मेरा साथ दें। क्योंकि यह समय पुरुषों को स्त्री बनने का नहीं है। यदि तुम प्राणों को न्यौछावर करने को उद्यत हो जाओगे तो स्मरण रक्खो कि तुम इस संग्राम में विजय पाओगे" इस शूरवीरा स्त्रीके इन शब्दों ने सिपाहियों के हृदय पर बड़ा प्रभाव किया कि राजपूत एक साथ नदीकी भांति उमड़ पड़े आन की आन में शत्रु की सेना को छिन्न भिन्न कर दिया और जब कूर्मदेवी के विजय समाचार अन्य और पास के राजाओं को पहुंचे, इधर उधर से सेना आगई, फिर क्या था फिर तो कुतुबुद्दीनको अपने प्राणोंकी रक्षा के निमित्त रणभूमि से भागना पड़ा और उक्त शूरवीरा स्त्रीने संग्राम में विजय प्राप्त की और जब तक वह जीवित रही शत्रुओं ने कभी फिर उधर को मुंह नहीं किया। देखिये स्त्रियां ऐसी २ शूरवीरता के कार्य करती थीं।

तारावाई—यह रायसूरसेन विजनौर वालेकी पुत्री थी, जो राजपूताने में एक छोटे से राज्य का राजा था, जिस को तेरहवीं शताब्दी में अलाउद्दीनने हरा दिया। इसलिये रायसूरसेन अपने राज्यसे निकल टोंक जाति से थोड़ा टोंक और वनारस नदीके किनारे की धरती को छीन वहां बसने लगा। अपने पिता को राज्यच्युत होने से दुःखित और मलिन देख अपने पूर्व वंश का ऐश्वर्य और व्योरा सुन तारावाई स्त्रियों के व्यसन, वस्त्र और आभूषणों को त्याग घोड़े की सवारी पर धनुष विद्या सीखने लगी कि मैं ही किसी काल में अपने पौरुष बल से पिताके छीने हुये राज्य को अफ़ग़ानों से छीनलूंगी, ऐसा दृढ़ विचार रखती हुई वह शीघ्रही धनुर्विद्या में ऐसी प्रवीण हो गई कि दौड़ते हुये शीघ्रगामी घोड़े पर सवार होतेहुये ऐसी फुर्ती और सफ़ाईसे बाणको चलाती कि बाण ठीक निशाने पर लगता। तब अपने पिता को लेकर अफग़ानों पर चढ़ाई की, परन्तु शत्रुओं का बल बहुत था इस कारण सबके सब लौट आये, राना रायमल के तीसरे बेटे जयमल ने इसके साथ विवाह करने का सँदेशा भेजा, उसने उसके उत्तरमें कहला भेजा, कि मैं उसके साथ विवाह करूँगी जो मेरे पिता के राज्यको अफग़ानों से छीन उनको दे देवे। जयमल ने प्रतिज्ञा कर मोहर्रम के दिनों में तारावाई को साथ ले अफग़ानों पर चढ़ाई की। अफग़ानी उस समय ताज़ियों के निकालने में लगे हुये थे। अस्त्र शस्त्र खेंचे हुये तारावाई सबसे पहिले आगे बढ़भीड़ में घुस सरदारको मारकर बड़ी फुर्ती से अपने लश्कर में लौट आई और फिर अपने पति के साथ अफग़ानों को परास्त कर दिया।

कैकई—यह महाराजा दशरथकी तृतीय धर्मपत्नी और तपस्वीभरत की माता थी। संग्राम भूमि में प्रायः दशरथ के साथ जाया करती थी एक समय युद्ध में अचानक एक घोड़ा मर गया उस समय वीर वाला कैकई ने घोड़े के स्थान में लग कर राजा दशरथ से कहा कि आप निःसंदेह युद्ध कीजिये। कैकई की इस समयकी सहायता ने महाराजा दशरथकी शत्रुओं से जान-बचा कर विजय कराई।

राजा रणधीरसिंह वाजिये गढ़मुन्दरा की वीर पत्नी।

गढ़मुन्दरा के राव श्री राजा रणधीरसिंहजी जब संग्राम भूमि में अपने नश्वर शरीर का बलिदान कर चुके और उनकी वीर पत्नी को

शत्रुओं ने कैद कर उसके पतिव्रत को भ्रष्ट करना चाहा उस समय क्षत्रानी महिलाओंने अपने पति घातकसे बदला लिया और आत्महत्या कर अपने पतिव्रत धर्म की रक्षा की।

जयचन्द्र वालिये कन्नौज की रानी।

कन्नौज के महाराजा जयचन्द्र की रानी ने अपने पति के साथ शहाबुद्दीन से घोर संग्राम किया था

सुभद्रा—यह श्रीकृष्णजी की वहनएवं वीर शिरोमणि अर्जुन की द्वितीय पत्नीथी आपने अपने पुत्र अभिमन्युको गर्भ से ही शूरवीर वनानेका प्रयत्न किया था और ६ प्रकार के चक्रव्यूह की लड़ाई तथा अनेक युद्ध शास्त्रों के ज्ञान का चित्र गर्भावस्थासे ही अभिमन्यु के हृदय में खींच दिया था जिसके कारण महाभारतके घोर संग्राम में बड़े २ वीरोंके छक्के छुड़ा दिये इसी लिये अभिमन्यु का नाम इतिहासके पृष्ठों पर स्वर्णाक्षरों में अंकित है।

वीरमोहना—यह महाराजा अजमेरकी वीर कन्या थी जिस समय महमूद गजनवीने अजमेर पर चढ़ाईकी उस समय पच्चीस हजार सेना के मुकाबिलेमें मोहना खड़ीहुई और कईदिन घोरसंग्रामकर मोहनाने विजयपाई जिसको सुन महाराजा वहुत प्रसन्न हुये और महमूद गजनवी ने मोहना की वीरता देख दांतों में उँगली दवाई और कहा जैसा वेलाग हाथ मोहनाका पड़ता है ऐसा बड़े २ शूरवीरों का मैंने नहीं देखा। मोहना वन्दियों को स्वयं देखती तथा घायल और बीमारों की मरहम पट्टी और चिकित्सा अपने सामने कराती और सबकी सेवा सुश्रुषा का बड़ा ध्यान रखती।

दुर्गावती—यह गढ़मण्डल के राजा की रानी थी, अपने पति के परलोक गमन पर पुत्रों के असमर्थवान होने के कारण राजकार्य करतीथी। इसने मुसलमानों के साथ १५०० हाथी और ७०० सवार तथा प्यादोंकी वहुत बड़ी सेना द्वारा घोर संग्राम कर दो वार विजय प्राप्त की तीसरी वार के संग्राम में वह अपनी सेना के निर्बल और आप घायल होजाने से आत्म हत्या कर मर गई, उस राज्य के पहाड़ों के वीच में इसकी समाधि अब तक उपस्थित है।

अहिल्यावाई—यह सन् १७३५ में उत्पन्न हुई थी, जिसके माता पिता सेंधिया कुल में से थे। शरीर का रङ्ग सांवला परंतु एक दिव्यदैवी तेज उसके मुखड़े को दीप्तमान कर रहा था। यह अत्यंत भोले स्वभाव की

थी। प्रति समय उसके चित्तमें उदारता और दया की लहरें मारती रहती थीं। उसके उत्तम गुणों के कारण अनेकान कवियोंने उसके जीवन चरित्रों को लिखा है। इसने विद्या के पढ़ने में अधिक अभ्यास किया था। यह बड़े धर्म से नित्य स्वाध्याय किया करती थी जिसका विवाह मल्हाराव के पुत्र खांडेराव के साथ हुआ था जिससे मालीराव नामक पुत्र और मच्छाबाई नाम पुत्री उत्पन्न होने के पीछे खांडेराव का परलोक हो गया अर्थात् अहिल्याबाई १८ वर्ष की अवस्था में विधवा होगई। उस समय उस ने रङ्गीन वस्त्र पहरना छोड़ दिया और बिना किनारे की श्वेत धोती और एक मालाके अतिरिक्त कोई आभूषण शरीर पर धारण न करतीथी। इंद्रियों के सुख भोग के लिये उसके यहां सब पदार्थ उपस्थित थे, परन्तु वह मन को सांसारिक विषयों में प्रवृत्त नहीं करती थी और सदा उसने वैराग्य होने के लिये मनको ज्ञान द्वारा रोकने का अभ्यास करती थी। जब रानी के पतिका देवलोक हो गया तब उसका बेटा गद्दी पर बैठा जो नौं महीनेके भीतर ही परलोक को सिधार गया और पुत्री अन्य से ब्याही गई थी। गङ्गाधर यशवन्त मन्त्री का विचार था कि उस कुल के किसी पुत्र को गोद लेकर गद्दी पर बिठा दे परन्तु उसने उसको स्वीकार न किया। तब मुख्य मन्त्री ने (जो मुख्य सेनापति और पेशवा का चाचा था) मिला लिया, तब अहिल्याबाई ने कहला भेजा कि मेरे साथ झगड़ा करने से उत्तम फल न निकलेगा और राघो जी को युद्ध के लिये उद्यत देख कर अहिल्या ने भी रण में संग्राम करने की सब तैयारी की। अपना हाथी कसवा कर शस्त्र सम्हाल कर उस पर सवार हो बैठी, इधर सेंधिया और पेशवा ने कहला भेजा कि हम अहिल्या के विरुद्ध युद्ध में कुछ सहायता न देंगे और पेशवा जी ने भी राघो जी को मना कर दिया। अन्त को अहिल्या सन् १७६६ में गद्दी पर बैठी। प्रथम दिन कोप में जो धन था उसको पुण्य के लिये संकल्प कर दिया और तुकाजी हुलकरको सेनापति नियत किया और उनको ऐसे कार्य करने को दिया जो आप स्त्री होने के कारण नहीं कर सकती थी। गङ्गाधर जी ने इतना द्वेष किया था तिस पर भी रानी ने क्षमा देकर उनको दीवानी के कामपर नियत कर दिया, बाई तुकाजी को पुत्र के समान और वह माता के समान समझ बिना उसकी आज्ञा के कोई काम न करता था मरने पर उसका पुत्र उसी अधिकार पर नियत किया गया, रानी के मन में सदा यही अभिलाषा रहती थी कि प्रत्येक प्र-

प्रकार से प्रजा सुखी रहे इसके लिये वह सम्पूर्ण जनता से यथोचित धर्म पूर्वक व्यवहार एवं वर्ताव करती थी जिसके कारण समस्त प्रजा सुख चैन से अपने समय को व्यतीत कर पूर्ण रूप से राजभक्त थी। देशीय राज्यों में बहुधा कामदारों की बदली के समय कुछ झगड़ा अवश्य हो जाता है परन्तु बाई जी की राज्य में ऐसी पदवियों की बदली बहुत ही कम होती थी दूसरे उसको कोष में धन एकत्र करने का बड़ा शौक़ था परन्तु प्रजाके सुख चैन का पूर्ण ध्यान रहता था।

बाई के प्रतिनिधि पूना, हैदराबाद, श्रीरंगपट्टन, नागपुर और लखनऊ आदि में रहते थे। पूना के व्योपारी महाजनों और जमींदारों की उन्नति देख कर वह बड़ी प्रसन्न होती थी। गोड़ों ने इसके राज्य में लूट मार करना छोड़ दिया था इस लिये बाई ने उनको सभ्यता के गुण सिखलाने का बहुत प्रयत्न किया था।

अहिल्याबाई के समय में राना उदयपुर के सिवाय किसी ने चढ़ाई नहीं की, रानी ऐसे वीरता से लड़ी कि राना जी को मेल करने के लिये प्रार्थना करनी पड़ी, रानी की प्रशंसा इसी बातकी रही कि उसने इस भांति प्रबन्ध किया कि किसी भांति का झगड़ा न हुआ।

उसका लेन देन अनेक देश देशान्तरों के राजाओं से रहता था। इस ने कितने ही गढ़कोट बनवाये, अनेक धर्मशालाओं में मन्दिर पक्के खुएँ बनवा दिये, बड़े २ तीर्थों में सदाव्रत बिठा दिये थे। 'इंदौर' छपराके बाईं ओर इन्होंने बसाया। वह प्रातःकाल से एक घण्टा प्रथम उठ कर नित्य नियम पूर्वक पूजा पाठ कर नियत समय तक हरि कथा श्रवण करती और फिर सुपात्रों को दान भोजन कराकर आप भोजन करती। वह कभी मांस न खाती। कुछ काल आराम कर राजसभा में विराजमान हो सायंकाल तक राजकाज के धंधों को करती। वह अच्छे प्रकार प्रजाका न्याय करती थी प्रत्येक मनुष्य और स्त्री जाकर अपना वृत्तांत कह सकते थे। उस का सिद्धांत था कि मुझे ईश्वर के सम्मुख सब कर्मों का लेखा देना होगा इस लिये वह सब कार्य ईश्वर का भय रख विचार पूर्वक करती थी, ऐसे स्त्री पुरुष संसार में बहुत ही न्यून दृष्टि आते हैं जैसी कि अहिल्याबाई थी जिसको सत्य और असत्य का बड़ा ही विचार था। सभा विसर्जन कर बाई फिर कुछ काल तक पूजा करती और भोजन के पीछे नौ बजेसे ग्या-

रह बजे तक कार्य करती। इसके उपरांत सभा विसर्जन करनेके पीछे शयन करने को जाती।

त्योहारों पर बड़े २ उत्तम पदार्थ बनवाकर उनको प्रेमपूर्वक आपदीन और कंगालों को खिलाती। ग्रीष्मऋतुमें जब कि मालवेमें जल सूख जाता था तब यह पियाऊ लगवाकर पानी पिलाने का प्रबन्ध करती, शरदऋतुमें दीन दुखियों को वस्त्र बांटती थी, सच तो यह है कि बाई परोपकार में अपने राज्य के कोष को व्यतीत करती रहती थी।

अहल्याबाई को वृद्धावस्थामें बड़े २ कठिन दुख झेलने पड़े। उसका एकलौता बेटा पागल होकर मर गया। उसकी दूसरी संतान एक पुत्री थी जो माता के समान गुणवती और सुशीला थी। देवयोग से उसके पतिका देहान्त छोटी अवस्था में होगया। वह मृतक के साथ उस समय की रीत्यानुसार जलने को उपस्थित होगई। बाईने बहुत विलापकर उसको समझाया कि बेटी मेरा इस संसार में कोई नहीं। इस वृद्धावस्था में केवल तू ही एक सहारा है, जब तू भी न रहेगी तो मैं किसका आधार करके जीवन व्यतीत करूंगी? भला इस वृद्धावस्था में मेरे दुःख दर्द को कौन पूछेगा? इसलिये मेरे इस कहने को मान जा। बेटी का स्नेह भी माता में अधिक था, तोभी उसने अपने विकराल विचार को परिवर्तन नहीं किया और माता से कहा हे प्रिय माता! तुम अब वृद्ध हो गई हो, तुम्हारे जीवन के दिन अब इस संसार में बहुत ही थोड़े रह गये हैं और मेरे प्राण प्यारे पति और पुत्र परलोक सिधार गये। जब तुम भी न रहोगी तो फिर यह कठिन पहाड़ किस प्रकार से कटेगा? इसके उपरांत उस समय ऐसी प्रतिष्ठा और आदर सहित विदा होनेका भी अवसर न मिलेगा। अंतको जब अहिल्याने जाना कि यह न मानेगी, तो सती होने की आज्ञा दे दी। बाई भी साथ साथ पैदल गई जहां पर दो ब्राह्मण उसका हाथ थामे खड़े रहे। पुत्री देखते २ अग्नि में बैठ कर जलने लगी। उस समय माता का हृदय फटा जाता था। अहिल्या बड़ी शान्त स्वभाव होने पर भी पुत्री स्नेह से पीड़ित हो चिल्ला चिल्ला कर रो रो बेहोश होगई। इतने पुत्री राखकी ढेरी होगई ब्राह्मण उसको सचेत कर नर्मदा लेगये, जहां स्नान करा महलों में लिवा लाये, तहां तीन दिन बिना अन्न जल के इसी दुःख में व्यतीत किये।

इस बाई का देवलोक सन् १७७५ ई० में ६० वर्ष की अवस्था में हुआ। उसकी उत्तम नीति, धर्म पालन, चित्त की दृढ़ता, बुद्धिमानी, ब्रह्म-

चर्य सेवन और प्रजा पालन का सिद्धान्त उसके कार्यों से विदित है, कुछ हमारे कहने की आवश्यकता नहीं है। इन सबके उपरान्त उसमें एक बड़ा गुण यह भी था कि उसको अपनी झूंठी प्रशंसा से घृणा थी। एक बार एक विद्वान् पंडित उसकी स्तुति में एक ग्रन्थ बना कर लाया, उसको बाई ने ध्यान पूर्वक सुन अन्त को उससे कहा कि मैं एक अधम पापिनी स्त्री हूं कदापि इस प्रशंसा के योग्य नहीं हूं और तुरन्त पण्डित जी का यथोचित सत्कार कर उस ग्रन्थ को नर्मदा में डुबो देने की आज्ञा की। धन्य है!

इनके विषय में मलकम साहब लिखते हैं कि "बाईजी बड़ी गम्भीर, सदाचारिणी, सांसारिक विषय भोगोंसे उदासीन, अपने धर्मकी पक्की होने पर भी अन्य मतवालों को तुच्छ नहीं जानती थी। प्रजा के पालन और सबकी आत्माओं को संतोष दिलाने के अतिरिक्त और कोई चिन्ता ही न रखती थी। उसकी विनय से भरी वाणी सबको प्रिय लगती थी। ईश्वर के भय का उसके चित्त पर बड़ा ही प्रभाव था। हमारी समझ में यह धर्मानुरागिणी राजाओं में परम शिरोमणि रानी होगई है जिसका निर्मल यश और कीर्ति सदा संसार में बनी रहेगी।"

बैजाबाई—यह मरहटे सरदार दीवान श्री जीराव घटके की पुत्री थी और इसका विवाह दौलतराव सेंधिया से हुआ था। यह अत्यन्त सुन्दर रूपवती तथा गुणवती थी। अपने पति के मरजाने के पश्चात् अपने एक कुटुम्बी के पुत्र मुगतराव को गद्दी पर बिठलाने का विचार किया परन्तु उसकी अवस्था ११ वर्ष की थी, इस कारण उसको राजकाज सम्हालने के योग्य न देख उसकी पूर्णावस्था तक स्वयं राज्य का प्रबन्ध किया। इस के रूपकी प्रसंशा फेनीपारक साहब की मेम ने बहुत कुछ की है।

रानी चंदा—बहुत से मनुष्य अभी राजपूताने में होंगे जिन्होंने इसको देखा है, क्योंकि रानीको मरे थोड़े ही दिन हुए हैं। यह अत्यन्त रूपवती बलवती और महाराज रणजीतसिंह की छोटी रानी थी इसकी छोटी अवस्था में ही महाराज परलोकवासी होगये, केवल एक पुत्र दोवर्ष का छोड़ा जो सितम्बर सन् १८४३ में ५ वर्षकी अवस्था में सिंहासन पर बिठलाया गया जिसके संग्राममें मारेजाने पर रानीने राजकाज संभाला।

गंगा देवी।

यह भीष्मपितामह की माता थी, विद्या आदि गुणों में निपुण पति-

व्रतधर्म की मूर्ति थी। संतान उत्पन्न करने के विषय में अत्यन्त चतुरता रखती थी। देखिये इनके सुयोग्य पुत्र महात्मा भीष्मपितामहजी असन्तान होने परभी पितामह कहलाते थे। जिन्होंने महाभारतमें सबसे अधिक संग्राम किया, फिर रणभूमिमें तीरों की शय्यापर लेटेहुए ब्रह्मके विचारमें लवलीन थे श्रीकृष्ण महाराज ने युधिष्टर से कहा कि संग्राम भूमि को शीघ्र चलो क्योंकि धर्मके सूर्य आदित्य ब्रह्मचारी पञ्चतत्व को प्राप्त होने वाले हैं। फिर धर्मके तत्व का उपदेश मिलना कठिन हो जायगा। यह विचार कर वहां गये। श्रीकृष्ण महाराज की प्रार्थना पर जो २ धर्मोपदेश उन्होंने किया क्या कोई अजितेन्द्रिय ऐसा उपदेश कर सकता है, जो महाभारत में शांति-पर्वके नाम से प्रसिद्ध है, जिसके सुनने और विचार करने से ऊर्द्ध्वरेता बालब्रह्मचारी की विद्या और ब्रह्मचर्य के प्रभाव का प्रकाश होता है। मार्ग में युधिष्ठर महाराज ने योगिराज श्रीकृष्ण से पूछा कि पितामहके बड़े ज्ञानी और धार्मिक होने का क्या कारण है? उस समय श्रीकृष्ण महाराज ने कहाकि इसका हेतु इनकी माता का पूर्ण ब्रह्मचर्य धारण कर वैदिक रीति से गर्भाधान संस्कार करने का है जैसा कि—

यं गङ्गा गर्भविधिना धारयामास सुव्रता।

क्या वर्त्तमान में अशिक्षिता स्त्रियां ऐसी धार्मिक संतान उत्पन्न कर सकती हैं? क्या यह ब्रह्मचर्य के महात्म्य को जानती हैं? गर्भाधान एवं संस्कार को यथोचित कर ऐसे उत्तम फलोंको प्राप्त कर सकती हैं? कदापि नहीं। धन्य माता गंगा को, जिसने सांसारिक मिथ्या सुखों को त्याग कर ब्रह्मचर्यव्रत को धारण कर वैदिक विधि से गर्भाधान कर महात्मा भीष्मपितामह से सुयोग्य संतान को उत्पन्न कर संसार में अपने और अपने पुत्र के नाम को अमर किया।*

प्यारी बहिनों! अब विद्याके न होने से गर्भाधानादि संस्कारों की जो कुगति होरही है उसको तुम प्रत्यक्ष देख रही हो। इस लिये गर्भाधान संस्कारादि धर्मशिक्षा ठीक करने के लिये सब मिलकर पुत्रियों को शिक्षा कराओ जिससे भारत में शूरवीर जितेंद्रियतादि गुणयुक्त संतान उत्पन्न हों।

गुरुगोविन्दसिंहजी की स्त्री—गुरु गोविंदसिंह की स्त्री अपने दो पुत्रों समेत संग्राम से पृथक् हो रसोइया के साथ चलती मार्ग में एक स्थान पर ठहरे थे कि उसके बटुए में जो मुहरें आदि थीं जाती रहीं। माता जी

*भीष्म जी की पूर्ण जीवनी तैयार है मूल्य =) मात्र

ने उस ब्राह्मण से कहाकि यहां तो तुम्हारे सिवाय कोई नहीं आया; देखो आपत्ति में आपत्ति आती है, भला राज्य गया, स्वामी से विछोह हुआ अब मार्ग का तोषा भी जाता रहा। ब्राह्मण देवता कि जिन्होंने बहुत काल तक गुरुजी का माल खाकर अपना पालन पोषण किया था और लोभ में आकर माता जी का माल उड़ाया था, कुछ ध्यान न कर पापी मन से माता जी से कहा कि तुम मुझको चोर बनाती हो यह मेरे छिपाने का फल देती हो। अब मैं बादशाह को सूचना देता हूँ तब तुम्हारी चोरी का वृत्तांत तुमको विदित हो जायगा। माता उसकी विनती करने लगी, परन्तु यह पाषाण हृदय कब मानता है। उसने बादशाह को खबर दी उन के दोनों पुत्र शाही दरबार में पकड़े गये। बादशाह ने उनसे कहा कि दोनों मुसलमान हो जाओ, तुमको हम बड़ी पदवीदेंगे। जब उन दोनों ने इन्कार किया तो बादशाह ने कहा तुम अबभी सोचलो और मुसलमान हो जाओ वरना दीवार में चुनवा दिये जाओगे।

वह धार्मिक पुत्र जिन्होंने माता के गर्भ से ही धार्मिक शिक्षा पाई थी, क्योंकि गर्भ की दशा में महा घोर विकराल युद्ध में अपने पति के साथ रही थी, जिसने वीरता का यथावत् फोटो उनके कोमल हृदयों पर पूर्ण रीति से खींच दिया था, दीवार में चुना जाना स्वीकार किया। बादशाह और वज़ीरों ने बहुत भांति समझाया, लालच दिया, भय भी दिखलाया परन्तु वह जो अपने दो बड़े भाइयोंका धर्म पर बलिदान होना सुन चुके थे धर्मको त्याग सांसारिक पदार्थों में फंसने वाले न थे। अन्त को दीवार में चुने गये। सहस्रों मनुष्य इस कौतुक को देख रहे थे अनेक मनुष्य आंखों से आंसुओं की धारा बहाते थे जब दोनों दीवार में चुन दिये गये और यह भयानक समाचार माता पिता को पहुँचे जो पृथक् २ स्थानों पर थे तो माता जी ने तो तुरन्त मिठाई बटाई और कहा कि मैं आज कोखवती हुई। क्योंकि वह समझती थी कि यदि पुत्र होतो धर्मात्मा हो नहीं तो बांझ रहना भला। चाहे एकही क्यों न हो योग्य पुत्र एक ही अयोग्य सैकड़ों से श्रेष्ठ है। एक चन्द्रमा सम्पूर्ण अन्धकार को दूर कर देता है और सहस्रों तारों से कुछ नहीं होता।

एकोपि गुणवान्पुत्रो निर्गुणानां शताद्वरः
एकश्चन्द्रस्तमोहन्ति न च तारा सहस्रशः॥

और पिता ने उसको सुनकर नक्कारे बजवाये और कहा कि आज

गोविंदसिंह यथार्थ में पुत्र वाला हुआ। प्रिय सज्जन पुरुषों! सुजन स्त्रियों जिसकी माता तो मिठाई बटवाये और पिता नक्कारे बजवाये फिर क्योंकर उसके पुत्र धर्म वीर न हों?

मैत्रेयी।

इनका विवाह याज्ञवल्क्य ऋषि से हुआ था उपनिषदों में इसका वृतांत इस प्रकार लिखा है कि महात्मा जी ने जब संसार के छोड़ने का विचार किया तो प्रथम मैत्रेयी जी से कहा है कि यदि तुम्हारी आज्ञा हो तो मेरा विचार वानप्रस्थ आश्रम में जाने का है और मेरा जितना धनादि पदार्थ है उसको तुम दोनों बांट लेना। मैत्रेयी जी ने उत्तर में निवेदन किया कि यदि आप मुझको सम्पूर्ण पृथ्वी रुपये और मुहरों से पूरित कर दें तो क्या मैं इनको ग्रहण कर अमर हो जाऊँगी? तब याज्ञवल्क्य जी ने कहा कि धन सम्पत्ति से कोई अमर नहीं होसकता हां धन से तुम अपना जीवन सुख पूर्वक व्यतीत कर सकती हो। तब मैत्रेयी जी ने कहा कि ऐसा धन मुझको नहीं चाहिये, हां मुझे उस सम्पत्ति को दीजिये जिसके लिये आप हम दोनोंको छोड़ कर प्रसन्नता पूर्वक वन जानेको उद्यत हुए हो। ऋषि मैत्रेयी के इन वचनों को सुन अत्यन्त चकित हो उसको सम्मुख बिठा कर इस प्रकार मुक्ति का मार्ग समझाने लगे कि मनुष्य जब सांसारिक नाशवान् पदार्थों को मन से त्याग केवल अद्वितीय परमेश्वर में ध्यान लगाता है तब उसको यथार्थ कल्याण अर्थात् मुक्ति प्राप्त होती है जिसके लिये ज्ञान की परम आवश्यकता है जो ब्रह्मविद्या से मिलता है। जब मैत्रेयी जी को यह विदित हो गया तब अपने पतिके साथ वानप्रस्थ को धारण कर मुक्ति की प्राप्ति के अर्थ वनको चली गईं।

अनुसुइया—यह महात्मा अत्रि मुनि की स्त्री थीं जो अपने पति के साथ वन में रहती थीं। जब सीता रामचन्द्र महाराज के साथ वन को गईं थीं उस समय इन्होंने सीता को पातिव्रत धर्मका उपदेश किया था, "शील रहित, कामी, क्रोधी, निर्धन, क्रूर आदि अपगुणों से युक्त भी आर्य स्वभाव स्त्री पति को ही देवता जानती है। हे सीता हमारे विचार में पतिसे अधिक कोई बन्धु स्त्रियों का नहीं क्योंकि अन्य भाई बन्धु सर्वत्र सुख दे सकते यह शक्ति केवल पति ही में है जो तपस्या की भांति सर्वत्र सुख दे

सकता है । जो स्त्रियां काम के वशीभूत हो रही हैं वे अपने पति की आप स्वामिनी बनी हैं, उन दुष्टा स्त्रियोंको गुण दोष नहीं जान पड़ते कि हमको क्या करना चाहिये, ऐसी कामिनियों को संसार में अपयश और परलोक में नरक होता है और जो तुम्हारे समान पातिव्रत के गुणों से भरी पुरी हैं और परलोक की गति को जानती हैं वे पुण्यवती की भांति स्वर्ग में वास करती हैं, वे ही पतिकी सेवाको सबसे प्रधान कर्म समझ प्रति समय समयानुकूल पति की पूजा करती रहती हैं और छल रहित सब प्रकार से पतिदेव की सेवा कर यश को प्राप्त करती हैं ।"

यशोधरा—यह महात्मा गौतम की स्त्री थी । जब गौतम ने घर छोड़ कर संन्यास धारण किया तो वह घर से बिना बात चीत के ही चले गयेथे यशोधरा सोती थी । उसकी आयु १७ वर्षकी थी एक दो दिन तो किसी को ज्ञात न हुआ जब फिर पता लगा तो उस समय घर और राज्योंमें रोना पड़ गया । पिता पुत्र के वियोग में मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा, परन्तु यशोधरा ने धैर्य को न छोड़ा । समाचार पाते ही उसने सांसारिक सुख त्याग दिये, भूषणादि सब बांट दिये, पठन पाठन और ध्यान और भक्ति में समय व्यतीत करने लगी । आठ वर्ष पीछे जब गौतम प्रचार करते हुये अपने नगर कपिलवस्तीमें आये और पिताको समाचार मिलातो वह वहां गया तब प्रथम उसको साधु वेष में देख कर हँसा और फिर रोया । हँसा तो इस लिये कि उसका पुत्र पवित्रता के प्रचार से जगत् का उद्धार कर रहा है, रोने का कारण यह था कि राजकुमार ने संन्यास धारण कर लिया है । कुछ देर बात चीत के पीछे राजाने गौतम से कहा कि राजमन्दिर को चलो और एक समय का भोजन वहीं खाओ । बुद्ध स्वीकार कर दूसरे दिन साथियों समेत राजमन्दिर में गया । सब सम्बन्धी उसको मिलने और दर्शनार्थ वहां आये परन्तु यशोधरा न आई । तब बुद्ध के पिता ने कहला भेजा कि तुम भी पति के दर्शन कर जाओ, यशोधरा ने उत्तर में कहला भेजा कि धर्मशास्त्र में लिखा है पति स्त्रियों का सत्कार करें, यदि मेरे पति के मन में मेरे लिये आदर है तो स्वयं वह मेरे मिलने के लिये आवेंगे मैं नहीं जाऊँगी । बुद्धको जब यशोधरा के उत्तर का पता लगा तब वह उसी काल अपनी पत्नी के भवन को पधारा । यशोधरा बैठी हुई थी, सिर के बाल मुंडे हुये थे बुद्धको देखते ही उसका मन भर आया और रुदन करने

लगी। फिर यह समझ कि उसका पति अब संन्यासी बन गया है, उसके साथ अब पति पत्नी का भाव नहीं रह सकता तब उसने धैर्य धारण कर श्रद्धा के साथ बुद्ध के चरणों पर शीश धर कर मन को ठण्डा किया उस समय बुद्ध के ससुर भी पास खड़े थे। बुद्ध से बोले कि हे पुत्र तुम नहीं जानते कि इसका तुम्हारे साथ कितना प्रेम है। ज्योंही इसने सुना कि तुम ने शिर मुंड़वा लिया इसने भी वैसा ही किया। जब इसने सुना कि तुमने सुगंधित पदार्थ और रेशमी वस्त्र त्याग दिये तो इसने भी भूषणादि दान कर दिये अब इसको यह खबर मिली कि तुमने सोने चांदी के पात्र त्याग दिये तो यह भी उसी काल से पत्तल में खाने लगी। तब बुद्ध ने यशोधरा को उपदेश किया कि ऐ धर्मात्मा यशोधरा! मैंने जो धर्म लाभ किया है, यह तुम्हारे ही धर्म प्रभाव का फल है। तुम्हारी आत्मा पवित्र है, धर्म प्रचार से संसार का कल्याण करो। यह सुन उसने भी संन्यास ले लिया और जीवन भर उपदेश करती रही।

राजकुमारी संघमित्रा।

लगभग दो हजार वर्ष पहिले भारत में सम्राट अशोकका राज्य था। संघमित्रा इन्हीं दानवीर, उदार, दयालु और धर्मात्मा की राजकुमारी थी। अशोक जैसे धर्मशील पिता के साथ रहने से उसकी वृत्तियाँ बड़ी पवित्र हो गई थीं जैसे २ संघमित्रा की अवस्था बढ़ती गई वैसे २ उसकी धार्मिक श्रद्धा भी बढ़ती गई और बौद्ध धर्म की सेवा में उसने अपना जीवन अर्पण कर दिया इस व्रतकी सफलता के लिये संघमित्रा ने विवाह न कर आयु पर्यंत ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया तथा पिता की आज्ञा से सीलोन निवासी स्त्रियों को बौद्ध धर्मावलम्बिनी बनाने का उस ने निश्चय किया। मगधदेश से सीलोन सैकड़ों मील की दूरी पर था और आज कल की भांति रेलगाड़ी आदि न थी अतः धर्म पर न्यौछावर होने वाली राजकुमारी ने राजमहल के सुखों को छोड़ कोमलाङ्गी होने पर भी इतनी दूर की यात्रा पैदल ही की। अभिमान उसे छूतक नहीं गया था वह अमीर ग़रीब सबसे मिलती। सब पर समान दया दृष्टि रखती तथा सभी से मधुर भाषण करती थी। उसका निर्दोष व्यवहार शांत वृत्ति और दृढ़ धार्मिक श्रद्धाका लोगों पर बड़ा ही प्रभाव पड़ता था। लोगों की कल्याण कामना के लिये

बौद्ध धर्म के प्रचार के लिये वह सीलोन में बहुत समय तक घोर परिश्रम करती रही, लंका की स्त्रियों पर भी उसके उपदेश का बड़ा ही प्रभाव पड़ा शीघ्र ही वहाँ की रानी अनुजा और अनेक प्रतिष्ठित महिलाएँ बौद्ध धर्म में दीक्षित हो गईं। लंका की बौद्ध जनता आज भी संघमित्रा के सतत परिश्रम की साक्षी दे रही है। इस देवी ने सेवा धर्म और कौमार व्रत के साथ ही संन्यासी व्रत धारण कर लिया इससे हमारे पाठक जान सकते हैं कि संघमित्रा कैसी धर्मप्रेमी और कष्ट सहिष्णु थी। देवीके साहस, धैर्य, धर्मनिष्ठा तथा श्रद्धा, गम्भीरता, शान्त प्रवृत्ति, प्रभावशाली एवं हृदयग्राही भाषण चातुर्य, उत्कृष्ट पवित्र, आचरण, कष्टसहिष्णुता, लोक कल्याण कामना आदि गुणों के कारण ही इतिहासों में उसकी अमर कीर्ति विद्यमान है। इस आदर्श जीवन के उदाहरण से यह भी विदित होता है कि भारतीय महिलायें केवल वीर, सती एवं देशप्रेमी ही नहीं किन्तु हार्दिक धर्म से प्रेम करने वाली, कष्ट सहन करने वाली, त्यागी और उपदेशिकायें भी होती थीं।

क़ासिम बाज़ार की महारानी स्वर्णमयी।

इनका जन्म सन् १८२७ में वर्दवान के ज़िले भटकोल नामी ग्राम में तथा १८३८ में राजा कृष्णनाथ रायबहादुर के साथ आपका विवाह हुआ था। जब १८४४ में इनके पति आत्मघात कर मर गये तब आपने बड़ी धैर्यता से राज्यकार्य किया अन्य गुणों के उपरान्त एक गुण इनमें बहुत बड़ा यह था कि जितना धन आप के पास आता था उसमें से क़रीब क़रीब आधे के और बहुतसा अपने स्वकोषमें से लेकर दीनों को देती थीं, देवालय बनवातीं, यात्रियोंकी थकावट मिटाने के लिये बावड़ी सहित स्वच्छ मीठे ठण्डे जल के कुएँ और धूप आंधी मेह इत्यादि आपत्तियों में शरण लेने के लिये धर्मशालाएँ बनवातीं। जब कभी देशमें अकाल पड़ता तब पूर्ण रीति से सहायता करती थीं। अर्थात् उनके पुण्यजनक सुन्दर कामों को देखकर सरकार ने १४ अगस्त सन् १८७२ में उन्हें महारानी की पदवी प्रदान की और १३ अक्टूबर को क़ासिम बाज़ार राजवाड़ी में दरबार करके ई. डब्लू. मोलोनी साहब कमिश्नर राजशाही ने अपने हाथ से सनद दी। सरकार ने इन श्रीमती के दव्यगुणों की प्रतिष्ठा यहाँ ही तक नहीं की, वरन् १२ मार्च सन् १८७५ को साधारण नियमों के विरुद्ध महारानी को लिखा कि जिस

कुटुम्बीय पुत्र को आप गोद लेंगी वह महाराज कहा जायगा। अपनी परमोदारतायें वह इंगलैंड देशकी मिस वरहिट कोवट्स के समान कही जाती हैं। सन् १८७० के अकाल पीड़ितों की सहायता करने पर सरकार ने उन की यह प्रतिष्ठा की। जनवरी सन् १८७८ में (Crown of India) भारतवर्ष की मुकुट पदवी से भूपित करने के लिये बंगाल देशमें यही योग्य चुनी गई। पीकाक साहब कमिश्नर ने क़ासिम बाज़ार में दरबार करके राजराजेश्वरी का आज्ञापत्र और तमग़ा महारानी को दिया।

❁ वर्तमान समय की देवियां ❁

माई पार्वती—यह जैनमत की आचार्या हैं। जिनकी विद्या, आचार और व्यवहार ऐसा है जिससे सबही को उन्हें प्रणाम करना चाहिये। वह बालब्रह्मचारिणी देवी ऐसे उत्तम व्याख्यान देती हैं कि भारतवर्ष में ऐसे व्याख्यान देने वाले दोही चार पुरुष हों तो हों। इस समय इनकी अवस्था ४५ वर्ष की होगी परन्तु मुखड़े पर तेज, आंखों में प्रकाश, वाणी में रस झलकता है, वह उनके बालब्रह्मचारिणी होने का कारण है।

श्रीमती हरदेवी—यह स्वर्गवासी राय कन्हैयालाल की पुत्रीतथा ला० रोशनलाल बैरिस्टर की धर्मपत्नी हैं, जिन्होंने योरुप देश की यात्रा भी की है। मातृभाषा की पण्डिता होने के अतिरिक्त अङ्गरेजी उर्दू भी जानती हैं इन्होंने बहुत सी पुस्तकें रची हैं। 'भारत भगनी' मासिक पत्रिका नौ वर्ष आपके ही उद्योग में प्रकाशित हुई थी, जिससे इस देश वासिनी भगनियों को बहुत लाभ पहुंचता रहा, तथा इनका स्त्रियों में विद्या फैलाने का उद्योग तो जगत में विख्यात है।

माता काह्नदेवी—यह लाला देवराज की माता हैं, इनमेंधर्मभाव सहनशीलता, सत्यतथा मधुरवाणी और गृहस्थी मर्यादापूर्वक चलाने इत्यादि के ऐसे गुण हैं जिनकी सब ही प्रशंसा करते हैं। कन्यामहाविद्यालय जालन्धर में जो कुछ उन्नति हो रही है उसका विशेष कारण इन्हींका उत्साह है। आश्रमवासिनी कन्याओं से आप पुत्रिवत् प्रेम रखती हैं जहां कोई बीमार हुई माताजी तुरन्त वहां पहुंच सब प्रकार से उसकी रक्षा करने में लग जाती हैं।

श्रीमती प्रमेश्वरीदेवी—यह रोपड़ आर्यसमाज के मन्त्री लाला

सोमनाथजी की सत्यवादिनी धर्मप्रिया सुशीलापत्नी हैं, जो चुपचाप अपने उत्तम आचारों से देश का उपकार कर रही हैं। आपका वैदिकधर्म से प्रेम है उत्सव के समय आप उत्तम २ भोजन बनवाकर आये हुये आर्य भाइयों की सेवा करती हैं।

महाराजा नाभा की कन्या—यह पुत्री ब्रह्मचारिणी बन विद्या पढ़ रही हैं।महाराजा का विचार यथार्थ ब्रह्मचर्य आश्रम समाप्त होने पर गृहस्थाश्रम में ले जाने का है धन्य है।

रामप्रिया विलास—यह प्रतापगढ़ाधीश की बड़ी रानी जिसका नाम रघुराजकुमारी है, जो रामप्रिया के नाम से प्रसिद्ध हैं इनका जैसानाम है वैसेहीगुण हैं और अन्य गुणों के साथ विद्यारूपीगुण अद्भुतहै। प्राचीन काल में मीरा बाई, चंद्रमुखी, प्रेममुखी इत्यादि कन्यायें भक्तिपक्ष में भाषा में कविता कर यश लूट गई हैं और वर्त्तमान समय में बूंदी की चन्द्रकला तथा रीवां की राजकुमारी की छटा फहरा रही है। परन्तु तिस पर भी हमको रानी रामप्रिया की भक्ति रस भरी हिन्दी कविता देख बड़ा ही आनन्द आत है।

श्रीमती माई भगवती—यह हरियाना नगर के कुलीन और प्रसिद्ध नगर में पैदा हुई हैं। इनका सारा समय परमेश्वर की भक्ति परोपकार और स्त्रियों की सुशिक्षा देने में व्यतीत होता है। इनकी सहनशीलता, गम्भीरता अद्भुत है। श्रीमती माईजी आर्य धर्म के सिद्धान्त को केवल जानती ही नहीं, किंतु पालन भी करती और नित्यकर्म में तत्पर हैं। इनके बनाये हुये भजन सदैव के लिये जीवित रहेंगे। यह भजन भिन्न भावों से भरे हुये संस्कारों पर गाने योग्य बड़े मीठे और बड़े सुन्दर हैं। माई जी ने देशाटन करके स्त्री जाति के उद्धारार्थ बहुत से व्याख्यान भी दिये हैं। हरियाना में अपने खर्च से कन्या पाठशाला चलाई थी और इस पाठशाला के लिये अपने ही खर्च से मकान भी बनवा दिया है। श्रीमती जी ने अपना सब पदार्थ पाठशाला के अर्पण कर दिया है और जालन्धर कन्या महाविद्यालय के साथ उनको बड़ा प्रेम था।

वीर विदुषी देवीजगरानी।

आपका जन्म ४ जनवरी सन् १८९० ई० में विहार प्रांतगर्त शाहाबाद जिले के सखरा नामक ग्राम में श्री बाबू रामनरायणजी के गृह में

श्रीमती वचनकुंवरिजी की वीरवती कोखमें हुआ। आप बाल्यावस्था से ही होनहार सुकुमारी थीं। प्रातःकाल संध्या करना तथा धार्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय करना आपका नित्य कर्म था। सौथ अफ़रीका के प्रसिद्ध नगर दर्बन में मातृ भाषा का आपने खूब प्रचार किया अनेकों बालक बालिकाओं को वैदिक धर्म की शिक्षा दी। १९१३ ई० में होने वाले सत्याग्रह में भाग लेने के कारण एक साल के पुत्र को गोदी में लिएहुए तीन मास जेल महा तीर्थ की यात्रा की। देवनागरी के अतिरिक्त अँग्रेजी का भी अच्छा ज्ञान था। आपसे साहित्य प्रचार की बड़ी आशा थी परन्तु अप्रेल सन् १९२२ ई० में आपकी एकाएक मृत्यु होगई। आपके पतिदेव श्रीयुत पं० भवानीदयाल जी ने आपके स्मारक में एक प्रेस खोला है। जिसमें "हिन्दी" नामक समाचार पत्र मासिक रूप में प्रकाशित होता है। देवी जी ने १२ एवं ४ साल के दो पुत्र रत्नों को छोड़ा है। परमात्मा उन्हें चिरायु करे।

—०—

यू० पी०।

—०—

भगवती देवी—यह सचेड़ी जिला कानपुरकी रहने वाली हैं और वनिता सम्पादिका कानपुर की सम्पादिका का कार्य बड़ी योग्यता से करती रही हैं।

प्रेमदेवी—डाक्टरी में पास करके उपकार कर रही हैं।

श्रीमतीस्नेहदेवी जी—आपका जन्म १८७४ ई० में पटना नगर के प्रसिद्ध राय साहब बाबू सोहनलाल जी भटनागर के गृह में हुआ। अपने माता पिता की यह तीसरी संतान थीं। उन दिनों में कन्या पाठशालाओं के न होनेसे देवीजी की शिक्षा का प्रबन्ध गृह परहीकियागया। १५ वर्ष की आयु में आपने अँग्रेजी की ऐंट्रेंस की परीक्षा दी। इसके बाद मेरठ निवासी श्री बाबू ज्योतिस्वरूप जी वकील के साथ आपका विवाह हुआ। बाबूजी ने देहरादून में विकालत की, वहीं महादेवी जी को अपने पति देव के साथ रहना पड़ा। देवी जी अपनी सास आदि की सेवा बड़े प्रेम से करती थीं पति में आपका गहरा प्रेम था उच्च विचार आचार और व्यवहारों तथा सहनशीलता,उदारता और नम्रतासे आप सबकी प्यारीथीं। विद्वान् एवं अतिथियों की सेवा करना आप परम धर्म समझती और अनेक

गुणों से युक्त होने पर भी आप अभिमान रहित थीं। आपके केवल एक कन्या उत्पन्न हुई जिसकी शिक्षा आपने भारत में दिलवाकर उच्च शिक्षा के लिये इंगलैंड भेजा परन्तु दुर्भाग्यता से क्षयी रोग में पुत्री की अकाल मृत्यु हो गई। आपने अपनी डेढ़ लाखकी सम्पत्ति से देहरादून में महादेवी पाठशाला खोली। इस स्थान ने उत्तरीय भारत में अपनी २० साल की छोटी सी ही अवस्था में देश की जो सेवा की है उसका उल्लेख प्रांतीय गवर्नर शिक्षा सचिव आदि उच्च पदाधिकारी शासकों से लेकर देश के गण्य मान्य व्यक्तियों ने समय २ पर बहुत अच्छा किया है। महादेवी जी ने अपने जीवन में पाठशाला की उच्च कक्षाओं की धर्म शिक्षा संस्कृत आदि के पढ़ाने और संस्था की अवैतनिक मुख्याधिष्ठात्री का कार्य बड़े परिश्रम से किया और तन मन एवं धनसे कन्याओं की शिक्षा और श्रेष्ठ जीवनादर्श पर विशेष ध्यान रखती थीं। उक्त संस्था में इलाहाबाद विश्व-विद्यालय की मेट्रिक परीक्षा तक की पढ़ाई होती है प्रति वर्ष पचासों कन्यायें मिडिल एवं एन्ट्रेंसादिक परीक्षाओं में प्रशंसा पूर्वक उत्तीर्ण होती हैं। देवी जी ने स्त्री जाति के उपकारार्थ कई छोटी सी (धर्म पुस्तक, आत्माह्वान, बारामासा आदि) पुस्तकायें भी लिखी थीं। सब प्रकार से सौभाग्यवती एवं ऐश्वर्य शांतिनी होने पर भी घमण्ड इनको छू तक न गया था प्रत्येक की बुराइयों में से भलाई ढूंढ़ निकालना आपका साधारण धर्म था छोटे से छोटे कार्य करने में भी आप नहीं लजाती थीं। इत्यादि अनेक शुभ गुणों एवं जाति सेवा से प्रसन्न होकर गुण ग्राहक सरकार ने महादेवी जी को "क़ैसरहिंद" का स्वर्ण पदक दिया था सचमुच देश की स्त्रियों की उन्नतिके लिये महादेवी जी ने अपना सर्वस्व समर्पण कर जो उपकार किया है उस की उपरोक्त महती पाठशाला चिरस्थाई स्मारक रहेगी।

——o——

॥ बङ्गाल ॥

——o——

हेमन्त कुमारी—यह प्रसिद्ध व्याख्याता पं० नवीनचन्द्र राय की बड़ी विदुषी पुत्री हैं। और सुगृहणी समाचार पत्र की सम्पादिका भी रह चुकी हैं।

कुमारी विधुमुखी वोस--यह डाक्टरी में एल० एम० एल० पास हैं और विदुषी हैं।

श्रीमती जगन्नाथन

यह विज़ीगापट्टन की रहने वाली विदुषी महिला हैं आपने एल० सी० पी० ई० की उपाधि प्राप्त की है। इनके अतिरिक्त वङ्गाल में ब्रह्मघरानों में प्रायः ६० फीसदी कन्यायें पढ़ी लिखी हैं और प्रायः बी० ए० और एम० ए० की परीक्षायें देती हैं।

चन्द्रकलाबाई—इसने समस्यापूर्ति में कई बार नाम पाया है।

श्रीमती राजकुमारी दासी—आप वेथून कालेज की अध्यक्षा और बड़ी विदुषी हैं।

श्रीमती सुजाता बसु।

चौबीस परगना प्रान्त निवासी श्रीयुत शशिभूषण बसुकी कन्या हैं और आपने लीड्स विश्व विद्यालय से (मास्टर आफ् एज्युकेशन की) उपाधि प्राप्त की है तथा कलकत्ता विश्वविद्याकय से अंग्रेजी में एम० ए० पास कर आप विलायत हो आई है वहां आपने 'भारतीय शिक्षा पर पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव नामक एक गवेषणा पूर्ण प्रबन्ध लिखा है



॥ गुजरात ॥



चन्द्रकलाबाई—आपने कवियों के सङ्ग समस्यापूर्त करके कईबार पारितोषिक पाया तथा आपने करुणाशतक नामक उत्तम ग्रन्थ बनाया है।

कुमारी सौरावजी—आप बी० ए० पास हैं इन्होंने विलायत जाकर लंडन में व्याख्यान दियां। निवास स्थान पूना है वहां आप की गणना पूर्ण विदुषियों में है।

श्रीमती कादम्बिनीगाँगोली बी० ए० और श्रीमती त्र्यम्बक कनोरत्न जी बम्बई की जाति सभा की प्रतिनिधि बन चुकी हैं इसके अतिरिक्त रूपानियां की रानी एक प्रख्यात लेखिका हैं। पुर्तगाल की रानी एम० डी० पास हैं और चिकित्सा विद्या में बड़ी योग्यता रखती हैं।

बड़ौदा

की महारानी चिमनाबाई जी एवं राजकुमारी जी स्वयं बड़ी विदुषी एवं वीराङ्गना हैं। बड़ौदा राज्य में २७२ बालिका विद्यालय हैं जिनमें ३०३३१ बालिकायें एवं स्त्रियों की शाला में ३१५६८ स्त्रियां शिक्षा पारही हैं। उच्च कोटि की शिक्षा के लिये एक कालेज भी है तथा एक कन्या गुरुकुल भी है जिस में कन्यायें ब्रह्मचारिणी बन कर वेदादि शास्त्रों का अभ्यास करती हैं।

मुसलमान महिलायें।

मिस सैयद खावेर सुलतान (जो मुसलमान समाज के नेता श्री० आगा मजीदइसलाम की तीसरी लड़की हैं) ने बी० ए० परीक्षा बड़ी सरलतासे उत्तीर्ण की है!

श्रीमती बेगम भूपाल और नूरजहां बेगम भी विदुषी महिलायें थीं। देहली में मुसलमान स्त्रियों की एक बड़ी सभा है जिसके अधिवेशन बड़े समारोह से होते हैं अनेकों मुसलमान विदुषी महिलायें व्याख्यान देती हैं यहां से स्त्रियों के द्वारा कई समाचारपत्र निकते हैं।

विदेशी महिलाओं के संक्षेप वृत्तांत।

अमरीका की स्त्रियां।

यह वह देश है जहां के वैज्ञानिक ज्ञान से सारा संसार चकित होरहा है इसी देश के विचित्र कला कौशलों को देख कर दूसरे देश निवासी आश्चर्य में हो जाते हैं, इस लिये वहां के नर नारियों के चरित्रों का कहना ही क्या? प्रत्येक कुटुम्ब प्रसन्न बदन दिखाई देता है हर एक गृहमें भावी सन्तान की उन्नति के लिये पूर्ण ध्यान दिया जाता है। बालकों की मानसिक नैतिक और शारीरिक शक्तियों का पूर्णरूप से विकास किया जाता है। बालक मिथ्यावादी न बनें उनके विचार उत्तम और आदर्श उच्च हों। खेल के द्वारा ही बालकों की कल्पना शक्ति और बाहुबल की वृद्धि की जाती है और भाषा ज्ञान तथा नई वस्तुओं का बनाना सिखाया जाता है। बालकों की शिक्षा में यह तीन बातें बड़ी उपयोगी समझती हैं। १-उनकी इच्छा शक्ति, २-शारीरिक शक्ति और ३-साहस। यह ठीक है कि बालक

अपनी शक्ति का ज्यों ज्यों व्यवहार करेगा त्यों त्यों उसकी शक्ति बढ़ेगी। स्वास्थ्य रक्षा, स्वच्छता, व्यायाम, अपनी शक्ति पर भरोसा और हर एक काम के करने का साहस करने की शिक्षा बच्चों को इस प्रकार दी जाती है कि यदि बालक को कड़वी दवा देनी हो तो उससे कहा जाता है "औषधि और तुममें देखें किसकी जीत होती है? तुम इस दवा को जीत कर पी सकते हो यह दवा तुमसे जीत जायेगी और तुम इससे हार कर भाग जाओगे" यदि बालक अधिक मिठाई मांगता हो तो उससे कहती हैं "तुम को आज मिठाई बहुत मिल चुकी है यदि और चाहते हो तो और भी मिल सकती है पर यदि अधिक खाओगे तो तुम बीमार पड़ जाओगे यदि आज खाकर कल पछताना हो तो भले ही और लेलो"। किसी से डर जाने पर उसे साहस इस प्रकार दिलाया जाता है "वह लड़का केवल तुमको डराता है तुमको उससे कभी नहीं डरना चाहिए यदि वह तुम्हें मारने आवे तो तुम भी उसे मारो तुम तो उससे अधिक बलवान हो इन्हीं छोटी २ बातों से बालक का चरित्र गठन किया जाता है और बातों ही बातों में वे उसे साहसी और वीर बना देती हैं। अमेरिका में बच्चों को उनकी रुचि के मुआफ़िक़ शिक्षा दी जाती है, जैसे किसी की रुचि कार्ट कला में हो तो उसको यंत्र विद्या और गाने बजाने वाले की इच्छा वाले को गान विद्या सिखाई जाती है। इस प्रकार बालकों को सुचरित्र, बलवान् और आदर्शवान माता ही बना देती है विद्यालयों में केवल बच्चोंको मनुष्यत्वकी, नेतृत्व की, मिलनसार बनने की तथा अपने प्रश्नों को आप हल करनेकी शिक्षायें देने की आवश्यकता होती है। बच्चों की प्रत्येक विषय में सलाह लीजाती है इससे उनकी विचार शक्ति बढ़ती है। स्वावलम्बी बनने और धनोपार्जन करने के लिये विशेष रूप से उत्साहित किये जाते हैं। अमेरिका की माताओं ने अपनी संतान की शिक्षा के लिये निम्न लिखित सात बातें निश्चय करली हैं जिनसे यदि उनको आदर्श मातायें कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी।

१—अमरीका की मातायें अपनी सन्तान की क्रीड़ा, अध्ययन आदि में संगिन बनती हैं न कि शासिका।

२—बालक किसी समय धमकाये नहीं जाते। सब विषयों में आत्म-विकास के लिये मौक़ा दिया जाता है। बच्चे इच्छानुसार स्वतन्त्रता पूर्वक खेलते कूदते रहते हैं।

२–बालकों को देशभक्त होना, सत्य बोलना, आत्मसम्मान रखना, साहसी बनना, दूसरों के अधिकारों का मान करना और धन का मूल्य समझने की शिक्षा दी जाती है।

३–कष्ट में अत्यंत हताश न होना और गिर पड़ने से चोट लग जाने पर हँसते रहने की शिक्षा।

५–घर के बाहर संसार की बातें जानना, प्रकृति के सौंदर्य का ज्ञान, पशु, पक्षी, पुष्पलता, वृक्ष आदि से परिचय ऐतिहासिक गाथाओं का पाठ इतिहास और साहित्य का ज्ञान।

६–शरीर को पुष्ट और बलवान बनाने वाले खेलों का जानना जैसे तैरना, घोड़े पर चढ़ना, तीर कमान और बंदूक चलाना, मल्ल युद्ध और गेंद का खेल आदि।

७–छुट्टी के समय खूब जी भर कर खेलना, धूम मचाना, कूदना, नाचना परंतु काम के समय काम करना, नियम उल्लंघन के दण्डको सहर्ष स्वीकार करना, न्यायपरता और पितृ मातृ प्रेम।

इस प्रकार अमेरिका के बालक घरही पर स्कूलों से कहीं अधिक कई प्रकार की शिक्षा पालेते हैं और अपनी मानसिक, नैतिक और शारीरिकोन्नति कर संसार में कीर्ति पाते हैं। इन्हीं गुणों से उनकी शोभा होती है न कि आभूषणों से। अमेरिका के वैज्ञानिकों ने बहुत सोच विचार कर ऐसे खेल निकाले हैं जिनसे बालक आप ही आप व्याकरण, भूगोल, ज्योतिष, शास्त्र, रेखागणित, अंकगणित आदि सीख जाते हैं। बालक बालिकाओं को अपनी देशभक्ति और उसके गौरव को जानने के लिये देशका इतिहास और देश के वीरों की कहानियां पढ़ाई जाती हैं। जातीय उत्सवों में भाग लेने के लिये उत्साहित करती हैं उसका फल यह होता है कि बाल्यकाल ही से देश प्रेम की शिक्षा पाकर बड़े होने पर अमरीका का प्रत्येक स्त्री पुरुष अपने देशका स्वार्थ पहिले देखता है और आवश्यकता पड़ने पर वह तन मन और धन से देश की सेवा करता है। इस समय अमेरिका में नौ हजार से ऊपर डाक्टरी पास की हुई महिलायें डाक्टरी का काम करती हैं। छापेखानों और अनेकों सुसाइटियों में सहस्रों की संख्यामें स्त्रियां काम कर पुरुषों के बराबर वेतन पाती हैं।

अमेरिकन विदुषी महिला ।

राईनार्ट ।

आपने २९ वर्ष की अवस्था से पुस्तक लिखने का कार्य प्रारम्भ किया और कोई तीस बत्तीस पुस्तकें उपन्यास आदि ढँगोंकी प्रकाशित कराई हैं। प्रति वर्ष दस हज़ार पौंडसे अधिक आप पुस्तकों के द्वारा प्राप्तकर लेती हैं। गृहस्थी के सम्पूर्ण कार्यों को करते हुये साहित्य की इतनी उन्नति करना आपका सराहनीय है।

जापान

में प्रति सैकड़ा ९९ पढ़ी लिखी हैं। ६० प्रति सैकड़ा ग्रेजुएट हैं यही कारण है कि जापान दिनोंदिन उन्नति कर रहा है।

श्याम

में ६० प्रति सैकड़ा विदुषी हैं फ़ौज में सैकड़ों की संख्या में स्त्रियाँ ही सिपाहियों का काम करती हैं।

इंगलैंड

में पूजनीया महाविदुषी राजराजेश्वरी मलिका विक्टोरिया ने किस प्रजावत्सलता, न्यायता और उदारता से ६० वर्ष के लगभग राज्य किया। महारानी कई भाषाओं को अच्छे प्रकार जानती थीं आपके विद्या प्रचार के कारण ही आज इंगलैण्ड में १८ हज़ार स्त्रियाँ सम्वाद पत्रों का। २०० के लगभग साहूकारी। ७३५ दलाली आढ़त और हुंडी का कार्य। ९८५ माल मोल लेकर बेचने का कार्य। २०० के लगभग व्यापारिन। १७८५५ क्लर्की का काम। ३६७० नाटक कम्पनियों में और ७०० के लगभग समाचार पत्रों की सम्पादिका का कार्य करती हैं। वर्तमान महाराणी प्रसिद्ध गायका हैं जिन्होंने संगीत में डाक्टर की उपाधि पाई है। अनेकों स्त्रियाँ बी. ए. और एम. ए. हैं मेडमज्जेनेट्स की मिसरानी विसेन्ट, मिस्ट्रेस ए० पी० एनैट इत्यादि बहुत सी विदुषी हैं।

आईसलैंड

में कुमारी विपर्सन आदि अनेक विदुषी महिलायें हैं।

जेनेवा

में अनेक स्त्रियां सुशिक्षिता हैं अभी हालमें वहां की महिलाओं ने बायस्कोप के बुरे चित्र बालकों को न दिखाने का प्रस्ताव पास किया है।

जर्मनी की स्त्रियां

वीर विदुषी हैं। महिलाओं को वोट देने और पार्लियामेंट में प्रविष्ट होने का अधिकार है। सभी प्रांत में सभा सुसाइटियों की खूब चर्चा है। अकेले बर्लिन में १५० के लगभग परिषदें जिनमें सामयिक प्रश्नों पर वाद विवाद किया जाता है। स्त्री समाज का ध्यान निःशुल्क शिक्षा-भोजन-चिकित्सा—बालकों के स्वास्थ्य और रक्षा आदि के विषयों की ओर अधिक लगता है। स्त्रियां स्वयं सेवकों का काम बड़े परिश्रम से करती हैं। स्कूलों में मास्टरी का, क्लर्की और डाक्टरानी आदि का काम भी स्त्रियां ही करती हैं। विधवाओं और अनाथबाल बच्चों की रक्षा का ध्यान तथा नवयुवक और नवयुवतियों का हित चिन्तन सभी स्त्रियां धर्म समझ कर करती हैं। स्त्रियां पुरुषों के बराबर वेतन पाती हैं और पुरुषों के बराबर पदों पर नियुक्त हैं। सिविल सर्विस में भी स्त्रियों को उच्च पद प्राप्त है। गृह प्रबन्ध में तथा बच्चों को उत्तम शिक्षा देने में जर्मनी महिलायें बड़ी कुशल हैं। नशे आदि का सेवन नहीं किया जाता।

चीन

में डच, च्यूं, कू, आदि महिलायें बड़ी विदुषी हैं। स्त्रियों को विदुषी बनाने का बड़ा यत्न करती हैं। दक्षिण चीन की स्त्रियां भी अपना अधिकार पाने के लिये प्राणपण से चेष्टा कर रही हैं।

टर्की महिलायें

टर्की की महिलायें यद्यपि चिरकाल से परदे में रहती आई हैं किन्तु अब वे परदे से निकल कर समाज के बहुत से कामों का भार ले रही हैं तुर्की स्त्रियों की प्रधान हितैषिनी श्रीमती हालिडे, अदीवहनूम हैं पाश्चात्य देशों में इन्हें टर्की की 'जोनआफयार्क' कहते हैं यह कमाल पाशा के मित्रों में हैं। राज्य के गम्भीर विषयों में कमाल पाशा इनकी सलाह लेते हैं। श्रीमती हनूम भी एक वीर विदुषी महिला हैं।

अफ़ग़ानिस्तान

के वर्तमान अमीर अमानउल्ला साहब अपने देश में स्त्री शिक्षा की उन्नति कर रहे हैं। दो वर्ष से स्वयं महारानी की निरीक्षता में एक बालिका विद्यालय खुला है इसमें ३५० कन्यायें शिक्षा पाती हैं और लि-

लना पढ़ना अङ्क गणित-भूगोल-इतिहास-चित्रकला-शिल्प तथा सिलाई आदि सभी शिक्षा दी जाती हैं। अमीर साहब का उद्योग सराहनीय है।

मिस्र

देश की महिला डेलिगेशन की सभाने भी खातून हूदाशेरा सैयदान नूईमूसा और सैयदा जीजनबूई हुई थी ॥

रंगून

में मिस किंगरुली बड़ी विदुषी, स्त्री डाक्टरानी तथा प्रथम म्युनिसपलटी की सदस्या हैं।

रशिया

के परराष्ट्र विभाग का संचालन 'सिमोनोवा' नामक महिला कर रही है आपकी आयु ३० वर्ष की है सरल-सरस एवं विदुषी हैं।

सच तो यह है कि प्राचीन काल में जब कि पुरुषों के समान स्त्रियों का अधिकार था, उस समय में स्त्रियां सब गुणों में निपुण होती थीं और उन्हीं गुणों में से विशेष गुणों के कारण उनके नाम भी अब तक प्रसिद्ध चले आते हैं। जैसा धन संचय करने के कारण लक्ष्मी, विद्योपार्जन से देवी या सरस्वती और गृह दक्षतामें चतुर होने से गृहरक्षिणी इत्यादि कहलाती थीं। परन्तु अब वर्तमान में स्त्री शिक्षाके न होने से सौंदर्य, शील, लज्जा, धर्म, स्वच्छता, साधुता, सहनशीलता, मधुरभाषण पतिसेवा, पतिप्रेमयहसब जातेरहे। लक्ष्मी और देवी उनका नाम ही न रहा सन्तान भी गुण रहित उत्पन्न होने लगी। शांति स्वप्न में भी दिखाई नहीं देती। आदर सत्कार गौरव मान यह सब भूल गई। बिना स्त्री के घर ही नहीं होता और घर बिना सुयोग्य स्त्री के स्वर्ग नहीं बन सकता, इसी हेतु समानाधिकार ज्ञान बुद्धि से विचार वेद की आज्ञानुसार पुत्री-शिक्षा का यथावत् प्रबन्ध कराइये, तब ही देश का सौभाग्य और अभ्युदय होगा।

प्रिय सज्जन पुरुषों! वर्तमान समय में प्रत्येक गृहमें (१) संचय (२) आयव्यय का का हिसाब (३) गृहकार्यों में दक्ष होना, (४) स्वच्छता (५) शिक्षा (६) शिशुपालन (७) पति आदि की सेवा करना (८) शिशुशिक्षा (९) एकता का बीज बोना (१०) नम्रता पूर्वक प्रिय भाषण करना (११) आपत्ति के समय में धीरज धर प्रबन्ध करना इत्यादि जो कार्य करने पड़ते हैं क्या वे यथावत् होते हैं ? क्या मूर्ख स्त्रियां प्राचीन रीत्यनुसार किसी कार्य को कर सकती हैं कदापि नहीं।

देखिये (१) संचय की तो यह दशा है कि फूटी कौड़ी पास न निकलेगी, यदि मियां दस पैदा करलावें तो बीबी बारह में आग लगा देती हैं, सो भी निकम्मे तथा निठल्ले कार्य्यों में (२) आयव्यय का हिसाबकिताब कौन करे जब उनको दस तककी गिनती ही नहीं आती, अक्षर के स्वरूप ही नहीं जानतीं। (३) गृहकार्यों में चातुर्य होना यह तो भली भांति प्रकट है कि न तो वह पाक विद्या को जानती हैं न शिल्पको, भोजनों की कुदशा के कारण नित्यप्रति गृह में रोगही बने रहते हैं, निर्बलता ही दृष्टि आती है। (४) स्वच्छता-वह इस जीवनके मूल पदार्थ से तो अत्यन्तही अज्ञान हैं। इस विषय में तो उनको कुछ भी नहीं आता। वह सदा मैले कुचैले रहना, मैले कपड़े पहिनना भला जानती हैं, हां सोने चाँदी के आभूषणों का लादना ही इन को आता है। (५) गर्भाधान के विधान की वह कुछ पर्वाह नहीं करतीं परन्तु इन असमय की घटनाओं का फल यह होता है कि अल्पकालमें ही दोनों हाड़ की माला बन जाते हैं तथा आयु और बल की समाप्ति होजाती है। इसके उपरांत लाखों गर्भपात होते हैं, सैकड़ों स्त्री पुरुष सन्तान के अर्थ शिर ठोकते रह जाते हैं, यदि सन्तान होने के उपाय किये जाते हैं तो यह कि धुना, जुलाहे, कोरी, माली, धीमर काछी आदि मूर्ख, भूत, भैरव, मियां शेखसद्दो को पुजावते, उतारे उतरवाते, गंडा तावीज़ करते हैं जिसके कारण उसके रोग असाध्य होजाते हैं। फिर बहुधा स्त्रियां पुत्र आदि कामनाके अर्थ हट्टे कट्टे सराडे मुसराडे नाम के साधु वैरागियों के पास जो गावों के समीप मढ़ी बनाकर रहते हैं, दर्शनों के बहाने आती जाती हैं, फिर उनसे नाना प्रकार के कौतुक भी कराती हैं जिससे और भी अपयश होता अर्थात् दोनों लोक बिगड़ जाते हैं। (६) शिशुपालन प्रथम तो गर्भाधान ही ने उनको सर्व सुख दे रक्खे हैं कि जिसके कारण न बल रहता न उत्साह, तिस पर बुढ़ापे की लकड़ी, नेत्रों का प्रकाश घरके दीपक सैकड़ों बुझ जाते हैं। इसका कारण अज्ञानता वा असावधानी है, क्योंकि उनको दूध पिलाने और नहलाने आदि का कुछ भी ज्ञान नहीं होता वरन् आपभी बिना विचार भोजनादि करती रहती हैं, कि जिससे बच्चों को अफरा, जमोघा, सूखा आदि रोग होजाते हैं अन्त को वह यमपुर चले जाते हैं। इन सबके उपरांत टीका लगवाने से उनको महा चिढ़ है, जिससे बहुधा बच्चे मोती झाड़े की बीमारी के भेंट होजाते हैं। फिर माता पिता का इस दुःख में शिर हिलने लगता है, इन असावधानियों के

कारण स्त्रियों को बुखार प्रसूत आदि ऐसे रोग हो जाते हैं, कि जिनके कारण जन्म भर रोती रहती है, वैद्य को दवा कराने में तो पत्थर पड़ते हैं पर गण्डा तावीज़के अर्थ चुपचाप धन लुटाती हैं। सच तो यह है कि जो बालक इन विपत्तियों से बच भी जाते हैं उनके बल न्यून होजाते हैं क्योंकि प्रथम तो बीज ही निर्बल होता है तिस पर न्यून अवस्थाही से विवाहरूपी बेड़ी डाल दी जाती है। (७) पति आदिकी सेवा की यह दशा है कि जहां बहूजी ने होश संभाला पतिके कान भरने शुरू किये, आपभी सास, ससुर देवर, जिठानी आदिसे तनिक तनिक बात पर ऐसा झुंझलाती हैं कि मानो किसी को कारूँ का खज़ाना दे दिया है, वा भूमण्डल का राज्य इन्हीं के आधीन है, वा यह सब इनकी ज़र खरीद हैं, नित्यप्रति देवासुर संग्राम मचा रहता है, परस्पर ताली बजा २ कर ऐसी लड़तीं कि खाना हराम कर देती हैं, अन्त को एक चूल्हे के दो कराकर भी प्रीतम प्यारे से प्रसन्न नहीं, वरन् माता पिता भाई इत्यादि के साथ ऐसी शत्रुता करा देती है कि एक दूसरे का मुंह तक भी देखना पसंद नहीं करता। (८) शिशु शिक्षा का क्या कहना है उनको तो विद्यादि कुछ आती ही नहीं जो वह शिक्षा दें या उनको गुणवान और धार्मिक बनावें हां नाना भाँति के अवगुणों के (हउआ, लूलू) अंकुर उन बालकों के हृदयमें जमा देतीं हैं कि जिन से वह डरपोक आदि दुर्गुणों से युक्त हो जीवन पर्य्यन्त बड़ी २ हानियाँ उठाते हैं (९) एकताका बीज वाह जी वाह जहाँ सब कार्य फूटसे ही हों वहाँ एकता का क्या काम ? बहुधा स्त्रियाँ अपने सुयोग्य पति को जो उनको सब तरह से सुख देता है किञ्चित् बात पर पगड़ी उतारने को तत्पर होजाती हैं तथा ऐसे कटु वचन सुनाती हैं कि जिनसे उसको सात पीढ़ी तक याद आती हैं। शरीर क्रोध में भस्म होजाता है, जब एक गृहमें एकता नहीं रहती फिर भला अन्यत्र एकता क्योंकर रहेगी। (१०) नम्रता पूर्वक प्रिय भाषण करना—अजी साहब नम्रता का तो नाम ही नहीं अपनी २ ऐंठ में डेढ़ चावल की जुदा ही खिचड़ी पकाते हैं, कोई किसी को नहीं गिनता। घरमें बहू जी को अपना ही घमण्ड है, सास जिठानी अपने अपने नशे में चूर सब ऊट पटाँग ही हाँकती रहती। (११) आपत्ति के साथ धीरज धरना। क्या खूब, जब आराम तथा सुख से ही गृहरूपी राज्य का प्रबन्ध नहीं कर सकतीं तो भला आपत्ति में उनका क्या ठीक। यहाँ तो तनक तनक सी बातों पर बुद्धि मारी जाती है, हक्का बक्का होकर सारे दिन

रोती हैं सब अड़ोसी पड़ोसी तथा सम्बन्धी उसके हितू बन अपना २ मतलब बनाते हैं।

इन सबके उपरांत जब कभी पति आदि परदेश चले जाते हैं, तब वह घूंघट वाली स्त्रियां चिट्ठी पढ़ाने के अर्थ अन्य पुरुषों को बुलाती या उनके पास आप जाती हैं तो सम्पूर्ण भेद खुल जाते हैं, तिस पर भी बहुधा बातें लज्जा के कारण लिखने से रह जाती हैं और इसके अतिरिक्त ऐसी स्त्रियों के फिर और भी गुल खिलते हैं जिनके तमाशे हम तुम देखते हैं भला बताओ तो सही, मेले तमाशे आदि में यह मूर्खा स्त्रियां क्या २ लीलाएं रचती तथा आभूषणों के अर्थ गृहोंमें किस प्रकार द्वंद मचातीं कि पृथ्वी को उठा लेती हैं। चाहे एक आने रुपये का सूद दो, चोरी आदि कैसा ही दूषित कर्म करो परन्तु उनको छम २ अवश्य ही कराओ, चाहे रोटी मिले या न मिले, परन्तु उनके वस्त्र क़ीमती हों।

इसके उपरान्त मूर्खा होने के कारण विधवाओं की दशा कैसी शोचनीय हो रही है जिसके कहने में लाज आती है इन सब बातों के अतिरिक्त हम लोगों में मुसलमानों का कोई पानी नहीं पीता, परन्तु जब कभी बच्चे बीमार हो जाते या गर्भिणी स्त्रीको किसी तरह की बाधा हो जाती है तो उसी समय गृहकी स्त्रियां उन रोगोंकी औषधियां नहीं करतीं वरन् थोड़ा पानी मसजिद में भेज मुल्ला से पढ़वा कर मंगवाती हैं, तथा झूठा पानी पीती और पिलाती हैं। २—जीवहिंसा करना हम सबके यहां महा पाप माना गया है परन्तु वह स्त्रियां काली देवी पर बकरा,मसानी,पर घेंटा मीरा पर कलेजी तथा होली दिवाली की रात को अनेक कौतुक करती हैं, क्या यह महापाप की बात नहीं है। ३—बालकों के बुरे नाम रक्खे जाते हैं जिस से बड़े होने पर उनको लाज आने के कारण नाम पलटने पड़ते हैं, बालकों में झूठ बोलने की बान डालने वाली भी स्त्रियां ही हैं, क्योंकि वह उनको खिलाने के समय कहतीं कि लल्ला चीजी कौआ ले गयो, या यों कहतीं कि ले जारे कौआ! ले जारी चिड़िया लेजा! ऐसा कह कर चीज़ को छिपा देतीं फिर देजारे कौआ देजा, ऐसा कह कर वस्तु को दिखलाती हैं मान्यवरो! ऐसेही वार्त्तालाप से तरुणाई में भी मिथ्या बोलने को बुरा नहीं समझते। इन्हीं के कारणों से माता की बात का विश्वास नहीं रहता। ४—जो प्रतिदिन गृह के भीतर रह कर लज्जावती कहलातीं, वहीं विवाह आदि में मन खोल कर सबके सम्मुख अच्छे प्रकार अपशब्दों स-

हित सीखनी गा अपने को कृतार्थ मानती हैं। (५) बहुधा रीतें ऐसी प्रचलित करदी गई हैं कि जिनसे सभ्य मण्डली के सम्मुख लज्जा आती है यथा—चाक, कुआ, चौरहा, धुरा, बांबी बरगद, कबर, कूकर आदि पूजना, मियाँ मदार की जारत को जाना, शेखसदों पर चादर चढ़ाना। इत्यादि।

यदि आप प्राचीन काल की भाँति श्रीकृष्ण से योगीराज, व्यास से उपदेशक, युधिष्ठिर से सत्यवादी, भीष्म पितामह से जितेन्द्रिय, द्रोणाचार्य से गुरु, कर्ण से दानी, विदुर से विचारशील, रामचन्द्र से आज्ञाकारी, भास्कराचार्य से गणितज्ञ, अर्जुन भीम से योधा, लक्ष्मण और भरत से भाई इत्यादि धार्मिक गुणों से परिपूर्ण सन्तान उत्पन्न करना चाहते हो तो महाशयो! कुन्ती, अनुसुइया, गार्गी, मन्दालसा, कौशिल्या, देवहूती, शिवा सुलभा, सत्यरूपा आदि की भाँति स्त्रियों को वेदादि सत्यविद्याओं से भूषित करो, क्योंकि देव तथा देवियों के ही समागम से देवी देवता उत्पन्न हो सकते हैं, अन्यथा देव और राक्षस तथा राक्षस देवीके संयोग से कभी पूर्ण सुयोग सन्तान उत्पन्न नहीं हो सकती। प्राचीनकाल में स्त्री प्राचीन काल में वेदों की आज्ञानुसार माता पिता अपने पुत्र तथा कन्याओं को अच्छी प्रकार शिक्षा देकर विद्वान् और विदुषी के समीप बहुत काल तक पढ़वाते व वह कन्या और पुत्र सूर्य्य के समान अपने कुल और देश के प्रकाशक होते थे जैसा यजुर्वेद अध्याय ११ मन्त्र ३६ में लिखा है उसी समय यह भूमि विद्वान् रूपी स्त्री पुरुष बहुमूल्य रत्नों को उत्पन्न करती थी हे देश के सुधारने वालों हे संतान पर दया करने वालों हे देवताओं के रक्त से उत्पन्न होने वालों हे ऋषि सन्तानों स्त्री शिक्षा के न होते नाना प्रकार के दुःख रूपी तप्त कुण्ड में पड़े हुए भुन रहे हैं आओ इस भारतरूपी डूबती नैय्या को स्त्री शिक्षा रूपी बल्लीं से पार कर भारत जननी के दुखड़ों को मेट यश के पात्र बनिये। प्यारे सज्जनों! अब मैं इस विषय को समाप्त कर इतनी और प्रार्थना करता हूँ कि पुत्रियों की शिक्षा विदुषी स्त्रियों से ही कराइये जिससे विद्या की वृद्धि हो। जैसा य० अ० २० मं० ८५ में कहा है—

चोदयत्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम् यज्ञंदधे सरस्वती।

वैसे ही ऋग्वेद अ० २ अ० ३ व० २२ मंत्र १ अ० २२ सू०१६ में कहा है कि जो स्त्री समस्त सांगोपांग वेदों को पढ़ के पढ़ाती है, वही सब

की उन्नति करती है। इस लिये कृपा करके शीघ्र पुरुषों से शिक्षा कराने की प्रणाली को भारत से उठा दीजिये और पाठशालाका स्थान जन समुदाय से पृथक् तथा उसकी दीवारें इतनी ऊँची हों कि कोई जन उचक कर भी न देख सके और पड़ोस में वेश्या का वास तथा नगरसे बहुत मिलान न हो और स्थान रमणीक, पवित्र, शुद्ध जल वायु वाला हो मनु अ० ४ श्लोक १०७, १०८ में लिखा है कि धर्म की अतिशय इच्छा वालों को नगर-ग्राम के समीप-दुर्गंधित स्थान-मुर्दे गड़ने वाली भूमि-पापी कपटी मनुष्यों के निकट तथा भीड़ भाड़ में पठन पाठन न करना चाहिए। जैसा कि--

नित्यानध्याय एवस्याद् ग्रामेषुनगरेषुच। धर्मनैःपुण्य कामानां पूतिगन्धेचसर्वदा॥
अन्तर्गतशवेग्रामे वृषलस्य च सन्निधौ। अनध्यायोरुद्यमानेसमवायेजनस्यच॥

औशन स्मृति में लिखा है कि पवित्र या एकांत जगह में ब्रह्मचर्य रख पढ़े पढ़ावे परन्तु पुत्रियां ब्रह्मचर्य आश्रम में भिक्षा न मांगें किंतु उनके घर वाले भोजनादि का स्वयं प्रबन्ध कर देवें। अथर्ववेद कांड १८ सूक्त ३ मं० १० में उपदेश है कि पितर अर्थात् विद्वान् माता पिता आदि ऐसी शिक्षा प्रणाली चलावें कि जिससे कन्या और पुत्र बलवान्---विज्ञानवान् तेजस्वी और सूक्ष्मदर्शी होकर संसार में कीर्ति पावें जैसा कि—

वर्चसामांपितरः सोम्यासो अञ्जन्तुदेवा मधुनाघृतेन।
चक्षुषेमा प्रतरन्तारयन्तो जरसेमाजरदष्टिंवर्धन्तु॥

प्यारे मित्रो और सुयोग्य बहिनों! उपरोक्त रीति से स्त्री शिक्षा का प्रबन्ध (जैसा कि वर्तमान समय में कन्या महाविद्यालय जालन्धर तथा कन्या गुरुकुलों में विद्यमान भी है) कर गृहस्थी के कार्योंसे थोड़ा २ समय निकाल कर आप भी स्वयं विद्याभ्यास करें जिससे आपकी संतानें आप की देखा देखी अधिक परिश्रमसे विद्या पढ़ें तथा आप उनके पढ़ने लिखने की परीक्षा कर सको जैसे कि विदेशीय स्त्रियां सन्तानों को पढ़ाने में कर रही हैं। परन्तु शोक है कि हमारे देश की अनपढ़ स्त्रियां यह कह कर कि कहीं बूढ़े तोते भी पढ़ते हैं पृथक् हो जाती हैं यदि वह विद्यावती होतीं तो कदापि ऐसा न कहतीं। देखिये जयदेव की स्त्री पद्मावती ने ब्याह के पश्चात् काव्य पढ़ा था। अहिल्याबाई ने ३० वर्ष के उपरान्त विद्या पढ़ राज काज का भार लिया था। लोलम्बराज वैद्य की स्त्री रत्न कला ने युवा अवस्था में काव्य और वैद्यक पढ़ा था। इस लिये तुम भी

इस संसार में धर्म और अधर्म तथा अपने कर्त्तव्य जानने के लिये विद्या को पढ़ो और फिर सदा धर्मात्मा बन विद्यादानमें रत हो जैसा किसी कवि ने कहा है—

धर्माधर्मौनजानाति लोकोयंविद्यय विना।
तस्मात्सदैवधर्मात्मा विद्यादानरतोभवेत्॥

और ऋग्वेद। अ० ५। व० ७। मं० ७। अ० ४। सू० ६४। मं० ४ में लिखा है कि इस विद्यारूपी यज्ञ से तुमको बल तथा प्रकाश की प्राप्ति होगी अर्थात् यह यज्ञ तुम्हारी सकल कामनाओं को सफल करेगा क्योंकि उत्तम बुद्धि से ही उत्तम काम होते हैं और उत्तम कर्म सुख साधन का केन्द्र है इस लिये इस यज्ञ की पूर्ण आहुति के लिये सदा परमेश्वर से यह प्रार्थना किया करो कि हे प्रभु हमको सदा मंगलमय भावों से पवित्र करो।

---

* विवाह *

प्यारे सुजनों, और सुयोग्य बहनों! इस समय हमारे देश में बुखार, चेचक, प्लेग, हैजादि रोगों की बहुतायत है कि जिससे भारत की कुदशा होरही है तिस पर भी एक अन्य महान रोग फैला हुआ है जिस मूजी के फंदेसे कोई भारत वासी छुटकारा नहीं पाता। जहां वह रोग सिर पर चढ़ा फिर थोड़े ही दिनों में ऐसा थोथा कर देता है जिस प्रकार सत्त निकालने पर गेहूं निकम्मा हो जाता है। विचार शक्ति नाम को भी नहीं रहती उत्साह तथा साहस के स्वप्न में भी दर्शन नहीं होते सच पूछो तो जैसे बुखार के रहने से तिल्ली आदि बीमारियां हो जाती हैं उससे भी अधिक इस रोग के होने से प्रमेह, अफरा, दमा, खांसी आदि रोग उत्पन्न होकर शरीर की चमक दमक को नष्ट कर आलसी और क्रोधी बना बुद्धि भ्रष्ट कर देता है, मानो इसी असाध्य रोग ने भारत के चारों कोने चौपट कर उसे सभ्य से असभ्य, राजा से फ़कीर, दीर्घायु से अल्पायु बना दिया। भाइयों कहां तक गिनावें सब प्रकार के सुख तथा वैभव को इसने छीन लिया।

बहुधा हमारे पाठक गण इस बात को सुन कर अपने मनमें विचार करने लगे होंगे कि यह महान रोग कौन बला है, अथवा वे उसका नाम

सुनने के लिये विकल होंगे। हे सज्जनों! इस महान् रोग को तो सब जानते हैं क्योंकि प्रति दिन आप ही के घरों में उसका निवास है, कौन ऐसा भारतवर्षीय जन है जो वर्तमान समय में उससे न सताया गया हो, किसने उसके पांड़ों को न बेला हो, कौन उसके दुःखों से घायल होकर न तड़पता हो। यह वह मीठी मार है कि जिसके लगते ही अपने आप सर्व सुखों की पूर्ण आहुती दे मियां मिट्टू बन जाते हैं। इसीका नाम जादू है क्योंकि कहा है—

क्या लुत्फ़ जो गैर परदा खोले। जादू वही जो सिर पर चढ़ के बोले॥

इस पर भी तुर्रा यह है कि जब यह बीमारी जिस गृहमें प्रवेश करती है तो चार छः मास से अपनी आमद की खबर सुनाती है जब निकट दिन आते हैं तब सब गृहको पूर्णरूप से स्वच्छ कराती, कपड़ेलत्ते सुथरे पहनाती है, गृहमें मङ्गलाचरण होते हैं, इधर उधर से भाई बन्धु आते हैं। जिस रात को उस महारोग की आमद होती है सम्पूर्ण नगर में कोलाहल मच जाता है और उस गृहमें तो उत्साह होता है कि जिसका पारावार नहीं दर्वाजों पर नौबत झड़ती, रण्डियां नाच नाच कर मुबारिकबादें देतीं धूलगोले चलते तथा पण्डित जन मंत्र उच्चारण करते हैं फिर सब मिल कर उस महारोग को 'कि जिसके सिर पर मौर होता है' चपेट देते हैं। प्रातः होते ही सब स्थानों में मनादी हो जाती है।

अब तो यह महान् रोग अत्यन्त प्रकट होगया। कहिये किस धूमधामसे आता, क्या २ खेल खिलाता, कैसे कैसे नाच नचाता, सबको बेहोश कर देता है। सच पूछो तो इस रोग का ऐसे गाजे बाजे से दखल होता है। कि जिसमें किसी प्रकार की रोकटोक नहीं होती, वरन् सब मिलकर आप उस महारोग को बुलाते हैं कि जिसका नाम 'न्यून अवस्था का विवाह है'।

अब ऊपर वर्णन से अत्यन्त प्रकट है कि जो जो हानियें भारतवर्ष में हुई उन का मूल कारण यही बाल्यावस्था का विवाह है। इस लिये अब हम वेदादि सत्य शास्त्रों के प्रमाणों से सृष्टिक्रम और प्रचलित रीतों से अच्छे प्रकार सिद्ध कर दिखाते हैं कि विवाह का समय क्या था और वह किस प्रयोजन के लिये किया जाता था? मान्यवरो! जब हम संस्कृत व्याकरणानुसार विवाह शब्द के अर्थ पर विचार करते हैं तो प्रतीत होता है कि वि (उपसर्ग है) का अर्थ विशेषकर और वाह का अर्थ है जोड़ना

अर्थात् वह मेल या सम्बन्ध जो विशेषता से हो अथवा दो योग्य आत्माओं को समानावस्था में लाने के लिये मिला दिया जाय उसका नाम है विवाह अब आप विचारिये कि एक दूसरे का अटूट सम्बन्ध पूर्णावस्था से प्रथम किस प्रकार हो सकता है इसी लिये शास्त्रकारों ने २५ वर्ष के पुरुष को १६ वर्ष की कन्या के साथ विवाह करने की आज्ञा दी है अर्थात् शरीर और आत्मा के बलवान हो जाने के पश्चात् विवाह का समय नियत किया गया था जिस से सब पुरुष ऋतुचर्यानुकूल आहार विहार कर आरोग्यता-बल-धन संतान और यश को प्राप्त कर मनुष्य जीवन का उद्देश्य पूर्ण कर सकें। देखिये ऋग्वेद मं० ३ सू० ८ मं० ४ में लिखा है।

युवा सुवासः परिवीत आगात्स उ श्रेयान्भवति जायमानः।
तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो ३ मनसा देवयन्तः॥

जो मनुष्य तरुण होकर विद्याध्ययनकर अच्छे प्रकार सुन्दर आचरणों पर चलकर विवाह करता है वह विद्वान् तथा महात्मा पुरुषों में पूजनीय होता है। ऋग्वेद मं० ३ सू० ५५ में लिखा है:—

आ धेनवो धुनयन्तामशिश्वीः सबर्दुघाः शशया अप्रदुग्धाः।
नव्या नव्या युवतयो भवन्तीर्महद्देवानामसुरत्वमेकम्॥

अर्थात् तरुण पुत्री पूर्ण विदुषी होकर सुन्दर विद्या वाले जवान पुरुष से विवाह करे, अन्यथा न्यून आयु में कदापि पुरुष का ध्यान न करे और ऋग्वेद मं० १ सू० १७९ में लिखा है।

पूर्वीरहं शरदः शश्रमाणा दोषावस्तोरुषसो जरयन्तीः।
मिनाति श्रियं जरिमा तनूनामप्यू नु पत्नीर्वृषणो जगम्युः॥

अर्थात् तरुण पुत्र को तरुण पुत्री के साथ विवाह करने से सुसन्तान उत्पन्न होती और दोनों पूर्ण आयु को पहुंचते हैं, इसलिये मनुष्यों को ऐसा ही करना चाहिये। मनुजी महाराज ने अ० ३ श्लोक दो में लिखा है। कि जिस मनुष्य ने विधि पूर्वक तीनों वेद अथवा दो वेद वा एक वेद पढ़ लिया है और ब्रह्मचर्य नियम खण्डित नहीं किया उसको योग्य है कि विवाह करके।

वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम्।
अविप्लुत ब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममावसेत्॥

अथर्ववेद कांड ११ ब्र २७ में लिखा है पुत्र व पुत्रियां जब ब्रह्मचर्य से

यथावत वेद विद्या को श्रवण, मनन, निदिध्यास न कर चुके तब समावर्तन संस्कार कर विवाह करे।

यावंदस्या गोपतिर्नोपंस्पृणु या चंः स्वयम्।
चरेदस्य तावद् गोष्णु नास्यं श्रुत्वा गृहे वंसेत्॥

क्योंकि बिना शरीर के बल और विद्या आदि के निरुधर्मी मनुष्य आपत्ति और विपत्ति में पड़े रहते हैं इसलिये अथर्ववेद में लिखा है कि विदुषी स्त्री अविद्वान् को छोड़ कर पूर्ण विद्वान् से विवाह करके आपत्तियों से बच कर सुखी रहे। य० अ० १२ मं० १८में स्पष्ट कहा है कि ब्रह्मचर्य, उत्तम शिक्षा और विद्या शरीर और आत्मा के बल, आरोग्यता, पुरुषार्थ, ऐश्वर्य, सज्जनोंका सङ्ग, आलस्य, का त्याग, यम, नियम आदि सामिग्री का सँचय कर विवाह करे और अ० १२ मं० ६२ में स्पष्ट आज्ञा है कि हे स्त्रियों पुरुषार्थ रहित चोरों के सम्बन्धी पुरुषों को कभी अपने पति बनाने की इच्छा न करो वरन् आप्तपुरुषों की नीति के तुल्य पुरुषों को गृहण करो यजुर्वेद अ० ८मं०११ में लिखा है ब्रह्मचर्य से शुद्ध शरीर उत्तम विद्या युक्त हो कर विवाह करने वाले कन्या और पुरुष युवास्था को पहुंच परस्पर एक दूसरे के धन को अच्छे प्रकार देख कर विवाह करे नहीं तो धन के अभाव में दुख की उन्नति होती है इस लिये उक्त गुणों से युक्त विवाह कर आनंद में रहे।

ऋग्वेद अ०२। अ० १। व० १२। मं० १ अ० १६ सू० १२७ मं० १ में लिखा है स्त्री पुरुष को जिसकी उत्तम गुण वालों में बहुत प्रसंशा हो जिसका शरीर उत्तम और आत्मा बलिष्ठ हो पति बनाने के लिये इसी भांति पुरुष भी उपरोक्त प्रकार की स्त्री को भर्यापन के लिये स्वीकार करें। और यजु० अ० ८ मन्त्र १ में उपदेश है कि विवाहकी कामनावाली युवती को उचित है जो छल कपट आदि आचरणों रहित प्रकाशवान एक ही को चाहने वाला जितेन्द्रिय सर्व प्रकार का उद्योगी, धार्मिक विद्वान् हो उसी के साथ विवाह कर आनन्द भोगे।

स्मृतिकारों ने भी यही आज्ञा दी कि प्रथम आयु के चौथाई भाग में गुरुकुल में रह कर विद्या पढ़े दूसरे भाग में विवाह कर गृहस्थाश्रम में रहे। देखो मनुस्मृति अ० ३ श्लोक १ में लिखा है।

चतुर्थमायुषो भाग मुप्येतऽधंगुणैर्द्विजः ।
द्वितीयमायुषो भागो कृतदारोगृहेवसेत ॥

विष्णुस्मृति अ० १ श्लोक २५ । संवर्तस्मृति अ० १ श्लोक ३४ । संखस्मृति अ० ३ श्लोक १५ । व्याससमृति अ० १ श्लोक ४२ । दक्षस्मृति अ० १ श्लोक ६–७ । हारीतस्मृति अ० १ श्लोक १५ । मार्कण्डेयपुराण अ० २८ श्लोक १४, १५ । देवीभागवत स्कंद १ अ० १८ श्लोक १६ में भी उपरोक्त आज्ञा है । पद्मपुराण ३ सर्ग खण्ड अ० १६ श्लोक १५१ में लिखा है कि प्रथम ब्रह्मचर्य आश्रम को पालन कर, विवाह कर संतान उत्पन्न करे ।

उपरोक्त वचनों से स्पष्ट प्रकट हो रहा है कि बिना ब्रह्मचर्यव्रत धारण किये किसी को विवाह करने की आज्ञा नहीं द्वितीय दोनों युवा होकर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करें न कि बालक और बालिकायें तृतीय ब्रह्मचर्य का महात्म महान् है क्योंकि बिना ब्रह्मचर्य के बैलगाड़ी को नहीं ले जा सकता घोड़ा शत्रु पर विजय नहीं पाता फिर भला ब्रह्मचर्य से पशुओं की दशा का सुधार होता है तो फिर मनुष्य जीवन को महान् जीवन बनाने के लिये कितनी आवश्यकता है इसी लिये चारों वेद बारम्बार यही आज्ञा दे रहे हैं कि ब्रह्मचर्य धारण कर विद्या पढ़ने के पश्चात् विवाह कर नियम पूर्वक बलवान्, सुशील सन्तान उत्पन्न करें, देखिये अथर्ववेद कां० ५ सूत्र १० में लिखा है—

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम् ।
अनड्वान् ब्रह्मचर्येणाश्वोघासं जिगीर्षति ॥

शास्त्रानुसार समावर्तन का अधिक से अधिक समय ४८ वर्ष और न्यून से न्यून २५ वर्ष है । जैसा आपस्तम्ब धर्मशास्त्र अ० २ मं० ११ खं० २० में लिखा है—

तथावर्तेनाष्ट चत्वारि शत्यरिमाणेन् ।

यही सनातन रीति है जिसके अनुसार प्राचीन काल में तुल्य गुण, कर्म, स्वभाव से युक्त स्त्री पुरुष स्वयम्बर में विवाह कर आनन्द भोगते थे जैसा कि य० अ० १५ मंत्र ८ में लिखा है—

तिपदसि प्रतिपदे त्वानुपदस्यनुपदे त्वा संपदसि सम्पदे त्वा तेजोऽसि तेजसेत्वा ॥

महाभारत आदिपर्व अध्याय २२१ में श्रीकृष्ण महाराज ने बलभद्र जी से कहा है कि जो पुरुष अपनी कन्या का विवाह बिना उसकी इच्छा के

करते हैं वे कन्यादान नहीं करते वरन् अपनी कन्या को पशुवत् बेंचते हैं, वे वेद तथा सदाचार के विरुद्ध हैं। इस लिये उक्त योगीश्वर आज्ञा देते हैं कि विवाह स्वयम्वर की रीति से होने चाहिएँ। यथा—

अदानमपि कन्यायाः पशुवत्कोनुमन्यते ।
विक्रियं चाप्यपरस्य कः कुर्यात् पुरुषोभुवि ॥

और ऐसे ही मनुस्मृति अध्याय ९ श्लोक ९० में लिखा है—

त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमती सती ।
ऊर्ध्वं तु कालादेतस्माद्विन्देत सदृशंपतिम् ॥

महाभारत अनुशासनपर्व अ० ४४ श्लोक १६,१७ में भी लिखा है। तीन वर्ष तक ऋतुवती होने के पश्चात् कन्या वर की इच्छा करे, तीन वर्ष उपरांत अपने समान पति को प्राप्त होने पर कन्या आप विवाह करे।

देखो वाल्मीकीय रामायण अयोध्या काण्ड सर्ग ११८ में—

पतिसंयोगसलभं वयोदृष्ट्वा तु मे पिता ।

अर्थात् सीताजी ने अत्रि ऋषि की स्त्री अनुसुइया से कहा कि पति के सहवास योग्य जब मेरी अवस्था हुई, उस समय राजा जनकने यह प्रण कर स्वयम्वर रचा था कि जो कोई धनुष को तोड़ेगा उसके साथ सीता का विवाह होगा, जिसके लिये अनेक राजा महाराजा एकत्रित हुए, परन्तु महाराजा रामचन्द्र ने धनुष को तोड़ा, मैंने जयमाला डाली, फिर रामचंद्र के साथ वैदिक रीत्यानुसार विवाह हुआ। इसी तरह राजा द्रुपद ने अपनी पुत्री का विवाह मछली भेदने पर नियत किया था, जिसको अर्जुन ने भेद कर विवाह किया। अज का इंदुमती के साथ स्यम्वर की रीति से विवाह हुआ था, शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी ने पूर्ण अवस्था में अपनी इच्छा से राजा ययाति से विवाह किया था।

देखिये महाभारत आदि पर्व अध्याय १२ में कुंती के स्वम्बर का वर्णन इस तरह से लिखा है कि उस रूपवती, पूर्णयुवा, समस्त गृहकार्यों और गुणों से युक्त कुंती से बहुत से राजा महाराजाओं ने विवाह करना पसंद किया, परन्तु इस महारानी ने पाण्डु को उत्तम समझ स्वयं अपना पति स्वीकार किया। इसके अतिरिक्त अनेक दृष्टान्त महाभारत में पाये जाते हैं।

अब आप स्वयं विचार कर सकते हैं कि उस समय महारानी कुन्ती

की क्या अवस्था होगी जब उन्होंने बड़े २ राजाओं को त्याग कर पाण्डु से विवाह किया। रुक्मणी की क्या अवस्था थी जब कि उन्होंने श्रीकृष्ण महाराज को पत्र लिखा था। अब स्पष्ट प्रकट हो गया कि उस समय इन सबकी अवस्था युवा होगी और विद्यामें भी योग्यता रखती होंगी, क्योंकि ऐसी परीक्षा विद्या के बिना नहीं हो सकती।

इसी भांति श्रीकृष्ण की फूफी गांधारी जो महाराजा धृतराष्ट्र की पत्नी थीं, लोपामुद्रा जो अगस्त महर्षि की पत्नी थी, अरुंधती जो बड़ी पतिव्रता श्रीमहर्षि वसिष्ठ जी की पत्नी थी, मैत्रेयी, गार्गी आदि बड़ी २ पंडिताओं के दृष्टान्तों से विदित होता है कि इनके विवाह पूर्ण अवस्था ही में हुए थे।

इसके अतिरिक्त वैद्यक पर ध्यान दीजिये जिसमें शरीरके आरोग्य रखने के नियम हैं। सुश्रुतशास्त्र अ० १० में स्पष्ट कहा है कि २५ वर्षके पुरुष का १६ वर्षकी कन्या से विवाह होना चाहिये, उनसे उत्पन्न हुई संतान ही माता पिता की सेवा तथा धार्मिक काम करने वाली होती है, यथा—

अथास्मै पञ्चविंशति वर्षाय षोडशवर्षां पत्नीमावहेत्।
पित्र्यधर्मार्थकामप्रजामाप्स्यतीति॥

चरक में लिखा है—

शुक्रन्तु क्षयते तस्य ततः प्राप्नोति संशयम्।
घोरां व्याधिमवाप्नोति मरणं वा समृच्छति॥

जिस मनुष्य का वीर्य नाश हो जाता है उसके शरीर का भी नाश हो जाता है, तथा वह घोर दुःखों में पड़ मृत्यु की इच्छा करता है।

यदि हम अन्य देशों की जातियों की ओर दृष्टि डालते हैं तो वही अपने पुराने पुरुषों की रीति (जो वेद आदि सत्यशास्त्रों की है कि जिसको बुद्धि भी स्वीकार करती है) प्रचलित पाते हैं। देखलो भारत ही में मुसल-मानों में तरुणाई पर शादी होती है, अंगरेज भी इसी तरह चलते हैं, जिसमें उनके डील डौल गुण, विद्या, साहस आदि देखनेमें आते हैं, देखिये स्वर्गीय श्रीमती महारानी कैसरहिंद ने १८ वर्ष तक यथावत् ब्रह्मचर्य सेवन किया जिससे श्रीमती की आकृति उत्तम, आखें नीली, नाक स्वच्छ अत्यंत उत्तम, मुखड़े की छवि मोहनी, दांत अच्छे सुन्दर साफ़ कि जिनके देखनेसे आरो-ग्यता वा स्वभाव की उत्तमता स्पष्टरूप से प्रकट होती थी आपने फ़ारसी, जर्मनी, लेटिन आदि भाषायें सीखीं और गणित भूगोल के अनन्तर गान तथा शिल्पविद्या में भी आपको पूर्ण योग्यता थी राज्यशासन वा प्रजा

पालन की रीतें अच्छी प्रकार जानती थीं परमित तथा अपरमित व्यय करने के हानि लाभोंसे खूब जानकार थीं, इन सब गुणोंके अतिरिक्त उनके चित्त में दया, परोपकार, साहस, गम्भीरता, मधुर वचन आदि सभी गुण विद्यमान् थे श्रीमती ने श्रीयुत युवराज अलवर्ट को आप पसन्द कर विवाह किया था कि जो उपरोक्त गुणों के अतिरिक्त वैद्य, न्याय, मीमांसादि के पढ़े विद्वान् और अच्छे प्रकार देशाटन किये हुए श्रेष्ठ घराने के थे। व्याह के समय श्रीयुत की आयु २५ वर्ष की थी, तब ही तो पति पत्नी में वह प्रेम रहा कि जिसका हम वर्णन नहीं कर सकते। इसके उपरांत जर्मनी के प्राचीन निवासी २५ वर्ष तक विवाह नहीं करते थे इसी कारण उनकी विद्या और बुद्धि की प्रशंसा तथा सन्तान सुडौल और योधा होती थी।

हियनसांग चीन देश के एक भ्रमणकर्ता ने भारतवर्ष के विषय में लिखा है कि यहां के निवासी व्याकरण, शिल्प, चिकित्सा, आध्यात्मविद्या धर्म और ब्रह्मविद्या को अच्छे प्रकार से जानते और चारों वेदों को ही प्रमाण मानते थे और पुरुष ३० वर्ष तक विद्या उपार्जन करने के लिये ब्रह्मचर्यव्रत को धारण करते थे।

यजुर्वेद अध्याय ४ मन्त्र २ में रुद्र शब्द आता है, जिसके अर्थ ४४ वर्ष तक ब्रह्मचर्य रहने के हैं। और इसी वेद मन्त्र में लिखा है कि तरुण पुत्री रुद्रब्रह्मचारी से विवाह करने से प्रथम माता पुनः पिता भ्राता और मित्रसे सम्मति करे जिससे स्वयंवर में किसी प्रकार का धोका न खाय। यजुर्वेद अध्याय ४ मन्त्र २४ में वसु, रुद्र, आदित्य में तीन प्रकार के ब्रह्मचारियों का वर्णन किया है अर्थात् २४ वा ४४ वा ४८ वर्ष, इससे विदित होता है कि इतनी आयु पश्चात् विवाह करना चाहिये। यजुर्वेद अध्याय ११ मन्त्र ५८ में वसु, रुद्र, आदित्य और वैश्वानर ब्रह्मचारियोंके ब्रह्मचर्य के वर्षों की गणना, गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती और अनुष्टुपछन्दों के द्वारा बतलाई गई है। गायत्री २४ अक्षर, त्रिष्टुप् ४४, जगती ४८, अनुष्टुप ३२ अक्षर का छन्द होता है, इसलिये वसु, रुद्र, आदित्य, वैश्वानर यह ब्रह्मचारी होते हैं जो २४,४४,४८, ३२ वर्ष ब्रह्मचर्य धारण करें।

इसी भांति यजुर्वेद अध्याय ११ मन्त्र ६१ में ब्रह्मचारिणी स्त्रियों की जनयः, ग्ना, वरुणी, धिषणाः, अदिति ये ५ श्रेणी बतलाई गई हैं।(जनयः) अर्थात् शुभगणों से प्रसिद्ध, (ग्ना) वेदवाणी को जानने वाली, (वरुणी) विद्या ग्रहण के लिये स्वीकार करने योग्य, (धिषणाः) जिसका वाक्य और

बुद्धि प्रशँसा के योग्य हो, (अदिति) अखण्ड विद्या पढ़ानेहारी।

अब इससे यह भी प्रकट होता है कि आदित्य के योग्य अदितिः रुद्र के धिषणा, वैश्वानर के वरुणी, वसु के ग्ना या जनयः समझना चाहिये।

यजुर्वेद अध्याय ८ मन्त्र १ में उपदेश है कि ४८ वर्ष ब्रह्मचर्य धारण किये हुए आदित्य ब्रह्मचारी और युवती २४ वर्ष ब्रह्मचर्य धारण किये हुये कन्या को स्वयंवर में विवाह करना चाहिये।

यजुर्वेद अध्याय १५ मंत्र ३ (चतुर्चत्वारिंशत) अर्थात् ४४ वर्ष तक ब्रह्मचर्य धारण करने वाला पुरुष सम्पूर्ण सोलह कलाओं से पूर्ण होता है।

अथर्वकांड ११ अनुवाक ३ मंत्र ६ में स्पष्ट आज्ञा है कि पुरुष को पूर्ण तरुण अवस्था तक ब्रह्मचर्य रखना चाहिये क्योंकि ऐसाही ब्रह्मचारी गृहस्थी में सुगमता से सुख पाता है।

ऋग्वेद मंत्र १० सूक्त ८५ मंत्र २५ 'इमांत्वामिन्द्र मीढा' में मीढ़ और इन्द्र ये दो शब्द ऐसे हैं जिनसे स्पष्ट प्रगट होता है कि विवाह करने वाले में वीर्य सेचन की सामर्थ्य और धनाढ्य हो। वीर्य-सेचन की सामर्थ्य पुरुष में २५ वर्ष से आरम्भ होती और ४० वर्ष के पश्चात् तक पूर्ण उन्नति को पहुंचती है, इसीलिये २५ वर्ष की आयु से लेकर ४४वा ४८ वर्ष तक विवाह का समय है। इसी भांति यदि हम यह विचार करें कि मनुष्य किस अवस्था में धन एकत्र करने के योग्यहोता है तो यह भी स्पष्ट प्रकट है कि २५ व० तक साधारण विद्या पढ़ किसी व्यापार को आरम्भ करे तो १० या १५ में धनवान् हो सकता है अर्थात् २५ या ४० वर्ष की उम्र में धनढ्या होजाता है। इसी लिये इससे मालूम होताहै कि २५ वर्ष से पहिले पुरुष को विवाह न करना चाहिये।

डाक्टर जानसन साहब लिखते हैं कि विवाह के समय स्त्री और पुरुषों की अवस्था में न्यून से न्यून ७ वर्ष का अंतर होना चाहिये। प्राचीन ऋषियों का सिद्धान्त यह है कि स्त्री से पुरुष की आयु न्यून से न्यून ड्योढ़ी अधिक से अधिक दुगुनी होनी चाहिये। इसी ओर पश्चमी डाक्टर भी आरहे हैं। हर एक डाक्टर की यह सम्मति तो अवश्य होगई है कि स्त्री की आयु पुरुष से कम होनी चाहिये। डाक्टर कोन साहब लिखते हैं कि मनुष्य के शरीर में बहुत सी हड्डियां ऐसी हैं जो २५ वर्ष से प्रथम दृढ़ नहीं होतीं।

यजुर्वेद अध्याय १५ मंत्र ११ में लिखा है कि जैसे विद्वान् लोग वायु

के साथ वर्त्तमान सूर्य को और सूर्य वायु की विद्या को जानने वाले विद्वान् का आश्रय करके इस विद्या को जनावें, वैसे स्त्री पुरुष ब्रह्मचर्य के साथ विद्वान् होकर दूसरों को पढ़ावें, और मूलमंत्र में प्रश्न का उत्तर (कि स्त्री न्यून से न्यून कितने वर्ष ब्रह्मचर्य धारण करे) दिया गया है। अर्थात् मन्त्र में कहा है कि कन्या 'पंचदशः' अर्थात् १५ संख्या को पूर्ण करने वाले ब्रह्मचर्य का आचरण करे।

यजुर्वेद अध्याय १५ मंत्र १२ और अध्याय १ मंत्र १३ में कन्याओं के लिये दो प्रकार की अवधि दर्शाई गई है। इसके उपरांत वेदमंत्रों में शिक्षा है कि लड़का और लड़की का विवाह ब्रह्मचर्य को पूरा करने के पश्चात् योग्य समय पर होना चाहिये, इसलिये इन मंत्रों से प्रकट होगया है कि कन्याओं का विवाह सप्तदश (सत्रह) और एकविंशत (इक्कीस) और पञ्चदश (पन्द्रह) वर्ष ब्रह्मचर्य पूरा होने के पश्चात् ही होना चाहिये।

इस लिये यजुर्वेद अध्याय १५ के मंत्रो से स्पष्ट प्रकट होगया कि विवाह करने वाले पुरुष की आयु विवाह करने वाली स्त्री ड्यौढ़ी या दूनी होनी चाहिये ऋग्वेद मं० २ सू० ३५ मं० ४ में लिखा है—

तपस्मेरायुवतयो युवानं मर्मृज्यमानः परियन्त्यापः।

अर्थात् जो उत्तम ब्रह्मचर्य व्रत से अत्यन्त (युवतयः) बीस वर्ष से २४ वर्ष वाली हैं, वे कन्यायें जैसे जल या नदी, समुद्र को प्राप्त होती हैं वैसे (अस्मेराः) हम प्राप्त होने वाली अपने २ पसन्द, अपने से ड्यढ़ी वा दुगनी आयु वाले (तपः) उस ब्रह्मचर्य और विद्या से परिपूर्ण शुभ लक्षण युक्त (युवानम्) जवान पति को (परियंति) प्राप्त होती हैं। इस मंत्र में पूरी तरुण अवस्था वाली कन्या को ड्योढ़ी, दुगनी आयुवाले वरसे विवाह करने की आज्ञा है। परंतु शोक है कि वर्तमान समय में इस उत्तम रीति पर कुछ ध्यान न देकर लड़के लड़कियों के विवाह ८ तथा १० वर्ष में करना उत्तम समझते और कहते हैं—

अष्टवर्षा भवेद् गौरी नववर्षा च रोहिणी।
दशवर्षा भवेत्कन्या तत ऊर्द्ध रजस्वला॥
माताचैव पिता तस्या ज्येष्ठो भ्राता तथैव च।
त्रयस्ते नरकं यांति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम्॥

कन्या की ८ वर्ष में गौरी, नव वर्ष में रोहिणी, दशवें वर्ष कन्या तदुपरांत रजस्वला संज्ञा हो जाती है। यदि इस समय लड़की का विवाह

न हो तो माता, पिता और बड़ा भाई नरक को जाते हैं।

मान्यवरो ! ये श्लोक माननीय नहीं है क्योंकि लड़की का रजस्वला होना ईश्वरीय नियम है, आरोग्यता अथवा युवा अवस्था आरम्भ होने का चिन्ह है फिर इसमें माता, पिता बड़े भाईका क्या दोष जो पापी गिने जावें।

देखिये महाभारत अनुशा० पर्व अ०२०में लिखा है 'कौमारं ब्रह्मचर्यं में कन्यैवास्मि न संशयः' अर्थात् जब तक लड़की का विवाह नहीं होता तब तक निःसंदेह वह कन्या रहती है। आगे शल्यपर्व अ० ५३ में 'ऋतु स्नानात्तु यःशुद्धा सा कन्येत्यभिधीयते' यानी जो ऋतु स्नान से शुद्ध हो चुकी है उसका नाम कन्या है पुनः—

देखिये दमयन्ती का विवाह नल के साथ युवती होने पर हुआ था। देखो महाभारत वनपर्व नलोपाख्यान अ० ५३ श्लोक १६, १७,।

तस्याः समीपे तु नलं प्रशंसुः कुतूहलात्।
नैषधस्य समीपेतु दमयन्ती पुनः पुनः॥ १६॥
तयोरदृष्टः कामोऽभूत् शृण्वतो सततं गुणान्।
अन्योन्यं प्रति कौन्तेय सव्यवर्धत हृच्छयः॥ १७॥

मनुष्य दमयन्ती के समीप नल और नल के पास दमयन्ती की बार बार प्रशंसा करते थे, जिस कुतूहल से उन दोनों को एक दूसरे के गुण सुन २ कर कामदेव जो अदृष्टि हृदय में रहता है, उत्पन्न हुआ और बढ़ा।

अब आप विचार लें क्या रजोदर्शन से पहिले कामोत्पत्ति और वृद्धि हो सकती है? कदापि नहीं, इससे प्रगट हुआकि इनका विवाह रजस्वला होने पर हुआ महाभारत वनपर्वान्तिर्गत तीर्थयात्रा पर्व में लोपामुद्रा की कथा है। जिसमें विवाह के पूर्व से उसके यौवन की चर्चा स्पष्ट शब्दों में है—

यौवनस्थापि च तां शीलाचारसमन्विताम्।
न वब्रे पुरुषः कश्चिद्भयात्तस्य महात्मनः॥ २८॥
वैमर्ति तु यथायुक्तां युवतीं प्रेक्ष्य वै पिता।
मनसा चिंतयामास कस्मै दद्यामिमां सुताम्॥ ३०॥

शीलाचार युक्त लोपामुद्रा को यौवन अवस्था में भी कोई पुरुष उस महात्मा (पिता) के भय से नहीं वरता था, तब पिता को इस तरह की युवती देख कर चिंता हुई कि इसका विवाह किस से करूँ और युवती १६ के ऊपर होती है, इससे भी रजस्वला होना प्रगट है।

हिंदी प्रवेशिका नाम की पुस्तक जो वर्त्तमान समय में यू० पी० के

स्कूलों में पढ़ाई जाती है उसमें वनोवासके समय श्रीराम की आयु २७ और सीता की आयु १८ साल की बतलाई है। विवाह होने के थोड़े ही दिनों के पीछे वनवास हुआ है इससे प्रकट होता है विवाह के समय राम और सीता पूर्ण युवा थे तथा जब रामचन्द्रजी स्वयम्वर में गये थे वहां उनकी बैठक और कर्त्तव्यों से प्रकट होता है कि राम पूरे बलवान् और योद्धा थे। तुलसीदास जी ने जहां सीता जी की छवि का वर्णन किया है। उससे भी पता लगता है कि सीताकी आयु ८,१०,१२ की नहीं थी वरन् १५ वा १६ की अवस्था थी। हनूमान नाटक में लिखा है।

कपोले जानक्याः करिकलभदन्तद्युतिमुषि स्मरस्मेरं गंडोड्डमरपुलकं वक्त्रकमलम्। मुहुः पश्यं शृण्वन् रजिनचरसेनाकलकलं, जटाजूटं ग्रंथिं रचयति रघूणां परिवृढः॥

हाथी के बच्चे के दांतों की कांतिको चुराने वाले सीताजी के कपोल (गाल) और कामदेव के समान प्रकाशित तथा प्रफुल्लित अपने गाल और मुखारविंदु को देखते और राक्षसों की सेना के कोलाहल को सुनते हुये रघुवर रामचन्द्र ने जटा जूट की गांठ बांधी। इससे भी यही प्रतीत होता है कि सीता विवाह से पूर्व युवती थीं।

श्रीमद्भागवत दशमस्कन्ध उत्तरार्द्ध अ० ५३ में रुक्मिणी की अवस्था विवाह से पूर्व युवा थी जैसा कि—"व्यजरस्तनीकुन्तलशंकितेक्षणाम्"।

कलकत्ता ऐशियाटिक सुसाइटी के सुप्रसिद्ध सभासद पं० सत्यव्रतजी कन्या विवाह कालके विषयमें अपने 'उषा' नाम पत्रिका ज्येष्ठ शाके१८१३ में लिखते हैं कि रजोदर्शन होने पर ही कन्याका विवाह वेद और स्मृतियों से सिद्ध होता है, और पुराने व्यवहारों के देखने से विदित होता है कि बिना रजोवती हुये विवाह नहीं होता था, और न कहीं रजोवती कन्या के दान व पाणिग्रहण करने में वेद स्मृतियों में दोष बतलाया है।

अब आप विचारिये वेद क्या आज्ञा देता है? शास्त्रकार क्या कहते हैं? सदाचार क्या बतला रहा है? यदि शीघ्रबोध का कथन ठीक माना जावे तो फिर सृष्टिके आरम्भ से लेकर जनकादि राजा तथा प्रजा सब ही नरकगामी हुये होंगे। परन्तु वेद के सम्मुख यह सब गप्पें हैं। इस समय में भी बहुधा क़ौमों तथा कान्यकुब्ज मण्डली अथवा निर्धनों के विवाह लड़कीके रजस्वला होने के पश्चात् होते हैं, क्या वे नरक को जाते हैं? कदापि नहीं।

उपरोक्त श्लोकों का केवल यह अभिप्राय जान पड़ता है कि जब मुसलमान हमारी कन्याओं को छीनते थे तो उनसे धर्म बचाने के अर्थ यह बनाये गये होंगे, ताकि कन्याओं का विवाह न्यून अवस्था में हो जावे, क्योंकि मुसलमानों की धर्म पुस्तकानुसार ब्याही कन्याओं का छीनना अधर्म माना गया है।

मान्यवरो ! यदि यही बात है तो भी आप इस रीति को छोड़ कर वेदानुसार चलिये, क्योंकि इस समय आप की धर्म परिपाटी में कोई बाधा नहीं डाल सकता।

वर्तमान समय के डाक्टर लोग पुकार पुकार कर कहते हैं कि ऐसे ब्याहों से कुछ लाभ नहीं। देखिये डाक्टर डियूडवी स्मिथ साहब भूतपूर्व प्रिंसिपिल मेडिकल कालिज कलकत्ता का वचन है कि न्यून अवस्था के विवाह की रीति अत्यंत अनुचित है, क्योंकि इस से शारीरिक तथा आत्मिक बल जाता रहता है, मन की उमंग चली जाती है, फिर समाजिक बल कैसा ?

डाक्टर नीबमिन कृष्णबोस का वचन है कि शारीरिक बल के नष्ट होने के जितने कारण हैं उन सब में महान् न्यूनावस्था का विवाह जानो यह मस्तक के बल की उन्नति का रोकने वाला है।

मिसेस पी० जी० फिफसिन लेडी डाक्टर बुम्बई का वचन है कि हिंदूओं की स्त्रियों में रुधिर विकार तथा चर्म दूषण आदि बीमारियां अधिक होने का कारण बाल्य विवाह ही है क्योंकि संतान के शीघ्र उत्पन्न करने तथा दूध पिलाने से माता की रगें दृढ़ नहीं होती इसी लिये माता दुर्बल होकर हर तरह के रोगों में फँस जाती है।

डाक्टर महेन्द्रलाल सरकार एम. डी० का वचन है कि बाल्यावस्था का ब्याह अत्यंत बुरा है इस से जीवन की उन्नति की बहार लुट जाती तथा शारीरिक उन्नति का द्वार बन्द हो जाता है। मैं तीस वर्ष की परीक्षा से कह सकता हूं कि २५ फीसदी स्त्री बाल्यावस्था के विवाह से मरती हैं तथा २५ फी सदी मनुष्य इसीसे ऐसे हो जाते हैं कि जिनको सदा रोग घेरे रहते हैं।

इसी लिये महर्षि चरक ने २५ वर्ष के पुरुष को १६ साल की स्त्री के साथ समागम करने की आज्ञा दे यही शिक्षा की है कि जो पुरुष न्यूना-

वस्था में समागम करते हैं उनका तो प्रथम तो गर्भ ही नहीं रहता यदि रहा भी तो पूरे दिनों तक नहीं ठहरता अर्थात् गर्भपात हो जाता है या पूरे दिनों में हो कर मर जाता है यदि उस समय बच भी गया तो दुर्बलेंद्रिय हो अल्पावस्था में परमधाम को चला जाता है जैसा कि—

ऊनषोडशवर्षायामप्राप्तः पंचविंशतिम्।
यद्याधत्ते पुमान् गर्भंकुक्षिस्थः सविपद्यते॥
जातोवाग चिरंजीवेज्जीवेद्वानिर्बलेन्द्रियः।
तस्मादत्यन्त बालायांगर्भाधानं न कारयेत्॥

इसके उपरांत अथर्ववेद कांड ७ सूक्त ३८ मंत्र १ में लिखा हैं। कि विवाह में विद्वानों के बीच वस्तु का गठिबन्धन करके वधू और वर प्रतिज्ञा करें कि पत्नी पतिव्रत और पति मंत्रीयुत होकर गृहस्थाश्रम को प्रीति पूर्वक निबाहे जैसाकि—

अभित्वामनुजातेनदधामिममवाससा।
यथासोममकेवलोनान्यासांकीर्तयाश्चन।

अब मैं आप से पूछता हूं कि न्यून अवस्थाओं नीचे लिखी प्रतिज्ञाओं को समझ ही नहीं सकते फिर पालन कैसा। वह प्रतिज्ञायें संक्षेप से नीचे लिखते हैं।

❀ प्रतिज्ञायें ❀

वर कहता है कि हे प्रिये! मैं ऐश्वर्ययुक्त तथा धर्म मार्ग में प्रेरक तेरे हाथ को ग्रहण करता हूं। धर्म से मैं तेरा गृहपति और तू मेरी पत्नी है हम तुम दोनों मिल के घर के कामों की सिद्धि करें और जो हम दोनों के अप्रिया चरण व्यभिचार है उसको कभी न करते हुये घर के सब कामों की सिद्धि-सन्तानोत्पत्ति-ऐश्वर्य और सुख की बढ़ती करें।

हे पाप रहित प्यारी! सब जगत के पालन करने वाले परमात्मा ने जिस तुझ को मुझे दिया है इसलिये संसार में तू ही पालन पोषण करने योग्य मेरी स्त्री है तुम पति के साथ सौ वर्ष तक सुख पूर्वक जीवन व्यतीत कर। इसी प्रकार पत्नी प्रतिज्ञा करती है कि हे वीर! सौभाग्य की वृद्धि के लिये मैं आप के हाथ को पकड़ती हूँ आप मुझ पत्नी के साथ वृद्धावस्था तक प्रसंन और अनुकूल रहिये आप को मैं और मुझको आप आज से पति पत्नी भाव से प्राप्त हुये हैं अतः सम्पूर्ण ऐश्वर्ययुक्त—न्यायकारी—

सब जगत की उत्पत्तिकर्ता तथा बहुत प्रकारके जगतका धर्ता परमात्मा और सभामण्डप में बैठे हुये विद्वान लोग गृहस्थाश्रम कर्मके अनुष्ठान के लिये मुझे आपके समर्पण करते हैं आज से मैं आप के और आप मेरे हाथ बिक चुके अतः कभी भी एक दूसरे का अप्रिय चरण न करेंगे।

हे भद्रवीर! परमेश्वर की कृपा से आप मुझे प्राप्त हुये, सो मेरे लिये आप के सिवाय इस जगत में दूसरा पति अर्थात् स्वामी, पालन करने हारा सेव्य, इष्टदेव, कोई नहीं है, न मैं आप के अतिरिक्त दूसरे किसी को मानूंगी। जैसे आप मेरे सिवाय दूसरी किसी स्त्री से प्रीति न करेंगे वैसे मैं भी किसी दूसरे पुरुष के साथ प्रीतिभाव से न वार्ता करूंगी। आप मेरे साथ सौ वर्ष पर्यन्त आनन्द से प्राण धारण कीजिये।

मित्रो! यह आपको संक्षेप से मैंने प्रतिज्ञायें बतलाई हैं, इनके अतिरिक्त वेदोक्त और भी प्रतिज्ञायें करनी होती हैं कहिये, इनका पालन न्यूनावस्था में क्या हो सकता है? वर्तमान समय में राज कानूनभी १८ वर्ष से प्रथम की लिखा पढ़ी को नहीं मानता, फिर विवाह और प्रतिज्ञायें कैसी? प्यारे भाइयों! अभी तक गाय, घोड़ी इत्यादि पशुओं पर जब तक कि वे पूर्ण नहीं होजाते बैल घोड़ा आदि नहीं छुड़वाते कि जिससे उनकी संतान निकम्मी न हो जावे फिर मैं नहीं जानता कि स्त्री पुरुषों में जो संसार के जीवों में सर्वोत्तम हैं यह सुविचार (जो गाय घोड़ी इत्यादि पशुओं के साथ किया जाता है) क्यों छोड़ दिया गया? क्यां ये उन पशुओंसे भी गये हैं?

पाठक गणों! जिस समय जिस वस्तु की मनको इच्छा होती है उसी समय उसके मिलने से परम सुख होता है, बिना समय के वस्तु मिलने से कुछ उत्साह और उमंग नहीं होती, न किसी प्रकार का आनन्द आता है। जिस प्रकार भूंख के समय में सूखी रोटी भी अच्छी जान पड़ती है उसी प्रकार बिना भूंख के मोहनभोग को भी जी नहीं चाहता। छोटे २ पुत्र पुत्रियों का उस दशा में जब कि उनको काम अग्नि नहीं सताती और न उनका मन उधर को जाता है शादी करने से क्या लाभ होता है? कुछ भी नहीं।

इसके उपरांत अथर्वकाण्ड ६ सूत्र ८१ मं० ३ में लिखा है कि स्त्री उसी पुरुष को पति बनावे जो उसको सहारा दे सके अर्थात् रक्षा कर सके और रक्षा बल, बुद्धि और धन से होती है क्या आपकी समझ में यह तीनों बातें न्यून अवस्था में मनुष्यों में हो सकती है कदापि नहीं

दूसरे स्त्री स्वयं अपने पति को आप पसंद करे कहिये यह बुद्धि पुत्रियों को बालपन में हो सकती है कभी नहीं, तृतीय स्त्री पूर्ण ब्रह्मचारिणी हो कर विवाह करे।

चौथे उपरोक्त मंत्र में पुत्र काम्याः पद अच्छे प्रकार बतला रहा है कि विवाह उसी समय होना चाहिये जब कि दोनों के हृदय में पुत्र की प्राप्ति की इच्छा हो विद्वान् योग्य पुरुष जान सकते हैं कि सन्तान की कामना स्त्री पुरुष को किस अवस्था में हो सकती है इसके लिये वैद्यक ग्रन्थ स्पष्ट बतला रहे हैं कि २४ वर्ष से ऊपर पुरुष और १६ वर्ष से अधिक स्त्री को सन्तान की कामना नहीं होती है इस लिये विवाह तरुणाई में होना चाहिये न कि न्यून अवस्था में पांचवें पति पत्नी का सम्बन्ध अटूट है इस लिये उनको प्रतिज्ञायें करनी होती हैं जिससे वह सम्बन्ध आयुपर्यन्त बना रहे इसके लिये भी तरुणाई की आवश्यकता है। फिर न्यून अवस्था के विवाह की कौन आवश्यकता है जिसका प्रमाण वेदों में भी नहीं मिलता और न बुद्धि स्वीकार करते हैं इसके सिवाय विधवाओं का एक जत्था इसी न्यून अवस्था के विवाह के कारण बनाया जाता है प्रत्येक घर में हाहाकार मचा रहता है वह विधवायें यह भी नहीं जानती कि हमारी चूड़ियां क्योंकर फूटी फिर तरुण होने पर नियोग भी नहीं होता। उन विधवाओं के कारण जो २ हानियां हो रही हैं आप हम सब ही जानते हैं फिर हमारी मूंछे मुँह पर शोभा नहीं देती हमारी जवानी का नशा एक दम उतर जाता है और माया अर्थात् धन पर भी थुकनी है। संसार में मुँह कठिन होजाता है सच पूछो तो माता पिता इस जलती हुई चिता को अपनी छाती पर देख २ कर हाड़ों का सांचा बन जाते हैं इन सब क्लेशोंका कारण न्यून अवस्था का विवाह ही है। सन् १९२१ ई० की निम्न लिखित रिपोर्ट से बालपत्नियों और बाल विधवाओं की संख्या देखिये।

कितने वर्ष की आयु	बालपत्नी	बाल विधवा
— १	१३२१२	१०१४
१ से २ वर्ष तक	१७७५३	८५६
२ ,, ३ ,, ,,	४९७८७	१८०७
३ ,, ४ ,, ,,	८७५०८	४७५३
४ ,, ५ ,, ,,	१३४१०५	९२७३
५ ,, १० ,, ,,	२२१९७८	९४२०७
१० ,, १५ ,, ,,	६५७५४२४	२२३४२

सुयोग्य महिलाओं और योग्यपुरुषों न्यून अवस्था के विवाह के कारण अलावह विधवाओं के क्लेश और हानियों के बच्चों की मृत्यु संख्या संसार भर से अधिक होती है। जिस से आगे की जन संख्यायें बढ़ती नहीं होती और हजारों पुरुष सन्तान न रहने के दुःखों से हाड़ों की माला बनते जाते है देखिये रिपोर्ट भारत सरकार १६-२२-२३ में लिखा है कि भारत में पुनि वर्ष २० लाख बच्चे अपनी आयु के पहले वर्ष में ही काल कराल के मुख में चले जाते हैं और जो बचते हैं वह निर्मल निसोज होकर अपना जीवन व्यतीत करते हैं १६२१ में संसार के दूसरे बड़े सहरों से बंबई के शिशुओं की मृत्यु संख्या की तुलना की गई तो परिणाम बड़ाही दुःखदाई निकला देखो जहां न्यूयार्क और लंडन और बर्लिन में हजार पीछे ७१, ८०, १३५ बच्चे मरते हैं वहां बंबई में ६६६ बच्चे मरते हैं कहिये अब भी आप न्यून अवस्था के विवाह पर लट्टू बने रहेंगे। प्राचीन कालमें जब कि विवाह बड़ी आयु में होते थे बाल विधवाओं की संख्या इतनी नहीं थी न छोटी उम्र में इतने बच्चे मरते थे इस का प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि जब किसी खेत में गेहूँ आदि अन्न बोते हैं तो जमने के पीछे दश पांच दिन में बहुत से मर जाते हैं, एक महीने के पीछे बहुत कम दो चार महीने के पीछे न्यून मरते हैं। इसी तरह जन्म से पांच वर्ष तक जितने बालक मरते हैं उतने अधिक दश वर्ष पर नहीं, दश वर्ष से १५ तक उस से भी बहुत कम, क्योंकि न्यून अवस्था में सूखा, जमोघा, दांत तथा शीतलादि रोग मार डालते हैं, जब किसी पेड़ की जड़ मजबूत हो जाती है तो वह बड़ी बड़ी आंधियों से बच जाता है इसी भांति बालापन में नाना भाँति के रोग होकर मृत्युकारक हो जाते हैं, जिस तरह १५ या २५ वर्ष में नहीं होते, यदि हों तो भी सौ में पांच।

अब इस ऊपर के वर्णन से प्रत्यक्ष प्रकट है कि यदि न्यून अवस्था का विवाह भारत से उठा दिया जावे तो किस क़दर विधवाओं का जत्था कम होजावे, तथा यह सब उपद्रव जाते रहें ? इन पांचका विवाह २५ वर्ष के लड़के के साथ हो तो अवश्य उन ५ में से तीन के बाल बच्चे भी दो तीन वर्ष में होजावेंगे, यदि ऐसी दशा में पति का मरण भी होजावे तो स्त्री उन बच्चों की आशा पर उनके लालन पालन में अपनी आयु को व्यतीत करती रहेगी, पस इस हिसाब से १०० में दो विधवाएं ऐसी रह जावेंगा कि जिनका कुछ अन्य प्रबन्ध करने की आवश्यकता होगी।

इस लिये आप सब से श्रेष्ठ स्वयम्वर विवाह की रीति को प्रचलित कीजिये जो सब के सुखों को देने वाली है । मनु महाराज ने जो आठ प्रकार के विवाह लिखे हैं वह गुण, कर्म, स्वभाव के अनुसार संसार के मनुष्यों को आठ भागों में विभाजित किया है । वेदोंमें ऋषि, देव, साध्य, मनुष्य, असुर, दस्यु राक्षस और पिशाच ये आठ नाम आये हैं । जिनमें ऋषि, देव, साध्य इनको ब्राह्मण,क्षत्रिय,वैश्यके नामसे और मनुष्यको शूद्र कहा है और असुर के अर्थ कुटिल नीति वा कपटी और दस्यु के अर्थ मर्यादा रहित पुरुष और राक्षस वह जो अन्य की हानि कर अपनी ही रक्षा करते हैं और पिशाच वह माने हैं जो जीवधारियों की हिंसा कर अपना जीवन करते हैं और जिनके आचरण निन्दनीय और घृणा युक्त होते हैं । ब्राह्म, देव, आर्ष, प्रजापति, असुर, गन्धर्व, राक्षस और पिशाच ये आठ विवाहों के नाम हैं, जिन में से प्रथम के चार उत्तम बतलाये हैं और इन्हीं से उत्पन्न सन्तान को योग्य कहा है और शेष चार विवाहों को निन्दित, क्योंकि उनसे उत्पन्न सन्तान निन्दित कर्म करने वाली, मिथ्यावादी, वेद धर्म की द्वेषी, नीच स्वभाव वाली होती है, इस लिये उपरोक्त चारों के नाम के विवाह ही वैदिक विवाह हो सकते हैं, क्योंकि वैदिक विवाह की व्याख्या में पाणिग्रहण प्रतिज्ञा–फेरे–और सप्तपदी आदि की सब विधि उपस्थित है ।

पाणिग्रहण के मन्त्रों में (१) सौभाग्य अर्थात् उत्तम संतान ऐश्वर्य का प्राप्त करना, (२) दम्पतिव्रत अर्थात् पुरुष एक ही विवाहिता स्त्री से और स्त्री एकही विवाहिता पुरुष से अपना सम्बन्ध रक्खे (३) दीर्घ सम्बन्ध अर्थात् आयु पर्यंत का सम्बध (४) परस्पर प्रसन्नता और समान जानना, (५) परमात्मा को साक्षी जान प्रतिज्ञा करना (६) देव अर्थात् सभामण्डल में बैठे हुए विद्वान् लोग साक्षी हों जिनमें मित्र पितादिगुरु इत्यादि के बोधन करने वाला शब्द देवा से होता है जिनके सम्मुखप्रतिज्ञा की जाती है ।

प्रतिज्ञा मन्त्रों में प्रथम बार वधू ज्ञान पूर्वक अर्थात् होश हवास सहित उपरोक्त बातों पर सदा चलने के लिये सभा में मण्डप के चारों ओर बैठे हुए मनुष्यों के सम्मुख घूम घूम कर करते हैं जिससे उसको सब मनुष्य सुनलें और ये मंत्र चार प्रकार के हैं और चार बार घूम घूम कर किये जाते हैं । इस लिये भाषा में इस प्रतिज्ञा को फेरे कहते हैं ।

सप्तपदी—सप्त के अर्थ सात और पदी के अर्थ उद्देश्य के हैं और ये सात उद्देश्य सप्तपदी के उन सातों मंत्रों से विज्ञान, आरोग्य, बल, धन, सुख, यश, सन्तान, ऋतुगमन और ऋतुचर्या की रीति पर चलना मित्रता से रहना है। इस लिये हम उपरोक्त चारों विवाहों को स्वयम्बर विवाह कह सकते हैं जिनका मुख्य उद्देश्य संतान उत्पत्ति और सभा के सम्मुख प्रतिज्ञा द्वारा पूर्ण आयु तक मित्रवत् रहने और सुसंतान उत्पन्न करने का है पुराणों के देखने से भी प्रगट होता है कि बहुधा स्त्रियों ने उत्तम उत्तम गुणों से भूषित पुरुषों से विवाह करने का यत्न किया था। (१) देखो पद्मपुराण द्वितीय भूमिखंड अ० ७९ में विशाला ने कहा है कि मेरा वही पति होसकता है जो ब्राह्मण्य और वेद का जानने वाला तीनों लोकों में विख्यात विक्रम इन सब गुणों से युक्त वा तीनों लोकोंमें पूजित हो। (२) देवी भागवत स्कंध २ अ० १७ में लिखा है कि शिशुकला ने सुदर्शन जी के सर्व गुण श्रवण कर उनके साथ विवाह करने की प्रतिज्ञा की थी और अंत को उसी के साथ उसके पिता ने वेदरीति से विवाह किया। (३) रुक्मिणी जी ने श्रीकृष्ण महाराज के गुणों को सुनकर अपने पति बनाने की इच्छा उन पर पत्र द्वारा प्रकट की थी। (४) सुलभा जो पूर्ण विद्यावती और ब्रह्मचारिणी थी, जब उसको यथायोग्य वर नहीं मिला तो उसने संन्यास धारण किया था।

इस लिये यदि किसी प्रकार स्वम्बर विवाह नहीं कर सकते तो वेदोक्त मिलान करके कार्य करना चाहिये और धीरे २ स्वयम्बर रीतिको देश में प्रचलित करने का उद्योग कीजिये जिससे देश का कल्याण हो विधि अर्थात् लड़का लड़की के गुण मिलाने के विषय में वेदों में अच्छे प्रकार लिखा है जिसको सम्मुख रखकर मनु आदि स्मृतिकारों और पुराण तथा वैद्यक ग्रन्थों में भली भांति आन्दोलन किया है जिसका संक्षेप रूप से मैं वर्णन करता हूँ।

पुत्र के गुण।

१—पूर्ण ब्रह्मचारी और युवा, विद्वान्, सदाचारी, निर्लोभी, दयालु, नियमानुसार कार्य करने वाला, आस्तिक, साहसी, उद्योगी, कुलीन, आरोग्य, मधुर वक्ता, उत्तम स्वभाव वाला, सन्तोषी, दम्पति व्रत अर्थात् एक ही विवाहिता स्त्री से सम्बंध रखने वाला हो।

और अंगहीन नास्तिक, मूर्ख, बुड्ढा और दुराचारी, श्वास रोग, मिरगी, वायु विकार, बहरे, लूले लंगड़े, कुष्टी, नेत्रहीन और आलसी न हो। क्योंकि पैतृक रोगों से सन्तान में भी वही दोष आ जाते हैं।

पुत्री के गुण।

जिसके शरीर में कोई रोग न हो-जिसके शरीर में दुर्गन्ध न आती हो-जिसके शरीर पर बड़े २ बाल न हों और न लोम रहित हो-बहुत बकवाद करने वाली न हो शरीर टेढ़ा न हो-अंगहीन न हो, शरीर छरा छरा और कोमल हो, जिसकी मधुर वाणी हो जिसका वर्णपीला न हो, भूरे नेत्र वाली न हो, जिसका शुभ नाम हो, जिस की चाल हंस वा हथनी के तुल्य हो, अधिकांगी-दुराचारिणी, पीले नाखून, मोटे हाथ पैर वाली और माता पक्ष की न हो और अपने गोत्र की न हो। क्षय और हिस्टीरिया रोग में ग्रसित न हो, गृह कार्य में निपुण हो, किन्तु ब्रह्मचारिणी विदुषी और शुभाचरण आदि गुणों से युक्त हो।

इसी प्रकार पद्मपुराण सर्ग १ खण्ड २ और शिवपुराण ज्ञान संहिता अ० ३६ में लिखा है कि भूरे वर्ण, नेत्र और अङ्गहीन, रोगिणी, दुष्टस्वभाव वा लोम रहित तथा बहुत बालोंवाली, अधिकांगी पीले वर्ण वाली टेढ़ी नाक वाली, बहुत पतली, बड़ी लम्बी, विषम, उन्नत, इन्द्रलुप्त रोगवाली कन्याओं से विवाह न करना चाहिये।

प्यारे सुजनो! इसके अतिरिक्त इन बातों का विचार करना अभीष्ट है क्योंकि उत्तम कुल वृक्ष के तुल्य है, सम्पतिशालों के सदृश पुत्र मूलवत् जानो जो पुरुष अपनी पुत्रियों को सदा सुखी रखना चाहें वह मूल तत्व को विचार कर विवाह करें। वह लोग पेड़ पत्तों को नहीं देख सक्ते हैं जो मूल पर ध्यान नहीं देते, जो मेरी समझमें उनका देखना मुख्य है। क्योंकि जो मूल दृढ़ होगी तो वह बड़े २ प्रचण्ड वायु के झकोरोंसे वृक्ष को न गिरने देगी यदि मूल ही निर्बल तो वृक्ष थोड़े ही झटके में उखड़ कर गिर पड़ेगा इसी प्रकारजो पुत्र सपूत वा सुलक्षण होगा तो धन तथा कुल की प्रतिदिन उन्नति करेगा और सर्व प्रकारसे अपने बाप दादेके नाम तथा यश को फैलावेगा तथा नाना भांति से सुख आनन्द देगा, तथा—

एकेनापि सुपुत्रेण पवित्रगुणशालिना।
सुरभिः क्रियते गोत्रश्चंदनेनेव काननम्॥

इनकी अपूर्व, गुणवान् उत्तम आचरण वाले पुत्रसे सम्पूर्ण कुल शोभित और प्रकाशित हो जाता है, जैसे चन्दन के एक ही पेड़ से वन का वन सुगन्धित रहता है। जो उद्भूत अर्थात् कुलघातक हुआ तो वह अपने उनको धन धनधान्य व रजाई आदि को धूल में मिलावेगा. इसलिये धन कुल आदि उनकी अपेक्षा लड़के के गुण कर्म शील आदि का मिलाना अत्यन्त उचित है क्योंकि धन बादल की छाया के समान, अस्थिर पतंग के रंग के सदृश और कुल केवल नामके लिये है, इस कारण गुणों पर सदा ध्यान करने से परम सुख मिल सकता है, अन्यथा कदापि नहीं। किसी ने सच कहा है--

एकै साधे सब सधै सब साधे सब जाय।
जो तू सेवे मूल को फूलै फलै अघाय॥

अतः वर कन्या के उपरोक्त गुण मिला कर विवाह करना चाहिये, जिससे उन दोनों की प्रकृति सदा एकसी रहै औ सुख का मूल है, जैसा किसी कवि ने कहा है।

प्रकृति मिले मन मिलत है, अनमिल से न मिलाय।
दूध दही से जमत है कांजी से फटि जाय।

इस लिये सदा उत्तम कुलों में उत्तम गुण कर्म स्वभाव वाले पुत्र और पुत्रियों का विवाह होना ठीक है क्योंकि जो सुख तुल्य रूप, विद्या, गुण, कर्म, इत्यादि वालों का होता है वह अन्य में कभी नहीं होता इसी से ऋग्वेद अ० १। अ० २। व० ४। मं० १। अ० ४। सू० २२। मंत्र ११ में लिखा है कि स्त्री अपने समान पुरुष व पुरुष अपने तुल्य स्त्रियों के साथ आनन्द में प्रवीण होकर स्वयंवर विधान से विवाह करके सब धर्मों को सिद्ध करें।

अभिनो देवीरवसामहः शर्मणा नृपत्नीः। अच्छिन्नपत्राः सचन्ताम्॥

इसके उपरान्त वर और कन्या अपने माता पिता आदि बड़ों की भी सम्मति प्राप्त करें जिनके अनुग्रह से दोनों विद्या धन और सुवर्ण आदि धन और परस्पर एक चित होने और नियम पालन की शक्ति को प्राप्त किये हुए हों इस सम्बन्ध में बात चीत कर और कुमारी वह पहुंचाई जाय और वहां विवाह की बात चीत करके प्रकार पक्की हो जैसाकि ऋग्वेद सू० ३० में लिखा है। प्यारे मित्रो तथा सुयोग्य महिलाओं इस प्रकार प्राचीन समय में किसी रीति से विवाह होते थे तब जिस प्रकार दशरथ श्री राम लक्ष्मण, भरत शत्रुघ्न आदि जोड़न के सदृश मिल मिला कर

संतता प्रकट करता है इसी प्रकार विद्या समाप्ति पर पूर्ण विद्वान् और समर्थ वन्धा और वह गृहस्थाश्रममें प्रवेश करके आनंद भोगते थे उसी समय रूपवान, पराक्रमी, धनवान, गुणवान, यशवानु तथा पूर्ण आयु वाली सन्तान होती थी।

इसके उपरांत यह भी देख लेना चाहिये कि लड़का ज्वारी, शराबी, रण्डीबाज और चोर तो नहीं अर्थात् लड़का पढ़ा लिखा सुकर्मी, सुधर्मी हो, उस से परस्पर विवाह करना चाहिये, नहीं तो कदापि सुख नहीं होगा।

शोक है कि वर्तमान समय में इस प्रकार मिलान न कर केवल वर्ग गण राश और नाड़ी आदिका कुम्भ मीन इत्यादि से मिलान कर अनमेल मेल मिला भारत का सत्यानाश कर रहे हैं। इस प्रकार के मिलान की आज्ञा सत्यशास्त्रों में नहीं पाई जाती और न पूर्व पुरुष इस परिपाटी पर चलते थे। यदि किसी को दावा हो तो श्रुति के प्रमाण से सिद्धि करके दिखलाये या यही बतलाये कि श्रीराम और सीता अर्जुन और द्रौपदी इत्यादि के विवाह क्या इसी प्रकार के मिलान मिला कर हुये थे ? देखिये यदि वर्त्तमान परिपाटी के अनुसार ही मिलाकर उनके विवाह हुए थे तो—

नाड़ी दोष—आदि नाड़ी वरंहन्ति मध्य नाड़ी च कन्यकाम्।

अन्तनाड़ी द्वयोर्मृत्युः नाड़ी दोषं त्यजेद्बुधः॥

यह श्लोक शीघ्रबोध के प्रथम प्रकरण में लिखा है, अर्थ यह है कि यदि वर कन्या दोनों की आदि नाड़ीहो तो वर की मृत्यु हो,दोनोंकी मध्य नाड़ी हो तो कन्या की मृत्यु हो, अन्त नाड़ी हों तो दोनों की मृत्यु हो।

द्रौपदी की अन्त नाड़ी और अर्जुन की भी अन्त नाड़ी थी, इसी प्रकार वशिष्ठ और अरुन्धती दोनों की अंत नाड़ी थी, परन्तु उनमें किसी तरह का क्लेश न हुआ।

वर्गदोष—शीघ्रबोध प्रकरण १ श्लोक २२ के अनुसार अर्जुन का गरुड़ वर्ग है, (अचगोगटणोज्ञयः) और द्रौपदी का सर्प वर्ग है। सर्पाख्यः स्यात्तवर्गोपि० २३। और सर्प तथा गरुड़ का अत्यन्त वैर है। फिर इन में प्रीति क्यों थी।

गणदोष—श्री रामचन्द्र का जन्म पुष्य नक्षत्र का है, यह सब जानते हैं। रामचन्द्रजी की कुण्डली अब तक लिखी जाती है, उसमें भी

कर्क राशि ही मानी है। वाल्मीकी रामायण का भी यह सिद्धांत है। इससे शीघ्रबोध प्रकरण १ श्लोक २५—

अश्विनीमगरेवत्योहस्तः पुष्यपुनर्वसु।
अनुराधा श्रुतिः स्वातिः कथ्यते देवतागणैः॥

इसके अनुसार देवतागण हुआ। और सीता का यदि पुकारते नाम से शतभिखा नक्षत्र पाते तो राक्षस गण होगा। तथा—

कृत्तिका च मघाश्लेषा विशाखाशततारका।
चित्रा ज्येष्ठा धनिष्ठा च मूलंरक्षोगणः स्मृतः॥ २७॥

फल—स्वगणेपरमाप्रीतिर्मध्यमादेवमर्त्ययोः।
मर्त्यराक्षसयोर्वैरं कलहोदेवराक्षसोः॥ २८॥

देव राक्षस में कलह रहना चाहिये। फिर सीता राम में कैसी प्रीति थी और रावण जिसका गण नाम से सीता से मिलता था। और साक्षात् जाति भी राक्षसी थी, फिर उससे प्रीति क्यों न हुई। क्योंकि रावण के नाम से चित्र नक्षत्र पाया जाता है। श्रीकृष्णचंद्र का रोहिणी नक्षत्र का जन्म सब ही जानते हैं।

तिस्रः पूर्वाश्चोत्तराश्च तिस्रोप्यार्द्रा च रोहिणी।
भरणी च मनुष्याख्यो गणश्च कथितो बुधैः॥ २६॥

इसके अनुसार श्रीकृष्णचंद्र का गण 'मनुष्य' पाया जाता है और राधा का गण 'राक्षस' होता है। इन दोनों में भी वैर रहना चाहिये। फिर इन में प्रीति क्यों थी। वा राधाकृष्ण की कथा सत्य नहीं है॥

❀ राशिमेलनम् ❀

इसी तरह पूर्वकाल में राशि भी नहीं मिलाते थे। देखो शीघ्रबोध पृ० १में—

षष्ठे स्त्री पुंसयोर्वैरं मृत्युः स्यादष्टमे ध्रुवम्।
द्विद्वादशे च दारिद्र्यं नवमंच पञ्चमे कलिः॥ २६॥

अर्थ-स्त्री की राशि से पुरुष की राशि व पुरुष की राशि से स्त्री की राशि छटी हो तो वैर हो। आठवीं हो तो मृत्यु हो। २, १२ हो तो दरिद्र। ६, ५ हो तो कलह हो।

अब विचारिये कि रामचंद्र का जन्म राशि कर्क सिद्ध ही है। सीता की कुम्भ राशि मालूम ही है इस में कर्क से कुम्भ ८ वां होता है और कुम्भ से कर्क ६ वां होता है, यह विवाह क्यों हुआ? फल भी मालूम है। इसलिये इस मिथ्या मिलान को छोड़ पूर्वोक्त विधि से मिला कर

विवाह करने का फल लीजिये तभी आनन्द मिल सकता है, अन्यथा नहीं।

इसके अतिरिक्त [illegible] अलग बैठकर खाने का कार्य नहीं करते इत्यादि के कारण भारी हैं, जो बुद्धि के विपरीत हैं। मित्रो! जो दोनों [illegible] का कार्य [illegible] करते हैं, फिर भला यह आम कहना लड़कों से जीवन भर के सुख का साधन है, फिर निर्बुद्धि मनुष्य लोभ में आकर क्या क्या अनुचित कार्य नहीं कर बैठेगा? देखो—

इस लोभ के कारण औरंगजेब ने अपने पिता भ्राताओं को [illegible] लोभ से ही कारण आज कल भ्राताओं में नहीं बनती, फिर भला उनका क्या कहना जो बिना [illegible] की लालसा में लगे रहते हैं। चाहे लड़का काना अन्धा आदि क्यों न हो, जब लड़के के बाप ने उस की कुछी नहीं करने का [illegible] लिया या [illegible] से लिया कि वे लड़की वाले ले जाकर लड़का तथा कुल की बहुत प्रशंसा करते अर्थात् सम्बन्ध कर ही देते हैं। यदि लड़के वाले ने कुछ न ली तो लड़का उत्पन्न होने पर भी बहुत सम्मान करते हैं, जिसके कारण पति पत्नियों में मेल नहीं रहता। इन्हीं कुरीतियों के कारण बहुधा [illegible] कुमारी [illegible] तथा जिन्होंने बहुतेरी बालिकाओं को भी [illegible] का [illegible] कर दिया।

नाई पंडित आदि के द्वारा का लेना देना भी है, परन्तु महान् शोक का स्थान है कि माता पिता आदि भी न लड़के को देखें न लड़की को, यदि आँखें खोलकर देखते हैं तो कितना अन्तर पड़ता है, [illegible] है। [illegible] क्यों न हो, चाहे [illegible] लड़की [illegible] ही जावे, परन्तु इनको कुछ चिन्ता नहीं।

उपरोक्त कथन से प्रगट है कि विवाह कुल के साथ नहीं करके [illegible] के साथ करते हैं, जब पीछे दुःख मालूम होता है तो कहते हैं कि क्या करें हमारे यहाँ तो [illegible] ऐसा ही होता आया है। मित्र सज्जनो! ऐसे नहीं देखिये, हमारे ऋषि मुनि [illegible] कर गये हैं—

काममामरणात्तिष्ठेद् गृहे कन्यर्तुमत्यपि।
न चैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित् ॥

चाहे कन्या मरण पर्यन्त कुमारी रहे, परन्तु असदृश अर्थात् परस्पर विरुद्ध गुण कर्म स्वभाव वालों का विवाह न करे।

मनुस्मृति अध्याय ९ श्लोक ८९ में लिखा है कि उत्तम कुल में उत्तम

हुए सुशील कुलकन्या स्त्री से शास्त्रोक्त विधिवत् ब्याह करे।

अहीनैर्विद्याहीनैः कुर्याद्विवाहपरिग्रहम् ।

कुले महति सम्भूतां सवर्णां लक्षणान्विताम् ॥

इस स्थान पर यह भी स्मरण रहे कि कुलों की उत्तमता जाति या धनादि से नहीं होती, वरन् मनुष्यों के कर्म, शील, गुण, इन्द्रियों के दमन अथवा नम्रता आदि से होती है। शुक्रनीति में लिखा है—

वर्णो जाति कुलं पुत्रस्तथा जाति कुले नहि ।

नाम्नाऽऽत्मना न कुले नैव श्रेष्ठत्वं प्रतिपद्यते ॥

इसी कारण हमारे परम पूज्य विदुरजी महाराज ने लिखा है कि वही कुल श्रेष्ठ है जिसके मनुष्य वेदों को पढ़ कर यज्ञ दानादि श्रेष्ठ कर्म वेदानुसार करते हैं। जहां माता पितादि दुःख नहीं पाते, झूंठ नहीं बोलते, धर्म भ्रष्ट नहीं करते-तथा जिसमें कुकर्म न होते हों वह कुल बहुत धन होने पर भी हीन तथा त्यागने योग्य है जैसा—

तपो दमो ब्रह्मवित्त्वं वितानाः पुण्या विवाहाः सततान्नदानम् ।

येष्वेवैते सप्तगुणा भवन्ति सम्यक्सुवृत्तास्तानि महाकुलानि ॥

येषां न वृत्तं व्यथते न योनिश्चित्तप्रसादेन चरन्ति धर्मम् ।

ये कीर्तिमिच्छन्ति कुले विशिष्टां त्यक्तानृतास्तानि महाकुलानि ॥

मनु० अ० ३ श्लोक ६३ में लिखा है कि खोटे विवाहों, धर्म के छोड़ने, वेद के न पढ़ने और ब्राह्मणों की सेवा न करने से कुल नीचपन को प्राप्त हो जाते हैं।

कुविवाहैः क्रियालोपैर्वेदानध्ययनेन च ।

कुलान्यकुलतां यान्ति ब्राह्मणातिक्रमेण च ॥ ६३ ॥

इस लिये अ० ३ के श्लोक ६ वा ७ में लिखा है कि जिन कुलों में (१) क्रिया कर्म वेदानुकूल न होते हों, (२) जो सत्पुरुषों से तथा (३) वेदाध्ययन से रहित हों, (४) मनुष्यों के शरीर पर बड़े २ बाल हों, (५) जिन कुलों में बवासीर, (६) धातु क्षीण, (७) मृगी, (८) दमा, (९) खांसी, (१०) कोढ़ादि असाध्य रोग हों, ऐसे कुलों को धन, धान्य, गाय, अश्व, हाथी आदि पशुओं से सम्पन्न होते हुए भी त्याग देना चाहिए। जैसा कि—

हीनक्रियं निष्पुरुषं निश्छन्दो रोमशार्शसम् ।

क्षय्यामयाव्यपस्मारिश्वित्रिकुष्ठिकुलानि च ॥

महान्त्यपि समृद्धानि गोऽजाविधनधान्यतः ।
स्त्री सम्बन्धे दशैतानि कुलानि परिवर्जयेत् ॥

शिवपुराण ज्ञानसंहिता अध्याय ३६ में ऐसा ही लिखा है ।

मान्यवरो ! महात्मा मनु आदि ऋषि पुत्र पुत्री की विधि मिलान की इस प्रकार आज्ञा देते हैं कि पिता की सात पीढ़ी सगोत्र पिता के गोत्र तथा ऊपर कहे दश कुलों को त्याग हंस हस्थिनी के समान गमन करने वाली सूक्ष्म लोम, उत्तम केश तथा कोमल दांत, सुन्दर शरीर जिसका हो ऐसी पुत्री पुत्र का विवाह करे, इसी भांति पुत्र के भी समान गुण कर्म शुभ लक्षण देख कर पुत्री का विवाह करे । इसी प्रकार ऋग्वेद मं० ४ अ० १ सूक्त ५ मं०७ में कहा है कि जो कन्या अपने समान वर और जो ब्रह्मचारी अपने तुल्य कन्या से विवाह करते हैं वे अन्तरिक्षके मध्यमें ईश्वरसे स्थापित सूर्य, चन्द्र और नक्षत्रों के तुल्य शोभित होते हैं । जैसा कि—

तमिन्नयेवसमनासमानमभिक्रत्वापुनतीधीतिरश्याः ।
ससस्य चर्मन्नधिचारुपृश्नेरग्रे रूपआरुपितंजवारु ॥

यजु अ० ३ मं०३७ में कहा है कि जो स्त्री पुरुष विद्या, अच्छीशिक्षा अपनी इच्छासे एक दूसरेको पसन्द कर विवाह करते हैं वही उत्तम संतानों को उत्पन्न कर सदा प्रसन्न रहते हैं ।

अथर्व कांड २ अनुवाक ४ सू० ३० में लिखा है कि विद्या समाप्ति पर ब्रह्मचारी अपने अनुरूप गुणवती कन्याको ढूंढ़े और कन्या भी अपने सदृश वर ढूँढ़े इस प्रकार विवाह होने से वियोग न होकर आपस में प्रेम बढ़ता और आनन्द मिलता है ।

ऋग्वेद अ० १ अ० ४ व० २१ मं० १ अ० १० सू० ५६ मं० ३ में कहा है कि उत्तम विवाह वह कहाता है जिसमें तुल्यरूप और स्वभाव वाली कन्या और वर का सम्बन्ध हो कन्या से वर बलवान और दूनी वा ड्योढ़ी अवस्था वाला हो । और इसी सूक्त के मं० ४ में कहा है कि पुरुष और स्त्री को परस्पर प्रसन्नता से यानी एक दूसरे को वरने से गृहस्थाश्रम में निरन्तर आनन्द आता है ।

यजुर्वेद अ० ११ मं० ६३ में लिखा है कि जिसके हाथ कोमल उंगलियां सुन्दर, कोढ़ आदि रोगों से रहित, ऐश्वर्य्यवान, कमाने वाले उत्तम गुणवान, बलवान और रमण करने वाले पति से विवाह करे और मं०७० में लिखा है कि कन्या को अपने से अधिक बल और विद्या वाले पति को

स्वीकार करे और अ० १२ मंत्र ६२ में लिखा है कि चोर अथवा चोरों से सम्बन्ध रखने वाले तथा हीन क्रिया वाले पुरुषों से विवाह न करना चाहिए।

यजुर्वेद अ० ११ मं० ७० में स्पष्ट पाया जाता है स्त्री पुरुष उन कुलों में विवाह न करे जिसमें कि रोग है क्योंकि सदा रोगी माता पिता की सन्तान अवश्य निर्बल और उत्तम संतान उत्पन्न करने के अयोग्य होती है।

ऋग्वेद मं० १० सू० ८५ मं० ४५ में आज्ञा है कि नपुंसक और निर्धन के साथ विवाह नहीं करना चाहिए। अथर्ववेद २७६२ में लिखा है स्त्री विदुषी होकर पूर्ण विद्वान् से विवाह करके आपत्ति से बच कर सदा सुखी रहे। तथा ऋग्वेद मं० १ अ० अथर्ववेद काण्ड ६ सू० १३८ में लिखा है कि विद्वान् वर कन्या परस्पर गुणों का परिचय कर वाचिक और मानसिक प्रेम से गृहस्थी होने से ही परस्पर उपकार करके सदा सुखी रहते हैं जिस प्रकार नेवला जन्तु सांपको मार कर आप स्वस्थ और शांति हो जाता है उसी भांति विद्वान् पुरुष विदुषी स्त्री को पाकर दुःख नाश करके आनंद भोगता है।

प्रिय सुयोग्य महिलाओं और योग्य भाइयों प्राचीन काल में उपरोक्त बातों को मिलाकर बहुत सोच समझ कर जोड़े का जोड़ा देख भाल अपने मित्रों आदि से सम्मान लेकर विवाह करते थे तब ही रूपवान्, बलवान्, पराक्रमी सुखवाली, विद्वान्, धनवान आदि गुणों सहित माता, पिता, आचार्य्य की आज्ञा पालन करने वाली देशकी सेवा वैदिक धर्म ने प्रेमी यशवान पूर्ण आयु वाली सन्तान उत्पन्न होती थी।

इसके उपरांत यह भी स्मरण रखना चाहिये कि विवाह दूर देशमें करने से सुख और निकट देश में करने से दुःख एवं कलह का कारण होता है जैसा ऋग्वेद अ० १ अ०४। व० ४ मं०१। सू०४८। म०७में लिखा है-

विवाह संस्कार के पश्चात् कन्या के पिताको योग्य है कि अपनी पुत्री को स्त्री धन अर्थात् योग्य वस्त्र, अलङ्कार तथा धनादि पदार्थ दे जैसा अथर्व काण्ड १४ सूक्त १ मन्त्र १३ में उपदेश है—

सूर्यायावहतुः प्रागात्सविता यमवासृजत्।
मघासुहन्यन्तेगावः फल्गुनीषुव्युह्यते॥

और काण्ड १ सूक्त १४ मंत्र २ में लिखा है कि वधू के माता पिता

वर से कहें कि यह सुशिक्षिता एवं गुणवती कन्या आपको सौंपी जाती है, यह आप के माता पिता आदि समस्त कुटुम्बियों का पालन पोषण एवं सुमधुर से सत्कार रखती हुई सुखी रहे। फिर कन्या को भूषण वस्त्रादि से अलंकृत कर विदा करते हैं अर्थात् पति गृह को भेजते हैं। जैसा सूक्त १४ मन्त्र ४ में कहा है—

शासितस्त्री ब्रह्मणाक्षितस्त्र मघवन्न च।
अन्तः कोशमिव जामयोऽपि नह्यामि ते भगम्॥

अथर्ववेद काण्ड १४ सूक्त १ मंत्र २० में लिखा है कि प्रजापति पर पुत्र वाली वधू को उत्तम रथ पर चढ़ा घर ले जावे जैसा कि—

भगस्त्वेतो नयतु हस्तगृह्याश्विना त्वा प्र वहतां रथेन।
गृहान्गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्वं विदथमा वदासि॥

वर के घर पहुंचने पर वधू के कुल स्त्रियों स्वागत एवं आरती उतार और स्वस्ति वाचन आदि गान से आनन्द मनावें और सादर सेवा करके वर और वधू उन सबको अभिवादन नमस्ते करें। सू० २ मंत्र ३४।

अप्सरसः सधमादं मदन्ति हविर्धानमन्तरा सूर्यं च।
तास्ते जनित्रमभि ताः परेहि नमस्ते गन्धर्वर्तुना कृणोमि॥

फिर बड़ों की आज्ञानुसार शुद्ध जल आदि से स्नान कर भोजन के पश्चात् वह कुल की परिक्रमा करे तथा कुटुम्बी लोग सम्मान से उन दोनों का स्वागत करें। इसके पश्चात् सास श्वसुर आदि सम्बन्धी जो आभूषण आदि जो २ पदार्थ दें वधू उनको सादर स्वीकार कर उनके साथ गऊओं, बैलों, पशुओं, अन्न, जल आदि के प्रबन्ध में प्रवृत्त होकर आनन्द पावे और पति से सदा पूर्ण प्रीति रक्खे। जैसा सूक्त १ मन्त्र ४० । ४१ में उपदेश है।

तास्यै अप्सरसः सदनं सुरभिस्तन्वस्ते सुखो वधूजनरथाः।
सर्वेभ्यो अतिथये उद्धरत् अश्विभ्यां स्वधाशिरेभ्यः॥
योनेर्हिरण्यं उत सप्तसाः शुभ्रेभिर्दिव्याभिर्भूमिरस्तव॥
योनेजाताः सदा पतिरास्ते तु मधुना कन्ये संपृक्ता॥

तदनन्तर वर विधिपूर्वक वधू को आशीर्वाद दे कि तू पति की प्रिया होकर सदा आनन्द में रहे तथा सुन्दर, वीर, दीर्घायु सन्तान को उत्पन्न कर सौभाग्यवती हो विद्वानों का मान करे।

नवीन वधू का कर्तव्य :

अथर्ववेद काण्ड १४ सूक्त १ मन्त्र २१ में उपदेश है कि वधू पति गृह में

पहुँच कर अपनी विद्वत्ता और शुभ गुणों के कारण प्रिय वचन और वर्ताव से सबको प्रसन्न करै। तथा अपने बड़े स्त्री पुरुषों की हित शिक्षा और आशीर्वाद से विद्या और बुद्धि के बल से अपने कर्त्तव्यों में ऐसी चतुर हो कि सास, ससुर, देवर जेठ, नन्द आदि सब बड़े छोटे उसकी प्रतिष्ठा करें। जो दुष्ट स्त्रियां घर में आवें उनको वधू अपनी चतुराई से ऐसा परास्त करे कि वह अपना सा मुंह लेकर चली जावें और फिर कभी घर में न आवे अथर्व ३१०५ ॥

इसके उपरान्त हमारी स्त्री शिक्षा एवं पत्नी धर्म में बतलाई हुई शिक्षाओं पर (जिनका वर्णन यथा स्थान पर इसी पुस्तकमें किया गया है) पूर्ण ध्यान देना चाहिये ॥

गृही जनों का धर्म

है कि पितर कुल से पृथक् होकर आई हुई वधूको प्रसन्न रखने का हर घड़ी प्रयत्न करते रहें जिससे वधू बड़ी स्त्रियोंके समान पौरुष ऐश्वर्य और व्यवहार करके तेजस्विनी हो और प्रसन्नता पूर्वक गृहकार्यों को करती रहे। अथर्वकाण्ड १४ सूक्त १ मंत्र २५ में आज्ञा है कि विवाह के अन्त पर एक दिन नियत कर यज्ञ करे और शुद्ध अंतःकरण से जगदीश्वर का धन्यवाद दे कुटुम्बी, सम्बंधी एवं मित्र तथा विदुषी स्त्रियों और विद्वानों को बुला यथावत् आदर सत्कार करें जिनकी कृपा से उसको स्त्री रत्न की प्राप्ति हुई है।

परादेहि शामुल्यं ब्रह्मभ्यो विभजावसु।
कृत्यैषा पद्वती भूत्वा जायाविशते पतिम् ॥

इसी प्रकार वधू का पिता भी यज्ञ करा ईश्वर का धन्यवाद दे विवाह में कार्य करने वाले तथा सम्बंधि आदि पुरुषों को धन्यवाद दे।

प्रिय पाठक वृन्द ! अब आपको मालूम हो गया कि विवाह किस समय और किस प्रयोजन के लिये किस विधि से किया जाता था अतएव आप न्यूनावस्था की परिपाटी को एक दम बन्द कर यथार्थ सुख को भोगिये।

इसके उपरांत बहुधा जातियोंमें विवाह ठेके पर होता है अर्थात् पहिले करार हो जाता है कि इतने रुपये खर्च करने पड़ेंगे या हमको देने होंगे। हमारी समझ में इसमें भी सर्वथा हानि है, क्योंकि कहीं २ उतना धन न होने के कारण उत्तम और सुयोग्य जोड़े में अन्तर आजाता और लालच

में आकर बेजोड़ जोड़ मिलाया जाता है कि जिससे उपरोक्त हानि होती है ; कभी २ लड़की वाला लड़के के अर्थ क़र्ज ले उसको राजी करता है कि जिसकी बदौलत सूद व असल में ग्रह वस्तु बेचकर फक्कड़ बन जाता है। भला क्या वह हमारा देशीय सम्बंधी नहीं है ? यदि है तो क्या उस की कुदशा होने में हमारी कुदशा नहीं होती । भला, अब उसको दुःख तथा उसके बाल बच्चों को तकलीफ होने में क्या हमको कुछ भी लाज नहीं आती । यदि आती है तो ऐसी बुरी रीति को तुरन्त त्याग देना चाहिए ।

उपरोक्त बुराइयों के अतिरिक्त निम्न लिखित बातों का भी ध्यान रखना अत्यंत आवश्यक है कि जिससे दोनों ओर किसी प्रकार का क्लेश न हो, मन न बिगड़े, जैसा कि इस समय हमारे देश में हो रहा है, जिसके कारण भी भारत की प्रतिष्ठा रूपी पताका छिन्न भिन्न हो गई तथा हम नीम वहशी कहलाने लगे ।

❁ बरात में बहुत भीड़भाड़ ले जाना ❁

प्रथम विचार करना चाहिये कि बरात ठाठ बाट से ले जाने में दोनों तरफ क्लेश होताहै तथा प्रबंध और आदर सत्कार भी अच्छी तरह नहीं होने पाता और धन भी ज्यादा खर्च होता है । अतएव थोड़े मनुष्य बरात में लेजाना श्रेष्ठ है ऐसा करनेमें धन भी व्यर्थ खर्च नहीं होता और आने वाले बराती जन खुश रहते हैं और अधिक भीड़ लेजाने पर अच्छी तरह आदर सत्कार न होने पर साथी जन यही कहते हैं कि फलाने लाला की बरात में गये थे, वहां खाने पीने का कुछ भी प्रबंध न था, सब भूखों के मारे मरते थे, दाना घास भी न मिलता था, इधर लाला ले जाने के समय तो बड़ी सीप साप करते थे, परंतु वहां दुम दबाये जनवासे ही में बैठे रहे ।

❁ बखेर ❁

बखेर करना सब तरह से हानिदायक है, क्योंकि लालच बुरी बला है बखेर का नाम सुन कर दूर २ के भंगी आदि के साथ लूले, लंगड़े, अपाहिज, कंगले, दुर्बल भी इकट्ठे होते हैं, इधर नगर निवासी छोटे बड़े जन अटारियों तथा बाजारों में ठट्ठ के ठठ्ठ लग जाते हैं । बखेर करने वाले वहां मुट्ठियां अधिक मारते हैं, जहां स्त्रियों तथा मनुष्यों के समूह अधिक होते हैं । मुट्ठी के चलते ही हजारों स्त्री पुरुष बाल बच्चे तले ऊपर गिरते

हैं कि जिससे अवश्य ही दस बीस के चोट आती तथा एक आध अधमरे भी हो जाते हैं। अंधे, लंगड़े, लूले आदि की अत्यंत कुगति होती है और ऐसा कुहराम पड़ता है कि कोई किसी की नहीं सुनता समधी के दरवाजे पर तो झुण्ड के झुण्ड लग जाते हैं, जब वहां रुपयों की मुट्ठी चलती है उस समय लूटने वालों की बेहोशी हो जाती है। जो वहां दुर्दशा होती है वह देखने ही से जानी जाती है। भला बताइये तो इस बखेर से क्या लाभ, कि जिन में ऐसे २ कौतुक हों तथा धन भी व्यर्थ जावे? जितना रुपया फेंका जाता है, उसमें आधे से अधिक मिट्टी आदि में चला जाता है, बाकी एक तिहाई हट्टे कट्टे भंगियों को मिलता, शेष रहा सो सामान्य जनों को लूले लंगड़े अपाहिजों के हाथ कुछ भी नहीं आता, वरन् उनका काम तमाम हो जाता है अनेकों के चोट आजाती, किसी की पहुंची छल्ला, नथुनी खड़ुये, अंगूठी आदि जाते रहते हैं। इस सूरत में आने वाले लालाजी की कुछ लोग प्रशंसा भी करते हों, पर बहुधा वे जन कि जिनके चोट आजाती या जिन की कोई चीज़ जाती रहती है वह सब लालाजी के नाम को रोते हैं। जिन मनुष्यों को कुछ नहीं मिलता वह कहते हैं "बखेर का नाम था, कहीं २ पैसे फेंकते थे, ऐसे फेंकने से क्या होता है"

बाग़ बहारी अर्थात् फूलटट्टी।

फूलटट्टी की वर्तमान समय में यह चर्चा है कि रंगीन कागज और अबरक के फूलों के स्थान पर (जो वह भी फ़ज़ूलखर्ची में कम न थे) हुंडी नोट, चांदी सोने की कटोरियां, बादाम रुपये अशर्फियों तक के तख्तों में लगाने की नौबत आ पहुंची। यों तो सब अपने रुपये और माल की रक्षा करते हैं, परन्तु हमारे देशी भाई आंखों के सामने खड़े होकर खुशी से लुटवा देते हैं। कुछ लाभ नहीं उठाते, हां यह अवश्यमेव सुननेमें आता है कि फलाने लाला या साहूकार की बरात में फूलटट्टी अच्छी थी, हरचन्द बचाई गई पर न बची, लड़की वाले के द्वार तक न पहुंचने पाई कि फूलटट्टी लुट गई। अब विचार करने का स्थान है कि विवाह के कार्य की प्रसन्नता के पहिले लूटने की अशुभ वाणी मुंह से निकालना कि 'अमुक की फूलटट्टी लुट गई' कैसा बुरा है। इसके सिवाय इसमें लट्ठ भी चल जाते हैं, टोपी तथा हिमामे उतर जाते हैं तब वह फूल हाथ आते हैं, मानों लूटने वालों की इज्जत जाने पर कुछ मिलता है, बहुधा मजिस्ट्रेट तक नौबत

पहुंचती है। प्यारे भाइयों सच पूछो तो आरम्भ ही में गमी का सामान हो जाता है।

आतिशबाजी।

इससे न कोई संसार का लाभ न पारलौकिक, सुख, किंतु वर्षों का उपार्जन किया हुआ धन क्षणमात्र में जलाकर राख की ढेरी बना देते हैं। इस प्रकार भीड़भाड़ होती है कि एक के ऊपर दश २ गिरते हैं, एक इधर जाती एक उधर, यहां तक धक्कापेल मचती है कि बहुधा वेदम हो जाते हैं। किसी की पैर की उंगली पिची, किसी की दाढ़ी जली, किसी की भौंहों तथा मूछों का सफ़ाया हुआ, किसी का दुपट्टा तथा किसी का अंगरखा जल गया, किसी २ के हाथ पांव भुन जाते हैं। बहुधा मकानों के छप्परों में आग लग जाती है कि जिससे हाहाकार मच जाता है, बहुधा उन में नुकसान हो जाते हैं कभी कभी मनुष्य तथा पशु भी जल कर प्राण त्यागते हैं।

इसके अतिरिक्त वायु बिगड़ जाती है कि जिससे प्राणीमात्र की आरोग्यता में अन्तर पड़ जाता है और सबका पाप समधी के सिर पर चढ़ता है, तिस पर तुर्रा यह कि घर वालों को कसरत कामों से घर फूंक के भी तमाशा देखने की नौबत नहीं पहुंचती है।

रण्डी का नाच।

रण्डियों के नाच ने तो भारत को ग़ारत कर दिया। क्योंकि तबला सरंगी के बिना भारतवासियों को कल नहीं पड़ती। बरात के आने जाने वालों की यह जीवन प्राण है, समधी तथा समधिन का पेट उसके बिना नहीं भरता। जहां बरात चली, विषयी जन बिना बुलाये चलने लगते हैं, जो रुपया उसको दिया गया, उसका तो सत्यानाश हुआ ही उसके साथ ही बहुत सी हानि के मार्ग खुल जाते है। नाच ही में कुमार्गी मित्र उत्पन्न हो जाते हैं, नाच ही में हमारे देश के धनाढ्य साहूकार लज्जाको तिलांजलि दे देते हैं, नाच ही में इनको शिकार फसाने तथा नौजवानों का सत्यानाश मारने का समय (मौक़ा) हाथ लगता है। बाप, बेटे भाई, भतीजे सब एक महफ़िल में बैठ लज्जा को दूर कर सब अच्छे प्रकार घूरते तथा आँखें सेकते हैं।

यह भी महफ़िलों में ठुमरी, टप्पा, बारहमासा, ग़ज़ल आदि इश्क़,

विरह, वस्ल, इश्तियाक़, इंतज़ार को गाती हैं, तिस पर तुर्रा यह है कि यह नौजवान खूबसूरत शृंगार किये हुये सुरीली आवाज से ऐसे२ तीर हाव भाव कटाक्ष से मारती हैं कि जिनको सुन कर स्त्री पुरुष ऐसे घायल हो जाते हैं कि फिर उनको सिवाय इश्क़, वस्ल और प्यार के कुछ भी नहीं सूझता। सुनिये किसी महात्मा ने कहा है—

दर्शनात् हरते चित्तं स्पर्शनात् हरते बलम्।
मैथुनात् हरते वीर्य्यं वेश्या साक्षाद्राक्षसी॥

दर्शन से चित्त, छूने से बल, मैथुन से वीर्य्य नष्ट हो जाता है, अतः वेश्या को साक्षात् राक्षसी के समान जानो।

तिस पर भी तो बाप बेटे को कुछ नहीं समझता, जहां आंख लगा चकनाचूर हो जाते हैं, प्रतिष्ठा तथा जवानी को खोकर बदनामी का तौक़ गले में पहिनते हैं, अनेकान इश्क के नशे में चूर होकर घरबार बेंच कर दो दो दानों को मारे २ फिरते हैं, कोई धन कमा २ कर इनकी भेंट चढ़ाते हैं और स्वयं निर्धन हो महा दुःखी होते हैं। सच पूंछो तो अपनी करनी का फल भोगते हैं, क्योंकि प्रथम तो प्रत्येक उत्सव अर्थात् लड़का होने, नामकरण, मुण्डन, सगाई विवाह के उपरांत जन्मअष्ठमी, रासलीला, होली, दिवाली, दशहरा, वसंत आदि पर बुलवा २ कर इन नौजवानों को रस भरी आवाज़ तथा मधुभरी आंखें दिखलाते हैं कि जिससे बहुधा रण्डीबाज़ हो जाते हैं तथा आतिशक सूज़ाक आदि बीमारियां घेर लेती हैं जिन की आग में वे खुद भुनते रहते तथा औलाद को निराश छोड़ जाते हैं।

अनेकान जब रण्डियों के नाज़ नखरे तथा बनाव शृंगार आदि पर ऐसे मोहित हो जाते हैं कि घरकी विवाहिता स्त्रियों के पास तक नहीं जाते नाना प्रकार के दोष उन पर धरकर मुंहसे बोलना अच्छा नहीं समझते, वह बिचारी दुःखों में रात दिन रोती रहती हैं।

बहुधा स्त्रियां जो महफिल का नाच देख लेती हैं उन पर इसका ऐसा बुरा असर होता है जिससे घरके घर उजड़ जाते हैं, क्योंकि जब वे देखती हैं कि सम्पूर्ण महफिल के लोग उस मालज़ादी की ओर टकटकी लगाये हुये उसके नाज़ नखरे सह रहे हैं, यहां तककि जब वह थूकने का इरादा करती है तो एक आदमी उगालदान लेकर हाजिर होता है। ऐसे हा यदि

पान खानेकी जरूरत हुई तो भी निहायत नाज तथा अदब के साथ पेश किया जाता है। इसके उपरांत वह दुष्टा निचे से ऊपर तक सोने चांदीके आभूषणों तथा अतलस, गुलवदन, कमखाब, सासनलेट, गिरंट आदिबहु मूल्यवान् पिशबाज् को, एक २ दिनमें चार २ दफे नई किस्म के बदलती इतर फुलेल की लपटें उससे चली आती देखकर विद्याहीन स्त्रियों के मन में बस जातीहै कि जिसका आखीर नतीजा यह होताहै कि बहुधा खुल्लम खुल्ला लज्जा को त्याग रण्डी बन कर गुलछर्रें उड़ाने लगती हैं कोई२ रेल पर सवारहो अन्य देशों में जा अपने मनकी आशा पूर्ण करती है, क्या यह हमारी तुम्हारी बहू वेटियां नहीं हैं ? यदि हैं तो फिर कैसे शोकका स्थान है कि कुछ भी विचार न कर आंखों पर पट्टी बांधे हुये हम चले जावें।

इसके अनन्तर जब दर्वाजों पर रडिएयाँ गाली गाती हैं, उधर से उसका जवाब होता है। देखिये उस समय कैसे अपशब्द बोले जाते हैं कि अन्य देशीय सुनकर हँसते २ पेट फुलाकर कहते हैं कि इन्होंने तो रण्डियों को मात कर दिया। धिक्कार है ऐसी सास आदि पर जो मनुष्यों के सम्मुख ऐसे २ शब्द उच्चारण करें ? अथवा रण्डियों से इस प्रकारकी गालियां सुनकर भाई, वन्धु, माता, पिता आदिकी कीञ्चित् लाज न करें और गृह के बीच घूंघट में रहें तथा आवाज से बात भी न कहें। सच पूछो तो विवाह क्या है, मानों परदेवालियों को बेशर्म बनाता है, इस पर तुर्रा यह कि खुश होकर रण्डियों को रुपया देती हैं। प्यारे सुजनों! इन रण्डियों के नाच के ही कारण जब मनुष्य वेश्यागामी होजाते हैं तो वे अपने धर्म कर्म पर भी धता भेज देते हैं, जहां नाच होता है दस पांच मुड़ जाते हैं। इसके उपरांत जो रुपया उत्सव तथा खुशियों में उनको दिया जाता है, उससे बताओ 'बकराईद' में वह क्या करती हैं ? वह हत्या भी हमारे तुम्हारे सिरपर होती है, क्योंकि जब हमको यह प्रकट है कि यदि इनके पास रुपिया न होगा तो हाथ मलकर रह जावेगी, फिर भला बताओ तो कौन अपराधी है ? रण्डियों के गाने को सुनिये, वे क्या कहती हैं—

शुभकाज को छांड़ कुकाजरचें, धनजोत है व्यर्थसदा तिनको,
एकरांड बुलाय नचावत हैं। नहिं आवत लाज जरा जिनको।
सिरदंग भने धृक है, धृक है सुरताल पुछे किनको किनको
तब उत्तर रांड बतावत है धृक है इनको, इनको, इनको ॥

यदि बुद्धिमानी से पक्षपात त्याग कर विचार किया जाय तो रण्डियों के नाच ही के कारण देश में निम्न लिखित हत्याओं की जड़ पड़ गई—

(१) बालहत्या, (२) स्त्रीहत्या, (३) पुत्रीहत्या, (४) गौहत्या, (५) विश्वहत्या, (६) कुल हत्या, (७) आत्महत्या, (८) गुरुहत्या, (६) ब्रह्महत्या।

अथोपरांत भक्ति तथा योग की हानि धर्म अथवा ईश्वर में श्रद्धा का अभाव, सत्संग वा मित्रता की हानि होती है।

मित्रवरो ! यदि आपके विचार में भी उपरोक्त वार्ता ठीक हो तो शीघ्र भारत सन्तान के उद्धार के अर्थ वेश्याओं के नाच को त्याग दीजिये वरना सम्मति देने से आप भी दोषी होंगे।

भांड।

ज्योंही वेश्याओं के नाच से निश्चित हुये त्योंहीं भांडों का लश्कर बरसाती मेंढकों की तरह भांति भांति की बोली बोलता हुआ निकल पड़ा अब लगीं तालियाँ बजने, कोई किसी की घुटी खोपड़ी में चपत जमाता है कोई गधे की भांति चिल्लाता, एक म्याऊँ एक हुस, अर्थात् अनेक प्रकार के कोलाहल मचाते तथा ऐसी २ नकल बनाते सुनाते कि लालाजी, सेठजी, पण्डितजी आदिकी प्रतिष्ठापें पानी पड़ जाता है। ऐसे२ शब्दोचारण करते हैं कि जिनके लिखने में हमको लज्जा आती है परन्तु उस सभा के बैठने वाले जो सभ्य कहलाते है कुछ लाज नहीं करते वरन् प्रसन्नचित्त हो कर हंसते २ अपना पेट फुलाते तथा पारितोषिक प्रदान करते हैं।

प्यारे सुजनों ! इन्हीं व्यर्थ बातोंके कारण हमारी सन्तानों का सत्यानाश मारा गया। इस कारण इन मिथ्या प्रपंचों को शीघ्र त्याग विवाह आदि उत्सवों में महात्मा-संन्यासी एवं विद्वान् उपदेशकों के व्याख्यान—देशोन्नति-देश सेवा-विद्या की उत्तमता-ब्रह्मचर्य का महत्व-स्त्री शिक्षा के लाभ-वेद महिमा वर्ण व्यवस्था आदि विषयों पर कराइये तभी आत्मोन्नति करते हुए आप गृहस्थाश्रम के मुख्य धर्म उपकार को सीख सुख को प्राप्त कर सकते हैं जैसा कि अथर्व वेद में लिखा है इसी प्रकार स्त्रियों को भी उपदेशयुक्त धार्मिक शिक्षा के भजनों को गाना तथा कोमलवाणी से स्त्री शिक्षा पर व्याख्यान भी देना उचित है।

अथोपरान्त दोनों ओरसे कोई ऐसा काम न करना चाहिये कि जिससे आपस में प्रेम न रहे। यथा बहुधा बरातों में दाने घास परोसे आदि तनिक तनिक सी बातों में ऐसे झगड़े डाल देते हैं कि जिससे समधियों के मनोंमें अन्तर पड़ जाता है कि जिसके कारण लाखों देने पर भी आनन्द नहीं आता क्योंकि कहा है—

जहां गांठ तहं रस नहीं, यही प्रीति की बान।

सच हैं बिना प्रेमके सर्वस्व मिलने पर भी प्रसन्नता नहीं होती, अतः प्रीति पूर्वक प्रत्येक कार्य को करें कि जिससे दोनों तरफ प्रशंसा हो पर खर्च व्यर्थ न हो। प्यारे सुजनों! तनिक तो विचार करो कि जब एक की बुराई हुई तो क्या वह हमारा सम्बन्धी नहीं है? क्या वह हमारी बदनामी नहीं हुई? सच पूछो तो ऐसे सम्बंधियों पर घृणा भेजना उचित है, क्योंकि प्यारे भाइयो यह विवाह का समय आनन्द तथा प्रेम बरसाने या मृदुल कोमल वार्तालाप करने का है न कि इस समय में एक दूसरे के विपरीत लीला रचकर युद्ध का सामान इकट्ठा कर लेना मूर्खता है अतः परस्पर एक दूसरे की भलाई तन मन से विचार कार्य करना योग्य है और उन मनुष्यों की (जो मनसे दोनों की अपकीर्ति चाहते हैं तथा बाहर से बहुत लल्लो पत्तो करते हैं) बातों पर कदापि ध्यान न दो क्योंकि इस संसार में दूसरों को निरंतर प्रसन्न करने के लिये मिथ्या प्रशंसा करने वाले बहुत हैं तथा सुनने में अप्रिय परन्तु वास्तव में कल्याण करने वाले वचनों को कहने और सुनने वाले पुरुष दुर्लभ हैं जैसा कि—

पुरुषा बहवो राजन् सततं प्रियवादिनः।
अप्रियस्यतु पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः

बहुधा गुप्त शत्रु तथा दुष्ट लोग जो सम्मुख उसकी हाँ में हाँ मिलाते हैं और पीछे बुराई निकाल कर दर्शाते हैं, तथा सज्जन लोग मुंह पर प्रत्येक वस्तु के गुण व दोष वर्णन करते हैं, परोक्ष में प्रशंसा करते हैं, अतःदोनों समधियों आदि को योग्य है कि आप दो, प्रत्येक बात का निर्णय कर जो दोनों को लाभदायक हो अङ्गीकार करें, जिससे दोनों ही आनन्द में रहें। यही विवाह का मुख्य फल है।

देखो अथर्व वेद काँड १४ सू० २ मं० १५ में स्पष्ट कहा है कि विवाह कार्य्य में कोई दुष्ट पुरुष विघ्न डाले तो चतुर मनुष्य उसका समाधान करके विवाह को निर्विघ्न समाप्त कराये जैसा कि—

यदा सन्ध्यासु पधाने यद् वोपवासने कृतम् ।
विवाहे कृत्यां यां चक्रुरा स्नाने तानि दध्मसि ॥

बरात के जाने वाले सज्जनों का धर्म है कि विवाह में किसी प्रकार का विघ्न न होने दें आनंद विनोद के लिये उत्तम २ पंडित और योग्य गायक भजनीकों को बुलवा कर परमेश्वर की भक्ति, ज्ञान, ध्यान योग, देश उन्नति वेद व्योपार, संगठन इत्यादि पर व्याख्यान, भजन कराये, शंका समाधान कर प्रत्येक विषय के ज्ञान की प्राप्ति करें और उपरोक्त तूफानी बातों को शीघ्र से शीघ्र भारत से निकाल देश का कल्याण करें और यश के भागी बने ।

वर्त्तमान समय में वर तथा कन्याओं से जो प्रतिज्ञा कराई जाती है । वह महादेव और पार्वती के नाम से होती है-इससे जान पड़ता है कि यह प्रतिज्ञायें प्रथम महादेव और पार्वती के विवाह में कराई गई और इस से प्रथम प्रतिज्ञायें नहीं होती थीं । मान्यवरो यह बात बिलकुल गलत है यह प्रतिज्ञायें सृष्टि के आदि से होती चली आती हैं इस लिये इन प्रतिज्ञाओं को वर, वधु स्वयम् कहे न कि पंडित मन-सच समझिये प्रतिज्ञायें करना ही तो विवाह है वह प्रतिज्ञायें पंडित जन द्वारा ऊपर से कर देते हैं ऐसा कदापि न होना चाहिये । देखिये यह सब प्रतिज्ञायें वेदों में मौजूद हैं ईश्वर की आज्ञा है ऐसा ही हम तुमको करना चाहिए ।

वर्त्तमान समय के पंडित लोग विवाह के समय हवन पूर्ण रीति से नहीं कराते, वरन् गणेश (महादेवकेपुत्र) का पूजन वेदोक्तमंत्र(गणानांत्वा०) आदि से करते तथा बीच बीच में दक्षिणा लेते जाते हैं, जिसकी आज्ञा पुराने ग्रन्थों में नहीं मिलती और बुद्धि के भी विरुद्ध है क्योंकि सब जानते हैं कि महादेव पार्वती के विवाह के पश्चात् इन गणेश जी का जन्म हुआ होगा, तो इससे पहिले जो हमारे पूज्यों के विवाह संस्कार हुए होंगे उनमें इन गणेश का पूजन कैसे हुआ होगा ? ज्ञात होता है कि प्रथम सब गुणों के ईश परमात्मा का पूजन होता था, जिसके स्थान पर अब मिट्टी के गणेश बना कर पूजन कराकर दक्षिणा लेने लगे ।

मान्यवरो ! इस प्रकार दक्षिणा देना भी अत्यन्त बुरा है । क्योंकि बीच में पंडित तथा यजमान में दक्षिणा का झगड़ा होने से वैदिक संस्कार का स्वाद बिगड़ जाता है तथा श्रोताओं को आनद नहीं आता, अतः संस्कार के अन्त में यथा रुचि दक्षिणा देना श्रेष्ठ है ।

तदुपरांत वर्त्तमान समय में विवाह संस्कार होने के पश्चात् पुत्र तथा पुत्री वाले दान भी करते हैं जो मूड़ दक्षिणा अथवा देहरी के नाम से ब्राह्मणों को मिलती है जिसमें हर साल हजारों रुपये के दान हो जाते हैं। परन्तु वर्त्तमान समय की रीति से दाताओं से लेने वालों को एक दो दिन के भोजनों के सिवा कुछ लाभ नहीं होता, अतः दान करने की रीतों को विचार कर दान करना अभीष्ट है, जिससे दान का फल दाताओं को मिले तथा देश का कल्याण हो, धन भी व्यर्थ नष्ट न होने पावे क्योंकि धन एक उत्तम पदार्थ है।

धन की महिमा।

:o:

हे सज्जन पुरुषो और योग्य महिलाओ! संसार के सब कार्य्य लक्ष्मी जी के सहारे से चलते हैं। जितनी बातें हमारे जीवन के लिये आवश्यक हैं व जिनसे हमारा जीवन भोग विलास सुख चैन तथा आराम से कटता है वे सब इन्हीं लक्ष्मी जी के आधीन हैं, क्योंकि संसार भर के मनुष्य जिसको कुछ भी बोध तथा ज्ञान है वे इस बात को मानते हैं तथा प्रति दिन हमारी परीक्षा में आरहा है। धन ही से गौरव, प्रतिष्ठा, विभव, ऐश्वर्य्य, सुख, आनन्द, यश, कीर्ति, धर्म तथा प्रभुता आदि प्राप्ति होती है। संसार में धन ही एक ऐसा पदार्थ है जिससे इहलौकिक और पारलौकिक इच्छाओं की पूर्त्ति होती है सच पूछो तो धन ही एक ऐसा श्रोत है। यहां से सब प्रकार के सुखों का विकास होता है। क्या राजा क्या प्रजा सब के सब इसी के लोभी बने भटकते फिरते हैं जैसा कि—

टकाहर्त्ता टकाकर्त्ता टका मोक्षप्रदायकः।
टका सर्वत्र पूज्यन्ते बिना टका टकटकायते॥

आत्मा की शुद्धि ज्ञान से शरीर की आरोग्यता और उपयोगी आहार विहार और सुनियम निश्चिन्तता से और निश्चिन्तता धनसे प्राप्त होतीहै। विद्याध्ययनमें पुस्तकों आदि की आवश्यकता होती है जिसकी प्राप्ति धनसे होती है। संसार में प्रतिष्ठा की सब कोई अभिलाषा रखते हैं और प्रतिष्ठा राज सन्मान और विद्यासे होती है। विद्या शिक्षा से, शिक्षा गुरु सेवा से

होती है और गुरु सेवा धन से होती है। लोकेन्द्र, सुरेंद्र, महेन्द्र, राना, राव, साहूकार, सेठ, नव्वाब इत्यादि सब खेल लक्ष्मी जी ही के खेल हैं, सी० आई० ई० सितारेहिन्द उपाधियां सब लक्ष्मी जी ही की तो उपाधियां हैं। निदान उस सर्व शक्तिमान परमेश्वर ने धन को एक विचित्र और अद्भुत शक्ति प्रदान की है। मानो उसको (उप) सर्व शक्तिमान बना दिया जिनके बाप दादे निर्धनताके कारण जुगनू से चमकते थे आज उनके बेटे धनकी बदौलतसूरज के समान संसारमें प्रकाशित हो रहे हैं जिन घरों में प्रकाश चन्द्रमा की चांदनी के समान हो रहा था। आज उन घरों में अन्धकार छाया हुआ है, चंद्रवंशी तथा सूर्य्यवंशी जिन का प्रभाव चन्द्र दिवाकर की भांति समस्त मंडल में हो रहा था अब वह बहुतेरे कर्ज के बन्धन में ऐसे जकड़े हुए हैं कि जिससे पलमात्र को चैन नहीं पड़ता जिनकी जाति पांति का नाम भी न सुना था वह राय, राव इत्यादि कहलाते हैं हम क्या सब जगत के मनुष्य इस बात को कहते हैं। कि ईश्वर ने सम्पूर्ण सृष्टि से धन को ही उत्तम पद दिया है, संसार के सब काम तथा सम्बंध उसी के आधीन रक्खे हैं। उस विश्वम्भर के पीछे हमारी आवश्यकता तथा सुख साधन के निमित्त धन से बढ़ कर कोई पदार्थ नहीं। देखिये नीति में लिखा है कि जिस मनुष्य के पास धन है। वही कुलीन, वही पण्डित, वही शास्त्र जानने वाला वही गुणज्ञ वही वक्ता वही दर्शन करने योग्य, सब गुण धन के आश्रय हैं। धन के द्वारा अकुलीन कुलीन इसी के द्वारा मनुष्य आपत्तों से बच जाते हैं। वीर हो, सुन्दर बोलने वाला हो परंतु बिना धन के संसार में यश कीर्त्ति कठिन है। धन हीन पुरुष को मित्र पुत्र स्त्री और सुहृद सब त्याग देते हैं। फिर उसी के धनाढ्य हो जाने पर पुनः उसके ही आश्रय हो जाते हैं। इस लिये इस संसार में धन ही मनुष्य का बन्धु है।

* पद्मपुराण सर्ग २ अध्याय ६४ श्लोक ३७ व ३८ में लिखा है कि माता, पिता, पुत्र, भ्राता, सुहृद, मित्र सखा, स्त्रियां निर्धन पुरुष को छोड़ देती हैं। जिस प्रकार इस वर्षा ऋतु के पीछे तालाब सूखने पर छोड़ देते हैं। उद्योग पर्व अध्याय ७२ और चाणक्यनीति तथा हितोपदेश में भी कहा है। किसी महात्मा का वचन है कि शील, शौच, शांति, चातुर्य, मधुरता कुलीनता यह सब निर्धन मनुष्य को शोभा नहीं देते। भर्तृहरि-

जीने लिखा है कि शील पर्वत से गिर कर चूर होजाय; शूरता भी जाती रहे जाति भी रसातल को चली जाय, परन्तु केवल एक धन बचा रहे, क्योंकि उसके बिना सर्व गुण तृण के समान जान पड़ते हैं। ऐसाही युधिष्ठिर ने वस तथा अर्जुन को उपदेश दिया है कि धन से धर्म, अर्थ काम मोक्ष और कीर्ति की उन्नति होती है। सच तो यह है कि निर्धनता से सारा उत्साह और उमंग भीतर का भीतर ही नष्ट होजाती है। सारी इच्छायें हृदय में ही रहजाती हैं। विचार की तरंगे हृदय रूपी मंदिर में नहीं ठहरती। मुख से दीन वचन निकलते हैं। इतनाही नहीं वरन जिस प्रकार कंजूसों का यश क्रोधियों के गुण मूर्ख एवं दूतनी का सत्य व्यसनों से धन विपत्ति से स्थिरता, चुगली से कुल, मद से विनय दुश्चरित्रों से पुरुषार्थ नष्ट होजाता है। उसी प्रकार दरिद्रता से अपनी प्रतिष्ठा का नाश होजाता है। जैसा कि किसी कवि ने कहा है॥

अहोतु कष्टं सततं प्रवासस्ततोऽति-कष्टः परगेह वासः कष्टाधिका नीच जनस्य सेवाततोऽतिकष्टः धन हीनता च॥

अर्थात विदेश में निरंतर रहना कष्ट दायक है लेकिन इस से अधिक दूसरों के घर में रहना तथा नीचजनों की सेवा दुःखकारी है। परन्तु इन दोनों से बढ़ कर दुःख देने वाली दरिद्रता है। जैसा किसी ने कहा है।

वासुदेव जराकष्टं कष्टं निर्धन जीवनम्।
पुत्र शोको महा कष्टं कष्टात्कष्टतरं क्षुधा॥

अर्थात संसार में सबसे बढ़कर कष्ट देने वाली दरिद्रता और उससे उठी हुई भूख की ज्वाला है॥

मियाँ नजीर ने कहा है—

कौड़ी के जहान में नकशे नगीन हैं। कौड़ी नहीं पास तो कौड़ी के तीन २ हैं। कौड़ी थी पास तो मारते थे लम्बी चौड़ियां। कौड़ी नहीं पास तो खाते हैं पकौड़ियां।

अथर्व वेद में लिखा है कि निरधनता के कारण मनुष्य घर से निकल जाते हैं और कुरुप होजाते हैं दीन वचन बोलते और मति भ्रष्ट हो क्रोध, मोह, लोभ के वशीभूत हो अनेकान कुचेष्टायें करने लगते हैं। इस लिये प्रत्येक को यत्न पूर्वक धन इकट्ठा करना बहुत ही आवश्यक है जैसा अथर्व कांड २ सूक्त १४ में कहा है।

निः साला धृष्णु धिषणं मे कलायां जिघत्स्वम्।
सर्वाश्चण्डस्य नप्त्यो नाशयामः सदान्वाः॥
निःसालं धृष्णुधिषणमेक वाद्यंया जिघत्स्वम्।
सर्वाश्चण्डस्यनप्त्यो नाशयामः सदान्वाः॥

य० अ० २० मं० ७२ में कहा है कि ऐश्वर्य के बिना राज्य, राज्य के बिना राज्य लक्ष्मी और राज्य लक्ष्मी के बिना भोग प्राप्त नहीं होते। इस लिये नित्य पुरुषार्थ करना चाहिये।

वरुणः क्षत्रमिन्द्रियं भगेन सविता श्रियम्।
सुत्रामा यशसा बलं दधाना यज्ञमाशत॥

य० अ० २१ मं० २७ में कहा है। कि जिस प्रकार विद्वान लोग ब्रह्मचर्य, धर्माचरण, विद्या, सत्संग आदि से सब सुख प्राप्त करते हैं। उसी भांति मनुष्य पुरुषार्थ से लक्ष्मी को प्राप्त होवें। क्योंकि गृहस्थाश्रम रूपी यज्ञ घोड़े आदि उत्तम पशु और वीर अर्थात् बलवान् योधाओं और सुवर्ण आदि धन के बिना पूर्ण नहीं होता। अर्थात् गृहस्थाश्रम में आनन्द नहीं आता, इसलिये सदा पुरुषार्थ करना उचित है, जैसा य० अ० ८ मं० ६३ में कहा है। और वाल्मीकि रामायण किष्किन्धा काण्ड सर्ग ४२ में लिखा है। कि उत्साह सब सुखों का देने वाला है। यही लक्ष्मी सुख का मूल है। भर्तृहरि जीने अपनी राजनीति में भी लिखा है कि आलस्य के समान मनुष्य के शरीर में कोई रिपु नहीं है आलसी मनुष्य धन प्राप्त नहीं कर सकते जो लोग विना उद्यम किये ऐसा विश्वास करते हैं कि अब धन होगा, अब धन होगा यह उनकी भूल है।

इसके उपरांत शास्त्र में प्रारब्ध को बीज के समान माना है यान्यवरों विचार करने का स्थान है यदि किसी पुरुष के पास बीज हो और वह पृथ्वी आदि में न बोकर और पानी आदि से उसका उचित सींचना आदि न करे तो कदापि अन्न आदि की उत्पत्ति नहीं हो सकती इसी प्रकार का प्रारब्ध रूपी भूमि में उद्योग रूपी जलके सेचन करने से ही कार्य्य रूपी अंकुर निकल कर मनुष्यों को सुख होता है चाणक्यनीति में कहा है कि उद्योग दरिद्रता का नाश करता है। याज्ञवल्क्य जी कहते हैं कि एक चक्र से रथ नहीं चलता अयोध्या कांड सर्ग २ श्लोक १६ में लक्ष्मण जी का वचन है। कि जो लोग डरपोक तथा वीर्यहीन होते है वही हाथ पर हाथ धरे बैठे रहते हैं शूरवीर लोग उद्योग कर सुख प्राप्त करते है ऋग्वेद में लिखा है कि उद्यम से लक्ष्मी और राज्य की प्राप्ति होती है। पुरुषार्थ के बिना विद्या और अन्न धन कभी नहीं मिलता और न शत्रुओं पर विजय

प्राप्ति होती इसलिये यजुर्वेद अ० ४० मंत्र ७२ में उपदेश है कि हे मनुष्यों जब तक जियो तब तक आलस्य रहित होकर उद्योग से धनोपार्जन करते रहो। जैसाकि

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः

सच तो यह है कि पुरुषार्थ ही जीवन और आलस मृत्यु है इसलिये वर्तमान दशा से आगे बढ़ने के लिये नियम पूर्वक पुरुषार्थ और उद्योग करने से मनुष्य बड़े २ दुस्तर समुद्र नदी आदि पार कर जाते हैं। ऊँची से ऊँची चोटी पर पहुंच कार्य्य करते हैं। आकाश में वायुयाना के द्वारा चक्कर लगाते हैं। पृथ्वी को खोद अनेकान् प्रकार के रत्न और समुद्रों में गोता लगाकर बहु प्रकार मोती निकालते हैं पदार्थ और शिल्प द्वारा अद्भुत और अनोखी वस्तुयें बनाकर व्योपार द्वारा लक्षाधीष होकर आनन्द मङ्गल के साथ संसार यात्रा को पूरा करते हैं।

भर्तृहरि जी ने कहा है कि उद्योगी पुरुष सिंह के पास लक्ष्मी स्वयं जाती है। दैव देगा यह कायर और आलसी पुरुषही करते हैं। शूर साहसी मनुष्य अपने शरीरकी नव शक्तियोंद्वारा ईश्वरीय भंडारमें से उत्तम पुरुषार्थ, उत्तम कर्म और उत्तम प्रबन्ध से तत्वज्ञान प्राप्ति का अप्रमादी हो वैभव को प्राप्ति कर अनेकान प्रकार के सुखों को भोग कीर्त्तिमान होकर यश को हासिल करते हैं।

क्योंकि बुद्धिमानों ने कहा है कि जिस मनुष्य के साहस, धीरज, उपाय, बल बुद्धि और पराक्रम यह छः मित्र होते हैं। उसको इस भूमंडल में किसी प्रकार की कमी नहीं होती। इसलिये सज्जनों का वचन है कि सफलता का मूल मन्त्र पुरुषार्थ ही है। देखिये कबीर महाराज ने कहा है।

जिन ढूंढा तिन पाइयां गहरे पानीपैठ।
मैं बौरी ढूंढन गई रही किनारे बैठ॥

इसलिये विद्वानों के सत्सङ्ग से महा प्रतापी विक्रमी, तेजस्वी गुणी पुरुष विज्ञान और धन संचय कर सामर्थ्य को बढ़ावें क्योंकि उद्योग के बिना लक्ष्मी और राज्य की प्राप्ति नहीं होती। इसलिये जो बुद्धिमानों के आदेशानुसार कार्य्य करते हैं वे अविद्या और दरिद्र का नाश करते हैं प्यारे सज्जन पुरुषों और सुयोग्य महिलाओ- इसी पुरुषार्थ के द्वारा हम से प्रथम मनुष्यों और स्त्रियों ने परमेश्वर की अनंत सामर्थ्य का विचार कर

राज्य पद को प्राप्ति किया। इसी प्रकार हम सब भी प्राप्ति करें इसी लिये अथर्व वेद काण्ड १ सू० ३० मन्त्र २ में कहा है। पुरुषार्थ से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति होती है जिससे सब आशायें और कामनायें पूर्ण होती हैं। जैसाकि–

य आशा नामाशापालमाश्चत्वार स्थनं देवाः।
तेनो निर्ऋत्याः पाशेभ्यो मुञ्चतांह सो अंहसः॥

इस हेतु जो पुरुषार्थ का आश्रय कर अच्छे प्रकार प्रयत्न करते हैं वह अक्षय लक्ष्मी को प्राप्त कर आनन्द भोगते हैं और पुरुषार्थ के विषय में अथर्व वेद के काण्ड ५ सूत्र १६ के दश मन्त्रों में लिखा है कि मनुष्य प्रथम-ईश्वर और आत्मा के ज्ञान से अपना बल बढ़ा सत्, रज, तम तीनों गुणों के विज्ञान् से उन्नति का धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष से वृद्धि करें।

पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाशसे उपकार लेकर काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, अहङ्कार को वश में रखकर पांचो ज्ञान इन्द्रीय मन बुद्धि को जीत कर यम, विनय आसन प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान समाधि के अभ्यास से अशुद्धि का नाश और ज्ञान का प्रकाश कर विवेक प्राप्तिकर पीछे शरीर के नव द्वारों को शुद्ध रख और कष्ट सहने का स्वभाव बनाकर दान, शील, क्षमा, वीर्य, ध्यान, प्रत्न सेवायें, उपाय, दूत और ज्ञान इन दश प्रकार के बलों से ऐश्वर्यवान् होवे जो मनुष्य इन पूर्वोक्त दश मन्त्रों में कहे पुरुषार्थ को नहीं करता वह पुरुषार्थहीन अपनी और दूसरे की वृद्धि नहीं कर सकता अब। कहिये कितने ही पुरुष ऐसे हैं जो इन ऊपर लिखी हुई बातों को यथावत् कर पुरुषार्थी बनते हैं मेरी समझ में बहुधा जन यह भी नहीं जानते इतनी बातों के करने का नाम पुरुषार्थ है। यदि हम वेद की आज्ञानुसार ऐसा ही पुरुषार्थ करते रहते तो भारत की यह कुदशा कभी न होती देखिये अथर्व वेद कांड १ सू० १५ मन्त्र ३ में कहा है जिस प्रकार पर्वतों पर जल के सोते मिलने से वेगवाती उपकारणी नदियां बनती हैं जो ग्रीष्म ऋतु में भी नहीं सूखती इसी प्रकार सब मिल कर विज्ञान, और उत्साह से तड़ित अग्नि, वायु, सूर्य जल, पृथ्वी आदि पदार्थों से उपकार लेकर अक्षय धन को बढ़ावे और उसको उत्तम कर्मों में व्यय करें।

जैसा कि

ये नदीनां संस्रवन्त्युत्सासः सदमक्षिताः।
तेभिर्मे सर्वैः संस्रावैर्धनं सं स्रावयामसि॥

और ऋग्वेद अ० २ । अ० १ । व०१० । अ०१८ । सू० २५ मंत्र १ में लिखा है कि आलस्य को छोड़कर धर्म सम्बन्धी व्यवहार से धन को प्राप्त कर उसकी रक्षा कर स्वयं भोगकर दूसरों को दे ले और भोग करा कर उत्तम प्रकार से यत्न करते रहें जिससे सबको सुख प्राप्त होवे ऋग्वेद अ० ३ । अ०४ । व० ८ । अ० ३ । अ०५ । सू० ६१ मन्त्र६ में लिखा है जो लोग रात्रि के चौथे पहर में जागकर ईश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना करके उत्तम गुणों और ऐश्वर्य्यको मांगते हैं वे पुरुषार्थ से अवश्य इसको प्राप्त होते हैं ।

सच तो यह है कि भारतवासी नियमानुसार कार्य्य को नहीं करते हां अनियम के साथ धन उपार्जन और व्यय करने में लगे रहते हैं जिसके कारण नाना प्रकार की हानियां होती हैं फिर भला संचय करने और उत्तम कर्म्मों में व्यय करने की को न कहे । अथर्ववेद काण्ड ३२ सू० १४ मं० २ में कहा है कि मनुष्य धन के उपार्जन और व्यय करने में ऐसा प्रबंध करें जिससे पठन पाठन, गौ आदि पशुओं व्योपार और अन्न आदि में हानि न हो किन्तु सब पदार्थों के यथावत संग्रह से सर्वदा सुखकी वृद्धि रहे जैसा कि—

निर्वो गोष्ठादजामसि निरक्षान्निरुपानसात् ।
निर्वो मगुन्द्या दुहितरो गृहेभ्यश्चातयामहे ॥

प्रियवरो ! यह सब बातें भी मनुष्यता के विपरीत हैं इस लिये वेदों की आज्ञा के अनुसार प्रत्येक कार्योंका नियत समय पर करना अभीष्ट है बिना उपरोक्त कार्य्यों के किये मानुषी ज्ञान की उन्नति नहीं हो सकती स्वाध्याय और महात्माओं के वचन विलास के बिना मनुष्य कर्तव्य और अकर्तव्य का भी ज्ञान नहीं होता । इस लिये नियमानुसार जीवन भर उद्योगी और पराक्रमी होकर अन्नादि पदार्थों को भोग कर और उसके प्रतिफल में परोपकारी कार्य्यों को तन, मन, और धन से कर अपने जीवन को सुफल करता रहे । परन्तु शोक इस बात का है कि वर्तमान समय में धर्म को धता बता कर लाखों मनुष्य चालाकी, बेईमानी छल कपट, विश्वासघात, अन्याय और अत्याचार गरीब और निर्बल व्यक्तियों को कष्ट देकर विधवा की निःसहाय अवस्था छोटे छोटे बच्चों की अनाथ दशा को देखते हुए भी उसकी स्थावर अस्थावर (नकदी वा जिमीदारी) एवं अपने स्वार्थ के लिये दूसरे के सत्वों (हकों) को मार कर सञ्चित किया गया

धन उपरोक्त प्रकार से उपार्जित किया गया द्रव्य दरिद्रता से भी अधिक कष्टदायक एवं अपयश का कारण होता है। ऐसे धनसे गृहस्थाश्रम की उन आवश्यकताओं की पूर्ति होने पर व स्वाभिक संतोपदायक परिणाम नहीं हो सकता। ऐसे धन से जीवन की सार्थकता सिद्ध नहीं हो सकती। ऐसे धन से अक्षय सुखों की प्राप्ति नहीं हो सकती। ऐसे धन मनुष्यत्व की महत्वता विकसित नहीं हो सकती। क्योंकि यह धन धन नहीं किन्तु कलपते और नाना दुःख यन्त्रणाओं से आक्रांत हृदयों का ठण्डी आह से भरा हुआ जहरीला विष है यह धन धन नहीं बल्कि निर्बल आत्माओं का उष्णरक्त है। यह धन धन नहीं प्रत्युत संत्वाधिकारियों के हृदय द्रावक विलाप के स्वर से भरी हुई मनुष्यत्व का नाश करने वाली प्रज्वलित अग्नि है। यह धन धननहीं बल्कि रोती हुई माताओंके आंसू हैं यह धन धन नहीं प्रत्युत अनाथों की हड्डियां हैं। अतएव जिन कुलों और घरानों में ऐसे धन की वृद्धि होती है वहां से संतोष, क्षमा, दया, सुबुद्धि, आरोग्यता सुख और शांति का सदा के लिये लोप होता देखा गया है। क्योंकि-मनु अ० १२ श्लोक ५ में कहा है पर द्रव्य अन्याय से लेना मानसिक पाप है।

पर द्रव्येश्व भिध्यानं।

पराई वस्तु अथवा धन ले लेने में अनेक प्रकार से मिथ्या भाषण करना होता है इस लिये उनको वाणी के पाप भी होते हैं बिना दिये धन का गृहण कर लेना शरीर का अशुभ कर्म है।

अदत्तांना मुपादानं।

इसलिये ऐसे नर नारियों को मन वाणी और शरीर इन तीनों द्वारा कृत कर्म्म का दण्ड भोगना पड़ता है उनको तीनों प्रकार की यातनायें सहनी होती हैं। जब वाणी के पाप से उसकी बुद्धि नष्ट हो जाती है और मानसिक पाप के प्रति फल में मनुष्य नाना बुरे संकल्पों के समूह में घिरा रहता है- तब शरीर में उसके सारे कार्य्य अधर्म्म युक्त अथवा कल्याणकारी मार्ग से गिराने वाले होते हैं-एवं उन के फल में नरनारियों के दुःखों का राज्य बढ़ने लगता है। इसी को दूसरे प्रकार यों समझो

कि मनुष्य का जैसा धन होता है उसका अन्न और सारी खाद्य सामिग्रियां भी उसी भाव से युक्त रहती हैं-एवं खाद्य भोजन से रस -रस से रक्त-रक्त से मांस-मांस से मेदा-मेदा से हड्डी-हड्डी से मज्जा-मज्जा से शुक्र अर्थात् वीर्य बनता है साथही शरीर पोषक इन सप्त धातुओं में क्रमानुसार वह भाव भी जाता है—अतएव निकृष्ट भावों से बुद्धि पर वैसा ही प्रभाव पड़ता है और बुद्धि नाश से मनुष्य का नाश आवश्यम्भावि है। इसी हेतु नाना अधर्मों द्वारा सञ्चित होने से दुष्टों का धन दुख देने वाला और धर्म्माचरण भाव से सञ्चित होने के कारण सज्जनों का धन सुख जनक होता है।

ऋगु में कहा है कि जो अन्याय से इकट्ठे किये हुये किसी पदार्थ का भोग करते हैं उनका धन, सामर्थ्य विद्या और आयु का क्षय होता है। इसी लिये, कुरु पाण्डवों की संधि कराने के लिये हस्तिनापुर में गये हुए श्री कृष्ण जी ने-भोजन के लिये निमंत्रित किये जाने पर महाराजा दुर्योधन से कहा था कि "आप का दुष्ट भावों से पूरित अशुभ अन्न मेरे ग्रहण तथा भोजन करने योग्य नहीं है।"

अतः ऋग्वेद अ० २य०२ सूत्र २७ मन्त्र७ में लिखा है कि अन्याय से किसी के धन को ग्रहण करने की इच्छा न करो किन्तु धर्म्म युक्त व्यवहारों यथा शक्ति धन का संचय करते रहो मंत्र १ अ०२ सू० २२ मंत्र १६में कहा है कि जो कोई चोरोंकी भांति द्रोहसे पराये पदार्थोंको लेते हैं वे धर्म को नहीं जानते इस हेतु मनु महाराज ने कहा है कि धर्म से रहित धन को त्यागना उचित है क्योंकि पाप से कमाई करने वाले किसी कर्म के अधिकारी नहीं रहते अतः अपने जीवन के अर्थ अधर्म से धन को प्राप्त न करना चाहिये।

न्यायोपार्जितवित्तेन कर्तव्यं स्वात्मरक्षणम्।
अन्यायेन तुयो जीवेत्सर्वकर्म बहिष्कृतः॥

इसके उपरांत मनुमहाराज का यह भी कहना है कि कई प्रकारकी शुद्धियों की अपेक्षा धन की शुद्ध ही मुख्य है अर्थात् जो धन को अन्याय अधर्म से संचय नहीं करते वही वास्तव में पवित्र है शुद्ध है मृत्तिका जल आदि से शरीर को धो लेना यथार्थ शुद्ध नहीं जैसा कि अ० ५ श्लोक १०६ में लिखा है।

सर्वेषामेव शौचानामार्थ शौचं परंस्मृतम्।
योऽर्थेशुचिर्हिस शुचिर्नमृद्वारि शुचिःशुचिः॥

कि साथ ही अन्याय और अधर्म से धन सञ्चय करने वालों की बुद्धि भ्रष्ट रहने के कारण उनमें धर्म शिक्षा के सद्भाव नहीं ठहरते—यजुर्वेद अ० ४० मंत्र १५ में कहा है कि चमकीली धन आदि वस्तुओं की इच्छा रूपी वर्तन से सत्य का, सत्य रूप ब्रह्म का—सत्य रूप ज्ञान का, अथवा सत्यरूप धर्म का मुख ढका हुआ है—अतः यदि उसको प्राप्त कर अपनी उन्नति करना चाहते हो, अपनी महत्वता को प्राप्त करना चाहते हो, अपनी उच्चता और उत्कृष्टता को सिद्ध करना चाहते हो तो, अपनी उस इच्छा रूपी वर्तन को उठाओ अर्थात् चमकते हुये द्रव्यों की इच्छा से आंख मीच कर अर्थ लोलुप न बनो।

हिरण्य मयेन पात्रेण सत्यस्या पिहितं मुखम्।
तत्त्वं पूषनपा वृणु सत्य धर्माय दृष्टये॥

इस हेतु ऐसी कुरीतियों से धन जमा करने का स्वभाव बनाने से प्रथम इस प्रकार धन बटोरने और संचित करने वाले अपने सम्बन्धियों और मित्रों पार पड़ोसियों तथा नगर निवासियों पर दृष्टि डालो तो तुम्हें मालूम होगा कि वह शारीरिक और सामजिक दुःखोंसे निरंतर दुःखी रहे—और वास्तव में जिन कार्य्यों अथवा मंतव्यों की पूर्ति के लिये धन सञ्चय करना अवश्यक था उस धन से इन कार्य्यों और मंतव्यों की पूर्ति कोसों दूर रही।

प्यारे भाइयो! इसका कारण यह है कि संसार में धन ही एक ऐसा पदार्थ है जिससे लौकिक और पारलौकि इच्छाओं की पूर्ति हो सकती है। धन ही एक ऐसा स्रोत है जहां से सभी प्रकार के सुखों का विकाश होता है अतएव जब तुमने अन्याय पूर्वक दूसरों से ऐसी मूल्यवान वस्तु को छीन लिया तब निश्चय जानो उसकी सारी उन्नतियों पर कुठाराघात किया। उसकी सारी इच्छाओं पर पानी फेर दिया। उसके सारे संकल्पों और मनोरथों को चूर्ण कर दिया। भला फिर तुम्हारी और तुम्हारे परिवार की उन्नति कैसे हो सकती है? तुम्हारी इच्छायें कैसे पूर्ण हो सकती तुम्हारे संकल्प और तुम्हारे मनोरथ कैसे सफल हो सकते हैं। महात्मा भर्तृहरि कहते हैं।

"जो जन अपने स्वार्थ के लिये दूसरों की स्वार्थ रक्षा का ध्यान नहीं धरते अर्थात् उनके हानि लाभ की चिन्तना (पर्वाह) नहीं करते वे मनुष्य नहीं किन्तु मानवस्वरूप में राक्षस हैं।"

तेऽमी मानव राक्षसाः परहितं स्वार्थाय निघ्नन्ति ये।

अथर्ववेद का० ६ सू० ४ मं० १६ में कहा गया है कि धनादि पर पदार्थ हरण करने वाले नरनारी ईश्वरीय नियम से कुत्ता कुतिया कछुवे और कीट आदि नाना हिंसक स्वभाव वाली योनियों में जन्म लेते हैं।

ते कुष्ठिकाः सरमायै कूर्मेभ्यो अदधुः शफान्॥
अवध्य मस्य कीटेभ्यः श्ववर्तेभ्यो अधारयन्॥

इसी हेतु यजु० अ०६मं० ६ में कहा गया है, कि सम्पूर्ण सृष्टि में जो कुछ दृष्टिगत होता है उन सब में परमेश्वर व्यापक है जो नरनारी उसकी आज्ञाओं को भूल जाते हैं वे सब दुःखों को भोगते हैं इसलिये हे जीव! तू किसी का धन लेने की इच्छा न कर।

ईशा वास्यमिद ँ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेनत्यक्तेन भुञ्जीथा मागृधः कस्य स्विद्धनम्॥

इसलिये सुख भोगने के हेतु अथवा मनुष्य जीवन को निर्दोष एवं निष्पाप बनाये रखने के लिये धर्म और न्याय से धन सञ्चित करने का स्वभाव बनाओ।

ऋग्वेद में कहा गया है, हे मनुष्यों! यदि तुम धन की इच्छा करो तो धर्म युक्त पुरुषार्थ द्वारा सञ्चय करने की चेष्टा करो। यजु० अ० २० मं०६६ में कहा है कि जो धर्म के आचरण से धन को बढ़ाते हैं। वे ही प्रशंसनीय हैं। ऋ० मंत्र ५ अ० ५ सू० ६१ मं० १२ में बतलाया है कि जो पुरुषार्थ द्वारा न्याय और धर्म से चाँदी सोना आदि धन धान्यको इकट्ठा करते हैं वे ही सूर्य तुल्य प्रकाशित और यशस्वी होते हैं एवं वेही महात्माजन सच्चे परोपकारी हैं ऐसा ही यजुर्वेद अ०६मंत्र७२ में कहा है इस लिये सब मनुष्य मात्र को परमात्मा से प्रार्थना करनी चाहिये हे जगत्पिता आप हमको विद्या, सहनशीलता, प्रफुल्लता और दयादि के द्वारा उपार्जित धनसे युक्त कीजिये हे देव सुबुद्धिमान नेताओं की शुभ सम्मति और स-

हाथ से हम को धन की प्राप्ति दो तथा हमारे घर पवित्रधन के कोषों से भरे रहें। जैसा ऋ०प० मं०१० में लिखा है

स्वाशुधंस्ववसुं सुनीथंवतः समुद्रं धारुणं रयीणाम्।
चर्कृत्यं शास्यं भरिवारस्मभ्यं चित्रं वृषणां रयीदा॥

लेकिन यह बहुत सम्भव है कि इस रीति पर लक्षाधिपति न होसको परन्तु निश्चय रखो कि अधर्म और अन्याय से धन सञ्चित करनेवालों से कहीं अधिक सुख और शांति का अनुभव होगा। साथ ही यद्यपि लक्ष्मी चञ्चल कही जाती है। परन्तु जो धर्म्म से उपार्जन करते हुए अपने कर्तव्यों को पूरा करते एवं किसी भी समय में धैर्य्य से, विचलित नहीं होते, दान, अध्ययन, यज्ञ और पितृ, गुरु, अतिथियों की विधिवत् पूजा करते, जितेन्द्रिय, ब्रह्मनिष्ठ, सत्यवादी, श्रद्धावान, अक्रोधी, पर निन्दा से विलग, दान शील, तथा अन्योंकी उन्नति और समृद्धि की बढ़ती को देख ईर्षा द्वेष के वश को शत्रुता करने के ध्यान से विरत, श्रेष्टाचार सम्पन्न, मित, सञ्चायी, और अपने हक पर सन्तुष्ट तथा दूसरों को भी उनके स्वत्व के अनुसार समग्र वस्तुयें देनेवाले, कृपावन्त एवं सरल स्वभावी अपने कुटुम्बी अथच सेवकों को यथोचित् भोजन वस्त्र धनादि से सन्तोषित रखने वाले लज्जाशील, दश बजे पीछे शयन और सूर्य्योदय से प्रथम ब्राह्म मुहूर्त में उठ परब्रह्म के ध्यान में लगने वाले, मङ्गलमय सुन्दर२ वस्तुओं से द्विज श्रेष्ठों की पूजा में अनुरक्त, दीन हीन अनाथ आतुर, बूढ़े, निर्बल, अबला, की सहायता देने वाले, त्रासित, दुःखित, व्याकुल,भयसे आर्त व्याधित कृश, हृत सर्वस्व आदि आपद्ग्रस्त को अश्वासन देने वाले, अहिंसक, सत्यनिष्ठ, सर्व जीवोंपर यथेच्छ दया, एवं पर स्त्री सम्पर्क को पाप समझने वाले, सदा दान, दक्षता, सरलता, उत्साह, अहंकार हीनता, परम सुहृदता, क्षमा, सत्य, दान, तपस्या, शौच, करुणा, निठुरता रहित वचन मित्रों के विषय में अद्रोह, तथा, असूया, विषाद, स्पृहा रहित नीतिवान् साहसी परिश्रमी होने के साथ अपने देश एवं मनुष्य जाति की आवश्यकताओं को देश और काल के अनुसार पूरा करने में लगे रहते हैं उनके समीप लक्ष्मी अपना चञ्चलपन भी छोड़ देती है।

अर्थात् बहुत दिनों तक बनी रहती है इसके उपरांत यहभी जानलेना परम आवश्यक है जो स्त्री पुरुष अधर्म अर्थात् बेईमानी से धन को लाते हैं

उसको अनेकान् पुरुष खाते पीते हैं चैन उड़ाते हैं परन्तु लाने वाला ही पाप का भागी यानी भोगने वाला होता है अन्य सब खा पीकर पृथक् हो जाते हैं जैसा विदुर जी महाराज ने धृतराष्ट्र से कहा है।

एकःपापानि कुरुते फलं भुङ्क्ते महाजनः ।
भोक्तारो विप्रमुच्यन्ते कर्त्ता दोषेण लिप्यते ॥

इसलिये मोह में फंसकर सब पाप को अपने ऊपर लेना भी योग्य नहीं देखिये श्रीरामचन्द्र जी ने लक्ष्मण जी से कहा है कि संसार में जीवन थोड़े दिन का होता है इसलिये अधर्म से पृथ्वी का राज्य लेना भी भला नहीं क्या आपको मालूम नहीं भरत महाराज ने माता की आज्ञा और राम के राज्य त्यागने पर भी अधर्म समझ अयोध्या के राज्य को ग्रहण नहीं किया इसका नाम है धर्म पर चलना इसका नाम है परमेश्वर की उपासना भजन वेद में कहा है कि जिस कार्य्य करने से धर्म जाता हो उसका कदापि न करना चाहिये हो अपने परिश्रम साहस, उद्योग और पुरुषार्थ से जितना धर्मानुकूल आप प्राप्त कर सके वही आपके हमारे और अन्यों के लिये अमृत के समान है वही यथार्थ में धन है वही सुख शांति देने वाला है उसी से आपके सच्चे मनोरथ पूर्ण होंगे उसी से संसार में कीर्त्ति, और यश फैलेगा वही गृहस्थों में उत्तम गृहस्थ है—दर्शनों के योग्य है सत्सङ्ग के क़ाबिल है, संसार के पार लगाने का वसीला है। ऐसे उत्तम मनुष्यों को देव कहते आओ सब मिलकर परमात्म से प्रार्थना करें कि हमारे देश में धर्म से धन पैदा करने वाले गृहस्थों हों जिस से वानप्रस्थ और सन्यासी देश के उद्धार करते निकल सकें। इसके उपरांत धन प्राप्त करने वालों को इस बात का भी ध्यान नहीं कि अन्याय से उपार्जित धन किसी को सुख नहीं देता और न अधिक दिन ठहरता है महात्मा चाणक्य जी के लेखानुसार ग्यारहवें वर्ष के लगतेही मूल सहित नष्ट हो जाता है। जैसाकि

अन्यायोपार्जितं द्रव्यं दशवर्षाणि तिष्ठति ।
प्राप्ते एकादशे वर्षे समूलं च विनश्यति ॥

आपने यह भी सुना होगा जो धन जिस प्रकार आता है वह उसी प्रकार चला जाता है। जैसाकि

माले हरामबूद बजाये हरामरफ्त अर्थात्

रहे न कौड़ी पाप की ज्यो आवे त्यो जाय ।
जिम अन्धी पीसत मरे चून सुयाननी खाय ॥

प्रिय सज्जन पुरुषो इन सब बातोंको जानते हुए भी वर्तमान समयमें स्त्री पुरुष धीरे २ धन जोड़ने को पसन्द नहीं परन्तु नीतिकार कहते हैं कि राह का काटना गुदड़ी का सम्पूर्ण होना पर्वत का लांघना विद्या की प्राप्त धन का सञ्चय करना यह पांच धीरे २ होते है । दृढ़ बढ़ाने से नहीं जैसाकि—

शनैःपन्था शनैःकन्था शनैःपर्वत लङ्घनम् ।
शनैर्विद्या शनैर्वित्तं पञ्चैतानि शनैःशनैः ॥

और भी कहा है जल कि बूंद टपकने से कुछ काल में घड़ा भर जाता है इसी प्रकार विद्या, धर्म और धन संग्रह हो जाते हैं अथर्व वेद कांड १ सू० १ मन्त्र ४ में कहा है कि जिस प्रकार घी, दूध, जल की बूंद २ मिलकर धारें बंध जाती हैं और उपकारी होती हैं उसी प्रकार उद्योगकर थोड़ा २ सञ्चय कर बहुतसा विद्याधन और सुवर्ण आदि धन प्राप्त करके उत्तम कर्मों में व्यय करें ।

ये सर्पिषः संस्रवन्ति क्षीरस्य चोदकस्य च ।
तेभिर्मे सर्वैः संस्रावैर्धनं सं स्रावयामसि ॥

इसलिये नियमानुसार थोड़ा २ धन सञ्चयकर अच्छे कर्मों में व्यय करने का स्वाभाव बनाना अभीष्ट हैं परन्तु यहां तोइसकेविपरीत अपव्ययका नम्बर इतना बढ़ा है जो देश कौम की उन्नति का सत्यानाश करने वाला है देखिये अथर्ववेद कांड ७ सू० ७४ मंत्र ११ में प्रति दिन भोजन करने के विषय में आज्ञा दी है जिस प्रकार गौ थोड़े मूल्य की घास खाकर और शुद्ध जल पीकर घी, दूध देकर उपकार करती है उसी भांति मनुष्य थोड़े व्ययसे शुद्ध आहार विहार करके संसार का सदा उपकार करे ।

सूयवसाद् भगवती हि भूया अथो वयं भगवन्तः स्याम ।
अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती ॥

भला इससे अधिक क्या समझाया जाय परन्तु वर्तमान में वस्तुओं के अधिक मूल्य होने के उपरान्त हमारे आपकी इच्छायें इतनी बढ़ गई हैं जिसका कुछ पारावार नहीं जिसको देखो जिससे मिलो जिससे बात करो प्रत्येक नर नारी पहिले अगर वह रोटी, दाल खाते थे तो अब रोटी, दाल भात, दो चार तरकारी, पापड़ और शामको कुछ मिठाई कुछ नमकीन कुछ चटपटी वस्तुओं के बिना पेट ही नहीं भरता. कंगाल से कंगाल बनिया, निमक, खटाई की चटनी खाये नहीं रहता बड़े, साधारण मनुष्य तो मलाई, रबड़ी या दिल्ली आगरे के आचार, मुरब्बा, चटनी साथ में अवश्य ही

खाते हैं। इसी प्रकार प्रथम हम कुएँ के तो पानीसे अपनी प्यास को शांति करते थे तृप्त रहते थे परन्तु अब चाहिए बर्फ. जब हमारा हाजमा स्वयं (जितेन्द्रियता, व्यायाम, वायु सेवन, उचित आहार विहार) से हो जाता था परन्तु अब जठराग्नि प्रदीप करने के लिये लिमुनेड और सोठा की बोतलें चाहिए सिगर और सिग्रेट की जरूरत है पहिले दिमागी ताकत के लिये मामूली घी, दूध, फल के अतिरिक्त किसी वस्तु के उपयोग की आवश्यकता न थी परन्तु अब अनेकान पौष्टिक और सुगन्धित तैलों की जरूरत। जब हमारी बढ़िया पोशाक का बिल १० का था तो आज सौ का होना है और पचास से कम का तो किसी दशा में नहीं ऊपरसे कालर, टाई, नेकटाई, फुलबूट का खर्चा अलग रहा। शाम को बाजारों की सैर सपटा यारों दोस्तों के साथ होना इस समय जरूर हो गया है वहां चार छः पैसे की तो कौन कहे चार पांच आने तो अवश्य चाहिए क्योंकि पहले फूलों की माला फिर पान सिगरट इसके पीछे चाट. जिसमें लालमिरच और खटाई आलू आदि मटर मलाई इत्यादि फिर पान इसके उपरान्त जितने बड़े आदमी हुए उतनेही अधिक सामानकी जरूरत होती जाती है त्यौहारों, उत्सवों, विवाह इत्यादि में तो खर्च का कहना ही क्या स्त्रियों के वस्त्रों की लागत बहुत बढ़ गई है, आभूषण पहरने की इच्छा इतनी अधिक हो गई है कि अगर पति आदि को आमदनी नहीं तो ऋण लेकर उनके शौक को पूरा करते हैं इसके उपरान्त एक रोग और भी हो गया है अर्थात् एक की बनावट खराब तो दूसरे की अच्छी लगने पर फौरन आभूषण को तोड़ कर बनाये जाते हैं। इसके पीछे आपसमें तनक सी बातों पर मुकद्दमे होते हैं अदालतों के खर्च भोगते २ फूस निकल जाता है तिस पर शौकीनी चीजों की खरीदारी का बाजार गर्म एक बाईसीकल, मोटर खरीदी गई उसमें खूबसूरत नजर पड़ी मँगाई गई फिर उससे नफीस दृष्टिगोचर हुई कारखाने को फरमाइश गई एक बग्घी घर पर है। फिर रबड़ के पहियों की देखी खरीद की गई। इधर नौटंकी, थियेटर, रासलीला, रंडियों के नाच इत्यादि में टिकट देते २ चकनाचूर हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त कोई घर लालटेन से खाली नहीं शौकिया दो पैसे का तेल जलाकर अपनी शौकीनी की बहार इधर उधर फिर कर दिखलाते हैं, नाजुक इतने हो गये हैं कि बिना छाता लगाये पैदल चला नहीं जाता, इक्के की तेज सवारी चाहिये जो मिसल हवा के उड़ा हुआ चला जाय उजरत बजाय दो

आने के चार आने क्यों न लेलें, इतर फुलैल की फुरफुरी हरदम कान में रहती है बेला चमेली के तेल के खर्च के सिवा मुंह हाथ बिना साबुन के साफ नहीं होते हर घर में मर्द औरत बच्चे बूढ़े हर एक के पास एक २ नट्टी देख लीजे। विलायती कङ्घा कङ्घी, आईना हर एक के पास दिखलाई देता है जहां दो चार पैसे की चुड़ियां पहन कर स्त्रियों की शोभा होती थी वहां अब चार छः आने में भी उतना आनंद नहीं आता बल्कि रबड़ की उम्दा चुड़ियों की मांग बढ़ती जाती है, नाना प्रकार की बेलें हर स्त्री पर देख लीजे। इनके उपरान्त विलायती वारनिश किया हुआ सिलीपट एक नहीं दो नहीं तीन एक घर का एक बाहर जाने का एक बक्स में बन्द जो जरूरत पर काम देता है, सील बक्सों की इतनी भर मार है एक घर में जितना आदमी उतने बक्स बल्कि किसी २ बड़े आदमियों के तो दो दो तीन तीन; हजारों आदमी और स्त्रियों पर मनोवेग होंगे चाहो उसमें एक दुअन्नी ही क्यों न हो उम्दा चश्मा अच्छी हाथ में बांधने की बढ़िया घड़ी स्वदेशी अनदोलान इतना हुआ फिर भी फैसनेबिल कपड़ों की लालसा दूर नहीं हुई वही ६० लाख से ऊपर विलायती कपड़े की खपत होती है इसके उपरान्त २ करोड़ की भंग चरस गांजा, २ करोड़ की ताड़ी, १० करोड़ की शराब, १॥ अरब की तमाकू पाई जाती है कोकन, सिगलेट जो विलायत से आते हैं वह अलग। ३ लाख के मिट्टी के खिलौने जो विलायत से आते हैं भारती शौकीन जन खरीद कर अपने घरों को सजाते हैं जहां घर पर कोई खुशी हुई गेश की या बिजली की रोशनी बिना मजा ही नहीं आता।

मैं आप को कहां तक विलासता के खर्च बताऊं हजारों रुपये के मसनूई सोने के जेवर जार्मन आदि से आते हैं जिनको हमारे देश की स्त्रियां खरीद कर असली चाँदीके सिक्के देकर अपना शौकपूरा करती हैं।

अनेकान छोटे दर्जे के आदमी फस्ट, सैकिन में बैठ कर सफर कर व्यय का बोझ अपने सिर पर लेते हैं बहुधा भाईयों के घर पर बिला जरूरत कुरसी मेज, गिलाफ दस्तरी, पीकदान, उगालदान इत्यादि दिखलाने और अपने को बड़ा आदमी बनने के लिये खरीद करने चले जाते हैं जब कि सालाना आमदनी प्रत्येक भारतवासी की १५ रुपये है।

पस इसी प्रकार के अनेकान खर्च मनुष्यों को स्वतः अधर्म से

धन उपार्जन-सञ्चय और इकट्ठा करने के लिये विवश करती अथवा उद्यत कर देती है—प्रमाण के लिये देखलो जैसे २ यह कामनायें बढ़ीं तैसे २ ही बेईमानी, छल, विश्वघातका बाजार गरम होता जा रहा है, कोई भी, किसी भी, विषय में अपने स्वार्थ के लिये चालाकी करन से नहीं चूकते, अपना अपराध होने पर दण्ड देकर प्रायश्चित करने की अपेक्षा, किसी प्रकार हमारे ऊपर अपराध सिद्ध न हो हम दण्डनीय न हो सकें निश्चय ही इस के लिये हम अपनी सारी शक्ती खर्च कर देते हैं ?

सारांश यह है कि जैसे देखा देखी इन इच्छाओं की वृद्धि होती जा रही है वैसे ही मैंने तुम्हारे साथ किया, तुमने औरों के साथ हाथ मारा, इसकी बुरीप्रथाका प्रचार होता गया येनकेन प्रकारेण धन इकट्ठा करनेकी इच्छाओं को कम न करेंगे तब तक केवल धर्म और न्याय से धन उपार्जन करेंगे या करावेंगे ऐसी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहना दुष्कार है इस लिये प्रथम व्यर्थ की इच्छाओं को दमन करने अर्थात् फजूलखर्ची छोड़ने का यत्न करना चाहिए तब ही ऊपर वाली प्रतिज्ञा के अनुसार चल सकोगे फिर देखा देखी सब बुरी टेवों को छोड़ इस श्रेय पथ पर चलने के अग्रसर हो देश में बढ़ती हुई विलासता और नामवरी का झूठा भूत रुक जायगा जनता आडम्बर शून्य रह जायगी । इस लिये वृथा बातों को त्याग प्रति दिन के व्यय को कम कर यथार्थ व्ययी बन कर संसार में सुखमार्ग के प्रचार कीजिये । वर्तमान समयमें अनेकान जातियां यथार्थ खर्च कर अपने देश और कौम का सितारा बुलन्द कर रही है आप सुखी होकर औरोंको सुखमार्ग बता रही है । भारतवासी इतने मस्त हैं कि अगर उनके पास रुपया नहीं तो अपना जेवर आदि जायदात गिरवी रख कर फजूल खर्च कर उस समय अपने मन को प्रसन्न करते हैं फिर थोड़े ही दिनो में ऋण पर सूद और सूद पर सूद अधिक हो जाने के कारण उनकी जायदात का एक दो तीन हो जाता है फिर वह कौड़ी २ के लिये दर बदर मारे २ फिरते हैं विष खाकर, या कुएमें गिर कर अथवा घरसे निकल अपना पिंड छुड़ाते हैं अथवा न्यायालयों में झूठे २ हलफ उठाकर रुपया मारने की चिन्ता आदि न जाने क्या २ कर्तव्य रचते हैं ।

इस लिये यथार्थ व्ययी बन कर अपनी और देश की रक्षा कीजिये । क्योंकि धर्मानुसार धन कमाने और यथार्थ व्यय करने को द्रव्य यज्ञ कहते हैं इसी से इस लोक परलोक के आनन्द मिलते अर्थात् 'धर्मोरक्षति रक्षतः'

धर्म की रक्षा करने से धर्म हमारी रक्षा करता है। जिस प्रकार एक एक कौड़ी जमा करने से माल जमा हो जाता है इसी प्रकार एक २ कौड़ी व्यर्थ अपव्यय करने से कारूं का खजाना खाली हो जाता है।

इस हेतु सदा अपनी आमदनीको देखकर खर्च करने की टेव डालना मुनासिब है और सदा इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि आमदनी से खर्च कम हो क्योंकि कभी २ बीमारी, विवाह, इत्यादि बहन भाई बिरादरी के काम आते रहते हैं। इसके उपरांत सदा किसी व्योपार और कामयें वफ़ा नहीं रहती कभी२ आशमानी आफतें भी आती जाती रहती हैं जैसा ओले पड़ जाना, अकाल आदि अगर हम अपनी आमदनी में से थोड़ा २ बचा कर जमा न करेंगे तो फिर ऐसे समयों पर कहां से लाओगे उस समय हमारी क्या दशा होगी। यदि हमने ऋण लिया अथवा दूसरों के सामने हाथ पसारा तो हमारे मुखकी छवि विदा हो जायगी वह प्रतिष्ठा जो अब तक थी न रहेगी वरन हमारे बेतुके खर्च करने पर लोग हंसेगे। इस हेतु इन बातों को सोच समझ कर अपनी आमदनीके भाग कर यथा योग्य खर्च करने चाहिये। इसी भांति विवाह आदि में प्रथम एक चिट्ठा तैय्यार कर उस पर अपने भाइयों मित्रों से परमार्श लेकर व्यय करना अभीष्ट है, जिससे अपव्यय कर निर्धनता के दुःख न सहने पड़े। घर घर मांगने की आवश्यकता न हो, ऋण लेने की जरूरत न पड़े क्योंकि शास्त्र में लिखा है कि ऋण और अनुचित मांगना, व्यभिचार आदि बुरे कर्मों के करने से संसार में अपयश होता है कुल की प्रतिष्ठा और यश जाता रहता है। स्वयं चोरी आदि कुकर्मों में फंस न मालूम किन २ आफतों का मुक़ाबिला करते करते यमपुर को चले जाते हैं। रहे धनवान उनको भी फजूल व्यय को छोड़ देश सुधार में धन व्यय करना चाहिये वरन् इन मिथ्या कार्य्यों में धन व्यय करने का पाप उनको होगा इसके उपरांत अन्य जन उनकी देखा देखी इन्हीं कामों को करने लग जायेंगे जिनके पाप भी श्रेष्ठ पुरुषों को होंगे। क्योंकि बड़ों की देखा देखी छोटे भी किया करते हैं इस लिये बड़ों को बहुत सावधानी से नियमानुकूल कार्य्य करना चाहिये।

प्राचीन काल में अपनी आमदनी व्यय करने के लिये विभाजित कर लेते थे जिसके कारण वह शांति के साथ शारीरिक, सामाजिक और आत्मिक तीनों प्रकार की उन्नति करते थे इस विषय में अथर्ववेद कां० ३ सू० २४ मं०६ में लिखा है। सब कुटुम्बी लोग जो धन धान्य कमावें उसमें

से अधिकांश अनदेखे विपत्ति समय के लिये प्रधान पुरुष के पास रक्खे और शेष के सात भाग करके तीन भाग विद्यावृद्धि और राज्य प्रबन्ध आदि और चार भाग सामान्य निर्वाह खान पान वस्त्र आदि में व्यय करे। जैसा कि—

तिस्रो मात्रां गन्धर्वाणां चतस्रो गृहपत्न्याः।
तासां या स्फातिमत्तमा तया त्वाभिमृशामसि॥

महात्मा रामचन्द्र अपनी संचित द्रव्य के पांच भाग कर एक धर्म दूसरा यश प्रकाशनार्थ तीसरा भाग अपने खर्च में चौथा भाग भाई बन्धुओं के लेन देन, पांचवां भाग विपत्ति काल के सहायतार्थ कोष में जमा करते थे।

इसी प्रकार प्रत्येक भारतवासी को धर्मानुकूल धन प्राप्त कर उसके भाग कर यथा योग्य व्यय करना योग्य है। इसके उपरान्त बहुधा मनुष्य धनके कारण, अहंकारमें डूब अनुचितकर नाना प्रकारके कष्ट देते हैं ऋग्वेद में लिखा है कि सज्जनों का धन औरों के सुख के लिये और दुष्टों का धन औरों के दुःख के लिये होता इस लिये धन पाकर दुष्टता को त्याग कर कार्य्य करना भला है नीति में लिखा कि खल की विद्या विवाद के लिये धन घमण्ड बढ़ाने के लिये और शक्ति दूसरों को पीड़ा देने के लिये होती है और सज्जनों की ये सब उलटे होते हैं विद्या ज्ञान के लिये धन दान के शक्ति रक्षा के अर्थ जैसाकि।

विद्या विवादाय धनंमदाय शक्तिःपरेषां परिपीडनाय।
खलस्य साधोर्विपरीत मेतद्। ज्ञानाय दानाय चरक्षणाय।

इसलिये योग्य वही है जो धनको पाकर बौराने नहीं युवा होकर चंचल नहीं होते अधिकार पाकर घमण्ड में नहीं डूबते इस हेतु विवाह आदि उत्तम समयों पर भी घमण्ड में डूब कर कार्य्य करने की टेव को छोड़ विचार शक्ति कार्य्य करना उचित है-विवाह के समय नियत समय पर अच्छे प्रकार भोजन ऋतु के फल के उपरांत प्रत्येक को रात के समय आध सेर दूध का प्रबन्ध करना योग्य है। मिथ्या और फजूल खर्चों को दूर कर जितना होसके लड़का लड़की को दे जिससे उनको आनन्द मिले और उन को आनन्द में रहने से इधर भी आनन्द रहे। गोटा पट्ठा आदि में अधिक धन व्यय न करे जिससे कुछ दिन के पीछे रुपये में छः आने रह जाते हैं मुख्य प्रयोजन यह है जो पदार्थ लड़के लड़की को दिये जावें वे सब अच्छे

और काम के हों न कि पुरानी डेगची कलई की भड़क भला. ऐसे देने से क्या लाभ ।

अब कृपा कर दान महात्म पढ़कर विवाह आदि उत्सवों पर जो दान करते हैं विचार कीजिये जिस से देश का कल्याण हो ।

दान-महात्म्य ।

मान्यवरो ! संसार में दान भी एक अद्भुत पदार्थ है जिसके बड़े २ महात्म्य सुनने में आते हैं, प्रति दिन नाम मात्र के साधू भी यह कह कर चिताया करते हैं कि "जो देगा सो पावेगा ।"

तुलसी दिया अनूप है, दिया करो सब कोय ।
कर का धरा न पाइहो, जो कर दिया न होय ॥

पण्डित जन भी आपत्ति के समय यही उपदेश करते हैं कि दान कर सुख लीजिये । राजा कर्ण तथा हरिश्चन्द्र ने इसी के कारण इस संसार में यश प्राप्त कर अन्त को स्वर्ग पाया । ज्ञानी, अज्ञानी उत्तम, नीच, सेठ, साहूकार, स्त्री, पुरुष प्रत्येक इसके गुणों को जानते हैं । इस के अतिरिक्त आपके वेदादि सत्यशास्त्रों में दान करने के बड़े २ माहात्म्य वर्णन किये हैं देखिये यजुर्वेद अध्याय २८ मन्त्र २४ में लिखा है, जो मनुष्य सत्य विद्या आदि पदार्थों को दान करते हैं वे अतुल कीर्ति को पाकर सुखी होते हैं तथा अन्य को भी सुखी करते हैं—

होता यक्षत्समिधानं महद्यशः सुसमिद्धं वरेण्यमग्निमिन्द्रं वयोधसम् ।
गायत्रीं छन्द इन्द्रियं त्र्यविं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥

पराशर स्मृति में लिखा है कि दान से परम सुख तथा स्वर्ग मिलता है, अर्थात् दान करने से दोनों लोकों में प्रतिष्ठा होती है ।

दानेन प्राप्यते स्वर्गो दानेन सुखमश्नुते ।
इहामुत्र च दानेन पूज्यो भवति मानवः ॥

मनुस्मृति अ० ४ श्लोक २३४ में लिखा है कि मनुष्य जिस कामना से दान करता है उसकी वही कामना परलोक में पूर्ण होती हैं ।

महाभारत में भीष्म पितामह का वचन है कि तीनों लोक में दान से बढ़कर कल्याण करने वाला कोई धर्म नहीं । विदुर महाराज ने कहा है कि

दान करने से नाना प्रकार के सुख होते हैं। परशुराम जी ने दान देने से अतुल लाभ कहा है। महाराज युधिष्ठिर जी ने दान को परमशान्ति का कारण कहा है। शुक्रनीति तथा चाणक्यनीति में लिखा है कि विना दान के एक दिन भी व्यतीत न करना चाहिये।

यथार्थ में दान करने से मनुष्य को संसार में सुख तथा परलोक में आनन्द प्राप्त होता है। परन्तु मान्यवरो! परमेश्वरने जितनी वस्तुएँ संसार में रची हैं उनके काममें लाने की एक विद्या भी बनाई है जो मनुष्य उन वस्तुओं को इस विद्या के अनुकूल तथावत् काम में लाते हैं वे अपने कार्य को सिद्ध कर आनन्द को पाते हैं अन्यथा कार्य की सिद्धि नहीं होती तथा बहुधा क्लेश उठाने पड़ते हैं। क्या किसीने ऊसर में बीज डाल कर अन्नको काटा है क्या बालू की दीवार से किसी ने अपने घर की रक्षा की? या किसी ने नीम के पेड़को लगाकर आम खाये हैं? नहीं वरन् अपने धन यथा बीज एवं परिश्रम को व्यर्थ खोकर नाना प्रकार के क्लेश को उठाया होगा।

प्यारे सज्जनों! अब आप जो विना विचार किये नाना प्रकारके अन्न, वस्त्र, सोना, चांदी इत्यादि दान करते चले जाते हैं तथा उनसे अभय फल की प्राप्ति की आशा रखते हो पर मान्यवरो कभी आपने दान करने की रीतों को भी सुना या देखा है? नहीं, फिर क्योंकर यथार्थ फल आपको मिल सकता है? कदापि नहीं, वरन् विपरीत रीति के अनुसार कार्य करने से उपरोक्त किसानादि की भांति धनको व्यर्थ खोकर ईश्वरीय नियम के तोड़ने के कारण दंडभागी होना पड़ेगा। इस लिये सब से प्रथम दाताओं को यह विचार करना योग्य है कि किस पदार्थ को किस प्रकार देने का नाम दान है? देखिये, याज्ञवल्क्यस्मृति में लिखा है कि स्वधर्म के अनुसार न्यायपूर्वक संचित किये हुये द्रव्य को विधिवत् श्रद्धा करके जो याचकों के प्रति समर्पण करते हैं उसका नाम दान है, यथा—

> न्यायार्जितधनं चापि विधिवद्यत्प्रदीयते।
> अर्थिभ्यः श्रद्धया युक्तं दानमेतदुदाहृतम्॥

देखिये हितोपदेश में लिखा है 'दारिद्र्यै दीयते दानम्' अर्थात् दरिद्री को दान देना चाहिये। इसके उपरांत—

> वृथा वृष्टिः समुद्रेषु वृथा तृप्तस्य भोजनम्।
> वृथा दानं समर्थस्य वृथा दीपो दिवापि च॥

जैसे समुद्र पर वर्षा व्यर्थ है, दिन के समय दीपक निष्प्रयोजन है,

इसी भाँति पेट भरे को भोजन कराना तथा धनवान्‌को दान देना व्यर्थ है।

अब इस विषय में विचार करना योग्य है कि दरिद्री कौन है प्रत्यक्ष प्रगट होता है कि दरिद्री वह मनुष्य है जो अङ्गहीन अर्थात् लूला, लंगड़ा, गूंगा, बहरा, अन्धा, असाध्य, रोगी, विधवा वा अनाथ जिनका पालनकर्त्ता कोई सम्बन्धी न हो वा ऐसे सत्पुरुष जो समय के हेर फेर से कङ्गाल हो गये हों पर याचना करते सकुचाते हों तो उनको अवश्य ही खान पान वस्त्र इत्यादि का सहारा करना चाहिये। क्योंकि दीनों की रक्षा करना परम आवश्यक है न कि हट्टे कट्टे सण्ड मुसण्डे, नाम के ब्राह्मण वा वैरागी साधु सन्तों की (जो परिश्रम कर दो चार आठ आने रोज पैदा कर सकते हैं, अच्छे प्रकार माल) भेंट चढ़ाकर अपने को कृतार्थ मानते हैं कि जिसके कारण वर्त्तमान समय में 'एक चौथाई भारतवासी भीख मांग कर भोजन करते हैं।' क्योंकि जब मनुष्य देखते हैं कि बिना परिश्रम किये नाना प्रकार के पदार्थ घर बैठे चले आते हैं तथा समस्तजन सेवामें रहते हैं, तो फिर क्यों परिश्रम करें ? विद्या पढ़ने की कुछ आवश्यकता नहीं। आचरण कैसा ही हो, जहां तिलक छापे लगाये कंठी माला गले में डाली, पत्रा बगल में दबा वा जटा रखाली, चिमटा हाथ में लिया, पण्डित जी, महात्मा जी, और बाबा जी आदि बन मजे से चैन उड़ाते हैं। बहुधा उन में से धन जमा कर नाना प्रकार के व्यापार करते हैं।

इसके उपरांत नवयुवकों तथा स्त्रियों के कान फूंक कण्टी गले में बांध तन, मन, धन स्वामी के अर्पण करा अच्छे प्रकार आनन्द भोगते हैं। कोई कोई जंगलों में मढ़ी बना कर रहते हैं, बहुधा प्रकट रूप से स्त्रियों को साथ रखते हैं, बहुधा पर स्त्री तथा वेश्यागमन आदि कर चरस भङ्ग आदि के दम भरते हैं। कोई २ खड़ेश्वरी बन ऊँची भुजा कर लेते हैं, कोई झूले पर झूल अन्न त्यागन कर दूध उड़ाते तथा दूधाधारी कहलाते हैं, कोई सदा नंगे ही रहा करते हैं, कोई पंचाग्नि तापते हैं। कोई मौन धारण कर लेतेहैं, पर कोई खाक पर लेट आयुव्यतीत करतेहैं। इनके सिवाय पुरोहित आचार्य और गुरु बन मतलब निकाल लेते हैं क्या इन्हींका नाम पं०-ब्राह्मण महात्मा या साधु वैरागी आदि है देखिये महाभारतके उद्योग पर्व में विदुर जी ने कहा है कि—

आत्मज्ञानं समारम्भस्तितिक्षा धर्मनित्यता।
यमर्थान्नापकर्षन्ति सवै पंडित उच्यते॥

निषेवते प्रशतानि निन्दितानि न सेवते।
अनास्तिकः श्रद्दधान एतत्पण्डित लक्षणम्॥

जिसको आत्मज्ञान सम्यक् प्रारम्भ अर्थात् जो निष्कर्मा आलसी कभी न रहे, सुख दुख हानि लाभ मानापमानि निन्दा अस्तुति में हर्ष शोक कभी न करे, धर्म ही में नित्य निश्चित रहे, जिस के मन को उत्तम पदार्थ अर्थात् विषय सम्बन्धी वस्तु आकर्षण न कर सकें, वही पंडित है।

जो सदा धर्मयुक्तकर्मों का सेवन अधर्मयुक्त कर्मों का त्याग मिथ्याचार की निन्दा करने द्वारा, ईश्वर वेद आदि में अत्यन्त श्रद्धालु हो, यही पंडित का कर्तव्य कर्म है। हितोपदेश में भी लिखा है–

मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत्।
आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः॥

पराई स्त्री को माता, अन्य द्रव्य को मिट्टी के ढेले के समान, अपने आत्मा के समान सब जीवों की आत्मा को जाने, वही पंडित है।

श्रीकृष्ण जी महाराज ने ब्राह्मणों के लक्षण गी० अ० १८ श्लोक ४२ में लिखे हैं–

शमोदमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्मस्वभावजम्॥

अर्थात् अन्तःकरण तथा इन्द्रियों का निरोध, विचार करना, बाहर भीतर पवित्र, क्षमा, कोमलता, शास्त्रोक्त ज्ञान, अनुभव विश्वास आदि उत्तम कर्म जिसमें हों उसको ब्राह्मण कहते हैं। और भी कहा है–

ऋतं तपः सत्यं तपो दमस्तपः स्वाध्यायस्तपः॥

यह तैत्तिरीय उपनिषद् का वाक्य है कि शुद्ध भाव से सत्य मानना, सत्य बोलना, सत्य करना, मन को अधर्म में न जाने देना, बाह्यइंद्रियों को अधर्माचरण से रोकना अर्थात् शरीर, इंद्रिय मन से शुभ कर्मों को करना वेदादि सत्य विद्याओं का पढ़ना वेदानुसार आचरण करना आदि धर्मयुक्त कार्यों का नाम तप है। इन्हीं कर्मों के करने वालों को तपस्वी, साधु, वैरागी और महात्मा कहते हैं ऐसा ही श्रीमद्भागवत स्कंध ११ अ० ११ में लिखा है—

साधयति परकार्याणि स्वकर्माणि स साधुः॥

अर्थात् जो मनुष्य यथावत् परोपकार करना ही अपना कर्तव्य कर्म

समझता है उसीका नाम साधु है। परमेश्वरके पूर्णज्ञान होने से जो प्रकृति के गुण तथा कार्यों में अरुचि होती है उसे वैरागी कहते हैं और पूर्णज्ञानी का नाम महात्मा है।

धर्मात्मा, शास्त्रोक्त विधि की पूर्ण रीत को जानने हारा, विद्वान् कुलीन निर्व्यसनी, सुशील, वेद प्रिय, पूजनीय, सर्वोपकारी मनुष्य को पुरोहित कहते हैं, जो साङ्गोपाङ्ग वेदों के शब्द, अर्थ, सम्बन्ध तथा क्रियाका जानने हारा, छल कपट रहित, अति प्रेम से सबको विद्या का दाता, परोपकारी, तन मन धन से सबको सुख बढ़ाने में तत्पर निरपेक्ष होकर सत्योपदेष्टा, सबका हितैषी, धर्मात्मा, जितेन्द्रिय हो उसी को आचार्य अर्थात् गुरु कहते हैं कहने का मुख्य प्रयोजन यह है कि बिना वेदादि विद्या पढ़े तथा उसके अनुसार आचरण सुधारे, किसी को महात्मा, वैरागी, साधु, सन्त, पुरोहित और आचार्य न कहना चाहिये।

आज कल भारतवर्ष में बहुतायत से वैरागी, साधु, पुरोहित आदि दिखाई देते हैं परन्तु उनमें उपरोक्त गुणों का प्रायः अभाव ही है इसलिये कि जब वह जानते हैं कि बिना गुणोंके धारण किये तथा परिश्रमके उनकी पूजा नित्य प्रति होती है। पंडित जी महात्मा जी पुकारे जाते हैं। हलवा पूरी खाने को मिलती है, अतः कोई घरसे लड़कर मालमार कर, कोई स्त्री के ऊपर, कोई बाहर देखने को मूड़ मुड़ाय वैरागी साधु सन्त बन चैन उड़ाते हैं। हरे कृष्ण, जय सीताराम जी के भंडार खोल देते हैं। यदि इन से कहा जावे कि आपने विद्या नहीं पढ़ी, आचरण नहीं सुधरा तो बड़े क्रोध में आकर लाल आंखे चढ़ा कहते हैं कि विद्या पढ़ कर क्या होगा हम को कुछ दुनिया का काम थोड़ा हा हैं, जंगल में रहना मंगल करना, माई के लाल बने रहें हम को कमी क्या है ? देखलो बच्चों माइयां आती हैं दर्शन कर फल पाती हैं। इत्यादि २॥

प्रिय सभ्यजनों ! मनु ने लिखा है कि वेद विरुद्ध व्रत तथा नाना चिन्हों के धारण करने वाले तथा निषिद्ध जीविका से जीने वैडाल वृत्तिक एवं जिनकी वेद में श्रद्धा नहीं, ऐसे वेदविरोधी तर्क करने वालों का वाणी मात्र से भी आदर न करना चाहिये। फिर दान कैसा ? परन्तु शोक है ! आज तो आप विद्या और आचरणों के बिना देखे ही थैली का मुंह खोल 'माले मुफ्त दिले बेरहम' की भांति नाम मात्र के साधु, सन्त वैरागी सन्यासियों के घर भरते चले जाते हैं।

इसके अतिरिक्त गंगा, जमुना, हरिद्वार, काशी, प्रयाग, बद्रीनारायण द्वारिका जगन्नाथ सेतुबन्धुरामेश्वर आदि में पुण्य के नाम से देना। मृत कुटुम्बियों के नाम पर सण्डों को खिलाना एवं इन्हीं के लिये काशी प्रयागादि में क्षेत्र खोलना और सथरे साईं मुसलमान फ़कीर अघोरियों को भी देना प्रारम्भ कर दिया। आज जिनकी देखा देखी बहुधा जन उन्हीं के रूप को धारण करते चले जाते हैं तिस पर ये सब मांग मांग कर भट्ठी खाने में शराबें पीते, भंग चरस के दम लगाते, मांस खाते, व्यभिचारादि नाना प्रकार के कुकर्म करते जिनके सत्सङ्ग से भारत सन्तान का नाश होता जाता है नशीली चीजों की खपत बढ़ती जाती है। क्या इसका पाप दाताओं के शिर पर न होगा? मनु महाराज ने अ० ३ श्लोक ९७ में लिखा है—

नश्यन्ति हव्यकव्यानि नराणामविजानताम्।
भस्मीभूतेषु विप्रेषु मोहाद्दत्तानि दातृभिः॥

अर्थात् वेद विद्या रहित भस्म सदृश ब्राह्मणों को जो मोह से दाता लोग हव्य कव्य दान करते हैं वह सब निष्फल होता है। और अ० २ श्लोक १५८ में लिखा है—

यथा षण्डोऽफलः स्त्रीषु यथा गौर्गविचाफलम्।
यथा चाज्ञेऽफलं दानं तथा विप्रोऽनृचोऽफलः॥

अर्थात् जिस प्रकार से नपुंसक मनुष्य स्त्रियों में, गौ गौ में, एवं वेदाध्ययन के बिना ब्राह्मण निष्फल है। अतः मूर्ख ब्राह्मण को दान देना निरर्थक है इसी प्रकार अ० ३ श्लोक १४२ में लिखा है—

यथेरिणे बीजमुप्त्वा न वप्ता लभते फलम्।
तथाऽनृचेहविर्दत्वा न दाता लभते फलम्॥मनु०॥

जिस प्रकार ऊपर भूमि में बीज बोने से बोने वाला फल को नहीं पाता उसी भांति से जो ब्राह्मण वेद नहीं पढ़ता उसको ईश्वराराधन सम्बन्धी पदार्थ देने में दाताको फल नहीं मिलता। बृहन्नारदीय पुराण अ० ८ में लिखा है कि मूर्ख ब्राह्मण और अतिथि श्रेष्ठ नहीं है। मनु० अ० ३ श्लोक १६८ में लिखा है।

ब्राह्मणस्त्वनधीयानस्तृणाग्निरिवशाम्यति।
तस्मैहव्यंनदातव्यं नहिभस्मनिहूयते॥

अर्थात् जैसे तृण की अग्नि झटपट शान्त हो जाती है वैसे ही वेद रहित ब्राह्मण है, अतः उसको द्रव्य न देना चाहिए क्योंकि राख में हवन नहीं होता। मनु० अध्याय ४ के श्लोक १६ में लिखा है—

यथा प्लवेनौपलेन निमज्जत्युदकेतरन्।
तथा निमज्जतोऽधस्तादज्ञौ दातृप्रतीच्छकौ ॥१६४॥

जिस प्रकार पत्थर की नाव पर चढ़ कर मनुष्य जल में डूब जाता है, उसी प्रकार मूर्ख दाता तथा प्रतिगृहीता दोनों नरकमें डूबते हैं। इसी प्रकार गीता अध्याय १२ श्लोक २० में लिखा है—

अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम्॥

जो दान कुपात्रों को निषिद्ध देश कालमें दिया जाता है वह तमोगुणी अर्थात् राक्षसीदान कहलाता है। व्यासस्मृति अ० ४ श्लोक १५ में लिखा है कि शौच से नष्ट तथा व्रत से विहीन ब्राह्मणों को अन्न तक न दे यथा—

नष्टशौचे व्रतभ्रष्टे विप्रेवेदविवर्जिते।
दीयमानं रुदत्यन्नं भयाद्वै दुष्कृताकृतं॥

मनु अध्याय २ श्लोक १५७ में लिखा है जिस प्रकार काठका हाथी, चमड़े का हिरण, वैसा ही बिना पढ़ा ब्राह्मण केवल नाम को धारण करने वाला है—

यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः।
तथा विप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते नामधारकाः॥

मनुजी महाराज ने अध्याय ४ श्लोक ९० में कहा है कि जो ब्राह्मण तप या विद्याशून्य है, वह दान लेकर दाता सहित नरक को जाता है, जैसे पत्थर की नाव पर चढ़ने वाला मल्लाह सहित डूबता है।

ऐसा ही भविष्यपुराण तीसरे अध्याय पूर्वार्द्ध तथा शांतिपर्व अ० २६ में युधिष्ठिर महाराज ने कहा है कि जो धर्मभ्रष्ट लोगों को दान देते हैं वे १०० वर्ष तक परलोक में पुरीष भोजन करते हैं। भविष्यपुराण के अ० १३९ उत्तरार्द्ध में कहा है कि अकुलीन, मूर्ख, लोभी, पिशुन-ब्राह्मण को कभी दान न दे। विष्णुपुराण अंश ५ अध्याय ४८ में अर्जुन ने कहा है कि बिना वेद पढ़े ब्राह्मण को दान देने से नष्ट हो जाता है।

मार्कण्डेय महर्षि ने वनपर्व अध्याय १९७ में लिखा है कि धर्म से

हीन, पतित, चोर, पापी, कृतघ्नी, वेद के बेचने वाले और वेश्या से समागम करने वाले को कदापि दान न दे। विदुर जी ने धृतराष्ट्र से कहा है कि नमक, दूध, शहद, तेल, घी, तिल, फल, फूल, शाक, कपड़ा, गुड़, अन्न तथा सम्पूर्ण सुगन्धों के बेचने वाले ब्राह्मणोंके पैर न धोना चाहिये। वृद्ध गोतमसंहिता में श्रीकृष्णजी महाराज ने युधिष्ठिर से कहा है कि हे राजेन्द्र! अपात्रों को विपुल दान करना भी राखमें हवन करने के समान निष्फल है।

अपात्रेभ्यस्तु दत्तानि दानानिसुबहून्यपि।
वृथा भवन्ति राजेन्द्र! भस्मान्याज्याहुतिर्यथा॥

मनुस्मृति अध्याय ११ के श्लोक ७० में लिखा है कि जो ब्राह्मण निन्दित जनों से दान लेता, व्यौपार, शूद्र की चाकरी करता हो, झूंठ बोलता हो उसको दान लेने का अधिकार नहीं रहता।

कृमिकीटवयो हत्या मद्यानुगत भोजनम्।
फलैधः कुसुमस्तेयमधैर्यं च मलावहम्॥

बृहन्नारदीय पुराण अध्याय १२ में लिखा है कि वेद निन्दक, देवता अर्थात् विद्वान् का द्वेषी, कर्म-रहित, पर स्त्री रत, पर द्रव्यहारी, ईर्षक, कृतघ्नी, मायावी (जो नित्य याचना करता है) और हिंसक को दान देना निष्फल है। मनुस्मृति के अध्याय ४ श्लोक १९२ में मनु जी महाराज स्पष्ट आज्ञा देते हैं कि जिस ब्राह्मण की वृत्ति बिल्ली अथवा बगले के समान हो, जो वेद को नहीं जानता, उसको जल मात्र भी दान न दे।

नवार्यपि प्रयच्छेत्तु बैडालवृत्तिके द्विजे।
न बकवृत्तिकेविप्रे ना वेद विदिं धर्मवित्॥

लिङ्गपुराण में लिखा है जिसके शरीर पर गर्म करके शंख चक्र की छाप लगाई हो वह जीते जी मुर्दा तथा सर्व धर्मोंसे पतित के समान त्यागने योग्य है। जैसा कि—

शंखचक्रे तापयित्वा यस्य देहः प्रदह्यते।
संजीवनः कुणपस्त्याज्यः सर्वधर्मबहिष्कृतः॥

फिर ऐसे चिह्न के धारण करने वाले ब्राह्मणों को लिङ्गपुराण के कर्त्ता ने भी दान देना उचित नहीं बताया है क्योंकि दान श्रेष्ठों को दिया जाता है न कि पतितों को। पद्मपुराण में लिखा है कि जो मनुष्य तम्बाकू

पीने वाले ब्राह्मण को दान देता है वह नरक को जाता है, लेने वाला ब्राह्मण गांव के सुअर का जन्म लेता है, यथा—

घूम्रपानरतं विप्रंदानकृत्वेति यो नरः ।
दातारो नरकं यान्ति ब्राह्मणों ग्रामशूकरः ॥

महाभारत शांतिपर्व में व्यास जी ने कहा है कि वेद ज्ञान से हीन ब्राह्मण को दान न देना चाहिये, जिस प्रकार कपाल में पानी तथा कुत्ते के चमड़े में दूध बिगड़ जाता है उसी भांति कुपात्र को दान देने से पापी बनना पड़ता हैं। बृहस्पतिस्मृति श्लोक ५७, ५८, ५६, ६० में लिखा है कि कच्चे पात्र में रखा हुआ दूध, दही, घी, शहद, पात्र दुर्बलता से नष्ट हो जाता है उसी प्रकार गौ, सुवर्ण, वस्त्र, पृथिवी, तिल को जो मूर्ख लेता है वह काष्ठ के समान नष्ट हो जाता है, अतः कुपात्रों को कभी दान न देना चाहिये।

प्रिय सज्जन पुरुषो! अब उपरोक्त नाममात्र के पण्डितों का पेट सोने चांदी, अन्न, घी, हाथी, घोड़े आदिसे भी न भरा तब उन्होंने स्त्री दानका भी आर्डर पास कर दिया, छिः! छि! हा लज्जा को भी तिलाञ्जलि दे दी! वेदादि सत्य ग्रन्थों में तो स्त्री दान का विधान कहीं नहीं। अथो-परान्त बुद्धि से भी विचार करना योग्य है कि स्त्री दान करने से क्या हानि और लाभ है?

प्यारे भाइयो! गङ्गादि स्थानों पर बहुधा मनुष्य स्त्री दान करते हैं फिर पुरोहितजी मुह मांगी दक्षिणा यजमान से लेकर स्त्री फेर देते हैं। अब विचार कीजिये कि यदि यजमान मुंह मांगे दाम न दे तो स्त्री गई, यदि दे तो मनमाना धन गया। बिना पूरे मूल्य के भेंट किये स्त्री का लेना मानो पाप को मोल लेना है, क्योंकि अब तो पुरोहित जी का पूरा अधिकार है अपने अपने सौदे को जितने मूल्य पर चाहें बेचें। इसके अतिरिक्त यदि पति स्त्री से नाराज ही हो तो वह पुरोहितजी को मुंह मांगा मूल्य न देगा तो पुरोहितजी से इस सूरत में जो अधिक दाम लगावेगा वह उस माल को ले लेगा। यदि स्त्री नवयौवना हुई तो पुरोहित जी के कुटुम्बी जन ही उसको क्यों बाहर जाने देंगे, तो बताओ इस दशा में उसका पतिव्रतधर्म गया या नहीं इसके अतिरिक्त पुरोहित जी अपने यजमान की स्त्रीको पुत्री के समान जानते हैं, तो क्या वह पुत्री का दान लेते हैं? वा उस कहावत यथार्थ रीति से पूरा कर दिखाते हैं कि 'मन में राम बगल में ईंटें'

अर्थात् हाथीके दांत दिखलानेके और और खाने अन्य होते हैं, उसी प्रकार का हाल इन तीर्थ पण्डों पुरोहितादि का जानना चाहिये । धिक्कार है ऐसे यजमान व पुरोहित पण्डों पर जो ऐसे अनुचित कर्म को खुले मैदान करते हुये भी धर्मात्मा कहलाते हैं पर राजदण्ड के भागी न हों।

हे प्यारे दाताओ ! इन सत्यानाश के मारने वाले दानों को त्यागो, यह विषयी तथा लालची पुरुषों ने चलाये हैं कि जिस से यजमान से मुँह मांगा द्रव्य मिल सके नहीं तो विषयरूपी आनन्द तो कहीं गया ही नहीं।

अथोपरान्त सुनिये कि सूर्य्यग्रहण, चन्द्रग्रहण में कुरुक्षेत्रादि स्थानों पर भी ऐसी ही लीला रच कर अपना पेट भरते तथा कहते हैं कि ऐसा समय दान का अति दुर्लभ है, इस समय दान देने से विशेष फल होता है इस का कारण यह बतलाते हैं कि जब विष्णुजी देवताओं को अमृत बांट रहे थे उस समय राहु नाम राक्षस देवता का रूप धर उनके साथ बैठगया और अमृत पी लिया तब सूर्य चन्द्रमा ने चुगली खादी तब विष्णुने क्रोध कर चक्र से राहु का शिर काट डाला, पर वह अमृत पी चुका था अतः वह मरा नहीं, इसी से सूर्य चन्द्रमा को जहां तहां पकड़ लेता है फिर जब भारतवासी उस समय भङ्गी आदि को दान देते हैं तो वह छुटकारा पाते हैं। इस हेतु सूर्य चन्द्रमा उन लोगों को जो दान देते हैं आशिर्वाद देते हैं कि तुम्हारा सदा भला हो जो तुमने हमको छुड़ाया । हा अविद्या तूने भारतवासियों के जीमें ऐसा विश्वास कराया है, उनको कुछ भी विचार नहीं, जो जैसा चाहते हैं गपोड़े सुना कर हाथ मारते हैं देखिये गृहलाघव में लिखा है—"छादयत्यर्कमिन्दुर्विधुंभूमिभा:" अर्थात् जिस समय पृथिवी घूमती हुई सूर्य चन्द्रमा के बीच आ जाती है तब पृथ्वी की छाया चन्द्रमा पर पड़ती है, इसी चंद्रगृहण कहते हैं। इसी भांति जब सूर्य तथा पृथ्वी के बीच चंद्रमा आ जाता हैं तब चंद्रमा की छाया पृथ्वी पर पड़ती है अर्थात् सूर्य कटता सा दिखाई देता है, इसी को सूर्यगृहण कहते हैं ऐसे ही अथर्व का० १४ अनु० १ मन्त्र १ में लिखा है—

"दिवि सोमो अधिश्रितः"

अर्थात् सूर्य के प्रकाश चन्द्रमा प्रकाशित होता है, अतः भूमि के बीच आ जाने से चंद्रमामें अन्धकार होने लगता है अर्थात् चंद्रमा कटा सा दिखलाई देता है ।

इसी प्रकार अङ्गरेजों ने भी माना है, कालिजों तथा स्कूलों में पढ़ने

वाले विद्यार्थियों पर यह बात अच्छे प्रकार से प्रकट है, फिर पुराणों के इस लेख को मान भक्षी तथा नाम मात्र के ब्राह्मणों या कुपात्रों को सूर्य या चन्द्रमा के छुटाने के निमित्त दान देना महा मिथ्या है।

अब आपको मालूम हो गया कि दान सत्पात्र को ही देना चाहिये क्योंकि सत् के अर्थ अच्छे और पात्र के अर्थ है जिसको वह दिया जाय अर्थात् श्रेष्ठ पुरुषों को जो दान दिया जाता है वही श्रेष्ठ दान कहाता है।

मनुस्मृति अ० ३ श्लोक ९८ में लिखा है कि जो मनुष्य विद्या और तप अर्थात् शुद्ध आचरणों से युक्त हो उसका मुख अग्नि के समान होता है अर्थात् वह मनुष्य अग्नि के समान तेजमान प्रकाशवान, शुद्ध होता है उसीको सत्पात्र कहते हैं उसको दिया गया दान दाता को इस लोक लोक में कठिन रोग अग्नि पीड़ा आदि भय तथा पाप से बचाता है। जैसाकि—

विद्या तपः समृद्धेषु हुतं विप्रमुखाग्निषु।
निस्तारयति दुर्गाच्च महतश्चैव किल्बिषात्॥

याज्ञवल्क्य स्मृति अ० १ श्लो० २०० में लिखा है उत्तम केवल विद्या और तप से सुपात्र नहीं होता जो विद्वान् है और वेदानुसार कर्म करता है वही सुपात्र अर्थात् दान के देने के लायक हैं।

न विद्यया केवलया तपसा वापि पात्रता।
यत्र वृत्तमिमेचोभे तद्धि पात्रं प्रकीर्त्तितम्॥

ऐसाही व्यासस्मृति अध्याय ४ श्लोक ५५ में लिखा है।

इसलिये मनुस्मृति अध्याय १ श्लोक २०१ में लिखा है गाय, पृथ्वी सुवर्णादि जो कुछ दान करना हो विधिपूर्वक सुपात्र को दे, यदि अपना भला चाहो तो जान बूझकर कुपात्र को कभी दान न दो।

गोभूमिहिरण्यादि पात्रे दातव्यमर्चितम्।
नापात्रे विदुषा किंचिदात्मनः श्रेयमिच्छता।

वामनपुराण अ० ९२ में लिखा है जो सुपात्र को दान देता है वह सुखी होता है। याज्ञवल्क्यस्मृति अ० १ श्लोक ६ में लिखा है कि पवित्र देश और पवित्र काल में जो वस्तु श्रद्धापूर्वक सुपात्र को दी जाती है वह महा उत्तम है—

देशकाल उपायेन द्रव्यं श्रद्धासमन्वितम्।
पात्रे प्रदीयते यत्तत्सकलं धर्म लक्षणम्॥

शिवपुराण अ० ३१ ज्ञानसंहिता में लिखा है कि जो देशकाल और पात्रको देखकर दान करता है, उसको सब कुछ प्राप्त होता है।

संवर्त्तस्मृति श्लोक ६५ में लिखा है कि जो मनुष्य उत्तम गुणवाले ब्राह्मण को दान देता है, उसको लक्ष्मी प्राप्त होती है।

व्यासस्मृति अ० श्लोक ३२ में लिखा है कि पात्र अर्थात् वेदपाठी तथा तपस्वी को दे। मनु० अध्याय ४ श्लोक २२७ में लिखा है कि जब सत्पात्र मिल जावे तो उत्साह के साथ यथाशक्ति दान दे यज्ञादि कर्म करे।

मारकण्डेयपुराण अध्याय ३५ में लिखा है कि योग्य ब्राह्मणों को ही दान देना चाहिये—

दानानि चैवदेयानि ब्राह्मणेभ्यो मनीषिभिः

शिवपुराण ज्ञानसंहिता अ० ७३ श्लोक ४४ में लिखा है कि भूखे अन्न और जल सत्पात्र को मिष्टान्न और दक्षिणा देनी चाहिये। बृहन्नारदीयपुराण अध्याय १२ श्लोक ११ में लिखा कि जो श्रेष्ठकर्म परायण और वेदपाठी यज्ञ करने वाले अथवा आजीवका हीन हो तथा दरिद्र कुटुम्बी होवे उसको दान देना उचित है।

पाराशरस्मृति अध्याय १ श्लोक ४७ में लिखा है कि अच्छे खेत में बोया हुआ बीज कभी नष्ट नहीं होता, इसी भांति सुपात्र को दिया धन उत्तम होता है।

सुक्षेत्रे वापयेद्बीजं सुपात्रेनिक्षिपेद्धनम्।
सुक्षेत्रे च सुपात्रे च ह्युप्तं दत्तं न नश्यति॥

दक्षस्मृति अध्याय ३ श्लोक ४ में तथा भविष्यपुराण उत्तरार्द्ध अ० १३२ में लिखा है कि सुपात्र को दान देना योग्य है, इसी का फल दाता को होता है, ऐसा ही कपिल तथा युधिष्ठिर महाराज की सम्मति है, ऐसा ही वशिष्ठ जी ने राजा जनक से कहा है।

शांतिपर्व में महात्मा कपिल ने कहा है कि सत्पात्र वही है जिन्हों ने कभी पाप कर्मों का सहारा नहीं लिया तथा जो अग्निहोत्रादि कर्म करते हैं जिनका जन्म कर्म तथा विद्या तीनों पवित्र हैं। देखिये, अत्रिस्मृति श्लोक ३३९-३४० में लिखा है कि जो ब्राह्मण वेद को जानता हो तथा सब शास्त्रों में चतुर हो, माता पिता की सेवा करता हो अपनी स्त्री के साथ ऋतुगामी हो, शीलवान् हो, उत्तम आचरणवाला हो प्रति दिन प्रातःस्नान

कर नित्यकर्म करता हो और अपने कल्याण की इच्छा रखता हो उसको दान दे। संवर्त्तस्मृति अ० श्लोक ४६-५० में लिखा है कि वेदपाठी कुलीन सुशील बुद्धिमान् तथा शुद्ध ब्राह्मण को दानदे। शंखस्मृति अध्याय २ श्लोक १३ में लिखाकि जो ब्राह्मण नियम पूर्वक शुद्ध आचरण से गायत्री का जप करे उसको दानदे। ऐसाही वन पर्व अध्याय १९९ में लिखा है। हारीतस्मृति अध्याय १ श्लोक २२, २३ में लिखा है कि वेद शास्त्र के ज्ञाता ब्राह्मणों ही को दान देना चाहिये। ऐसाही बृहस्पतिस्मृति श्लो० ५७ में लिखा है कि कुलीन, दरिद्री, वेदपाठी, सन्तोषी, नम्र, राज का हितैषी, वेदाभ्यासी, तपस्वी, जितेन्द्रिय, देवताओं में उत्तम ऐसे सज्जनों को जो दान दिया जाता है वह अक्षय फल को प्राप्त होता है। मनुजी महाराज ने ११ अ० के ६ श्लोक में लिखा है कि वेद के जानने वाले तथा वन में रहने वाले सुयोग्य ब्राह्मण को दान देने से स्वर्ग होता है।

अथर्ववेद कांड २० सू०२ मं०४ में लिखा है कि विद्वान् लोग सुपात्र को योग्य दान देकर सुख को प्राप्ति होवें। जैसा कि—

द्रवो द्रविणोदाः पोत्रात् सुष्टुभः स्वकाद्दतुना सोमंपिबतु।

और कांड १८ सू० २ मं० ४२ में उपदेश है कि वृद्ध पितर लोग उत्तम क्रियाओं और विद्याओं द्वारा धन को संग्रह करके सुपात्र विद्या आदि देने वाले पुरुषों को धन का दान देवे। यजुर्वेद अ० १९ मं० २९ में लिखा है कि गृहस्थी जनों को योग्य है कि ब्रह्मचारी आदि को सत्कार पूर्वक विद्यादान करे व करावे और संन्यासी आदि की सेवा कर विशेष विज्ञान ग्रहण करे। अथर्ववेद कांड २० सू० २७ मं २ में कि बुद्धिमान राजा आदि धनी साहूकार सेठ लोग ऐसा प्रबन्ध करें कि ब्रह्मचारी लोग निश्चिन्तता होकर उत्तम शिक्षकों से उत्तम विद्या पढ़ें।

यजुर्वेद अ० २४ मं० २८ में कहा है जो उपदेश करने वाले और विद्या देने वाले विद्वान् हैं उनका घी आदि पदार्थ वा गौ आदि के दान से यथा योग्य सत्कार करना चाहिये।

धूम्रावभ्रनीकाशाः पितृणांसोमवतां बभ्रवो धूम्रनीकाशाः पितृणां बर्हिषदां कृष्णाः बभ्रनीकाशाः पितृणामग्निष्वात्तानां कृष्णाः पृषन्तस्त्रैयम्बकाः॥

य० अ० २० मं० ७९ में लिखा है-गृहस्थ पुरुषों को उन्हीं पुरुषों का भोजनादि से सत्कार करना चाहिए जो लोग विद्या प्रचार तथा उपदेश

कर अच्छे कर्मों के अनुष्ठान से जगत् के बल पराक्रम, यश, धन और विज्ञान को बढ़ावें ।

अहाव्याग्ने हविरास्ये तेऽ स्रुचीव घृतं चम्वीव सोमः ।
वाजसनिꣳ रयिमस्मे सुवीरम्प्रशस्तं धेहि यशसं बृहन्तम् ॥

और अ० २५ मंत्र ४७ में कहा है कि सबके उपकारी वेदादि शास्त्र के ज्ञाता, अध्यापक, उपदेशक, विद्वानों का सदैव सत्कार करें और वे विद्वान् उस उत्तम उपदेशादि अच्छे गुणों और धनादि पदार्थों को सदा देते रहें, जिसमें परस्पर प्रीति और उपकार से बड़े २ सुखों का लाभ हो।

अग्ने त्वन्नो अन्तम उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः ।
वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षिद्युमत्तमꣳ रयिन्दाः ॥

और देखिये गीता में श्रीकृष्णजी ने कहा है—

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्विकं स्मृतम् ॥

अर्थात् देश, काल, पात्र को देख कर जो दान दिया जाता है उसको सात्विक दान कहते हैं ।

प्यारे भाइयो ! देश से यह प्रयोजन है कि जिस मुल्क में जो वस्तु खाई जाती या काम में लाई जाती हो अथवा उस देश में जिस बात की आवश्यकता हो, काल अर्थात् ऋतु यानी सर्दी, गर्मी, वर्षा इन सबको देख भाल कर जो जिस समय में उत्तम हो उसको दान करे, परन्तु पात्रको देख कर (जैसा कि पूर्व वर्णन हो चुका है) दान देना चाहिए । ऐसे ही दान के करने से दाता यथावत फल को पाता है सो आप बिना देखभाल किये खस्ता, कचौड़ी तथा मोहनभोग के उपरान्त गौ दान, गजदान, हेम दान, पृथ्वी दान, तुला दान इत्यादि देते चले जाते हैं जब ही तो मनुष्य मात्र ने वेदों का पढ़ना पढ़ाना छोड़ दिया जिसके कारण नाना प्रकार के रोग वा लू विपत्तियां भारत में पड़ी हुई है कि जिसका कुछ पारा वार नहीं । इस लिये सब से प्रथम आप को विद्या का दान और विद्या में वेद विद्या का दान करना चाहिये बिना वेदविद्या के संसारिक और परमार्थिक सुखों की प्राप्ति नहीं हो सकती इसी लिये सब दानों से वेदविद्या के दानों को उत्तम कहा है । देखिये मनुस्मृति अ० ४ श्लोक २३३ में लिखा है कि जल, भोजन, गौ, पृथ्वी, वस्त्र, तिल, सोना, घी इनके दान से उत्तम दान ब्रह्म विद्या का है जैसा कि—

सर्वेषामेवदानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते ।
वार्यन्न गोमही वासस्तिलकांचन सर्पिषाम् ॥

मनु महाराज का यह भी कहना है कि जल के दान से तृप्ति और भोजन दान से अक्षय सुख तिल दान से अच्छी सन्तान दीप दानसे उत्तम दृष्टि पृथ्वी दान से पृथ्वी और सुवर्ण दान से दीर्घायु घर दान से अच्छा घर चांदी दान से रूप अन्य दान से निरन्तर सुख मिलता है अभयदानसे राज्य और वेद विद्या के दान से ब्रह्मानन्द अर्थात् मोक्ष को प्राप्त करता होता है जैसा अ० ४ के श्लोक २२६ से २३२ तक लिखा है। उसके उपरांत दान करने वाले इस बात को भी सदा स्मरण बनाये रहें कि दान करके कभी घमण्ड न करे क्योंकि मनु जी के लेखानुसार अभिमान करने से दान का फल जाता रहता है इस हेतु मनुजी कहते हैं कि सबसे उत्तम दान वह है जो लेने वाले के समीप जाकर उसको आदर पूर्वक दिया जावे मध्यम वह जो उसको बुलाकर दिया निकृष्ट वह है जो मांगने पर दिया जाये और जो दान सेवा टहल कराकर दिया जाता है वह निष्फल है।

इस हेतु जो मनुष्य आदर सहित दान लेता और आदर सहित देता है दोनों स्वर्ग को प्राप्त होते हैं ऐसा न करने से दोनों नर्क में पड़ते हैं जैसा मनुस्मृति अ० श्लोक में कहा है इस कारण श्रीमानों को इन उपरोक्त बातों का सदा ध्यान रखकर दान करना चाहिये क्योंकि दान लेने वाले के गुण और दान देने वाले की श्रद्धा के अनुसार न्यूनाधिक फल परलोक में होता है। जैसाकि—

पात्रस्यहि विशेषण श्रद्दधानतथैव च।
अल्पं वाबहुवा प्रेत्य दानस्य प्राप्यते फलम्॥

इसके उपरान्त विद्या दान के सिवाय अन्य दानों का फल मनुष्य योनि के अतिरिक्त अन्य योनियों में मिल जाता है परन्तु विद्या दान का फल मनुष्य योनी में ही मिलता है इस लिये सम्पूर्ण भारत के नरनारियों को अथर्व वेद काण्ड २० सू० २७ मं० २ के अनुसार परमात्मा से प्रार्थना करनी चाहिये।

शिक्षेयमस्मै दित्सेयं शचीपते मनीषिणे यदहं गोपतिः स्याम्॥

हे शक्ति पति परमात्मन मुझको शक्ति प्रदान करो कि मैं विद्यावान या धनवान होऊं जिससे मैं बुद्धिमान् संयमी विद्यार्थी के लिये शिक्षादान और धनदान करूं।

सुयोग्य महिलाओं और प्यारे भाइयों प्राचीनकाल में ऋषि मुनी जो वानप्रस्थ आश्रम में अपने अपने स्थानों पर ब्रह्मचारियों को विद्या पढ़ाया करते थे उन्हीं के लिये लाखों के दान यहां से जाया करते थे न कि

वर्तमान की भांति काशी, प्रयाग गयादि तीर्थों में स्वार्थी, कुमार्गी दुष्ट, आलसी, लम्पट आदि देश के सत्यानाश करनेवालोंको दिये जाते हैं जिन को वेदादि सत्य शास्त्रों में आज्ञा नहीं वेद तो यह कहते हैं। विद्या का दान करो, सुपात्र बनाओ, उपदेशकों को धन दो उनकी आवश्यकताओं पूराकरो उत्तम आचरण वाले महात्माओं की सेवा कर देशमें नाना प्रकार की विद्याओं की उन्नति करो परन्तु यह उन्नति जब हो सकती है जबकि आप बिना फीस के विद्या दान करें, विद्यार्थियों को पुस्तकें दें भोजनों आदि का सहारा दें आपतो कुछ सुनते ही नहीं–साधारण जनताकी सन्तान फीस पुस्तकें आदि खर्च न देने के कारण बिना पढ़ी रहजाती है क्या आपने सुना नहीं अखबारों में पढ़ा नहीं-नहीं-नहीं-नहीं-सुना भी पढ़ा भी फिरभी ध्यान नहीं-उपाय करने का विचार नहीं–वह विद्यार्थी चिल्लाते हैं। मारे २ फिरते २–घर घर बैठकर–धनवानों को, भारत के धनढ्यों को, दान के दाताओं को पेटकी दैदर्य समर्था कर आह मार कर रहजाते हैं इधर आप अपने दान का फल चाहते हैं–वर्तमान समय के एक विद्यार्थी का पत्र सुन लीजिये जो शक्र आश्विन कृष्ण १ संवत् १९८२ में छपा है।

"मैं अब बी० ए० फोर्थ ईयर में दाखिल हो गया हूँ यह आज कलकी शिक्षा मेरे जैसे गरीब आदमीके लिये नहीं है। रहन, सहनका खर्च भयङ्कर है पुस्तकें सब बदल गई हैं मैं बिना पुस्तकों के ही क्लास अटेंड करता हूँ पुस्तकों के मोल लेने के लिये इतने पैसे कहाँ से लाऊँ जिनके पास पुस्तकें हैं खर्च करने के लिये दामों की कमी नहीं उन्हें पढ़ने की तमीज़ नहीं और मुझ जैसा गरीब छात्र भूखा रह कर सूखा खाकर बिना पुस्तकों के ही क्लास में जा बैठता है किस को ध्यान है। इस स्वार्थ युग में कोई किसी के लिये ध्यान भी क्यों देवे, मेरे जैसे सैकड़ों एवं सहस्रों छात्र धनाभाव के कारण वर्तमान शिक्षा प्रणाली से वञ्चित रहते होंगे मेरी दिक्कतों को आप जानते होंगे मैं बड़ी परेशानी में हूँ·········इस प्रकार एक नहीं अनेकों आत्मायें आर्यवर्त देश में बिलकती दिखाई देती हैं इस लिये निर्धनों की पूर्ण शिक्षा के लिये ही दान देना गृहस्थों का मुख्य धर्म है। मुझे जहां तक मालूम है वर्तमान समय में उच्च कोटि की संस्कृत शिक्षा का दाता ज्वालापुर (हरिद्वार) जिला सहारनपुर में एक ही महाविद्यालय गुरुकुल ऐसा है जहां बिना फीस लिये शिक्षा दी जाती है जिसके स्थापन करने वाले स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती थे जिसके चलाने वाले आचार्य स्वामी शुद्धबोध जी महाराज उनके सहाय श्री पण्डित नरदेव शास्त्री आदि हैं जो

तन, मन से सेवा कर चला रहे हैं जहां से सुयोग्य स्नातक निकल चुके हैं इसके अतिरिक्त गुरु कुल वृन्दावन गुरुकुल कांगड़ी और कन्या महाविद्यालय जालंधर हैं जहां फीस लेकर शिक्षा होती है। वहां प्रति समय रुपये की आवश्यकता बनी रहती हैं आपके यहां जो ५० लाख रुपये का जो दान होता है वह इधर उधर चला जाता है—अंधे, लूले, कोढ़ी, बीमार नाना प्रकार के दुःखिया आपकी ओर देख रहे हैं विद्या, धर्मोपदेश के लिये तरस रहे हैं जो सेठ साहूकारों, धनी पुरुषों का काम है क्योंकि परमात्मा धर्मात्माओं पर दया करता है और अधर्मियोंको निर्धन रखता है जैसा अथर्व वेद कांड ५ सू० ६ मन्त्र ५ व ६ में लिखा है इसलिये विचार कर काम कीजिये। इसके उपरांत दान के विषय में किसी महात्मा ने कहा है।

नष्टं कुलं भिन्न तड़ाग कूपं भ्रष्टं च राज्यं शरणागतं च।
गौ ब्राह्मणं देवगृहं च जीर्णं य उद्धरेत् पूर्व चतुर्गुणानाम्॥

१—नष्ट कुल वही है जिन में दूध पीते बालक बालिकाओं का कोई लालन पालन करने वाला न हो, जिनको अनाथ कहते हैं, उनकी पालना दान से यतीमखाने व अनाथलय बनवाकर करना चाहिये।

प्यारे सुजनों! इस ओर आप आंख भी नहीं उठाते हजारों अनाथ पादरियों ने लेकर धर्म से भ्रष्ट कर दिये, क्या यह पाप की बात नहीं कि हमारे तुम्हारे होते स्वदेशियों की संतानोंको अन्य देशीय पालन कर पीढ़ी दर पीढ़ी का नाश मार दें क्या यह शोक की बात नहीं? क्या इन लण्ड मुसण्डों के लालन पालन से अधिक पुण्य की बात नहीं? सच पूछो तो धिक्कार है हमको, जो हमारे जीते जी भारत संतान का धर्म भ्रष्ट कर सदा के लिये अपना दास बनालें, तिस पर भी हम दान का घमण्ड करें अथवा नशे में चूर रहें। जरा आंख खोलिये, अविद्यारूपी नशे में ऐसे न डूब जाओ ताकि घरकी भी सुध न रहे। अब उठ बैठिये, क्योंकि अब बरेली, फ़ीरोज़पुर अजमेर, लाहौर, आगरा आदि में अनाथालय नियत हो गये हैं, जहां इन दुखियों का अपनी संतान से भी अधिक पालन पोषण होता है। गवर्नमेंट भी सहायता देती है, बहुधा देश के शुभचिंतक भी दान देकर उनको सनाथ कर रहे हैं, अतः अब सम्पूर्ण भारतवासियों को इनके पालन की सुध लेना योग्य है।

२—टूटेफूटे कुएं तालाबों की मरम्मत कराना, अर्थात् कुएं बावली तथा तालाबोंको ऐसे स्थानोंपर बनवाना चाहिये जहाँ ग्रीष्म ऋतुमें बिना जलके

पथिकों तथा पशु पक्षियों के प्राण संकट में पड़ते हों, वा पियाऊ लगवाना जिससे दीनों को उत्तम जल मिलता रहे।

प्यारे सुजनों! बिना जल के प्राण जाते हैं, इस कारण इसका दान करना भी पुण्य है क्योंकि उस समय कोई दान काम नहीं देता अर्थात् रुपया, पैसा मोती, कञ्चन आदि मिट्टी सदृश जान पड़ता है, जैसा किसी कवि का वचन है—

निरजल वन में प्यास सतावे * मोती सीप काम न आवे॥

३—(भ्रष्टराज) अर्थात् राज्यपर विपत्ति हो तो उसकी सहायता करना भी पुण्य है, क्योंकि उसके रहने से नाना भांति के आनन्द रहते हैं।

४—(शरणागतं च) अर्थात् जो मनुष्य आपत्ति वा विपत्ति के कारण अपनी शरण आया हो तो उसकी अवश्य ही सहायता तन मन धन से करनी चाहिये, परन्तु डाकू, चोर, बदमाश, राज्य का अपराधी, आदि कुकर्मियों अधर्मियों की सहायता करना भला नहीं। क्योंकि ऐसे खोटे मनुष्यों के बचाने तथा सहायता करने से जो वह संसारिक जनों को नाना भांतिके क्लेश पहुंचायें, उनका पाप उन दाताओं के गर्दन पर होगा जिन्होंने ऐसे कुपात्रों की सहायता की है।

५—(गौकी रक्षा करना) हे सज्जन पुरुषों यह आपका बड़ा उपकारी जीव है, इसी कारण हमारे पूर्वजों ने इसके गुण देख कर 'तरण तारण' नाम इसी को दिया। गौमाता भी इसी को कहते हैं क्योंकि यह माता के समान अपने रक्षकों का समस्त आयु पालन करती है। इसे कामधेनु भी कहते हैं क्योंकि यह सकल कामनाओं को पूर्ण करती है। इसका अमृत-रूपी दूध मनुष्यों के जीवन का बीज, आयुर्बल, आकृति, धारणा, स्मृति, कान्ति का धारण सौंदर्य तथा रूप का देने वाला शुद्ध तथा मनके मैल को पवित्र करने वाला है ऐसा ही इसका घृत निर्बलता शोष (खुश्की) कृशता (दुर्बलता) पित्त वायु को हरने वाला जीर्णज्वर चेहरे की सर्दी नेत्र विकार आदि विकार को दूर करता है इस लिये अर्थववेदकांड २ सूत्र २६ मंत्र ५ में लिखा है कि गौओं की सदा रक्षा करनी चाहिये जिससे सब को दूध घी का सेवन कर हृष्ट पुष्ट होकर शूर वीर रहे और घरों में सब प्रकार की सम्पति बढ़ती जावे। जैसाकि

आ हरामि गवां क्षीरमाहार्षं धान्य १ रसम्।
आहृता अस्माकं वीरा आ पत्नी रिदमस्तकम्॥

इन उपरोक्त लाभों के अनन्तर इसी के घी से यज्ञ होते हैं कि जिससे वृष्टि होती है, जिससे सम्पूर्ण पदार्थ उत्पन्न होते हैं जिस से संसार की रक्षा होती है। गीता का वाक्य है—

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः॥

मनु महाराज ने मनुस्मृति अध्याय ४ श्लोक १६१ में लिखा है—

आचार्यश्च प्रवक्तारं पितरंमातरं गुरुम्।
न हिंस्याद् ब्राह्मणान्गाश्च सर्वांश्चैव तपस्विनः॥

अर्थात् आचार्य, पिता, माता, गुरु, तपस्वी तथा गायको किसी प्रकार से न सताना चाहिये, क्योंकि इन से सब संसार का उपकार होता है। देखो इसी गायके बच्चे खेतीका काम करते हैं जिससे जीव मात्रका पालन पोषण होता है, इसलिये ऐसे उपकारी जीवकी सर्व प्रकार की रक्षा करना योग्य है। बढ़ी गाय का दान करना भी छोड़ गोशाला बना कर नगर नगर में रक्षा करनी चाहिये।

प्यारे सज्जनो! ब्राह्मणों की सदा सहायता करना योग्य है क्योंकि इन्हीं की सहायता से हमारा देश सदैव उन्नति पाता रहा, इन्हीं के द्वारा वेदादि सत्य विद्याओं का प्रकाश हुआ, इन्हींके प्रभाव से ज्ञानरूपी प्रकाश ने संसार के अन्धकार को मेट दिया इन्ही ने हमारे अर्थ अपने घरबार सकल परिवारको त्याग कर प्राण तक न्यौछावर कर दिये, सच पूछो तो जो कुछ वैभव प्रकाश तेज हो गया, सब इन्हीं का प्रताप था फिर भला कौन ऐसा मनुष्य है जो इस उपकार को न मानता होगा? कहा है—

अथर्ववेद कांड ५ सू० १६ मं० ३ में लिखा है कि जो अत्याचारी लोग ब्राह्मणों को सताते हैं वे घोर युद्धोंमें हार कर बड़े २ कष्ट उठाते हैं।

ये ब्राह्मणं प्रत्यष्ठीवन ये वास्मिञ्छुल्कमीषिरे।

और भी कहा है।

ब्राह्मणार्थे। गवार्थे वा सद्यः प्राणान परित्येजत्।

अर्थात् ब्राह्मणों तथा गौओं के अर्थ प्राण को भी सम्पर्ण करना चाहिये। फिर भला धन की क्या गिन्ती परन्तु ब्राह्मणों के लक्षण स्मृति वा गीता आदि में जो लिखे हैं कि जिन को मैं वर्णन कर आया हूं उन्हीं की ब्राह्मण संज्ञा है। तथा 'ब्राह्मणस्य तपोज्ञानं' अर्थात् ब्राह्मणों का तप

ज्ञान है, अर्थात् स्वयं पूर्ण विद्वान् होकर धर्म के लक्षणों का यथावत् पालन कर सदा दया युक्त निरपेक्ष हो सत्य सनातन वेदोक्त धर्म का प्रचार करें। सो भ्रातृगणों ! ऐसे सुलक्षण युक्त पूर्ण विद्वान् ब्राह्मणोंके इस समय में दर्शन दुर्लभ हो गये हैं। इसीकारण तो भारतके सिरका मुकुट गिरगया समस्त देश बलहीन, तेजरहित, विद्याविहीन हो गया। वर्तमान समय के गोबर गणेश वीर्यसे ही ब्राह्मण बनकर मूर्ख रहकर, पंच महायज्ञोंकोत्याग पत्रापांडे होगये, सत्योपदेश की दुकान बन्द होगई तथा नाना भांति के प्रपञ्च फैल गये।

देवगृह उन स्थलों को कहते हैं जहां पूर्वोक्त गुणयुक्त महात्मा ब्राह्मण संन्यासी निवास करते हों अथवा जहां सदैव नियत समयों पर धर्मोपदेश होता रहता हो जिसे सुनकर सर्वजन धर्म, अर्थ काम मोक्ष को प्राप्त करतेहैं।

हे प्यारे भ्रातृगणों ! ऐसे देवगृह प्रत्येक नगर में होने आवश्यक हैं, जहां प्रति दिन नियत समयों पर वेदादि सत्यशास्त्रों के व्याख्यान हों कि जिससे प्राणीमात्र परमेश्वर की आज्ञाओं को जान सदा प्रेम पूर्वक उन आज्ञाओं को पालन कर आनन्द को प्राप्त हों। सो वर्तमान समय में इस भांति के व्याख्यान न होने से देखिये भारत की क्या गति हो गई ? ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सबने अपने धर्म पर पानी फेर दिया, वेद का नाम ही नाम रह गया। मुख्य तो यह है कि सत्योपदेश के न होने से ही मत मतान्तर फैल गये, कि जिनके कारण फूट ने अपना राज्य कर सब को तितर बितर कर दिया। सुख आनन्द जाता रहा, विद्या का नाम ही मिट गया, जिसके कारण देवगृह के स्थान पर नाना भांति के मन्दिर बन गये, जहां मूर्ख बाबा जी झांझ, ढोलक, मंजीरा, शंख आदि बजा कर भंग, गांजा, अफयून आदि नशे जमाते हैं। कहीं रण्डियों व लड़कों के नाचादि कौतुक होते हैं सच पूछो तो ये नाम मात्र के साधु, वैरागी, ब्राह्मण, संन्यासी आदि ने भारत को गारत कर दिया, क्योंकि बिना श्रेष्ठ ज्ञानी, बुद्धिमान्, हिंसारहित, विद्या व परमेश्वरयुक्त, सत्यवादी उपदेश बिना "यथा नाम तथा गुण" देवगृह मिलना तथा उनमें सत्योपदेश का होना अत्यन्त कठिन ही नहीं वरन् दुस्तर हो गया कि जिसके कारण लाखों मनुष्य ईसाई और मुसलमान हो गये धर्म का स्वरूप ही पलट गया।

प्यारो ! यह वही भारतभूमि है कि जहां धर्मका नक्कारा बजता था। यह वही भारतवर्ष है जो सभ्यता में अद्वितीय था। यह वही जम्बू द्वीप है कि जहां के निवासी सत्यता के कारण देव शब्द के नामसे पुकारे जाते थे। यह वही रत्नमय भूमि है कि जहां के निवासी धृत तथा क्षमा के कारण प्रख्यात हो रहे थे। यह वही भूमि है जहां के सुजनों ने धर्म के लिये अपने प्राण तक समर्पण कर दिये। यह वही देश है कि जहां की स्त्रियां देवियों के नाम से पुकारी जाती थीं।

हा शोक ! आज वही आर्यावर्त्त रह गया है कि जहां के निवासी अपने धर्म को भी नहीं जानते। हाय भारत ! तुम्हारी क्या गति हो गई तुम्हारा तो स्वरूप ही पलट गया, तुम्हारा नाम, प्रकाश, वैभव, प्रतिष्ठा सब सत्योपदेश अर्थात् धर्म पालन ही के कारण हुई थी, सो आज सब खाक में मिल गई यह फ़तह का झण्डा तुम्हारे हाथ से जाता रहा, परन्तु धन्य है उस परमेश्वर जगत् पितामह अन्तर्यामी को जिसने इस अँधेरे के समय में **स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज** को उत्पन्न कर दिया कि जिन्होंने धर्मोपदेश कर भारतवासियों के धर्म को बचाया ! अब सम्पूर्ण भारत तथा अन्य देशों में भी यहां के सत्योपदेश की रोशनी पहुंच रही है, बहुधा नगरों में आर्य्यमन्दिर अर्थात् देव गृह बन गये कि जिन में प्रति रविवार को वेदादि सत्य शास्त्रोक्त धर्मोपदेश होते हैं जिनको अब हज़ारों मनुष्य सुनते और प्रसन्नचित्त हो उन कार्य्यों को करते चले आते हैं। यद्यपि पेटार्थी जन नाना प्रकारके कोलाहल करते हैं, तथापि धर्मजिज्ञासु धर्म ही को मुख्य जान कर मूर्खोंकी मूर्खता पर किंचित ध्यान नहीं देते। अतः मैं श्रीस्वामी जी महाराज को कोटानुकोटि धन्यवाद देता हूँ कि जिन्होंने भारत के धर्मरूपी प्राणों को सत्योपदेशरूपी अमृत पिला कर चैतन्य कर दिया कि जिसके कारण भारतवासी घोर निद्रा को त्याग कर भारत के पुनरुद्धार के लिये तन, मन, धन से नाना भांति की चिकित्सा कर रहे हैं, पर शोक तो यही है कि लाखों का दान करने पर भी सच्चे दानों की ओर ध्यान नहीं देते कि जिसके बिना भारत का भारत, ग़ारत हुआ जाता है।

प्रत्येक नगर में वेद-प्रचार फण्ड को दान देकर भूमण्डल के समस्त देशों में वेद-प्रचार कराइये। देवालय अर्थात् आर्य्यमन्दिर बनाकर सदा

प्रत्येक उत्सव तथा त्योहारों पर बड़े धूमधाम से हवन कर सत्योपदेश सुनिये कि जिसके कारण समस्त नगर में धर्म की चर्चा होने लगे, मनुष्य धर्म को जान उस पर चलें कि जिससे भारत में सुख और आनन्द की वर्षा होने लगे।

इन सब दानों के अतिरिक्त अपने कुटुम्ब तथा घराने अर्थात् बिरादरी वा मुहल्ले के दीनों तथा सच्चे प्रेमी भक्तों की प्रत्येक प्रकार से सुध लेना परम आवश्यक है, परन्तु ऐसा भी न करना चाहिये जैसा किसी कवि ने कहा है—

(नौ बुलाये तेरह आये देखो यहां की रीति।
बाहर वाले खा गये और घर के गावें गीत॥)

इसी प्रकार नगर की विधवाओं के खान पान तथा उनकी आत्मिक उन्नति के अर्थ शिक्षा, सत्योपदेश का प्रबन्ध होना भी परम आवश्यक है कि जिससे वह धर्म पर यथावत् आरूढ़ रहें कि जिसके बिना देख लीजिये कि इस भारत की विधवाओं की क्या २ कुगति हो गई?

तदनन्तर प्रत्येक नगर में औषधालय खोलने चाहियें, जहां दीनों की औषधि नियत समय पर बिना मूल्य के प्रति दिन मिला करे, धर्मशाला बनवाना कि जहां दीन बटोही तथा नगर के दीनों को आनन्द मङ्गल के साथ भोजन मिला करे। ऐसे ही जहां पूर्ण विद्वान् महात्मा रहते हों वहां भी क्षेत्र खोलना उत्तम है। पाठशाला के विद्यार्थियों को अच्छे प्रकार भोजनों का सुप्रबन्ध होना उचित है न कि वर्तमान समय की भांति क्षेत्रों तथा धर्मशालाओं में लुच्चे, गुण्डे, धर्महीन पुरुष अच्छे प्रकार से खा जाते हैं, पर दीन, अंधे, लँगड़े विद्यार्थी सच्चे साधु महात्माओं को नाममात्र भी नहीं मिलता, इन सब बातों का शोधन कर दान कीजिये।

इसके उपरांत अन्यान्य देशोपकारक कर्मों का करना परम आवश्यक है इसी को 'रिफ़ाह आम' कहते हैं, जैसे बगीचे लगवाना, मार्ग ठीक कराना दीनों की पुत्रियों तथा पुत्रों का विवाह करना नाना भांति के गुण सीखने के अर्थ निर्धनों की सहायता देना, उपदेशकोंको मासिक देकर देश वा अन्य देशों में उपदेश करना, धर्म ग्रन्थों को बांटना, बड़े २ हवन कराना परमधर्म तथा पुण्य की बात है क्योंकि इन से संसार का बड़ा उपकार होता है।

जिस स्थान पर इन ईश्वरीय आज्ञाओं के अतिरिक्त विद्वानों के भोगने योग्य पदार्थ भूखों को दिये जाते हैं, तथा विद्वानों का तिरस्कार होता है उसी देश में अकाल, मरी तथा नाना प्रकार के उपद्रव होते हैं यथा भारतवर्ष में इस समय हो रहा है। जैसा कहा है—

> अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूज्यानां चाव्यतिक्रमात्।
>
> त्रीणि तत्र भविष्यन्ति दुर्भिक्षं मारणं भयम्॥

अतः अब मैं अपने भाई बहिनों से प्रार्थना करता हूँ कि यदि आप को दान के फल की इच्छा हो तो सदा मन वच कर्मसे परमेश्वरीय नियमों को यथावत् पालन कीजिये। क्योंकि परमात्मा की आज्ञा के प्रतिकूल कार्य करने में नाना प्रकार के दुःख भोगने पड़ते हैं, अतः उसकी आज्ञा का यथार्थ ज्ञान होने के अर्थ विद्वान् धर्मात्माओं (कि जिन्होंने मन, वच, कर्म को एक कर दिया है) का समागम कर सदा पुरुषार्थ के साथ मन को काम क्रोध लोभ मोहादि दोषों से पवित्र करते रहिये। क्योंकि बिना मन की पवित्रता के किसी प्रकार के दानसे यथार्थ फल नहीं मिल सकता, अतः मन को दोषों से बचा कर वाणी से सत्य बोलने का पूर्ण नियम अर्थात् व्रत धारण करके अपने स्वदेशियों को सत्यवाणी का पूर्णदान कीजिये कि जिससे प्राणीमात्र को आनन्द मिले तथा श्रद्धापूर्वक ऐसे ही सत्यवादी वेदवित् महात्माओं की सम्मत्यानुसार, धर्मानुसार प्राप्त किये हुए धन को दान कीजिये।

प्यारे सुजनों! वाणीसे प्रयोजन केवल शब्द ही से नहीं वरन् वाणी शब्द अर्थ सम्बन्ध तीनों के योग को कहते हैं सम्पूर्ण संसार का वाणी से ही प्रबन्ध किया जाता है; वाणी ही सारे मनुष्य तथा पशुसृष्टि पर आज्ञा चलाती है। वाणी में जो प्रत्यक्ष शक्ति है वह किसी इंद्रिय में दृष्टि नहीं आती। वाणी ही ने समय पाकर कामों के विचारों को पलट दिया वाणी ही मनुष्यों की प्रतिष्ठा के लिये एक सच्चा हथियार है उसकी सहायता से मनुष्य जाति ने समस्त भूमण्डल के जीवों को अपने आधीन कर रखा है जो वाणी न होती तो भला मनुष्य तथा पशु में क्या अन्तर होता अर्थात् वाणी मनुष्य को मोक्ष सुख का आनन्द दिलाती है और यही उसको नरक के दुःखसागर में ले जाती है। अतः आओ प्यारे भाई बहिनों! हम सब मिल कर पूर्ण प्रेम के साथ नम्रता पूर्वक उस जगत पिता परमात्मा से

मन वच कर्म के साथ उस शुद्ध निर्मल वाणी के अर्थ प्रार्थना करें जिसको प्राप्त कर मनुष्यों ने अपने आप को ही नहीं वरन् हजारों जीवात्माओं को पाप के अथाह समुद्र से पार लगाया है। आओ प्यारे सांसारिक भाइयो! हम सब अपने प्रेम से उस जगदीश्वर से प्रार्थना करें कि वह हमें ऐसी मधुर तथा आकर्षणशक्ति वाली वाणी से विभूषित करे जिसको पाकर संसार के सच्चे शूरों ने अपने सच्चे घरों में पहुँचने तथा अपने प्यारों के गले में लिपटने के लिये अपना तन मन धन सब न्यौछावर कर दिया जैसा कि वेद में लिखा है।

पावकानःसरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती यज्ञंवष्टुधियावसुः।

अब अगर हमको और आप को सुख भोगना है तो प्रथम जो आप के हाथ में दान करना है उसको ठीक रीति से करना आरम्भ कर दोगे तो मेरे विचार से आपका देश १५ वर्ष में एक उत्तम देश बन जायगा। देखिये प्रति वर्ष प्रत्येक नगर में १० व २० विवाह होते हैं इनमें से होने वाले दान जिस स्थान पर बरात जावे वहां एक कमेटी बनाकर दान का रुपया उसके आधीन कर दिया जाय पांच या दस वर्ष में जितना रुपया इकट्ठा हो उससे और अन्य दान जो समय समय पर होते रहते एक बड़ी कमेटी सूबे के नाम से हो उसके पास रुपया इकट्ठा किया जाय फिर सब सूबों की एक महासभा बनाकर सब रुपया उसके जमा कर बड़े तीर्थों मन्दिरों आदि में जो रुपया आता है उसका प्रबन्ध करके सब रुपयों से, उक्त प्रकार के धन से विद्या प्रचार, वेद प्रचार, अनाथालय, औषधालय, अंधे, लूले, कोढ़ी इत्यादि आवश्य कार्य्यों, शिल्पकला यंत्रों के उन्नति इत्यादि में लगाया जाय देखिये फिर ५२ हजार साधुओं में जो योग्य हों उनसे काम लीजिये इसके उपरान्त आगे होने वाले वानप्रस्थ संन्यासियों से प्रीति पूर्वक, उनकी इच्छा के अनुसार प्रचार कराइये, उत्तम उत्तम ग्रन्थ लिखाइये। वानप्रस्थों के अर्थ वानप्रस्थ आश्रम गंगा, यमुना, नर्बदा, कावेरी, सिंध, ब्रह्मपुत्र आदि पहाड़ों पर जहां की जल वायु उत्तम उत्तम हो बना-पुस्तकालय भी खोल दीजे। प्रतिवर्ष हिसाब साधारण से साधारण मनुष्यों को छपवा कर वितीर्ण करना, पर्वों पर तीर्थ स्थानों पर दान महात्म, उत्तम दान के और परोपकार के फल तथा लाभों पर नाना प्रकार से उत्तम २ चार दान कराये देखिये फिर देश की क्या दशा होती है। परमात्मन् हम आप के हैं आप हमारे हैं आप बड़े तेजस्वी प्रतापी हैं

उसमें से हमको तेज का दान देकर तेजवान बनाइये आप शुद्ध बुद्धि के भंडार हैं उसमें से बुद्धि दीजिये, आप बलवान और साहसी हैं उसमें से बल और साहस देकर बलवान साहसी बनाइये बिना आप की कृपा के हमारा कोई बेड़ा पार नहीं कर सकता। हम सब अविद्या के अन्धकार में गोता खा रहे हैं, आप विद्या देकर प्रकाश के सहारे ज्ञान की वृद्धि कर डूबते भारत को बचा कर ऊँचे शिखर पर चढ़ा दीजे अर्थात् जैसा यह किसी समय सब देशों का सिरताज था अब भी बना दीजे।

गृहस्थाश्रम।

प्रिय सज्जन पुरुषों! और चतुर महिलाओ वेद स्मृतियों में गृहस्थाश्रमको सब अच्छे व्यवहार वा सब आश्रमोंका मूल माना है इससेइस गृहस्थाश्रमका अनुष्ठान अच्छे प्रकार से करना चाहिये क्योंकि इस आश्रम के बिना मनुष्यों वा राजादि व्यवहारों की सिद्धि कभी नहीं होती, जैसा य० अ० ६ में।

गृहामाविभीत मा बयध्वमूर्ज्ज बिभ्रत एमसिऊर्जबिभ्रजद्वः सुमनाः
सुमेधा गृहानैमिमनसा मोदमानः।

मनुस्मृति अ० ३ श्लोक ७७ में लिखा है कि जिस प्रकार वायु के आश्रय समस्त जीव रहते हैं, उसी प्रकार अन्य आश्रम वाले ब्रह्मचारी वानप्रस्थी तथा सन्यासी अपनी अपनी जीविक के अर्थ इस आश्रम का आश्रय लेते हैं। जैसाकि—

यथा वायुं समाश्रित्य वर्तंते सर्व जन्तवः।
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तंते सर्व आश्रमाः॥

और अ० ६ श्लोक ६० में लिखा है कि जिस प्रकार से सम्पूर्ण नदी समुद्र में जाकर विश्राम पाती हैं उसी भांति सब आश्रमवाले गृहस्थी में जाकर ठहरते हैं।

यथा नदीनदाः सर्वे सागरेयान्ति संस्थितिम।
तथै वाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम्॥

और ऐसा ही वसिष्ठस्मृति अ० ७ में कहा है दक्षस्मृति अ० ३ श्लोक

४६ में कहा है कि देवता (विद्वान्) मनुष्य और तिर्यक योनि आदि अपना अपना भोजन गृहस्थों से पाते हैं, इसी कारण गृहस्थाश्रम सर्व श्रेष्ठ है।

देवैश्चैव मनुष्यैश्च तिर्यग्भिश्चोपजीव्यते ।
गृहस्थः प्रत्यहं यस्मात्तस्माच्छ्रेष्ठाश्रमो गृही ॥

और श्लोक ४७में कहा है कि ब्रह्मचर्य वानप्रस्थ और सन्यास इन तीनों आश्रमों का गृहस्थी योनि (कारण) है इससे इसके दुखी होने से यह तीनों आश्रम दुःखी होते हैं।

त्रयाणामाश्रमाणांतु गृहस्थो योनि रुच्यते ।
सीदमानत्वेन तेनैव सीदन्ति हीतरे त्रयः ॥

मनु० अ० ६ श्लोक ८७ में कहा है कि ब्रह्मचर्य गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास ये चारों आश्रम इसी गृहस्थाश्रम से पृथक् २ उत्पन्न होते हैं। शंखस्मृति अ० ४ श्लोक ५ में कहा है कि उक्त तीनों आश्रम गृहस्थ के प्रसाद से यथा विधि जीते हैं और अ० ३ श्लोक ७८ में वर्णन किया है कि तीनों का यथा विधि सत्कार करता है इस लिये गृहस्थाश्रम सब से बड़ा है।

यस्मात् त्रयोप्याश्रमिणो ज्ञानेनान्नेन चान्वहम् ।
गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही ॥

शंखस्मृति अध्याय ४ श्लोक ६ में कहा है कि गृहस्थ ही यज्ञ करता है, वही तप और ज्ञान देता है, इसलिये गृहस्थाश्रम सबसे बड़ा है।

गृहस्थ एव यज्ञते गृहस्थस्तपते तपः ।
ददाति च गृहस्थश्च तस्माच्छ्रेयान् गृहाश्रमी ॥

पद्मपुराण द्वितीय भूमिखण्ड अध्याय ६०-श्लोक १८,१९,२० में कहा है कि गृहस्थाश्रम से श्रेष्ठ कोई आश्रम भूतल पर नहीं। गृहस्थ का घर सर्व तीर्थ मय वा सर्व देवमय होता है, क्योंकि गृहस्थाश्रम के आश्रित होकर सब जीव जन्तु जीते हैं,इसलिये गृहस्थाश्रमके समान अन्य आश्रम रूप नहीं देखते जहां कि अग्निहोत्र होता हो और देवताओं की पूजा होती व वेद पढ़े जाते हों। षष्ठ उत्तर खण्ड अध्याय ७४ में महादेव जी ने पार्वती से कहा है, तपस्वी वन में तपस्या करते हैं परन्तु जब उनको भूंख लगती है तब वह गृही के यहां आकर भोजन करते हैं इस लिये इसको भी तपस्या का कुछ फल मिलता है यह आश्रमों में श्रेष्ठ है जो मनुष्य इस आश्रम का अच्छे

प्रकार पालन करते हैं वह उत्तम फल को पाते हैं, क्योंकि गृहस्थाश्रम में ही देवताओं और अतिथियों को भोजन मिलता है और मार्ग चलने वालों का यही आश्रय है, इसलिये वह अत्यन्त धन्यवाद के योग्य है ।

तप्त्वातपस्वी विपिने क्षुधार्तो गृहं समायातिसदान्नदातुः ।
भक्त्यासचान्नं प्रददाति तस्मै तपोविभागं भजतेहितस्य ॥

देवी भागवत स्कन्ध १ अध्याय १४ श्लोक ५६, ५७, में व्यासजीने कहा है कि जो न्याय से धन लाता है और वेदोक्त श्राद्धादि कर्म करता तथा पवित्र रहता है ऐसे गृहस्थ की, मध्यान्ह में ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और यती व्रतस्थित जन आशा करते हैं, इस लिये इस आश्रम के समान धर्म हमने न देखा न सुना–

न्यायागतधनः कुर्वन्वेदोक्तं विधिवत्क्रमात् ।
गृहस्थोपि विमुच्येत् श्राद्धाकृत्सत्यवाक्छुचिः ॥
ब्रह्मचारी यतिश्चैव वानप्रस्थो व्रतस्थितः ।
गृहस्थंसमुपासन्ते मध्यान्हातिक्रमे सदा ॥

श्रीमद्भागवत स्कन्ध ३ अ० १४ श्लोक १७ में लिखा है कि जिस प्रकार मनुष्य नाव में बैठकर समुद्र पार होजाता है–उसी प्रकार इस आश्रम में रह कर सम्पूर्ण व्यसनों से पार हो जाता है–

सर्वा श्रमानुपादाय स्वाश्रमेण कलत्रवान् ।
व्यसनार्णवमत्येति जलनावैर्यथार्णवम् ॥

इसी स्कन्ध के अध्याय १४ में कश्यप जी ने कहा है कि इस आश्रम से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पदार्थों की प्राप्ति होती है, इसी कारण यह श्रेष्ठ है। भविष्य पुराण अ० १५० में भी ऐसा ही वर्णन किया है । मार्कण्डेय पुराणअध्याय २६ में गृहस्थाश्रम को कामधेनु गाय की समता दी है । वामनपुराण में लिखा है कि सब आश्रमों में गृहस्थाश्रम बड़ा है ।

प्रिय सज्जन पुरुषो और सुजन स्त्रियों ! उपरोक्त कथन से स्पष्ट प्रकट होरहा है कि यह आश्रम सम्पूर्ण आश्रमों की जड़ अर्थात् मूल है, यही सबके पाल पोषण का केन्द्र तथा वर्णों का द्वार है ।

इस लिये गृहस्थों के धर्मानुकूल कार्य करने से संसार की उन्नति होती है और इसके विपरीत कार्य करने से संसार बिगड़ जाता है, क्योंकि जड़की रक्षा से स्कन्ध (डालें) और डालों से डालियां और उस से पत्ते

फूल फल इत्यादि होजाते हैं और मूल के नाश होने से सब नष्ट हो जाते हैं। जैसा दक्षस्मृति अ० २ श्लोक ४० में कहा है—

मूलत्राणे भवेत्स्कंधः। स्कन्धाच्छाखेतिपल्लवः।
मूलेनैव विनष्टेन सर्वं मेतद्विनश्यति।

इसी हेतु य० अ० ८ मं० ३३ में परमेश्वर ने उपदेश किया है कि इस आश्रम के अधीन सब आश्रम हैं। यदि इसकी सेवा वेदोक्त श्रेष्ठ व्यवहारों से की जावे तो इस से दोनों लोकों के सुखों की प्राप्ति हो सकती है जैसाकि—

आतिष्ठ वृत्रहनरथं युक्ताते ब्रह्मणा हरी। अर्वाचीनन्वं सुते मनो ग्रावा कृणोतु वग्नुना। उपया मगृहीतोसीन्द्रायत्वा षोडशिन एषत योनिरिन्द्रायत्वाशोडषिने॥

अथर्ववेद कांड २ सू० ३६ मं० ३ में कहा है गृहस्थाश्रम ईश्वर कृत नियम है इसकी रक्षा के लिये सब बड़े २ महात्मा प्रयत्न करते और राजा नियम बनाते हैं। दक्ष स्मृति के अ० २ श्लोक ४८ में राजा तथा अन्य तीनों आश्रम वालों को आज्ञा दी है कि वह आश्रम का यत्न पूर्वक मान सहित रक्षा करें।

तस्मात्सर्व प्रयत्नेन रक्षणीयो गृहाश्रमी राज्ञाचन्यै स्त्रिभिः पूज्योमाननीय यश्चसर्वदा॥

अथर्ववेद कांड १९ में कहा है कि जो स्त्री पुरुष बड़े २ विघ्नों और कष्टों को सह सकें वे ही गृहस्थाश्रमी बन सक्ते हैं। मनु महाराज ने कहा है कि दुर्बल इन्द्रिय वाले स्त्री पुरुषों को धारण करने योग्य यह आश्रम नहीं है। ऐसा ही पद्मपुराण षष्ठ उत्तर खण्ड अ० ७४ श्लोक ९ में महादेवजी ने पार्वती से कहा है कि अजितेन्द्रियों को यह आश्रम दुःखकारक है, इसलिये ब्रह्मादिक देवताओं ने इस आश्रमको बुद्धिमानोंको सेवन करने की आज्ञा दी है, यथा—

सुदुस्तरः सर्वजितेन्द्रियाणां संहयन्तैम श्रेष्ठतमः शुभाआश्रमः
गृहस्थधर्मः प्रवरोमनीषणां ब्रह्मादिभिश्चाभितोनगात्मज॥

अब आप विचारिये कि हम वेदानुकूल कार्य करते हैं ? उत्तर मिलेगा कि नहीं। मित्रो! सब शास्त्रों और अन्य बुद्धिमानों का यही सिद्धान्त है कि प्रथम मनुष्य को जितेन्द्रियता से शरीर का बल और विद्या से आत्मा के बलको बढ़ा कर इस आश्रम में पग रखना उचित है, तब ही वह वेदोक्तव्यवहारों से इस आश्रम की सेवा कर आनन्दों को प्राप्त कर सकते

हैं। आप ने वेदों की मर्यादा को उठा दिया जिस कारण शारीरिक और आत्मिक बल का नाश हो गया, फिर सुख कैसा ? इसी कारण तो इस समय यह आश्रम कारागार के समान हो रहा है, इस लिये आइये प्रथम सब मिल कर वेदानुकूल अर्थात् गुण, कर्म, स्वभाव से वर्णों को नियत करें जो इस आश्रम के सुधार की जड़ है, परन्तु वर्तमान समय में वेद की आज्ञाके विपरीत वीर्य ही से वर्ण व्यवस्था मानी जाती है जिस से भारत की अधोगति होगई देखिये मनु महाराज ने अपनी स्मृतिमें ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्रों के लक्षण निम्न रीति से बतलाये हैं।

ब्राह्मणों के लक्षण

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहंचैव ब्राह्मणानामकल्पयत्॥

पूर्ण विद्या पढ़ना पढ़ाना, यज्ञ करना कराना, विद्या वा सुवर्ण आदि का सुपात्रों को दान देना, न्याय से धन उपार्जन करने वाले गृहस्थों से दान लेना ब्राह्मणों का धर्म है। मनु० अ० १ श्लोक। ८८।

क्षत्रियों के लक्षण

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।
विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः॥ ८९॥

दीर्घ ब्रह्मचर्य से वेदादि शास्त्रों का यथावत् पढ़ना, अग्निहोत्रादि का करना सुपात्रों को विद्या सुवर्ण आदि तथा प्रजाको अभय दान देना तथा उनका सब प्रकार से यथावत् पालन करने वालों को क्षत्रिय कहतेहैं।

वैश्यों के लक्षण

पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।
वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिरेवच॥

वेदादि शास्त्रों का पढ़ना, अग्निहोत्रादि यज्ञों का करना, दान देना, पशुओंका पालन करना, देशोंकी भाषा,हिसाब, भूगर्भविद्या,भूमि बीजादि के गुण दोषों को जानना, सर्व पदार्थों के भाव समझाना, व्योपार करना कुसीद अर्थात् व्याज का लेना, खेती की विद्या का जानना, अन्नादि की रक्षा करने वालों को वैश्य कहते हैं। अ० १ श्लोक ९०।

शूद्रों के लक्षण

एकमेवहि शूद्रस्य प्रभुः कर्मसमादिशत्।
एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामसूयया॥ १-९०॥

जिसको विद्या पढ़ने से भी न आवे ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इन तीनों वर्णों की निन्दा रहित प्रीति पूर्वक सेवा करे उसको शूद्र कहते हैं।

प्रकट हो कि उपरोक्त कर्मों से दानदेना, यज्ञ करना, वेद पढ़ना, यह

तीन धर्मार्थ, तथा यज्ञ कराना, वेद पढ़ाना, दान लेना, यह तीन जीविकार्थ ब्राह्मणोंके कर्म हैं। दान देना, वेद पढ़ना, यज्ञ करना, यह तीन धर्मार्थ तथा प्रजा का पालन करना, शस्त्र धारण करना, यह जीविकार्थ क्षत्रिय के कर्म हैं। इसी प्रकार दान देना, वेद पढ़ना, यज्ञ करना, धर्मार्थ तथा पशु पालन ब्योपार, ब्याज लेना, यह जीविकार्थ वैश्य के कर्म हैं। शूद्र का केवल एक ही कर्म अर्थात् तीनों वर्णों की यथावत् सेवा करना धर्मार्थ जीविकार्थ है।

मान्यवरो! इसी भांति हारीतस्मृति अ० १ श्लोक १७ तथा अत्रिस्मृति श्लोक १३, १४, १५। शंखस्मृति श्लोक २, ३, ४, ५। विष्णुपुराण के तीसरे अंश के ८ अध्याय। मार्कण्डेयपुराण २७ के श्लोक ३, ४, ५, ६, ७। भविष्यपुराण अध्याय १ तथा शुक्रनीति अध्याय ४ श्लोक ५७, ५८, ५६। विदुरनीति तथा गीता, उद्योगपर्व और श्रीमद्भागवत में ऐसा ही वर्णन किया है।

प्रियवरो! वर्णों का अन्तर गुण कर्मों के अनुसार नियत है, शूद्र ब्राह्मण तथा ब्राह्मण शूद्र हो जाता है। यदि ब्राह्मण का बालक कर्मों से योग्य हो तो वह यथार्थ ब्राह्मण शूद्र होता है, अन्यथा क्षत्रिय अथवा वैश्य शूद्र की पदवी को पाता है। इसी भांति शूद्र का लड़का मूर्ख हो तो वह शूद्र ही रहता है अन्यथा गुणकर्मों के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य में पहुंच जाता है। इसी प्रकार क्षत्रिय वैश्य की भी दशा होती है। जैसा मनु अ० १० श्लोक ६५ में लिखा है:—

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चेति शूद्रताम्।
क्षत्रियाज्जात मेवन्तु विद्याद्वैश्यस्तथैव च॥

अर्थात् ब्राह्मण शूद्रपन तथा शूद्र ब्राह्मणता को प्राप्त हो जाता है। क्षत्रिय से उत्पन्न हुआ भी इसी प्रकार और वैसेही वैश्य से हुआ पुरुष भी अन्य वर्ण को प्राप्त हो जाता है।

शुक्रनीति अ० १ श्लोक ३८ में लिखा है कि जन्म से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, म्लेच्छ नहीं होते वरन् गुण तथा कर्म के भेद से होते हैं जैसा:—

न जात्याब्राह्मणश्चात्र क्षत्रियो वैश्य एव च।
न शूद्रश्चैव न म्लेच्छो भेदितागुणकर्मभिः॥
चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः। गीताअ०१२श्लोक१२

शुक्रनीति तथा मनुस्मृति में भी यह लिखा है कि ब्राह्मण उत्तम गुणों के कारण सब वर्णों से श्रेष्ठ माना गया है। यथा—

सर्वाधिको ब्राह्मणस्तु जायते हि स्वकर्मणः॥

अब हम आप को महाभारत के प्रमाण से बतलाते हैं, कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र गुण कर्म स्वभाव से ही होते हैं। देखिये महाभारत वनपर्व अ०३१२ श्लोक१०५से१०९ तक यक्ष और युधिष्ठिर का संवाद है।

यक्ष उवाच।

राजन् कुलेन वृत्तेन स्वाध्यायेन श्रुतेन वा।
ब्राह्मण्यं केन भवति प्रब्रूह्येतत्सुनिश्चितम्॥

अर्थात् हे राजन्! कुल से, चरित्र से, वेदपाठ से वा विद्या से किस से ब्राह्मण होता है? यह आप मुझ से निश्चय पूर्वक कहिये।

युधिष्ठिर उवाच।

शृणु यक्ष कुलं तात! न स्वाध्यायो न च श्रुतम्।
कारणं हि द्विजत्वे च वृत्तमेव न संशयः॥ १०६॥
वृत्तं यत्नेन संरक्ष्यं ब्राह्मणेन विशेषतः।
अक्षीणवृत्तो न क्षीणो वृत्ततस्तु हतोहतः॥ १०७॥
पाठकाः पाठकाश्चैव येचान्ये शास्त्रचिन्तकाः।
सर्वे व्यसनिनोमूर्खायः क्रियावान् स पण्डितः॥१०८॥
चतुर्वेदोऽपि दुर्वृत्तः स शूद्रादतिरिच्यते।
योऽग्निहोत्र परोदान्तः स ब्राह्मण इतिस्मृतः॥१०९॥

अर्थ—हे यक्ष! कुल से और वेदपाठ से ब्राह्मण नहीं होता। किन्तु आचरणों से ही ब्राह्मण मानने योग्य है॥१०६॥ मनुष्यों तथा विशेषतः ब्राह्मणों को चाहिये कि यत्न से अपने आचरणों की रक्षा करें क्योंकि जो आचरण हीन है वही हीन है॥१०७॥ पढ़ने पढ़ाने वाले तथा शास्त्र के विचार करने वाले मूर्ख और व्यसनी हैं। जो क्रियावान हैं वही पण्डित हैं॥१०८॥ चारों वेदों का जानने वाला यदि दुराचारी हो तो वह ब्राह्मण शूद्र से भी नीच है, जो अग्निहोत्रका करने वाला सदाचारी है वही ब्राह्मण है॥१०९॥ इसके पश्चात् युधिष्ठिर महाराज और सर्प का संवाद जो महाभारत वनपर्व अध्याय १८० में है जिसके पाठ मात्र से ही स्पष्ट ज्ञात होता है कि गुण, कर्म, स्वभाव से ही वर्णों की व्यवस्था नियत थी।

सर्प उवाच ।

ब्राह्मणः को भवेद्राजन् ! वेद्यं किं च युधिष्ठिर !
ब्रवीह्यतिमतिं त्वां हि वर्यथैरनुमिमीमहे ॥ श्लोक २७ ॥

अर्थात्–हे युधिष्ठिर ! ब्राह्मण किसे कहते हैं ? जगत् में कौन वस्तु जानने योग्य है ? आप हमारे इन दो प्रश्नोंका उत्तर दीजिये तो हम आप को बहुत बुद्धिमान् मानें । युधिष्ठिर ने कहा—

सत्यं ज्ञानं क्षमा शीलमानृशंस्यं तपो घृणा ।
दृश्यते यत्र नागेन्द्र स ब्राह्मण इतिस्मृतः ॥ श्लोक २१ ॥

हे नागेन्द्र ! जिसमें सत्य, दान, क्षमा, शील, लज्जा, तप और घृणा हो उसे ब्राह्मण कहते हैं । पुनः सर्प पूछता है—

चातुर्वर्ण्यं प्रमाणञ्च सत्यब्रह्मचैव हि ।
शूद्रेष्वपि च सत्यं च दानमक्रोध एव च ॥
आनृशंस्यमहिंसा च घृणाचैव युधिष्ठिर ! ॥

हे युधिष्ठिर ! इस जगत में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रमें सत्य, दान, क्षमा, लज्जा, अहिंसा और घृणा हो तो क्या वह भी ब्राह्मण हो जावेगा ? युधिष्ठिर ने उत्तर दिया कि—

शूद्रेयत्तु भवेल्लक्ष्म द्विजेतच्च न विद्यते ।
नवै शूद्रो भवेच्छूद्रो ब्राह्मणो न च ब्राह्मणः ॥

जो लक्षण शूद्र में हैं वह ब्राह्मणों में नहीं हैं और यदि वह लक्षण शूद्र में हों तो शूद्र ब्राह्मण हो सकता है और यदि शूद्र के लक्षणमें ब्राह्मण हो तो वह ब्राह्मण भी शूद्र ही है । पद्मपुराण तृतीय सर्ग खण्ड अ० ११ में कहा है कि विद्या धन और जन्म द्विजत्व के कारण हैं, परन्तु जब वह ब्राह्मण आचार से भ्रष्ट हो जाता तो यह सब निष्फल हो जाता है इस लिये पवित्रता ब्राह्मण का हेतु है । अध्याय २० में कहा है कि सब लोकों में सब कल्याणों से श्रेष्ठ सदाचार व्रत है, इस लिये अपने व्रत में चांडाल को भी ब्राह्मण कहते हैं । श्रीमद्भागवत में लिखा है—

यस्य यल्लक्षणम्प्रोक्तं पुंसा वर्णाभिव्यञ्जकम् ।
यद्यन्यत्राऽपि दृश्येत तत्तेनैव विनिर्दिशेत् ॥

कि जिन मनुष्यों में जिस प्रकार के गुण होते हैं, वह उसी वर्ण में मिलने के योग्य होते हैं । आपस्तम्ब सूत्र में लिखा है—

धर्मचर्यया जघन्यो वर्णः पूर्वपूर्ववर्णमापद्यतेजातिपरिवृत्तौ ॥

कि अपने कर्मों से छोटा बड़ेपन को पा लेता है। देखिये अथर्व कांड २० सू० ३६ व १० में राजा को आज्ञा दी है कि वह शूद्रों को विद्या दान और सत्य उपदेश से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य बना कर शत्रुओं के नाश के लिये मनुष्यों में धन और सुख की वृद्धि करे। जैसा कि—

आ संयतमिन्द्रणः स्वास्तिं शत्रुतूर्याय बृहतीम मृध्रा.म्।
यया दासा न्यार्याणि वृत्रा करो वज्रिन्त्सुतका नाहुषाणि ॥

इसी प्रकार बुरे कर्मों के कारण बड़ा छोटा हो जाता है जैसा आपस्तम्ब में लिखा है—

अधर्म चर्यया पूर्वो वर्णो जघन्यं२ वर्णामापद्यनेजाति परिवृत्तौ ॥

इसके उपरांत भविष्य पुराण पूर्वार्द्ध के प्रथम अध्याय में लिखा है कि जो ब्राह्मण वेद पढ़ कर वेश्यादि कर्म कर शूद्र की सेवा कर तथा नट, चोरी, चिकित्सा से निर्वाह करे वह भी शूद्र कहाता है। मनुस्मृति अध्याय १ श्लोक ६७ में लिखा है कि मूर्ख ब्राह्मण को लकड़ी के हाथी तथा चमड़े के मृग के समान ही समझना चाहिये। शांतिपर्व अध्याय ७७ में तथा याज्ञवल्क्य स्मृति के आपद्धर्म प्रकरण में लिखा है कि हस्त क्रिया लेन, देन, गौ, घोड़ा, गाड़ी, व्योपार, लवण, तिल, फल, पत्थर, वस्त्र, रस, मधु, तक्र, पृथ्वी, कम्बल, गन्ध इनको ब्राह्मण कदापि न बेचें। दूध, दही, मदिरा, बेचने वाला और नाचने वाला ब्राह्मण भी शूद्र है।

बृहन्नारदीय पुराण अध्याय २३ में लिखा है कि आपत्ति के समय ब्राह्मण क्षत्रिय का और अत्यन्त आपत्ति पड़ने पर वैश्य का काम कर ले परन्तु शूद्र का काम कभी न करे और जो मूढ़ द्विज ऐसा करे तो उसको चाण्डाल जानना चाहिये। श्रीमद्भागवत स्कंध ११ अध्याय १७ में ब्राह्मण को नीचवृत्ति करने की आज्ञा नहीं है। वसिष्ठ स्मृति अध्याय ६ श्लोक ३ में तथा पाराशरस्मृति अध्याय ८ श्लोक ३ में लिखा है कि जो वेद नहीं जानता, व्योपार से आजीविका करता है, संध्या अग्निहोत्र नहीं करता, खेती पालन पोषण करता है, वह नाम मात्र का ब्राह्मण है।

प्रिय सज्जन पुरुषो! उपरोक्त कथन से प्रत्यक्ष प्रकट हो रहा है कि कर्म ही मनुष्य को ऊँची पदवी अर्थात् उच्च वर्ण में ले जाते हैं और कर्म

से ही नीच हो जाता है। ऐसा ही शान्तिपर्व अध्याय १८८ में भारद्वाजने भृगु जी से कहा है, ऐसा ही भविष्यपुराण अध्याय ३६ में सुमन्त मुनि ने राजा शतानीक की शङ्काओं को समाधान कर कहा है कि कर्म ही ब्राह्मण का हेतु है जैसा कि अनुशासनपर्व अध्याय १४३ में महादेव जी ने पार्वती जी से कहा है। वनपर्व अध्याय १५० में हनुमान जी ने भीमसेन से कहा है कि जो क्षत्रिय काम, क्रोध, द्वेष से रहित होकर उचित रीतिसे दण्ड का विधान करते हैं, वह पण्डितों की जाति को पाते हैं।

इसके अतिरिक्त चाणक्यस्मृति अ० ११ श्लोक १२, १३, १४, १५, १६, १७ में स्पष्टरूप से वर्णन किया है कि जो ब्राह्मण अच्छे कर्मोंको करता हो ऋतुगामी हो वह द्विज तथा जो सांसारिक कर्मोंमें रत हो, पशुओंका पालन बनियाई तथा खेती करने वाला हो वह वैश्य। जो लाखादि पदार्थ तेल, नील, घी, कुसुम, मधु, मद्यका बेचने वाला है वह शूद्र। जो दूसरेका काम बिगाड़ने वाला दम्भी अपने अर्थ का साधने वाला, छली, द्वेषी, मृदु तथा अन्तःकरण में निठुर हो वह बिलार। जो बावली कुआं आदि को बिगाड़ता है वह मलेच्छ। जो देवता गुरु के द्रव्य को हरता या पर-स्त्री के संग गमन करता तथा सब प्राणियोंमें निर्वाह कर लेता, वह चाण्डाल कहाता है। इसी प्रकार अत्रि जी महाराज ने ३७१ श्लोक में इस प्रकार के ब्राह्मण लिखे हैं जिनके लक्षण उपरोक्त कथनसे कुछ २ मिलते हैं। जिनको अधिक जानने की इच्छा हो वह श्लोक ३७२ से ३८१ तक देख लें, हम विस्तार के कारण यहां नहीं लिखते हैं। शिवपुराण ज्ञानसंहिता अ० ११ श्लोक ३ वा ४ में लिखा है कि अल्पाचार थोड़ा वेद पढ़ा हुआ, राजसेवक ब्राह्मण क्षत्रिय ब्राह्मण है और कुछ आचार वाला, खेती, वाणिज्य करने वाला वैश्य ब्राह्मण है। निन्दा करने वाला पराया द्रोह करने वाला चाण्डाल ब्राह्मण है और य० अ० १८ मं० ४८ में कहा है परमेश्वर पक्षपात को छोड़ ब्राह्मण आदि वर्णों से समान प्रीति करता है वैसे ही विद्वान् लोग भी समान प्रीति करें। जो ईश्वर के गुण कर्म और स्वभाव से विरुद्ध वर्त्तमान हैं वह सब नीच और तिरस्कार करने योग्य हैं।

प्यारे भाइयो! इस प्रकार वर्णव्यवस्था को जान धर्मानुसार वर्णों के धर्म करने से ही कल्याण होता है तथा अन्य वर्ण के धर्म करने से पतित होजाता है। जैसे मनु जी ने अ० १० श्लोक ९७ में लिखा है—

एवं स्वधर्मो विगुणो न पारक्यः स्वानुष्ठितः।
परधर्मेण जीवन्हि सद्यः पतति जातितः॥

इसी प्रकार गीता में श्रीकृष्ण महाराज ने अर्जुन से मार्कण्डेय पुराण में मन्दालसा ने अलर्क से और श्रीमद्भागवत स्कंध ३ के २८ अध्याय के २ श्लोक में। हारीतस्मृति अध्याय ७ श्लोक १७-१८। दक्षस्मृति श्लोक ३, ४ तथा अत्रिस्मृति अध्याय १ श्लोक ३२। विष्णुपुराण अंश २ अध्याय ६ में यही प्रतिज्ञा है।

प्यारे भाइयो! जब तक इस देश में गुण, कर्म स्वभाव से वर्णव्यवस्था नियत होने की रीति प्रचलित थी, तब तक प्रत्येक मनुष्य परिश्रम करता था। जबसे यह भय इस देश से निकल गया, अर्थात् जन्म ही से ब्राह्मण क्षत्री वैश्य बन गये उसी दिन से देश की हीन दशा होगई। इस का कारण यही है कि कोई दण्ड देने वाला नहीं रहा, बिना दण्ड के कोई नियम ठीक नहीं रह सकता, जैसे मनु० अ० ७ श्लोक १८ में कहा है-

दण्डःशास्ति प्रजाः सर्वादण्ड एवाभिरक्षति।
दण्ड सुप्तेषु जागर्ति दण्डान्धर्मोविदुर्बुधाः॥

दण्ड ही से प्रजा की रक्षा होती, यही शिक्षा देने वाला; यही सोतों को जगाता है शुक्रनीति में भी लिखा है कि दण्ड ही से धर्म की रक्षा होती है। वर्तमान समय में अपने २ पंचायती दण्ड को भी दूर कर दिया जिससे सब निर्भय होकर जो जिसके जी में आता है वैसा करता है इसलिये पंचायती दण्ड की प्रथा को फिर से प्रचलित करदो।



पतिधर्म।



मान्यवरो, सृष्टि क्रम पर एक साधारण दृष्टि डालने से हमको प्रत्यक्ष प्रकट होता है कि जिस प्रकार आंख के लिये सूर्य्य सूर्य्य के लिये आंख बुद्धि के लिये ज्ञान और ज्ञान के लिये बुद्धि की आवश्यकता है उसी प्रकार स्त्री को पुरुष तथा पुरुष को स्त्री का होना भी परमावश्यक है वरन् जिस प्रकार सूर्य्य के न होने से आंख को तथा ज्ञान के न होने से बुद्धि को कुछ आनन्द नहीं होता इसी प्रकार पुरुषके बिना स्त्री तथा स्त्री के

बिना पुरुष को इस आश्रम में कुछ आनन्द नहीं आता सृष्टि की उत्पत्ति स्थिति और वृद्धि स्त्री जाति पर निर्भर है अर्थात् सन्तान का पालन पोषण करना स्त्रियों का प्रधान कर्म है इन्हीं के पुत्र पुत्रियों पर देश, जाति की भावी उन्नति अवलम्बित है जिनके सदाचारी, धर्मनिष्ठ, परोपकारी शूर-वीर प्रतापी इत्यादि गुण होने से देश पवित्र और प्रख्याति हो जाता है धन संचय करना और उसकी रक्षा करना और उसका सदुपयोग तथा गृह प्रबन्ध की उत्तमता इनके ही बांट है यह देश, काल, समय को देख व्यंजन बनाकर जिस प्रेम से भोजन कराती हैं वह प्रेम की दृष्टि अन्यत्र दृष्टि नहीं आती बीमारी के समय जिस उत्तमता से यह सेवा करती हैं अन्य कोई नहीं कर सकता मुख्य तो यह है कि घर के सुधारने वाली नाना प्रकार के भोग विलासों के देने वाली स्त्रियां ही हैं और ईश्वर आज्ञा पालन करने के लिये अपने माता पिता बहन भाई इत्यादि को त्याग हमारे साथ आती हैं और दुःख पड़ने पर भी हमारा साथ नहीं छोड़तीं वरन् हमारे दुःखों से दुःखी होकर अपने सुखों को तिलांजुली देकर वन और जङ्गलों में मारी २ फिरती हैं सच पूछो तो इस लिये वेद ने इनको घर की रानी, देवी इत्यादि उत्तम नामों से पुकारा है परन्तु हम शोक के साथ कहते हैं कि मनुष्य समाज ने स्वार्थ में आकर स्त्रियों के साथ बड़ा अन्याय कर रक्खा है जब वेद उनको विज्ञान् विषय में समान् अधिकार देता है जैसाकि अथर्ववेद कां० ६ सू० १२३ मं०५ में लिखा है। इसके उपरान्त—परमेश्वर अथर्ववेद कां० १२ सू० ३ मं० २४ में उपदेश करते हैं कि स्त्री पुरुषों की आकृति एक दूसरे से भिन्न २ है परन्तु ईश्वर ने शक्ति दी है कि वे वेद द्वारा अपनी हानि को पूरा करके समान गुणवाले होवें जैसे बीज बोने से पृथ्वी पूरी हो जाती है।

पृथिवीं त्वां पृथिव्यामा वेशयामि तनूः समानी विकृता तएषा।
यद्यद् द्युतं लिखित मर्पणेन तेन मा सुस्रो ब्रह्मणापि तद् वपामि॥

इस के अतिरिक्त अथर्व कांड २६ सू० १२६ में लिखा है स्त्रियां भी मनुष्य शरीर पाकर सब प्रकार विद्या ग्रहण करें कर्तव्य में चतुर बनकर अन्यस्त्रियों तथा प्राणियों से अपनी शोभा अधिक बढ़ावें।

न मत्स्त्री सुभसत्तरा न सुयाशुतरा भुवत। न मत् प्रतिच्य वीयसी न सक्थ्युद्यमीयसी विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः॥

अथर्व कां० १२ सू० २ मन्त्र ३० में साफ लिखा है कि जो विदुषी

स्त्रियां ब्रह्मचर्य्य आदि शुभ गुण वाली होती हैं वे अपने विद्वान् सुयोग्य कुटुम्बियों, पतियों और पुत्र आदि के साथ शरीर और स्वस्थ रह कर बहुत धनवती और सुखवती होकर अग्रगामिनी बनती हैं।

अथर्व वेद कां० १२ सू० ३ मन्त्र ५२ में लिखा है स्त्री पुरुष को योग्य है एक दूसरे को अपने सदृश समझ कर कठिन से कठिन आपत्ति में असत्य न बोलें असत्य ही सब पापों का मूल है।

इन वेद वचनों के हो पर भी स्मृतिकारों ने द्विज का चिन्ह यज्ञोपवीत दूर करके शूद्र बना दिया उनका विवाह ही करना यज्ञोपवीत पति की सेवा करना गुरुकुल का वास बना दिया सच पूंछो तो बिना ब्रह्मचर्य्य पूर्ण विद्या ध्ययन के बिना न्यून अवस्था में अपनी सम्मति से विवाह कर उन के सम्पूर्ण सुखों पर पानी डाल दिया। स्मृतियों, पुराणों में उन पर नाना दोष लगा कर उनकी प्रतिष्ठा को कम कर दिया केवल आभूषणों और वस्त्रों से उनका आदर सत्कार बतलाया उनके मन को विलासता की ओर झुका दिया देखिये याज्ञवल्क्य जी ने कहा है कि पिता, बन्धु, पति तथा जाति के लोग और सास ससुर तथा सब प्रकार के बन्धुगण दुर्गुणों को त्याग कर वस्त्र अन्न, आभूषण सहित प्रीति पूर्वक कोमल वाणी से शक्ति के अनुसार स्त्रियों की पूजा अर्थात् सत्कार करे। जैसा कि—

भर्तृ भ्रातृ पितृज्ञातिः श्वश्रू श्वशुर देवरः।
बन्धुभिश्चस्त्रियः पूज्यो भूषणाच्छादना शनैः॥

मनुजी ने अध्याय ३ श्लोक ५७ में लिखा है कि स्त्रियों को सदा प्रसन्न रक्खे क्योंकि ऐसा करने से कुल की वृद्धि होती है जहां वे क्लेशित रहती हैं वह कुल नष्ट हो जाता है।

शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशुतत्कुलम्।
न शोचन्ति तु यत्रैतावर्धते तद्धिसर्वदा॥

उसी अध्याय के ५८ श्लोक में लिखा है जहां स्त्रियों का यथावत मान नहीं होता है वह कुल उनके शाप से तत्काल ही नाश हो जाता है। अ० ३ श्लोक ५६ में जहां स्त्रियों का आदर होता है वहां देवता प्रसन्न रहते हैं जहां उनका अनादर होता है वहां धर्म कार्य्य का फल प्राप्त नहीं होता—

यत्र नार्य्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवतः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रिया॥

इसके पीछे नीतिकारों ने लिख दिया कि स्त्रियां सब कुछ कर सकती हैं जैसा कि--

किन कुर्वन्तियोषित ।

और भी कहा है कि आग, पानी, स्त्री, मूर्ख, सांप और राजा के कुल इन छः को सावधानी से सेवना योग्य है यह छः शीघ्र प्राणों के हरने वाले हैं जैसा कि—

अग्निरापः स्त्रियो मूर्खः सर्पोराज कुलानि च ।
नित्यं यत्नेन सेव्यानि सद्यः प्राण हराणिषट् ॥

और भी कहा है—

स्त्रियोहि मूलं निधनस्य पुंसः स्त्रियो हि मूलं व्यसनस्य पुंसः ।
स्त्रियो हि मूलं नरकस्य पुंसः स्त्रियो हि मूलं कलहस्य पुंसः ॥

अर्थात् पुरुषों की कंगाली और दुनियां के व्यसनों और कलह की मूर्ति स्त्रियां हैं अधिक क्या नरक को पहुँचाने वाली स्त्रियां हैं । और भी कहा है:-

नारि नारि सब कहैं, नारि नरक की खानि ॥१॥
स्त्री शूद्र द्विज बन्धुनां त्रीय न श्रुतिगोचरा ॥१॥
विश्वासोनैव कर्तव्यः स्त्रीषु राजकुलेषु च ॥१॥

पञ्चतंत्र में लिखा है--

विलीयते घृत यद्वद्ाने ससगस्तथा ।
नारी ससंर्गतः पुंसा षयनश्यति सर्वथा ॥

फिर कवियों ने भी हाथ साफ़ किया किसी ने इनको जहर का प्याला बताया किसी ने सांप से अधिक ठहराया किसी ने घर को दुःखमय बनाने वाली कालीरात्रि कहा है ।

कबीर साहिब ने कहा है—

नारि नसावे तीन गुण, जो नर यासे होय ।
भक्ति मुक्ति निज ध्यान में, पैठि सके नहि कोय ॥
नारी की छाईं परत, अन्धा होत भुजंग ।
कबिरा तिनकी कौन गति, नित नारी के संग ॥

महात्मा तुलसीदास ने कहा है--

ढोल गँवार शूद्र पशु नारी । यह सब ताड़न के अधिकारी ॥ १ ॥

इस प्रकार यह विष दिनों दिन बढ़ता गया और स्वार्थी मनुष्य

समाज ने उनको गिराते गिराते पैर की जूती बना कर जब चाहा एक के होते दूसरा और तीसरा विवाह कर लिया और स्त्रियों को पर्दे के भीतर रहना परमधर्म बतला दिया। सोने चांदी के आभूषणों और उत्तम उत्तम वस्त्रों की लालसा में उनके सारे सुखों पर पानी डाल दिया आप अन्य स्त्री अथवा वैश्याओं के रूप रंग पर मोहित हो उनको जान माल का स्वामी बना दिन रात्रि उन्हीं के घरों को माल मता आभूषण वस्त्र उत्तम उत्तम मेवे स्वादिष्ट मिठाइयां भेजते रहते हैं इधर जरा जरा सी बातों पर विवाहिता स्त्री से दुन्द मचाते रहते हैं जिसके कारण वह हाड़ों की माला बन जाती है जब कि आपने विवाह के समय मंडप में बैठे हुये स्त्री पुरुषों के सन्मुख परमात्मा को साची देकर यह वचन कहे थे कि आज से तू मेरी पत्नी हुई मैं तेरा पति मैं तुझको छोड़ कर अन्य स्त्री से कभी प्रेम न करूँगा तेरी आज्ञा से ही संसारी और पारलौकिक कार्यों को करता रहूँगा तू मेरी मैं तेरा हो चुका क्या आप को इन बातों का स्मरण भी नहीं रहा क्या यह सभ्य पुरुषों को शोभा देता है क्या यह सभ्यता का काम है क्या आपको यह भी स्मर्ण नहीं कि प्रतिज्ञा न पालन करना महा पाप है जब कि आप को वेद यह आज्ञा देता है कि पति प्रयत्न करे उसकी विदुषी पत्नी वेद ज्ञान से शुद्ध होकर शरीर को उचित चेष्टा में जीवन को सुन्दर उपाय में और मन को ईश्वर भक्ति में लगा कर संसार में कीर्ति प्राप्त करे। जैसा कि अथर्व वेद कां० ४ सू० १ मं० ४१में लिखा है।

खे रथस्य खेऽनसः खे युगस्य शतक्रतो।
अपालामिन्द्र त्रिष्पूत्वाकृणोः सूर्यत्वचम्॥

कहिये न कभी आपने इस वेद मंत्र के अनुसार उनको वेद ज्ञान की तरफ ध्यान दिलाया न कभी यह विचारा कि हम उसको क्या वचन देकर लाये हैं हम पर इसका क्या ऋण है हमको किस प्रकार वर्ताव करना चाहिये किस प्रेम जल से उसको सींचना चाहिये इसके सिवा जब गृह में स्त्री पुरुषों ही में नहीं बनती फिर नाना प्रकार के सुखों का क्या कहना सच तो यह है यदि वह किन्हीं कारणों से एक बार रूठती हैं तो पति महाशय उमर भर को रूठ जाते हैं फिर वह स्त्री सास सुसर का कहना भी नहीं मानती न पति को कुछ समझती है केवल बात बात पर लड़ाई झगड़े मचे रहते हैं फिर कोई पुरुष परदेश जाकर साधु हो जाता है कोई २ जाकर अपनी आयु परदेश में ही समाप्त कर देते हैं। यहां घर पर स्त्रियां

बैठी हुई नाना प्रकार के कौतुक रचती हैं कि जिससे इनके बाप दादों के नाम पर धब्बा आता है तथा वंश का भी नाश हो जाता है। अथवा कोई२ उत्सव के समयों पर ऐसा झगड़ा मचाती हैं कि रस निरस हो जाता है, वह आनन्द दुःख जान पड़ता है। पति कुछ कहता परन्तु स्त्री अपनी डेढ़ चावल की खिचड़ी अलग पकाती है। सर्व साधारण घर के भेदों को जानते हैं, जिस से देश देशान्तर में नाना प्रकार की हंसी होती है कुलकी निन्दा सब स्थानों पर होजाती है। प्यारे पुरुषो! इन बातों में क्या धरा है परमात्मा की आज्ञा पालन करें अर्थात् स्त्रीव्रत होकर स्त्री को प्रसन्न करो। यही काम सब से अधिक उसकी प्रसन्नता का है। और जब तक जितेन्द्रिय नहीं होते तब तक किसी प्रकार के सुख नहीं मिलते अर्थात् जो मनुष्य प्रमत्त स्त्रियों में प्रसन्नता को प्राप्त नहीं होते वे ही बली होते हैं।

ऋ० अ०३,अ०५,व० २६ मं० ४अ०२ सू०१८,मं०८ में कहा है—

ममच्चन त्वा युवतिः परास ममच्चनः त्वा कुषवा जगार।
ममच्चिदापः शिशवे ममृड्युर्ममच्चिदिन्द्रः सहसोदतिष्ठत्॥

इसके उपरांत तुम्हारी भी तो प्रतिष्ठा नहीं रहती। य० अ० २३ मन्त्र २१ में परमात्मा राजा को आज्ञा देते हैं कि व्यभिचारी पुरुष और स्त्रीको बांधकर ऊपरको पग और नीचेको शिरकर ताड़ना करनी चाहिये जैसा कि—

उत्सक्थ्या अवगुदं धेहि समञ्जिं चारया वृषन्।
य स्त्रीणां जीव भोजनः॥

धर्मात्मा राजपुरुषों को चाहिये कि जो अपने अनुकूल सेना और प्रजा हो उनका निरन्तर सत्कार करें और जो सेना तथा प्रजा विरोधी हो तथा चोर खोटे वचन बोलने वाले, मिथ्यावादी, व्यभिचारी मनुष्य हों उनको अग्नि से जलाने आदि भयंकर दंडों से शीघ्र ताड़ना देकर वश में करे जैसाकि य० अ० ११ मन्त्र ७७ में कहा है।

याः सेना अभीत्वरीराव्याधिनी रुगणा उत।
ये स्तेना ये च तस्करा स्तांस्ते अग्नेऽपिदधाम्यास्ये॥

मनुस्मृति अ० ८ श्लोक ३७ में कहा है कि व्यभिचारी पापी मनुष्य को जलाने के लिये लोहे की चारपाई पर सुलावे और सब लोग उस पर लकड़ियां डालें उन में पाप करने वाले जलें।

यदि यह कहो पत्नी योग्य नहीं है तो यह अपराध भी तो आपके स्वार्थी पुरुषाओं का है जिन्होंने वेद की आज्ञा का उल्लंघन कर अर्थात् उन के समान अधिकार होते हुए उनको विद्या रत्नसे अलग रक्खा, ब्रह्मचर्य तोड़ निर्बल कर पुरुषार्थ हीन और निर्बुद्धि कर दिया, मित्र, सखा, सहधर्मिणी, सहकर्मणी को गुलाम कह कर स्त्री जाति का अपमान किया देखिये ऋग्वेद अ० ३। अ० । ८। व० १। मन्त्र ४ अ० ५ सू० ५२। मन्त्र २ में लिखा है स्वयम्बर में उस ब्रह्मचारणी के साथ विवाह करना चाहिये जो मेघ के तुल्य गम्भीर शब्दयुक्त थोड़े बोलने वाली पवित्र और विद्या से युक्त हो।

अस्थरु चित्र उपसः पुरस्तान्मिमता इवंस्वरवोऽध्वरेषु।
व्यूव्रजस्य तमसो द्वाराच्छन्ती रवञ्छुचयःपावकाः॥

ऋग्वेद अ० २। अ० ७। व० १५। मन्त्र २। अ० ३। सू० ३१ मन्त्र७ में कहा है वह पत्नी उत्तम होती है जो सर्वांग सुन्दरी बहुत प्रजा उत्पन्न करने वाली शुभ गुण कर्म और उत्तम स्वभाव युक्त उनमें से एक एक मनुष्य को एक २ स्त्री के साथ विवाह कर प्रजा उत्पन्न करना योग्य है। जैसा कि:—

या सुबाहुः स्वंगरिः सुषूमा बहुसूवरी तस्यै विश्पत्नयै हविः सिनीवाल्यै जुहोतन॥

जिस समय में उपरोक्त बातों का मिलान कर विवाह होते थे उस समय विद्वान् पति विदुषी स्त्री के सत्संग से संतानों में रहकर अपना घर स्वर्ग लोक बना परस्पर सहायक होकर धनी और दानी होते थे जैसा कि अथर्व कां० १२ सू० ३ मन्त्र १७ में कहा है।

स्वर्गं लोकमभिनो नयासि सं जायया सह पुत्रैःस्याम गृहणामि हस्तमनु मैत्वत्र मानस्तारीन्निर्ऋतिर्मो अरातिः।

आपने गुण, कर्म, स्वाभाव को छोड़ रूप रङ्ग को देख अथवा बिना देखे विवाह करना आरम्भ कर दिया हालांकि ऋग्वेद अ० ३। अ० ५। व० १८। मन्त्र ४। अ० २। सू० १६। मं० १० में कहा है कि निन्दित स्त्री को छोड़ कर समान रूपवाली दोषों के नाश करने वाली से विवाहकर दोनों मिलकर प्रीतिसे गृहों में रहें।

आःदस्युध्ना मनसा याह्यस्तं भुवत्ते कुत्सः सख्ये निकाम।
स्वे योनौ निषदतं सरूपा विवां चिकित्स दृतचिद्धनारी॥

और ऋग्वेद अ० ३। अ० ५। व० १ मं० ४१। अ० १। सू० ५ में कहा है मनुष्यों जो स्त्री भाई के सदृश अनुकूल नहीं और जो अनुकूल होंगी शत्रु सदृश विरोध करने वाली हो और पापी जन जो सबको पीड़ा देने वाली हो उनको दूर से त्याग दें।

अभ्रातरो न योषणो व्यन्तः पतिरिपो न जनयो दुरेवाः।

पापास सन्तो अनृता असत्य इदं पदम जनता गभीरम्॥

यह परीक्षा जब ही हो सकती है जब आप वेदों की आज्ञानुसार पुत्र, पुत्रियों को गुरुजनों से पढ़ा कर युवा अवस्था में गुण कर्म, स्वभाव को मिलाकर अर्थात् सभ्यता की परीक्षा कराकर विवाह करने की रीति को प्रचलित करें देखिये नीतिकार सुवर्ण की परीक्षा कसौटी पर रगड़ने, काटने तपाने और पीटने से होती है इसी प्रकार मनुष्य की सभ्यता जानने के लिये अध्ययन, आचरण, उत्तम कर्म और गुणों की आवश्यकता होती है। परन्तु शोक है महान् शोक है कि मनुष्य समाज ने स्त्रियों की शिक्षा को जड़ पेड़ से मेट दिया फिर उनमें उत्तम गुण, कर्म, स्वभाव कहां से आवे। इसलिये अगर मनुष्य समाज वेदों को अपना धर्म पुस्तक मानती है तो श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती के लेखानुसार उनको वेदानुकूल ब्रह्मचर्य के साथ विद्या, सुशिक्षा का प्रबन्ध करना कराना चाहिये उसी समय मनुष्य समाज निर्दोष होगी फिर उनको ऐसे क्लेश कभी न होंगे परन्तु जब तक मनुष्य समाज अपने धर्म का पालन न करेंगे कभी कल्याण न होगा इसलिये मनुष्य समाज को निर्दोष होने और अपने पाप से बचने और भारत उद्धार के लिये पंडित समाज से प्रार्थना करें कि जो २ बातें स्त्री जाति के अपमान जनक पुराणों, स्मृतियों, नीति, इतिहासों और काव्य ग्रन्थों में लिखी हैं निकाल कर उनके साथ वेदानुकूल वर्ताव करें अर्थात् पुत्रियों को विदुषी स्त्रियों द्वारा गुरुकुलों में ब्रह्मचर्य के साथ वेदाध्ययन कराकर सुशीला से उनके अन्तःकरण को पवित्र बनाकर गुण, कर्म, स्वभाव को मिलाकर स्वयम्वर के साथ विवाह करने की परिपाटी को शीघ्र प्रचलित करें इसके उपरान्त अब तक जिनके विवाह हो चुके हैं उनके लिये मनुष्य समाज स्वार्थ को छोड़ स्वयं पढ़ावें अथवा वृद्धा स्त्रियों से उनको पढ़वावें, संध्या के समय अपने साथ सन्ध्योपासन करा अग्निहोत्र मिलकर करें तदन्तर प्रेम के साथ काम, क्रोध इत्यादि को त्याग विद्वानों, महात्माओं, गुरुकुल आदि के उत्सवों अथवा योग्य विदुषी स्त्रियों से सत्संग करो समाचार पत्र और उत्तम २

पुस्तकों का पाठ कराइये। इसके उपरांत एक स्त्रीव्रत धारण कर उनके चित्त को अपने वशीभूत कर नाना प्रकार के पाप अवगुण छोड़ उनसे छुड़ाइये फिर इस भारत को स्वर्गधाम बनाकर मनुष्य कर्तव्य को पूर्णकर शांति के साथ दोनों एक सम्मति होकर धनको उपार्जन कर गृहस्थी के अपूर्व सुखों को भोगते हुए अपनी जीवन यात्रा को पूरा कीजिये।



व्योपार

हे प्यारे सुजनों! इस भूमण्डल पर उदर पोषण शरीर पालन तथा धनोपार्जन के निमित्त बहुधा बातें हैं जिनकी गणना खेती चाकरी वणिक और भीक इन चार नामों से करते हैं परन्तु जो जिससे होता है वह उसीसे धन उत्पन्न कर अपना पालन करता है। इस स्थान पर यहभी स्मर्ण रहे इन सबों में खेती उत्तम है यद्यपि इसमें परिश्रम अधिक करना पड़ता है परन्तु जितनी स्वतन्त्रता और निरोगयता इस कार्य्य के करनेसे रहती है अन्य से नहीं प्रति दिन बालबच्चों में रहकर प्रातः स्वयं उत्तम वायु की प्राप्ति होती है और अच्छा शुद्ध अन्न मिलता है परन्तु वर्तमान समय में खेतों में जो विष्टा आदि का मलिन खाद डाला जाता है जिससे अनेकों रोगों की प्रबलता और बुद्धि भ्रष्ट होजाती है इसलिये निकृष्ट खादको कभी नहीं डालना चाहिये। देखिये यजुर्वेद अ० १२ मं० ६६ में परमात्मा ने आज्ञा दी है कि हे मनुष्यों! खेती से अत्यंत सुख प्राप्त होते हैं। खेतों में विष्टा कदापि न डालो किन्तु सुगन्धित द्रव्यों से बीजों को शुद्ध कर बोओ जिस से रोग रहित अन्न पैदा हो कर तुम्हारी बुद्धियों को बढ़ावे जैसा कि यजुर्वेद अ० २२ मन्त्र २३ में लिखा है कि जो मनुष्य यज्ञ से शुद्ध किये जल, औषधि, पवन, अन्न, पत्र, पुष्प, फल, रस, कन्द अर्थात् अरवी, आलू, कसेरू, रतालू, शकरकन्द आदि पदार्थों का भोजन करते हैं वे नीरोग होकर बुद्धि और बल से युक्त हो दीर्घायु होते हैं। इसलिये शुद्ध खाद डाल कृषि विद्या की उपयोगी पुस्तकों के अनुसार कार्य कर धनकी प्राप्ति कीजिये। विद्वानों ने इस विषय में बहुत उन्नति की है उसी प्रकार आपको भी करनी चाहिये।

❀ चाकरी ❀

चाकरी से मनुष्य अपने परिवार को छोड़ अपनी जन्म भूमि को त्यागन कर हजारों कोस जाते हैं, नौकरी कैसी ही प्रतिष्ठित वा कैसी ही बड़े वेतन की क्यों न हो बिना मालिक की आज्ञा के कोई कार्य्य अपनी स्वतन्त्रता से नहीं कर सकता अर्थात् उसे अपनी स्वतंत्रता धर्म तथा इच्छा को रुपये के पलटे में बेचना पड़ता है अतएव चाकरी की समता कूकर से दीगई है। क्योंकि इसमें सुख के स्वप्न में भी दर्शन नहीं होते, जिस प्रकार तुलसीदास जी ने कहा है 'पराधीन सपनेहु सुख नाहीं' धर्म शास्त्र में लिखा है कि जो पराधीन काम हों उनको प्रयत्न से त्यागन करे इस प्रकार जो स्वाधीन कर्म हों उनको प्रयत्न से सेवन करे, यथा-

यद्यत्परवशं कर्म तत्तद्यत्नेन वर्जयेत्।
यद्यदात्मवशन्तुस्यात्तत्तत्सेवेत यत्नतः॥

ऐसा ही य० अ० १५ मन्त्र-५ में उपदेश है।

जितने पराधीन कर्म हैं वे सब दुःख स्वरूप हैं जो स्वाधीन हैं वे सब सुखदायक हैं, अर्थात् संक्षेप से यह सुख और दुःख का लक्षण है, जैसा कि मनु जी ने कहा है—

सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम्।
एतद्विद्यात्समासेन लक्षणं सुख दुःखयोः॥

किसी चतुर स्त्री ने कहा है:-

नींद नारि भोजन हरो। तो तुम कन्थ चाकरी करो॥

देखिये मौलाना हाली नौकरी को कैसी घृणित दृष्टि से देखते हैं।

नौकरी ठहरी है ले दे के अब औक़ात अपनी।
पेशा समझे थे जिसे होगई वह ज़ात अपनी॥
न दिन अपना रहा और न रही रात अपनी।
जा पड़ी ग़ैर के हाथों में हर एक बात अपनी॥
वर्ना दिन रात फिरें ठोकरें खाते दर दर।
सनदें चिट्ठियां पर्वाने दिखाते दर दर॥
चापलूसीसे दिल एक एक का लुभाते दरदर।
ताकि जिल्लत से बसर करने की आदत होजाय॥
नफस जिस तरह बने लायके ख़िदमत होजाय।

चाकरी करने वालों में बहुधा निर्धन ही रहते हैं और बिना धन के सुख और आनन्द नहीं मिलते इसके उपरांत भारत देश की मनुष्य गणना ३१ करोड़ है इन सबके लिये उच्च पदकी नौकरियां कहां से आसकती हैं। इसलिये इस ओर ध्यान देना ठीक नहीं इस हेतु किसी कवि ने कहा है:-

उत्तम खेती मध्यम बान, निकृष्ट चाकरी भीक निदान।

घूंस-बहुधा भाई नौकरीको व्योपार आदिसे इसलिये उत्तम कहते हैं कि व्योपार इत्यादिमें अधिक रुपये की आवश्यकता होती है तिसपर टोटे का भय प्रति समय लगा रहता है और नौकरी में मासिक वेतन के उपरांत चपरासी से लेकर बड़ी पदवी तक यथा योग्य प्राप्ति होती है। उन सुजनों को विचार करना चाहिये कि प्रथम तो घूंस लेना महा पाप है, दूसरे जो द्रव्य इस भांति से आता है वह हमारी उन्नति को रोकता है। क्योंकि परमेश्वर भले मनुष्यों की सहायता करता है न कि बुरों की। तीसरे जो धन जिस प्रकार आता है उसी भांति जाता है, अतः चारदिन की चांदनी पर लोट पोट न होना चाहिये क्योंकि वह हमारे तुम्हारे सुख चैन रूपी पेड़ की जड़ काटता है। कहा है-

रहे न कौड़ी पाप की, ज्यों आवे त्यों जाय।
लाखन को धन पाय के, मरे न कफ्फन पाय॥

और ऋग्वेद अ० १ अ० ३। व० २४। मंत्र १ अ० १८८। सूक्त २४ मंत्र ३ में कहा है कि चोर अनेक प्रकार के होते हैं, कोई डाकू, कोई कपट से हरता, कोई मोहित करके दूसरोंके पदार्थों को ग्रहण करता कोई रात में सुरंग लगा कर ग्रहण करते, कोई हाथ से छीन लेते, कोई नाना प्रकार की व्योपारिक दुकानों में बैठ छल से पदार्थों को हरते, कोई घूंस अर्थात् रिशवत लेते, कोई भृत्य होकर स्वामी के पदार्थों को हरते, कोई छल कपट से औरों के राज्य को स्वीकार करते, कोई धर्म उपदेश से मनुष्यों को भ्रमा कर गुरु बन शिष्यों के पदार्थों को हरते इत्यादि ये सब चोर हैं, नृप श्रेष्ठ इनको निकाल धर्म से राज्य का पालन करे। जैसे—

अपत्यं परिपन्थिनं मुषीवाणं हुरश्चितम्।
दूरमधि श्रुतेरजा॥ ३॥

यह वार्ता तो स्पष्ट है कि घूंसिया लोग हजारों की घूंस लेने पर भी कौड़ी २ को तंग रहते हैं, क्योंकि उनका धन शराबखोरी आदि फिजूल-खर्ची में जाता है, यदि इन से बच गया तो चोरी आदि दैवी आपत्तियों में

पड़ जाने से तमाम हो जाता है, तथा जब कभी इनका भेद सरकार में खुल जाता है तो बड़ी २ हानियां उठानी पड़ती हैं अतः सभ्य सज्जनों को ऐसे धन की कभी इच्छा न करनी चाहिये।

❁ भीख ❁

यह बहुत ही बुरी है क्योंकि इस से घर घर जाना पड़ता तथा नाना भांति के कटु वचन सहने पड़ते हैं तिस पर भी पेट भर नहीं मिलता, फिर ऐसे मनुष्यों की प्रतिष्ठा नाम मात्र को भी नहीं होती, अतः यह काम अन्धे लूले, लंगड़े आदि का है जो परिश्रम नहीं कर कसते। न कि हट्टे कट्टे संड मुसंडों का।

वणिज अर्थात् व्योपार।

वणिज में नाना प्रकार के लाभ हैं प्रथम धन की अधिक प्राप्ति दूसरे देशाटन करने से मनुष्य बड़े चतुर गुणी तथा बुद्धिमान हो जाते हैं। तीसरे अन्य देशीय जनों से समागम या मेल होने से प्रीति का अंकुर जम जाता है कि जिससे अनेकान कार्य सिद्ध होते हैं नाना प्रकार की वस्तु यहां की वहां और वहां की यहां लाते तथा ले जाते हैं कि जिसके कारण कारीगरी अर्थात् शिल्प की उन्नति होती है नाना प्रकार की नवीन अद्भुत तथा अनोखी वस्तु कल और यन्त्रादि बनने लगते हैं जिसके द्वारा मनुष्य धनी हो जाते हैं। ठीक कहा है कि "व्यापारे वसते धनम्" अर्थात् व्योपार से ही उत्तम धन की प्राप्ति होती है। इस लिये विद्या पढ़ने के पश्चात् तन मन से व्यापार करने का अभ्यास करो खेती को नाना भांति से उन्नति दो, उनके अर्थ नवीन वा प्राचीन दोनों रीतों को काम में लाओ कि जिससे सब प्रकार के सुख तथा आनन्द मिलने लगें।

प्यारे भाइयो! व्योपार से देशको यथार्थ लाभ होते तथा वह चमत्कारी देखने में आती है कि जिसका पारावार नहीं। देखो पूर्व समय में भारत की क्या दशा थी और अब क्या होगई। श्रीमान् अंग्रेज बहादुर इसी व्योपार की बदौलत बादशाह होगये। जब यह लोग मेज पर भोजनों के अर्थ बैठतेहैं तो चीनी के बर्तनों में बङ्गाल के चावल, अफगानिस्तान के मेवे, फ्रांस की शराब, अमेरिकाकी मछली आदि नाना पदार्थ चुने जाते हैं यह सब केवल व्योपार का ही फल है। परन्तु यह भी स्मरण रहे कि व्योपार की वृद्धि जब ही होती है जबदेश में कारीगरी फैलाई जावे जिससे

नाना भांति की वस्तु तथा अद्भुत कला यन्त्रादि भी मुल्कमें बनने लगें। जिस प्रकार इस समय इंगलैंड आदि देशों में हो रहा है, जहां से करोड़ों रुपये का माल भारत को आता है और आतेही दूर हो जाता है। देखिये किस प्रकार कपड़े के कलों के बनेहुये आतेहैं, सूत वारीकतथा नाना भांति के कल यन्त्र हथियार अंग्रेजी बूट जूते, छड़ी, सन्दूक, कागज, पिटारी, भाड़ फानूस इत्यादि हमारे गृहों में सब सामान उधर ही का दीख पड़ता है। यहां तक कि सुई तथा पेंचक दियासलाई, मेज, कुर्सी आदि भी, फिर भला वह देश क्योंकर मालामाल न हो? इसके उपरांत—

वह लोग अमेरिका, आस्ट्रेलिया आयर्लैंड, स्कन्दरिया, हिन्दुस्तान आदि प्रत्येक स्थान पर बेधड़क आते जाते तथा लाभ उठाते हैं। अथोपरांत देशान्तर की अपूर्व अनोखी वस्तु लाकर उनको अपने देश में बनवाकर प्रचार कराते हैं। इन सबको भी रहने दीजिये। प्रथम अपने शरीर पर दृष्टि डालिये, सिर से पैर तक तो सिवाय विदेशी वस्तुओं के देशी एक भी न पाइयेगा।

प्यारे सुजनो! इसका क्या कारण है? क्या सदैव से इस देश की ऐसी ही दशा चली आती है कि प्रत्येक लोग एंडमान के निवासियों की भांति कपड़ों तक के लिये परदेशियों के आधीन रहें? कदापि नहीं, स्वप्न में भी नहीं! यदि पहिले से भारतवर्ष की ऐसी दशा होती तो निश्चय जानिये कि आज तक भारतवर्ष का नाम ही नहीं रहता दासत्व स्वीकार करने पर भी एक समय का भोजन न मिलता। नहीं २ यहां प्राचीनकाल में ऐसी शिल्पविद्या की अधिकता थी कि कोई विलायत इसकी समानता नहीं कर सकतीथी। ढाका की मलमल अरब तक चमकती थी, बनारस की साड़ियां सारे संसार को ढकती, गुजरात के मिसरू मिश्र तक भड़कते थे, फर्रुखाबाद के लिहाफ ईरान तक पहुँचते थे, ठाकुरद्वारे की छींटें चीन की छींटों को चुनौती देती थीं, चन्देरी की जरबफ्त भारत का जरी का नमूना सभी देशों के अधिपतियों के चित्त को लुभाती थीं, नादया की दरियाई ने तातार के मरुस्थल में मानों दरिया बहा रक्खे थे। अभी थोड़े दिनकी बात है, यहां से हजारों रुपयों का माल जहाजों पर लाद अपने देश को ले जाते थे और लाखों का लाभ उठालाते थे। चार सौ वर्ष भी नहीं बीते कि योरुप निवासी आर्यावर्त में आने के अर्थ सीधा मार्ग ढूंढने के लिये कैसे व्यग्र हुए थे। अरब आदिके देशवासी भारत के वाणिज्य पदार्थ को मिश्र

देशों में होकर योरुप को ले जाते थे, इनसे सौदागर लोग इतना लाभ उठाते थे कि जितना समस्त भूमण्डल के अन्य किसी में होना असम्भव था। यही कारण था कि अंग्रेजों को यहां आने की हलचली मच रही थी। उस समय कोई ऐसा देश न था जहां के लोग यहां आने की अभिलाषा करते हों। अङ्गरेजों ने जो फर्रुखसियर से जमींदारी ली थी वह इस अर्थ को सिद्ध करने के लिये ही थी कि वहां जुलाहे बसाकर उनसे कपड़ा खरीद कर सीधा ले जाया करें और घर घर न फिरना पड़े। क्या महिमा है उस सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर की कि हिन्दुस्तान के जुलाहे तो वहीं रहे, अङ्गरेज भारत से वस्त्रादि लेजाने के पलटे इङ्गलैंडादि से वस्त्रादि माल भारत में लाने लगे, यही कारण है कि वर्त्तमान समय में भारत के समस्त विभागों में इङ्गलैंड ही इङ्गलैंड हो रहा है।

वर्तमान समय में इनकी विद्या, साहस तथा एकता की तुलना कोई नहीं कर सकता, जो आज यह अग्रशोची हैं अन्य कोई दृष्टि नहीं आता। शूरवीरता में पूरी योग्यता कि जिस के कारण पूरे सभ्य गिने जाते हैं। शोक तो हमको अपने ही देश भाइयों पर है जो व्यापार व कारीगरी की ओर दृष्टि भी नहीं उठाते, साहस का तो नामही मेट दिया, एकता के स्थान पर फूट से काम लिया जाता है शूरवीरता पर छार डालदी है। सच पूंछो तो आलस्य में रहना, धन का अभिमान करना और अधिक ब्याज लाने को ही स्वर्ग समझते हैं। क्योंकि घर बैठे ही बैठे माल आता है, चुपचाप सूद की दर प्रति दिन बढ़ाते चले जाते हैं कि जिसके कारण सामान्यजन अधिक पिसे जाते हैं जिससे हमारे देश की और भी हानि हो रही है।

प्यारे सज्जनों! इन बातों से क्या कभी देश की उन्नति हो सकती है? कदापि नहीं। इसके उपरांत जो माल विलायत से आता है उसके पलटे यदि यहां से जाता है तो हम यही कहेंगे कि हमारे जीवनमूल या भोग विलास की मूल वस्तु जैसे गेहूँ, रुई, रेशम, सरसों आदि और जिनके बदले में वहां से वही मेम बीबी लोगों की तसवीरें, कांच के भांति २ के गिलास, लोहा तथा काठ के खिलौने, बूटजूते, बारीक साफ़ तार आदि जिनको देख मनुष्य का मन फड़क जाता है एवं हम लोग जेवर बेचकर उन वस्तुओं से घर भर लेते हैं। फिर अन्नादि के चले जाने से यहां छः सेर बिकने लगा है जिसके कारण लाखों जानें मुफ्त चली जाती हैं। इसका मूल कारण भी यही है एतद्देश निवासी शिल्प व्योपार की ओर

ध्यान नहीं देते । यहां प्रतिदिन तङ्गी आने का जो कारण है, वही कारण यहां कुल वैभव घटाने का है, क्योंकि हमारे देश के कारीगर हाथ पर हाथ धरे रोते रहते हैं, उनको शाम तक पेट भर रोटी नहीं मिलती, लाखों मनुष्य भीख मांगते फिरते हैं यह केवल विलायती वस्तुओं का आदर करने का ही कारण है । हमारे यहां सौदागरी की यह दशा है कि जिस को फेरी कहना चाहिये, क्योंकि कोई तो बनारस से लाहौर ले जाता है, कोई कलकत्ता से बम्बई, मद्रास । कहने का मुख्य प्रयोजन यह है कि हमारे सौदागर यहां का वहां तथा वहां का यहां लौट फेर करते हैं, क्या भला ऐसी सौदागरियों से हमारे देश का प्रकाश हो सकता है? कदापि नहीं । क्योंकि एक भाई से लिया दूसरे को दिया, फिर भला उन्नति की कौन सूरत? क्योंकि जिस तालमें से सैकड़ों मोरियों द्वारा पानी बाहर जाता हो और आने का एक भी द्वार न हो तो बतलाइये कि वह ताल कब तक भरा रहेगा?

प्यारे भाइयो! यह भी एक स्वाभाविक बात है कि जिस किसी वस्तु की अधिक उन्नति हो जाती है जैसे कि प्रातःकाल, मध्यानकाल, सायंकाल बाल्यावस्था, तरुणावस्था इसी भांति सदा धन, पराक्रम, विद्या आदि में घटती बढ़ती होती रहती है । जैसाकि एक समय भारत ही भारत था, जब इसके बुरे दिन आये तो मिश्र, यूनान, रूमने आनन्द उड़ाया । फिर समय के फेरने इनको भी लिया, अब वर्त्तमान समय में इङ्गलैण्ड, जापान, जर्मनी अमेरिका की कला जगमगा रही है, चारों ओर उन्हीं का डँका बज रहा है। पदार्थ विद्या में तो यहां तक हाथ मारे हैं कि मनुष्यगण देख कर चकित रह जाते हैं । देखो तार में हजारों कोस के समाचार आन की आन में आते जाते हैं, समुद्र में जहाजों के आने जाने के मार्ग देखिये । चीन, जापान, अमेरिका, आस्ट्रेलिया, इङ्गलैण्ड, हिन्दुस्तान आदिसे नानाप्रकार के पदार्थ लदे हुये चले जाते हैं । कलों से कैसा कपड़ा बुना जाता है, तोप कैसा दूर गोला फेंकती है, घड़ी कैसा समय बताती है, नोट कैसा काम देते हैं, छापे को देखिये कि पुस्तकों को छाप कर घर २ कर दिया और कौड़ियों में मिलने लगीं, अन्धों के पढ़ाने के अर्थ कैसे २ यंत्र निकाले हैं डाक्टरी के पूरे उस्ताद हो गये हैं, ज्योतिष भूगोल आदि में वह उन्नति की है कि जिस को देखकर मन उछलता है बूटियों के खोज में कैसा

परिश्रम किया है पहाड़ नदी आदि में कैसे २ काम किये हैं, सच बात तो यह है कि इस समय जो कुछ है वह सब योरुप अमेरिका का प्रभाव है।

प्यारे सुजनों! इङ्गलैंड, जापान अमेरिका आदि देश में जाकर इन विद्याओं को सीख अपने देश में आकर प्रचार करो ताकि भारत की सुदशा हो जाये, नहीं तो चौपट हुआ जाता है, क्योंकि अब विना विदेश गये भारतवासियों का काम किसी प्रकार से नहीं चल सकता। यदि भारतवासी आज राजनैतिक अधिकार प्राप्त होने की इच्छा करें तो हमें विदेश ही एक अवलम्ब देख पड़ता है। यदि हम विज्ञान आदि विविध विद्या सीखना चाहें तो भी विदेशही के बाध्य हैं, यदि न जावें तो हमने अपने सुख को खोया, अपने देश की भलाई में असमर्थ हुये, आप निकम्मे और निर्धन रहे, अतः जिस तरह देखो विदेश विना हमारी गति नहीं।

प्यारे सुजनों! विचार कर देखिये, आज कौन ऐसा हितैषी मनुष्य है जो विना विदेश गये दीनभारत भूमिका किंचित्मात्रभी उपकार करसके? क्या राजनैतिक क्या विद्या विषय, सभों के अवलोकनार्थ आन्दोलन करने, हानि लाभ उठाने का एक मात्र आज हमें विदेश ही हो रहा है। अधिक क्या कहें, आज विदेश विना हमारा छुटकारा नहीं। हमारी चुटिया विदेश के हाथ है। जब हम इस प्रकार से विदेश के आधीन हो रहे हैं तो यदि विदेश जाने का उपाय न करें तो क्योंकर भलाई कर सकते हैं? इस लिये इस ओर ध्यान अभीष्ट है।

हे सुजनों! जैसे मलयागिरि पर चन्दन की, असभ्य देशों में ईश्वर वन्दना की, बागों में फूलों की और बनों में फलों की चाह नहीं, ऐसे ही हमारे स्वदेशी भाइयों को देशान्तर गमन करने को मन नहीं होता। घर की अँधेरी कोठरी में, जन्म भूमि की कुंजगलियों में घुट घुट कर मर जाते हैं, जन्म भूमि में लंघन करके मरना अङ्गीकार है, परन्तु घर के बाहर जाने की सौगन्ध, वरन नगर को छोड़ना महा संकट जानते हैं जंम भूमि की प्रीति ने उन्हें ऐसा मोहित कर रक्खा है कि उससे अलग होने को उनका जी नहीं चाहता। जैसे कोई विषयी किसी रूपवती वेश्या पर आसक्त होकर अपनी धन प्रतिष्ठा गौरव और तन को अर्पण करके निर्लज्ज

हो उसके द्वार का दास बन जाता है, वही दशा हमारी जन्मभूमि के स्नेह में बीत रही है। परन्तु यह स्नेह वास्तविक स्नेह नहीं कहा जा सकता, जन्मभूमि में बैठे २ उसके नाम को कलंकित कर देना, जन्मभूमि को प्यार करना मान रक्खा है।

हे प्यारे भाइयो! उत्तम पुरुषों की भांति उद्योग में लग जाइये, चाहे प्रथम किसी प्रकारके विघ्न भी सहने पड़ें क्योंकि बुद्धिमान वही हैं जो जिस कार्य को आरम्भ करते हैं फिर उसे विना पूर्ण किये नहीं छोड़ते, मध्यम पुरुष विघ्न होने पर उस कार्य्य को छोड़ देते हैं तथा निकृष्ट जन विघ्नों के भय से कार्य को आरम्भ ही नहीं करते। यथा—

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः। प्रारभ्य विघ्नविहिता विरमन्ति मध्याः॥
विघ्नैस्सहस्रगुणितैरपि हन्यमानाः। प्रारभ्य चोत्तमजना न परित्यजन्ति॥

अथर्ववेद कां० २० सू० १२५ मं० ४ में परमात्मा उपदेश करते हैं कि जो मनुष्य कार्य्य आरम्भ कर के आलस के मारे काम को छोड़ देता है वह यश नहीं पाता इस लिये विद्वानों से शिक्षा पाकर राज्य आदि कार्य्यों को पुरुषार्थ से चलाये जैसा कि—

नहि स्थूर्य् तुथा यानमस्ति नोत श्रवो विविदे संगमेषु।
गव्यन्त इन्द्रं सख्याय विप्रा अश्वायन्तो वृषणं वाजयन्त॥

सच तो यह है कि जिस किसी ने उद्योग किया उसने फल पाया। देखो प्राचीन काल में योरुप की क्या दशा थी, जिस समय खलीफा वलीद ने योरुप को विजय करने पर कमर बाँधी, हस्पानिया तक कोई रोकने वाला न मिला। वही हस्पानियां वाले अर्थात् स्पेन तथा पोर्तगाल वाले ऐसे बढ़े कि अमेरिका अर्थात् नई दुनियां को जाना॥ वही अंग्रेज जो छः सो वर्ष पहिले उन्नतिशाली नहीं गिने जाते थे, सो अब सारे संसार के शिरोमणि गिने जाते हैं। जिन यूनानियों की शिक्षा से योरुप सभ्य बनावे वर्षों पराधीन रहे और जिस रूस के मुसलमान लोग निर्धन तथा निर्बल जान छोड़ कर चले आये थे वहां ही के रूसी धरती के छटे भाग के मालिक हो गये। जिन पारसियों ने खलीफा उमर के मारे ईरान छोड़ कर भारत वास किया था वह कैसे हो गये, बीसियों जहाज चले आते हैं बीसियों दस २ भाषा लिख पढ़ सकते हैं, देश देशान्तर में करोड़ों रुपये का व्यापार करते हैं, स्त्रियों को ऐसी शिक्षा देते हैं कि वह फिरंगियों की समता करती

हैं अब आपको क्या २ गिनावें ? संसार में सबकी घटती बढ़ती इस उद्योग के आधीन है। यजुर्वेद में परमात्मा आज्ञा देते हैं कि जिस प्रकार सांस ऊपर नीचे आती जाती है इसी प्रकार शिल्प विद्या अर्थात् जहाज चलाने की विद्या को जानने वाले मनुष्य भ्रमण करते रहे अर्थात् जहाजों में घूमते रहे जैसे कि सांस काम करती है उसी प्रकार हम लोग भी समुद्र में फिरें ऐसे कर्म करने वाले मनुष्यों को वह परमात्मा शुभकारी नामों से पुकारते हैं तथा अन्त में उपदेश करते हैं कि देश देशान्तरों में फिर एक दूसरे से व्यौपार करो क्योंकि देश में धन की उन्नति व्यौपार से तथा कारीगरी से होती है जिसके बिना किसी प्रकार के आनन्द स्वप्न में दर्शन नहीं होते और अथर्ववेद कां० ३ सू० १५ मं० २ में लिखा है कि व्यौपारी लोग विमान, रथ, नौकादि द्वारा आकाश, भूमि, समुद्र, पर्वतादि देश देशान्तरों में जाकर अनेकान प्रकार व्यौपार कर मूल धन बढ़ावें और धनाढ्य होकर घर आवें।

ये पन्थानो बहवा देवयाना अन्तराद्यावा पृथिवी सं चरन्ति।
ते मा जुषन्तां पयसा घृतेन यथा क्रीत्वा धनमा हराणि॥

ऋग्वेद अ० २। अ० २। व० ७। मं० १ अ० ११। सू० १४ में लिखा है कि विद्वानों को चाहिये कि जैसे मनुष्य घोड़े आदि पशु पैरों से चलते हैं उसी प्रकार चलने वाली नावें रच कर एक द्वीप से दूसरे द्वीप वा समुद्र में युद्ध अथवा व्योपार के लिये जाकर ऐश्वर्य करें और इसी वेद के अ० २। अ० ४। व० २८। मं० १। व० २४। सू० १८२। मं० ६ में लिखा है कि जब मनुष्य नौका में बैठ कर समुद्र के मार्गसे जाने की इच्छा करे तब बड़ी नाव के साथ छोटी छोटी नावें उसके साथ रख कर समुद्र में आवें जावें। इसी प्रकार अनेक मंत्र इस विषय के लिये हैं वहाँ यह भी शिक्षा है कि जो लोग भ्रमण करने के लिये देश देशान्तरों को जावें वे सदा बाहर ही न रहें किन्तु घर आकर अपने भाई बन्धुवों आदि के साथ मिल बैठकर फिर ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये एक देश से दूसरे देश में आवें जावें जैसा कि ऋग्वेद में लिखा है।

परा याहि मघवन्ना च याहीन्द्र भ्रातरुभयत्रा ते अर्थम्।
यत्रा रथस्य बृहतो निधानं विमोचनं वाजिनो रासभस्य॥

अथर्व कां० ७ सू० २६ मं० ५ में यह भी उपदेश है जो मनुष्य वाणिज्य, युद्ध आदि कार्य्यों के लिये दूर देशों में जावें वह अपने देश को भी लौट कर आवें और जिस प्रकार परदेश गया हुआ पुरुष प्रीति से घर वालों को स्मरण करता रहता है उसी प्रकार घर वाले प्रीति से उस का स्मरण रक्खें जैसा सू० ६० मं० ३ में लिखा है।

अब आप इन उपरोक्त वार्ताओं को जान पूर्व भारतवासियों की भांति उद्योग को धारण कर विलायत, इङ्गलिस्तान, जर्मनी, पेरिस आदि देशों में जाकर शिल्प विद्या तथा उपयोगी वा लाभकारी बातें सीख फिर अपने देश में आकर उन बातों का प्रचार कीजिये और व्यापार के अर्थ अन्य क़ौमों की भांति पर्यटन कीजिये तो फिर भारत की कुदशा न रहेगी। जैसा कि वर्त्तमान समय में मदरास, बम्बई, भड़ोच, अहमदाबाद, इन्दौर, कानपुर, कलकत्ता, आदि नगरों में कपड़े सूत आदि और लखनऊ में कागज़ कलों से बनता है, परन्तु वह सब कलें इतना सूत तथा कपड़ा अथवा कागज़ नहीं बनातीं कि जितनी भारतवर्ष को आवश्यकता है अभी तो इनकी दसबीस गुणी हों और उन में भांति २ के वस्त्र तथा नाना भांति की आवश्यक वस्तु बनने लगें तो भारत के पेट में चैन पड़े। जिस प्रकार इलाहाबाद में देसी तिजारत के नामसे एक कम्पनी नियत हुई है जिस में ढाके की मलमल मुरादाबाद के कपड़े नगीने के क़लमदान, बरेली की दरी अमृतसर के धुस्से, लोई, बनारस की धोती, अहमदाबाद आदि भारत के प्रसिद्ध २ नगरों की प्रसिद्ध वस्तु बिकती हैं उसी प्रकार और भी दुकानें भारत के नगरों में होनी चाहियें कि जिससे हमारी देशी वस्तुओं को काम में लाने का प्रचार हो जावे।

हमारे देशी कारीगरों को उचित है कि वस्तु बनाने में परिश्रम करें कि जिस से उनको भी सुख चैन मिले तथा हमारे भारत से व्योपार की वस्तु बाहर जाने लगे तो यहां भी धनकी बढ़ती होने की पूर्ण आशा हो जावे। ऋग्वेद अ० ३। अ० ३। व० २६। मन्त्र ३ अ० ५। सू० ५४ मन्त्र १३ में उपदेश है कि जिस प्रकार पुरुष लोग विद्या का अभ्यास करें वैसे ही स्त्रियाँ भी करके लक्ष्मी युक्त हों दोनों स्त्री पुरुष आलस्य त्याग करके शिल्प विषयक सम्पूर्ण कर्मों को सिद्ध करें।

निधु्रुवथा मरुत ऋषिमन्तो दिवो मर्या ऋतजाता अयासः।
सरस्वती शृणवन्यज्ञियासो धाता रयिं सहवीरं तुरासः॥

अथर्व वेद कांड २० सू० १३० मन्त्र ६ में परमात्मा उपदेश करते हैं विवेकी क्रिया कुशल विद्वानों से शिक्षा लेता हुआ विद्या बल से चमत्कारी नवीन २ अविष्कार करके उद्योगी होवे ।

इस कारण हमारे देशके राजा, महाराजों, सेठ साहूकारों को इस ओर ध्यान देकर अपने२ नगर तथा राज्यमें शिल्प विद्याके स्कूल खोलने चाहिये स्त्री, पुरुषों के हाथ से और कलों से काम करना सिखलाइये जिससे समस्त वस्तु भारत में बनने लगे इसके उपरांत आप और अन्य जन सब देशीयवस्तुओं को काममें लाइये जिस प्रकार हमारे पुरानेपुरुषा अपनी देशी वस्तुओं का आदर सत्कार करते थे कि जिससे देशी कारीगरी का प्रचार हो देखो अङ्ग्रेज बहादुर इंग्लैंड, फ्रांस जर्मन वाले अपने देश की बनी वस्तुओं को काम में लाते हैं यदि आप ऐसा करने लगोगे तो यहांकी वस्तुयें उतना और सस्ती बिकने लगेंगी उसी समय भारत का सौभाग्य जगने लगेगा ।

———o———

व्यौपारियों को निम्न लिखित बातों पर भी सदा ध्यान रखना चाहिये ।



(१) छोटे छोटे व्योपारी—बड़े बड़े व्योपारियोंके आधीन अथवा पत्ती डाल कर साझे में जिसको अंग्रेज़ी में कम्पनी कहते हैं बनाकर काम करें।

(२) जो व्यापारी अनेक देश की भाषाओं को जानते हैं—समाचार पत्रों को पढ़ते हैं—अथवा अपने गुमाश्तों या और किसी प्रकार से भूमण्डल के देशों की पैदावार, भाव, और वहां लाने या अपने देशसे ले जाने के व्यय को जानते और अपने और अन्य देशों की ज़रूरियात पर ध्यान रख कर व्यौपार करते हैं वे लाभ उठाते हैं ।

(३) उत्तम स्वभाव वाले अनुभवी पुरुषों की सम्मति से मन लगा कर काम करे ।

(४) व्योपार में जो पुरुष कुशल, सर्व हितकारी हो उसको मुखिया प्रधान बनाकर धन से व्योपार करे ।

(५) जो व्योपारी अपनी चूक को मान कर विद्वानों की सम्मति से

अपना सुधार करते हैं वे बड़े बुद्धिमान व्योपारी होते हैं।

(६) बड़े २ व्योपारियों को अपनी २ कोठियों के लेन देन का हिसाब प्रतिदिन जानना चाहिये और दौरा करके वहां के प्रबन्ध पर दृष्टि रख योग्य अनुसन्धान करना अभीष्ट है।

(७) नये व्योपारियों को पुराने व्योपारियों से व्योपार के हानि लाभ की रीतें समझ कर कुव्यवहारियों के फंदे में न फंसना चाहिये।

(८) सब कपरीतानुसार नियत समय पर देश,काल को देख आगे पीछे पूंजी को ध्यान में रखकर करना उचित है।

इस के उपरांत आप अन्यों का विश्वास करें आप विश्वासी होने के योग्य बने सम्मति से विचार पूर्वक, सत्य, वचन कह कर ईर्षा द्वेष को त्याग संसार की भलाई और अपनी भलाई पर दृष्टि रख परमेश्वर से प्रार्थना करते हुए पुरुषार्थ पूर्ण बल शांति से व्योपार आदि कार्य्यों की उन्नति कीजिये परन्तु न्यून अवस्था के विवाह के कारण शरीर में बल नहीं विद्या नहीं उत्तम शिक्षा नहीं-उत्तम संस्कार नहीं फिर क्योंकर देश की उन्नति हो। सुयोग्य महिलाओ और प्यारे भाइयो यदि आप चाहते हैं कि देश का उद्धार हो तो एक सम्मति कर इन सत्यानाश करने वाली बातों को एक दम से उठा ब्रह्मचर्य्य का पालन कर, करा विद्या पढ़ बुद्धि द्वारा देश देशान्तरों के वृत्तांत जान अपने देश में खेती, शिल्प और व्योपार में उन्नति कर भारत को उन्नति के शिखर पर चढ़ा दीजिये जिससे अन्य देश वालों के सन्मुख भारतवासी भी बात कहने योग्य होजावें।



स्त्री धर्म।

प्यारी महिलाओ! वेदानकूल जीवन का प्रधान-फल मुक्ति पाना ही माना गया है उसकी प्राप्ति के लिये सबसे प्रथम तुमको गुरुकुल ब्रह्मचर्य्य के साथ विदुषी अनभवी स्त्रियों से विद्या और सुशिक्षा प्राप्त कर-तुल्य गुण, कर्म और स्वभाव के अनुकूल विद्वान, पुरुपार्थी, धार्मिक सज्जन के साथ विवाह के पश्चात गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर प्रति दिन प्रातः पति से प्रथम उठ शौचादि से निवृत्त हो, परमात्मा का ध्यान कर धर्म के दश

लक्षणों के यथावत् पालन करने का उद्योग कर बड़े प्रेम प्रीत के साथ पति में ध्यान रखती हुई उनके साथ अग्निहोत्र, और स्वाध्याय तथा गृह कार्य्यों को यथावत करना ही तुम्हारा परम धर्म और परम कर्तव्य, है।

स्त्री का पति ही सर्वोपरि धन, वही उसका इष्टदेव है, उस की सेवा करने तथा आज्ञानुवर्तिनी होने से परम सुख अर्थात् वैकुण्ठ मिलता है और वही इस भवसागर में सुखों को देता, आनन्द को बढ़ाता और उसी से जीवन सुफल होता है वही सौभाग्य की उन्नति करता तथा शरीर में प्राण के तद्वत् है। मुख्य तो यह है कि पति के तुल्य इस असार संसार में कोई पदार्थ नहीं है यदि है तो वही पति। क्योंकि वही उसका तन, मन, धन है हे सुन्दरियो! जब तुम्हारा पति ऐसा इष्टदेव है जिसके बिना तुम्हारे प्राण नहीं रह सकते, तो भला कैसे शोक और पश्चात्ताप का स्थान है कि जिस पतिके रहने से तुम्हारे प्राण रहते हैं फिर तुम उसको नाना प्रकार से क्लेशित करती हो? उस की सेवा तथा आज्ञापालन इस भांति करना योग्य है कि जिससे तुम्हारे प्राण नाथ, जीवनमूल सदा आनन्द में मग्न रहें। क्योंकि पति से अधिक तुम्हारा कोई मित्र नहीं वह तुम्हारे जीवन भरके दुःख सुख का साथी है, बिना उसके तुम को संसार सूना जान पड़ता है, धरती आकाश भी दृष्टि नहीं आता, सम्पूर्ण ऐश्वर्य मिथ्या (झूंठा) मालूम होता है यथार्थ में बिना प्राणनाथ के प्राणों को चैन नहीं आता। जो स्त्री अपने पतिको दुःख देती वा उस के दुःख में साथी नहीं होती, उससे अधिक इस संसार में कोई अपराधिनी नहीं वह नरक को जाती है, वही तरुणाई में विधवा होती है, उसी को संसार में नाना क्लेश उठाने पड़ते हैं। इस कारण हे स्त्रियो! तुम सदा पति की सेवा करो, क्योंकि तुम्हारे आज्ञा कारिणी होने से सर्व प्रकार के सुख मिलते हैं।

देखो दक्षस्मृति अ०२ श्लो०१ वा ५ में कहा है कि जो स्त्री नमूपति के अन्तःकरणकी बात को जाने और उसके आधीन रहे वही पत्नी है और अन्य सब दुःख रूप हैं, क्योंकि उनके मनोंमें परस्पर प्रेम नहीं होता।

पत्नी मूलं गृहं पुंसां यदि छन्दानुवर्त्तिनी।
गृहाश्रमात्परं नास्ति यदि भार्या वशानुगा॥ १॥
सा पत्नी या विनीतास्याच्चित्तज्ञावशवर्त्तिनी।
दुःखाह्यान्यासदाखिन्ना चित्तभेदः परस्परम्॥ २॥

तथा श्लोक १० । ११ में स्पष्ट कहा है कि जो स्त्री अनुकूल, उत्तम वाणी और चतुरा, साधु, स्वभाव, पतिव्रता इत्यादि गुणों से युक्त हो तो वह निःसंदेह लक्ष्मी ही है और जो स्त्री प्रसन्न मन, स्थान और मन की ज्ञाता पति में प्रीति वाली है वही भार्या है जैसा कि—

अनुकूलात्ववाग्दष्टा दक्षासाध्वी पतिव्रता ।
एभिरेव गुणैर्युक्ता श्रीरेव स्त्री न संशयः ॥ १० ॥
प्रहृष्टतमसा नित्यं स्थानमान विचक्षणा ॥ ११ ॥
भर्तुः प्रीतिकरी यातु भार्या सा चेतराजसी ॥ १२ ॥

शंखस्मृति अ० ३ श्लोक १५ में कहा है कि जो स्त्री गृहकार्यों में चतुरा और पतिव्रता है अर्थात् जिसके प्राण पति में दसते हैं, जिसके सन्तान भी है, वही भार्या है । पद्मपुराण द्वितीय भूमिखण्ड अ० ६१ गौमिलदैत्य ने पद्मावती से कहा है कि उत्तम पतिव्रता वही है जो मन, वच, कर्म से प्रति दिन पति की सेवा करती है और भर्ता के क्रोधित होने पर भी अपनेक्रोध को सहन कर उस की उचित सेवा में न्यूनता नहीं करती तथा तृतीय खण्ड अध्याय २० में लिखा है कि जो स्त्री अपने पति को स्नेह में पुत्र से सौ गुणा, भय में राजा के समान और आराधना में विष्णु के तुल्य जाने वही स्त्री पतिव्रता है । जो नित्य सेवा करे, कभी मत्सरता न करती हो, कृपणता और मान भी करती हो, इसके अतिरिक्त मान अपमान को समान समझती हो, वह पतिव्रता है । वनपर्व अ० २०४ में युधिष्ठिर जी ने कहा है कि जो स्त्री अपने पति की सेवा तथा सत्य को धारण कर सन्तान के पालन पोषण में नियुक्त रहती है वही पतिव्रता है ।

मान्याहि गुरवः सर्वे एक पत्यस्तथास्त्रियः ।
पतिव्रतानां सुश्रूषा दुष्करां प्रतिभातिमे ॥

इस कारण हे स्त्रियों ! तुम सदा पति सेवा को स्वीकार करो जो तुम्हारे अर्थ अमृतरूपी रस है कि जिसके प्राप्त करने से सर्व प्रकार के सुख मिलते हैं जैसा य० अ० १४ मं० १३ में कहा है । कि हे स्त्री तू पूर्वदिशा के तुल्य प्रकाशमान है, दक्षिण दिशा के समान अनेक प्रकार की विनय और विद्या के प्रकाश से युक्त है और पश्चिम दिशा की भांति चक्रवर्ती राज्य के सदृश अच्छे सुखयुक्त पृथ्वी पर प्रकाशमान है और ऊपर नीचे की दिशा के तुल्य तेरा घरमें अधिकार है इस लिये तू पति को तृप्त कर ।

राड्यास प्राचीदिग्विराडसि दक्षिणा दिक् सम्राडसि ।

प्रतीचीदिक स्वराडस्युदीची दिगधिपत्न्यसि बृहतीदिक् ॥

जिस प्रकार ऋतु और गौ अपने २ समय पर अनुकूलता से सब प्राणियों को सुखी करती हैं इसी भांति उत्तम स्त्रियां सब समय में अपने पति आदि को तृप्त कर आनन्दित करें। जैसा य० अ० १७ मं० ३ में कहा है कि–

ऋतवःस्थ ऋतावृध ऋतुष्ठाः स्थ ऋतावृधः घृतश्च्युतो।

मधुश्च्युतो विराजो नाम कामदुघा अक्षीयमाणाः ॥

और य० अ० ३८ मं० ३ में कहा है, हे स्त्री! जैसे पगड़ी आदि वस्तु सुख देने वाली होती है वैसे तू पति के सुख देने वाली हो।

य० अ० ६८ मंत्र ३ में लिखा है कि जिस भांति अग्नि जीवन को, बिजुली प्रजा को, लक्ष्मी शोभा को और महाशय जन बल को उसी भांति सुलक्षणा स्त्री सुखों को देने वाली होती है। और ऋग्वेद अ० ३, ४ व० ८ मं० ३१। अ०५ सू० ६१ मंत्र १ में कहा है कि जिस प्रकार प्रातः वेला सब प्राणियों को जगाय कार्यों में प्रवृत्त करता है उसी भांति पतिव्रता होकर स्त्रियों को पति के साथ अनुकूलता से रह कार्य कर प्रशंसित होना योग्य है।

और मं० ३ में कहा है जैसे प्रातःकाल सम्पूर्ण भवनों के खण्डों को प्रकाशित करता है उसी भांति उत्तम स्त्रियों को उत्तम व्यवहार कर प्रकाशित करना चाहिये और मंत्र ४ में कहा है कि जिस भांति दिन का सम्बन्धी प्रातःकाल है वैसे ही छाया सदृश अपने पति के साथ अनुकूल हो कर बर्ताव करना उचित है।

श्रीमद्भागवत स्कंध ६ अध्याय १८ में कश्यप जी ने दति से कहा है कि पति ही स्त्री का परम देवता है, जैसा कि–

पतिरेवहिनारीणां दैवतंपरम स्मृतम् ॥

मनु अ० ५ श्लोक १५४ में लिखा है सतत देवत्पतिः 'ब्रह्मवैवर्त्त पुराण के प्रकृतखण्ड में लिखा है कि गुरु ब्राह्मण और इष्टदेव सब से बड़ा गुरु स्त्री का पति है, इस लिये स्त्रियों को सब से अधिक उस की पूजा करनी चाहिये। य० अ० १३ मं० १४ में कहा है। अग्नि समान तेजस्वी, विज्ञान युक्त सुन्दर देव स्वरूप पति का दृढ़ताके साथ सेवन करो और य० अ० १४ मंत्र १९ उपदेश है कि देवता स्वरूप पति की कार्य

और कारण के सम्बन्ध के तुल्य निश्चल होकर सेवा करे। क्योंकि जिस प्रकार सूर्य से चंद्रमा प्रकाशित होता है उसी भांति स्त्री से उमत्त पति और अच्छी सेना में सेनापति शोभित होते हैं जैसा कि य० अ० १७ मं० १० में कहा है। और ऋग्वेद अ० ३। अ०४। व०८। मंत्र ३ ।अ०५।सू०६१ मंत्र ५ में भी कहा है, जिस भांति प्रातःकाल के सेवन करने से उत्तम बल को प्राप्त होते हैं उसी भांति स्नेहपात्र पतिव्रता स्त्री को प्राप्त होकर मनुष्य शारीरिक आत्म बल और आरोग्यपन को पाते हैं—

इसके उपरांत तुम ही संतान का हित और उनकी पालन कर्त्ता के अतिरिक्त प्रति दिन अतिथि और मित्रोंके भोजनादि और लोकाचार करने का प्रत्यक्ष आधार हो, जैसे मनु अध्याय ६ में लिखा है--

उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम्।
प्रत्यहलोकयात्राः प्रत्यक्षं स्त्री-निबंधनम् ॥ मं० २७ ॥

तुम बड़ी भाग्यवती और संतान का हेतु सत्कार योग्य तथा लक्ष्मी और घर की शोभा हो।

प्रजानार्थं महाभागाः पूजार्हागृहदीप्तयः।
स्त्रियः श्रियश्चगेहेषु न विशेषोऽस्तिकश्चन ॥ ६। २६ ॥

पुत्रोत्पादन धर्म कार्य (अग्निहोमादि) शुश्रूषा उत्तम रति तथा पितरों और अपना स्वर्ग अर्थात् सुख ये सब तुम्हारे ही आधीन हैं।

आपत्यं धर्मकार्याणि शुश्रूषा रतिरुत्तमा।
दाराधीनस्तथास्वर्गः पितृणामात्मनश्चह ॥ ६। २८ ॥

ऐसा ही याज्ञवल्क्य जी ने आचार अध्याय के श्लोक ७८ में कहा कि स्त्रियों के लोक में बेटा, पोता परपोता आदि से वंश की स्थिरता और अग्निहोत्र आदि गृहकार्यों की सिद्ध होती है, जैसा कि---

लोकानंत्यंदिवः प्राप्ति पुत्र पौत्रप्रपौत्रकैः।

इस के उपरांत लक्ष्मी जिससे संसार में सर्व सुख मिलते हैं वह भी तुम्हारे ही आधीन हैं, जैसा विष्णुस्मृति अ० ६ श्लोक २१, २२ में लिखा है कि लक्ष्मी सदा उस स्त्री के पास रहती है जो सदा यथायोग्य वस्त्र धारण करती और पतिव्रताहै, जिसकी वाणी कोमल और प्रकृति कम खर्च करने की है-जिसके पुत्र हैं जो गृहस्थी के कार्य एवं नित्य कर्मों को करती है।

नारीषु नित्यं सुविभूषितासु पतिव्रतासुप्रियवादिनीषु ।
अमुक्तहस्तासु सुतान्वितासु सुगुप्तभाण्डा सुबलिप्रियासु ॥

इसी कारण याज्ञवल्क्यस्मृति श्लोक ८३ में लिखा है कि गृह–कार्यों को कर पति की सेवा में तत्पर रहना ही स्त्रियों का धर्म है और श्लोक ८७ में लिखा है कि जो स्त्री इन्द्रियों को वस में कर पति की इच्छानुसार कार्य करती है उसकी सब लोक में प्रशंसा होती है तथा परलोक में सुख मिलता है य० अ० १४ मंत्र ५ में लिखा है कि जो स्त्री गृहकार्योंमें कुशला हों उस को योग्य है कि घर के भीतर के सब कार्य अपने आधीन कर उनको यथोचित उन्नति दे।

य० अ० १३ मंत्र ३२ में कहा है कि जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश सब जगत् की वस्तुओं को प्रकाशित करता है उसी प्रकार श्रेष्ठ पतिव्रता स्त्रियां घर के सब कार्य कर उसको प्रकाशित करती हैं, इस लिये वैदिक आज्ञा के अनुसार ऋषियों ने धन संग्रह करना और व्यय, शौच धर्म और रसोई बनाना घर की वस्तुओं की देख भाल करना आदि की आज्ञा दी है जैसा मनु अ० ६ श्लोक ११ में कहा है—

अर्थस्य संग्रहे चैनां व्यये चैव नियोजयेत् ।
शौचेधर्मे नियुक्तायां च पारिणाह्यस्य चेक्षणे ॥

इसलिये प्रसन्न चित्त होकर घरके सब कार्यों को चतुरता से करती रहो गृह के वर्तन भाडे ठीक २ बनाये रहो और व्यय करने में उदार न हो जैसा मनु जी ने कहा है—

सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्येषु दक्षया ।
सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चमुक्तहस्तया ॥

और य० अ० २० मन्त्र ५८ में कहा है कि पतिव्रता स्त्री का धर्म है कि घृतादि उत्तम वस्तु आप न खाकर और धन व्यय न कर अपने पति के लिये रख उन सब से उनका यथा योग्य सत्कार करती रहे : कभी कुटुम्ब के धनसे बहुत खरचा न करें और अपने धन से भी विना आज्ञा पति के अलङ्कार आदि न बनवावे । जैसा मनु० अ० २ श्लोक १६६ में कहा है ।

न निर्हारंस्त्रियः कुर्युः कुटुम्बाद्बहुमध्यगात् ।
स्वकादपि च वित्ताद्धि स्वस्य भर्तुरनाज्ञया ॥

शुक्रनीति अ० ४ में कहा है कि स्त्री पति से प्रथम उठ शरीर को शुद्ध कर अर्थात् शौचादि से निवृत्त हो शय्या के वस्त्रों को उठा घर को स्वच्छ करे यथा—

पत्युः पूर्वं समुत्थाय देहशुद्धिं विधाय च ।
उत्थाप्य शयनीयानि कृतवान्वेदमविशोधनम् ॥ ४५ ॥

फिर अग्निशाला वा आंगन को मार्जन वा लीप कर शुद्ध करे, चिकने यज्ञ के पात्रों को अर्थात् बासनों को गर्म जल से धोवे—

मार्जनैर्लेपनैः प्राप्य सानलं य यज्ञांगणम् ।
शोधयेद्यज्ञपात्राणि स्निग्धान्युष्णेन वारिणा ॥ ४६ ॥

उनको धोकर वहीं रखदे वा अन्य पात्रोंको शुद्ध कर जल भर रखदे।

प्रोक्षणीयानि तान्येव यथास्थानं प्रकल्पयेत् ।
शोधयित्वातु पात्राणि पूरयित्वातु धारयेत् ॥ ४७ ॥

महानस (रसोई) के सब पात्रों को बाहर धोवे, चूल्हे को लीप कर अग्नि वा ईंधन उसमें रखदे—

महानसस्थपात्राणि वहिः प्रक्षाल्य सर्वशः ।
मृद्भिस्तुशोधयेच्चुल्लींतत्राग्निं सेंधनं न्यसेत् ॥ ४८ ॥

जोड़े के पात्रों का व रस अन्न, द्रव्य इनका स्मरण वा प्रातःकाल के काम को कर सास और श्वसुर को नमस्कार करे ।

स्मृत्वा नियोगपात्राणि रसान्नद्रवणानि च ।
कृतापूर्वाह्णकार्य्येदं श्वशुरावभिवादयेत् ॥ ४९ ॥

फिर भोजन बन जाने पर बलिवैश्वदेव करके कुटुम्ब के मनुष्यों को भोजन कराकर पति को जिमावे, फिर उनकी आज्ञा लेकर आप खाकर शेष दिन आय व्यय अर्थात् आमदनी खर्च की चिन्ता में लगावे ।

वैश्वदेवोद्धृतैरन्नैर्भोजनीयांश्च भोजयेत् ।
पतिं च तदनुज्ञाताशिष्टमन्नाद्यमात्मना ॥
भक्त्वानयेदहः शेषं सदाऽऽयव्ययचिन्तया ॥ ५३ ॥

फिर सायंकाल घर को शुद्ध करवा भोजन बना भृत्यों समेत पति को जिमावे ।

पुनः सायं पुनः प्रातर्गृहशुद्धिं विधाय च ।
कृतान्नसाधना साध्वी स भृत्यं भोजयेत् पतिम् ॥ ५४ ॥

आप अधिक न खाकर और घरकी नीति अर्थात् काम काज करके भली प्रकार शय्या को बिछा कर पति की सेवा करे।

नातितृप्ता स्वयं भुक्त्वा गृहनीतिं विधाय च।
आस्तृत्य साधु शयनं ततः परिचरेत्पतिम् ॥ ५५ ॥

विदुर जीने कहा कि न्यून भोजन करने वालों को आरोग्यता, आयु, बल, सुख, संतान, बलवान् होना, वीर्य तीक्ष्ण न होना, ये सात गुण प्राप्त होते हैं। जब पति सो जावे तब आप भी उनके समीप उन्हीं में मन लगा कर दूसरी खाट पर सो जावे, परन्तु नंगी न सोवे और मतवाली न रहे काम को त्यागे, इन्द्रियों को जीते।

इसके उपरान्त पति के साथ ऊंचे स्वर से बहुधा चिल्लाकर अप्रिय वचन न बोले, किसी के साथ विवाद लड़ाई तथा वृथा न बके—

नोच्चैर्वन्देन परुषं नहारुतिम प्रियम्।
न केन चिच्च विवदेदप्रलाप विवादिनी ॥५६॥

पति के धन में से बहुत व्यय न करे और धर्म वा धन को न बिगाड़े प्रमोद उन्माद रूठना ईर्षा वा निन्दा न करे।

नचास्य व्ययशीलास्यान्न धर्मार्थविरोधिनी।
प्रमादोन्मादरोषेर्ष्या वचनान्यति निंद्यताम् ॥५८॥

चुगली, हिंसा, मोह, अहंकार, अभिमान, नास्तिकता, साहस, अविचार कपट चोरी, दम्भ—इन सबको साध्वी स्त्री त्याग दे।

चाणक्यजीने कहा है कि मधुर वचनके बोलनेसे सब जीव सन्तुष्ट होते हैं, इसलिये मधुर बोलना योग्य है और इस में कुछ देना भी नहीं पड़ता, फिर वचन में दरिद्रता ही क्या है—

प्रिय वाक्य प्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः।
तस्मात्तदेव वक्तव्यं वचने किं दरिद्रता ॥

विदुरजी ने कहा है कि अर्थके भरे वा सुन्दर वचनों को थोड़ा बोलना उचित है इसी से आनन्द मिलता है, फर्सा का कटा हुआ वृक्ष हरा और बाण का लगा हुआ घाव भर आता है परन्तु वचन रूपी बाणों से लगा हुआ घाव कभी नहीं भरता—

वाक संयमोहि नृपते सुदुष्करतमो मतः।
अर्थवच्च विचित्रं च न शक्यं बहु भाषितुम् ॥

रोहते सायकैर्विद्धं वनं परशुनाहतम् ।
वाचा दुरुक्तं बीभत्सं न संरोहति वाक्क्षतम् ॥

तुम कभी अभिमान भी न करो, देखो जिस प्रकार बुढ़ापा रूपको, आशा धीरज को, मृत्यु प्राणों को, दुष्टता धर्मको, क्रोध लक्ष्मी को, नष्टकर देती है वैसेही अभिमान करने से निन्दा होती है अतः सत्य और कोमल बोलनेका स्वभाव डालो, यह एक प्रकारका दान है इससे देशका बड़ा उपकार होता है।

इस विषय में य० अ० ३५ मंत्र २१ में कहा है कि गृहकार्यों का वही कर सकती है जो पृथ्वी के समान क्षमा को धारण करती है और क्रूरतादि दोषों को अपने पास नहीं आने देती, जैसा कि-

स्योना पृथिवि नो भवा नृक्षरा निवेशनी ।
यच्छा नः शर्म सप्रथाः अप नः शोशुचदघम् ॥

ऋग्वेद अ० ३ अ० ८ । व० २ । मं० ४ । म० ५ सू० ५२ मं० ६ में कहा है कि जिस भांति प्रभातवेला अपने प्रकाश से अन्धकार निवारण करती है उसी प्रकार विद्यायुक्त स्त्रियां अपने उत्तम स्वभावसे दोषोंको दूर कर अच्छे प्रकार भोजनादि से सबकी भले प्रकार से रक्षा करें।

आयमर्त्री विभाय रिन्धावज्ज्योतिषातमः । अपो अनुष्व धामव ॥

बहुधा नारी अपने सास, श्वसुर, देवर, जेठ, जिठानी आदिसे बात बात पर लड़ती झगड़ती हैं अथवा दिन रात अपने पति के कान भरती हैं यहांतक कि बिना अलग हुये नहीं मानतीं भलाविचारो तो कि कौन ऐसे सास श्वसुर आदि हैं जो अपनी बहू बेटे का भला नहीं चाहते कि जिस बेटे के अर्थ अपना तन मन धन तक अर्पण किया, बहू के आने की बधाई बांटी धिक्कार उस बहू पर कि जिसने उनको सुख के स्थान पर दुःख दिया तथा उनके मनको ऐसी ग्लानि कर दी कि जिससे वह बहू का नाम तक नहीं लेते। जब कोई उनके सम्मुख बहू का नाम लेता है तो वे ठंडी सांस लेकर रह जाते हैं। भला विचारिये तो कि ये जो अब तुम्हारे पति कहलाते हैं कि जिनके ऊपर तुम उछलती कूदती और नखरे करती हो, किसने उनको पालकर ऐसा किया? तो कहोगी माता पिता ने, फिर भला उन के सुख बिना तुम्हें कहीं सुख मिल सकता है? कदापि नहीं; वरन् थोड़े ही दिनों में जबकि तुम्हारी सन्तान का विवाह होगा तो वह तुम्हारी नई बहू आते ही तुमको वह फटकार बतावेगी कि तुम्हारे पते तक न लगेंगे। उस समय तुमको उपरोक्त कलेश जान पड़ेंगे कि हाय २ क्या किया बहूने

आते ही हमारी कुगति कर दी, अब हमसे काम काज भी नहीं होते, हाय यह हमारा बुढ़ापा क्योंकर कटेगा, बड़े दिनों में तो ज्योंत्यों कर यह दिन नसीब हुआ था सो भाग्यवश और भी अधिक दुख हुआ, इससे तो संतान न होती तो अच्छा था अब क्या करें, कहां जांय, किसी ने सच कहा है—

जाके पैर न जाय बिवाई। सो क्या जाने पीर पराई॥

इस लिये तुम सदा अपने माता पिता आदि के समान अपने सास श्वसुर आदि को समझकर उनकी आज्ञा पालन और सुश्रूषा करती रहो कि जिससे तुमको भी सुख मिले और दोष भागिनी भी न हो। इस के उपरांत क्या तुम्हारे पति को (जो तुम्हारे साथ में रहता है) अपने माता पिता के क्लेशित होने से प्रसन्नता रहती होगी ? कदापि नहीं, सदा चितारूपी ज्वाला में शरीर रूपी लड़की की भांति जलता ही रहता होगा, फिर भला सुख कैसा ? इससे हे युवतियों ! तुम कदापि ऐसा न करो, वरन् पति के नाते के अनुसारप्रत्येक का आदर भाव सदा करती रहो कि जिससे घरमें सब प्रकार के आनन्द और सुख रहें और संसारमें तुम्हारी भलाई हो जैसा य० अ० ११ मं० ७१ में कहा है कि पति के माता पिता अर्थात् सास श्वसुर आदि सम्बन्धियों और मित्रों तथा सहेलियों को सर्वकाल में प्रसन्न करती रहो।

अवरां २। अभ्यातर। यत्रा हमस्मि तां अव॥

और ऋग्वेद अ० २। अ० १। व० ५ मं० १। अ० १८। सू० १८ मंत्र ९ में कहा है कि जिस भांति प्रातः समय की वेला अन्धकार को दूर कर दिन को प्रसिद्ध करती है उसी भांति स्त्री सत्य भाषण तथा माता पिता और पति के कुल की कीर्ति से प्रकाशित कर अपने श्वसुर और पति के प्रति उनके अप्रसन्न होने का कोई व्यवहार न करे। इसके अनन्तर तुम अपने आश्रित सेवक सेविकाओं को दान मान से सदा प्रसन्न करती रहो जिस भांति समुद्र जल से सब की बढ़ती होतीहै जैसा ऋग्वेद अ०२। अ० ६। व ३। मंत्र २ अ०। १ सूत्र ११ मंत्र १ में कहा है। और अ० ४। अ० ४। व० २३। मं० ५। अ० ६ सू० ८६ मं०। २ में लिखा है कि जो स्त्रियां प्रातवेला के सदृश अपने पति आदि को सूर्योदय से पहिले जगातीं, गृह और बाहर के मार्गों को साफ करतीं, आते हुए पति

के आगे हाथ जोड़कर खड़ी होतीं और संव काल में विज्ञान को देतीं वेही देश और कुलकी शोभा करने वाली हैं। अजु० अ० १४ मंत्र ३ में कहा है कि अपने नौकर पुत्र और पशु आदि की पिता के समान रक्षा करो और विवाह के पीछे तुम माता पिता से कभी प्रीति न छोड़ो, क्योंकि उन्हीं दोनों से तुम्हारा शरीर उत्पन्न हुआ तथा पला है। जैसे य० अ० ३५ मं० ५ में कहा है।

सविता ते शरीराणि मातुरुपस्थ आ वपतु तस्मैपृथ्वीशंभव

ऋग्वेद अ० २, अ० ७, व०६, मं० २, म० ३, सू० २८, मं० ५, में भी ऐसाही उपदेश है। कुल का प्रकाशित होना भी तुम्हारे ही हाथ है क्योंकि ऋग्वेद अ० १, अ० ४, व ४, मन्त्र १, अ० ६ सू० ४८, मन्त्र ६ में कहा है कि विदुषी धार्मिका कन्या दोनों अर्थात् माता पिता के कुलों को उज्ज्वल करती हैं और य० अ० १४ मन्त्र २२ में लिखा है कि जहां स्त्रियां पृथ्वी के समान क्षमायुक्त, आकाश के समान निश्चल और यन्त्र-कला के तुल्य जितेन्द्रिय होती हैं, उन्हीं के कुल का प्रकाश होता है। जैसा कि–

यन्त्री राडयंत्र्यसि यमना ध्रुवासि धरित्री।
इषे त्वोर्ज्जे त्वा रय्यै त्वा पोषायत्वा॥

और ऋग्वेद अ० ३। अ० ८। व० ३। मंत्र ४। अ० ५। सू० ५२ मंत्र ५ में कहा है कि जो स्त्रियां किरणों के समान उत्तम व्यवहारों का प्रकाश करती हैं वही निरंतर उन्नति करने वाली होती हैं और मंत्र ३ में लिखा है कि जो स्त्री पति की आज्ञानुसार मित्र के समान सेवा करती है वही प्रभात के समान कुल का प्रकाश करती है। ऋग्वेद अ० ३ अ० ५। मंत्र ४ व० ३४ अ० २। सू० १४ मंत्र ३ में कहा है कि जो स्त्री पतिव्रता प्रिय लक्षणों से युक्त अत्यन्त बलवती होती है वही प्रातःकाल के समान कुल का प्रकाश करती है और य० अ० १३ मन्त्र २० में कहा है।

जिस प्रकार दूर्वा औषधि रोगों का नाश कर सुख को बढ़ाने वाली और सुन्दर विस्तारयुक्त होती हुई बढ़ती हैं उसी भांति विदुषी को चाहिये कि बहुत प्रकार से अपने कुल को बढ़ावे। देखो ऋगवेद में लिखा है कि वही स्त्री प्रशंसा के योग्य है जो पिता और पति के कुल में श्रेष्ठ आचरण से दोनों कुलों को प्रकाशित करती हैं।

ऐषु धावीरवद्यशउषों मघोनि सूरिषु ।
येनो राधांस्यहया मघवानो अरासत सुजाते अश्वसूनृते ॥

इसलिये तुम सदा व्यभिचार और कामकी व्यथा से रहित अर्थात् जितेन्द्रिय होकर धर्मानुकूल पुत्रों को उत्पन्न करो जैसा मं० अ० १३ मन्त्र १६ में कहा है:-

ध्रुवासि धरणास्तृता विश्वकर्मणा। मात्वा समुद्र ।
उदवधीन्मा सुपर्णो अव्यथमाना पृथ्वी दृंह ॥

और इसके लिये अपने पति से नित्य प्रार्थना करती रहा कि जिस प्रकार मैं प्रसन्न चित्त होकर आप की सेवा कर आपको चाहती हूँ आप वैसे ही मेरे ऊपर कृपा कर अपने पुरुषार्थ भर मेरी रक्षा करो, जिस से मैं दुष्टाचरण करने वालों की भांति पाप की भागिनी न होऊँ। जैसा य० अ० ८ मन्त्र २७ में कहा है। और ऋग्वेद मन्त्र-२ सू० ३ मन्त्र ५ में कहा है कि जिस भांति कारु (राजों) के बनाये हुए घरों में सुन्दर शोभायुक्त द्वार होते हैं उसी प्रकार विदुषी धर्मपरायणा, पतिव्रता स्त्री कीर्तिवती और उत्तम संतानों को उत्पन्न करने वाली होती है—

वि श्रयन्ता मुर्विया हूयमानाद्वारो देवीः सुप्रायणानमोभिः ।
व्यचस्वतीवि प्रथन्तोमजुर्या वर्ण पुनाना यशसं सुवीरम ॥

इस प्रकार अथर्ववेद कांड २० सूत्र १२६ मन्त्र ८ में लिखा है कि रूपवती एंव गुणवती स्त्री अपने पुत्र पुत्रियों को रूपवान बलवान और गुणवान बनाकर पति आदि को प्रसन्न करे।

हे सुन्दरियो ! उत्तम संतान के होने से ही संसार में सुख की वृद्धि होती है। इसलिये तुम्हारा परम धर्म है कि आप ब्रह्मचर्य के साथ विदुषी होकर शरीर आत्मा का बल बढ़ाने के लिये अपने संतानों को निरन्तर विज्ञान की शिक्षा देती रहो। जैसा य० अ० ४१ मन्त्र १४ में कहा है।

क्योंकि जो माता सूर्य के सदृश अपने संतानों को बोध कराती और दुष्ट आचरणों को दूर करके शिक्षा करती है तो वह संतान उत्तम होती है ऋग्वेद अ० ३ । अ० ५ । व० २६ । मन्त्र ४ । अ० २ । सू० । १८ मन्त्र ५ में कहा है—

अनवद्यमिव मन्यमाना गुहाकर्गिं माता वीर्येणा न्यृष्टम ।
अथोदस्थात्स्वयक वसान अरोदसी अपृणाज्जायमानः ॥

ऐसा ही य० अ० ११ मं०३८ में भी कहा है कि जिन घरों में स्त्रियां पण्डिताओं से शिक्षा पाई हुई होती हैं वही अपने पतियों को सद् उपदेशों द्वारा कुकर्म से बचा सुकर्म में लगाती हैं।

इडे रन्ते हव्ये काम्येचन्द्रे ज्योतेऽदिते सरस्वति महि विश्रुति।

एताते ऽअघ्न्ये नामानि देवेभ्यो मा सुकृतं ब्रूतात्॥

इसके उपरान्त तुमको यह भी जानना अभीष्ट है कि जिस घर में धार्मिक विदुषी प्रशंसायुक्त पंडिता स्त्री होती है वहां दुष्ट अर्थात् बुरे कर्म नहीं होते और वहां ही धन की अधिकता से बहुत प्रकार के सुख मिलते हैं जैसा य० अध्याय १७ मन्त्र ५ में कहा है।

सुयोग्य महिलाओ! विवाह प्रकरण में अच्छे प्रकार समझादिया है कि तुल्य गुण, कर्म स्वभाव आदि गुणों को मिला और देखभाल कर विवाह करो क्योंकि तुल्य गुण, कर्म, स्वभाव में जो विवाह होते हैं उन्हीं में परमानन्द मिलता है इस पर भी किसी कारण से शील सहित और अन्य स्त्री से प्रीति रखने वाला विद्या आदि गुणोंसे रहित भी पति हो तो भी देवता के समान उसकी पूजा करे और मृतक पति का भी कभी अप्रिय कार्य न करे जैसा मनु अ० ५ श्लोक १५४ व १५६ में कहा है।

विशीलः कामवृत्तो वा गुणैर्वा परिवर्जितः।

उपचर्यः स्त्रिया साध्व्या सततं देववत्पतिः॥

पाणिग्राहस्य साध्वी स्त्री जीवतो वा मृतस्य वा।

पतिलोकमभीप्सन्ती नाचरेत्किंचिद् प्रियम्॥

दक्षस्मृति अध्याय ३ श्लोक १६, १७ में कहा है जो स्त्री दरिद्र वा रोगी पति का तिरस्कार करती है वह मर कर बार बार कुत्ती, गधी और मच्छी होती है।

दरिद्रं व्याधितं चैव भर्तारं यावमन्यते।

शुनी गृध्री च मकरी जायते सा पुनः पुनः॥

पराशर जी ने अपनी स्मृति के अध्याय ४ श्लोक १६ में कहा है कि जो स्त्री दरिद्री, रोगी, धूर्त पति का तिरस्कार करती है वह मर कर बार२ कुतिया वा सुअरनी होती है।

दरिद्रं व्याधितं धूर्तं भर्तारं यावमन्यते।

सा शुनिर्जायते मृत्वा सूकरी च पुनः पुनः॥

पद्मपुराण तृतीय खण्ड अध्याय १३ श्लोक १७५, १७६ में नारदजी ने कहा है कि पति कैसा ही हो परन्तु स्त्रियों के धर्म और सुख का देने वाला वही है, इस लिये जीते जी स्त्री का धन पति ही है, अन्य कुछ नहीं, चाहे निर्धन, दुष्ट वचन कहने वाला, मूर्ख सब लक्षणोंसे रहित हो तौ भी स्त्री का परम देवता पति ही है। विष्णु पुराण अंश ६ अ० २ में कहा है कि जो स्त्री मनसा, वाचा और कर्मणा से अपने पतिकी सेवा करती है,वह इसी एक कर्म से पति-लोक को जाती हैं। मनु० अ० श्लोक १६४ में कहा है जो स्त्री पतिव्रत धर्म को छोड़ देती हैं उनकी इस लोक में निन्दा और मरने के पीछे गीदड़ी के पेटमें जन्म लेती हैं और सदा रोगी रह कर पाप के फल भोगती हैं।

व्यभिचारात्तु भर्त्तुः स्त्री लोके प्राप्नोतिनिन्द्यताम्।
शृगालयोनिंप्राप्नोति पापरोगैश्चपीड्यते॥

इसलिये धिक्कार है जो पति को छोड़ कर अन्य पुरुष से सम्बन्ध रखती है वा उसको किसी प्रकार के क्लेश दे तो आप घोर नर्क में जाती है।

परन्तु वर्त्तमान समय में उस पति को त्याग अनेक लीला रचती हैं अर्थात् कोई तो चेली होती हैं, कोई युवक पुरुषों के साथ तीर्थ यात्राको जा उसके ही दर्शन से अपना जन्म सुफल समझती हैं, कोई गङ्गा यमुनादि के स्नान में बैकुण्ठ समझती हैं परन्तु इन सब बातों से नाना प्रकार की हानि के अतिरिक्त कोई भी लाभ नहीं, वरन् इस प्रकार के कार्य करने से दोनों लोक बिगड़ जाते हैं और इस लोक में तो वह २ बुराइयां होती हैं कि जिनके वर्णन करने से लाज आती है और हृदय दाड़िम सा दरकता है, हा! उस समय पति को तो मरना ही सूझता है, कोई २ मनुष्य ऐसी स्त्रियों को मार भी डालते हैं--मनमें प्रेम नहीं रहता जिससे प्रति दिन क्लेश रहता है तथा गृहस्थी के प्रबन्ध में विघ्न पड़ जाता है और संतान भी उत्पन्न नहीं होती। इसके उपरांत न्यायशालाओं में मुकद्दमे होते हैं जिससे कुटुम्बियों को भी लाज आती है, बाप दादे तक का नाम डूब जाता है धिक्कार है ऐसे कुलकी स्त्रियों को जो पल मात्र के सुख में डूब कर अपयश का टोकरा सिर पर धरती हैं और दोनों कुलों को दग्ध कर देती हैं।

वाल्मीकीय रामायण अयोध्या कांड सर्ग २४ में श्रीराम ने कौशिल्या

जी से कहा कि स्त्री को पति का परित्याग करना अति निन्दित कर्म है, इसलिये मन से भी अति निन्दित पति का त्याग न करे।

जब तक पति जीवित रहें तब तक आप उन्हीं की सेवा करें यही सनातनधर्म है, तुम्हारे देवता पति ही हैं, तुमको उन्हीं की सेवा से उत्तम गति मिल सकती है, इसलिये जो स्त्री अपना कल्याण चाहे वह निश्छल होकर पति की सेवा करे, लोक में भी ऐसा ही देखने में आता है।

जब सीता जी श्रीरामचन्द्र के साथ वन में अत्रिमुनि के आश्रम पर पहुंची तो उनकी स्त्री श्रीमती अनुसुइयाजी ने सीता को पतिव्रत धर्म का उपदेश किया उसके उत्तरमें सीताजी ने कहा है स्त्रियों का जप तप आदि एक पति सेवाही है, इसीसे स्वर्ग पाती हैं जैसा सावित्री रोहिनीने पाया।

देवीभागवत स्कन्ध ९ में जरुत्कार मुनि ने कहा है, जो स्त्री अपने पति की सेवा करती है वह आनन्द लोक को पाती है और जो उस की सेवा नहीं करती वह नाना प्रकारके दुःखों को भोगती है। पद्मपुराण तृतीय सर्गखण्ड अध्याय ५ में शंकर ने सावित्री से कहा है कि स्त्रियों की परम गति भर्त्ता ही है।

जरुत्कार मुनि की स्त्री ने कहा कि पति का विछोह प्राणों के विछोह से भी अधिक है क्योंकि पतिव्रता स्त्रीयों का सौ पुत्रों से भी अधिक पति प्रिय होता है इसी कारण पति का 'प्रिय' नाम है। जैसा पुत्रवान् पुरुषोंका पुत्र में और वैष्णव अर्थात् परमात्मा के उपासकों का हरि में, काने पुरुषों का नेत्रों में, प्यासे मनुष्यों का जल में, भूखों का अन्न में, कामी पुरुषों का मैथुन में, चोरों का पर-धन में, व्यभिचारिणी स्त्रियों का जार पुरुषों में पण्डितों का शास्त्रों में, व्यापारियों का व्योपार में निरंतर मन लगा रहता है उसीभांति पतिव्रतास्त्रियों का मन पति में लगता है।

सुन्दर काण्ड सर्ग २४ में सीता जी ने कहा है कि पति चाहे दीनहो, चाहे राजहीन, परंतु हमारे जो पति हैं, वही हमारे गुरु है, मैं उन्हीं के विषय में स्थित हूं, जिस प्रकार महा भाग्यवती इंद्राणी इन्द्र में, अरुंधती वसिष्ठमें, रोहिणी चंद्रमा में, लोपामुद्रा अगस्त मुनि में, सावित्री सत्यवान् में, श्रीमती कपिलदेव में, शकुंतला दुष्यंत में, केशिनी सगर में, दमयंती नल में, उसी भांति मैं अपने पति में रत हूं। पद्मपुराण भूमि खण्ड अ० २४ में सुकला ने अपनी सखियों से कहा कि स्त्री का परम देवता पति है इसलिये उस से पृथक् स्त्री न रहे और जो बहुत काल अलग रहती है वह पाप रूप हो जाती

है इस लिये स्त्री को चाहिये कि मन, वचन और कर्म से सत्य भाव सहित अपने पति की सेवा करे और जो पति की विद्यमानता में स्त्री अन्य तीर्थ व्रतादि करती है वह सब उन का निष्फल होता है और वे पुंश्चली कहाती हैं। क्योंकि उन्होंने अपने पतिरूपी तीर्थको छोड़अन्य तीर्थ को पति बनाया जिस स्त्रीके ऊपर उसका पतिसदा संतुष्ट रहताहै वह संसार में सुख कोपाती है। जो स्त्री अपने पति के विरुद्ध रहती है पृथ्वी पर उस को सुख रूप यश नहीं मिल सकता। स्त्रियोंका रूप यौवन है, उस यौवन के लिये स्त्री को पृथ्वीमण्डल में अकेला अपना पति है। जो नारी पति की सेवा करती है वह सुपुत्रवती होती है, उसी का यश संसार में होता है। इस लिये तुम कभी इन उपरोक्त मिथ्या बातों में न फँसो क्योंकि पति ही तुम्हारा गुरु है, उसकी आज्ञानुकूल चलना परम धर्म है। न कभी अपने माता, पिता, बांधव और धनादि के अभिमान से पतिको त्याग अन्य पुरुष से सम्बन्ध करो, क्योंकि ऐसी स्त्री के लिये मनुजी राजा को आज्ञा देते हैं कि उसको बहुत मनुष्यों के बीच कुत्तों से नुचवावे, जैसा कि—

भर्त्तारं लंघयेद्यातु स्त्री ज्ञातिगुणदर्पिता।
तां श्वभिः खादयेद्राजा संस्थाने बहुसंस्थिते॥

मनुजी महाराज ने कहा है जो स्त्रियां पति को परम देवता समझ कर उन की सेवाटहल करती हैं वे इस लोक में यश और परलोक में पतिलोक को पाती हैं जैसा कि—

एवं परिचरन्ती सा पतिं परमदैवताम्।
यशस्यमिहयात्येव परत्र चपतिलोकताम्॥

और मनु अ० ९ श्लोक १६५ में कहा है कि जो स्त्री मन, वाणी और शरीर से अपने पतिको दुःखित नहीं करती वह पतिलोक को प्राप्त होतीहै और अच्छे जन उसको साध्वी कहते हैं, याज्ञवल्क्य जीने कहा है कि जो स्त्री पति के प्रिय और हित कार्य को कर जितेन्द्रिय हो उत्तम आचरण से रहती है उसकी संसार में कीर्ति और परलोकमें उत्तम गति होती है। यथा—

पति प्रियहिते युक्तास्वाचारा विजितेन्द्रिया।
सेहकीर्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमांगतिम्॥

कात्यायनस्मृति खण्ड १९ के श्लोक १२ में लिखाहै कि पति की सेवा से सर्व सुख और स्वर्ग की प्राप्ति होती है और फिर भूगोलमें जन्म धारण कर सखों की समृद्ध होती है।

पतिशुश्रूषयैव स्त्री कान्न लोकान्समश्नुते।
दिवः पुनरिहायाता सुखानामम्बुधिर्भवेत्।

इस लिये इन सब बातोंका ध्यान करती हुई पति की सेवा करो, क्योंकि तुम पतिकी सेवा ही से स्वर्गमें पूजी जाती हो, तुम्हारे लिये यज्ञ, व्रत, उपवास पति से पृथक् कोई नहीं। जैसा मनु अ० ५ श्लोक १५५ में कहा है—

नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो नव्रतंनाप्युपोषितम्।
पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे महीयते॥

शंखस्मृति अ० ५ श्लोक ८ में कहा है कि स्त्री को व्रत उपवास और नाना प्रकार के धर्मसे स्वर्ग की प्राप्ति नहीं होती, किन्तु पति पूजन से स्वर्ग को पाती है।

न व्रतैर्नोपवासैश्च धर्मेण विविधेन च।
नारी स्वर्गमवाप्नोति प्राप्नोति पतिपूजनात्॥

इस लिये व्यासजी ने कहा है कि स्त्रियां पतिके मन व्रत और वृत्तिके अनुसारही रहें क्योंकि पतिसे पृथक् धर्म, अर्थ, कामका कोई कारण नहीं है।

एक चित्ततया भाव्यं समान व्रतवृत्तितः।
न पृथग्विद्यते स्त्रीणां त्रिवर्ग विधिसाधनम्॥

इसके उपरांत उपवास अर्थात् भूंखे रहने की तो हम को कोई आज्ञा नहीं मिलती, वरन् उस के निषेध में पराशरजी महराज अपनी स्मृति के अध्याय ४ श्लोक १६ में आज्ञा देते हैं कि जो स्त्री पति के जीते जी उपवास करती हैं वह अपने पति की आयु को हरती हैं और आप नरक को जाती हैं।

पत्यौ जीवति या नारी उपोष्य व्रतमाचरेत्।
आयुष्यं हरतेभर्त्तुः सा नारी कुरुते तु यां॥

विष्णुस्मृति-अ० २५ श्लोक १६ में भी ऐसा ही लिखा है और ऐसा ही अत्रिस्मृति श्लोक १३४, १३५ में लिखा है—

जीवेद्भर्तरि या नारी उपोष्य व्रतचारिणी॥ १३४॥
आयुष्यं हरते भर्त्तुः सा नारी नरकं व्रजेत्॥ १३५॥

मनु अ० ५ श्लोक १५५ में लिखा है कि जो स्त्री पति के जीवते भूंखें रहने वाले व्रत करती है वह पतिकी आयु को बाधा पहुंचाती और नरक को जाती है।

ऐसाही वाल्मीकिरामायण अयोध्याकांड सर्ग ११६ में अनुसुइयाजी ने सीताजी को उपदेश दिया है कि स्त्रियों के लिये पति ही सुखका दाता तथा बन्धु है इसलिये जो उसको दुःख देती है उसको नरक प्राप्त होता है।

पद्मपुराण तृतीय सर्ग खण्ड अध्याय ५ श्लोक ७० से ७२ तक सावित्री ने गायत्री से कहा कि स्त्रियोंको पृथक् कोई कार्य करने की आज्ञा नहीं है वरन् पति जिस कार्य के करने की आज्ञा दे उस को सदा करती रहो। मनुजी ने कहा है कि यदि तुम को देवता का पूजन करना हो तो पति रूप देव का सदा पूजन करो जैसा कि "पतिंपरंदैवतम्" ब्रह्मवैवर्तपुराण प्रकृति खण्ड में पतिपूजा की विधि इस प्रकार लिखी है कि प्रथम प्रातःकाल उठ रात्रि के पहने हुये वस्त्र बदल कर पति देव को प्रणाम करके स्तुति करे, फिर घर का कार्य कर स्नान करे, धुले हुये वस्त्र पहन कर और सुफेद फूल हाथ में लेकर भक्तिपूर्वक पति देव की पूजा करे, प्रथम छने हुये निर्मल जल द्वारा पति देव को स्नान कराये, पहरनेको धुले हुये वस्त्र देवें फिर पति के चरणों को धोवे पुनः आसन पर बिठा कर माथे पर चन्दन लगा गले में माला पहना निम्न लिखित रीति से स्वस्तिवाचन करे।

नमः कान्ताय शान्ताय शिवचन्द्रस्वरूपिणे॥
नमः शान्ताय दान्ताय सर्वदेवाश्रयाय च।
नमो ब्रह्मस्वरूपाय सतीप्राणाश्रयाय च॥

पति को नमस्कार है जो कान्त, शान्त शिव चन्द्रमा का स्वरूप है, पतिको नमस्कार है जो शांत, दांत सम्पूर्ण देवताओं का सहारा है, पति को नमस्कार है जो ब्रह्मस्वरूप में है और भली स्त्री के जीवनका आधार है।

इस लिये तुम कदापि पति की आज्ञा के अतिरिक्त कोई ऐसा कार्य न करो और न कभी परपुरुष या स्त्री के साथ गंगा स्नान व तीर्थयात्रा को जावो,

सर्व शास्त्रों का यही मत है कि स्त्री का तीर्थ उसका स्वामी ही है। देखो शिवपुराण ज्ञानसंहिता अ० २५ श्लोक ४० में लिखा है कि पुत्र और स्त्रियों के तीर्थ घरों में ही रहते हैं, पुत्र के माता पिता और स्त्री का तीर्थ उसका स्वामी ही है।

देवीभागवत स्कन्ध ६ अध्याय ४२ में राधिका का वचनहै कि स्त्रियों

को चाहिये कि पति की सेवा सदा धर्म से करैं, क्योंकि स्त्रियोंका पति ही बन्धु, वही अधिदेव और सद्गति है और परम सम्पति, स्वरूप, मूर्तिमान भोगदायी, धर्मदायक, सुखदायक, निरन्तर प्रीतदायी, शान्तिदायी, सन्मानों करके देदीप्यमान, आनन्दमान, और बन्धुओं के बन्धु बढ़ाने वाला है। स्त्रियों का बंधुओं में भर्त्ताके समान अन्य कोई प्यारा बन्धु नहीं है। पति स्त्री का भरण पोषण करता है इससे उसका भर्त्ता नाम है, पालन करने से पति और स्त्री का ईश होने से स्वामी, काम देने से कान्त, सुख देने से बन्धु, प्रीति दान करने से प्रिय, ऐश्वर्यदान करने से ईश, प्राणों का ईश होने से प्राणनायक, कहां लो कहैं, प्रिय से परे कोई नहीं, जो कहो पुत्र बहुत स्त्रियों का प्रिय होता है, उसका भी यही हेतु है क्योंकि वह स्वामी के बीज से उत्पन्न होता है इसी से प्रिय होता है, कुलीन स्त्रियों को तो सौ पुत्रों से भी अधिक पति प्रिय होता है और जो दुष्टा स्त्रियां हैं उनको हम कुछ नहीं कह सकते, क्योंकि वे पति को अच्छी तरह जानती ही नहीं, फिर पति सेवा कैसी ? इसके उपरान्त पति कामी और लोभी हो तो तुम अपनी बुद्धिमानी तथा चतुरता से उनके दोषों को धीरे २ दूर करो जिससे तुम्हारी और तुम्हारे घर और कुल का कल्याण हो न कि तुम भी उन्हीं दोषों में फँस कर अपने घर को दुःखों का केन्द्र बना कर अपने और अपने पति का अकल्याण करो देखो ऋग्वेद अ० ४। अ० ३। व०२७। मं० ५। अ० ५। सू० ६१। मं० ७ में लिखा है जो स्त्री धार्मिक लोभी और कामातुर पति को जान कर दोषों के निवारण और गुणों को ग्रहण करने के लिये प्रेरणा करती है वही पति आदि की कल्याण करने वाली होती है।

विया जानाति जसुरि वितृष्यंतु विकामिनम देवा।

ऋग्वेद अ० ४। अ० ३। व० २७। मं० ५। ००५। सू० ६१। मं० ५ में लिखा है कि वह स्त्री प्रशंसित होती है जो अपने पति को काम में आसक्त करके बल का नाश नहीं करती और गृहस्थित घोड़े आदि का पालन करके बढ़ाती है।

इसके अतिरिक्त श्रेष्ठ स्त्री वही है जो पति से कभी विरोध नहीं करती और न ऐसी स्त्रियों का सत्संग करती है वरन् सदा सत्य सम्भाषण कर प्रशंसायुक्त होकर गृहकार्यों को करती है। जैसा कि ऋग्वेद अ० २ अ० ८ व० ३। मं० ४। अ० ५। सू० ५२ मं० ४२ में कहा है—

याचयदहूँ षसंत्वा चिकित्वित्सू नृतावरि प्रतिस्तोमरभूत्समहि ।

इस लिये तुम बिजुली के समान सब विद्याओं को जान, उद्योगवती अर्थात् कार्य्य करने में चतुर, नम्र स्वभाव वाणी की योग्यता को जानने वाली और वर्षा के समान सम्पूर्ण सुखों को देने वाली होकर सुखोंको दो। जैसा ऋग्वेद अ० ३ सूक्त ३१ मं० ६ में आज्ञा है ।

प्यारी देवियों ! महारानी सीता, शकुन्तला, पद्मावती, सुलोचना आदि पतिव्रता महिलाओंके जीवनों पर (जिनका वर्णन हम पूर्व कर चुके हैं) आपको विशेष ध्यान देना चाहिये कि अत्यन्त दुःखों के पड़ने पर भी पतिव्रत धर्मकी रक्षा कर अपने पतियों का सङ्ग नहीं छोड़ा और तुम तनिक तनिक सी बातों तथा निर्धनता में अपने प्राणप्यारों को तिलांजुली दे देती हो । याद रखो तुम्हारे जीवन की नाव का खेवट पति ही है बिना उसके तुम्हारा पार करने वाला इस भवसागर में अन्य कोई दृष्टि नहीं आता क्योंकि जैसे तुम अपने पति को नाना भांति से दुःखित रखती हो यदि वह भी तुम्हारी भांति अज्ञान हो किसी अन्य स्त्री से प्रीति करले तो बताइये कि तुम्हारी क्या दशा हो ? मैं तो यही जानता हूँ कि फिर यह दुःख तुम्हारे टाले नहीं टलेगा, इसी अग्नि में जल कर भस्म हो जाओगी, यदि यह कहो कि हम भी ऐसा ही करेंगी तो फिर विचारिये कि घर तो गया, नष्टता तो हुई, तिस पर तुर्रा यह होगा कि थोड़े ही दिनों के पश्चात् तुम्हारे अवगुणों से वह भी अप्रसन्न हुआ तथा उसने भी तुम्हें छोड़ दिया तो उस समय तुम्हारी दशा धोबी के कुत्ते के समान हो जावेगी, जो घर का न घाट का ।

इसके उपरांत ऐसे पुरुष एक स्त्री के बन्धन में नहीं रहते, जहां नवीन शोभायुक्त स्त्री पाते हैं तुरंत मोहित होकर पहिली स्त्री को पुराने जूते के समान निकाल कर फेंक देते हैं, फिर बतलाइये उस समय आपकी क्या गति होगी ? सच पूछो तो तुम्हारे प्राण संकट में होंगे और अपने किये हुए को स्मरण कर पछताओगी परंतु फिर क्या होता है 'जब चिड़ियां चुग गईं खेत' फिर तुम अपनी छाती आप ही कूटोगी वा अफयून खाओगी या दो दो दानों को मारी २ फिरोगी । यथार्थ तो यह है कि जो स्त्री अपने पति की आज्ञा के विरुद्ध चलती है वह इसी भवसागर में नाना नरकों को भोगती है ।

बहुधा स्त्रियां अपने पति आदि से वस्त्र आभूषणों पर ऐसे कटु वचन बोलती हैं कि जिसका कुछ पारावार नहीं। इसके उपरांत रोटी नहीं खातीं किंतु सम्पूर्ण गृहकी स्त्रियों से प्रत्येक बात पर लड़ती हैं, पति से बात भी नहीं करतीं। भला यह कौनसी बुद्धिमानी की बात है क्या पति आदि को अपनी मान बड़ाई प्रतिष्ठा स्वीकृत नहीं है? क्या सासु ससुर इत्यादि को अपनी बहू का पहरना ओढ़ना, खाना पीना अच्छा नहीं लगता?

सच पूछो तो बहू बेटेके अर्थ अपने प्राणोंको भी देना भला समझते हैं, परन्तु क्या किया जावे जब उनको बचत ही न हो, यदि बचत होगी तो वह मनु आदि ऋषियों की आज्ञानुसार वस्त्र भूषण से अवश्य ही तुम्हारा सत्कार करेंगे, परन्तु तुम्हारे मुख्य भूषण पतिव्रतधर्म आदि गुण ही हैं, जिनसे सर्वत्र तुम्हारी पूजा होती है और बिना इन भूषणों के सोने चांदी के भूषण शरीर का भार ही होते हैं और कुछ शोभा नहीं देते।

पद्मपुराण द्वितीय भूमिखण्ड अध्याय २५ में लिखा है कि स्त्रियों का प्रथम भूषण रूप और दूसरा शील, तीसरा सत्य, चौथा श्रृङ्गार, पांचवां धर्म, छटा मधुर बोलना, सातवां भूषण अन्तःकरण और बाहर से शुद्ध रहना, आठवां पति का मान रखना, नवां पतिकी सेवा करना, दसवां सहनशीलता और रति में कुशल होना ही है।

इसके पश्चात् शुक्रजी ने अध्याय २ में वर्णन किया है कि घोड़े का वेग, बैलका धैर्य्य, मणिकी कांति, राजाकी क्षमा, वेश्या के हावभाव, गाने वाले का मधुर स्वर, धनवान का देना, सिपाही की शूरता, गौ का बहुत दूध देना, तपस्वियों को इन्द्रियां दमन करना, विद्वानों का सभा में बोलना, सभासदों में पक्षपात न करना, साक्षियों में सत्यवादी, भृत्यों में स्वामी की भक्ति, मंत्रियों में राजा के हित के बचन, मूर्खों में मौन धारण करना उत्तम है वैसे ही स्त्रियों का पातिव्रत उत्तम भूषण है।

इसलिये पति रूपी भूषण को धारण कर संसार की भलाई करो जिससे तुम्हारा सर्वत्र मान हो, क्योंकि बिना गुण के सुन्दरता व्यर्थ होती है जैसा कि—'**निर्गुणस्य हितं रूपम्**'

इस हेतु तुम्हारी सुन्दरता भी बिना गुण के शोभा नहीं देती, क्योंकि स्त्रियों का मुख्य स्वरूप पतिव्रत ही है, जिसके धारण करने से संसार में प्रसिद्ध हो जाती है। जैसा कि '**स्त्रीणां रूपं पतिव्रतम्**'

पद्मपुराण द्वितीय भूमिखण्ड अध्याय ४३ में लिखा है नारी विना पति के शोभित नहीं होती चाहे वह अनेक प्रकार के द्रव्य भूषण रत्न और वस्त्रादिकों से क्यों न भूषित हो, जिस प्रकार बिना चन्द्रमा के रात्री, विना पुत्र के कुल और दीपक बिना मन्दिर नहीं शोभित होता, उसी भांति बिना पति के स्त्री सुशोभित नहीं होती। इस लिये हे सुन्दरियो ! तुम पति के कठोर वचन को सुन कर अप्रसन्न न हो वरन् उनको प्रसन्न करना ही तुम्हारा परमधर्म है, जिन गृह में दुष्ट स्त्री होती है वहां ही नाना भांति से हानि दृष्टि आती है तथा पति को तो मरना ही सूझता है, यथा—

दुष्टा भार्या शठं मित्रं भृत्यश्चोत्तरदायकः ।
ससर्पे च गृहे वासो मृत्युरेव न संशयः ॥

इसका यह अभिप्राय है कि दुष्ट नारी तथा मूढ़ मित्र अथवा नौकर उत्तर देने वाला हो तो उस घर में हे सुशीलाओ मूढ़ मित्र वा उत्तर देने वाले चाकर और सर्पको दूर कर श्रेष्ठ मित्र वा चाकर कर सकते हैं कि जिस से सुख मिल सकता है परन्तु स्त्री त्यागन करने से मृत्यु ही होती है।

हे सौभाग्यवतियो ! तुम उपरोक्त कथन पर ध्यान देकर अपने आचरण को इसके अनुसार सुधार कर अपने पति अथवा अन्य सास श्वसुर देवर जिठानी आदि से यथायोग्य प्रिय मधुर वाणी से नम्रता पूर्वक सत्य सम्भाषण करो इसी से तुमको धन सम्पत्ति आदि अनेक सुख मिल सकते हैं जब तुम सुलक्षणा हो जाओगी तो पति आदि अड़ोसी पड़ोसी सब प्रसन्न होंगे तथा तुम्हारी बड़ाई होगी, सर्व जन तुम्हारा आदर सत्कार करेंगे गृह में भी आनन्द रहेगा, मानो साक्षात् स्वर्ग के सुखों को भोगोगी जो तुम निठुर अप्रिय वा असत्य भाषण करोगी, भोजन वस्त्र आभूषण आदि काम काज पर लड़ोगी तो कदापि आनन्दके स्वप्नमें भी दर्शन न होंगे। सदा चिता रूपी ज्वाला में जलकर एक दिन राख की ढेरी बन जावेगी प्यारी स्त्रियो ! पति ही तुम्हारा स्वामी दुःखहर्ता इष्टदेव है अतः किंचित् जीवन में संतोष तथा क्रोध आदि मिथ्या सुखों में फंसकर अमृत रूपी सुखों को क्यों लात मारती हो, कि जिससे तुम्हारे दोनों लोक बिगड़ जाते हैं। इसके पश्चात् शराब या कोई अन्य नशे का पीना, कुमार्गिणी स्त्री वा पुरुष की सङ्गत, पति से जुदाई, वृथा इधर उधर घूमना, बे समय सोना दूसरे के गृह में निवास करना, इन ६ दूषणों को भी अपने निकट न आने दो, जैसा कि धर्म शास्त्र में लिखा है—

पानं दुर्जन संसर्गः पत्यां च विरहोऽटनम्।
स्वप्नोऽन्यगेहवासश्च नारीणां दूषणानिषट् ॥

क्योंकि इनके कारण स्त्री का आदर नहीं होता, तथा नाना भांतिके दोष उत्पन्न होजाते हैं, इस कारण इन उपरोक्त दोषों को त्यागना उचित है। इस के अतिरिक्त नीचे लिखी बातों का भी ध्यान रखना योग्य है।

(१) यदि पतिसे सम्मति करनी अथवा कुछ निवेदन करना हो तो यथा योग्य समय को देख कर शील स्वभाव से वार्त्ता करो। (२) लड़ाई किसी के साथ न करो, धर्म और अर्थ का विरोध भी न करो। (३) असावधानी, उन्माद, क्रोध, ईर्षा, ठगाई, अत्यंत चुगलपन, हिंसा, वैर, अहंकार, धूर्तपन, नास्तिकता, चोरी और दम्भ इन सबको छोड़ दो। (४) सदा प्रसन्न चित्त रहो, घर के कार्य बुद्धिमानी से अपने आप करो तथा वर्त्तन वस्त्र आदि सब वस्तुओं को पवित्र बनाये रहो। (५) व्यय करने में कभी उदार न हो। (६) गृह का मासिक हिसाब यथा योग्य लिख कर मास के अन्त में पति को दिखा कर यदि कुछ उस में संशोधन कराना हो तो उनकी सम्मत्यानुसार करो। (७) कोई उत्तम वस्तु अपने सास, श्वसुर, पति के बिना भोजन कराये न खाओ। (८) द्वार व खिड़की के पास खड़ी न हो। (९) जब पति परदेश को गये हों तो शृङ्गार न करो और न अन्य घरों में जाओ। (१०) गृह में जब कोई उत्सव हो तो सास आदि की सम्मति से खर्च के ब्योरे को लिख कर पति को सुना यथा योग्य व्यय करो अर्थात् घरकी शक्ति और गृह कार्य्य देख कर काम करो, मिथ्या प्रशंसा पर न मरो। (११) जब पति गृह में आवें, उठ कर नमस्ते कर उन के बैठने को आसन दो, पंखा करो तथा पान इलायची आदि से समयानुसार उनका आदर सत्कार करो। (१२) कभी और किसी दशा में पति की बुराई न करो वरन् अपने सब प्रकार के दुःखों को देश कालको देख कर निवेदन करती रहो। (१३) परमेश्वर की उपासना को कभी न भूलो और आनन्दोत्सवों पर सब मिल कर पारिवारिक उपासना करो। (१४) कभी अन्य पुरुषसे एकान्त में बैठ कर बातें न करो। (१५) फ़क़ीरों और बाबाजियों के यहां न जाओ, न अपने घर बुलाओ तथा उन को भिक्षा देने भी न जाओ। (१६) नौकरों और दासियों के कार्योंकी जांच करती रहो। (१७) यह समझ कर कि यही मेरा पति सूर्य, चन्द्रमा से भी अधिक प्रकाशमान सबसे बुद्धिमान, शूरवीर, धनवान्, रूपवान तथा कुलवान् है

सेवा में लगी रहो। चाहे अन्य पुरुष कैसाही बुद्धिमान, धनवान्, कुलीन क्यों न हो स्वप्न में भी उसका ध्यान न करो। (१८) गृह कार्यों के समय नियत कर यथा योग्य उन्हीं समयों पर उनको कर, शेष आराम के समय उत्तम २ पुस्तकें, समाचार पत्र भी पढ़ा करो और अपनी सहेलियों आदि को सुनाया करो। (१९) प्राचीन पतिव्रता स्त्रियों के इतिहास अवलोकन कर उनके सारको ग्रहण करने की टेव डाल कार्य करो। (२०) पुत्रियों को पढ़ाती रहो, सीना पिरोना भी अच्छे प्रकार सिखलाओ, क्योंकि संतान सुधार तुम्हारे ही हाथ है। (२१) सदा ऐसे कार्य करो जिससे दोनों का यश और कीर्ति हो, इसी में तुम्हारी भलाई और सर्वोपरि लाभ है। (२२) लाज को कभी न त्यागो, परन्तु मिथ्या लाज में फँसकर प्राण भी न गँमाओ, लाज के मुख्य अभिप्राय को जान कार्यकरो। (२३) यदि पति कुरूप हो और आप स्वरूपवान् हो तो भी उसकी कभी निन्दा तथा घमण्ड न करो, पतिके मित्रों को मित्र और शत्रुओं को शत्रु जान व्यवहार करो, इसके विपरीत नहीं। (२४) पति यदि परस्त्रीगामी भी है तो भी तुम कभी पित से न लड़ो वरन् प्रेम भाव से यथा योग्य शिक्षा और उपदेश से उन को सुधर्मी बनाओ और सौतियाडाह कभी न करो। इस के अतिरिक्त १-सदा सत्य कोमल प्रिय भाषण करो। २-बहुत न बोलो न अधिक चुप रहो अर्थात् समय पर बोलना और कुसमय बोलना छोड़ यथार्थ भाषिणी बनो। ३-मनके भेद कराने वाली बातें सभा में मत कहो ऐसी बात भी न बोलो जिसका कोई विश्वास न करे। ४-जानती हुई भी बिना पूछे कोई बात न कहो अर्थात् जड़वत् बैठी रहो। ५-पीछे निन्दा भी न करो। ६-सदा सोच समझ आगा पीछा विचार सार बचनोंको कहो।

(२५) आभूषण धारण करके स्नानादिको न जाओ, (१) रात्रि में पहने न सोओ, (२) अपने आभूषणों को तुच्छ दृष्टि से न देखो, (३) वृद्ध होने पर आभूषण धारण करने का स्वभाव न बनाओ, (४) बहुधा स्त्रियां मुख में दांत और शरीर में मांस न रहने पर भी तरुण स्त्रियों से अधिक गहना पहरने और शृङ्गार करने का चाव रखती हैं। कोई कोई अड़ोसी पड़ोसियों का गहना मांग कर पहन दूसरों के घर जाती हैं, यह योग्य नहीं, (५) कान और नाक में भारी गहना पहरना अयोग्य है, (६) देशाटन के समय अधिक सामान आभूषण लेकर न चलो, (७) तुम सदा सत्यता से जगत् को और शत्रु को शील से, धन से कृपण को, विद्वज्जनों को विद्या से, मूर्ख को प्रशंसा एवं

मनोहर कथाओं से, स्वामी को भक्ति से, राजा को आज्ञा पलन से, क्रोधी को शांति से, कुटुम्बीजनों को स्नेह से, दीनोंको दानसे जीतने अर्थात् वश करने का उपाय करती रहो, (८) गृह में गाय, भैंस, बकरी आदि पशुओं की देख भाल करती रहो, (६) मकान की मरम्मत को बर्सात से पहिले करा लिया करो, (१०) ईंधन को भी बर्सात से पहिले ले लिया करो, (११) कपड़ों को भी आठवें दिन देख धूप में सुखा दिया करो, (१२) ऊनी कपड़ों को भी वर्षा ऋतु में बांध कर न रक्खो वरन् हवादार खूंटी में टांग दो और चौथे या पांचवें दिन झाड़ दिया करो, (१३) भोज्य वस्तुओं को फसल पर लेकर रख लिया करो, जिससे लाभ रहता है, (१४) अवकाश के समय शिल्प तथा गान विद्या में अपनी योग्यता बढ़ाती रहो।

लाज और परदा।

लाज ऐसी वस्तु है जो प्रत्येक मनुष्य और स्त्रीको करना चाहिये स्त्री का तो यथार्थ भूषण है। लाज से यह प्रयोजन है कि अपने सास श्वसुर पति आदि बड़े बूढ़ोंके सामने कोई ऐसी बात न कहे जिसमें उनका अपमान हो, बुरे कार्यों से बचना ही लाज है।

प्यारी बहिनों! लाज इसको नहीं कहते कि बड़ासा घूंघट काढ़ लिया या घरों के भीतर बैठी रहीं जब तक तुम्हारा चित्त सुशिक्षित वा तुम्हारे पास विद्या न होगी तब तक इस वृथा लाजसे कुछ नहीं हो सकता। जब से इस देश में मुसल्मानों का राज्य हुआ तभी से इस प्रकार का परदा चला आता है, क्योंकि यह लोग सुन्दर क्वांरी कन्याओं को पकड़ कर विवाह कर लेते थे, तब से इस देशके विद्वानों ने इस परदा को चलाया जिससे वह कन्याओं के धर्म को भ्रष्ट न करें।

इस वृथा परदे से स्त्रियों को निम्न लिखित हानियां होती हैं—

(१) उनका इसके कारण उत्तम वायु और प्रकाश नहीं मिलता जिस के कारण वे नित्य प्रति बीमार बनी रहती हैं, मुंह मेंढक सा पीला पड़ जाता है, जिसके कारण हजारों रुपया दवाओं में वैद्यों के देने के अनन्तर नाना प्रकार की लल्लो पत्तो करनी पड़ती है, (२) किसी प्रकार की विद्या भी नहीं सीख सकतीं, (३) बूढ़ी भी शीघ्र हो जाती हैं, (४) मरती भी शीघ्र हैं, (५) चतुरा वा फुरतीली तथा चटकीली और बलवान भी नहीं होतीं

(६) सोच विचार का स्वभाव भी नहीं पड़ता, (७) उन की सन्तान भी निर्बल होती है।

गांववाली अथवा मेवों को देखिये वह कैसी मोटी ताजी निरोग, चतुरा तथा बुद्धिमती होती हैं,सच है कि जब तक इस देश से पर्दाकी रीति न उठेगी तब तक स्त्री जातिकी किसी प्रकार की उन्नति नहीं हो सकती। इसके अतिरिक्त परदा केवल सास स्वसुर पति आदि भले आदमियों से किया जाता है परन्तु धोबी, चमार, धीमर आदि नीच क़ौम का पर्दा कभी नहीं करतीं चाहे वह खराब चलन हों, बेधड़क घरमें चले आते हैं, क्या तब लाज नहीं रहती, जब सास स्वसुर आदि आते हैं तो बड़ा सा घूंघट काढ़ कर भीतर को भागती हैं।

बहुत सी स्त्रियां झनकदार-आभूषण पहनकर मेला आदिमें जाती हैं तो क्या दुर्जन लोग अपनी दुर्जनता को काम में न लाते होंगे ?

सोचने की बात है कि जब किसी के ब्याह आदिके उत्सव होते हैं तो सिर्फ एक कपड़े की ओटसे वह बेटी अपने बाप आदिके सामने बुरे भले गीत गाती हैं, बतलाइये तो उस वक्त लाज उनकी कहां चली जाती है ? हाय ! क्या इसी का नाम लाज है ? आजकल की लज्जावती स्त्रीयों को निम्न लिखित बातों पर अवश्य ध्यान देना चाहिये।

बहुधा स्त्रियां ब्याह आदिमें जो वृथा अपशब्दयुक्त गीत गाती हैं उन को बन्द करके यदि परमात्मा की प्रार्थनाके भजनादि गावें अथवा ऐसे गीत गावें जिनमें बुरे शब्द न हों तो अच्छा है। अथोपरान्त स्त्रियोंको रामलीला नौटंकी तथा नाच में भी न जाना चाहिये क्योंकि ऐसी जगह भी उनकी लाज जाती रहती है, उनको ऐसे स्थानपर स्नानभी न करना चाहिये जहां बहुत से मनुष्य हों क्योंकि केवल मुंह ढकने ही से लाज नहीं होती। सण्डे मुसण्डे वैरागियों के यहां किसी लालसा से न जाना चाहिये मुख्य प्रयोजन हमारे कथन का यह है कि स्त्रियों को विचारपूर्वक लाज करना चाहिये कि जिससे उपकार हो, वृथा इस प्रकार की लाज से नाना दोष भारत सन्तान में फैल गये हैं।

×+×+×

सीना-पिरोना।

जिस प्रकार स्त्रियोंको पाकविद्याके जाननेकी आवश्यकता है उसी भांति वस्त्र बनाने और सीने पिरोने के कार्यों को जानने की अति आवश्यकता है, इसलियेस्त्रियोंको योग्य है कि इस विद्याको आप जान अपनी पुत्रियों

को भी सिखलावे और सिखलाने की उत्तम रीति यह है कि पहिले आप सीकर उनको दिखलायें और फिर उधेड़ कर उन से सिलावें जिससे उन्हीं डोरोंके चिन्हों को देख कर वे सी लेवें और जब हाथ सध जाय तब पुराने कपड़ोंमें से काट २ कर वे उनको देदें और उनसे सिलवें और फिर फटे पुराने कपड़ेदेदें जिन में से वे काट कर सीवें और फिर उन को पुरानें कपड़ो में से टोपियां कुर्ते, थैले इत्यादि इसी भांति की सहज सीधी सिलाई के कपड़े सीने को दें । जब सीना आजाय तब तुरपना बतावें और जब इनमें भी अच्छी तरह हाथ सध जाय तो नये कपड़े सीने को दें जो सीधी सिलाई के हों जैसे रज़ाई, गद्दा, दोहर, जब इतना आ जाय तो उन को कपड़े काटना बतावें ।

सीना—६ प्रकार का होताहै (१) साधारण जैसे अँगरखा, कुर्त्ता, दुपट्टा, चोली दामन और बटुआ (२) जाली का काढ़ना, (३) रेशम डोरे और कलाबत्तू का करना (४) सुनरी आदि (५) सलमे सितारे का कार्य्य करना ,(६) कटाव का काम करना ।

पिरोना—अर्थात् सुई को डोरों में पिरोकर जो कार्य्य करते हैं उस को पिरोना कहते हैं जैसे हाथ पांव के मोजे बुनना, फीता, वेल, कमरबन्द बटुये की डोरी गूंदना, माला व हार गूंदना, फूलों के अनेक प्रकार के गहने बनाना, माथा पहुँची इत्यादि को बटुये की भांति पो लेना, गुलूबन्द इत्यादि बना लेना ।

सीना पिरोना—इसी के साथ में गोखरू मोड़ना, किरन बनाना, टप्पा व कलाबत्तू करना इत्यादि के काम भी स्त्रियों को रकने पड़ते हैं, इस लिये इन सब बातोंका जानना अति उपयोगीहै । जो स्त्रियां उपरोक्त बातों को नहीं जानतीं उन को अपने बालबच्चों के टोपे टोपी घंघरिया चादर इत्यादि के लिये दरजी के यहां जाना पड़ता है जिस में व्यय भी अधिक होता है और समय पर वस्तु भी नहीं मिलती । इसके अतिरिक्त वह ऊंचा ढीला, तंग इत्यादि कर देते हैं इससे कपड़ा बिगड़ जाता है जिसको पहने देख अन्य जन बच्चों की माता की चतुरता और अज्ञानताको जान लेते हैं । अथवा इन कार्यों के लिये अन्य चतुर स्त्री के पास जाकर उन की लल्लोपत्तो करनी पड़ती है । देखो उसके सीखने में बहुत सो व्यय भी नहीं करना पड़ता, केवल सुई, कैंची, वेढ़ा औरगज़ की आव श्यकता होती है ।

सीने की रीति—सुई को अंगूठेऔर बिचली अँगुली से थापतेहैं

और अंगूठा और बीचकी अँगुली से सुईको दबा कर चलाते हैं, अनामिका मेंबेड़ा पहनते हैं, कोई २ बीच की ही अंगुली में पहनते हैं, औरजब सुई कपड़े से नहीं निकलती तो इससे दबा कर निकाल लेते हैं। इसके उपरांत सुई भी हाथ में नहीं बिंधती और यह छोटा सा पीतल व तांबे का होता है जिससे अंगुली का एक पोरवा ढक जाता है, इसमें बहुत छोटे २ खाने होते हैं जिसमें सुई दबाने के समय घिसलने नहीं पाती और वहीं जमी रहती है और अँगुली में ठेक नहीं पड़ती, कोई कोई इसका काम नखसे कर लेते हैं परन्तु यह उत्तम नहीं है।

विशेष सूचना—सुई डोरा कपड़ेके अनुसार लेना योग्यहै, जैसा गजी गाढ़ा इत्यादि के सीने में चर्खे के कते हुये मोटे डोरे लेने चाहियें और सुई भी उसी के अनुसार मोटी हो, लंकलाट, साटन, इंचीमार इत्यादि के सीनेमें रीलका डोरा और सुई तनिक महीन लेनी चाहिये गोटा पट्टा गोखरू इत्यादि के लिये सुई बहुत महीन वा पेचक का डोरा लेना योग्य है।

सिलाई—यह भी कई प्रकार की होतीहै प्रथम साधारण जिस में दो टुकड़े के छोर मिला कर जोड़ देते हैं, जैसा अँगरखा कुर्ता के खड़ा करने में जो सिलाई होती है उसे पिसूजना वा पिसूज की सिलाई कहते हैं और जब इसी को गोल करके भीतर की ओर उलट कर सींते हैं तो उसे उलटना या तुरपना कहते हैं। यह दो प्रकार का है एक तो गोल जो पिसूज की सिलाई के बराबर ही तुरपी जाती है और दूसरी चौड़ी जिसे अव्वलपर्सी कहते हैं और जो पिसूज से थोड़ी सी दूर पर जाकर तुरपी जाती है। यह भी दो प्रकार की है। एक तो जिस में दोनों सिरे एक ही ओर को उलटे जाते हैं, दूसरी जिसमें पिसूज की दोनों ओर को एक एक ओर उलटा जता है।

तृतीय—बखिया की सिलाई होती है जो इस प्रकार की जाती है कि जहांसे सुई चुभोकर निकाली जाय वहांसे पिछाड़ी को लेजाकर आधी दूर पर चुभोई और पहिले की बराबर दूरी पर निकाली जाय फिर पीछे को लाकर जहां से पहिली सुई निकाली थी उसी छेद में उसको पिरोकर उतनी ही दूर जा निकालो, इसी भांति करते रहें तो ऊपर की सिलाई एक दूसरे के बरोबर चली जायगी और नीचे को दोहरी होती जायगी। यह भी दो प्रकार की होती है एक साधारण जिसका उपरोक्त वर्णन कर चुके

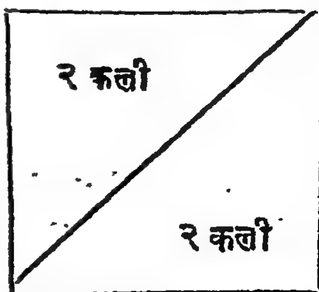
हैं, दूसरी कांटेदार इस में लहरिया जो पड़ती हैं। वह नीचे को भीतर की ओर रहती हैं और बखिया दो ओर हो जाती है इसके उपरांत तेपची और जाली की सीमन होती है। जाली की सीमन बहुत मजबूत डोरे से सी जाती है और कांटेदार बखिया की भांति होती जहां इस का काम करते हैं वहां कपड़े के दोनों छोरों को उलट कर तुरप देते हैं जिस से यह चमकती है।

फलीता—यह काले व लाल रङ्ग का एक डोरा होता है जो मगजी संजाफ़ के किनारे पर लगाया जाता है।

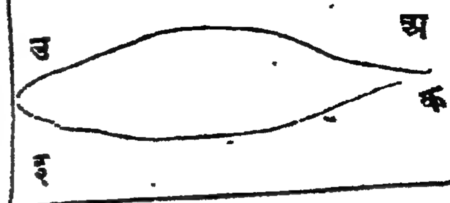
संजाफ़ और गोट—यह भी दो प्रकार से लगाई जाती हैं, एक सुदेव सीधे कपड़े में से सीधी पट्टी कतर कर बन जाती है, दूसरे औरेव जो दो प्रकार कतरी जाती हैं, एक तो कपड़े में से टेढ़ी काटी जाती है दूसरे कपड़े को औरेव थैला बना कर काट लेते हैं जिसमें सीधी धज्जी उतरती चली जाती है टुकड़े टुकड़े जोड़नेकी आवश्यकता नहीं होती और उसके थैला बनाने की रीति है कि कपड़े को अर्जमें से मोड़कर दोनों छोर मिला आधा कर ले और बखिया की तरहसी दे, फिर उसका आधा करे और फिर इसी आधे के बराबर कपड़े की लम्बान में से नाप कर चिन्ह करदे, फिर वहां से एक शिकन मोड़ कर वहां तक डाल दे जहां से अर्ज का आधा करके सिलाई की थी इस की फिर जितनी चौड़ी गोट व मगजी चाहे उतनी ही एक सिरे पर छोड़ कर दूसरे के देवें तो दूसरी ओर का भी थैला सिल जाने पर उतना ही सिरा बच रहेगा और थैला की सी सूरत हो जायगी, फिर इस को कैंची से काट लेवें तो एक लम्बी सी धज्जी हो जायगी उसे दोहरा करके भीतर की ओर सिलाई करके गोट हो जायगी।

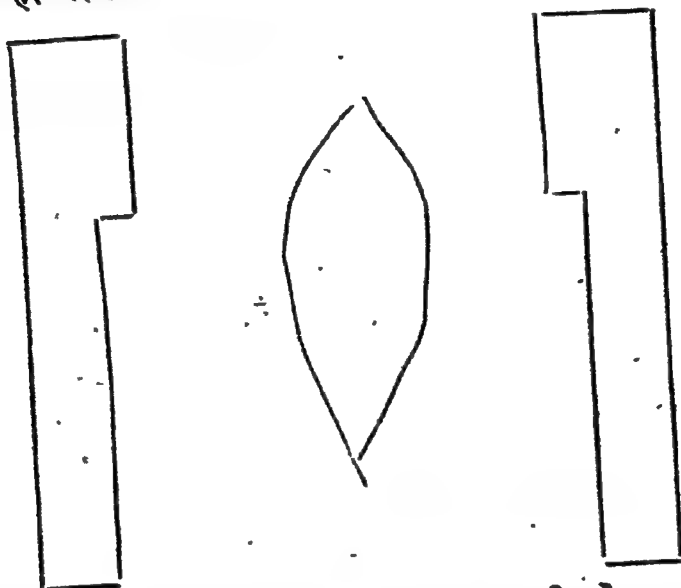
❀ कपड़े की कतर ब्योंत ❀

कुर्ता—पहिले कपड़ा ले दोनों कंधों से आगा पीछा नाप ले, फिर जितना चौड़ा आगा पीछा लिया है उतना ही लम्बा चौड़ा कपड़ा ले ४ कली काटो। जैसा चित्र दिया है उस प्रकार चार कली काट आगे पीछे में छोड़ लो और आगे पीछे के कपड़े में से एक आगे की ओर गला फाड़ लो फिरबांहे चौबगले जोड़ तुरपन लगा सीलो।



पाजामा—इसमें सवातीन बित्ता चौड़ा और जितना लम्बा मनुष्य हो उतना ही लम्बा नाप (अ) से (इ) तक काटलो, फिर (उ) से (क) तक काटने पर सूरत यों हो जायगी।





और बीच में मियानी निकल आवेगी, इस को दोहरा कर जोड़ ले और बखिया लगा सीले। यह सब में सहल और उत्तम अंगरेजी पाजामा काटने की रीति है। अचकन, अँगरखा, कोट इनका समझना कठिन है इसलिये इनको दर्जी से सीख लेना उचित है।

—— :*: ——

* पति-पत्नी-धर्म *

प्रिय सज्जन पुरुषो ! ब्रह्मचर्य पूर्णहोनेके पश्चात् जबकि विवाह हो जाता है तब स्त्री पुरुष एक स्थान पर रहते हैं, उस समय परस्पर एकता का होना बहुत आवश्यक है। क्योंकि गृहस्थी एक राज्य है जिसका राजा पुरुष और स्त्री मन्त्री है अब आप जानते हैं कि जब तक राजा और मंत्री विद्वान् होने के पश्चात् ऐक मत होकर अपने २ धर्म को नहीं करते तो उस राज्य की दशा प्रशंसनीय नहीं ती। वरन् नाना प्रकार के कष्ट राजा और प्रजा को उठाने पड़ते हैं और देश देशांतरों में अप्रतिष्ठा होती है। शत्रु भी

समय पाकर अपना काम पूरा करते हैं अर्थात् थोड़े ही दिनों में वह राज्य नष्ट हो जाता है । मान्यवरो ! ठीक उसी भांति गृहस्थी रूपी राज्य को समझो, यदि स्त्री और पुरुष विद्वान् होकर सम्मति के साथ प्रबंध नहीं करते तो वह गृहस्थी रूपी राज्य भी शीघ्र नष्ट होजाता है । इस लिये शास्त्रकारों ने स्त्री और पुरुष को यही आज्ञा दी है कि परस्पर पूर्ण आयु प्रीतियुक्त रह पुरुषार्थ धन और श्रेष्ठ गुणों से युक्त होकर एक दूसरे की रक्षा करते हुये धर्मानुकूल सांसारिक और पारलौकिक कार्यों को कर इस संसार में नित्य आनन्द करें । जैसा कि—

इषे राये रमस्व सहसे द्युम्न ऊर्जे अपत्याय ।
सम्राडसि स्वराडसि सारस्वतौत्वोत्सौ प्रावताम् ॥ २५ ॥

और य० अ० १४ मन्त्र ८ में कहा है कि स्त्री पुरुषों को चाहिये कि स्वयंवर विवाह करके अति प्रेम के साथ आपस में प्राण के समान प्रियाचरण, शास्त्रों को सुनना, और औषधि आदि का सेवन और यज्ञ के अनुष्ठान से वर्षा करावें ॥

प्यारी स्त्रियों सुजन पुरुषों ! जिस प्रकार श्रेष्ठ अर्थात् शिक्षित दो घोड़े युक्त रथ पर सुख के साथ अपने स्वामी को एक स्थान से दूसरे स्थान को पहुँचाते हैं उसी भांति परस्पर प्रसन्नचित्त योग्य दो विद्वान् गृहस्थी रूपी रथ के द्वारा अपने सब मनोरथों के पूर्ण करने में समर्थ होते हैं जैसा ऋग्वेद अ० ३ व० १८ मं० ३ अ० ४ सू०५३ मं० ४ में कहा है—

जायदस्त्यं मघवन्त्सेदु योनिस्तदित्वा युक्ता हरयो वहन्तु ।
यदा कदा च सुनवाम सोमंमग्निष्ट्वा दूतोधन्वात्यच्छ ॥

ऋग्वेद अ० ३ अ० ४ मं० ३ अ० ५ सू० ५७ मंत्र ४ में कहा है कि जहां स्त्री पुरुषों में प्रेम होता है वहां सब प्रकार के आनन्द रहते हैं, अथर्व काण्ड ६ सू० ९ मंत्र ३ में लिखा है कि जहां पति पत्नी प्रीति पूर्वक रहते हैं वहीं घृत दुग्धादि पदार्थों की बहुतायत होती है ॥

परन्तु हे सुन्दरियो ! इस प्रेम की जड़ विद्या और धर्मात्मा होना ही है अर्थात् गृहस्थाश्रम में सुख जब ही प्राप्त होते हैं जब कि स्त्री पुरुष दोनों विद्वान् और धार्मिक हों जैसा ऋग्वेद अ० २ अ० १ व० ४ मं० १ अ० १८ सू० २१२ मं०३ में लिखा है ॥

इसलिये हे स्त्री पुरुषो ! तुम दोनों को ऐसे व्यवहार और वर्त्ताव करना चाहिये जिससे परस्पर भय नष्ट होकर आत्मा को दृढ़, उत्साहयुक्त

और गृहस्थाश्रम में व्यवहार की सिद्धि से ऐश्वर्य बढ़े और दोष तथा दुःख दूर हो चन्द्रमा के तुल्य आल्हादित होओ। जैसा य० अ० ६ मं० ३९ में लिखा है ॥

मार्सम्मो संव्विक्थाऽऊर्ज्जन्धत्स्वधिषणे वीड्वी सती
वीडयेथामूर्ज्जन्दधाथाम्। पाप्मा हतो नसोमः ॥

य० अ० ३८ मंत्र ६ में लिखा है कि जैसा शब्दों अर्थों के साथ वाच्य वाचक सम्बन्ध है और सूर्य्य के साथ पृथ्वी का, वर्षा का यज्ञ के साथ तथा ऋत्विजों का यजमान के साथ सम्बन्ध है, वैसा ही तुम्हारा पति के साथ सम्बन्ध है जैसा-

गायत्रंछन्दोसि त्रैष्टुभछन्दोसिद्यावापृथिवीभ्यांत्वा परिगृह्णाम्यंतरिक्षेणो पयच्छामि। इन्द्राश्विन मधुनः सारघस्य घर्मंपात वसवो यजत् वाट्। स्वाहा सूर्यस्य रश्मये वृष्टि वनये ॥

जिस प्रकार ऋत्विज लोग सामिग्री का संचय करके यज्ञ को शोभित करते हैं वैसे ही तुम दोनों प्रीतियुक्त घर के कार्यों को किया करो, जैसा य० अ० १९ में कहा है-

हविर्धानं यदश्विनाग्नीध्रं यत्सरस्वती।
इन्द्रायैन्द्रꣳसदस्कृतं पत्नीशालं गार्हपत्यः ॥

पुरुषों को योग्य है कि अपनी २ स्त्रियों को सत्कार से सुख और व्यभिचार से रहित होकर प्रीति पूर्वक आचरण और उनकी रक्षा आदि निरंतर करें, उसी भांति स्त्री भी करे और पुरुष अपनी स्त्री के सिवाय अन्य स्त्री का, स्त्री अपने पति को छोड़ कर दूसरे पुरुष का कभी संग न करे, इसी भांति प्रीति पूर्वक सदा आपस में रहें। जैसा य० अ० १३ मं० ३९ में लिखा है ॥

विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय।
अग्निष्ट्वाभिपातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवासीद ॥

विवाह के समय में जिन व्यभिचार आदि के त्याग के नियमों को करे उनसे विरुद्ध कभी न चले क्योंकि पुरुष विवाह के समय स्त्री का हाथ ग्रहण करता है तबही पुरुष का जितना पदार्थ है वह सब स्त्री का, जितना स्त्री का है वह सब पुरुष का समझा जाता है। जो पुरुष अपनी विवाहिता स्त्री को छोड़ करअन्य स्त्री के निकट जाताहै वा स्त्री दूसरे पुरुषकी इच्छा करे तो वह

दोनों चोर के समान पापी होते हैं। इस लिये स्त्री की सम्मति के विना कोई कार्य पुरुष को और पुरुष की आज्ञा के विना स्त्री को कुछ न करना चाहिये। यह दोनों में परस्पर प्रीति बढ़ाने वाला कर्म है, इसलिये व्यभिचार को सब समयों में त्यागदें जैसा य० अ० १२ मन्त्र ६५ में कहा है-

यन्ते देवी निर्ऋतिराबबन्ध पाशं ग्रीवास्वविचृत्यम्।
तं ते विष्याम्यायुषो न मध्यादथैतं हिनमद्धिप्रसूतः॥
नमो भूत्यै येदं चकार।

और य० अ० ११ मं० ५० कहा कि विवाह के समय में स्त्री पुरुषोंको चाहिये कि व्यभिचार छोड़ने की प्रतिज्ञा कर व्यभिचारणी स्त्री और लम्पट पुरुषों का सत्संग सर्वथा छोड़ आपस में भी अति विषयशक्ति को छोड़ और ऋतुगामी होकर परस्पर प्रीति के साथ पराक्रम वाले सन्तानों को उत्पन्न करें। क्योंकि स्त्री पुरुष के लिये अप्रिय, आयु का नाशक, निन्दा के योग्य कर्म व्यभिचार के समान दूसरा कोई भी नहीं। इसलिये व्यभिचार कर्मों को सब प्रकार से छोड़ धर्माचरण करने वाला होकर पूर्ण अवस्था के सुखों को भोग देखिये अथर्ववेद काण्ड ५ सू० १ मंत्र ६ में लिखा है कि सात मर्यादा से निषिद्ध कर्मों को करने से पापी तथा वेद विदित कर्मों के करने से मनुष्य को सुख की प्राप्ति होती है जैसाकि-

सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुस्तासामिदेकामभ्यंहुरोगात्।
आयोर्हस्कम्भउपमस्यनीडेपथां विसर्गे धरुणेषुतस्थौ॥

महात्मा यास्क मुनि ने निरुक्त में सात मर्यादाओं का वर्णन इस प्रकार किया है। १ चोरी, २ व्यभिचार, ३ ब्रह्महत्या, ४ नास्तिकता, ५ भ्रूणहत्या ६ सुरापान, ७ पातक करने के पीछे उसको छिपाने को झूंठ बोलना। इन सातों अथवा इनमें से एक को भी करने वाला पापी होता है तथा इन से दूर रह परमेश्वर का भजन करता है वही ईश्वर का सच्चा भक्त कहाता है इस लिये गृहस्थजनों को इन पातकों से सदा बचना चाहिये॥

यजुर्वेद अ० २३ मं० ३१ में लिखा है कि जो राजा और राज पुरुष परस्त्री और वेश्या गमन के लिये पशु के समान अपना वर्ताव करते हैं उन को सब विद्वान् शूद्र के समान जानते हैं जैसे शूद्र मूर्ख इन श्रेष्ठों के कुल में व्यभिचारी होकर सब वर्णशंकर कर देता है वैसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य भी कुल में व्यभिचार करके वर्णशंकरके निमित्त होकर नाशको प्राप्त होते हैं॥

यद्धरिणो यवमत्ति न पुष्टं बहु मन्यते

शूद्रो यदर्यायै जारो पोषमनु मन्यते ॥

अथर्व कां० ६ सू० ७६ मं० ३ में लिखा है कि जो मनुष्य मानुषी मर्यादा को छोड़ कर महाघोर पातक करते हैं उसकी तामसी वृत्ति हो जाती है और वे जन्म जन्मांतरों तक सदा दुःख सागर में डूबे रहते हैं ॥

पतु तिस्रः परावत पतु पञ्चजनाँ अति ।

पतुतिस्रऽति रोचना यतो न पुनरायति ॥

इस लिये जो गृह पति परमेश्वर के अनुग्रह और अपने पुरुषार्थ से इस दुर्गुणों और दुष्ट संगों को छोड़ कर व्यभिचार से दूर रहते हैं वे ही वीर्य्य की रक्षा करके उत्तम सन्तानों को उत्पन्न कर अपने कुल को प्रशंसित करते हैं। जैसा मं० ८४ में कहा है ॥

इस लिये जब तक शुद्ध अन्तःकरण न हो तब तक स्त्री पुरुषों को विद्वान् विदुषियों का संग, सत्य शास्त्रों का स्वाध्याय और प्राणायाम का प्रति दिन अभ्यास करना चाहिए जिससे शीघ्र शुद्धान्तःकरणवान हो जावे । इसके अतिरिक्त इन बातों को नष्ट करने के लिये ईश्वर राजा को अथर्ववेद कां० ८ सू० ६ मं० १८ में आज्ञा देते हैं कि भ्रूण हत्यारे और बाल हत्यारे की छाती में बर्छा चला कर नष्ट कर देवे । जैसा कि—

यस्ते गर्भं प्रतिमृशाज्जातं वा मारयातिते

पिङ्गस्तं मुग्रधन्वा कृणोतु हृदयाविधम् ॥

और यजुर्वेद अ० २३ मंत्र २१ में लिखा है कि व्यभिचारी स्त्री पुरुषों को बांध कर ऊपर को पग और नीचे को शिर कर ताड़ना करनी चाहिए ॥

इसके सिवाय अथर्व कां० ६ सू० २७ मं० ३ में लिखा है कि व्यभिचार और ऋण लेने वाले और अनुचित मांगने से प्रशंसा में धब्बा लगता है इस लिये जिस कुल में ब्रह्मचर्य्य पालन करने वाले स्त्री और पुरुष विद्यमान हैं उसी कुल को भाग्यशाली समझना चाहिये, जैसा ऋग्वेद । अ० ४। अ० ३ । व० २० । मं० ५ । अ० ५ । सू० ५७ मं० ९ में कहा है इस लिये उपरोक्त कर्मों से सदा पृथक् रहना चाहिए क्योंकि जो इन पापों की ओर नहीं जाता उसके शरीर में बल रहता है बलयुक्त पुरुष अपने दोनों हाथों से बड़े २ कामों अर्थात् सैकड़ों और सहस्रों प्रकार से कर्म कुशल हो कर कर्म कुशलों से मिल धन, धान्य एकत्र कर आगा पीछा सोच समझ न्याय कर सदैव उन्नति करता रहे । जैसा अथर्ववेद कां० ३ सू० २४ मं० ५ में कहा है ॥

शतंहस्त समाहर सहस्र हस्त संकिर ।
कृतस्य कार्यस्य चह स्फातिं समावह ॥

इस लिये इन सब बातों को समझ कर सदा दोनों प्रीति युक्त होकर रहो तब ही सब विषयों में कल्याण होता है। जैसा कि य० अ० १३ में कहा है ॥

अघसर्वा भीरुचे जनाय नस्कृधि ॥

इसके उपरांत जिस प्रकार स्त्री अपने पति को उसी भांति पति भी स्त्री को सुख देवे दोनों युद्ध कर्म में भी पृथक न हों अर्थात् सदा इकठ्ठे होकर वर्ताव करें जैसा—

आपोहिष्ठामयो ऊर्जे दधातन महेरणाय चक्षसे ।

क्योंकि ऋग्वेद अ० ३ अ० ४ व० २ अ० ५ सू० ५७ मंत्र ४ में कहा है कि जो स्त्री पुरुष पृथ्वी और सूर्य के सदृश संयुक्त हुये वर्त्तमान हैं वे भाग्यशाली होते हैं, इस लिये स्त्रियों को उचित है कि जिस भांति माता पिता अपने पुत्रों का सेवन करते हैं उसी भांति अपने पतियों की प्रीतिपूर्वक सेवा करें. जैसे प्यासे प्राणियों को जल तृप्त करता है वैसे ही अच्छे स्वभाव से स्त्री और पुरुष आनन्द में रहें। जैसा य० अ० ११ में लिखा है—

यो वः शिवतमोरसस्तस्य भाजयतेहनः । उशतीरिवमातरः ॥

और मंत्र ५२ में कहा है जिस पुरुष की जो स्त्री हो वा जिस स्त्री का जो पुरुष होवे आपस में किसी का अनिष्टचिन्तन कदापि न करें। ऐसे ही सुख और संतानों से शोभायमान होकर धर्मसे घरके कार्य करें। जैसा कि—

तस्माअरंगमामयो यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपोजनयथा च नः ॥

मन्त्र ५३ में कहा है कि श्रेष्ठ गुणवान् विद्वानों के संग से शुद्ध आचार को ग्रहण कर शरीर और आत्मा की आरोग्यता को प्राप्त होकर अच्छे २ संतानों को उत्पन्न करें जिस भांति पुरुष स्त्री को अच्छे कामों में नियुक्त करे उसी भांति स्त्री भी अपने पति को अच्छे कामों की प्रेरणा करे, जिससे निरन्तर आनन्द बढ़े। य० अ० १४ मं० १२। और स्त्री पुरुष का पुरुष स्त्री का, जैसे अवस्था आदि की वृद्धि होवे वैसे परस्पर नित्य आचरण करें, जैसा य० अ० १४ मं० १७ में कहा है ॥

स्त्री पुरुषों को चाहिए कि शुद्ध विद्या क्रिया और स्वतंत्रता से पृथ्वी आदि पदार्थों के गुण कर्म स्वभाव को जान खेती आदि कामों में सुवर्ण

आदि रत्नों को प्राप्त हों और गौ आदि पशुओं की रक्षा कर ऐश्वर्य बढ़ावें, जैसा य० अ० १७ में कहा है—

पृथ्वीछन्दोऽन्तरिक्षञ्छन्दो द्यौश्छन्दः समाञ्छन्दो।
नक्षत्राणि छन्दो वाक्छन्दो मनश्छन्दः कृषिश्छन्दो।
हिरण्यञ्छन्दो गौश्छन्दोऽजाश्छन्दोऽश्वश्छन्दः॥

य० अ० ११ मन्त्र ५४ में कहा है जैसे वायु सूर्य का, सूर्य प्रकाश का, प्रकाश नेत्रों के देखने के व्यवहार का कारण है वैसे ही स्त्री पुरुष आपस में सुख के साधन और उपसाधन करने वाले होके सुखों को सिद्ध करें, इस लिये तुम विद्वानों का सत्कार, ईश्वर आराधन, अच्छा संग, सत्य विद्या आदि का दान यह इष्ट, और पूर्ण बल ब्रह्मचर्य विद्या की शोभा पूर्ण युवा अवस्था साधन और उपसाधन यह पूर्त (इष्टापूर्ती) दोनों प्रकार के कर्मों को करते रहो। जैसा य० अ० १७ मंत्र ५४ में कहा है इसके अतिरिक्त दोनों शीतल स्वभाव से गृह में रह कर कार्य करें क्योंकि विवाह के पश्चात विना इसके सुख नहीं मिलता, जैसा ऋग्वेद अ० २ अ० १ व० ४ मंत्र १ अ० १८ सू० १२३ मंत्र १ में कहा है॥

विवाहिता स्त्री पुरुषों को चाहिये कि जैसा सूर्य अपने प्रकाश से सर्व जगत को प्रकाशित करता है वैसे ही अपने सुन्दर वस्त्र और आभूषणों से शोभायमान होके घर आदि वस्तुओं को सदा पवित्र रक्खें। य० अ० ११ मंत्र ४ में कहा है—

सुजातो ज्योतिषा सह शर्म वरूथ मासदत्स्वः।
वासो अग्ने विश्वरूपᳫं संव्ययस्व विभावसो॥

अथर्ववेद कां० ६ सू० १८ मंत्र २ में लिखा है ऊसर भूमि में बीज नहीं जमता उसी प्रकार डाह करने वाला मनुष्य का मन जल भुन कर मृतक समान होने से उद्योग हीन हो जाता है इस लिये डाह करना बुरा है॥

यथा भूमिर्मृतमना मृतान्मृतमनस्तरा।
यथोत मम्रुषा मन एवेर्ष्योर्मृतंमनः॥

इस लिये सू० ४२ मं० १ और य० अ० ११ मं० ८५ में कहा कि धन के अहंकार से भी किसी से ईर्षा द्वेष न करो वरन् दूसरों की वृद्धि देख कर आनन्द भाव से सदा मित्र होकर रहो॥

और जिस भांति शिशिर ऋतु सुखदाई होती है उसी भांति स्त्री पुरुष

संतोषी हो उत्तम कर्मों के करने का अनुष्ठान कर दुष्ट कर्मों को छोड़ परमेश्वर की उपासना कर आनन्द भोगें। जैसा य० आ० मन्त्र ६४ में कहा है। जैसे बिजुली और सूर्य वर्षा से औषधि आदि पदार्थों को बढ़ाते हैं। उसी भांति तुम दोनों कुटुम्बों को बढ़ाया करो और जिस प्रकार प्रकाश और पृथिवी आकाश का आचरण करते हैं उसी भांति गृहस्थाश्रम के व्यवहारों को पूर्ण करो जैसा य० अ० ४ मन्त्र २१ में कहा है॥

जिस प्रकार धनुर महारथी धन धान्य से परिपूर्ण सुदृढ़ रथ पर अपने साथियों समेत चढ़ कर इच्छानुसार विचर कर कार्य सिद्ध करते हैं उसी भांति समझ कर स्त्री पुरुष गृहस्थाश्रम में प्रवेश करके सुप्रबन्ध से अपने कुटुम्बियों सहित सुख भोगें। सब कुटुम्बी लोग पुरुषार्थ करके साथ मिल कर धैर्य से घर में रहें, सन्तान आदि को शिक्षा दान से बढ़ावें, सम्पत्ति ऐश्वर्य को बढ़ा कर गृहस्थाश्रम की शोभा को बढ़ावें और सदा घर में प्रधान पुरुष का आदर सत्कार करते रहें। अथर्ववेद में उपदेश है कि जिस कुल में सम्पूर्ण कार्यों में कुशल बुद्धिमती पति पत्नी कुटुम्ब का पालन पोषण करते हैं वह परिवार धन्य है।

कभी सौगन्द न खाओ, न्याय के विरुद्ध कभी कोई कार्य और मूर्खों के समान ईर्षा को न करो, जैसा य० अ० १२ मन्त्र ९० में कहा है—

मुञ्चन्तु मा शपथ्यादथो वरुण्यादुत।
अथो यमस्य पड्वीशात्सर्वस्माद् देव किल्बिषात्॥

जब कभी अकस्मात् भ्रांति से किसी विद्वान् का अनादर कोई करे वो उसी समय क्षमा करावे, जैसा य० अ० २० मन्त्र १४ में लिखा है।

यद्देवा देवहेडनं देवासश्चकृमा वयम्।
अग्निर्मा तस्मादेनसो विश्वान्मुंचत्वंहसः॥

तुम सदा उन्हीं लोगों को बुद्धिमान् समझो जो अन्याय से किसी की वस्तु का ग्रहण नहीं करते और दुष्ट वेश हिंसा करने वालों का सङ्ग और न्याय से प्राप्त हुये धन का व्यर्थ खर्च, दुष्ट बन्धु का संग और शत्रु का विश्वास नहीं करते वही आनन्द को भोगते हैं। जैसा ऋग्वेद अ० ३। अ० ४। व० २२ मन्त्र ४ अ० १ सूक्त ३ मन्त्र १३ में कहा है।

मा कस्य यक्षंसद् मिदधुरो गामावशोऽय प्रमिना तो मापेः।
मा भ्रातुरग्ने अनृतोर्ऋणं वेर्मा सख्युर्दक्षं रिपो भुजेम॥

इसके उपरांत जिस २ कार्य के करने से विद्या, अच्छी शिक्षा, बुद्धि,

धन सुहृदयभाव और परोपकार बढ़े उस २ कर्म को सदा करती रहो, जैसा य० अ० ८ मन्त्र ४ में कहा है।

यशोदेवानाम्प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवतामृडयन्तः।
आ वोर्वाऽर्वाची सुमतिर्ववृत्यादयछ होश्चिद्यावरिवो ॥
वित्तराक्षदादित्येभ्यस्त ॥

इन सब बातों के सिवाय प्रत्येक स्त्री और पुरुष को मित्र और सहेलियों की आवश्यकता होती है। क्योंकि मित्र रहित पुरुष सुख की वृद्धि नहीं कर सकता इस हेतु विद्वान् लोग बहुत से धर्मात्माओं को मित्र बनावें परन्तु अपने शत्रु और मित्र के शत्रु से प्रीति न करें देखिये:—

ऋग्वेद अ० ४। अ० ४। ७। मन्त्र ५ में कहा है विद्वानों ही की मित्रता स्थिर रहती है और अन्यों की नहीं इस लिये विद्वान् २ से विदुषी विदुषियों से मित्रता कर आनन्द प्राप्त करे।

(१) मित्र वे ही है जो निष्कपट और शुद्धभाव से परस्पर वर्ताव करे।

(२) सदा कृतज्ञता करता रहे कृतघ्नता कभी न करे।

(३) मित्रता करके अपने और दूसरेके राज्य की रक्षा करे।

(४) योग्य मित्रों के मिलने से बड़ी लक्ष्मी प्राप्त होती है।

(५) मित्रजन गौ के समान सुख-नदी के समान मल दूर करने वाले और कामनाओं की सिद्धि करने वाले हों।

इरावती वरुणधेनवो वा मधुमद्वा सिन्धवो मित्रदुहे।
त्रयस्तस्थु वृषभासस्तिसृणां धिषणानांरेतोधाविद्युमन्ता ॥

इन सब बातों को जानकर कभी अपनी सहेलियों और सखियों और मित्रों से किसी प्रकार की घात न करना चाहिये क्योंकि अथर्ववेद कां० २० सू० १२८ में कहा है कि मित्र के साथ घात करना, सती स्त्रीको पाप लगाना वृद्ध होकर अज्ञान की बात कहना यह तीनों विद्वानों के बीच नीच गति पाते हैं।

योजाम्या अप्रथयस्तद्यत्सखायं दुधूर्षति।
ज्येष्ठायदप्रचेतास्तदाहुरधरागिति ॥

जब २ तुम्हारे यहां आनन्ददायक कार्य्य उत्सव हों तब २ अपनी सहेलियों सखियों और पुरुष अपने मित्रों और बन्धुजनों को बुलाकर भोजनादि पदार्थों से यथा योग्य सत्कार कर सदा प्रसन्न करती रहो और उस

समय नाना भांति के विचार, शास्त्रार्थ, उपदेश, विद्या विषयक वाग्विलास में समय व्यतीत करे जैसा य० मन्त्र १२ में कहा है:—

यस्ते ऽअश्वसनिर्भक्षोयोगा समिस्तस्यंत ऽइष्टयजुषस्तुस्तो ।

मस्यशस्तोत्रथ स्योपहतस्यो पहूतोभक्षयामि ॥

अथर्व वेद कां० २० मं०-८ में लिखा है चुने हुए विद्वान् मनुष्य और विदुषी स्त्रियां संसार में उत्तम २ बाजों के साथ वेद विद्या का गान कर के आत्मा और शरीर को बल बढ़ाने वाली चमत्कारी क्रियाओं का प्रकाश करें। इसके अतिरिक्त अधर्मी लोगों को श्रेष्ठों के बीच उच्च आसन कभी न दे जैसाकि अथर्व कां० ६ सूत्र १३४ मन्त्र २ में लिखा है:-

अधरेऽधर उत्तरेभ्यो गूढः पृथिव्या मोत्सृ पत् । वज्रेणवहतः श्याम् ॥

और गृहस्थी जन पुरुषार्थ करके विद्या, धन, धान्य आदि जीवन सामग्री की प्राप्ति रक्षा वृद्धि वा ऋद्धि सिद्धि कर के आनन्द भोगें जैसा अथर्व कांड ३ सूत्र २९ मं० ७ में लिखा है ऐसा ही यजुर्वेद अध्याय २२ मन्त्र २२ में उपदेश है। "योग क्षेमोनः कल्पताम्" इस लिये कुटुम्ब पालन के लिये बहुत गौ से दूध, घृत, आदि के लिये आराम वाटिका फल आदि के लिये, अन्न भोजनादि के लिये और भूमि राज्य खेती आदि के लिए रखिये।

करीषिणी फलवती स्वधामिरांच जोदृहे ।

औदुम्बरस्य तेजसा धाता पुष्टिं दधातुने ॥

इसके उपरांत अथर्ववेद कां० २ सूत्र १७ मं० ९ और कां०३ सूत्र७मं० ९ में कहा है कि ईश्वर ने हमे अन्न, बुद्धि, ज्ञान, हस्तादि, सूर्य, नेत्र, चन्द्र, पृथ्वी इत्यादि पदार्थ देकर बड़ा उपकार किया है ऐसे ही हम भी परस्पर उपकार से अपना जीवन बढ़ावें और आनन्द भोगें। और सदा सुमति बनाये रहें क्योंकि अथर्ववेद कां० ३ सूत्र २८ मंत्र ५, ६ में कहा है कि जहां स्त्री पुरुष परस्पर हितैषी पुन्यात्मा होते हैं वहां सुसम्मति से निरोग्यता, विद्या, और धन की बढ़ती होने से गौ घोड़े आदि बहुत काल तक जीवित रह कर आपस में उपकारी होते हैं और वेद मंत्रों से अग्नि में मिष्ठ सुगन्ध द्रव्य चढ़ा कर वायु शुद्धि करते अग्नि विद्या द्वारा अग्निनौका, अग्नियान, विमान आदि रच कर आनंद भोगते हैं. इस के उपरांत ईश्वर उपदेश करता है सब मनुष्य वेदानुगामी होकर सत्य ग्रहण करके एकमता करें आपा तोड़कर सच्चे प्रेम

से एक दूसरे को सुधारें जैसे गौ आपा छोड़कर तद्रूप होकर पूर्ण रीतिसे उत्पन्न हुये बच्चे को जीभसे चाटकर शुद्ध करती है और खड़ा करके दूध पिलाती है और पुष्ट करती है उसी प्रकार सन्तान माता पिता के आज्ञाकारी और माता पिता सन्तानों के हितकारी पत्नी और पति आपस में मधुरभाषी और सुखदाई हों ॥

अनुव्रतःपितुपुत्रो मात्रा भवंतु समानाः ।
जाया पत्ये मधुमती वाचं वदतु शान्तिवाम् ॥
अथर्व कांड ३३ सूक्त ३३ ॥

भाई भाई, वहिन वहिन, भाई वहिन और वहिन भाई के साथ द्वेष न करें और सव सदाचारी और व्रतीहों जिस प्रकार अच्छे मनुष्य आपस में वार्तालाप करते हैं उसी रीति से भाई वहिन आपस में परस्पर वार्तालाप करें जैसाकिः—

माभ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसार मुतस्वसा ।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचंवदत भद्रया ॥

क्योंकि जिस घरमें सव स्त्री पुरुष सुकर्मी अर्थात् अच्छे कर्म करनेवाले और आरोग्य होते हैं उसीको स्वर्ग कहते हैं उस स्वर्ग अर्थात् आनंद को सव कुटुम्बीजन मिलकर स्थिर रखने का प्रयत्न यानी उपाय करते रहें जैसा अथर्व कांड सू० १२१ मं० ५ में लिखा है ॥

यत्रां सुहार्दः सुकृतो मदन्ति विहायरोग तन्वऽः स्वामाः ।
अश्लोणा अङ्गै रह्रुताः स्वर्गे तत्र पश्येम पितरौच पुत्रान ॥

इसलिये अथर्व कां० १२ सू० ३ मं० ५३ में आज्ञा है सव स्त्री पुरुष शुभ कर्म शुभ गुणों को प्राप्त होकर अज्ञान को दूर करें जिस प्रकार प्रकाश के वल से धुआ तितिर वितर हो जाता है उसी प्रकार ज्ञानी पुरुष संसार के सव कामों में सदाहित अनहित और उदासीनता का विचार कर हितवान करें और उसीसे ऐश्वर्य की उन्नति कर ऐश्वर्यवान हों । इसके अनन्तर अथर्व कां० ७ सू० १७ मं० ४ में लिखा है कि जिस प्रकार राजा राज्य की उन्नति के लिये अनेक अधिकारी रखता है वैसेही गृहस्थ लोग घरका प्रबंध करें ॥

अथर्व वेद कांड १ अनुवाक ५ मं० ५ में लिखा है कि जिस प्रकार हम से पहिले मनुष्य उत्तम सामर्थ्य और धन को पाकर महा प्रतापी हुये उसी भांति परमेश्वर के सामर्थ्य को विचार कर पूर्ण पुरुषार्थ के साथ विद्या धन

और सुवर्ण आदि धनकी प्रतिष्ठा से सर्वदा उन्नति करके राज्य का पालन करे जैसा अथर्व कां० १ सू० ५ मं० ५में कहा है और बढ़े हुए धन से विद्या की पुष्टि करे अर्थात संसार में फैलावे और विद्वानों का सत्कार करे वेद विद्याका प्रचार अन्य सर्वोपकारी कार्य करायें ऐसे धनको धर्म सम्बन्धी धन कहते हैं और को नहीं जैसा ऋग्वेद अ० २, अं०, २ व० १२, मं० १, अ०,२१, सू० १४२ मं० १२, में कहा हैः-

पूषरावते मरुत्वते विश्वदेवाय वायवे ।

स्वाहा गायत्रवेपसे हव्यामिन्द्राय कर्त्तन ॥

इसके उपरांत माता पिता, विद्वानों को ऐसा उपदेश करे और अपना भी ऐसा ही स्वभाव बनावे कोई किसी का दान ग्रहण न करे यहां तक कि माता पिता से पुत्र, पौत्र इत्यादि दान में रुचि न करें ।

सचतो यह है कि संसारमें वीर वहीहै जो परमेश्वर के दिये हुए पदार्थों से बल,बुद्धि द्वारा परिश्रम कर राज्यवैभव प्राप्त कर आनंद भोगे और सब संसार के रचयिता परमेश्वर से प्रार्थना करे फिर जो सब उसी परमात्मा से मांगते हैं उनके सामने लूले लंगड़े अपाहजों ही का काम है न कि हमारा तुम्हारा । इसीलिये तो कहा कि, मंगना भला न बापका जो प्रभुराखे टेक ।

प्यारे भाई बहनों परमात्मा स्वयं वेदों में हमको शिक्षा कर रहे हैं इसलिये—मांगना और मरना बराबर है क्योंकि जो मांगने का स्वभाव बनाते हैं उनकी प्रतिष्ठा होती है न मानही रहता है । ऐसे जीवन से मरना भला है ।

जिस प्रकार अशुद्ध फल वा अशुद्ध वायुसे मलिन वस्त्र वा शरीर को जलसे शुद्ध करते हैं वैसेही मनुष्य दोषों से दूषित जीवात्मा को यथार्थ ज्ञानसे शुद्ध करें जैसा अ० कां० ६ सू० १२४ में उपदेश हैः—

गृहस्थजन माननीय माता पिता गुरु आदिका अनुकरण करके बल,कीर्त्ति प्राप्त करें परद्रोह परनिन्दा से पृथक रहें और किसी प्रकार होजाने पर प्रायश्चित करें, दुष्टों के फंदों से बचै फंसजाने पर उपाय करके निकल जावे, विवेक और चेतना पूर्वक नित्य सावधान रहे, कोई ऐसा काम न करे जिससे समाज में उसे नीचा देखना पड़े, आलस्य को छोड़ परोपकार में लगारहे, कभी कुएँ तालाब, आदि को मलीन न करे अथवा रोगकारक वस्तुओं से उसे न बिगाड़े और घरोंके आस पास दुर्गन्ध आदि न फैलावे, युवा अवस्थामें वीर्य-

वान् होकर उत्तम बलवान सन्तान उत्पन्न करे, सब प्रकार की उलझनें हटा कर विद्या और धन आदि उत्तम पदार्थों की प्राप्ति में लगा रहे। जिस प्रकार वायु द्वारा वृष्टि हो संसार का उपकार करता हुआ समुद्र में शांति पाता है इसी प्रकार मनुष्य स्त्री परस्पर परोपकार करके उस परब्रह्म में सुख प्राप्ति करें, जैसाकि अथर्व सू० २२ मं० ३ में उपदेश है और सूक्त २८ मं० ३ में कहा है, जो न्यायी पुरुष संसार के उपकार के लिये सन्मार्ग दिखा कर सब की रक्षा करता है सब मनुष्य विपत्ति से बचने के लिये उस वीर पुरुष का सत्कार करें और शरीर के सब अंगों से सुचेष्टा करके सब को प्रिय रहे, ऋण लेने से बचा रहे यदि लेनाही हो तो आयका सोलसवां वा आठवां भाग देकर ऋणाको चुकाता रहे ॥

अथर्व वेद कां० ७ सू० २१ मं० १ में लिखा अतिवृष्टि अनावृष्टि आदि दैवी विपत्तियों का विचार रखकर पहिले से अन्नादि के संचय से रक्षा का उपाय करलेवे, इसके उपरांत इस आश्रम में स्त्री और पुरुषों को बड़ी सावधानी से जितेन्द्रियता को धारणकर सहनशीलता से विचार पूर्वक कार्य्य करना चाहिये जो सुखका मूल है सदा दुर्गुणों को त्याग सद्गुणों के ग्रहण करने में विचारकी बड़ी भारी आवश्यकताहै अथर्ववेद कां० ३ सू० ३० मं० ७में परमात्माने उपदेश किया है कि हे मनुष्यो जिस प्रकार देवता अपने अमरत्व की रक्षा करते हैं वैसेही तुम सायं और प्रातः सौमनस अर्थात् विचार किया करो, जैसाकिः—

देवाइवा मृतंरक्षमाणा सायंप्रातः सौमनसौवो अस्तु ॥

विचार अथवा मनन करना ही मनुष्य का मनुष्यत्व है कहा गया है कि " मननात् मनुष्यः" अर्थात् मनुष्य इसी लिये कहाता है कि वह मनन करता है यही उसकी पशुओं से भिन्नता है यदि वह अपना मनन करना या विचार करना त्याग दे तो वह मनुष्य नहीं रहता इस लिये सायंप्रातः एकान्त में शान्ति से विचार करना चाहिये इसीसे सम्पूर्ण दुःखों से निवृत्ति होकर सुखकी प्राप्ति होती है, सच तो यह है कि जिस प्रकार धन की रक्षा बड़े २ संदूकों में होती है वैसे ही ज्ञानरूपी रत्न रखने का स्थान मन ही है, घोर से घोर आपत्तियों का नाश विचार रूपी वैद्य के द्वारा ही हो सकता है इसलिये सदा विचार कर कार्य करना चाहिये क्योंकि जो बिना विचारे कार्य करते हैं उन की बड़ी हानि होती है जैसा किसी कवि ने कहा है:—

कुण्डलिया— बिना विचारे जो करे सो पाछे पछिताय। काम बिगाड़े आपनो जग में होय हँसाय। जग में होय हंसाय चित्त में चैन न आवै। खान पान सम्मान रागरंग मनहि न भावै। कहगिरधर कविराय सदा नर रहें दुखारे। खटकत है दिन रैन कियो जो बिना विचारे॥

इसलिये इस बातको ध्यान कर कार्यकरो,क्रोधके समय शान्तिके वचन बोलो जिस से कलह न बढ़े, तुम कभी किसी की निन्दा मत करो, छोटों पर स्नेह और बड़ों का मान करो, जिस से परस्पर प्रेम बढ़ता रहे। सदा परोपकारी हो संसार में परोपकार करते रहो क्योंकि परोपकार रहित स्त्री पुरुष के जीवन को धिक्कार है। पशुओं का धर्म भी परोपकार करना है देखो नदियां आप जल नहीं पीतीं, वृक्ष अपना फल नहीं खाते, मेघ अपने उपजाये हुये धान को आप नहीं खाते, ऐसे ही सज्जन पुरुषों का जीवन परोपकार के लिये ही होता है। जैसे—

पिबन्तिनद्यःस्वयमेव नाम्भः स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षाः।
धाराधरो वर्षतिनात्महेतोः परोपकाराय सतांविभूतयः॥

इसके उपरांत विद्या, शरीर, वचन, वस्त्र, और पांचवां वैभव अर्थात् धन इसको सदा संचय करते रहो। गुप्तदान, घर आये अतिथियों का आदर करना, भलाई करके चुप रहना, अन्य के उपकार को सभा में कहना, लक्ष्मी का गर्व न करना, निन्दा भी किसी की न करना, इन तीक्ष्ण व्रतों के धारण करने से परम ऐश्वर्य की वढ़ती होती है। तुम कभी गरजने वाले बादल की भांति न गरजो वरन् सज्जनों की भांति कार्यों को कर उसकी पूर्ति की सूचना दो। गृहस्थ होकर मांगने की टेव न डालो क्योंकि घास से रुई हलकी और रुई से याचक। इसी कारण कहा है कि "मांगना भला न बाप का जो प्रभु राखे तेक।" इसलिये उद्योग, साहस धीरज, बुद्धि, पराक्रम यह जहां रहते हैं वहां सदा आनंद रहता है।

अब हम कुछ उपयोगी शिक्षायें वेद शास्त्र और नीति से लिखते हैं जिन पर चलने से अनेकन लाभ होते हैं।

———:०:———

वेदों से अन्य शिक्षा।

(१) जो नर, नारी नाना प्रकार के यज्ञों से परोपकार करते हैं उन को सब प्रकार के सुख मिलते हैं।

(२) प्रत्येक को दुष्ट स्वभाव त्याग करना अभीष्ट है।

(३) कुटिलता को छोड़ सब प्रकार की विद्याओं को पढ़ प्रचार कर, सुखको बढ़ाना चाहिये।

(४) जिस प्रकार सूर्य, चांद, तारे, पृथ्वी, जल, वायु, वृक्ष,लता,इत्यादि ईश्वर ने रचकर उपकार किया है उसी भांति सबको करना चाहिये।

(५)जो मनुष्य मन, वचन, शरीर से झूठे आचरण कर अन्याय से अन्य जनों को पीड़ा देकर अपने सुख के लिये औरों के पदार्थों को ग्रहण कर लेते हैं ईश्वर उनको नाना प्रकार के दुःख देकर मरने पर नीच योनियों में जन्म देता है जहां वे अपने किये हुए पापों के फलों को भोगते हैं।

(६)जिस प्रकार गृहस्थ मनुष्य आसन, अन्न, जल, वस्त्र और प्रिय वचन आदि उत्तम गुण वाले सन्यासी आदि का सेवन करते हैं उसी भांति विद्वान जन, यज्ञ, वेदी, कला पत्र और यानों में आग्नि को स्थापन करें।

(७) ईंधन, घी, जलादि से प्रज्वलित कर वायु, वर्षा, जलकी शुद्धि, और वायुयानों की रचना नित्य करनी चाहिये।

(८) मनुष्यों को यह सदा जानना चाहिये यह पृथ्वी सूर्य्य के चारों ओर घूमती है इसी से दिन, रात्रि, शुक्ल व कृष्ण पक्ष, ऋतु, आदि काल विभाग होते हैं।

(९) यदि सुखकी इच्छा हो तो सदा उत्तम कर्म करो क्योंकि ईश्वर कर्मों के अनुसार फल देता है।

(१०) आनंद की जड़ पुरुषार्थ और दुःखका केन्द्र आलस्य है इसलिये सुख के लिये नियमानुसार पुरुषार्थ करो।

(११) परमेश्वर के विज्ञान विना सत्य सुख और बिजली आदि विद्या और क्रिया कुशलता के विना संसार के सब सुख नहीं मिलसक्ते इसलिये इन कार्यों को पुरुषार्थ से सिद्धि करना चाहिये।

(१२) विद्वान धर्मात्माओं की चाल पर सदा चलना चाहिये, मूर्ख, अज्ञानियों की चाल पर नहीं।

(१३) जो लोग ईश्वर की उपासना, स्तुति, प्रार्थना नहीं करते उनका विजय सर्वत्र नहीं होता।

(१४) जो परमेश्वर में श्रद्धा रखते हुए अपने कर्तव्य का पालन करते है वह परमानंद पाते हैं।

(१५) जल से शरीर की शुद्धि होती है उसी प्रकार आत्मा की शुद्धि ज्ञान से होती है।

(१६) राजा और प्रजा मिलकर राज्य व्यवहारों की पालना करें।

[१७] गुरुजनों की शिक्षा से सुख बढ़ते हैं।

[१८] बिना आस्तिकत्व के पूर्ण सुख प्राप्त नहीं होता।

[१९] योग विद्या के बिना पूर्ण विद्यामान नहीं होता। बिना पूर्ण विद्या के अपने और परमात्मा के स्वरूप को नहीं जानता।

[२०] दाताजनों को कृपणता नहीं आती।

[२१] गृहीजनों को वे काम करने चाहियें जो वर्तमान, भूत, भविष्यत् में सुखदाई हों।

[२२] राजा और प्रजा को योग्य है कि राजा के साथ अयोग्य व्यवहार कभी न करें तथा राजा भी इन प्रजाजनों के साथ अन्याय न करे वेद ईश्वर की आज्ञा का सेवन करते हुए सबलोग एक सवारी एक बिछौने परबैठें और एकसा व्यवहार करनेवाले हों आलस्य प्रमाद से ईश्वर और वेदों की निन्दा नास्तिकता न करें।

[२३] जो गृहस्थी जन बिजली को उत्पन्न करके ग्रहण करसक्ते हैं वे व्यवहार में कभी दरिद्री नहीं होते।

(२४) जो पुरुष वा स्त्री सांगोपांग सार्थक वेदों को पढ़के विद्वान व विदुषी होवे वे राज पुत्र और राज्य कन्याओं को विद्वान् विदुषी करके उनसे धर्मानुकूल राज्य तथा प्रजा का व्यवहार करवावे।

(२५) राजा आदि सब पुरुषों को योग्य है कि अपने सन्तानों को विषय लोलुपता से छुटाकर ब्रह्मचर्य्य के साथ पूर्ण अवस्था को धारण कर अग्नि आदि पदार्थों के विज्ञान से धर्म युक्त व्यवहार की उन्नति करावे।

(२६) जहां पर राज प्रबन्ध से शिल्प, कला, यंत्र आदि में अग्नि का प्रयोग किया जाता है वहां मनुष्य मृत्यु के कारण दरिद्रता आदि से निर्भय रहते हैं।

(२७) धन प्राप्ति के लिये सदैव उद्योग करे जिस प्रकार विद्वान् लोग धन प्राप्ति करते हैं उसी के अनुकूल अन्य जन भी करें।

(२८) बहुत बल और अन्न के सामर्थ्य से युक्त जो गृहस्थ होता है वह सब स्थानों पर विजय पाता है।

(२९) पठन, पाठन, कायदा और उपदेश से नित्य उन्नति करते रहो।

(३०) पृथिवी पर जितने पदार्थ हैं उन सब में अन्न ही अत्यन्त प्रशंसा के योग्य है इस लिये अन्नवान का सब जगह मान होता है।

(३१) जो ब्रह्मचर्य्य आदि व्रत, आचार, विद्या योगाभ्यास, धर्म के अनुष्ठान, सत्सङ्ग पुरुषार्थ से रहित हैं वे अज्ञान रूपी अन्धकार में दबे हुए ब्रह्म को नहीं जान सकते जो ब्रह्म जीवों से पृथक् अन्तर्यामी सबका नियन्ता और सर्वत्र व्यापक है उस के जानने को जिन की आत्मा पवित्र है वे ही योग्य होते हैं अन्य नहीं।

(३२) श्रेष्ठों के सत्कार भूख से पीड़ितों को अन्न देने चक्रवर्ति राज्य की शिक्षा पशुओं की रक्षा जाने, आने वालों को डाकू चोर आदि से बचाने और यज्ञोपवीत के धारण करने वालों की शरीरादि पुष्टि के साथ प्रसन्न रहें।

(३३) गृहस्थ जन करुणामय वचन बोल और अन्नादि पदार्थ देके सब प्राणियों को सुखी करें।

(३४) जो धनाढ्य हैं वे दरिद्रों का पालन करें राजा प्रजा के पुरुष पशुओं को कभी न मारें जिससे प्रजा में सब प्रकार का सुख बढ़े।

(३५) उत्तमदाता वे ही हैं जो यज्ञ, जङ्गलों की रक्षा और जलाशयों के निर्म्माण से बहुत वर्षा कराते हैं।

[३६] मनुष्यों को चाहिये कि पापी पाप निन्दक निन्दा को छोड़ आनन्द भोगें।

[३७] यश, धन, सुख, बल और सत्य वचन को बढ़ा कर दुखों से पार हूजिये।

[३८] सृष्टिक्रम को जान आनन्द को प्राप्त करे।

[३९] अत्यन्त श्रेष्ठ कर्म करने वाले सर्वदा अत्यन्त श्रेष्ठ होते हैं। पक्षपात को छोड़ जो व्यय करते हैं उनको ही पूर्ण प्रकार के बोध प्राप्त होते हैं।

[४०] जो प्रमाद से रहित हैं और परमेश्वर के भक्त हैं वे ही अपराध, अनपराध, सत्य वा असत्य को जानते हैं।

[४१] जो प्रति दिन अग्निहोत्र आदि यज्ञ करते हैं वे समस्त संसार के सुखों को बढ़ाते हैं।

[४२]जोसमुद्र के समान गंभीर, विद्वानों के समान परोपकारी, अपनी आत्मा के समान सबकी रक्षा करतेहैं वह सबको कल्याण और सुख देते हैं।

[४३] जो धर्म सम्बन्धी सत्य भाषण आदि व्रत करतेहैं उन्हीं का यश, धन, बल, सुख, बढ़ता है।

[४४] सबसे अधिक विद्वान् उपदेश करें और अधिक ज्ञानवान न्याय करें।

[४५] बहुत काल तक ब्रह्मचर्य्य का और नियत अहार विहार करने से तीन तीन सौ वर्ष की आयु होती है।

[४६] राजा उतना ही करले जितना होना चाहिये तो फिर कभी आय की हानि न होगी।

(४७) सब प्राणियों में प्रथम उत्तम शिक्षा फिर विद्या पुनः सत्संग से उत्तम आचरण अच्छी बातों का श्रवण भोजन करके कल्याण की सिद्धि करे।

(४८) जो धर्म सम्बंधी कामों के करने में प्रसिद्ध हों उनको देख कर सुनकर प्रसन्न होना चाहिये।

(४९) उत्तम दाता वही है जो विद्या, सुशिक्षा, कला, यंत्र, यज्ञ, का प्रचार कराते हैं अथवा करते हैं, वनों की रक्षा और जलाशयों को निर्माण कराते हैं।

(५०) सृष्टि क्रम के अनुसार ज्ञान प्राप्ति का यत्न करें।

(५१) उत्तम कर्म करने वाले ही सर्व श्रेष्ठ होते हैं।

(५२) सबको विद्या देने और सत्योपदेश करने वाले के लिये बहुत दक्षिणा देते हैं वे विद्वान होकर शूरवीर होते हैं।

(५३) जो कुछ खाते पीते हैं वह सब रुधिर आदि हो हृदय में फैलकर मस्तक द्वारा सर्वत्र फैलता है।

(५४) जिस प्रकार पुरुष विद्या ग्रहण करें उसी भांति स्त्रियां भी करके लक्ष्मी युक्त हों।

(५५) जो स्त्री पुरुष धर्म सम्बधी कामों के करने में प्रसिद्ध हों उनको देख सुनकर प्रसन्न होना चाहिये।

(५६) पक्षपात को छोड़ जो न्याय करते हैं उन्हीं को पूर्ण बोध होता है।

(५७) जो प्रमाद से रहित परमेश्वर के भक्त हैं वेही अपराध, अनपराध सत्य और असत्य को जानते हैं।

(५८) जो सत्य सम्भाषण आदि व्रत व कर्मों को करते हैं उन्हीं का यश, धन, बल, सुख बढ़ता है।

(५९) सूर्य्य, बिजली, अग्नि, यह तीन प्रकार की अग्नि, प्रकाश है इसके यथार्थ गुण जानने से अनेकान कार्य्य सिद्ध होते हैं।

(६०) दुःख में शोच सुख में हर्ष न करना चाहिये जिससे एक दूसरे के उपकार के लिये चित्त अच्छे प्रकार लगाया जाय जो ऐश्वर्य्य हो उसको सबके सुख के लिये बांटना चाहिये।

(६१) वेही निर्वैर हैं जो अपने समान और प्राणियों को जानते हैं और जो सत्यपुरुषों की ही प्रतिदिन संगति करते हैं उनही का राज्य बढ़ता है।

(६२) किसी भद्रपुरुष, को अपने मुखसे अपनी प्रशंसा न करनी चाहिये और न अपनी प्रशंसा सुनकर आनन्दित होना चाहिये न हंसना चाहिये वरन् अपने समान सदैव सबकी उन्नति चाहनी चाहिये।

(६३) राज्य को वही पाता है जो सत्याचारी बलवान सज्जनों का संग करता है।

(६४) वही स्तुति होती है जिसको विद्वान जन मानते हैं वैसाही परोपकार होता है जैसा अपने सन्तान और अपने लिये चाहा जाता है और वही धर्म मार्ग हैं जिसमें श्रेष्ठ धर्मात्मा विद्वान् जन चलते हैं।

(६५) ९९ प्रकार के विष हैं उनके नाम, गुण, कर्म, स्वभावों को जान कर उन विष की प्रतिषेध करने वाली औषधियों को जान उनका सेवन कर विष सम्बंधी रोगों को दूर करो।

(६६) दरिद्री लोगों को धनयुक्त पुरुषों से ही याचना करनी चाहिये जिससे उनका दरिद्र दूर हो सुख मिले।

[६७] जगत में कीर्तिमान होना ही आयु का बढ़ाना है।

[६८] सब मनुष्य ऐसा सुप्रबंध करें कि जिससे दीन दुःखियों का यथावत् पालन हो।

[६९] वैर छोड़ कर उदार उपकारी, सर्व मित्र बनकर अनेक अनंदों को पाता है।

[७०] वह छली पुरुष है जो देखने में भ्राता के समान प्रीति करते हैं और भीतर से दुष्ट आचरण करते हैं ऐसे ही मनुष्य मृग तृष्णा रूपी इन्द्रिय लोलुपता और अन्य दोषों में फंस अपना जीवन नष्ट करते हैं।

[७१] सब स्त्री पुरुष परमात्मा में श्रद्धा रखते हुए अपने कर्तव्य का पालन करें।

[७२] सबकुटुम्बियों और सब मान्य पुरुषों को सदा प्रसन्न रक्खे।

[७३] यदि प्रमाद के कारण विद्वानों का अनादर हो जाये तो धार्मिक व्यवहार कर के विद्वानों को प्रसन्न करे।

यद्द देवा देवहेडनं देवालश्च कमा वयम्।

आदित्यास्तस्माग्नो यूयमृतस्यतन मुञ्चत ॥

[७४] जो अपरिमित धन इकट्ठा कर जगत् के उपकारी सुपात्रों को देते हैं वे ईर्षा करने योग्य नहीं।

[७५] प्रत्येक को कभी ऐसी इच्छा न करनी चाहिये जिससे किसी के सुख की हानि हो न मित्रता भंग करनी चाहिये।

[७६] यदि किसी समय प्रमाद के कारण माता पिता इत्यादि को अप्रसन्न किया हो तो क्षमा मांगकर प्रायश्चित कर के शुद्ध होवे।

७७—विद्याकी उन्नति के अर्थ सदा उदरकी अग्निको प्रदीप्त करते रहो।

७८—जो मनुष्य मन, वाणी, शरीर से झूंठे आचरण कर अन्याय से प्राणियों को पीड़ा देकर अपने सुखके लिये अन्य के पदार्थों को ग्रहण करते हैं वे नाना प्रकार के दुःख भोगने के लिये नीच योनियों में जन्म पाते हैं।

७९—धर्मात्मा परोपकारी ही सदा निर्भय होकर रहते हैं।

८०—विना कामना के संसार में एक क्षण भी नहीं जाता, इस लिये श्रेष्ठ कामना करनी अभीष्ट है।

८१—जिस स्थान पर धर्मात्मा विद्वान् निवास करते हैं वहां की प्रजा विद्या, उत्तम शिक्षा और धनवाली हो सुखों को भोगती है।

८२—जो अज्ञान से पाप होगया हो उसके दुःखरूपी फल को जान फिर पाप कर्म करने का कभी मन से इच्छा न करो।

८३-ईश्वर भक्तजनों की आत्माओं में सब सत्य व्यवहारों को प्रकाशित कर देता है।

८४—विना उत्तम बुद्धि के भी सुख नहीं होता, इस लिये धर्मात्मा विद्वानों के सतसंग से बुद्धि को बढ़ाओ और विद्या को तर्क से।

८५—वाणी वही उत्तम कहाती है जिसमें तीन गुण हों, प्रथम विद्या और शिक्षा से संस्कार की हुई, दूसरे सत्य भाषणयुक्त, तीसरे मधुर गुणयुक्त हो।

८६—न्याय से सब का मन प्रसन्न होता है, इसलिये सदा न्याय करता रहे। जीव अनादि कर्म करने में स्वतन्त्र और फल भोगने में परतन्त्र है। फल का देने वाला परमात्मा है।

८७—जैसा सब दुःख हानि लाभ अपनी आत्मा को होता है, वैसा ही अन्य को भी जानना चाहिये, तब ही सुख की वृद्धि होती है।

८८—जो जन जिस कार्य में निपुण हो उसको उसी कार्य में लगाना चाहिये, जिससे कार्य सुगमता और उत्तमता से हो।

८९—स्त्री पुरुषों के सुयोग होने से सन्तान प्रशंसनीय, रूप, गुण, कर्म, स्वभाव, बल, आदि वाली होती है।

९०—उपासना के अनुकूल आचरण करने से सर्वत्र विजय होती है।

९१-विना ज्ञान के ईश्वर की उपासना नहीं होती क्योंकि विज्ञान ही उसकी अवधि है।

९२—जो मूर्ख और क्षुद्राशय पुरुष से सम्बन्ध करते हैं वे दुःखी होते हैं।

९३—जिन देशों में सूर्य और चन्द्रमा के समान उपदेशक जन व्याख्यानों से सब विद्याओं का प्रकाश करते हैं, वहां कोई भी विद्या हीन होकर भ्रम में नहीं पड़ता।

९४-पृथ्वी को खोद नाना प्रकार की धातु आदि उपयोगी पदार्थों को काम में लाने से बड़ा ऐश्वर्य होता है।

९५-मनुष्य को योग्य है कि वह असत्य, खोटे कर्म, झूंठी स्तुति, प्रार्थना, प्रशंसा और व्यभिचार कभी न करे।

९६-जिस सन्तान को माता पिता ब्रह्मचर्य्यादि उत्तम नियमों से उत्पन्न कर लालन पालन और विद्या पढ़ा धर्मात्मा बनाते हैं वही उन को सुख देने वाले होते हैं।

९७-अग्नि में खींचने की, पृथ्वी में धारण, पवन में चढ़ने की, मेघों से जल वर्षाने आदि की सब क्रियाओं को जो जानते हैं वही संसार में सुख की वर्षा करते हैं तथा जो दूध घी का सेवन करते हैं वही कोमल स्वभाव होते हैं।

९८-चेतन ब्रह्म ही उपासना के योग्य है और जो इससे भिन्न है वह उपास्य नहीं।

९९—पृथ्वी पर जितने पदार्थ हैं उनमें अन्न ही परम उपयोगी है, इस लिये अन्नदान करने वाले पुरुष की सर्वत्र कीर्ति होती है।

१००-परमेश्वर पाप कर्मोंके ही कारण मनुष्यों को लूला, लंगड़ा, बौना, अंधा, वहिरा आदि करता है, इसलिये सदा शुभकर्मों को करना उचित है।

१०१—जीव के रहने का स्थान शरीर है, इसको ब्रह्मचर्यादि से दृढ़ कर अपनी जठराग्नि को सदा तेज बनाये रक्खो।

१०२-जो जन आप्त विद्वान् सत्यवादी की शिक्षा पर चलते हैं उनको सदा विजय, राज्य, श्री, प्रतिष्ठा बड़ी अवस्था, बल और विद्या प्राप्त होती है।

१०३-जो अग्नि और जलादि से युक्त भाप से शीघ्रगामी यानों का प्रचार करते हैं, उनकी नाना प्रकार की उन्नति होती है।

१०४-विद्याध्ययन करने के पश्चात् जो एकान्त देश में विचार करते हैं वे योग्यों के समान उत्तम बुद्धि वाले होते हैं।

१०५-जो न्याय और विनय से परोपकार को करतेहैं वा विद्वान् पिता और विदुषी माता और श्रेष्ठ पदार्थों को प्राप्त हो विद्वानों के सेवक हो अन्य सुखों को पाते हैं।

१०६-प्राण, श्रद्धा, आकाश, वायु, जल, पृथ्वी, इन्द्रिय, ज्ञान, अन्न, वीर्य, तप, मंत्र, कर्म, लोक, अग्नि नाम इन सोलह वस्तुओं को परमेश्वरने बनाया है यही षोडषी कहाती हैं।

१०७-नीच व्यवहार और नीच पुरुषों और स्त्रियोंका संग छोड़ उत्तम कर्म और सज्जनों का साथ करना ही सर्वोपरि उत्तम कार्य है।

१०८ जो ब्रह्मचर्य धारण कर विद्या को पढ़ धर्मानुसार कार्य करते हैं वही पुरुष उपदेशक होते हैं, अन्य हठी और अभिमानी होते हैं।

१०९-जो माता पिता के सच्चे अनुचर होते हैं वही श्रीमन्त होते हैं।

११०-जो मनुष्य परमेश्वर की आज्ञा का पालन, विद्वानों का संग कर बहु समर्थयुक्त मनको शुद्ध करते हैं उन्हीं को सब अवस्थाओं में आनन्द प्राप्त होता है। गम्भीर बुद्धि वाले ही विद्वानों में माननीय होते हैं।

१११-मनुष्य शरीर धारण करने का यही फल है कि विद्या, उत्तम शिक्षा, उत्तम स्वभाव, धर्म, योगाभ्यास और विज्ञान को ग्रहण कर मुक्ति को प्राप्त करें।

११२—मनुष्योंका विशेष कल्याण पढ़ाने और उपदेश से होता है इस लिये गुरुकुल में विद्या पढ़ाने और उपदेशक बनाने के लिये जो पुरुष यत्न करते हैं, वे धन्य हैं। अनाथों की रक्षा करने वाले पुण्यवान् कहाते हैं।

११३-जो धर्म मर्यादा का उल्लंघन नहीं करते वे निरोग होकर पूर्ण आयु वाले होते हैं और उनको मृत्यु मध्य में नहीं मारती।

११४-जिस प्रकार अग्नि, बिजली और सूर्य इन तीन से जगत् प्रकाशित हो रहा है उसी भांति उत्तम बल, कर्म, बुद्धि, धर्म से संचित धन, जीती हुई इन्द्रियां महान् सुख को देती हैं।

११५—ज्यों ज्यों मनुष्य स्वकर्म की चेष्टा करते हैं त्यों त्यों पापकर्मों से बुद्धि की निवृत्ति होती है और विद्या, अवस्था और सुशीलता बढ़ती है।

११६-जिस प्रकार समुद्र जलको भर जीवोंकी रक्षा कर नाना प्रकार के मोती आदि देता है उसी भांति धर्मसे धन इकट्ठा कर दरिद्रियों की रक्षा कर आनन्द भोगो। जो वाणीको वश करते हैं वह ज्ञानके धनी होते हैं।

११७--अग्नि स्थूल पदार्थों को जलाता है, सूक्ष्म को नहीं।

११८ जो परमेश्वर न कभी उत्पन्न होता है, न मरता है, उस को ध्यानशील योगिराज हीं जानते हैं।

११९--परमेश्वर की उपासना, सुन्दर विचार विद्या और उत्तम सत्संग अंतःकरण की शुद्धि अर्थात् धर्माचरण से होती है।

१२०--जो परमात्मा की आज्ञा पालन करते हैं, वे लच्छमी, सन्तान से रहित और अल्पायु वाले कभी नहीं होते हैं।

१२१--पितर वे कहाते हैं जो विद्या उत्तम शिक्षा से पण्डित धर्मात्मा बनाते हैं।

१२२----धर्मात्माओं के लिये संसार के सम्पूर्ण पदार्थ मङ्गलकारी होते हैं।

--:o:--

नीतियुक्त शिक्षा

१--धर्मयुक्त नीति का विचार करना उत्तम है जिस प्रकार तपाकर सुवर्ण की परीक्षा की जाती है उसी भांति कर्म गुणशील और तुलादि से मनुष्य की परीक्षा होती है।

२-राजा-देवता अर्थात् विद्वान, गुरु, अग्नि, तपस्वी और धर्म को सावधानी से सेवन करे। शास्त्र ज्ञान के बिना धर्म मार्ग का ज्ञान नहीं होता।

३-माता पिता गुरु स्वामी भाई पुत्र मित्र इन से एक क्षण को भी विरोध न करे क्योंकि इन से वैर करने वाला दुःखी होता है।

४-स्त्री, बालक वृद्ध मूर्ख इनके साथ विवाद न करे।

५-अकेला स्वादिष्ट भोजन और अर्थ की चिन्ता और मार्गमें न चले।

६-स्त्रियों के साथ एक आसन पर न बैठे। निद्रा, तन्द्रा, भय, क्रोध आलस्य, दीर्घसूत्रता इन छः बातों को त्याग दे।

७ शत्रुके गुणों का ग्रहण और गुरु के अवगुण छोड़ने उचित हैं।

८--अपने घरमें आए हुए क्षुद्र की भी यथा योग्य सेवा करनी चाहिये।

९- रोग और शत्रुको थोड़ा समझकर न छोड़े, याचकोंको तीखा उत्तर न दे। दाता, धार्मिक, शूर वीर, इनकी ख्याति को यत्न से सुने। दीन, अन्धे, पंगु, बहिरे इनका हास्य कभी न करे।

१०- जिसने कुटुम्ब का पालन नहीं किया वह जीता ही मरों में गिना जाताहै। सींग, नख, डाढ़ वाले जीवों और दुर्जनों का कभी विश्वास न करे।

११--स्त्री, बालक, रोग, दास, पशु धन और विद्या अभ्यास और सज्जन सेवा को एक क्षण भी त्याग न करे।

१२--श्रुति स्मृति इनके अर्थ का ज्ञान और उत्तम बुद्धि पण्डितों के सङ्ग से होती है तरुणा स्त्री, धन पुस्तक इनको पराधीन न करे।

१३--गुरु, बलवान्, रोगी शव, राजा श्रेष्ठ व्रतवाला और सवारी पर चढ़े को मार्ग छोड़ देना चाहिये।

१४---गाड़ी से पांच, घोड़े तथा बैल से दश और हाथी से सौ हाथ दूर रहे।

१५---धन देने के समय मित्रता को और लेने के समय शत्रुता को प्रकट करता है, इसीलिये विना लिखा पढ़ीके कभी भी किसी को धन न देवे।

१६---अलङ्कार,राज्य, पुरुषार्थ, विद्या इनसे मनुष्य की इतनी शोभा नहीं होती, जितनी भलाई रूपी भूषण से होती है।

१७---विना शास्त्र के जाने धर्म निर्णय, नीति, दण्ड, चिकित्सा, प्रायश्चित् और क्रिया के फल को वर्णन न करें।

१८---विद्या शूरता चतुराई, बल और धीरजता यह स्वभाव ही से मित्र कहे हैं, इसलिये इन से ही वर्ते।

१९--अनिष्ट व कठोर वचन कहने वाला, जल और बाग को नष्ट करने वाला, नक्षत्र, सूर्य राजा का वैरी, खोटा मन्त्री, कपटी, खोटा वैद्य, अशुद्ध रहने वाला, मार्ग का रोकने वाला, स्वामी द्रोही, अधिकव्ययकर्त्ता अग्नि लगाने वाला, विष देने वाला, व्यभिचारी, अन्याय कर्त्ता माता पिता आदि से द्रोह करने वाला पराये गुणों में दोषों को ढूंढने वाला, शत्रु का सेवक, मर्म का छेदक, वंचक अपनों का द्वेषी कुटुम्ब का विना पालन पोषणके तप करने वाला मोटा ताजा होकर भिक्षा मांगे कन्या वेचे अधर्म का प्रचार करे स्वतन्त्र पुत्र स्त्री वृद्धों का निन्दक इनका सङ्ग त्याग दे।

२०---मृग भेरी के शब्द से हाथी हथिनी के स्पर्श से पतङ्ग दीपक के रूप से भ्रमर फूल के रस से मीन अन्न की गन्ध से ये पांचों एक एक इंद्रियों के विषय से मारे जाते हैं।

२१---धनवानों के सन्तान न होना और निर्धन होकर मूर्खता होनी यह पाप का ही फल है। इसलिये वही जीविका श्रेष्ठ है जिससे धर्म न छूटे।

२२---धूर्त मनुष्य अन्य के उपदेश के लिये सदैव साधु के समान होते हैं परन्तु अपने प्रयोजन के लिये सैकड़ों कुकर्म करते हैं।

२३---दुष्ट भार्या वाले गृहस्थ से मरना भला है कुमन्त्रियों से राजा कुवैद्यों से रोगी कुत्सित राजाओं से प्रजा खोटी संतान से कुल कुबुद्धि से आत्मा सदैव नष्ट होते हैं। अति भ्रमण अति भोजन अति मैथुन, अति परिश्रम ये शीघ्र बुढ़ापा लाते हैं, इस लिये अति छोड़ कर कार्य करे।

२४---साधु तनक उपकार को बड़ा मानता है खल बड़े उपकार को भी कुछ नहीं मानता।

२५ जिस देश में आदर, जीविका, बन्धु और विद्या का लाभ नहीं वहां रहना योग्य नहीं। जहां धनिक,वेदका ज्ञाता ब्राह्मण,राजा,नदी और वैद्य विद्यमान् न हों वहां एक दिन भी वास न करना चाहिये।

२६—काम लगाने पर सेवकोंकी,दुःख आने पर बान्धओं की, विपति काल में मित्र की, विभव के नाश होने पर स्त्री की परीक्षा करनी चाहिये।

२७---सब पर्वतों पर माणिक्य नहीं होता और मोती सब हाथियों में नहीं मिलता, इसी भांति साधु सब स्थानों पर और सब वनों में चन्दन नहीं होता।

२८---स्त्री का विरह, अपने जनोंसे अनादर, युद्धसे बचा शत्रु, कुत्सित राजा की सेवा, दरिद्रता, अविवेकियों की सभा ये विना अग्नि के ही शरीर को जलाते हैं।

२९---कुग्राम में वास, नीच कुलकी सेवा, कुभोजन, कलही स्त्री, मूर्ख पुत्र, विधवा कन्या, ये छः विना आग के शरीर को जलाते हैं।

३०---नदी के तीर का वृक्ष, अन्य गृहमें जाने वाली स्त्री, मंत्री रहित राजा शीघ्र नष्ट होजाते हैं।

३१---ब्राह्मणों का बल विद्या, राजा की सेना, वैश्यों का धन और शूद्रों का बल सेवा है।

३२--आलस्य, मद, मोह, चञ्चलता, बुरी सलाह, अभिमान, कठोरता और भूल ये सात दोष विद्यार्थियों में होते हैं, सुख चाहने वाले को विद्या और विद्या की इच्छा वाले को सुख कहां?

३३—आलसी, भयंकर, घमण्डी, चोर, कृतघ्नी और नास्तिक का कभी विश्वास न करना चाहिये।

३४--मूर्ख, नशों का पीने वाला, आलसी, अजितेन्द्रिय और रोगी इन के पास धन कभी नहीं रहता।

३५--जिन पति पत्नियों के हृदय से हृदय मन से मन और बुद्धि से बुद्धि मिल जाती है उनको ही सुख प्राप्त होता है।

३६---जिसका आचरण बुरा है, दृष्टि पाप में रहती है बुरे स्थान में बसने वाला और दुर्जन इन पुरुषों की मैत्री शीघ्र नष्ट हो जाती है।

३७--मित्र को धर्म का उपदेश करना भला है, पुत्र और पुत्रियों को विद्या में लगाना उचित है।

३८-आचार से कुल जाना जाता है, बोली से देश, आदर से प्रीति और शरीर भोजन को बतलाता है।

३९-कोकिलाओं की शोभा स्वर, स्त्रियों की पतिव्रत, तपस्वियों की शोभा क्षमा और सुपुत्र से कुल शोभित होता है, योग्य पुत्री से दो कुलों की शोभा होती, कुपुत्र से कुल शोभा रहित हो जाता है।

४०-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के बिना मनुष्य शरीर निरर्थक ही है।

४१-जहां मूर्खों की पूजा होती है वहां अन्न संचित नहीं रहता और जहां स्त्री पुरुषों में प्रेम होता है वहां ही लक्ष्मी विराजमान रहती है।

४२-सज्जनों की सबसे बड़ी यही परिक्षा है कि उनके मन, वच और कर्म एक होते हैं।

४३-धन होने पर विवेक, विद्या के साथ विनय, बल के साथ नम्रता होना महात्माओं के लक्षण हैं।

४४-वही महात्मा वही हैं जो धन पाकर बौराते नहीं, युवा होकर चंचल नहीं होते और अधिकार पाकर घमण्ड नहीं करते।

४५-कान शास्त्र सुनने से शोभित होते हैं कुंडल से नहीं, हाथ दान से शोभित होता है कंकण से नहीं, इसी भांति शरीर परोपकार से शोभा पाता है चन्दन के लगाने से नहीं।

४६-विपति में धीरज, बढ़ती में क्षमा, सभा में वचन की चतुराई युद्ध में शूरता, यशमें रुचि और वेद में कामना यह महात्माओं को स्वभाव से ही होती हैं। दुष्ट मनुष्य सर्वदा ही परनिन्दा से प्रसन्न होते हैं।

४७-गुप्तदान देना, अतिथियों का आदर करना, भलाई करके चुप रहना, पराये उपकार का सभा में कथन, लक्ष्मी का गर्व और दूसरों की निन्दा न करना, इन व्रतों के करने वाले सज्जन कहलाते हैं।

४८-सांप का विष दांत में, मक्षिका शिर में, बिच्छू का पूंछ में परंतु दुर्जन का विष सब अंगों में रहता है।

४९-आरोग्य रहना, ऋणी न होना, परदेश में अधिक न रहना, सत्पुरुषों का सत्संग करना, अपनी वृत्तिकी आजीविका और निर्भय होकर रहना, ये इस लोक के सुख हैं।

५०-जो मनुष्य कच्चे फलों को खाता है उसको स्वाद नहीं मिलता।

५१-शरीरके अंग ढीले पड़गये हैं, सिरके बालसफेद होगये मुख दन्त-

रहित होगया बुढ़ापा आगया दण्ड लेकर चलने लग गया परन्तु तो भी आशा ने पिंड न छोड़ा।

५२--मान अपमान पर ध्यान कर अपने कार्य को कर दिखलाना उत्तम पुरुषों का काम है। विवाह, मित्रता, व्यवहार ये तीनों समानता से ही शोभित होते हैं।

५३--चंचलता, लालच, कोप, मिथ्या चुगली, द्वेष और पराये घर पर रहना इन सब को बुद्धिमान त्याग दें।

५४--पर द्रव्य, अन्य की निन्दा, बड़ों के साथ हंसीठट्ठा और चंचलता इन सबको त्याग देना चाहिये।

५५-तृण, भूमि, जल और चौथा सुन्दर मधुर वचन, ये सब सज्जनों के यहां सदा बने रहते हैं।

५६--जब तक शरीर स्वस्थ अर्थात् नीरोग है, मृत्यु दूर है तब तक अपना हित साधन करना चाहिये, जब प्राण का अन्त समय आजायगा तब कोई क्या करेगा?

५७--कामनाओं के भोगने से कामना शांति कभी नहीं होती जिस प्रकार से घृतादि होम सामग्री से अग्नि शांति नहीं होती।

५८-वरं मौनं कार्यं न च वचनं मुक्तं यदनृतं।
वरं क्लैब्यं पुंसां न च परकलत्राभिगमनम्॥
वरं प्राणत्यागो न च पिशुनवाक्येष्वभिरुचिः॥
वरं भिक्षाशित्वं न च परधनस्वादन सुखम्॥

चुप रहना अच्छा पर झूंठ बोलना अच्छा नहीं, नपुंसकपना अच्छा पर पराई स्त्री का संगम अच्छा नहीं, मर जाना अच्छा पर चुगली में प्रीति अच्छी नहीं, भीख मांग कर खाना अच्छा है पर दूसरे का धन खाकर सुख उठाना अच्छा नहीं।

५९-मूर्खो द्विजातिः स्थविरो गृहस्थः। कामी दरिद्री धनवांस्तपस्वी॥
वेश्या कुरूपा नृपतिः कदर्यो। लोके षडेतानि विडम्बनानि॥

मूर्ख, द्विजाति, बूढ़ा, गृहस्थ, दरिद्र होकर विषय की इच्छा रखने वाला, तपस्वी होकर धन का संचय करने वाला, कुरूपा वेश्या और कायर राजा ये छहों संसार में अनादर किये जाते हैं।

६०-अष्टौ गुणा पुरुषं दीपयन्ति। प्रज्ञा च कौल्यश्च दमः श्रुतं च॥

पराक्रमश्च बहुभाषिता च । दानं यथा शक्ति कृतज्ञता च ॥

प्रज्ञा, कुलीनता, दम अर्थात् मनको दुष्ट कर्म से रोकना, शास्त्रज्ञान, पराक्रम, थोड़ा बोलना, यथाशक्ति दान, कृतज्ञता अर्थात् दूसरेकी भलाई को मानना ये दश गुण मनुष्य को उज्ज्वल कर देते हैं ।

६१-जले तैलं खले गुह्यं पात्रे दानं मनागपि ।
प्राज्ञे शास्त्रं स्वयं याति विस्तारं वस्तुशक्तितः ॥

जल में तेल, दुर्जन में गुप्त वार्ता, सुपात्रमें दान और बुद्धिमान में शास्त्र ये थोड़े भी हों तो भी वस्तु की शक्ति से अपने आप विस्तार को प्राप्त हो जाते हैं ।

६२-यदीच्छसि वशीकर्तुं जगदेकेन कर्मणा ।
पुरा पंचदशास्येभ्यो गां चरन्तीं निवारय ॥

जो एक ही कर्म से जगत् को वश किया चाहते हो तो आंख, कान, नाक, जीभ, त्वचा, मुख,हाथ, पांव, गुदा, लिंग, रूप, शब्द, रस, गन्ध, स्पर्श इन पन्द्रहों से मन को निवारण करना उचित है ।

६३-अग्निरापः स्त्रियो मूर्खः सर्पो राजकुलानि च ।
नित्यं यत्नेन सेव्यानि सद्यः प्राणहराणिषट् ॥

आग, जल, स्त्री, मूर्ख, सांप और राजा के कुल ये सदा सावधानी से सेवन योग्य हैं क्योंकि ये छः शीघ्र प्राण के हरने वाले हैं ।

६४-उत्पन्ना पश्चात्तापस्य बुद्धिर्भवति यादृशी ।
तादृशी यदि पूर्वंस्यात् कस्य नस्यान्महोदयः ॥

निन्दित कर्म करने के पश्चात् पछताने वाले पुरुषको,जैसे बुद्धि उत्पन्न होती है वैसी यदि पहिले होती तो किसको बड़ी समृद्धि न होती ?

६५-सभा में नहीं जाना चाहिये जो जाय भी तो उचित बोलना चाहिये क्योंकि उचित को नहीं बोलता हुआ और विरुद्ध बोलता हुआ ये दोनों ही पाप के भागी होते हैं इसलिये सभा में जाकर सभासद् को उचित है कि रागद्वेष को त्याग कर बात कहे कि जिससे नरक में न गिरे ।

६६-क्षमीदाता गुणग्राही स्वामीदुःखेन लभ्यते ।
अनुकूलः शुचिर्दक्षो राजन्भृत्योऽपि दुर्लभः ॥

हे राजन् ! क्षमावान् दाता और गुण का समझने वाला स्वामी और आज्ञाकारी, पवित्र और चतुर चाकर कठिनता से मिलते हैं ।

६७-शाठ्येन मित्रं कपटेन धर्मं परोपतापेन समृद्धभावम् ।
सुखेनविद्यां पुरुषेणनारी वांछन्ति ये नूनमपण्डितास्ते ॥

जो पुरुष शठता से मित्र, कपट से धर्म, दूसरों की पीड़ा द्वारा धन, सुख से विद्या और कठोरता द्वारा नारी प्राप्त करना चाहता है, वह निःसन्देह पण्डित नहीं है ।

६८-दुर्बलार्थं यस्य बलं धर्मार्थस्यपरिग्रहः ।
वाक् सत्यवचनार्थं च पिता ते नैव पुत्रवान् ॥

दुर्बलों की रक्षा के लिये जिसका बल है, धर्म के लिये जिसका धन सञ्चय है और बोली जिसकी सत्यप्रकाश करने के लिये है ऐसे ही लड़के से पिता पुत्रवाला कहलाता है ।

६९-न पश्यति च जन्मान्धः कामान्धो नैवपश्यति ।
नपश्यति मदोन्मत्तोह्यर्थी दोषेन पश्यति ॥

जन्म का अन्धा, कामान्ध और अभिमान से पागल को नहीं सूझता, अर्थी दोष को नहीं देखता ।

७०-वाचां शौचं च मनसः शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
सर्वभूतदयाशौचमेतच्छौचं परार्थिनाम् ॥

वचन तथा मन की शुद्धि, इन्द्रियों का संयम, सब जीवों पर दया ये परार्थियों की शुद्धि है ।

७१-अधमा धनमिच्छन्ति धनं मानं च मध्यमाः ।
उत्तमा मानमिच्छन्ति मानोहि महतां धनम् ॥

अधम धन ही चाहते हैं, मध्यम धन और मान को तथा उत्तम पुरुष मान ही चाहते हैं, इस कारण कि महात्माओं का धन मान ही है ।

७२-वरं न राज्यं न कुराजराज्यं वरं न मित्रं न कुमित्रमित्रम् ।
वरं न शिष्यो न कुशिष्यशिष्यो वरं न दारा न कुदारदाराः ॥

राज्य का न रहना अच्छा परन्तु कुराजा का राज्य होना अच्छा नहीं, मित्र का न होना यह अच्छा परन्तु कुमित्र को मित्र बनानाना उत्तम नहीं, शिष्य न हो यह अच्छा परंन्तु निन्दित शिष्य का होना भला नहीं, भार्या न हो यह अच्छा परन्तु कुभार्या का भार्या होना अच्छा नहीं ।

७३-जिस प्रकार हजारों गौ होते हुये बछरा अपनी ही माता के पास जाता है, उसी भांति किया हुआ पाप कर्त्ता ही को मिलता है ।

७४-सत्यं माता पिता ज्ञानं धर्मो भ्राता दया सखा।
शान्तिः पत्नी क्षमा पुत्रः षडेते मम बान्धवाः॥

सत्यरूपी माता, ज्ञानरूपी पिता, धर्म रूपी भाई, दया मित्र, शांतिस्त्री, और क्षमारूपी पुत्र यह छः मेरे भाई हैं।

७५-क्रोधो वैवस्वतोराजा तृष्णा वैतरणीनदी।
विद्या कामदुधाधेनुः सन्तोषो नन्दनं वनम्॥

क्रोध यमराज है, तृष्णा वैतरणी नदी है, विद्या कामधेनु गाय है, और सन्तोष इन्द्र की वाटिका है।



वैद्यक विद्या।

इस विद्या को स्त्री पुरुष दोनों पढ़ते थे पुरुष पुरुषों और स्त्रियां स्त्रियों की चिकित्सा करती थीं परन्तु भारत से ब्रह्मचर्य की प्रथा को तोड़ने से पुरुष भी यथा योग्य इस विषय में निपुण बहुत कम होते हैं स्त्रियों के लिये तो विद्या पढ़ने का अधिकार ही नहीं रक्खा जिसके कारण गृहस्थाश्रम में स्त्रियों, बच्चों इत्यादि के बीमार होने के समय बड़े क्लेश उठाने पड़ते हैं।

देखिये यजुर्वेद अ० १२ मन्त्र ८२ में लिखा है कि स्त्रियों को चाहिये कि औषधि विद्या का ग्रहण अवश्य करें क्योंकि इसके बिना पूर्ण कामना सुख प्राप्ति और रोगों की निवृत्ति कभी नहीं हो सकती। जैसा कि—

या ओषधीः सोमराज्ञीर्बह्वीः शतविचक्षणाः।
तासामसि त्वमुत्तमारं कामाय शं हृदे॥

इसलिये अब स्त्रियों को विद्या पढ़ाकर इस ओर ध्यान दिलाना चाहिये अब हम वेदादि ग्रन्थों से कुछ उपयोगी विषय लिखते हैं जिससे आशा है कि गृहीजनों को बहुत लाभ होगा।

———:o:———

वैद्य।

यजुर्वेद अ० २० मन्त्र ५९ और अ० १६ मन्त्र ४ में लिखा है जिसने वेदों को अङ्ग उपाङ्ग सहित पढ़ हस्त क्रिया में कुशल हो वैद्यक शास्त्र को अच्छे प्रकार विचार पर्वत आदि स्थानों पर नाना प्रकार की औषधियों और जलों की परीक्षा की हो शस्त्रों से छेदन भेदन को जानता हो निष्कपट, सब

का कल्याण चाहने वाला प्रियभाषी, धर्म नीति का जानने वाला दानी आदि गुण से युक्त हो, जैसाकि---

अश्विना नमुचे भतस्तु सोम ३० शुक्रं परिस्रुता।
सरस्वती तमाभरद् बर्हिषेन्द्रायपातवे ॥

ऋग्वेद मन्त्र २। अ० ७। व० १८। मन्त्र २। अ० ४। सूत्र ३६ में लिखा है जो वैद्य राज्य और न्याय के अधीन हो वे अन्याय से किसी का धन हरण न करे न किसी को मारे किन्तु सदा अच्छे पथ्य और औषधियों के सेवन से उन्मादि बड़े २ रोगों को दूर कर बल पुरुषार्थ सहित सौ वर्ष तक जीवन दान देने वाले हो।

एवा बभ्रोवृषभ चेकितान यथा देव न हृणीषे न हंसि।
हवनश्रुन्नो रुद्रेह बोधि बृहद्वदेम विदथे सुवीरा ॥
त्वादत्तेभी रुद्र शन्त मेभिः शतं हिमा अशीय भेषजेभिः।
व्य ? स्मद्द्वेषो वितरं व्यंहो व्यमीवाश्चातयस्वा विषूचीः ॥

---:o:---

वैद्य के साथ बर्ताव।

श्रेष्ठ वैद्यों के साथ कभी किसी को विरोध न करना चाहिये और उन के साथ कोई ईर्षा न करे किन्तु प्रीति के साथ वैद्य की सेवा करनी चाहिये जिससे रोगों के दुःखों से बचकर सुख की बढ़ती हो जैसा कि ऋग्वेद अ० २। अ० ७। व० १६। मन्त्र २। अ० ४। सू० ३३। मन्त्र ४ में लिखा है।

मात्वा रुद्र चुक्रुधामा नमोभिर्मादुष्टुती वृषभ मा सहूती।
उन्नः वीरां अर्पय भेषजेभिर्भिषक्तमं त्वाभिषजां शृणोमि ॥

यदि किसी वैद्य से विरोध होजाय तो मं० अ० १२ मन्त्र १०१ के आज्ञा के अनुसार विरोधी, वैद्य की कभी औषधी न कराये किन्तु जिस का कोई शत्रु न हो जो धर्मात्मा सब का मित्र सर्वोपकारी हो उससे औषधि कराये जैसाकि---

त्वमुत्तमास्योषधे तव वृक्षा उपस्तयः।
उपस्तिरस्तु सोऽस्माकंयो अस्मो ॥

अभिदासति

---:o:---

रोग।

यह दो प्रकारके होते हैं एक शारीरिक दूसरे आत्मिक-शारीरिक रोगों

की चिकित्सा वैद्यों और आत्मिक रोगों का सुधार तत्वदर्शियों और योगियों और विद्वानों से करावे।

यजुर्वेद अ०२० मन्त्र५७ में लिखा है वैद्यदो प्रकार केहैं एक ज्वरादि शरीर रोगों के नाशक दूसरे मनके रोग जोकि अविद्यादि मानस क्लेश हैं उनके निवरण करने हारे अध्यापक, उपदेशक हैं जहां ये रहते हैं वहां रोगों के विनाश से प्राणी लोग शरीर और मनके रोगों से छूटकर सुखी होते हैं।

इन्द्रायेन्दुअ्सरस्वती नराशअ्सेन नग्नहुम् अधातामश्विना मधुभेषजं भिषजासुने।

इसके उपरांत ऋग्वेद अ० २। अ० ७। व० १८। मं० २। अ०४। सूत्र ३३ मं० १९ में स्पष्ट कहा है कि दुष्ट मति को उत्तम शिक्षा से और वैद्यक की रीति से शारीरिक रोगों को निवारण कर अपने कुल को सदा सुखी करना चाहिये।

परिणो हेतीरुद्रस्य वृज्याः परित्वेषस्य दुर्मतिर्म ही गात।
अव स्थिरा मघवंद्भ्यस्तनुष्व मीढ्वस्तोकाय तनयायमृल ॥

---:o:---

शारीरिक रोग।

अथर्व वेद कां० १ सू० ३२ में उपदेश है कि भारी रोग दो प्रकार के होते हैं एक हड्डी से उत्पन्न होने वाले अर्थात् भीतरी रोग जो ब्रह्मचर्य्य के खंडन और कुपथ्य भोजन आदि के कारण मज्जा और वीर्य्य के विकार से हो जाते हैं दूसरे तनुज जो शरीर से उत्पन्न हुए वाहरी रोग जो मलिन वायु और मलिन घर आदि के कारण होते हैं उनको वैदिक ज्ञान से रोगों का निदान कर उत्तम परीक्षित औषधियों से स्वस्थ करे जैसा कि-

अस्थि जस्य किला सस्य तनू जस्य च यत त्वचि।
दूष्या कृतस्य ब्रह्मणा लक्ष्म श्वेत मनीनशम ॥

यजुर्वेद अ० ११ मं० ६८ में लिखा है कि राजा दो प्रकार के वैद्य रक्खे एक तो सुगन्ध आदि पदार्थों के होम से वायु वर्षा जल और औषधियों को शुद्ध करे दूसरे श्रेष्ठ विद्वान वैद्य निदान आदि के द्वारा सब प्राणियों को रोग रहित रक्खे विना इस कर्म के संसार में सार्वजनिक सुख नहीं हो सक्ता।

अग्ने देवीरूप सृज मधुमतीरयक्ष्माय प्रजाभ्यः।
तासामास्थानादुज्जिहतामोषधयः सुपिप्पलाः ॥

---:o:---

जितने रोग उतनी औषधियां।

मनुष्योंको यहभी जानना अभीष्ट है कि जितने रोग हैं उतनीही उनकी नाश करने वाली औषधि भी हैं इन औषधियों को नहीं जानने ही से पुरुष रोगी रहते हैं जो रोगों की औषधि जाने तो उन रोगों को निवृत्ति करके आनंद भोगे जैसा य० अ० १२ मं० ९७ में कहा हैः—

नाशयत्री वला सस्यार्शस उपचिता मासे।
अथो शतस्य यक्ष्माणां पाका रोरसि नाशिनी॥

और अथर्ववेद कां० ५ सू० ५ मं० ४ में कहा है कि परमेश्वर ने प्रत्येक रोग के लिये औषधि उत्पन्न की है मनुष्य उसके प्रयोग से यथावत् सुख प्राप्त करे।

इसलिये किसी प्रकार के रोगी को निरास न होना चाहिये वरन् पुरुषार्थ कर के योग्य वैद्यों और महात्मा योगियों को ढूंढ कर औषधी करानी चाहिये उन की आज्ञानुसार रोगी और उन के सम्बंधियों को यथायोग्य चलना चाहिये फिर आराम होने के पीछे सब प्रकार से धर्म का आचरण करना चाहिये ऐसा अथर्व वेद कां० ३ सू० ११ मं० ८ में लिखा हैः—

अभित्वा जरि माहित गा मुक्षण मिव रज्वा।
यस्त्वा मृत्युरभ्यधत्त जायमानं सुपाशया॥

यजुर्वेद अ०१२ मं० ८९ में लिखा है कि ईश्वर ने प्राणियों की अधिक अवस्था और रोगों की निवृत्ति के लिये औषधि रची है उन से रोगों को निवृत्त कर और पापों से बच कर धर्म में नित्य प्रवृत्त रहे।

याः फलनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः।
बृहस्पति प्रसूता स्तानो मुञ्चन्त्व ँ हस॥

रोग होने के मुख्य कारण।

वेदों से प्रकट होता है कि सब मनुष्य स्त्री अपने अपने कर्मों के अनुसार सुख, दुख भोगते हैं अर्थात् जो जितनी ईश्वर की आज्ञा पालन करते हैं उन को उतनाही सुख और जो जितना विपरीत कार्य्य करते हैं उन को उतना ही कष्ट मिलता है इन कष्टों में नाना प्रकार के रोग भी सम्मिलित हैं।

क्योंकि रोगी को नाना प्रकार के रोगों के कारण उस समय भूमंडल का राज्य, स्वर्ग के आनंद, कुबेर का कोष, इन्द्र की पुष्पवाटिका इत्यादि कुछ अच्छा नहीं लगता। रोगियों की यही कामना, यही प्रार्थना, यही मन की बलवती इच्छा रहती है कि किसी प्रकार से मेरा दुःख, कष्ट, क्लेश शीघ्र नाश हो और मैं चंगा हो जाऊं जैसा किसी महात्माने कहा है।

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं न पुनर्भवम्।
प्राणिनां दुःख तप्तानं कामये दुःख नाशनम्॥

देखिये अथर्व वेद कां० १ सू० २५ मं० २ व ३ में लिखा है:— कि वह परब्रह्म ज्वर आदि रोग से दुष्कर्मियों की नाड़ी २ को दुःख से दबा डालता है जैसे कोई किसी को कल में दबाता है मानसिक और शारीरिक पीड़ा सूर्य्य की तापवा जल से उत्पन्न ज्वर, पीलिया आदि रोग ईश्वर ही के नियम से विरुद्ध आचरण का फल है इसलिये उस न्यायी परमेश्वर का भय कर पुरुषार्थ से पापों से बचे ईश्वरीय नियमों को पालन कर उत्तम आचरणवान हो सदा शांतिचित्त और आनंद में मग्न रहे। जैसा कि—

यदर्चिर्यदि वासि शोचिःशकल्येषि यदि वाते जनित्रम।
हृडुर्नामासि हरितस्य देव सनः सं विद्वान् परि वृङ्ग्धि तक्मन॥
यदिशोको यदि वाभि शोका यदिवा राज्ञो वरुण स्यासि पुत्रः।
हृडुर्नामासि हरितस्य देव स नः संविद्वान् परि वृङ्ग्ध तक्मन॥

——:o:——

रोगों से कौन बचाता है

इसके उपरांत यह भी मालूम रहे कि संसार की सब औषधियों में क्लेशनाशक रोगनाशक शक्ति का देने वाला वही औषधियों का औषधि परब्रह्म है जैसा अथर्व कां० २ सू० ३ मं०२ में लिखा है। इस हेतु अ० कां० १९ सू० ४४ मं० ६ में स्पष्ट कहा है कि जो मनुष्य परमात्मा के नियमों पर चलते हैं उनको भौतिक औषधियों की आवश्यकता नहीं होती, अर्थात् वह बीमार ही नहीं होते।

देवाञ्जन त्रैककुदं परिमा पाहि विश्वतः।
नत्वा तरन्त्योषधयो बाह्याः पर्वतीया उत॥

क्योंकि ईश्वरीय नियम तोड़ने वाले मनुष्यों को परमेश्वर अपनी न्याय व्यवस्था से रोग आदि कष्ट देता है और अपने आज्ञाकारियों को

अत्यन्त सुख पहुँचाता है जैसा कि अ० कां० ४ सू० ९ मं० ८ में लिखा है और कां० १९ सू० ४४ मं० १ व २ में भी कहा है:—

जो प्राणी ईश्वर के नियम पर चलकर सुकर्म करते हैं वे सदा सुखी वा निर्भय रह शारीरिक और आत्मिक रोगों से ज्ञान द्वारा पृथक् रहते हैं ॥

जिस प्रकार औषधि तृण आदि फलफूल पत्ते स्कंध शाखा आदि से शोभायमान होते हैं उसी भांति रोग रहित शरीर शोभायमान होता है जैसा य० अ० १२ मं० ७९ में कहा है इसके उपरांत अथर्व वेद कां० ५ सू० २०८ मं० ५ में राजा और वैद्यों को परमात्मा आज्ञा देते हैं कि वह दुखी प्रजा को यथावत् सुख पहुँचाये और कां० ६ सू० १०१ मं० २ में उपदेश है कि राजा निर्बल रोगियों को सुख पहुँचाकर राज्य को सदा बढ़ावे। इसलिये राजा, महाराजा, सेठ, साहूकार, धनाढ्यों जन सदा से दीन दुखी रोगियों की सहायता करते रहे हैं आगे भी करनी चाहिये औषधालय खोल बिना दामों के दवा बटवानी चाहिये और वैद्यों को रखकर बिना फीस के उनकी चिकित्सा कराना चाहिये।

———:०:———

ज्वरादि रोगों का स्थान।

अथर्व वेद कां० ५ सू० २२ में लिखा है कि नीचे लिखे स्थानों में ज्वर आदि बलवान रोग होते हैं मनुष्यों को सावधान रहना चाहिये।

(१) बहुत नीचे जल वाले स्थानों (२) बहुत घास वाले, बहुत वृष्टि वाले (३) अधिक तृण वाले (४) अधिकताप वाले देशों में (५) इसके सिवाय कृमी और नाना प्रकार के जन्तु मच्छर आदि वाले देशों से बचा रहे।

और मं० ६ में लिखा है कि कुचाली, व्यभिचारी, स्त्री पुरुष रोगी होकर दारुण दुःख भोगते हैं इस से मनुष्य सदाचारी हो कर सदा स्वस्थ रहें

तव मंत्र व्याल विगद व्यङ्ग भूरि यावय।
दासी निष्टक्वरीमिच्छ तां वज्रेण समर्पय॥

सदाचारी प्रयत्न करके निरोग और हिंसक लोग प्रायः रोग ग्रसित रहते हैं॥

अन्य क्षेत्रे न रमसे वशी सन् मृडयासिनः।
अभूदु प्रार्थस्त क्यास गमिष्याति बल्हिकान्॥

कुकर्मी, अपथ्य भोगी पुरुष ज्वर, खांसी आदि से पीड़ित रहते हैं इस से मनुष्य सुकर्मी और पथ्य भोगी होवे ॥

तव मत भात्रा वळाते न स्वस्ता कासिकय सह ।
पाप्मा भ्रात व्येण सह गच्छामुमरणं जनम् ॥

हिंसा आदि अशुद्ध व्यवहारों से ज्वर आदि रोग होते हैं इससे मनुष्य शुद्ध व्यवहार रख कर सदा निरोग रहे ।

गन्धारिभ्यो मूजवद्भ्यो ऽङ्गेभ्यो मगधेभ्यः ।
प्रैष्यन जनमिव शमधि तवमानं परिदद्मसि ॥

जहां मलिन पदार्थ और मलिन स्वाभाव वाले स्त्री पुरुष होते हैं वहां रोग होते हैं इस से सब को बाहर भीतर से शुद्ध रखना चाहिये ।

तवमनमूजवतो गच्छ वाल्हिकान् वा परस्तराम् ।
शूद्रामिच्छ प्रफर्व्यं ! तां तक्मन वीव धूनुहि ॥

जिस प्रकार रोग जनक जन्तुओं की शुद्धि आदि द्वारा नाश करने से स्वस्थ्य बढ़ता है इसी प्रकार आत्मिक दोषों को हटाने से आत्मिक शान्ति होती है ।

त्रिशीर्षाणं त्रिककुदं क्रिमि सारङ्गमर्जुनम् ।
शृणाम्यस्य पृष्टीरपि वृश्चमि यच्छि ॥

अथर्व कां० ३ सू० ११ मं० ५ में लिखा है कि मनुष्य प्राणायाम और व्यायामादि से अपने प्राण और आपन को अनुकूल रख कर शारीरिक अवस्था सुधारे रहे और दुराचारों से बचकर अपना जीवन शुभ कामों में लगावे ॥

अथर्व कां० सू० ११ मं० ६ में लिखा है कि प्राण और अपान वायु का संचार ठीक न होने से रुधिर जम कर रोग उत्पन्न होता है इससे मनुष्य सब शरीर में वायु संचार ठीक रखकर दृढ़ शरीर वाले हों ।

अथर्व वेद कांड ३ सू० मं० ९ में लिखा है कि गृहपति रोगों से बचने और स्वास्थ्य बढ़ाने के लिये अपने घर में शुद्ध जल, अग्नि आदि पदार्थों का सदा उचित प्रयोग करें । और कां० ७ सू० ५३ के मं० ६ में उपदेश है कि शारीरिक इन्द्रियों को प्राणायाम, व्यायाम इत्यादि से स्वस्थ कर धर्म में प्रवृत्त रहे ।

इसलिये ईश्वर अथर्व० कां० सू० ६३ मं० २ में आज्ञा देते हैं कि मनुष्य

शुद्ध स्थान, शुद्ध वायु के सेवन से प्राणवायु के संचार द्वारा शारीरिक बल बढ़ाकर अपान से पसीना आदिमल निकाल कर दोषों को नाश कर के स्वस्थ रहे। और मं० ४ में कहा है कि इन्द्रियों के शोधन और श्वास प्रश्वास के यथावत प्राणायाम से पंचभूतों को सम रखकर हृष्ट पुष्ट रहे।

और मं० ५ में कहा है ब्रह्मचर्य्य आदि शुभ कर्मों द्वारा दुष्कर्मों से बच कर बलवान, धनवान और निरोग होवे।

अथर्व वेद कांड १९ सू० ३९ मन्त्र १ में लिखा है कि जिस घरमें गुगुल आदि सुगन्धित द्रव्यों का गन्ध किया जाता है वहां रोग नहीं होते।

न तं यक्ष्मा अरुन्धते नैनं शपथो अश्नुते।
यं भेषजस्य गुल्गुलोः सुरभिर्गन्धो अश्नुते॥

इसके उपरांत वेदों में लिखा है कि नाना प्रकार के हवन यज्ञ जहां होते हैं जैसे हमने हवन विषय में लिखा है।

अथर्व कांड ४ सू० ६ मन्त्र २ में लिखा है कि मनुष्य ऐसा उपाय करे कि आकाश और पृथ्वी के सब गोचर पदार्थों में विष की संसर्ग न हो— पुष्टकारक और बल वर्धक वस्तुओं के स्पर्श, दर्शन, श्रवण, मनन, संभोग आदि से आनन्द प्राप्त हो। यजुर्वेद अ० १२ मन्त्र ३३ में लिखा है कि वन के वृक्षों की रक्षा के बिना बहुत वर्षा और रोगोंकी न्यूनता नहीं होती। इस लिये राजा और सेठ, साहूकार, जमींदार को वनों की रक्षा करनी चाहिये। इन सब बातों के अतिरिक्त मनुष्यों को यह भी जान लेना योग्य है--रोगी और वैद्य दोनों मृत्यु के वश हैं तो भी मनुष्य वैद्यों से रोगों का निदान कराकर आरोग्यता के लिये पुरुषार्थ करते रहें। जैसाकि अथर्व कां० ६ सू० १३ मन्त्र ३ में कहा है।

नमस्ते यातुधानेभ्यो नमस्ते भेषजेभ्यः।
नमस्ते मृत्यो मूलेभ्यो ब्राह्मणेभ्य इदं नमः

य० अ० १२ मन्त्र ८२ में लिखा है जिस प्रकार रक्षा की हुई गाय अपने दूध से बच्चों और मनुष्यों को पुष्ट करके बलवान् करती है उसी भांति औषधियां तुम्हारे आत्मा और शरीर को पुष्ट करके बलवान् करती हैं जो कोई इनकी उपेक्षा करता है तो बल बुद्धि की हानि होती है क्योंकि औषधि बल बुद्धि का निमित्त है जैसाकि—

उच्छुष्मा ओषधीनां गावो गोष्ठादि वरते।

धन ३० सनिष्यन्ती नामात्मानं तव पूरुषः ॥

इसलिये सद्वैद्य स्वयं रोग रहित होकर अन्यों के शरीर में हुए रोगोंको जानकर निरन्तर रोग रहित किया करें जैसा यजुर्वेद अ० १९ मं० ५ में कहा है।

अथर्व वेद कां० ६ सू० २० में उपदेश दिया है कि जहां पर उत्तम वैद्य होते हैं और जहां के मनुष्य उचित आहार विहार करते हैं वहां ज्वरादि रोग नहीं होते इसके उपरांत जहां के स्त्री पुरुष सत्पुरुषों से मेल ईश्वर विचार सांसारिक पदार्थों के नियमों के साक्षात् करने से स्वस्थ रहें। इसके उपरांत अथर्व वेद में लिखा है (१) वैद्य रोगों के प्रधान और गूढ़ कारणों को जानें (२) देश, काल, स्वभाव इत्यादि बातों का विचार करें (३) मन लगा कर निदान रोग को जानलें (४) ज्वर के साथ अन्य रोग न होने पावे (५) यदि रोग के कारण व्याकुलता से शरीर अङ्ग भङ्ग हो गया हो तो औषधि द्वारा उसको ठीक करें (६) रोगी को शिक्षा करें कि वह रोग के समय मानसिक चिन्ता छोड़ दे (७) जल द्वारा भी रोगों को शांति करने के उपाय को जाने (८) वैद्य वैद्यक द्वारा औषधियों और अपने आविष्कृत अर्थात् अपने अनुभवी और बुद्धि के बल से जो नूतन जानकारी की हो उसका प्रचार करे (९) रोगियों को प्रातः वायु सेवन कराये (१०) उत्तम २ औषधियों जैसे सोमलता इत्यादि के उत्तम स्वादिष्ट रस का सेवन कराये जिससे शरीर शीघ्र पुष्ट हो जावें और हृदय को शांति करे इसके पीछे नीचे लिखी बातों को अच्छे प्रकार समझादे।

---:o:---

❀ पथ्यापथ्य विचार ❀

प्रिय सभ्य पुरुषों और देवियों! संसार से प्रत्येक वस्तु को नियमितरूपेण कार्य्य लाने से वे सब ही सुखद होती हैं और विपरीत दुःख के देने वाली। इसी भांति हमारा शरीर रूपी इंजन है, यदि इसकी भले प्रकार पथ्यापथ्य रूपी महौषधि से सर्वथा रक्षा की जाती है तब तो मनुष्य देह धारण करके अलभ्य सभी सुखों का अनुभव करते हैं, क्यों कि मनुष्य के स्वास्थ्य-सुधार के लिये पथ्य से सरल, अल्प व्यय, अनमोल एवं अपने स्वाधीन कोई और उपाय अभी तक दृष्टिगोचर नहीं हुआ। केवल पथ्य सेवन करने से ही बड़ी २ विशूचिकादि बीमारी भी पास नहीं फटकती, रोगातजन भी पथ्य सेवन से शीघ्र आरोग्य लाभ करते हैं तभी तो सौ औषधियों की

एक मूल औषधि पथ्य बतलाया गया है। परन्तु शोक के साथ कहना पड़ता है कि आज कल हमारे शिक्षित भाई भी इस ओर विशेष रूप से ध्यान नहीं देते। फिर मूर्खा बहिनों की तो कथा ही क्या ? जिसके कारण नित्य वैद्य जी के द्वार पर रहना पड़ता है और नित्य प्रति डाक्टर साहब की फीस देते औषधियां मोल लेने में अपनी आयु का बड़ा भाग खर्च किया जाता है तिस पर भी स्वस्थता का चिन्ह भी नहीं देख पड़ता, क्योंकि रोगों का मूल कारण कुपथ्य खान पान रहन सहन अर्थात् आहार विहार ही है, इसलिये कुपथ्य आहार विहार करने वालों को अच्छी गुणदायक औषधि के सेवन करने से लाभ की आशा सर्वथा छोड़ देनी चाहिये। अहो ! अभागे भारत की कुपथ्यता से बढ़ी हुई मृत्यु संख्या को देख कर भी हम को पथ्य सेवन की अभिलाषा नहीं ! यही नहीं, किन्तु भारत की गृहिणी रोगी को बलात्कार लुका छिपाकर कुछ न कुछ खिला पिला अपथ्य करा बैठती हैं, तिस पर तुर्रा यह है कि चिकित्सक से भी छिपाती हैं। परन्तु कुपथ्य कभी छिपता नहीं, और देर में प्रकट होने से उस काल तक रोग की खूब वृद्धि होती जाती है, चिकित्सक महाशय कुपथ्य को न जान ठीक उसका प्रतीकार करने में असमर्थ होते हैं बस आखिरी परिणाम यह होता है कि रोगी यमपुर का मार्ग देखता है। इसलिये प्रिय सज्जन पुरुषों एवं गृहणियों ! यदि युवावस्था में बुढ़ापे की झलक देखना नहीं चाहते तो आपको पथ्य सेवन करना उचित है। प्यारी महिलाओ ! तुम्हारी रोगी की सब से बड़ी शुश्रुषा यहा यही है कि उसको कुपथ्य आहार विहार से बचाये रहो, कदाचित् कोई अपथ्य हो जावे तो तुरन्त वैद्य, डाक्टर से कह दो क्योंकि जितनी जल्दी कुपथ्य की सूचना मिलेगी उतना ही शीघ्र रोगी का कल्याण होगा, एवं निरोग जन भी बलवान् और हृष्ट पुष्ट बने रहेंगे।

औषधि विचार।

(औषधि नवीन उत्तम होती है परन्तु वायविडङ्ग, पीपल, धनिया, गुड़, शहद, घी यह पुराना ही लेना योग्य है। अडूसा, गुरुच (गिलोय) शतावरि, असगन्ध, खरेटी, सौंफ यह गीली ही लेना चाहिये और गीली को सूखी से दूना लेना योग्य है।)

औषधि सेवन के समय।

औषधि सेवन के पांच समय हैं। प्रथम सूर्योदय, २–दिन को भोजन के समय, ३-सायंकाल भोजन के समय, ४-वारम्बार, ५-रात्रिमें। परन्तु विशेष कर प्रातःकाल औषधि सेवन करना सबसे उत्तम है।

(१) पित्त अथवा कफ के कोप में, पित्त पर विरेचन के लिये कफ में वमन के लिये और वातादि दोषों के कम करने के लिये रोगी को विना भोजन किये प्रातःकाल औषधि देना चाहिये और गुदा सम्बन्धी रोगों में भोजन करने के कुछ समय प्रथम। (२) अरुचि रोगमें उत्तमोत्तम चाटने और फांकने वाले पदार्थों के साथ औषधि देना चाहिये। जो नाभि का वायु विगड़ा हो तो अग्नि को तेज करने वाली औषधि भोजन पदार्थ में मिला कर देना चाहिये (४) यदि सम्पूर्ण शरीर का वायु और कफ बिगड़ा हो तो भोजन करने के पीछे औषधि देनी चाहिये। (५) वायु और कफ के रोग में भोजन के आदि और अन्त दोनों में देना चाहिये। (६) उदान बिगड़ने में तो सायंकाल के भोजन के समय घी आदि पदार्थों में मिला कर एक २ ग्रास के साथ देना चाहिये। (७) जब प्राणवायु का कोप हो तब विशेष कर सायंकाल के भोजन करने के पीछे। (८) वमन, हिचकी, श्वास और विष दोष में अन्न सहित वा अन्न रहित देना चाहिये। (९) ताप के वेग को कम कनने के लिए रात्रिके समय पाचन अन्न रहित देना चाहिये।

स्वरस, कल्क, क्वाथ, हिम, फांट आदिकी विधि।

स्वरस-जो वनस्पति अग्नि तथा कीट आदि से दूषित न हुई हो उसको जंगल से लाकर तत्काल उत्तम पत्थर के टुकड़े पर पीस वस्त्र से निचोड़ कर रस निकाल लो उसको स्वरस कहते हैं। दूसरे चार पल सूखी औषधियों को कूट कर मिट्टी के पात्र में आठ पल जल के साथ भिगो कर छान लो। तीसरे सूखी औषधि से अठगुने जल को मिट्टी के पात्र में भिगोकर औटावे जब चौथाई शेष रह जावे तो छान ले, यह तीसरे प्रकार का स्वरस है। हां इतना भेद है कि प्रथम स्वरस की मात्रा दो तोले और दूसरे तीसरे की चार २ तोले देना चाहिए।

कल्क-गीली औषधि चटनी समान बारीक पीसे तथा सूखी को जल डाल कर पीसने को कल्क कहते हैं। इसकी मात्रा एक तोले भर कही है।

यदि कल्क में शहद, घी, तेल, मिलाना हो तो मात्रा से दूना और शक्कर गुड़ मिलना हो तो समान और दूध और जलादि गीले पदार्थ मिलना हो तो मात्रा से चौगुना।

क्वाथ—चार तोले औषधि को कुचलकर उससे सोलह गुणा पानी ले मिट्टी के बर्तन में डाल हौले २ आंच देवे, जब वह औटते २ आठवां भाग रह जावे, इसे क्वाथ कहते हैं; इसकी मात्रा उत्तम ४ तोले की होती है और निकृष्ट दो तोले।

हिम-चार तोला औषधि का कूट कर चौबीस तोला पानी के साथ मिट्टी के पात्र में रात भर भिगो कर प्रातः उसको छान ले इसको हिम कहते हैं, इसकी मात्रा एक तोला है।

फांट—चार तोला औषधि को कूट कर पाव भर जलके साथ मिट्टी के पात्र में डाल कर आँच देवे, जब वह औटने लगे तब कुछ काल के पीछे उतार कर छान ले, इसी को फांट कहते हैं उसकी मात्रा ८ तोले तक है।

चूर्ण-सब सूखी औषधियों को पीस कर कपड़े में छान ले, उसी को चूर्ण कहते हैं, इसकी मात्रा एक तोला है। यदि इसमें गुड़ मिलाना हो तो समान मिश्री दूनी हींग अनुमान से शहत दूना दूध, गो मूत्र, जलादि चौगुनी और नीबू आदि का पुट देना हो तो उसके रस में अच्छे प्रकार भिगोओ।

अवलेह-औषधियों के काढ़े को औटते औटते जब वह चटनी की भांति चाटने के योग्य हो जावे तब उतार ले उस को अवलेह चटनी कहते हैं। इसकी मात्रा एक पल, यदि गुड़ मिलाना हो तो दुगना शक्कर चौगुनी, इसी भांति दूध गोमूत्र जल आदि भी।

गुटिका-शक्कर आदि की चाशनी कर अथवा बिना चाशनी के अथवा जल दूध और शहत में मिलाकर गोली बांध ले इसी को गुटिका कहते हैं।

घृत, तैल-जिन पदार्थों का घी वा तेल बनाना हो तो प्रथम कल्क बनाना उससे चौगुना घी वा तेल डाल कढ़ाई वा मिट्टी के पात्र में आँच दे, जब घी और तैलही रहजावे उतार कर छानले।

क्षीर पाक-औषधि से आठगुणा दूध और चौगुना जल इन तीनों

को एक में मिलाकर आँच दे, जब पानी जलकर दूध रह जावे तब उतार ले, इसको क्षीर पाक कहते हैं।

उष्णोदक-एक सेर पानी को आगपर चढ़ावे, जब गरम हो जावे अथवा आधा चौथाई रह जावे तब उतारले

❀ औषधि दीपन-पाचनादि विचार ❀

दीपन पाचन—(जो औषधि आंव को न पचावे और अग्नि को प्रदीप्त करे उसको दीपन कहते हैं, जैसे सौंफ। जो आंव पचावे और अग्नि को प्रदीप्त न करे उसको पाचन कहते हैं, जैसे नागकेशर। और जो आंव को पाचवे और अग्नि तेज करे उसको दीपन पाचन कहते हैं, जैसे चित्रक।)

संशमन—जो औषधि वात आदि दोषों को दूषित न करे और न उनको सोधन करे अथात् पूर्व दशाही पर स्थिर रक्खे और शरीर के बिगड़े हुए दोषों को ठीक करे, उसको संशमन कहते हैं जैसे गिलोय आदि।

स्रंसन—जो औषधि कोठें को वात आदि दोषों तथा मल मूत्र को गुदा द्वारा निकाल देवे उसे स्रंसन कहते हैं।

रेचक—जो औषधि पचे वा अनपचे अन्नादि को तथा वात आदि दोषों को पतला कर निकाल देवे उसको रेचक कहते हैं, जैसे निसौत।

वमन—जो औषधि विना पचे हुये वात तथा पित्त को वल पूर्वक मुख द्वारा निकाल देवे, उसको वमन कहते हैं, जैसे मैनफल।

संशोधन-जो औषधि अपने स्थान में वातादि दोष तथा वल सञ्चय को ऊपर को खींच कर मुख, कान आदि अथवा गुदा वा मूत्र द्वारा निकाल दे उसे संशोधन कहते हैं, जैसे देवदारु।

छेदन-जो औषधि रस और धातु तथा वातादि को अपनी प्रवलता से छिन्न भिन्न करदे उसको छेदन कहते हैं, जैसे मिरच, पीपल।

लेखन-जो औषधि रस धातु तथा वातादि का अथवा वमन का शोषण कर पतला कर देती है उसको लेखन कहते हैं, जैसे बच।

ग्राही—जो औषधियां जठराग्नि को चैतन्य करे और आम आदिको पचावें उनको ग्राही कहते हैं, जैसे सोंठ।

स्तम्भन-जो औषधि रूखेपन, शीतलता, कटुता, हलकापन और पाचन इन गुणों से वात उत्पन्न करने वाली हैं उनको स्तम्भन कहते हैं जैसे नागरमोथा।

रसायन—जो औषधि शरीर में बुढ़ापे और रोगों को दूर करने वाली हों वह रसायन कहलाती हैं जैसे शतावर, दूध।

धातुवर्द्धनी—जो औषधि धातु को बढ़ाती हैं उसको धातुवर्द्धनी कहते हैं, जैसे मूसली।

धातुचैतन्य—जो धातु को चैतन्य और उत्पन्न करती हैं, जैसे दूध आंवला, उड़द।

बाजीकरण—मनुष्य को जो द्रव्य घोड़े के सामान सामर्थ्य देने वाले हैं, श्रेष्ठ वैद्यों ने उसे बाजीकरण कहा है, लोलम्बराज ने कहा है कि सुन्दरता और पुष्ट बल वीर्य इनके बढ़ाने वाले रसायन जरा व्याधिनाशक औषधियां पृथ्वी पर बहुत हैं, परन्तु घी और मिश्री मिले हुए दूध से बढ़कर दूसरा कोई प्रयोग इस विषय में नहीं है।

(१) हरड़, बहेड़ा और आँवला को त्रिफला कहते हैं यह रसायनों में उत्तम रसायन है। (२) सोंठ, मिरच, पीपल को त्रिकुटा कहते हैं। (३) चव्य, चीता, सोंठ, पीपल और पीपलामूल इनको पंचकोल कहते हैं। (४) बड़ी कटेली, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी और गोखरू को लघु पञ्चमूल कहते हैं। (५) शतावरि, बीरा, महाशतावरि, जीवती, जीवक और ऋषभक बृहत्पञ्चमूल। (६) डाभ, काश, ईख, शर और चावल की जड़ इन को तृणसंज्ञक पञ्चमूल कहते हैं।

देश और प्रकृति विचार।

(१) जहां नदी, नाले, झील, दलदल, छोटे वृक्ष, वन अधिक हों वहां की प्रकृति बादी, कफकारक और शीतल होती है। (२) जहां सूखे रेतीले मैदान वा जंगल हों उसको जङ्गल देश जानना, उसकी प्रकृति गरम पाचक और पित्तकारक होती है। (३) जहां उपरोक्त दोनों प्रकार के लक्षण-युक्त देश हों वहां प्रकृति मिली हुई जानना।

प्रकृति विचार।

(१) जो मनुष्य दुबला और रूखा और जिसके बाल कड़े हों और बहुत बोलता हो उसे वात प्रकृति जानना चाहिये। (२) जो पतला हो रूखा न हो, क्रोधी हो, पाचन शक्ति अधिक हो जिसके बाल बुढ़ापे से प्रथम श्वेत हो गये हों, उसको पित्त प्रकृति जानना। (३) जो मनुष्य मोटा हो गम्भीर हो, उसके बाल नरम हों कम बोलता हो, कम सोता हो, स्थिर

वृद्धि हो उसको कफ प्रकृति जानना चाहिये। [४] वात प्रकृति वाले पुरुष को रूखा ठंडा, बादी भोजन हानिकारक है गरम तर पदार्थ लाभदायक है। [५] पित्त प्रकृति को पतला, शीतल, तर भोजन गुणकारी है, कड़ा गर्म चरपरा हानिकारक है। [६]कफ प्रकृति को श्रम, रूक्ष, घूमर, आहार, शोषण वस्तु गुणदायक हैं और पतला चिकना वा बहुत ठण्डा वा गरिष्ट दुःखदायी।

अवस्था विचार।

(१) बाल्यावस्था में पित्त अधिक होती है फिर ज्यों ज्यों अवस्था बढ़ती है त्यों त्यों कफ वायु की वृद्धि होती है। (२) तरुण अवस्था में कफ और वृद्धावस्था में वायु की अधिकता होती है, इसी से बालकों की जठराग्नि प्रवलहोती है अनेक प्रकार का भोजन किया हुआ पच जाता है युवावस्था में बल पराक्रम अधिक होता है।

वृद्धावस्था-इस अवस्था में वायु की अधिकता से अच्छा भोजन मिलने पर भी धातु उपधातु सब शोषण हो जाते हैं, और वायु वेग से कार्य करती है तथा जठराग्नि विषय हो जाती है।

❀ औषधि पचने न पचने के लक्षण ❀

वायु की यथास्थान स्थित मन प्रसन्न क्षुधा और तृषा का लगना-शरीर हलका, इन्द्रियां चैतन्य, शुद्ध डकार का आना, यह औषधि पचने के लक्षण हैं और ग्लानि, अङ्गदाह, शिथिलता, चित्त भ्रम, मस्तक में पीड़ा बेचैनी आदि उपद्रव औषधि न पचने के होते हैं।

बाल चिकित्सा-जो रोग बड़े मनुष्यों के होते हैं वही बालकों के भी होते हैं, इनकी औषधि की मात्रा इस प्रकार है, एक वर्ष के बालक को एक रत्ती और दो वर्ष के बालक को २ रत्ती और दो वर्ष के पश्चात् एक माशा औषधि देना चाहिये।

बाल रोग परीक्षा-रोने से अथवा मुखका रङ्ग देखने वा स्तन खींचने से बालक के रोग की परीक्षा करनी चाहिये, इसके उपरांत जहां हाथ लगाते ही बालक रोवे वह दर्द जानना चाहिये, मस्तक में पीड़ा हो तो आंखें मूंदता है, गुदा में दर्द होता है तो बालक को प्यास ज्यादा लगती है और जो मूर्छा होती है तो मलमूत्र रुक जाता है, श्वास अधिक चलती है।

बाल्यभेद–बालक तीन प्रकार के होते हैं, एक दूध पीने वाले, दूसरे दूध पीने और अन्न खाने वाले, तीसरे अन्न खाने वाले ।

❀ हितकारक सूचना ❀

(१) दूध पीने वाले बालक की माता को पथ्य कराना और बालक को हितकारी औषधि देनी चाहिये । (२) जो दूध और अन्न दोनों का अहार करते हों उनको दोनों प्रकार से औषधि देनी चाहिये । (३) जो बालक अन्न खाते हों उनको अन्न के साथ देनी चाहिये ।

प्रायः बालकों को निम्न लिखित रोग हो जाते हैं, घांठी, हंसली का आना, गला आ जाना, मुखका पकना, आंख का आना, आंखोंकी सूजन, कर्ण रोग, हिचकी, बहुत रोना, सिर रोग, मंज़, लार, खाल का चिपटना, खांसी, ज्वर, उलटी, दुबलापन, प्यास, पेट फूलना, पेचिश, पेट बढ़ना, आंव, लोहू का आना, कांच, चिनग, छारुओं का पड़ना फुड़ियोंका होना, कोथियां, फफोले, मुखका आना, मूत्र रोग, ज्वर, जूड़ी, उदर रोग, ज्वर अतीसार, प्यास और आंव अतीसार, रक्त अतीसार, मुहां, टूंडीका पकना टूंडी अर्थात् बाउट का जाना, अलाई, शीतला मसान रोग, खाज, मृगी, लू लगना, नकसीर गुदा का पकना आदि ।

घांटी अर्थात् काक का गिरना–यह रोग गर्मी के कारण होता है इस लिये उन दिनों में बालक और दूध पिलाने वाली को गरम वस्तु खाने को न देना चाहिये । जब यह रोग होता है तब बालक दूध पीना छोड़ देता है अथवा पीकर तुरन्त डाल देता है और बहुत सोता है और दुर्बल होने लगता है ।

उपाय–(१) चूल्हे की राख और काली मिरच का उँगली पर लगा चतुर दाई उँगली के बल से घांटी को उठा दे । २–माजू को सिरके में पीस उँगली में लगा काक को उठा दे । ३–मुलतानी मिट्टी को सिरके में पीस तालू पर लगा दे ।

हसली का जाना– नार में एक हड्डी हंसली की भांति होती है उस में झटका लग जाने से दर्द होने लगता है, जिससे बच्चे को बहुत दुःख होता है उस के क्लेश दूर होने का उपाय यह है कि चतुर दाई से सुतवा देवे और गले में चांदी की हंसली बनवा कर डाल दे ।

गला आ जाना-इसके लिये कई बार शहत का शर्बत घटाना उत्तम है।

मुख पकना-चमेली के कोमल पत्ते और फूलों को शहत में मिलाय मुख में लगाये।

आंख का आना-आंखें दुखने के कई कारण हैं कभी सर्दी, कभी गर्मी माता की आंख दुखने से, कभी दांत निकलने के कारण नेत्र पीड़ा हो जाती है। इनमें दांतों के कारण जो पीड़ा होती है वह तो जब तक दांत अच्छे प्रकार नहीं निकल आते तब तक दुखती ही रहती हैं और कठिनता से अच्छी होती हैं। अन्य दोनों तरह दुखती हुई आंखों में सर्दी से (१) आंवला और लौध दो गौ के घी में भून कर पानी में पीस लगावे। घीग्वार के रस को आंखों में टपकावे। (३) बकरी के दूध का फोहा डाले। (४) बालकके मूत्र में रूई भिगोकर फोहा बांधे। (५) बांसी की पत्ती को पीस कर टिकिया बांधे, कान में और आंख में कड़ुये तेल की दो २ बूंद डालना। (६) घी में फोहा भिगो कर गर्म बांधे। यदि गर्मी से हो तो (१) नीम की कौंपल पीस कर बांधे। (२) रसौत का पानी आंखों में डाले। (३) गेरू को पीस उस में रुई भिगोकर आंखों पर बांध दे, यदि बालक माता का दूध पीता हो तो माता को नियम से रहना चाहिये और कुपथ्य भोजनादि न करना चाहिये और यदि बालक की आंख किचड़ाती हो तो त्रिफला के रस से धोना चाहिये और यदि उसको नींद न आती हो तो उसकी इन्द्री पर पोस्ता के दाने का तेल लगाना चाहिये।

कोथियों को दूर करने का उपाय-(१) कपड़ा हाथ पर रगड़ रगड़ गर्म करके सेकना। (२) तत्ता काजल आंजना। [३] लोध, पुनर्नवा, सिंघाड़े कटैया, त्रिफला, वनभटा इन सबको बारीक पीस कर नेत्रों के पलक पर लेप करे।

आंखें सूजने पर-हर्र, फिटकरी रसौत, तीन २ माशे और अफीम २ माशे इन सब को घिस कर गुनगुना कर तीन बार लगावे।

फुली-चिरचिटे की जड़ का रस शुद्ध शहत में मिला आंखमें लगावे।

कर्ण रोग-यदि बालक के कान में दर्द हो तो सुखदर्शन का पत्ता गुनगुना कर कान में डाले अथवा माताके दूधकी चार पांच बूंदें अथवा नींबू की कोंपल के रस को शहत में मिला कर डाले। [२] बहुधा बालकों के कान से पीव आने लगती है, कारण उसका यह है कि बालक की माता बालक

को औंधाते समय दूध पिला देती है वह दूध बह कर कान में आता है, वहां जमा होकर फुड़िया फुंसी, उत्पन्न कर देता है जिससे कान बहने लगता है, उस समय माता को योग्य है कि कान में धुनी हुई रुई को लगाये रहे [३] फिटकरी के पानीसे पिचकारी द्वारा धीरेधीरे२ धोकर बबूलकी फलियोंका चूर्णकर कान में डाले। [४] समुद्रफेन, सुपारी, कत्था महीन पीस कर कान में डालना। [५] मोटी सीम को सरसों के तेलमें पका कर उस तेल को कान में डाले। [६] यदि कान के पीछे कटा हो तो सफेदकत्था एक माशे, जस्ते की खील अर्थात् सफ़ेदा एक माशे इनको छः माशे मक्खन में धोय तीन दिन तक लगाये।

हिचकी-इस रोग के दूर करने के लिये नारियल पीस कर शक्कर मिलाकर चटावे और गीला कपड़ा तालू पर धरे।

बहुत रोना-प्रथम बहुत रुदनका कारण जानना चाहिये। यदि हंसली डिग जानने के कारण बहुत रोता है तो, नीम के पत्तों की धूनी दे अथवा गुंजा की माला पहनाये। इसीप्रकार रोने के अन्यकारणों को जान तदनुसार औषधि देवे।

शिर रोग-बालक के कान में सरसों का तेल डाले।

गंजी-मक्खी का मल जो छप्पर के लटके हुये तिनकों पर जमा रहता है पानी में धो कर उसमें कबीला, तूतिया, मुर्दाशंख एक २ तोला पीस कर मिलावे।

लार-जब गिरने लगे तब नवारस, मस्तगी थोड़ी थोड़ी खिलावे॥

खाल का चिपकना-जब बालककी खाल जांघमें चिपकी रहती है, वहां मल जम जाता है और वह लग उठती है इसलिये तेल लगा मैल निकाल नित्य गरम पानी से स्नान करा देना चाहिये।

खांसी-[१] अनार का छिलका निमक में पीस कर चटावे। [२] वंशलोचन शहत में दे। [३] मोहकर मूल, पीपल, काकरासिंगी इनको पीस शहत में वारम्वार चटावे। [४] आक की मुंहमुदी कली लेकर उतनी मिरच, पांचों निमक एक छोटी कुलियामें डाल कपरौटी कर आगमें फूंकले रात को थोड़ी थोड़ी चटा दिया करे [५] बहेड़े को भूभल में भून नमक में मिला कर चटाये।

बालकों की खांसी की औषधि-अतीस, नागरमोथा, और मुलेटी को बराबर लेकर महीन पीसकर छान ले और बालकों की अवस्था के अनुसार आधी रत्ती से ९ रत्तीतक शहत के साथ दिन में चार वार चटावे यदि न चाट सके तो शहद में मिला माता के दूध में मिला कर पिला दे।

बालकों की खांसी जाने का उपाय-लौंग, मिरच वहेड़े के फल इन तीनों को सम भाग और सब के बराबर खैर मिला कर महीन पीस और छान कूट बबूल के काढ़े के रस में खरल कर माशा माशा भर की गोलियां बनाकर एक गोली नित्य रात को मुख में रख रस को चूसता रहे तो सब प्रकार की खांसी जाती रहती है।

खांसी ज्वर उल्टी-बालक को ज्वर खांसी के साथ उल्टी भी हो तो काकड़ासिंगी, पीपर, अतीस, नागरमोथा, इनके चूर्ण शहद में मिला कर चटायें। [२] बदाम की मींग पानी में घिसकर चटाये। [३] सुहागा अधभुना इसके बराबर काली मिरच पीस घीग्वार के रस में चने के बराबर गोली बांधकर खिलावे। पोदीना का अर्क पिलाना योग्य है।

खांसी ज्वर और अतीसार-(१) काकडासिंगी, पीपर, अतीस मोथा शहद के साथ देवे।

सर्व प्रकार के ज्वर पर क्वाथ-धनियां, पद्माख, लालचन्दन गुर्च और नीम की भीतरी छाल यह सब बराबर२ लेकर अधकचरा कर दो तोले दवा को पावभर पानी डाल मिट्टी की हंड़ियामें रात को भिगोदे सुवह औटावे जब आधा रहजावे तब मल छान ठण्डा कर पीवे इसी प्रकार पांच दिन में उपद्रव जाता रहता है।

हरड़ की छाल २तोला मुलहटी, नागरमोथा नीम की छाल यह सब छः छः माशे ले आध सेर जल में भिगोय चतुर्थांश काढ़ा कर छान ले फिर उसके अनुमान से दिन को दो वार मिश्री शहद डाल ४दिन तक देवे।

दूध पीने वाले बालक के लिये घुट्टी-कश्मीरी केशर, नागकेसर तुरंजबीन मुलहटी मुनक्का वंशलोचन जायफलइन सबको सम भाग चूर्ण कर माता के दूध के साथ देने से बालक पुष्ट और निरोग रहता है।

दुबलापन-नित्य प्रातः काल गाय वा बकरी का दूध औटाहुआ और १० वर्ष के अवस्थावाले बालक बालिकाओं को धारोष्ण (थनकादुहा ताजा) दूध पिलाना चाहिये।

पियास-जब बालक को पियास अधिक हो तो (१) मुनक्का को सेंधा नमक के साथ घोट कर दे। (२) जहरमोराखताई पानी में घिसकर पिलावे। (३) कमलगट्टा की हरी मींग को निकाल कर सेंधे निमक के साथ पानी में पीस करदे।

पेट फूलना-जब पेट फूल जाता है तो बच्चा सुस्त रहता है, तो सोंठ एक चावल, रेवन्ती चीनी दूनी, सौंफ का अर्क तिगुना ले दो खुराक कर प्रातः सायं खिलावे।

पेचिस-तज दो चावल, हींग, सौंफ १ चावल, बबूल का गोंद १ चावल, हींग और सोये के बीच चौथाई चावल इनको पीस पानी में औटा कर उतार ले जो बहुत छोटा हो तो आधी खुराक दे।

पेट बढ़ जाने पर-(१) शहत थोड़ा पानी मिला कर देवे। (२) जो पेट फूल जावे तो सेंधा निमक, सोंठ इलायची, भुनी हींग, भारंगी इनको महीन पीस गर्म जल के साथ पीवे अथवा छोटी इलायची सूखा पोदीना, कालीमिरच, पीपल काला नोन सबको बराबर ले पीस कर तीन दिन तक खावे।

आंव लोहू-बालक को आंव मिले खून के दस्त आते हों तो अधभुनी सौंफ को कूट कर उसमें शक्कर मिला खिलावे।(२) मरोरफली को सेंधा निमक के साथ देवे। (३) सोंठ का मुरब्ब खिलावे।

कांच-(१) बालको उसी के पेशाब से आबदस्त लिवावे। (२) पुरानी चलनी का चमड़ा जला कर उसके पानी को उस पर छिड़के।

चिनक-इस रोगमें बालक पेशाब करते समय रोता है वा बारम्बार इन्द्रीको पकड़ कर खैंचे तो उस समय जान ले कि इसको चिनक होगई है॥

(१) बबूल के गोंद की चार पांच डेली कपड़े में बांध कर पानी में भिगो देवे फिर उसमें मिश्री मिला कर पांच बार पिलावे।

छारुये-यह पेट में पाचन न होने से होजाते हैं दांत निकलने के समय विशेष कर होते हैं इससे बालक आखें टेर जाता है, मुख नीला पड़ जाता है, इसकी पहिचान यह है कि सोते में बालक गुदा को खुजाता है, नाक को मीडता है और दांतों को करकर करता है जब ऐसा हो तो जान ले कि पेट में छारुये हो गये हैं प्रायः यह रोग दांत निकलने के समय होता है।

उपाय-(१) कांजी का पानी पिलावे। (२) मुनक्का के दाने के बीज निकाल कर तथा वायविड़ङ्ग पांच सात दाने खिलावे। (३) शीतल जल के छींटे मुख परदे। (४) हींग वा नमक के पानी का फोहा बना कर गुदा पर रक्खे। (५) इन्द्रजव पीस कर पिलावे।

फुड़ियों का होना-(१) सफेदा काश्तकरी ६ माशे, माखन ८ माशे मिला कर चुपड़ देवे (२) यदि फुड़ियां भरती फूटती हों तो किसी चतुर वैद्य से चिरा कर नीम के पानी से धोवे और उसकी ही पुलटिस बांधे।

फफोले-शीतला की भांति यह भी निकलते हैं जिनकी खाल बहुत पतली सफेद सी होती है और चारों ओर ललाई होती है जो नित्य टूटते हैं।

उपाय-(१) अफोह नाम के वृक्ष की डाली को चलनी में रख प्रातः-काल उसमें जल डाल कर तीन दिन तक इस प्रकार स्नान करावे।

मूत्ररोग-(१) मिश्री, कालीमिरच, पीपर और धायके फूल इनको शहत के साथ पिलावे। (२) जो मूत्र न उतरता हो तो मूसे की लेंडी को मट्ठा में पीस गर्म कर नाभि से पेडू तक लगावे। (३) टेसू के फूल पीस कर लगावे।

ज्वर-यदि बालक १ वर्ष से ७ वर्षका हो तो मरोरफली, अमलतास, हर्रा के बीज, सौंफ और इन्द्रायन यह सब तीन२ माशे और मुरदाशङ्ख १रत्ती इन सबका पाव सेर जलमें काढ़ा बनाय पैसा भर काढ़ा रहने पर उतार ठण्डा कर पिलावे।

जूड़ी—(१) तुलसीदल आधा माशा, शहत डेढ़ माशा मिला कर जूड़ी आने से दो घण्टा प्रथम देवे।

उदर रोग—जब बालक को पतला दस्त आने लगे तो नेत्रवाला, धाय के फूल, बेल का गूदा, गजपीपर इनका काढ़ा अथवा चूर्ण खिलाने से दस्त बन्द हो जाते हैं।

ज्वरअतीसार—ज्वर के साथ दस्त भी आते हों तो पीपल, अतीस, नागरमोथा, काकरासिंगी, इनका चूर्ण शहत में चटावे।

प्यास और ज्वर अतीसार- सोंठ, अतीस, मोथा, इन्द्रजव इन का काढ़ा पिलावे।

रक्त अतीसार— सोंठ और पाषाणभेद को पानी में घिसकर पिलावे अथवा कुड़ेके बीज सफेद जीरा, जल के साथ पीस मिश्री मिलाकर पिलावे।

(खुजली—चूने के पानी में कड़ुवातेल डाल कर खूब हिलावे और जब वह हिलाते २ गाढ़ा हो जावे तब रूई के फोये भिगो २ लगावे।)

बालकों का क़ब्ज़—इसकी प्रत्यक्ष परीक्षा यही है कि जब बालक को दस्त खुल कर न आवे सोते सोते रोने लगे तो प्रथम घूंटी देना चाहिये। (१) कालानिमक, भुनी हींग, सुहागा इनको पीस गुनगुना कर पिलावे। (२) अण्डी का तेल पिलावे।

मुहां अर्थात् मुख आजाना।

जब बालकके मुंह में सफेद मलाई सी जमी और फटी फटी वस्तु देख पड़े तो उसको मुहां कहते हैं यह दो प्रकार का है एक लाल दूसरा सफेद।

उपाय। लाल मुहां-त्रिफला को पाव भर पानी में औटाले फिर इसमें रुई भिगो कर दिनमें तीन चार बार धो दिया करे।

सफेद मुहां-(१) कत्था ६ माशे, शीतलचीनी १० दाने, कपूर एक रत्ती तीनों पानी में पीस अंगुली से लगावे। (२) कत्था सफेद २ माशे को ६ माशे भेड़ के दूध में घिस कर लगावे। (३) छोटी इलायची के बीज, पपरिया कत्था और वंशलोचन पीस कर बुरका दे।

❀ टूंडी का पकना ❀

(१) मोमका मरहम कपड़े पर लगा कर लगादे। (२) थोड़ी सी अलसी की पुलटिस बांध दें। कपड़े को सरसों या गोले के तेल से भिगो फाया डाल दे। अगर सूजन हो तो उसे कपड़े को गरम कर सेंके। (५) पीली मिट्टी को गरम कर दूध डाले उसका बफारा दे।

टूंडी का आना।

लक्षण-बालक को पतले दस्त आने लगते हैं और दस्त के समय फिट फिट का शब्द होता है तथा रोता भी है। चतुर दाई वा बूढ़ी स्त्री से जो इस बात को अच्छी तरह जानती हो उठवा देना चाहिये।

अलाई।

वर्षाऋतु में जो बहुधा छोटे २ चकत्ते पीठ, छाती और शरीर पर निकल आते हैं उनको अलाई कहते हैं।

उपाय-मसूर के और आँवले के छिलकों को जला इन्हीं के बराबर मेंहदी और कवीला पीस घी में मिला उन पर लगा दे और मेंहदी डाल पानी को औटा छान कर नहलावे।

शीतला—इसका वर्णन हम पहिले कर चुके हैं।

मसाने अर्थात् पसली रोग।

यह रोग सौर में मैला कुचैला रहने से उत्पन्न हो जाता है और पसली चलने लगती है, पसलियों में कफ जम जाता है, ज्वर हो जाता है, दस्त भी आने लगते हैं बालक अचेत हो जाता है, यह सर्दी और गर्मी के कारण दो प्रकार का होता है, जो गर्मी के कारण होता है, उसमें कुछ भय नहीं होता परन्तु सर्दी से जो रोग उत्पन्न हो जाता है, उसमें बहुत डर रहता है।

वायु पित्त के लक्षण-दस्त पतला हो, पेशाब कम और गर्म हो, प्यास के कारण होंठ फटे, दूध भी कम पिये, सिर को बारबार घुमावे, हाथ पैरों को तन्नावे।

वायु के लक्षण-मलके सूख जाने से पाखाना नहीं होता, पेट फूल जाता है, पेशाब भी कम होता है नाक के छेद सूख जायें यथा नाक की राह श्वांस भी कम आवे, पेशाब का मुकामभीतर को सिमट जाय, मुख की रंगत सफेद हो जाय, नाक की ओर बार बार हाथ चलाये।

पसली कभी न चले।

उपाय—जिस समय बालक उत्पन्न हो और नार काटा जाय उस समय एक चावल भर उत्तम कस्तूरी थोड़े से कोयले के साथ में महीन पीसकर उस कटे हुए नार पर लगा दे या लगाकर नाल काटे।

खाज—नीलाथोथा, कवीला, पारा, आँवलेसारगन्धक, बावची, मुर्दाशंक, सिंदुर, सिंगरफ, वायविड़ङ्ग, कूट और पमाड़ के बीच यह सब बराबर ले पीस छान कर सौ बार धोये हुए मक्खन में मिलाय नित्य लेप करे।

मृगी-इस रोग से बेसुध हो पानी आग इत्यादि में गिर पड़ता है और यदि दूसरा मनुष्य न हो तो इन में गिर कर मर भी जाते हैं। यह मस्तक के बेसुध होने से होता है इसलिये मस्तक को सुस्त न होने दे

तथा यह दौरे से होता है। मृगी वाले को आग और पानी के पास न जाने दे। पानी को देख मृगी बहुत आती है इसका इलाज उत्तम वैद्य से करावै।

नकसीर—जब नाक से रुधिर बहने लगे तब पोता मिट्टी के डले पानी डाल डाल कर सूंघे। (२) शिर पर पानी डाले।

इतकुष्ठकी अनुभूत औषधि-त्रिफला, त्रिकुटा, चित्रक, नागरमोथा वायविडंग, वच इन सबको सम भाग ले चूर्ण कर, नित्य एक तोला गरम पानी के साथ रात को खाय। अवश्य ही अठारहों तरह के कुष्ठ नाश होंगे।

श्वेत कुष्ट पर लेप के लिये-त्रिफला, बायविडङ्ग, चव, बच, मुनक्का पीपली, शुद्ध भिलावां, शङ्खपुष्पी, बावची, भृङ्गराज, सबको बराबर लेकर चूर्ण करे, फिर चूर्ण को कांजी में पीस शरीर पर लेप करे।

शिर दर्द-मेहंदी की पत्ती ३ माशे केशर मुचकुन्द के फूल ४ माशे, चन्दन का बुरादा ६ माशे, कपूर डेढ़ माशे पानी में पीस शिर पर लेप करें, कैसी ही शिर पीड़ा हो अवश्य ही दूर होगी।

लू लगने पर-कच्चे आम का भरता कर पानी मिला पिलावे।

हैजे के लक्षण।

बेहोशी, पतला दस्त, बारम्बार कै और प्यास का होना।

हैजे के साध्य लक्षण।

शरीर ऐंठना, जँभाई का आना, दाह, शरीर का रङ्ग बदलना, देह कांपना हृदय और शरीर में दर्द, पेशाब का न होना, धीरे २ उपद्रव घटते जावें, विशेष कर रोगी को निद्रा आजावे, शरीर गर्म बना रहे। रोगी तीन चार दिन बना रहे, कफ और वातका कोई रोग न होतो रोगी बच जावेगा।

❀ असाध्य लक्षण ❀

हाथ पैरन में ऐंठन अधिक हो, स्वरभङ्ग, बल घटता जावे, भीतर दाह ऊपर शीत हो, रोगी को कल न पड़े, पेशाब न उत्तरे, प्यास की अधिकता के कारण गले में कांटे पड़ गये हों, हुचकी आती हों, नाड़ी रुकरुक कर चले तो रोगी का जीना कठिन है।

❀ हैजे से बचने के उपाय ❀

(१) प्रातः सायं शुद्ध वायु सेवन करना योग्य है। (२) हैजे के

समय प्रति दिन वेल का शरबत पीना अच्छा है (३) कपूर का सूंघना अच्छा है और कपूर का पानी तोला या २ तोला दोनों समय पीना श्रेष्ठ है क्योंकि कपूर सेवन से हैज़ा नहीं होता । (४) तङ्ग कोठरी में मुंह ढांप कर न सोवे, तङ्ग स्थान में बहुत आदमियों के साथ में न रहे । हैजे के स्थानको छोड़ कर दूसरे स्थान में चला जावे । (७) सुबह शाम गृह या बैठक में गन्धक या धूप गुग्ल की धूनी दे । (८) हैजे वाले के कपड़े और मल को इधर उधर न फेंके वरन् उनको धरती में खोद कर गाड़ देवे नहीं तो हैजा नगर में फैल जाता है ।

चिकित्सा-हैज़ा होते ही फौरन दस्त बन्द करना चाहिये, फिर शरीर में वल आने और पेशाव खोलने का उपाय किया जावे ।

हैजे की प्रधान औषधि-अफीम, कपूर, ब्रांडी, सौंफ, गुलाब, पोदीना, वर्फ ।

❀ विशूचिकान्त वटी ❀

सिंगरफ महबूदाबादी एक तोला को १२ पहर कागज़ीनीबू के रसमें खरल कर छाया में सुखा ले, इसके बाद सिंगरफ के बराबर अफीम ले दोनों को खरल में डाल पानी से घोट कर बाजरा के बराबर गोलियां बना ले, ये हैजे में रामबाण का हुक्म रखती हैं ।

अनुपान-हैज़ा शुरू होते ही गोली पानी से खिला देनी चाहिये, यदि गोली कै से गिर जावे तो फिर गोली को पानी में पीसकर पिला दे, गोली के पचते ही कै दस्त बन्द हो जायगे, यदि दस्त बंद न हों तो ३ घंटे के पीछे जैसी ताकत हो वैसी एक या दो गोली खिला देनी चाहिये, फिर भी बन्द न हों तो १० घंटे तक गोली न दे । प्यास वमन रोकने के लिये उपाय करे, अर्क सौंफ ◌। पोदीना का अर्क ◌= गुलाब ◌= कपूर का पानी आधी छटांक, वर्फ का पानी ◌। भर इन सवों में जो मिल जाय मिला कर एक एक तोला दस दस मिनट में पिलाता जाय ।

गोली-शुद्ध लहसुन की पत्ती, कालाजीरा, शुद्ध आंमलेसार गन्धक सेंधा नोन, सोंठ मिरच, पीपल, घी में भुनी हींग, यह सब वस्तु सम भाग ले चूर्ण कर नींबू के रस में भिगोवे फिर भावना (पुट) दे खरल कर चार चार रत्ती की गोलियां पांच २ नित्य गर्म जल से दे तो शीघ्र ही विशूचिका (हैजा) तथा अजीर्ण (बदहज़मी) दूर होकर भूक लगे ।

कृमिनाशक चूर्ण—रेवन्द चीनी, वायविडङ्ग, कबीला इन तीनों को व-

राइर लेकर महीन पीसले एक माशे से तीन माशे तक शाम सवेरे फांक आधपाव गऊ का कच्चा दूध पीवे, थोड़े काल में केंचवे इत्यादि नष्ट हो जावेंगे।

केश उत्तम करने का उपाय-(१) कुम्हेरन की जड़, पियाबांसा के फूल, केतकी की जड़, लोहचूरा, भंगरा, त्रिफला का जल और तेल इन को लेकर लोहे के पात्र में भर कर पकाय एक महीने पृथ्वी में गाड़ कर निकाल ले, फिर केशों पर लगावे तो भौंरा के समान काले लम्बे केश होजायें।

(२) काकमाची, जौ, चमेली और काले तिल इन सबका तेल यत्न द्वारा निकाल लेवे और बालों पर मले तो बाल अति काले हो जाते हैं।

(३) बालों के बढ़ाने के लिये आंवले का तेल बड़ा लाभदायक है।

आंख दुखने का लेप-छोटी हर, सेंधा नमक, गेरू, रसौत इन चारों को सम भाग ले महीन पीस गुनगुना कर सोते समय पलकों पर लेप करे।

रतौंधी का अंजन-रसौत, दारुहल्दी, नीम के पत्ते इन सबको बराबर ले गोबर के रसमें घोट गोली बनाले। दोनों समय पानी में घोट अंजन करे तो रतौंधी जाती रहेगी, सिर पर चमेली के तेलको लगा कर स्नान करे दुग्ध आदि शीतल चीजें खावे।

वीर्य उत्पन्न करने वाली औषधि-तत्काल का दुहा गौका दूध, दोनों बहमन, सोदरी, अरसी, बादाम, पिस्ता, इन्द्रजौ, नारियल, केशर, दालचीनी, शतावरि, असगन्ध, पक्का आम को खाकर दूध पीना, मीठा अनार, सेव, तालमखाना, लालधान, उरद, दूध गेहूँ की रोटी, मक्खन, घी, मलाई, छोटी इलायची, समय पर शीतल भोजन, प्रातःकाल का वायु सेवन सुगन्धित तेल मल कर स्नान करना इत्यादि प्रसन्न कारककार्यों से वीर्य उत्पन्न होता है।

वीर्य को गाढ़ा और पुष्ट करने वाली औषधि-सफेद मूसली, स्याहमूसली सेमर की मूसली गोंद बबूल, कामराज, बीज बन्द, मखाना बंशलोचन, शतावरि कालेतिल, असगन्ध सिंघाड़ा और मिश्री।

बुद्धि वर्द्धक-ब्रह्मी, सफेद सरसों, बच, कूट, पीपल।

(१) मुलहटी, बंशलोचन, पीपल, सेंधा नमक, लोहा चांदी तांबा, शीशा रांगा बच शहद घृत इसमें से किसी एक के साथ मिश्री त्रिफला

मिला कर सेवन करने से रोगों को नाश करती है यह रसायन है धारणा आयु स्मृति और बुद्धि को देती है।

(२) ब्रह्मचारी लोग चीते की छालको साया में सुखा दूध के साथ एक महीने तक पियें।

लघुहरीत की बनाने की विधि-पीली सी बड़ी हर्ड़ लेकर एक रात मट्ठा में भिगो कर प्रातः उनको पानी से धोकर स्वच्छ कर उनका पेट चीर बीज निकाल कर सोंठ पीपर और भुनी हींग आठ २ माशा, मिरच पीपरमूल, चाय, चीता, जवाखार और सज्जी एक २ तोला, अजवायन, अजमोद, सेंधा निमक, साँभर, कालानोन, खारी और विड़ नोन डेढ़ २ तोला इन दवाओं को नींबू के या चूक के रस में चार पहर घोट उक्त हर्रों में भर कर १० दिन तक नींबू के अर्क में भिगो कर रखदे।

यह हर्र बात विकारवालों को बहुत लाभ दायक है, सोते समय खाने से एक या दो दस्त साफ आजाते हैं। इसके सिवाय हैजा अजीर्ण अग्निमन्द और वायु से जो पेट में दर्द होता हो उसको दूर करता है।

लवणभास्कर चूर्ण-समुद्र नमक ८ तोला, कालानमक ५ तोला, जवाखार, सेंधा नकम, धनिया, पीपर, पीपरामूल, काला जीरा, तेजपात, नागकेशर, तालीसपत्र और अमलवेत दो २ तोला, मिरच जीरा सफेद और सोंठ एक एक तोला, अनार का सूखा दाना ४ तोला, इलायची छोटी के दाने ५ माशा, दालचीनी ५ माशा इन सबको कूट छान कर नीबू के रस में घोट झरबेरी के बराबर गोली बनाले।

खाने की विधि-गुल्म, संग्रहणी और उदर सूजन में गौके मट्ठे के साथ देना चाहिये। पिलही बादी बवासीर बलगमी खांसी और स्वांस रोग में यह चूर्ण गरम जल से १ माशे तक और बालक को आधा माशा।

आचार बटी-हल्दी, दारुहल्दी, मिरच, आंवला, सोंठ, हर्ड, चीता, कूट पीपर, सेंधा नमक एक २ तोला नीम के पत्ते और नीम पर की गुरच दो २ तोला, मोथा ५ तोला इन सबको छान कर बकरी के पेशाब में खरल कर चने बराबर गोली बना ले।

(१) नित्य ज्वर, अतरा, तिजारी, चौथिया और सतत ज्वर में दिन में दो दो घण्टे के बाद एक एक गोली को पानी के साथ देवे। (२) इसको घिस कर आंखों पर लगाने से आंखों के सन्मुख से अंधियाला जाता है। (३) स्त्री के दूध में घिस कर लगाने से पलकों का चिपकना जाता है। (४) बकरी के

दूधमें घिसकर लगाने से नवीन फुली जाती है। (५) तिल के तेल से रतौंधी जाती है (६) केले के जड़ से लगाने से आंखों का पानी बन्द हो जाता है। इस गोली के लगाने वालों को मातदिल भोजन करना चाहिये।

हाज़मे की गोलियां-काला नमक, सेंधानोन, बड़ा नोन, अजवाइन, जीरा, काला जीरा, काली हर्र, वायविड़ंग, धनियां, सूखा पोदीना, चिन्नकका छिलका एक तोला और अमलवेत १॥ तोला सुहागा ६ माशे इन सबको कूट छानकर काग़ज़ीनींबू के रस की तीन पुट देकर जंगली बेर के समान गोली बनाले। प्रातः सायं एक एक गोली खाने से खूब भूख लगती है तिल्ली और बाई जाती रहती है।

गन्धकवटी-शुद्ध आमलेसार गन्धक, चीते की छाल, आक की बन्द कलियां, काली मिरच, सोंठ, जवाखार, सांभरनोन, सेंधानोन, कालानोन इन सबको सम भाग ले चूर्ण कर नींबू के रसमें सात दिन खरल कर चार चार रत्ती की गोलियां बनावे रोग अनुसार १ से ४ तक गोलियां गर्म जल से नित्य खाले तो आम अजीर्ण, शूल गोला, अफरा, आदि रोग तुरन्त दूर होवें यह अत्युत्तम और स्वादिष्टवटी है।

लालम्बराजचूर्ण-सोंठ ५ तोला, सुतियां सोंठ ४ तोला, अजमोद २ तोला, अजवायन २ तोला निमक देशी १ तोला, बड़ी हर्डकी छाल १५ तोला, इसको कूट पीस छान कर ४ माशे प्रतिदिन गरम जल से प्रातःकाल खावे, इससे बदहज़मी वायुगोला सब रोग जाते रहते हैं।

पुराने ज्वर का पथ्य-आंखों में अञ्जन लगाना, स्नान वायुसेवन करना दाह शांन्ति करने वाली औषधियों को छाती और माथे पर लेप करना जैसे स्वेत चन्दन, पीत चन्दन, कपूर, शीतलचीनी, खस, सुगंधवाल इत्यादि वस्तुओं को न्यूनाधिक करके गुलाब के अर्क में पीस छाती आदि में लगाना, खाने में मूंग तथा अरहर की दाल, पुराने चावल का भात, गुहूं या जौ की रोटी, गौ, बकरीका दूध मक्खन, ताजाची, परवल, रामलौकी, मूली कीजड़ और कोमल बीज रहित बैंगन की भाजी, स्वच्छ गङ्गाजल अथवा फिल्टर वाटर पानी देन ऐसा सुश्रुत आदि में लिखा है।

(पाचन चूर्ण-स्याह सफ़ेद जीरा, सोंठ, छोटी पीपल, अजवाइन काली मिरच सेंधानमक इन में से दोनों जीरों को भून सबको बराबर ले कूट छान कर मिलाले, रोटी खाते समय प्रथम ३ माशे एक ग्रास के साथ खावे)

फिर रोटी को खावे। (२) आक के वृक्ष की बोड़ी काली मिरच काला निमक इन तीनोंमें बोड़ी पाव भर शेष पौन पौन तोला, लेकर पीस गोली बांध कर धूप में सुखा ले।

दिल धड़कने के समय-सेवती का गुलाकन्द सेवन करे।

बुद्धि बढ़ाने का उपाय-सर्दी के दिनों में मालकगुनी छः माशे शक्कर छः माशे मिला प्रति दिन प्रातःकाल खावे।

उत्तम स्वर होने के हेतु-कुलीजन खावे।

दाद-गन्धक एक छटांक चौकिया सुहागा एक छटांक सीप का चूना एक छटांक राल एक छटांक नीलाथोथा आधी छटांक इन सबको पीस छान भैंस के ताज़े घी में मिलाकर लगावे।

दमे का अच्छा करना-वायविडङ्ग तीन माशे और पांच सात काली मिरच और थोड़ी सी सोंठ इन सब को पानी में पीस गर्म करके ठंडा कर पीजावे और ५ मिनट तक गले में रहने दे दवा कर निकाल दे खटाई और लाल मिरच से परहेज करना उचित है। प्रति तीसरे दिन ऐसा करता रहे जब तक आराम न हो।

बवासीर खूनी या बादी-प्रति दिन प्रातःकाल शौच से निवृत्त होने पर नीम की निबौली वृक्ष से तोड़ कर पांच सात निगल जावे। तेल खटाई लाल मिरच का परहेज़ बनाये रहे यदि ताज़ी निबौली नमिले तो ५ व ७ सूखी निबौलियों को रात में भिगोकर कपड़े में बांधदे, प्रातः खा जावे। (२) मूलीके बीज नगरकोटी रसौत नीम के पत्ते ये तीनों सम भाग ले भांग के रस में अच्छे प्रकार खरल कर तीन तीन माशे की गोलियां बांध १ गोली नित्य प्रातः-१५ दिन तक मक्खनमें धर कर खावे। (३) मिरच, पीपर, सोंठ चीता इनको पीस और चीतासे चौगुना ज़मीकन्द ले और इन के बराबर गुड़ मिलाकर, गोली बांध खावे (४) ज़मीकन्द ८ भाग चित्रक की छाल ४ भाग, हर्र ५ भाग मिर्चें ५ भाग, पीपल २ भाग, पुराना गुड़ १४ भाग, चूर्ण कर गोली बनाय प्रति दिन खाय तो रोग शांत हो। (५) शोधा हुआ भिलावां इन के बराबर सोंठ लेकर पुराना गुड़ बराबर मिला गोली बना कर खावे।

स्त्री रोग चिकित्सा।

स्त्रियोंके दो रोग ऐसे हैं जो गर्भाधान में अधिक बाधक होतेहैं इसलिये हम उनकी चिकित्सा भी लिखते हैं।

सोमरोग-बारम्बार मूत्र होने को सोमरोग कहते हैं। सु
आंवला की समान बुकनी दूध के साथ पीवे।

रक्त प्रदर रोग-यह अतिभोजन, अतिशयन, अतिमैथुन,करने से होता है। जिसमें स्त्री की जननेंद्रिय से एक प्रकार का पानी बिना मैथुन के ही गिरता रहता है जिससे वह बहुत ही दुर्बल हो जाती है।

(१) एक तो० फालसे की छाल को एक मिट्टी के कुल्हड़े में भिगो दे प्रातः छान मिश्री मिलाकर पीलेवे दस बारह दिन में आराम हो जावेगा।

(२) कतीरा रात्रि को भिगोकर प्रातः मिश्री मिलाकर पी जावे।

(३) भुनी फिटकरी तीन माशे, मिश्री तीन माशे, पावभर दूध के साथ सात वा चौदह दिन तक खावे।

(४) माजूफल, पुरानी सुपारी, कसेला,धाय का फूल, लोध्र और गोंद इनको एक पावभर लेकर मजीठ, मोचरस, मैदाल्कड़ी और सोंठ मेंसे प्रत्येक को तीन माशे ले कूट पीस छानकर एक सेर घी में भिगोये और दो सेर मिश्री की चाशनी करके लड्डू बना लेवे अनन्तर इसमें से प्रति दिन एक छटांक प्रातःकाल सायंकाल खावे तो सब प्रकार का रोग नाश होता है।

(५) चिकनी सुपारी को पीस घी मिलाकर शक्कर मिलाय दो दो तोला प्रतिदिन दोनों समय खाय तो प्रदर रोग जाता रहता है।

श्वेत प्रदर की बड़ी परीक्षित औषधि-भिंडी की जड़ सूखी पाव भर, पिंडारू (सुथनी भी कहते हैं) सूखा हुआ पाव भर दोनों कूट छान छः छः माशे की पुड़िया बना ले, पाव भर गौ के दूध में एक तोल चीनी मिलाकर एक पुड़िया मुंह में रख शाम सवेरे उतार जाया करे, रोग जाता रहेगा। तेल, खटाई, मिरच आदि गर्म वस्तुओं से परहेज करती रहें।

दशमूलादि अर्क।

सरवन की जड़ ऽ। मिथवन की जड़ ऽ। छोटी बड़ी भटकटैया की जड़ ऽ॥ गोखरू, गणियारी सोनापाढ़ी, खंभारी पाढ़ा इन सब की जड़ पाव २ भर, बहेड़े की जड़की छाल ऽ। रूसाकी जड़ की छाल ऽ॥ चीते की जड़ ऽ= भारंगी, देवदारु, लौंग, हर्ड, बहेड़ा आंवला, साठी इन सब की जड़ पाव २ भर वंशलोचन ऽ= मिर्च ऽ- पीपर ऽ- अदरख का रस ऽ॥ शहत ऽ॥ इन सब को अधकुटा कर मजबूत मिट्टी के बर्तन में चौगुने जल में भिगोवे पात्र को पृथ्वी में गाड़ दे परन्तु पात्र का मुंह खुला रहे, २१ दिन बाद निकाल

भभके द्वारा अर्क खींचले। इसकी मात्रा १ तोले से ३ तोले तक है। दिन में दो या तीन वार इस अर्क के पीने से क्षयी, संग्रहणी, अरुचिशूल, कास, स्वरस, मंदाग्नि, कुष्ट एवँ मूत्रकृच्छ आदि रोग शीघ्र ही आराम होतेहैं। परन्तु बालक, गर्भिणी स्त्री, दाहयुक्त रोगियों को नुकसान करता है।

सन्तान उत्पन्न होने के पीछे प्रसूता को गुणकारक।

पानी बना कर देने की विधि।

सतावर १॥ तो०, असगंध १॥ तो०, सालम मिश्री १ तोला, मूसली सफ़ेद १॥ तो०, वंशलोचन १ तो०, तोदरी सफेद वा सुर्ख एक एक तो०, वहिमन सफेद वा सुर्ख एक तो०, जावत्री, १ तो०, चुनिया गोंद १ तो०, ताल मखाना २ तोला, इन्द्रजो मीठा १ तोला, छोटी इलायची के दाने १ तोला, मोचरस १। तोला, सतगिलोय १ तोला, गोखरू छोटे वड़े एक एक तोला, समुद्र सोख १ तोला, बीजवन्द १ तोला, दारुचीनी १ तोला, मूसली सेमल २ तोला गोंद बबूल २ तोला, दुलधावा १ तोला वांस के पत्ते २ तोला, कांस के पत्ते २ तोला, कोंच के बीज १तोला, तीखुर १ तोला, कमरकस १ तोला, चिरया कन्द १॥ तो० जायफल २ तो० वाविडङ्ग १ तो० हालम १ तोला, नारजीलका छिक्कल २ तोला सिंघाड़ा १ तोला, छोटी वड़ी माई ढेढ़ २ तोला, मुलैठी १॥ तोला, छोटी पीपल १॥ तोला, बायखुम्वा १॥ तोला सुपारी के फूल १ तोला, कल्मीतज १ तोला पत्रज १ तोला सोंठ १ तोला, कायफल १ तोला, वड़ी कटाई १ तोला, अतीस १ तोला, काकड़ासिंगी १ तोला, जवासा १ तोला, देवदारू १ तोला, मीठे कूट की जड़ १ तोला इन सबको कूट समान २ सात पुटरियां बना एक पोटली को चरुए की हांडी के (हांडी में कुछ मिट्टी लगादे ताकि वह पटक न जावे) ६ सेर पानी में डाल धीमी २ आंच से औटा कर प्रसूता को पिलावे, उक्त पोटली तीन दिन वाद वदलदे।

इस प्रकार सिद्ध किये पानी को २१ दिन तक पिलाने से प्रसूता स्त्री को प्रसूता सम्बन्धी सर्व रोगों से मुक्ति रहती है *

प्रसूता औरनवजात वच्चेको पुष्टता देनेवाला सुहागसोंठपाक।

सुहागसोंठ की औषधियां।

* नोट—इस पाक के खाने का समय कार्तिक से लेकर माघ तक है और इस अवधि में यदि कोई सज्जन तैयार कराया उम्दा पाक मगाना चाहैं व ४)

सोंठ बैतरा १॥ पाव, बकरी का दूध ५ सेर, घी गऊ का १ पाव, चीनी २॥ सेर· दालचीनी १॥ तोला· तेजपात १ तोला· छोटी इलायची २ तोला· नागकेसर १॥ तोला, स्याह जीरा १ तोला, सौंफ १। तोला, अक्करकरहा १॥ तोला· जावित्री १ तोला· विधारा १। तोला· कमलगट्टे की गिरी १॥ तोला· पिप्रामूल १ तोला· त्रिफला २ तोला· वरियारा की जड़ २ तोला· चाव १ तोला· चीता १ तोला· मोथा १॥ तोला· खस १॥ तोला· नागौरी असगन्ध २ तो०, सफेद चन्दन १ तोला· काला अगर १ तोला· सफेद जीरा १ तोला· लौंग १॥ तोला· शतावर १ तोला· सफेद मूसली २ तोला· सोंठ २ तो०· पीपर १ तो०· मिर्च १॥ तो०· जायफल १। तो० सिंघाड़ा २ तो० कंकोल १॥ तो० अजमोद १ तो० मुनक्का १ छटांक· किशमिश २ छटांक अखरोट २ छटाक· बादाम १ पाव पिस्ता १ पाव।

❀ सुहाग सोंठ के बनाने की रीति ❀

सबसे प्रथम सोंटको कूट छानले· पुनः दूध को कढ़ाई में डाल औटावे जब आधा जलजाय तब उस पिसी हुई सोंटको डालदेवै और कलछी से बराबर चलाता रहै जबखोया हो जावै तब खोयानिकाल कर कडाही में घी डाल कर मन्द मन्द अग्नि से खोये को भूने फिर साफ कडाही में चाशनी सब कुटी छनी औषधियां और कतरी हुई मेवा और भुना हुआ खोया डालकर आधी आधी छटांक के लड्डू बांधले प्रातः काल सायं काल अपने बलके अनुसार लड्डू खाकर ऊपर से १ पाव मिश्री मिला हुआ पीले इसपाक के खाने से बच्चा और प्रसूतास्त्री सब प्रकार निरोग रहैगी।

संग्रहणी—अनार का दाना ८ भाग तज (दालचीनी) पत्रज छोटी इलायची· नागकेशर तीन ती भाग· सोंठ कालीमिरच चार भाग· मिश्री कूजा ३२ भाग ले इनको कूट महीन कर कपड़छानकर नित्य प्रातःकाल एक तो० भर शीतल जलसे खावे तो अरुचि· संग्रहणी दूर हो· अग्नि दीप्त हो कर पाचन शक्ति को बढ़ावे।

(१) खट्टद्रव्य खट्टेफल· कुलथी· मटर और मूली के साथ दूध और मूली उरद की दाल के संग और उरद की दाल· गुड़ दही घृत इनके साथ

सेर के भाव पर हमारे यहां से मंगा लें।
सम्पूर्ण रोगों की चिकित्सा हमारी बनाई युवतीरोग चिकित्सा में देखिये मूल्य ।-)

वड़हल और तक्र दही तोड़ के साथ तथा फल के साथ केलेकी फली और पीपर मिर्च शहद गुड़ के संग मकोय को न खाना चाहिये ।

कांसी के पात्र में दश रात्रि तक घी रखने से बिगड़ जाता है। रात्रि में जागना रूक्ष है दिन में शयन करना स्निग्ध है हां ग्रीष्म ऋतु में थोड़ा सोना हित है, अन्य ऋतुओं में दिन का सोना कफ और पित्त को करता है परन्तु घोड़े पर चढ़ने वाला, मार्ग हिचकी रोगवाला, वृद्ध, वालक वल से रहित भूंक और तृषा से पीड़ित अजीर्ण उन्मत्त और दिन में शयन के अभ्यास वालों को दिन में सोना भला है विष से पीड़ित और कण्ठ रोगी को दिन में शयन न करने देवे।

स्थूल पुरुष को शहद के साथ पानी मिलाकर सेवन करने से स्थूलता जाती है कृश मनुष्य पान अन्न औषधि इनको यथा योग्य सेवन करे और चिन्ता को सदा दूर करे आनन्द में रहे तो वलवान हो जा जात हैं।

❁ उपयोगीवातें ❁

माणिक्य मूंगा, इन्द्र नील, गोमेद, वडूर्य, मोती, पुखराज, पाची वज्र, यह नौ रत्न हैं।

माणिक्य, लाल मूंगा, पीला रक्तकाँति, पुखराज पीला जिसमें स्वर्ण की झलक हो इन्द्र नील कृष्ण सजल मेघ के समान काँति, गोमेद किंचित् पीला लाल, वैडूर्य विल्ली के नेत्र की काँति तुल्य जिसमें लकीरें हैं।

मोती-लाल, पीला, सफेद, श्याम कांति वाले उत्तम हैं।

पाची-मोर वा वांस के समान जिसका वर्ण हो वह अच्छा होता है, इसमें जो रत्न हलके और वड़े होते हैं उनका मोल अधिक होता है खाँड के समान जो गोल हो वह श्रेष्ठ मूल्य का होता है।

❁ मोती की परीक्षा ❁

मोती बनाये भी जाते हैं इसलिये उष्ण जल में रात्रि को भिंगो दे, प्रातः धानों से मले, यदि मैला न हो तो उत्तम वरना खराव अर्थात् वना हुआ जानना चाहिये।

सोना चाँदी ताँवा, शीशा राँग लोहा ये सात धातु हैं, इनमें श्रेष्ठ सोना और चाँदी है।

गौ-जिसके सींग अच्छे दुहने में सुशील बहुत दूध दे, वछड़ा अच्छा हो, तरुण हो, चाहे छोटी हो पर अधिक मोल की होती है।

बैल-जिसके सींग अच्छे हों बलवान हो बोझ ले जाने में समर्थ हो, तेज़ चलता हो, आठ बिलास्त ऊंचा हो, जिसकी तालू और जीभ नीली हो दांत टेढ़े हों और जिसके दांत न हों, जिसको बड़ा बैर हो, जिसमें बहुत मद हो और जिसकी पीठ कांपती हो, जिसके अठारह से कम नख हों जो मन्द हो, जिसकी पूछ भूमि पर लटती हो उसको न मोल ले। और इसके विपरीति उत्तम होते हैं। उनके भद्र, मद्र, मृग, मिश्र ये चार भेद हैं।

भद्र-जिसके दाँत मधु के समान और बलवान् जिसके अंग समहों आकार गोल, सुन्दर मुख अंग अच्छे हों।

मद्र-जिसकी कोख स्थूल हो, सिंह के समान दृष्टि हो गर्दा और शूंड बड़े हों, अंग मध्यम हों लम्बी कमर हो।

मृग-जिसके कण्ठ, दांत, कान, शूंडये सब पतले हों, नेत्र, हृदय और ओष्ठ बड़े तथा जो छोटा हो।

मिश्र-इन सबके चिन्ह जिसमें मिलें वह गज मिश्र कहाता है।

अँगुली से नापा जाय उसको माप कहते हैं, बाँटों से जो तोला जाय उसे उन्मान, किसी पात्र से जो नापा जाय उसे परिमाण कहते हैं, कौड़ी से लेकर रत्न पर्यन्त को द्रव्य और पशु, वस्त्र, तृण आदि को धन कहते हैं

❁ कस्तूरी की पहिचान ❁

चार पांच लहसुन के जवों को पत्थर पर महीन पीसकर बिलस्त भर तागे को उसमें भिगो सुई में पिरो नाभे में छेद कर डोरे को खींचले यदि नाभे के भीतर उत्तम कस्तूरी होगी तो लहसुन की दुर्गंधि जाती रहेगी कस्तूरी की सुगन्ध उसमें आ जावेगी।

खुली कस्तूरी की परीक्षा ❁

बहुधा ठग कोयले आदि वस्तु को महीन खाक कर कस्तूरी को पानी में घोट उसी में खाक को तर कर साया में सुखा लेते हैं इसी प्रकार दो तीन पुट देकर मेलों में जाकर बेचते हैं। उसी की परीक्षा के लिये एक रवे को आग पर धर उसकी सुगन्धि को ले यदि असली होगी तो बराबर धुआं सुगन्धित निकलता जायगा नहीं तो पहिले सुगन्धित फिर सुगन्धि रहित।

कस्तूरी के गुण-गर्म, वात, श्लेष्मानाशक, धातु उत्तेजक, वाजीकरण, अग्नि और बल वर्द्धक खुराक आधे चावल से चार चावल तक, धनाढ्य लोग जाड़ेमें पानमें रख कर खाते हैं, शीत मिजाज वालोंको अति लाभदायक है।

कस्तूरी की गोली-कस्तूरी ६ माशे, अनविंधे मोती १ तो०, जावित्री डेढ़ तो०, केशर २ तो०, जायफल २ तो०, छोटी इलायची, और अकरकरहा, कालीमिर्च २ तो०, कपूर ६ माशे, शुध कुचला या कुचले का सत् ४ चांवल, सोने के वर्क १०, चांदी के वर्क २० ।

बनाने की विधि-मोतियों को पक्के खरल में गुलाब के अर्क में ४ पहर घोट ले और कुचला को शोध ले, और न डाले तब भी कोई हानि नहीं सबको खरल में डाल दो तोला शहद और गुलाब के अर्क में घोट मटर के बराबर गोली बना साया में सुखा शीशी में बन्द कर रखदे, चौथाई गोली से दो गोली तक खावे इसके सेवनसे शक्ति बढ़ती है, लकवा, गठिया नपुंसक आदि रोग जाते हैं, खाने के समय तेल, मिरच, खटाई, बासी अन्न, बाजरा आदि न खावे । दूध, मलाई, पुराने चावल का भात, मीठा सेव, अनार, पौंडे की गंडेरियाँ खावे ।

जल जाने की औषधि-१ जलतेही सेक दिया जाय, २—रेल के कोयले को तेल के साथ पीस लगावे, ३—इमली की छाल को जला कर गौ घी में मिलाकर लगावे ।

सांप-(१) साठी की जड़ ६ माशे और काली मिर्च ११ को पीसकर दो चार बार पिलादो । (२) हुक्के की गुली को निकाल उसकी चने के बराबर गोली बांध कर उसमें थोड़ा घी मिलाकर काटे हुए सांप वाले को खिलादो और काटने के स्थान पर भी लगा दे । (३) लाल फिटकरी नौसादर, तूतिया इन तीनों को पीस सांप काटे घाव में भरदे यदि घाव न हो तो चाकू से कर ले इसके करने से खून निकलना जारी हो जावेगा १० मिनट के अन्तर पर वार वार करता रहे और उपरोक्त औषधि ही रोगी को जब तक चेत न हो वारम्वार पाव २ घण्टे के पीछे खिलाता रहे अवश्य ही आराम होगा आक के पत्ते की सफेदी नाखून से उतार जमा कर लेवे उसमें आक के पत्ते का दूध मिला कर चने के बराबर गोली बनाले आध २ घण्टे पीछे एक एक गोली दे सातवीं गोली कड़वी मालूम होगी और रोगी अच्छा हो जावेगा । (४) जहां पर सांप खाटे उस स्थान को कुछ छोड़ कर एक डोरी से कड़ा करके बांध दे और फिर चाकू से खून निकाल गर्म शलाकों से दाग देवे और जहां बांधने की जगह न हो छुरी आदि से छील दाग दे अथवा बोंबी से वायु निकलवावे ।

कुत्ता-(१) लाल मिरच को पीस कर भरदे । (२) उसी का गू

जलाकर भरदे । (३) कुचला पीसकर लगादे ।

बिच्छू-१-मूली के पत्ते का रस लगादे । २—काशीफल के ऊपर जो डण्ठल होता है उसको घिस कर लगा दे । जमालगोटा पानी में घिस कर लगादे । ४—घिरघिरा पीस कर लगा देवे । ५—औंधा पेड़की लकड़ी को अपने हाथ में रखले । ६—पानी में दियासिलाई के मसाले को घिसकर लगादे । ७—खांड को पानी में मथकर बिच्छूकेकाटने की जगह पर लगादे।

कांतर-के ऊपर कड़वा तेल डाल दो, टुकड़े २ होकर मरजायगी (२) मूली के पत्ते का रस निचोड़ दो तो तुरन्त ही छुट जायगी ।

मकड़ी—(१) नीबू के रस में चना पीस कर लगावे, अमचूर घिस कर लगादे ।

मक्खी—घी को लोहे से घिस कर लगादे । मक्खी का गू ही लगादे।

ततैया-(१) पानी में कागज़ भिगोकर रखदे । (२) खाने का चूना या नौसादर लगादे ।

इसके उपरांत निम्नलिखित बिषों को उतारने की रीति लिखते हैं जिसको आवश्यक समय पर काम में लाना योग्य है ।

(१) अफ़ीम का विष उतारना हो तो हींग का पानी घोलकर पिला देना योग्य है । (२) फिटकरी चूर्ण और निबौले का सत । (३) नारी के पत्तों का रस पिलावे । (४) चौलाई वा अरहर के पत्तों का रस पिलावे (५) जिसने अफ़ीम खाई हो उसको सोने न दे और टहलता रहे ।

संखिया का विष-उतारना हो तो गूलर की छाल औटा कर पिलावे अथवा कत्था खिलावे और पिलावे ।

धतूरे का विष-अदरक का रस पिलावे । (२) निबौली की मींगी घोट कर पिलावे ।

सींगिया का विष-नारङ्गी का रस पिलाने से उतर जाता है ।

❀ दीमक से बचने का उपाय ❀

जहां दीमक लगने का भय हो वहां पर कपूर और तम्बाकू को बराबर लें पीस चौथे आठवें दिन बुरका दिया करे ।

कपड़े रंगने की रीति ।

प्रथम पानी में कपड़े को इस प्रकार डुबावे कि सम्पूर्ण कपड़े पर एकसा रंग आजावे परन्तु धब्बे न पड़ने पावें और महीन वस्त्र में थोड़ा रंग और पानी लगता है गाढ़े वस्त्र में अधिक लगता है और रंगने के पिछले डोब में पिसी फिटकरी या अमचूर का भीजा हुआ पानी या खट्टे का रस पानी में मिलाकर एक डोब और देदे कि रंग खिल उठें और पक्का भी हो जावे, जो रंग कच्चे हों उन्हें रंग कर कपड़े को छाया में और जो पक्के हों तो धूप में भी सुखा सकते हैं क्योंकि धूप में कच्चा रंग फीका पड़ जाता है।

❁ कपड़े में से रंग काटना ❁

पानी को किसी धातु के वर्तन में औटावे और जिस कपड़े का रंग काटना हो उसको उस गरम पानी में डाल दे कि कपड़ा पानी के भीतर डूब जावै फिर थोड़ी सी फिटकरी डाल कर औटाता रहे, रंग कट कट कर पानी में आजावेगा, कपड़े का रंग कटने से उसका और ही रंग हो जाता है, परन्तु कच्चा ही रङ्ग कट सकता है पक्के रंग नहीं कट सकते ।

❁ रंगने में धब्बा न पड़ने की क्रिया ❁

प्रथम कपड़े को खोलकर पानी में डोवे फिर रङ्ग में डोबे, इससे धब्बे नहीं पड़ते और बहुत से रङ्ग ऐसे हैं जो कई रङ्ग मिलाकर रङ्गे जाते हैं, इस लिये कपड़े को एक रङ्ग के पानी में रङ्ग निचोड़ कर सुखाले, फिर दूसरे में डुबा निचोड़ सुखाले, इसी प्रकार अन्त तक करे परन्तु यह न करे कि एक रङ्ग में गीला ही दूसरे रङ्ग में डोब दे ऐसा करने से रङ्ग अच्छा नहीं चढ़ता ।

❁ रङ्गों के बनाने की क्रिया ❁

❁ हरारङ्ग ❁

प्रथम पक्के नील के पानी में डोब दे फिर हल्दी में जोश दिये हुए पानी में थोड़ी देर तक पड़ा रहने दे, पुनः पानी से फिटकरी के पानी में डोब दे ।

❁ काशनी ❁

तीन सेर पानी में दो तोले नील डाल कपड़े को रङ्ग सुखा ले, फिर

कसूम के फूलों के रङ्ग से रङ्गदें, पीछे खटाई के पानी में धो डाले ।

❁ पीला ❁

पिसी हुई हल्दी में थोड़ी सी सज्जी मिला कपड़े को रङ्ग ले फिर पानी डाल २ कर कपड़े को कई वार धो फिटकरी के पानी में डोब दे ।

❁ केसरिया ❁

पानी में मजीठ को औटाकर रङ्ग निकाल लें अनार के छिलके और हरसिंगार की डण्डी को साथ साथ औटाकर छान ले, कपड़े को फिटकरी के पानी में पहिले डोब ले फिर इन दोनों रङ्गों के पानी को एक संग मिला कर कपड़े को रङ्ग ले ।

❁ नारङ्गी ❁

हरसिंगार के फूलों को पानी में औटा कर कपड़े को पीछे कसूम के पानी में रंग, खटाई के पानी में रंग ले ।

❁ बादामी ❁

पावभर तुन के फूलों को सेर भर पानी में औटा लेवें, पहिले गेरू में कपड़े को रंग ले, पीछे तुनके आधसेर पानी में इसको डोब दे, यदि रुचि के अनुसार न हो तो बाकी पानी में फिर डोब दे ।

कपासी ।

कपासी दो प्रकार का होता है (१) बहुत ही थोड़ा जिस से कपड़े पर रङ्ग नाम मात्र को ही आवे थोड़े से नील के पानी में घोल कर कपड़ा रङ्गले, पर रात को टेसू के फूल भिगो रक्खे प्रातः तनिक सा चूना डाल कर निथारले फिर नील डूबे हुए कपड़े को रङ्गे जब रङ्ग चढ़ जावे तो खटाई के पानी में डोबदो डोबते ही रङ्ग बदल कर कपासी हो जावेगा ।

कालारङ्ग ।

माजूफल ﴿। कसीस ﴿॥ बबूल का गोंद ﴿॥ चीनी ﴿॥ सबको अलग अलग पीस फिर मिला कर रखदे । १ छटांक इस चूर्ण को ढाई पाव गर्म जल में मिला देने से अच्छी स्याही बनती है ।

सुरमई ।

कपड़े को पहिले टूली रङ्ग में रङ्गे फिर सूख जाने पर चार पांचवार नील के रंग में रंगने से अच्छा सुरमई रंग हो जाता है ।

बैंजनी ।

नील के रंग में कपड़े को बार बार रंगे फिर आँवले की छुटाई को पीस कर पानी में औटा कर उसके पानी में कपड़े को रंगे ।

जंगाली ।

तूतिया को बारीक पीसकर पानी में औटावे और छान लेवे । एक दूसरे बर्तन में चूना की कलई को पानी में भिगो कर पानी निथार ले । पहिले कपड़े को चूने के निथारे पानी में रंगे और सुखावे सूख सूख जाने पर तूतिया के पानी में रंगने से अच्छा जंगाली रंग का कपड़ा हो जाता है ।

आसमानी ।

नीलबरी के रंग में रंगने से आसमानी रंग होता है

हरड़ का रङ्ग ।

पीली हरड़ का बक्कल एक पाव लेकर एक सेर पानी में भिगो दे । एक दिन के पीछे औटाकर जब चौथाई पानी रह जावे तब उतार कपड़ा रंगे ।

कसीस का रङ्ग ।

कसीस बारीक पीस कर चौगुने पानी में भिगोवे एक दिन बाद औटाकर काम में लावे ।

हरसिंगार का रङ्ग ।

हरसिंगार के फूलों को एक दिन पानी में भिगो दे फिर कलई के बर्तन में औटा ले जब चौथाई पानी रह जावे तब उतार छान कर काम में लावे ।

अनार का रङ्ग

अनार के छिलके तिगुने पानी में औटाकर चौथाई रह जाने पर उतार ले और ठंडा हो जाने पर काम में लावे ।

हल्दी का रङ्ग

खूब बारीक हल्दी का पीला चूर्ण में पानी घोल काम में लावे ।

अंगूरी

टेसू के औटाये हुए पानी में कपड़ा रंगे फिर बहुत ही हलका नील का रंग दे इसके पश्चात् खटाई के पानी में डोब देकर सुखाले ।

❀ शरबती ❀

तीन भाग हरसिंगार के फूल का रङ्ग एक भाग कुसुम का रङ्ग (जो रैनी के पीछे निकाला जाता है) मिला कर रङ्ग ले।

❀ अद्भुत दुरंगा ❀

सीप मूंगे की जड़, सफेद गोंद इनको महीन पीस गुड़ मिला पानी कैं साथ खूब औटाये, जब औट जावे तो उतार कर खरल करे, फिर महीन मलमल लेकर एक तरफ इस रंग का लेप करे, जब सूख जावे तो पहिले पक्के रंग (जैसे नीला) में डोवे, जब सूख जावे तो कच्चे रंग (जैसे कुसुम) में डोवे तो एक ओर धावी दूसरी ओर नाफरमानी हो जवेगा या पहिले नील में रंग हल्दी में डोब दिया जावे तो एक ओर पीला और दूसरी ओर हरा दिखाई देगा।

❀ गुलाबी ❀

कुसुम की थोड़ी सी गादको पानी में मिला कपड़े को रंगले।

❀ लाल ❀

इसमें कसुमकी गादको गुलाबीसे चौगुनी छःगुनी देकर रंगना चाहिये, पीछे खटाई के पानी में डोब कर सुखा ले।

❀ गुलेअनार ❀

पहिले कपड़े को कसुम के फूलों के दूसरे रंगमें डोब लेवे, फिर गादके पानीमें हल्दी पीस कर मिला दे और कपड़े को रंग खटाई के पानी में डोब दे।

❀ पिस्तई ❀

कपड़े को हल्दीमें रंगे फिर साबुनके पानीमें डोवे, इसके पीछे नींबू की खटाई देकर सुखा ले।

उन्नाबी

प्रथम हर्रेके पानीमें द्वितीय कुसुमके पानीमें तृतीय छटांक भर पतंग के औटाये हुये पानी में चतुर्थ चार तोले फिटकरी के पानी में डोब कर सुखा ले।

❀ कांकरेजी ❀

डेढ़ सेर पानीमें पाव भर पतंग महावर दो ड्राम हिरमिजी और माजूफल एक २ ड्राम को औटा कर छान ले फिर रंगे।

● किशमिशी ●

पहिले कपड़े को हरें के पानी में द्वितीय अनार के पानी में तृतीय हल्दी के पानी में चतुर्थ कुसुम के उस पानी में जो रैनी के पीछे निकलता है। फिर अनार के छिलके के पानी में डोब देकर फिटकिरी के पानी में धो डाले, परन्तु डोब सुखा २ कर दिया जावे।

● तूतिया ●

गन्धक का तेज़ाब और तांबा बराबर मिला कर कढ़ाई में जलावे तो तूतिया बन जावेगा।

● हीरा कसीस ●

गन्धक के तेज़ाब के साथ लोह मिला ले।

* कपड़ों के धब्बे छुड़ाना *

● लोहे का धब्बा ●

नमक के पानी में धो डालने से जाता रहता है।

● फलोंके रसके दाग़ ●

पानीमें कबूतर की बीट औटाकर धोवे।

● मेहदी के रङ्ग के दाग नील के दाग ●

ताजे दूध को गर्म करके धो डाले।

● स्याही का दाग़ ●

पुराने सिरके को पानी में करके धो डाले।

● चिकनाई का दाग़ ●

नोन चूना पीस कर पहिले मले, फिर इसी को पानीमें घोल कर धो डाले घी की चिकनई पर तेलको, तेलकी चिकनाई पर घी लगा कर रख दे, पीछे पानी में इस कपड़े को डाल कर औटा लेवे छूट जावेगा।

❀ पशमीने को चिकनाई ❀

जौं की भूसी को पानी में औटा कर धोवे फिर गन्धक का धुआँ देवें, साफ़ हो जवेगा।

● रेशमी कपड़े की चिकनाई ●

सूखा चूना और नोन पीस कर उस पर डाले, पीछे अलसी पीस

कर डाले और इतनी देर तक रहने दे कि वह सब चिकनाई को सोख ले ।

❁ सब भांति के दाग़ ❁

ऊंटकी मेंगन को पीस कर पानीमें घोले और उसमें कपड़े को भिगो दे, एक रात रहने दें, दूसरे दिन धो डाले या हींग और साबुन के पानी से धो डाले सब दाग़ छूट जावेंगे ।

❁ सोने चांदी की चीज़ साफ़ करने का सहज उपाय ❁

निमक, फिटकिरी बराबर ले पीस कर मैले गहने के ऊपर चढ़ा आग में तपा दे जब लाल हो जावे तो साफ पानीमें डाल कर कपड़े में रख इमली से खूब मांज कर धोवे और आग के सहारे सुखा ले ।

❁ तांबे, पीतल पर कलई ❁

बालू से बर्तन साफ कर आग पर रख थोड़ा सा नौसादर छोड़ रांग घिसदे, पिघलने पर एक कपड़े से सबजगह रगड़ कर बराबर करदे ।

पाक विद्या अर्थात् भोजन विधि ।

यजुर्वेद अ० ३३ मं० ५९ में लिखा है कि स्त्रियां सदा वैद्य के समान सबकी हित कारिणी हो औषधिवत अन्न बना मधुर भाषण पूर्वक सब को भोजन करा निरंतर सुखों को प्राप्त हों इस लिये भोजन विद्या का जानना प्रत्येक स्त्री का परम धर्म है इसी को सूप या पाक विद्या कहते हैं ।

*जो स्त्रियां पदार्थविद्या और वैद्यक विद्या को जानती हैं वही पाक विद्या में पूर्ण योग्यता प्राप्त कर सकती हैं वही एक एक वस्तु से युक्तियों द्वारा नाना प्रकार के भोजन बना अपने कुटुम्ब को प्रसन्न करती हैं । वह भाग्यवान पुरुष हैं जिनको योग्य विद्यावती सूप विद्या में चतुर एवं वैद्यक की ज्ञाता स्त्रियां मिलती हैं प्रत्येक को गुणवती स्त्री मिलना महा कठिन है इस लिये सर्वसाधारण के जानने के लिये गृहस्थी में काम आने वाली बातोंका वर्णन करते हैं ।

---

* नोट-गृहस्थी में भोजन बनानेका कार्य प्रायः स्त्रियों को ही करना पड़ता है परन्तु कहीं कहीं पुरुष भी रसोई काकाम करते हैं इस लिये पुरुषवा स्त्री दोनों को भोजन विधि पर ध्यान देना उचित है ।

भोजन विचार।

प्यारे गृहस्थो ! अन्न के भोजनों से प्राणी बढ़ते और सब दिशाओं में भ्रमते हैं विना इसके कुछ भी नहीं कर सकते जैसा कि यजु० अध्याय २८ मन्त्र ३४ में कहा है–

वाजः पुरस्तादुत मध्यतो नो वाजो देवान् हविषा वर्द्धयाति ।

वाजो हि मा सर्ववीरं चकार सर्वा आशा वाजपतिर्भवेयम् ॥

अथर्व वेद में कहा है कि विद्वान लोग पदार्थ के गुणों को यथार्थ जान नियम पूर्वक उचित भोजन आदि के सेवन यथापूर्वक उपकार लेने से अपने और अपनी सन्तानों को रूपवान और वीर्य्यवान बनायें। यजुर्वेद अ० ९ मन्त्र ७ में कहा है कि सदा पुष्टि बल आरोग्यता और आयु बढ़ाने वाली औषधियों का रस सेवन करना चाहिये ऐसा करने से इस जन्म और परजन्म में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि करने वाले होते हैं। जैसा कि:–

नानाहि वां देवहितᳬ सदस्कृतंमासᳬ सृक्षाथा परमेव्योमन । सुरा त्वमसि शुष्मिणी सोमएष मा माहिᳬसीः स्वांयोनिमाविशन्ति ॥ ७ ॥

ऐसे ही पदार्थोंको भक्ष्य कहते हैं और जिस भोजनसे मन, बुद्धि, शरीर एवं धातुओं में विषमता हो उसको अभक्ष्य कहते हैं। इसी कारण अभक्ष्य भोजन करने की आज्ञा शास्त्रकारों ने नहीं दी है।

देखो य० अ० २२ मन्त्र २ में कहा है कि जो मनुष्य यज्ञ से शुद्ध किये जल, औषधि, पवन, अन्न, अर्थात् कसेरू, रताल्, अरवी, आलू और शकरकन्द आदि खाते पीते हैं वे निरोग होकर बुद्धि, बल, आरोग्या और आयु को बढ़ाते हैं। ऋग्वेद में लिखा है कि जो पुरुष मांस को छोड़ कर शुद्ध अन्न को बनाना जानते हैं वेही उधमी हैं। इसी हेतु गीता के ८ अध्याय में श्रीकृष्ण महाराज ने कहाहै कि जो जैसे भोजन करते हैं उनकी वैसी ही प्रकृति होती है, जैसा कि–

आयुः सत्व बलारोग्यं सुखप्रीतिविवर्धनाः ।

रस्या स्निग्धाःस्थिरा हृद्याश्चाहाराः सात्विकप्रियाः ॥१

कट्वम्ल लवणात्युष्ण तीक्ष्णरूक्षविदाहिनः ।

आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ॥ २ ॥
यातयामं गतरसं पूतिपर्युषितं च यत् ।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम् ॥ ३

अर्थात् अवस्था, चित्त की स्थिरता, वीर्य, उत्साह, बल आरोग्यता, आत्मिक सुख बढ़ाने वाला, रसवाला, कोमल, तर, चिरकाल तक ठहरने वाला, जिसके देखने से मन प्रसन्न हो, इस प्रकार के भोजन करानेसे सात्विक। अति चरपरा, खट्टा, नोन, गरम, तीक्ष्ण, रूखे, दाह करने वाले, भोजनसे राजसी। जिस को बने हुये बहुत काल हुआ हो, अतिठण्डा, सूखा, दुर्गन्धियुक्त, वासी, जूठा तथा अभक्ष्य भोजन करने से तमोगुणी भाव उत्पन्न होता है इसीलिये छान्दोग्य उपनिषद् में लिखा है।

आहारशुद्धौ सत्वशुद्धिः सत्वशुद्धौ ध्रुवास्मृतिः।

कि जो मनुष्य शुद्ध आहार अर्थात् मद्य मांस आदि से रहित घृत, दुग्ध चावल गेहूँ इत्यादि का भोजन करते हैं उनके अन्तःकरण की शुद्धि और बल बुद्धि, पुरुषार्थ, आरोग्यता की वृद्धि होती है।

यजुर्वेद अ० २० मं २८ में लिखा है जो अन्नादि को पवित्र और संस्कार कर उत्तम रसों से युक्त करके युक्त अहार विहार से खाते पीते हैं वे बहुत सुख की प्राप्ति करते हैं जो मूढ़ता से ऐसा नहीं करता वह बल बुद्धि हीन होकर निरन्तर दुःख भोगते हैं।

सिञ्चन्ति परि षिञ्चन्त्युत्सिञ्चन्ति पुनन्ति च।
सुरायै बभ्रै मदे किन्त्वो वदति किन्त्वः ॥

अथर्व कां० ६ सू० ९६ मं० २ में लिखा है कि सदा प्रमाद कारक द्रव्यों को छोड़कर सात्विक भोजन करें जिससे साधु स्वभाव रहकर सौगन्ध, श्रेष्ठों के अपराध, राजा के बन्धन और इन्द्रियों के विकार से पृथक् रहे।

मुञ्चन्तु मा शपथ्या दथो वरुण्या दुत।
अथो यमस्य पड्वीशाद् विश्वस्माद् देवकिल्बिषात ॥

कां० ८ सू० २ मं० ८ में लिखा है स्त्री पुरुषों को चावल और जौ आदि सात्विक अन्न का भोजन प्रसन्न हो करना चाहिये जिससे वह पुष्ट कारक हो इसके अतिरिक्त जो विचार पूर्वक खान पान करते हैं वह निरोग रहते हैं भोजन में ६ रस होते हैं मीठा, खट्टा, खारी, चरफरा, कड़ुवा और कसैला इनमें से मीठा रस शीतल, वीर्य वर्द्धक स्त्रियों के दूध उत्पन्न करने

वाला, बलदाता नेत्रों को हितकारी और आयुकी वृद्धि करने वाला होता है खारी खट्टे, चरपरे पदार्थ पित्त की वृद्धि करने वाले होते हैं इस लिये विशेष कर मीठे रस के पदार्थों को ही खाना योग्य है अन्य रसों को आवश्यकतानुसार थोड़ा सेवन करे।

भोजन ६ प्रकारके होते हैं। १ पेय, २ लेह्य, ३ चूष्य, ४ चव्य, ५ भक्ष्य, ६ भोज्य। (१) पेय-जो पियाजावे जैसे दूध, (२) लेह्य जो चाटा जावे जैसे चटनी सोंठ इत्यादि, (३) चूष्य-जो चूसा जावे जैसे ईख, आम, (४) चव्य-चबाकर खाया जावे जैसे चना परमल, चने की दाल इत्यादि, (५) भक्ष्य--जो निगल कर खाया जावे जैसे दूध, लपसी, खीर, हल्वा, साबूदाना इत्यादि (६) भोज्य--जो रांध रांध कर भोजन किया जावे जैसे पुरी कचौड़ी, रोटी, दाल वा साग इत्यादि।

❀ भोजन करने की विधि ❀

प्रथम वालकों, २--नई वधू, ३-वूढ़ों, ४--गर्भिणी, ५-रोगी, ६--अतिथि ७-सेवक -८ पति फिर अन्त को आप भोजन करे।

इसके उपरान्त विपरीत भोजन करने से विशूचिका आदि रोग हो जाते हैं जैसे भात के साथ सिरका, मूली के साथ दूध वा दही और दूध के साथ नीबू खाने से कफ तथा वायू के रोग और तेल दूध के पदार्थ खाने से कमल हो जाते हैं खरबूजा के साथ दूध तथा आम खाकर शरवत न पीना चाहिये किन्तु खरबूजा के ऊपर शरवत और आम के वाद दूध पीना योग्यहै दूध के साथ दही, तिलकुट, तेल जामुन, कुल्थी, टेंटी, नमक, मछली, तेल, बड़हल, केला और दही के साथ दूध, बड़हल और केला तथा नीबू। खिचड़ी और खीर एक साथ न खाना चाहिये।

कई दिन तक पीतल कांसे के बर्तनों में रखा हुआ घी विष के समान हो जाता है इस लिये उसका सेवन भी न करे।

भोजन करने के पश्चात् भारी भोजन जैसे कचौड़ी, बड़े, मुंगौरी, चिउड़ा और चना आदि नहीं खाना चाहिये।

भोजन करके कम से कम ३ घन्टे तक कसरत, मैथुन, पढ़ना आदि परिश्रम का काम न करे। तदनन्तर भोजनों की परीक्षा भी करता रहै क्योंकि परीक्षा किया हुआ अन्न मिष्ठान्न आदि पदार्थ गुणकारी होते हैं इसके अनन्तर कभी कभी नाना प्रकार के करणों से भोजनों में विष भी दे दिया करते

हैं इस हेतु आयु अरोग्यता की रक्षाके लिये निम्नलिखित उपायों और रीतियों से.

विषकी परीक्षाकर

भोजन करना चहिये। १—भोजनों में सब मीठे और फीके पदार्थों में से अग्नि पर डालो यदि अंगारों में बड़े जोर से धुंआ उठे और जल्दी शांति हो जावे तथा अग्नि में से कबूतर की गर्दन के सदृश्य नीली पीली जोतिनिकले तो भोजनों में विष मिला समझना। २—अग्निपर विष मिले हुए पदार्थ घट घट शब्द कर उछलकर दूर जागिरते हैं। ३—कौआ विष की चीज खातेही गड़बड़ा जाता है। चकोर की आंखें बदल जाती हैं। मोर घबड़ाया सा हो जाता है। तोता मैना जोर से चिल्लाने लगते हैं और बन्दर बार बार विष्टा त्यागता है इस लिए विषकी परीक्षा के लिए ऊपर कहे हुए जानवरों में से किसी एक को अपने पास अवश्य रखना उचित है। ४--शाक दाल, भात, में विष मिलाया गया हो तो उसमें बदबू आने लगेगी। ५--शराब और दूध आदि पतले पदार्थों में विष मिले हुए की यह पहचान है कि उसमें नीली पीली लकीरें मालूम होती हैं। ६--पके फल में जहर मिलाने से वे फूट जाते हैं। ७ कच्चे फलों में विष मिलाने से पिलपिले पके से हो जाते हैं। ८—गरम पदार्थों में यदि विष मिलाया जावे तो उसकी भाफ लगते ही आंखों में पानी निकलने लगता है। ९ ज़हर मिला अन्न मुंहमें जाते ही जिह्वा कड़ी पड़ जाती हैं अन्न का स्वाद ठीक नहीं मालूम पड़ता जीभ में जलन सी मालूम पड़तीहै। १०—तमाखू में विष देने से सिरमें दर्द और घूमनी मालूम पड़ती है। इसके उपरान्त भोजन सदा नियत समय पर अर्थात् प्रातः १० बजे और सायंकाल ९ बजे तक खालेना उचित है। मानसिक परिश्रम करने वाले विद्यार्थियों को १० बजे से प्रथम कसरत करने के पश्चात् और सायंकाल ४ बजे भी कुछ बलदायक पदार्थों को खाना चाहिए।

❀ पाकशाला ❀

भोजन बनाने के स्थान को पाकशाला या रसोईघर कहते हैं यह स्थान लिपापुता और हवादार होना चाहिये। पास में पाखाने पेशाब की मोरियां न हों धुंवां निकलने को रोशनदान वा धुआंरें हों। रसोईघर की खिड़की और दर्वाजों पर जाली लगी हो जिस से मक्खियां भीतर न आने पावें। भोजन के पदार्थ बना सफ़ेद कपड़े के अङ्गोछे या लड़की आदि के ढक्कन से ढकदे जिसमें कोई जीव न पड़े।

१-पाकशाला में ही एक ओर एक छोटी अल्मारी में एक मसालदान (जिसमें सब मसाले शुद्धता से पिसे रक्खे हों) मीठे बूरा आदि के वर्तन दूध छानने की छलनी आदि आवश्यकीय चीजें तथा एक लकड़ी के पटरे पर भोजन बनाने के वर्तन साफ रखे रहें।

२—रसोई बनाने वाले स्त्री या पुरुष मैला कुचैला कुरूप क्रोधी इत्यादि न हो किन्तु नित्य प्रति स्नान करने वाला नख और हाथों को साफ रखने वाला प्रेम से भोजन कराने वाला शान्त स्वभाव, पाक-विद्या में कुशल, उदार और हुक्का न पीने वाला हो। ३-पाकशाला में सब बासन मँजे और पवित्र रक्खे हों। ४-प्रत्येक भोजन पृथक् २ रक्खा जावे अर्थात् एक दूसरे से न मिले विशेष कर निमकीन और मीठा। ५-एक वासन में जब कोई पदार्थ रख दिया हो और उसमें दूसरा रखना चाहे तो फिर उसको धोकर साफ कर रक्खे क्योंकि बिना धोकर वस्तु रखने से स्वाद तथा स्वरूप में अन्तर आजाता है। ६—मसाला, नमक अधिक वा न्यून न होने पावे वरन् यथायोग्य और यथारुचि हो। ७-भोजन जलने न पावे और न कच्चा रहे। ८-एक मोटा अंगोछा अपने पास रखना उचित है। ९-फोड़ा फुन्सी, खांसी आदि रोग वाली स्त्री या पाचक को भोजन नहीं बनाना चाहिये। १०-प्रत्येक वस्तु को इस प्रकार से रखना उचित है जिससे परोसने में कठिनता न हो और परोसने से प्रथम प्रत्येक वस्तु को देख भाल कर परोसे जिससे सबको वह वस्तु मिल जावे। ११-खटाई और उसकी पड़ी वस्तुओं को साफ कांच व पत्थर तथा मिट्टी के बासन में रखना उचित है क्योंकि पीतल वा तांबे में रखने से वह पितला जाती है। १२-पदार्थ बनाने से प्रथम प्रत्येक आवश्यक वस्तुओं को शोधकर अर्थात् अन्न को बीन, छांट, फटक कर ठीक करले और उसी भाँति हरे सागों को धोयवाय और गले सड़े पत्तों को निकाल कर ठीक कर लेना उचित है।

भोजन शाला।

भोजन करने का स्थान पाकशाला से कुछ दूर हो तो अच्छा है यह स्थान सफेदी वा खड़िया से पुता होना चाहिये। नाना प्रकार के सुगन्धित एवम् मनोहर अनोखी वस्तुयें वहां रखी हों जिनसे नेत्रों को आनन्द तथा मनको हर्ष हो। स्वच्छ आसन वा साफ पटरे वहां पड़े हों किसी प्रकार

की मलिनता न हो और वायु अच्छी प्रकार से आती जाती हो।

१-भोजन परोसते समय मीठे पदार्थ एक ओर फीके दूसरी ओर निमकीन तीसरी तरफ और शाक भाजी खुश्क चौथी ओर परोसी जाय, खट्टे एवं दही के पदार्थ कूड़ी या काँच के बर्तन में, पतले रसेदार कलई या फूल की कटोरियों में परसने चाहियें ताकि खट्टे, मीठे पदार्थ एक में न मिल जावें।

२-जब सब पदार्थ परोस दिये जांय तब परमेश्वर का धन्यवाद कर भोजन करें।

३-सबसे पहिले मीठे पदार्थ खाना चाहिये फिर फीके फिर निमकीन और फिर खट्टे पदार्थ खाना उचित है।

४-भोजन के समय माता, पिता, स्त्री, भाई, मित्र पाककर्ता और वैद्य के सिवाय और कोई न होना चाहिये क्योंकि भोजन भजन एकान्त में ही अच्छा होता है। भोजन करने के समय में वार्तालाप करना भी अनुचित है क्योंकि एक इन्द्रिय से एक समय में दो कार्य उत्तम नहीं हो सकते किन्तु दोनों अधूरे ही रह जाते हैं अतः एक समय में एक इन्द्रिय से एक ही काम लेना चाहिये हां मित्रादि जन उत्तम तथा प्रसन्न करने वाली कहानियों वा प्रीतिकारक बातें को सुनाते जावें तो श्रेष्ठ है।

५-हैजा के दिनों में थोड़ा भोजन करना योग्य है।

भोजन करने में सावधानी की आवश्यकता

शास्त्रों में कहा गया है 'अन्नवै प्राणिनां प्राणः' अर्थात् प्राणी मात्र का जीवन स्वरूप प्राण पोषक एवं रक्षक अन्न ही है उस के सावधानी से प्रयोग करने से जिन्दगी अथात् जीवन असावधानी से मौत यानी मृत्यु होती है अतएव भगवान वेदने जिस प्रकार के भोजनों के सेवन की आज्ञादी है उसका उल्लेख हम ऊपर करचुके हैं केवल यह बतलाना है।

१-भोजनशाला में दो बालिस्त ऊंचे और एक गज चौड़ी लकड़ी के पटरों पर भोजन रख कर करे क्योंकि झुक कर खाने में पेट दब जाने से पकाशय की धमनी निर्बल हो जाती है जिससे भोजन ठीक समय पर नहीं पचता इस लिए छाती उठा कर भोजन करना चाहिए।

२-प्रसन्नता पूर्वक भोजन करने से जठराग्नि प्रबल रहती है।

३-भोजन नाना प्रकार के करने चाहियें जिससे एक प्रकारकी टेव न पड़ जावे जो फिर बहुत प्रकार के क्लेश देती है।

४-भोजनों के साथ हरे शाक का भी खाना अति श्रेष्ठ है ।

५ भोजनके आदि वा अन्तमें पानी पीनेसे अग्नि मन्द हो जाती है हां भोजनों के मध्य और दो घंटे बाद पानी पीने से अन्न शीघ्र पचता है ।

६-प्रातराश अर्थात्-प्रतःकाल स्नान भजन के बाद भी कुछ अवश्य खाना चाहिये जिसको अपने यहां कलेऊ करना कहते हैं कलेऊ कर लेने से पित्त नहीं भड़कता परन्तु कलेऊ में दूध मिश्री संयुक्त दूध पीना वा कुछ सूक्ष्म रीति से ताकत की ताजी चीज खानी चाहिये ।

७--भोजन जल्दी २ नहीं करना चाहिये वरन खूब चबा चबा कर करना योग्य है ऐसा करने से भोजन शीघ्र पचता है और जल्दी जल्दी खाने से अकने रोग हो जाते हैं क्योंकि दोनों का काम बेचारी आंतों को ही करना पड़ता है ।

८--भोजन करते समय क्रोध, चिन्ता, भय, भी न करे क्योंकि इन मानसिक विकारों से भोजन नहीं पचता ।

९--भोजन के पश्चात् ताजे जल से खूब कुल्ला करना चाहिए जिस से दांतों में अन्न लगा न रहे । दान्तों में अन्न के रहने से कीड़ा लग जाता है यदि दांतों में गड्ढा हो गया हो तो चाँदी सोने या बाँस की तीली से दांतों में हिल्गे अन्न को निकाल देवे ।

१०--बहुत मीठा खानेसे ज्वर, श्वांस, गलगण्ड, कृमि, स्थूलता, प्रमेह तुतला पन, मोटापन, और मंदाग्नि रोग हो जाते हैं बहुत खटाई खाने से खुजली, पीलिया, पांडु, सूजन और कुष्ट आदि रोग हो जाते हैं । बहुत निमक खाने से नेत्रपाक, रक्तपित्त की बीमारी और शरीर में सलवटें पड़ जाती हैं तथा बाल झरने लगते हैं और जल्दी सफ़ेद हो जाते हैं । अधिक चरपरी खाने से मूत्रकृच्छ, गरमी, मूर्च्छा और प्यास की बीमारी हो जाती है और बल तथा कान्ति का नाश होता है ।

११-भूख लगनेपर पानीसे पेट न भरें किंतु थोड़ा खाकरही जल पीना उचित है ऐसे ही प्यास लगने पर ही पीवें भोजन पानी पीनेसे कुछ देर बाद करे ।

१२—बहुत गरम गरम भोजन करने से बल घटता है सूखा खानेसे पेट में दर्द और सड़े पदार्थों के खानेसे अरुचि रोग तथा पेटमें कीड़े हो जाते हैं ।

१३—पित्त उत्पन्न करने वाले पदार्थों को खाकर मिश्री मिला दूध

पीना चाहिये इससे पित्त शांति हो जाता है ।

१४—किसी मनुष्य को दूसरे का जूठा भोजन कदापि न करना चाहिये और न जूठे मुंह किसी स्थान को जावे । बार बार अधिकता से तथा प्रातःकाल और सायंकाल के समय भोजन न करे जैसे मनु अ० २ श्लोक ५६ में कहा है ।

नोच्छिष्टं कस्यचिद्दद्यान्नाद्याच्चैव तथान्तरा ।
न चैवात्यशनं कुर्यान्नोच्छिष्टः क्वचिद्व्रजेत् ॥

अर्थात् एक थाली वा पत्तलमें अधिक मनुष्योंको भोजन कराना योग्य नहीं है क्योंकि प्रत्येक मनुष्य का स्वभाव पृथक् पृथक् होता है, कोई चाहताहै दाल भात को मिला कर खाऊं, किसी की रुचि इसके विरुद्ध है इसी प्रकार अन्य जनों का अन्य स्वभाव होता है, तो इस दशा में अरुचि से भोजन करना पड़ता है, अरुचि के कारण अन्न अच्छे प्रकार नहीं पचता। बहुधा मनुष्य इसी हेतु से भूखे उठ बैठते और बहुतों को नाना प्रकार के रोग हो जाते हैं । इसके उपरांत प्रत्येक के हाथ बारम्बार मुंह में लगते हैं फिर तो भोजनों में तो एकके रोग दूसरेमें प्रवेश कर जाते हैं इसी हेतु कोढ़ी को कोई अपने साथ भोजन नहीं कराता ।

इसके अतिरिक्त यदि कुटुम्बके बीच अन्य कोई सम्बन्धी जो दूर देशमें रहता है वह गुप्त रूप से शराब मांस भक्षण करता है वा व्यभिचार में लिप्त है तो एक साथ खाने पीने से अन्य मनुष्यों की पवित्रता पर भी धब्बा लगजात है । इन सब के उपरांत जूठा भोजन करना महापाप है क्योंकि इससे केवल शारीरिक रोग ही उत्पन्न नहीं होते वरन् बुद्धि को अशुद्ध कर उसके सम्पूर्ण बल का नाश कर देता है प्रत्यक्ष में देख लीजिये कि जो मनुष्य जूठा खाते हैं उनके मस्तक गंदे होते हैं कि जिस से उन को सोच विचार करने का स्वभाव बिल्कुल नहीं रहता । इसका कारण यह है कि जूठा भोजन करने में स्वच्छता नहीं, बस जहां स्वच्छता वा शुद्धता नहीं वहाँ शुद्धबुद्धि का क्या कहना । सभ्यता शुद्ध बुद्धि का फल है, इसी कारण मनुजी आदि ऋषियों ने जूठा खाने का निषेध किया है । अतः आर्य्य पुरुषों का यही धर्म है कि चाहे अपना लड़का ही हो उसको भी अपना जूठा भोजन न दे । बचपन से जूठा तथा जूठे भोजन से घृणा करना उचित है । हमारे बहुधा स्वदेशी बंधु जो धर्मशास्त्र अवलोकन नहीं करते, न कभी उनको सुनते हैं वे अपने

छोटे छोटे बच्चों को अपने साथ भोजन कराने का वा उनका जूठा आप खाने तथा अपना पिया हुआ पानी उन्हें पिलाने में बड़ा लाड़ समझते हैं, कैसे शोक का स्थान है कि महा निन्दित कर्म को लाड़ प्यार वा धर्मकार्य समझ उसकी बुद्धि का नाश मार सर्वस्व का सत्यानाश कर देने पर भी परमहितैषी कहलाते हैं। हा शोक! हा शोक!! हा शोक!!! इसके उपरान्त इस देशमें बहुधा मत ऐसे चल गये हैं जिन में चेला चेलियोंको गुरु का जूठा खाना धर्म का अंश माना है जिससे उन के जूठे टुकड़े चांटे जाते हैं वा गुरु का जूठा पानी अमृत के समान जान कर पान करते हैं। प्यारे सुजनो! परीक्षा से जाना गया है कि ऐसे गुरु आत्मा और परमात्मा का नाम तक भी नहीं जानते, केवल धन इकट्ठा करना, विषय भोगादि में लगे रहना ही इन गुरुओं के परमधर्म हैं। फिर चेले का क्या कहना इस लिये हे प्यारे सुजनो! ऐसे पापकी गुरुओं से सदा बचना योग्य है। १५–अति भोजन कभी न करना चाहिये क्योंकि उससे नाना प्रकार के रोग होजाते हैं, आलस्य सदा बना रहता है जिसके कारण सांसारिक वा पारमार्थिक कार्यों को अच्छे प्रकार नहीं कर सकते और संसार में ऐसे मनुष्यों की निन्दा होती है तथा सर्व जन पेटार्थी कहते हैं। जो मनुष्य सदा नियत समय पर पथ्याऽपथ्य अनुसार प्रमाण से भोजन करते हैं उन को 'मिताऽहारी' और 'मात्राप्रमाणी' कहते हैं। उन्हीं का शरीर सदा आरोग्य रहता है। १६– भोजन करने के पीछे रातको १०० पग टहलने से अन्न पचता तथा आयुकी वृद्धिहोती है। दोपहर के समय भोजन कर पलंगपर थोड़ी देर बाईं करवट से लेटने से अङ्गपुष्ट होते तथा खुर्राटे मारने से रोग होते हैं। भावमिश्र जीका उपदेश है कि भोजन करने के बाद पहिले सीधा लेटकर ८ सांस नथुनों से ले फिर दाहिनी तरफ करवट लेकर १६ सांस ले फिर बाईं करवट लेकर १२ सांसले। मनुष्यों की नाभि के ऊपर बाईं तरफ अग्निका स्थान है इस लिये बाईंकरवट लेटने से अन्न शीघ्र पचजाता है।

१७ खाने के पश्चात् बेंच, स्टूल, तिपाई कुरसी आदि पर बैठने, नींद से सोने, आग के सम्मुख बैठने, धूप में चलने, दौड़ने वा घोड़े की सवारी पर चढ़ने तथा कसरत आदि से नाना दोष उत्पन्न होते हैं, अतः भोजनों के पश्चात् एक घंटे वा अधिक समय तक ऐसे काम न करने चाहिये १८–पाचन के अर्थ कोई चूर्ण वा शर्बत न पीना चाहिये क्योंकि फिर टेव

पड़ जाने पर विना चूर्ण के पाचन नहीं होता तथा आरोग्यता में अन्तर पड़जाता है। ११--अत्यन्त पानी पीना, विना पचे भोजन करना, विना क्षुधा के भूख का मारना या आध सेर के स्थान पर एक सेर खाना अथवा अत्यन्त न्यून खाने इत्यादि कारणों से अजीर्ण वा मन्दाग्नि आदि रोग उत्पन्न होजाते हैं।

१८-इन्हीं कारणों से भूखा रहना भी अच्छा नहीं परन्तु अब वर्त्तमान समय में भूखे रहने वालों को ही ब्रती कहते हैं तथा उनकी बड़ी प्रतिष्ठा होती है और वह भी अपने मन में स्वर्ग जाने की आशा रखते हैं, परन्तु प्रिय भ्रातृगणों! यह महा मिथ्या है क्योंकि सत्शास्त्रों में विना अजीर्ण के किसी दिन निराहार रहने की आज्ञा नहीं है। कहा है-"भूखे भजन न होइ गुपाला, यह लो कंठी यह लो माला।" इस से स्पष्ट है कि जब नियत समय पर अन्न नहीं मिलता तो सम्पूर्ण इन्द्रियां मन सहित विकल हो जाती हैं अर्थात् मारे क्षुधा के उदासीनता छा जाती, हाथ पांव में शिथिलता आजाती है, आंख निकल पड़ती, प्यास के मारे कण्ठ सूखने लगता तथा एक एक पल वर्ष के समान बीतता है। भजन में मन की एकाग्रता की आवश्यकता है, क्या ऐसी दशा में मन आराम पा सकता है फिर ब्रत कैसा तिस पर विशेषता यह है कि बालक, बूढ़े, दुर्बल गर्भिणी आदि को भी यह ब्रत कराये जाते हैं। शोक! महाशोक!! कि जिससे नाना प्रकार के क्लेश हों उसको धर्म का चिह माना जाय सत्शास्त्रों और परमेश्वर की आज्ञा का कुछ विचार न किया जाय। इसका नाम अंधेर नहीं तो क्या है?

इसके उपरांत ब्रत ऐसे भी हैं कि जिन में बासी भोजन खाये जाते हैं 'जैसे देवी महरानी का बस्यारा'। क्या ही आश्चर्य का स्थान है कि हम श्रीकृष्ण जी महराज की आज्ञा पर तनिक भी ध्यान नहीं देते, उन्होंने गीता के १२ अध्याय के १० श्लोकों में बासी भोजन करना मना किया है क्योंकि उससे तामसी भाव उत्पन्न होता है अर्थात् बुद्धि मलीन हो जाती है आलस्य भरा रहता है इसके अतिरिक्त बहुधा स्त्रियां अन्न छोड़ देती हैं। हे प्यारी बहिनों! इससे तुम्हारी बड़ी हानि हो जाती है, नाना रोग तुमको घेरे रहने के कारण सन्तानों को भी बड़े २ दुःख उठाने पड़ते हैं। प्रत्यक्ष देखो कि उन दिनों में तुम्हारी क्या दशा हो जाती है। यही

नहीं बहुधा स्त्रियां नमक छोड़ देती हैं और इसी को वे परम तप समझती हैं। यह भी उनकी बड़ी भूल है। क्योंकि यह स्वादन होनेके कारण नहीं खाया जाता वरन् मनुष्य के रक्त के साथ बहुत सा भाग नमक का है, नमक के साथ भोजन पचता है, बिना इसके खाये बल का नाश हो जाता है, अन्त में उनके शरीर में कीड़े पड़ जाते हैं कि जिससे उनको नाना क्लेश भोगने पड़ते हैं। बहुधा ब्रतों में अन्न का निषेध किया है और ब्रतों में सिंघाड़ा, पोस्ता, फाफड़ा, घुइयां, आलू आदि कुपथ्य भोजन किया जाता है कि जिससे स्वास्थ्य रहना अति कठिन है। गेहूँ, दाल, चावल, तरकारी सदा पथ्य है उनमें दोष बताना ही पाप की बात है। इन ब्रतों के करने की आज्ञा शतशास्त्रों में नहीं है, शुद्ध आचारण का नाम ही व्रत है जिसका वर्णन हम आगे करेंगे। इस कथन का तात्पर्य यह है कि जो अच्छे प्रकार संस्कार (शुद्ध) किये, बुद्धि प्रदाता अन्न का भोजन कर सन्तानों को उत्पन्न करते हैं उनकी सन्तान विद्वज्जन प्रिय, दीर्घायु, तथा सुशील होती है। ऐसा ही ऋग्वेद में कहा है। इस लिये सदा उपरोक्त बातों का ध्यान कर ऋतु अनुकूल भोजन करना अभीष्ट है, क्योंकि य० अ० १० मं० १४ में कहा है कि जो मनुष्य ऋतुओं के अनुकूल आहार विहार कर विद्या योगाभ्यास और सत्संग का अच्छे प्रकार सेवन करते हैं वे सब ऋतुओं में सुख भोगते हैं। चरक ऋषि कहते हैं कि जो मनुष्य ऋतुओं के अनुकूल चेष्टा (दिनचर्या) व्यवहार और आहार के कर्त्तव्य में दक्ष हैं उसी परिमित भोजी मनुष्य का शारीरिक बल और कांति बढ़ती है और जो मित भोजी ऋतु विरुद्ध खान पान करते हैं उनके स्वास्थ्य में अन्तर पड़ जाता है। इस लिये हम ऋतु अनुकूल भोजन विधि लिखते हैं।

❀ शरद ऋतु का आहार विहार ❀

आश्विन (क्वार) और कार्तिक दो मास शरद ऋतु के धर्मशास्त्रानुसार तथा वैद्यकमतानुसार कार्तिक और अगहन कहलाते हैं।

मासैर्द्विसंख्यैर्माघाद्यैः क्रमात्षडृतवः स्मृताः।
शरोऽथवसन्तश्च ग्रीष्म वर्षा शरद्धिमः ॥

इस ऋतु में सूर्य पिङ्गलवर्ण के हो जाते हैं। इसके पूर्व वर्षा होने से आकाश की धूल वगैरह दूर हो जाती है जिससे इस ऋतु में आकाश निर्मल हो जाता है और कहीं कहीं सफेद बादल भी देख पड़ते हैं। तालाव और कमल हंसगणों से शोभित हो जाते हैं। पके धानों के खेत भरेपुरे

होकर पिलाई से चम्पकवर्ण से प्रतीत होते हैं। हर एक जलाशय का जल प्रायः निर्मल हो जाता है। धरती ऊँची खाली रहती है कहीं कीचड़ रहता है और कहीं सूखा हो जाताता है। इस ऋतु में कटसरैया, छितवन, बन्धुक और कास वगैरह अपने सुललित फूलों से मनुष्य के मन को मुग्ध किये रहते हैं। वर्षा काल में पानी की ठण्डक से शरीर के रोमकूप प्रायः बन्द से रहते हैं जिससे शरीर की गरमी बाहर न निकल कर शरीर के भीतर ही इकट्ठी होती रहती है वह गरम शरद ऋतु में सूर्य की तेज धूप से यकायक उमड़ जाती है जिसे पित्त का कोप कहते हैं। पित्त के कोप से नीचे लिखे रोग होते हैं।

शरीर में फुंसियां होना, खट्टी और धुरोली डकार आना, प्रलाप करना पसीना अधिक निकलना, बेहोश होना, शरीर में बदबू आना, त्वचा का फट जाना, नशा जैसा मालूम होना, संधि बन्धनों का ढीला पड़ जाना, फुंसियों से शरीर का पक जाना, कहीं भी मन न लगना, प्यास अधिक लगना, चक्कर आना, गरमी मालूम होना, भूंख न लगना, आंखों के सामने अँधेरा मालूम होना, जलन होना, मुंह का स्वाद कड़ुवा खट्टा और चरपरा होना, शरीर का पीला पड़ जाना, पेट में ऐसी पीड़ा होना मानों कोई चीज पकती हो यदि किसी का पित्त अधिक कुपित है तो उसे यह सब रोग होते हैं और यदि कम कुपित होता है तो इनमें से कुछ होते हैं इसी लिये इस ऋतु के लगते ही कड़ा या मुलायम जैसा कोठा हो उसके अनुसार किसी सुयोग्य चिकित्सक के परामर्श से जुलाब अवश्य लेना चाहिये अथवा फस्त खुलावावे या तिक्तघृत सेवन करे या प्रातःकाल चीनी के शरबत में नीबू का रस डाल कर पीवे। इस ऋतु में भोजन कड़ुवा, मीठा, कसैला, हलका और ठण्डा भूंख लगने पर करना चाहिये। मिश्री, चावल, मूंग, आँवला, परवल, घी और नदी का निर्मल जल लाभकारी होता है। इस ऋतु में ओस, खारी चीज, अधिक भोजन, दही, खटाई, दिन में सोना, रात में जागना, तेल, चर्बी, घाम, नशीली चीजों का सेवन इन बातों से दुश्मन की तरह बचना चाहिये क्योंकि यह चीजें शरद ऋतु में रोग पैदा करने वाली हैं। इस ऋतु में निम्न लिखित प्रयोगों से पेट साफ कर लेना उचित है।

—०—

❀ जुल्लाब ❀

निसोत, मोथा, नेत्रवाला, चन्दनचूरा, मुनक्का, गुलाव के फूल, सनाय, अमलतास, एक एक तोला लेकर पाव भर पानी में भिगो दे प्रातः क्वाथ बना कर पीना, दो दिन पहिले खिचड़ी घी डाल कर खाना और जुल्लाव के दिन भी।

❀ तिक्तघृत ❀

छितवन, अतीस, अमलतास, कुटकी, पाढ़ा, मोथा, खस, त्रिफला, पित्तपापड़ा, परवरलता, नीम की छाल, मँजीठ, पीपल, कमलगट्टा, कचूर, लालचन्दन, धमास, इन्द्रायण, हल्दी, दारुहल्दी, गिलोय, सफेद काली, सारिवा, मूर्वा, अडूसा, शतावर, त्रायमाण, इन्द्रजौ, मुलहटी, चिरायता, बराबर बराबर ले चौगुना घी, घी से अठगुना पानी। तीन दिन तक पानी में भिगो धीमी धीमी आंचसे पकाना चाहिये।

यह घृत कुष्ठ, वातरक्त, रक्तपित्त, खूनी बवासीर, पाण्डुरोग, हृद्रोग, वायुगोला, भदर, गण्डमाला और ज्वर में भी दिया जा सकता।

बदहज़मी (कब्ज़) दूर करने का सरल उपाय।

१—छोटी हरड़, गुलाव के फूल, कालीदाख, मगज़ावादाम, सौंफ इन को छः छः माशा ले कूट पीस पानी से गोली बना ले तीन तीन माशे की १ गोली रात को पाव भर गुनगुने दूध में मीठा डाल कर उसके साथ गोली खा ऊपर से दूध पीले। २—त्रिफला की ६ माशा की फंकी लगा ऊपर से दूध या गुनगुना पानी पीवे। ३—एक या दो मुरब्बे की हरड़ अथवा दो तोले मुनक्का बीज सहित खावे। ४—पाव भर दूध में ३ तोले बादाम या रेंडी का तेल पीवे। ५—३ तोले गुलकन्द खाकर ऊपर से गुनगुना दूध मीठा डाल कर पीवे। कब्ज़ दूर करने को और पेटके समस्त रोगों से बचने के लिये प्रातः शौच स्नान से निवृत्त होकर एक गुदगुदे आसन पर अच्छे प्रकार बैठ नाभि की ग्रन्थि को सौवार * मेरुदण्ड (यानी पीठ की हड्डी जिसको रीढ़ कहते हैं) से मिलावे अर्थात् पेट को ऐसा खलावे कि नाभि घुस कर

* नोट—प्रथम अभ्यास करने वालों को दो चार दिन २०, २५ से आरम्भ करना चाहिये फिर धीरे धीरे बढ़ा कर सौ तक पहुँच जावे। इस क्रिया के करने के पीछे १-२ घंटे तक पानी न पिये।

पीठ की हड्डी से लग जाया करे ऐसा प्रति दिन नियत समय पर करने से जठराग्नि बढ़ भूख खूब लगती है।

अधिक सर्दी अर्थात् हेमन्त ऋतु के भोजन।

पूष और माघ यह दो मास सर्दी के हैं इसमें दही, दूध, घी, उड़द, गेहूँ, चना, बाजरा, मक्की, चावल, मुश्क, केसर, मिट्टी के पदार्थ, गुड़, मिश्री, चीनी, रबड़ी, खोवा, मलाई, तिल, अदरख जिमीकन्द, बथुआ, विलायती अनार, सेव आदि फल और गर्म पदार्थ तथा बादाम आदि मेवा का सेवन करना वातकारक चीजों से परहेज करना रुई वा ऊनी कपड़े पहरना और कसरत करना चाहिये।

बसन्त ऋतु का पथ्य।

बसन्तऋतु अर्थात् फागुन और चैतमें—गेहूँ चावल, मूंग, जौ, परवल, बैंगन, चीनी, दूध, केला आदि गर्मतर पदार्थों का सेवन मीठा, चिकने, भारी, कब्ज करने वाले दही और दिन में सोना हानिकारक है इस ऋतु में कफकारक चीजों को न खाना चाहिये।

ग्रीष्म ऋतु का पथ्य।

वैशाख और जेठ में गर्मी रहती है इसमें गेहूँ, चावल, मिश्री, दूध, वरफ, गुलाव, केवड़ा, खस और मोतिया का इत्र सूंघना हल्के, सूतीवस्त्र, लू चलते के समय मोटे वस्त्र पहरना, ठंढे मकान में रहना, रातको ओसमें सोना प्रातःकाल शरवत पीना, शीतल पदार्थों का सेवन, सुन्दर पुष्पों की माला पहरना, चन्दन का लेप करना, तथा कसरत, धूप में फिरना, चरपरे, गर्म और रूखेपदार्थोंका सेवन, और सफर करनेसे हानि होती है।

प्रावृट् (आषाढ़ श्रावण)।

इस ऋतुमें मक्का, चना, गेहूँ, खट्टे मीठे पदार्थ, मट्ठा, दही और निमकीन पदार्थोंका सेवन और गरम तथा रूखे पदार्थों का खाना और नदीमें स्नान करना हानिकारकहै। सावनमें दूध भी न पीवे तथा वात(वायु) उत्पन्न करने वाली वस्तुओं का सेवन न करे। मिट्टी लगा कर कसरत करे।

वर्षाऋतु (भादों क्वार)।

इसमें गेहूँ, चावल, उड़द दूध मट्ठा वातनाशक और हल्के पदार्थों को सेवन करे। वर्षा होने के कारण अन्न कम पचता है इसलिये भोजन कम

करना चाहिये। वायु तथा पानी के खराब हो जानेसे म्लेरिया शीतज्वर, हैज़ा, दस्त आदि बीमारियां फैल जाती हैं उनसे बचने के लिये पौनपेट भोजन करना योग्य है।

वर्षा के पानी में भीगना ओस में सोना, नदीका जल पीना, या उसके पास रहना विषय करना गरीष्ठ पदार्थों का सेवन खारी करेला फूट का खाना हानिकारक है इससे निम्न लिखित बातों का भी ध्यान रखना आवश्यक है।

चैते गुड़ वैसाखे तेल, जेठे पंथ अषाढ़े बेल,
सावन दूध न भादों मही, क्वार करेला न कातिक दही।
अगहन जीरा पूसे धना, माहे मिश्री न फागुन चना,
जो यह बारह देय बचाय, ता घर बैद्या कबहुँ न जाय।

❀ कतिपय वस्तुओं के पचने का समय ❀

नामवस्तु	समय	नामवस्तु	समय
आलू	३ घंटे में	दूध उबाला हुआ	२ घंटे
गहूँ कीरोटी	३ घंटे ३० मिनट।	जौकीरोटी	३ घंटे २० मिनट
बाजरा मकाईकीरोटी	३ " ४० "	प्रत्येकप्रकारकीशाक	२ " ३० "
उड़दकी दाल	२ " ४० "	मूंग की दाल	२ " ३० "
साबूदाना	१ " ४५ "	चुकुन्दर गाजर	३ " ६० "
सेम की फली	३"	अरारोट	१" ३० "
चावल	१ " ४५ "	कचौरी	४ घन्टेमें
गोभी	३ " ३० "		

❀ पान ❀

भोजन करने के बाद एक पान भी खाना योग्य है। यह मुख की दुर्गन्ध को दूर कर और उसकी शोभा बढ़ाता है, जिह्वा और दांतों को स्वच्छ करता है, खाने में स्वादिष्ट रुचि को लाने वाला और बल को देने वाला है। परन्तु इसके अधिक खाने से शरीर न्यूनबल और आंखों का प्रकाश कम हो जाता है एवं दांत और कान को भी हानिदायक है तथा पाचनशक्ति को भी कम करता है और इससे नासूर भी हो जाता है, भूख, नेत्र पीड़ा बेहोशी में भी पान न खाना चाहिये इसको भारतवर्ष में नागरवेल कहते हैं। दूध पीने के पश्चात् शीघ्रही पान न खाना चाहिये।

इसके उपरांत अब हम सर्व साधारण के जानने के लिये अन्न, फल, शाकादि की कुछ व्याख्या करते हैं जिससे अधिक लाभ होनेकी आशा है।

गेहूं—वात, पित्त, कफ को समान रूप से रखने वाला, मधुर, शीतल जीवनकर्ता, वीर्यवर्द्धक कफ नाशक, दस्त साफ लाने वाला तथा भारी होता है।

जौ—रूक्ष मधुर, बुद्धि और अग्निवर्द्धक शीतल भारी मिष्ट, बहुमलो वायुकारक दृढ़ताकारी बलकारी कब्ज विकारों और खून विकार प्यास रोग को नाश करने वाले होते हैं।

तिल—कुछ कसीला, स्निग्ध, तथा मधुर, तीक्ष्ण, वातपित्तनाशक, कफ कर्त्ता, अग्नि और बुद्धि को बढ़ाने वाला है। सब प्रकार के तिलों में काला तिल उत्तम है।

मटर-अत्यन्त बादी और वातकर्त्ता है।

मसूर-पाक में मधुर और मल को रोकने वाली, ठंडी बादी और कफ, पित्त खून विकार और बुखार को रोकती है।

उरद-पुष्टिकारक, तृप्तिकारक अत्यन्त वातनाशक, स्निग्ध, उष्ण, मधुर, गुरु, बलकर्त्ता, मलवर्द्धक, और शीघ्रही पुंस्त्वप्रदायक है।

मूंग-मूंग की दाल कषाय मधुर रुक्ष शीत वीर्य कटुपाकी लघु कफ पित्तनाशक और बुखार के रोगियों को पथ्य है।

मोठ-रस और पाक में मधुर हल्की अग्निवर्द्धक, रुक्ष शीतल तथा रक्तपित्त और ज्वर में हितकारी है।

चना-हल्का शीतल कषाय रुक्षकर्त्ता कफ पित्त में हितकारक है।

कांगनी कोदू शीवार शामक-अन्न शीतल, हल्का, वातकर्ता कफ और पित्तहर्ता है, जिस में कांगनी टूटे को जोड़ती और धातुओं को पुष्ट करतीहै।

कुलथी-गरम पाक में खट्टी, वीर्य, पथरी, श्वांस पीनस तथा खांसी बवासीर, कफवात को नाशती और विशेषतः रक्त पित्त को देती है।

अरहर कफ पित्त नाशक वातकर्ता गरम खुश्क मधुर होती है।

सब प्रकार की बरी कफ और वादी को बढ़ाने वाली होती हैं।

पकौड़ी-बैंगन अथवा और कोई शाक भर कर पकौड़ी बनाई जाती हैं वह वातकर्ता होती हैं।

चावल-कई प्रकार के होते हैं उनमें से आगरा व अवध में साठी और कुमोद अर्थात् शाली चावल अधिकता से खाया जाता है। साठी चावल ६० दिनमें बाली में ही पक जाता है यह मीठे शीतल मल को बांधने वाले हल्के और पित्त को शान्त करने वाले होते हैं। कुमोद हल्का मीठा-सुगन्धित मलवन्धक और त्रिदोश नाशक होता है लखीमपुर जिले का चावल मोट प्रकार का और पीलीभीत जिले का बारीक चावल तथा देहरादून के जिलेका बांसमती भगवानदास और रामअजवायन नामक चावल खाने में बहुत स्वादिष्टहोते हैं इस लिये रोगियों को पुराने महीन चावल ही खिलाने चाहियें सब प्रकार के चावल मीठे से खाने से बहुत शीघ्र पच जाते हैं और बलदायक एवं स्वास्थको स्थिर रखने वाले होते हैं बात और कफ के रोगियो को चावल कम खाना चाहिये।

सत्तू-वातकर्ता-रूक्ष-मल को बढ़ाने वाले पुष्टिकारक प्यास पित्त और कफ को दूर करता है जो पानीमें घोल कर पिया जाता है वह तत्काल बल करने वाला, भेदी और वातनाशक होता है, जो सत्तू खाया जाताहै वह मृदु होने के कारण शीघ्र ही पच जाता है।

खील---दीपन, कफ, बलकर्त्ता, कसीली, मीठी, हल्की, प्यास और मल दूर करती है।

खील के सत्तू—प्यास दाह नाश करता है।

चिरवा-धान भिगोकर जो कूटे जाते हैं और फिर भाड़ में भूने जाते हैं उन्हें चिरवा कहते हैं। ये रक्त, पित्त, दाह ज्वर के नाश करने वाले भारी स्निग्ध और कफ वर्द्धक होते हैं।

धान-नवीन धान अभिष्यन्धी (भारी) होता है एक वर्ष का पुराना धान हल्का, जो कम बड़ा हो दाहकर्त्ता भारी विष्टम्भी और पुष्टि को बिगाड़ता है।

❀ साग (शाक) ❀

पालक का शाक-भारी और सर्द है स्वांस पित्त को नाश करता है।

गाजर-तीक्ष्ण है, पित्त वालों को हित नहीं करती।

जिमीकन्द-दीपन, रुचि में हित, कफ को नाशता और हल्का है ववासीर के रोग में पथ्य है।

सरसों-गरम, बादी, अग्निवर्द्धक, पेट के कीड़ों को नाश करने वाली

और मल मूत्र को रोकने वाली गरम है।

चौलाई-कसीली होने से विष्टा को नहीं फाड़ती, मूत्र को नहीं बढ़ाती, न कफकारी है, रस में स्वाद, पाक में मीठी, तृप्तिकर्त्ता, दूध बढ़ाने वाली और रुचिवर्द्धक, रक्तपित्त में हितकारी मद और विषनाशक है।

सेम-रुक्ष, कसीली, विषरोग शोथ कफ और दृष्टि को कम करने वाली, विदाही, मृदुपाकी, दस्त कराने वाली और वादी और पित्त को बढ़ाती है।

पोई—पाक रसमें मिष्ट, पुष्टिकारक, वात पित्त मद नाशक, दस्तावर, चिकना, बलकारक, कफ कर्त्ता और ठण्डा होता है।

कुलफा-शहद और दूध के साथ न खाय, क्योंकि इस के खाने से वर्ण, तेज, वीर्य का नाश तथा नपुंसकादि कठिन रोग उत्पन्न होते हैं। वैसे शीतल अग्निदीपक, बवासीर और मंदाग्नि को नष्ट करता है।

ककोड़ा—मल, रुचि, खांसी, सांस और बुखार नाशक तथा अग्नि दीपक है।

कटहल—वात कारक, भारी, बलदायक, कफ और मेद को बढ़ाने वाला है।

ककड़ी—स्वादु, भारी, विष्टम्भी शीतल, है।

फूटधिया—मल भेदक, रुक्ष, शीतल, भारी है।

पेठा-मीठा, खट्टा, हल्का तथा मूत्र मल बहुत लाता है और सम्पूर्ण दोषों को दूर करता है।

कसेरु—भारी, विष्टम्भी, शीतल है।

बथुआ-त्रिदोष नाशक और मल भेदक है बवासीर, तिल्ली, रक्त पित्त और कीड़ों का नाश करने वाला है।

नकोंय—त्रिदोष नाशक वृष्य रसायन न अत्यन्त शीतल न अत्यन्त उष्ण है, कण्ठ को हित और कोढ़ को नाश करता है।

मेथी-पित्त नाशक है।

बैंगन- कई प्रकार के होते हैं, गोल बैंगन को भारू लम्बे को वतिया कहते हैं। रंग भी दो प्रकार के हैं काला और श्वेत। बादी और कादिज़ है।

गुड़हल-कफ वादी नाशक चरपरा, रोचक, कड़वा, हल्का, दीपन है और खाने में तुनखरा और पित्त करता है।

गोभी—कफ पित्त नाशक, वात करता भारी, रस में कसीला, पाक में

मधुर प्रमेह मूत्र कृच्छ और खून विकार को दूर करती है।

काशीफल-पित्तनाशक, अधपका कफकरता, पका हुआ हल्का, गर्म चुनखरा, दीपन और बस्तिशोधक है।

कमरकल्ला-दीपन, विष दोष नाशक कड़ुवा और बादी है।

करेला-दीपक, पित्तनाशक है।

ककड़ी-विषनाशक, गरम और बादी है।

परवल के पत्ते और फल का शाक-कफ पित्त नाशक, गरम और चरपरा, बादी रहित, कटुपाकी, पुष्टिकर्त्ता, रुचिवर्द्धक, और पाचन होता है।

खीरा-कच्चा खीरा जिसका रङ्ग नीला होता है वह पित्त का हरने वाला है। पीले रङ्ग का पका हुआ कफकर्त्ता, भारी, रसमें कसीला पाक में मधुर और शीतल है।

चिड़ाले-कफकर्त्ता, बादी का कोप कराने वाला और भारी होते हैं।

पेठा-आगरा और अवध में पके पेठे की मिठाई खाई जाती है जिस के गुण आगे लिखे हैं किसी २ देश में इस को कोला कहते हैं और इसकी तरकारी बनाई जाती है पके पेठे की तरकारी, भारी पित्त खून विकार वात नाशक वीर्य वर्द्धक है। और कच्चे की, अग्नि दीपक बहुत पेशाब लाने वाली, मृगी और पागलपन को दूर करने वाली होती है।

कांदी-कसीली, पित्तमें हितकारी, रस पाक में स्वादु हल्की होती है।

शकरकन्द-भारी, कफ बादी करने वाली और पित्त नाशक है।

चने का शाक-पाक रस में मिष्ट, देर में पचने वाला है।

सैंजनी की फली-वात की नाशक है।

अदरक का शाक-कफ, वात नाशक, स्वर को हितकारी, शूल को दूर करने वाला, स्वाद में कटु, वीर्य में उष्ण, रोचक, हृदय को हितकारी और बलकारक होता है।

मूली-छोटी मूली रस में कड़वी, चरपरी हृदय को प्रफुल्लित करने वाली रुचि को बढ़ाने वाली, जठराग्नि को प्रबल करने और सम्पूर्ण दोषों को दूर करने वाली, हल्की और कण्ठ को हितकारी है।

बड़ी मूली-भारी मल को रोकने वाली और तेज होती है। कच्ची-त्रिदोष करने वाली है। घी में भुनी पित्त को दूर करने वाली कफ और

बादी को जीतने वाली होती है। सूखी त्रिदोष को शमन करने वाली और हल्की होती है।

आलू-सब प्रकार के आलू उष्ण, मधुर, भारी, रूखे, विष्टम्भी, दुष्ट रक्त पित्तको दूर करने वाले हैं और मल मूत्र को गिराने वाले हैं।

भिण्डी-भारी, बलकारक, वात पित्त के रोगों को दूर करती है।

छोटी तोरई-चिकनी, आम कफ को बढ़ाने वाली, भारी, रक्तपित को जीतने वाली है।

खरबूजा का शाक-मूत्र को लाने वाला, कोष्ट को शुद्धकरता तथा बल वीर्य को बढ़ाने वाला, चिकना, स्वाद, शीतल, वात पित्त नाशक है यह मीठे खरबूजे के गुण हैं।

टेण्डस-रुचिकारक, भेदी, पित्त कफ को दूर करने वाले, शीतल, वात कारक, रूखे मुत्रकारक, और पथरी नाश करने वाले हैं।

सेमर के फूल का शाक-कफ पित्त रक्त विकारों को दूर करता ग्राह्य वातकारक, मधुर, कसैला, शीतल, भारी होता है और स्त्रियों के दुःसाध्य प्रदर रोग को दूर करता है।

सहजने के फल का साग-गरम, तीखा, चरफरा, नसों में सूजन करने वाला, कीड़ा, नासूर, तिल्ली और वायगोले को नाश करने वाला है।

केले के फूलों का साग-रक्तपित्त, प्रदर और क्षय रोगका नाश करनेवाला चिकना, मधुर, और कसैला होता है।

अगस्त के फूल का शाक-स्वादु, कटु, तिक्त, कसैला, वातपित्त कफ को जीतने वाला रतौंधी दूर करने वाला और पीनस का नशाक है।

केले की फली-चिकनी, मधुर, कसैली, भारी, शीतल, वात, रक्त, पित, क्षयी रोग नाशक है।

सूखा शाक-मूली के सिवाय और सब सूखे शाक विष्टम्भी, वात और पित्त करता हैं।

विशेष सूचना-कीड़ों का खाया हुआ, धूप या हवा का मारा हुआ सूखा, पुराना, कुऋतु का बिना घी तेल से पकाया हुआ, उबाल कर बिना निचोड़ा शाक न खाना चाहिये।

❀ फल ❀

सामान्य गुण-सम्पूर्ण फल सामान्य रीति से खट्टे पाक में भारी वीर्य

है उष्ण पित्तकरता वात नाशक और कफ को कठिनता से निकालते हैं।

अनार- कसीला पित्तकरता रुचिकरता हृदय को हितकारी और मल को रोकने वाला होताहै। अनार दो प्रकारका होताहै एक मीठा और दूसरा खट्टा-मीठा अनार त्रिदोष नाशक है। और खट्टा वादी कफको दूरकरता है।

आंवला-मीठापन लिये हुये खट्टा, चरपरा, कसैला, कड़ुवा, दस्तावर, नेत्रोंको हितकारी, सम्पूर्ण दोषोंको नाश करने वाला और पुष्टिकारक है। खट्टा होने के कारण बादी को दूर करता है। मीठा ठंडा होने से पित्त नाशक है रूखा, कसैला, होने से कफ दूर करता है यह और फलों से गुणों में अधिक होता है।

बेर-झाड़ीबेर और गोल बेर ये दोनों कच्चे पित को नाशते हैं।

पक्काबेर-पित वात को दूर करता है, चिकना, मीठा, दस्तावर है।

पुरानाबेर-प्यास को कम करता, दीपन हल्का है।

सौवार-अर्थात् बड़ाबेर चिकना मीठा और वात पितको जीतता है।

कसेरू-शीतल, मधुर, वीर्यवर्द्धक पित्त खून विकार दाह और नेत्ररोग नाशक है।

बादाम-गरम मधुर चिकना पित्त कफ वात नाशक और वीर्यवर्द्धक है यही गुण अखरोट के हैं।

नाशपाती-शीतल मीठी वातपित नाशक और वीर्यवर्द्धक है।

खरबूजा-मल मूत्रको साफ करनेवाला मधुर वीर्यवर्द्धक और कफ नाशक है।

तरबूज-पेशाब साफ लाने वाला वादी भारी कफकारक और आयु को बढ़ाने वाला होता है।

बेल-कच्चा बेल, कफ, वात और शूल को नाश करने वाला और बेल पका हुआ गूदाका खाने से दस्त बन्द हो जाते हैं और अग्निको मन्द करने वाला है।

शहतूत-मधुर, शीतल, पित्त और वादी को दूर करने वाला तथा गले को खोलने वाला है।

सिंघाड़ा-शीतल, स्वादिष्ट, भारी, वीर्यवर्द्धक, कसैला वात और कफकरता पित्त रुधिर विकार और दाह को नष्ट करता है।

चकोतरा-स्वादिष्ट शीतल भारी पित्त हिचकी औरभ्रमको दूर करताहै।

खुमानी-शीतल भारी कफ पित्त नाशक और विष्टम्भी है।

सेव-कसैला मीठा शीतल है।

कैथ-कच्चा कैथ बोली को बिगाड़ देता है, कफनाशक और वादी करता है।

पका कैथ-वादी को दूर करता, रसमें मीठा खट्टा और भारी हैं।

पक्का आम-रसमें कसैला मीठा, वातनाशक भारी कुछ पित्तकर्ता और वीर्य को वढ़ाने वाला है।

बड़हर-त्रिदोष, कब्ज़ियत करता वीर्य को नाश करता है।

करौंदा-खट्टा प्यास को मारने वाला, रुचिकर्ता, पित्तनाशक है।

आड़ू-हृदयको हितकारी मीठा कसैला खट्टा मुखका शोधने वाला पित्त कफ को दूर करता, चिरपाकी विष्टंभी शीतल है।

नारंगी-खट्टी मीठी हृदय को हितकारी, भोजन में रुचि बढ़ाने वाली वातनाशक और देर में पचने वाली भारी है।

जंभीरी-प्यास शूल कफ को कठिनता से निकालने वाली वमन और स्वांस को निवारण करने वाली होती है वादी, कब्जियत को दूर करती है भारी और पित्त करती है।

बड़ी जंभीरी-खट्टी, रक्त पित्त करने वाली है।

जामन-अत्यन्त वादी कफ पित्त को दूर करने वाली होती।

खिरनी-चिकनी मीठी कसैली और भारी होती है।

सीताफल—कसैला मीठा रूखा कफ वादी को जीतता है।

मोलसिरी-मीठी कसैली चिकनी दांतों को दृढ़ करने वाली और विशद होती है।

अन्जीर-दस्तावर स्निग्ध तृप्ति करने वाला और भारी होता है।

फालसा—कच्चा अत्यन्त खट्टा कुछ मीठा, कसैला, हलका पित्तकर्ता पका हुआ मीठा और वात पित्त को रोकने वालाहै।

ताड़ फल—मिष्ट, भारी और पित्त नाशक है।

नारियल—भारी, चिकना, पित्त नाशक, स्वाद, शीतल, बल और मांस का बढ़ाने हारा हृदय को हितकारी, प्यास दाह नाशक और वीर्यवर्द्धक है।

केले का फल—वादी, कसैला कुछ ठंडा, रक्त पित्त नाशक, पुष्टिकर्ता,

रुचिकारी कफकर्त्ता और भारी होता है।

दाख—दस्तावर, बोली को सुधारने वाली मधुर, चिकनी शीतल होती है। रक्त पित्त, ज्वर तृष्णा, श्वांस, दाह और क्षयी को नाश करने वाली है।

खजूर—चोट,क्षयी को दूर करता है, हृदय को हितकारी शीतल, तृप्ति करने वाला, भारी रस पाक में मधुर, रक्त और पित्तनाशक होता है।

महुआ—महुआ का फूल वृहण, हृदय को अहित और भारी है महुआ का फूल वात पित्तनाशक है।

लिसोड़ा—भारी, कफकर्त्ता, मधुर और शीतल है।

बायविडङ्ग—चरपरी, कुछ विष नाशक और कृमि नाशक है।

हरड़—गरम, दस्तावर, बुद्धिदात्री, दोष नाशक, सूजन और कोढ़ को दूर करने वाली, कसैली दीपन, खट्टी नेत्रों को हितकारी है।

बहेड़ा—हल्का, रूखा, गरम, स्वर को अहित नेत्रों को हितकारक स्वादुपाकी, कसैली और कफ, पित्त को जीत लेने वाला है।

सुपारी-कफ, पित्त नाशक रूखी मुख की क्लेदता और विरसता को दूर करने वाली कसैली कुछ २ मीठी और कुछ दस्तावर भी होती है।

जावित्री, जायफल,लौंग—ये चरपरी कड़वी कफनाशक, हल्की तृषानाशक मुख का मीलापन और दुर्गंध को दूर करती है।

कपूर—चरपरा सुगन्धियुक्त शीतल, हल्का होता है प्यास मुख की विरसता अर्थात् स्वाद (जायका दुरुस्त) करनेमें उत्तम है।

चिरौंजी की मींगी—मीठी पुष्टिकर्ता और पित्त वात नाशक है।

बिजौरा, अमलतास का गूदा—स्वाद पाकी अग्नि, बलवर्द्धक, चिकना पित को मारने वाला होता है।

विशेषसूचना—व्याधिता, कीड़ों से खाया हुआ जिसका पकने का समय बीत गया हो अनुचित काल में उत्पन्न हुआ और अपक्व फलों को छोड़ दे अर्थात् न खाय।

फल अन्न से भी अधिक जीवनदाता है।

प्राचीन एवं अर्वाचीन महान् पुरुषों एवं विदेशीय विज्ञानवेत्ता डाक्टर रसायन शास्त्री, तत्वज्ञानी विद्वानों ने बड़ी छानबीन के साथ यह सिद्ध करदिया है कि मनुष्योंकी तन्दुरुस्ती सात्विकमिजाज शरीर और मानसिक

शक्तियों का विकास करने वाला फलाहार ही है केवल फलाहर पर ही निर्वाह करने से अनेकों रोगों का जड़ मूल से नाश हो जाता है फलाहारी मनुष्यों के हृदयपलट पर दैवीशक्ति का प्रकाश पड़ता है आत्मिकोन्नति तथा देशोन्नति के कार्यों में उत्साह फलों के सेवन से ही होता है। पाश्चात्यदेशीय प्राणिगुण धर्म विद्या तथा प्राणी शरीर शास्त्र के विज्ञानवेत्ता डाक्टर किंग्स्फार्ड एम० प्रावटे बेरनक्यूविपर लिनेयस प्रोफेसरलारन्स चार्लसवेल जसेन्डी फ्लाउरेन्स आदि महानुभावों ने मुक्तकण्ठ से कहा है कि मनुष्य शरीर के पुर्जे फलाहारी जीवों के सदृश्य कार्य कर सकते हैं अर्थात् मनुष्य केवल फलों पर ही निर्वाह करे तो संधिरोग गठिया आदि नाछूर क्षय कुष्ट रक्तपात वात रोग दुमा विषमरोग मधुमेह हृदयरोग इत्यादि दूर हो सकते हैं।

डाक्टर हेग अपने अमूल्य ग्रन्थ में लिखते कि मैं सर्वदा सिरदर्द के रोग से दुखी रहता था जब मैंने केवल फलाहार का ही सेवन किया तो बीमारी बिलकुल दूर हो गई।

डक्टर एडमफर्ग्यूसन् का कथन है कि ६५ वर्ष कीअवस्था में जब मुझे लकवा होगया तब मैंने अपने परममित्र डाक्टर ब्लैक की शिक्षा से फलाहार परही निर्वाह किया जिससे मैं ३० साल आयु वाले मनुष्य के समान शक्तिवान् एवं निरोगी बनगया। सर वल्टरस्काट कहते हैं कि उसका आदरणीय पूजनीय कारण फलाहार ही है

यूनान और ग्रीस के पहलवान और घुड़सेवाजी खेलने वालों का अहार अंजीर दलदार फल और मक्का का भोजन था। रोमन लडैथे जौ की रोटी और तेल पर निर्वाह करते थे। १७-१८ शताब्दी तक अंग्रेजी किसानों की मुख्य खुराक वनास्पती फल और अनाज ही था। स्काटलैंड निवासियों का मुख्य अहार आटस (एक प्रकार का अनाज) और दूध था। आयरलैंड का खाना बैंगन आलू और मक्का था इसी खुराक को खाकर उन्हों ने मालवर और वेलींगटन की लड़ाई में विजय प्राप्त की उस का कारण फलाहार ही था।

काबुल के लोग फलोंका सेवन करने से ही कैसे हृष्ट पुष्ट होते हैं और कुश्ती घुड़सेवाजी में बड़े शक्तिशाली होते हैं बंबई निवासी मिस्टर एच० ई० ब्राईनिंग ने फलाहार के कारण शारीरिक शक्तिके प्रभाव शाली खेलों (स-

इकिल के दौड़ाने आदि) में विजय प्राप्त की और मिस्टर ब्राइनिंग पैदल चलने में सबसे अधिक बलवान गिने जाते हैं ।

अर्थशास्त्र रसायन शास्त्र विज्ञान शास्त्र के ल्फोसफर पिथेगोरस, फोरोस्टर, जेनोडेनियल, राम्पेडोक्स, साक्रेटिस, प्लेटो, मिल्टन, जनिवल्सली, वालटपर, ग्लोडरमीथ, पोप, पेल, इजेकन्यूटन, थेकरे, जीनपालिरिचटर, लिनेयस, बायरन, हार्टली, विलियमलेम्ब, सरइजेकपीटमेन, थोयू, हर्बर्टसब्रास गेरेवल्डी, एपोलेनिस, मेथ्यू, जेम्स पीटर, जार्जफ्रेडरिकवाटस, जनरलबूथ, मिसेसविंलेन्ट, सेनफ्रांसीस, डी० एसीसो, सेनेका रेवनडआर, जे केम्पवेल, लार्डचार्ल्स, ब्रेसफोर्ड, कोरनेर, जनरल सरएडवर्डबुलर, लियोनार्डो डा० विन्सी मि० सीडीनीएज, विपर्ड, सरविलियम अर्नशाकूपर। सी. आई., सरप्रभाशंकर डी० पटनी के. सी. आई. ई. कप्तानकरे रेवरेन्ड ए. एम. मिचेल, प्रोफेसर पेल्डापर, सरजानओवेम, प्रोफेसर हावर्डपूर, प्रो० इरविंगफिशर प्रफेसर एच० शेफहासन, आदि आदि तथा महान डाक्टरों में (१) डाक्टर जोशिया ओल्ट फिल्ड एम० ए० डी० सी० एल० एम० आर०, सी० एस०, एल० आर० सी०पी० (२) डाक्टर एलेकजेन्डर हेग एम०ए० एम०डी०एफ०आर० सी० पी० (३) डा० रावर्ट बेल० एम० डी० एफ० आर० एफ पी० एस० आदि महानुभाव एक स्वर से कह रहे हैं कि मानवीय शरीर की शारीरिक आत्मिक और सामाजिकोन्नति फलाहारी जीवन द्वारा सरलता से हो सक्ती है। अपने आयुर्वेद के आचार्य तथा रसायनादि तत्ववेत्ता तो अपने अमूल्य ग्रन्थों में उपदेश देते हैं कि ऐ मनुष्य यदि तुम अपने जीवनको सतोगुणी प्रकृति वाला एवं आरोग्य बनाना चाहते हो तो कन्दमूल वनस्पति फलों का ही आहार करो। शरीर को दोषों से मुक्त करने वाला आत्मा को परमात्मा में लवलीन करने वाल एवं सुख शान्ति प्रदाता फलाहार ही है कौन नहीं जानता कि इसी आहार के सेवन से हमारे प्राचीन ऋषि मुनि महात्मा, सन्त एवं सद्गृहस्थियों ने साइन्स के मुख्य २ तत्वों को जाना था जिसके कारण हमारा देश साइन्स की खान कहलाता है था। फलाहारों के द्वारा ही महाभारत के घोर संग्राम में महारथियों ने कितने भयंकर युद्धों को किया। फलाहार के कारण ही वीर मातायें पतिव्रता धैर्य शीला एवं वीरप्रसू कहलाती थीं कहाँ तक कहूं अपने एवं शास्त्रों इतिहासों को विचार पूर्वक देखिये तब आपको पता लग जायगा कि फलों का सेवन कर ही

भारत के पुरुषार्थों ने कैसे कैसे पुण्यकारी एवं विचित्र कार्य किये जिनका आख्यान पूर्ण रीति से इस पुस्तक में कैसे किया जासक्ता है।

❀ दूध ❀

जगन्नियन्ता प्रभु ने इस विचित्र संसार में प्राणीमात्र के जीवन के लिये नाना प्रकारके उत्तमोत्तम पदार्थों को बनाया है उन में सर्व श्रेष्ठ दूध है कहा है कि "अमृतंक्षीरभोजनम्" अर्थात् दूध से बनाया हुआ भोजन अमृत के समान है वास्तव में दान्त न निकलने की अवधि तक शिशु कुमारों का लालन पालन इसी से होता है दुर्बलों को बलवान, युवओं को पहलवान, बूढ़ों को जवान और कामियों की अभिलाषा पूर्ति इसी रसायन से होता है। यह शीतल, और पाक में मधुर, जीवन को हितकारी और वात दूर करने वाला होता है।

भैंस-का दूध अत्यन्त भारी, मधुर, और जठराग्नि को मन्द करने वाला होता है।

बकरी-का ठण्डा, मीठा, हल्का, अतिसार, क्षय, ज्वरको दूर करने वाला होता है।

हथनी, घोड़ी ऊँटनी-और भेड़ के दूधका सेवन मनुष्य को नहीं करना चाहिये॥

धारोष्ण-थनों से निकाला हुआ दूध हितकारी, पथ्य, आयु, धातु, कांति, और भूंक बढ़ाने वाला, नींद लाने वाला तथा बल बढ़ाने वाला होता है गाय का ही धारोष्ण दूध पीना चाहिये अन्य का नहीं।

दूध की मलाई-भारी, चिकनी, शीतल, वीर्य पैदा करने वाली, पुष्टिकारक, वातपित्त, और खून विकार को दूर करती है।

दूध का फेन-त्रिदोषनाशक, रुचिकारक, बलवर्धक, अग्निदीपन, तृप्तिकारक, हल्का, जीर्णज्वरी, मन्दाग्नि और दस्तके रोगी को लाभदायक है। कच्चा दूध भारी, देर में पचने वाला और काबिज़ होता है। बासी दूध त्रिदोषकारक है। स्त्री का दूध शीतल, हल्का, अग्निवर्द्धक और वातपित्त नाशक होता है। आंख और कान के दर्द में कच्चा ही प्रयोग करना चाहिये। स्त्री के दूधको कभी गरम न करे। खीस-जब गाय भैंस व्याती है तो आठ दस दिन तक उनका दूध फट जाता है उसको पेवसी या खीस कहते हैं यह विष्टम्भी, भारी और अत्यन्त बादी तथा काबिज़ होता है इसको बहुत

का मीठा मिलाकर खाना चाहिये। खोवा–जिसको मावा भी कहते हैं यह पुष्टिकारक भारी, कफकारक और वात पित्त नाशक है इसको बूरा मिला कर खाना चाहिये।

समय समय का दूध।

प्रातःकाल का दूध, भारी, विष्टम्भी, शीतल और सायंकाल का हल्का और वात कफ को नष्ट करने वाला होता है। दूध को प्रातः ९ बजे तक और सायंकालको भोजन के १ घण्टा बाद मीठा डाल कर गुनगुना स्वांता-स्वांत पीने से बलबुद्धि वीर्य अग्नि की वृद्धि होती है। शौच साफ आता है। दूध बिना गरम किये और बिना मीठा मिलाये कभी न पीना चाहिये और बालकों को आधा दूध आधा पानी मिलाकर औटा कर (पावभरमें १ तोला के हिसाब से) चूने का निंतरा हुआ पानी मिला कर पिलाना चाहिए। भारी मलाईदार दूध बच्चे को कभी न पिलावे। और रात को कमसे कम पाव भर दूध मीठा डाल कर भोजन करने के बाद अवश्य पीना चाहिए इस से बल की वृद्धि होती है और सुबह पाखाना साफ होता है।

वर्जित दूध।

दुर्गन्धवाला, खट्टा, जिसका रंग बदल गया हो, नमकीन और जिस में फट कर गांठें पड़ गई हों तथा बाजार के नीले पीले दूध को नहीं पीना चाहिए।

❀ दही के गुण ❀

दही–रस में कसैला स्निग्ध और गरम होता है पीनस विषमज्वर अतीसार अरुचि मूत्र और कृशता इन रोगों को दूर करता पुष्टिकारक और प्राणों को चैतन्य करता है।

दही के भेद गुण–दही चार प्रकार का होता है। यथा मीठा दही बहुत अभिष्यन्दी कफ और मेदा को बढ़ाने वाला। खट्टा दही कफ और पित्त का करनेवाला है अत्यन्त खट्टा रुधिर के दूषित विकारों को दूर करने वाला। और खट्टा मीठा मल मूत्र को निकालने वाला त्रिदोषकारी बूरा मिला हुआ दही खाने से प्यास दाह दूर होती है और गुड़ मिला हुआ दही वात-नाशक और पुष्टिकारक है।

दही का तोड़–कसैला, पित्तकारक रुचिकारक, खट्टा, हल्का और ताकतवर होता है।

दही की मलाई-वीर्यवर्द्धक, पित्त कफ को बढ़ाने वाली, वात और अग्नि को नाशने वाली, पाखाना साफ लाने वाली होती है और विना मलाई का दही दस्तों को बन्द करने वाला, वातकारक, कसैला, हलका रुचिकारक और अग्निवर्द्धक होता है।

कातिक के महीने और रक्त पित्त, ज्वर, कोढ़, पीलिया, कामला, सूजन, मृगी और पीनस के रोगियों को दही नहीं खाना चाहिये तथा रात्रि में भी विना बूरा मिलाये दही न खावे।

गाय का दही—चिकना, अग्निसंदीपन, बल का बढ़ाने वाला होता है, वादी को दूर करता, शुद्ध, निर्मल और रुचि को बढ़ाने वाला है।

बकरी का दही—कफ पित्त का नाशकर्ता, हल्का, वादी और क्षयी को दूर करने वाला है, बवासीर, स्वांस, खांसी इन में हितकारी है और अग्नि को बढ़ाता है।

दही की मलाई—भारी, बलकारक, वात तथा अग्नि नाशक और कफ वीर्य को बढ़ाने वाली है।

दही सेवन ऋतु—शरद, वसन्त और ग्रीष्म ऋतुओं में दही न खाना चाहिये, हेमन्त, शिशिर और वर्षा में दही खाना अच्छा है।

मट्ठा के गुण—मधुर, खट्टा, कसैला, हल्का, उष्ण, वीर्य अग्नि दीपन होता है, विष, सूजन, अतीसार, संग्रहणी, पाण्डुरोग, बवासीर, तापतिल्ली, गुल्म, अरुचि, विषमज्वर, तृषा, वमन, कफ वात रोगों को दूर करता, पाक में मीठा, हृदय को हितकारी मूत्रकृच्छ्रा और स्नेह रोगोंको शांत करने वाला है।

मट्ठा देने का निषेध—जिसके घाव होगया हो उसको न पिलावे गर्मी की ऋतु में दुर्बल मनुष्य को, मूर्छा, भ्रम, दाह और रक्त पित्त वाले को थोड़ा देवे।

मीठा मट्ठा—कफ करता और पित नाशक है।

खट्टा मट्ठा—वादी का नाशक और पित्तकर्त्ता है। वात व्याधि में खट्टा मट्ठा सेंधा नमक डाल कर पीना चाहिये, पित्त व्याधि में मीठा मट्ठा खांड डाल कर और कफ की अधिकता में सोंठ, मिरच, पीपल, सेंधानमक डाल कर देना योग्य है।

मट्ठे का सदुपयोग ।

पेट में दर्द, कब्ज़ा वा त्रिदोष का शूल हो तो कालानिमक, सोंठ, पीपल, राई, कालीमिर्च, कालाज़ीरा, और हींग भून कर मट्ठा में मिला कर पीवे और यदि बादी से पेट में दर्द हो तो केवल सोंठ पीपल और सेंधा निमक डाले। पित्त के विकार में बूरा और कालीमिर्च मिला कर पीवे। सावन भादों में मट्ठा का अधिकतर प्रयोग करना चाहिये। मूंगफली का कब्ज़ भी मट्ठा पीने से दूर हो जाता है। नित्यप्रति दोपहर को भोजन के साथ मट्ठा पीने से पेट की कोई बीमारी नहीं होती। बवासीर के रोगियों को नित्य मट्ठा सेवन करना चाहिये। संग्रहणी के रोग वालों को गाय की छाछ सेवन करना अत्युत्तम है। स्वस्थ पुरुष को दोपहर के भोजन के साथ जीरा, निमक मिला कर थोड़ा मट्ठा पीना चाहिये।

❁ घी के गुण ❁

सामान्य से घी शीतवीर्य्य, मृदुस्वाद, उन्माद, मृगी, शूल, वात पित्त नाशक, अग्नि संदीपन, बुद्धि, कान्ति और स्मरण शक्ति का बढ़ाने वाला रसायन, स्वर, सुकुमारता, तेज और बल का बढ़ाने वाला है। आयु की वृद्धि करने वाला और पुष्टिकारक है। नेत्रों को हितकारी है। चिकना और कफ पैदा करने वाला है, पुराने बुख़ार, खाँसी, हैज़ा और नशे के रोगों में घी कभी न खाना चाहिये अन्य अवस्थाओं में सोच विचार कर वैद्य की सम्मति से देना चाहिये। कच्चे दूध से निकाला हुआ घी मद मूर्छा, भ्रम, दाह, शिर, रक्त विकार को दूर कर मस्तक के बलको बढ़ाता है और जो औटे हुये दूध को जमा कर घी निकालते हैं जिसे नौनी कहते हैं वह हलकी शीतल, अग्निदीपक और मल को बांधने वाली है नौनी यदि १ दिन के जमाये हुये दूध से निकाल कर (अर्थात् ताज़ी) सेवन की जावे तो उससे थकाई, कमजोरी, पीलिया, कमल आदि नेत्ररोगों को बहुत फ़ायदा पहुँचता है। शहरों में कच्चे दूध का मक्खन बहुत बिकता है उसको अथवा घर पर निकलवा कर मिश्री के साथ सेवन करना चाहिये। इस से शिर के समस्त रोग दूर हो जाते हैं। घी को पानी डाल कर धो लेवे और उसको दाद, फुड़िया, खुजली, घाव पर थोड़ी रेवतचीनी मिला कर लगावे तो रक्त विकार सम्बन्धी रोग अच्छे होते हैं। ६ महीने से ऊपर का घी नहीं खाना चाहिये। यद्यपि वैद्यक ग्रन्थों में

पुराने घृत के सेवन के भी गुण लिखे हैं परन्तु उत्तम वैद्यों की सम्मति के विना गृहस्थियों को उसका सेवन नहीं करना चाहिये। किन्तु सदैव ताज़ा घी खाना योग्य है।

१— ज्वर या शरीर में दाह हो तो सौ वार से हजार बार तक का धोया हुआ घी कपूर डालकर मलना। २ गर्मी के सिर दर्द पर मक्खन लगाना। ३— हाथ पैर में आग निकलने पर भी नौनी लगाना। ४ एक सेर घी को क्वार की शरद पूर्णिमा के दिन रात को चन्द्रमा के प्रकाश में फूल या कलई के कटोरे में भर कर रखदें प्रातः काल उसमें आधपाव कालीमिर्च और १ सेर बूरा सफ़ेद मिला कर आधी २ छटांक के लड्डू बनाकर रखलो और १ लड्डू प्रातः काल खावो इससे कमजोर आंख की दृष्टि तेज हो जाती है और आंखों के आगे जो अंधेरा सा छा जाता है वह दूर हो जाता है। ५— मृगी रोग वालों को घीका हुलास फायदामन्दहै। ६- सांपने काट खाया हो तो कालीमिर्च और घी पिलाना चाहिये। ७— गाय को या बकरी के घी को पिलाने से धतूरेका विष उतर जाता है। (८) पित्ती उछलने वा शरीर में खुजली हो तो धुला हुआ घी मले फिर गोवर से बदन को रगड़ कर १ घंटे बाद बेसन का उबटना कर न्हाडाले। (९) नकसीर में गाय का ताजा घी नाक में ठंडा डालना चाहिये। (१०) हिचकी रोग में पुराने चावलों के भात से मिलाकर घी खूब खाने से हिचकी बन्द पो जाती है। (११) गर्भिणी स्त्री को पुराने घी में ४ रत्ती हींग घोट कर नाक में सुंघाने से तिजारी वा चौथिया ज्वर दूर होजाता है। (१२) सूर्य निकलने से पहिले ताजे घी का नाश लेने से नजला दूर होता है इसके उपरान्त विशेष विशेष रोगों में वैद्यकी सम्मति से * ब्राह्मीघृत, शितावरीघृत व चांगराघृतों का भी सेवन करना उचित है।

गऊ का घी—विपाक में मधुर, शीतल, वात, पित्त, विष रोगों का नाशक, नेत्रों का हितकारी, अग्नि, बल बढ़ाने वाला है। सम्पूर्ण प्रकार के घृतों में गऊ का घृत उत्तम है।

बकरी का घी-दीपन, नेत्रों को हितकारी, खांसी, श्वांस, क्षयी रोगों में हितकारी और पाक में हल्का होता है।

---

* यह घृत हमारे यहां बने तय्यार रहते हैं आवश्यकता पड़ने पर मंगा देखिये।

भैंस का घी—वात पित्त और रक्त पित्त नाश करने वाला, कफकर्ता और शीतल होता है।

पुराना घी—दस्तावर, त्रिदोषनाशक और उन्माद, उदर, मृगी योनिरोग और कान आंख शिर की पीड़ाओं को नाश करता है।

मक्खन—यह नवीन निकला हुआ दीपन, हृदयप्रिय, ग्रहणी और अर्श रोगों को दूर करने वाला है। प्रातः काल मिश्री के साथ खाने से विशेष कर शिर और नेत्रों को लाभ देता है।

❀ मसाला ❀

सोंठ—अग्नि दीपक, वात कफनाशक, मधुर पाकी, हृदयप्रिय, और रुचिवर्द्धक होती है।

पीपल हरी—कफ कर्ता और भारी, और रूखी वात नाशक, कटु उष्ण होती है।

मिरच—यह उष्ण नहीं होती, अग्निसंदीपन और कफ वात को जीतने वाली और बल को कम करने वाली है।

हींग—कफ वात को दूर करने वाली, अग्नि संदीपन और शूल नाशक पाचक और रोचक भी होती है।

अदरक—कफ वात नाशक, शूल को दूर करने वाला, स्वाद में कटु वीर्य में उष्ण, रोचक, हृदय को हितकारी है।

सफेद जीरा और काला जीरा—काला जीरा पाक में कटु, रुचिवर्द्धक, पित्त अग्नि को बढ़ाने वाले, स्वाद में कटु कफ और वात को मारने वाला और सुगन्धित है, सफ़ेद शीतल रुचिवर्द्धक और अग्नि सन्दीपन है।

कलौंजी—इसके गुण जीरे के गुण के समान हैं, यह भोजनों और शाकादि को बहुत सुगन्धित बनाती है।

हरा धनिया—स्वादिष्ट होता है, सुगन्धयुक्त और हृदय को भाता है।

सूखा धनिया—पाक में मधुर, प्यास और जलन का नाश करने वाला है।

सैंधा नमक—रोचक, दीपक, हृदयप्रिय, नेत्र हितकारी, त्रिदोषनाशक मधुर, सब निमकों में उत्तम है।

समुद्रनमक—पाक में मधुर, कुछ उष्ण, जलन को दूर करने वाला शूलनाशक और अत्यन्त पित्तकर्ता नहीं होता।

काला नमक-पाक में हल्का वीर्य में उष्ण और कटु होता है, यह गुल्मशूल का नाशकर्ता हृदय को हितकारी सुगन्धित और रोचक होता।

सांभर नमक-तीखा, अत्यन्त गर्म, कटुपाकी, बात नाशक, हल्का, बहुत बारीक रोम कूपों में प्रवेश करने वाला, मल को फाड़ने और मूत्र लाने वाला है।

खारा नमक-हल्का, तीक्षण, उष्ण, कफ पित्त को कोप करने वाला रूक्ष चरपरा, कटु और क्षारयुक्त होता है।

अन्य पदार्थों के गुण।

गेहुँ आदि के चून में जो दूध डाल कर पदार्थ बनाये जाते हैं वे उत्साहकर्ता, हृदयप्रिय, सुगन्धित, अदाही पुष्टिकर्त्ता दीपन और पित्त नाशक होते हैं। उन में से:-

घेवर-बलकर्त्ता, हृदय को हितकारी कफकर्त्ता, वात पित्तकर्त्ता पुष्टिकारक, भारी और रुधिर मांस को बढ़ाता है।

गुड़ के पदार्थ—गुड़ से बनी हुई पूरी, लड्डू वात पित्त नाशक, वीर्य कफवर्द्धक भी हैं। गूंझा, पुआ, लड्डू, खुरमा, अथवा बालूशाई, ये भारी हैं, लड्डू देर में पचता है।

तिलकुट-तिल और गुड़कूट कर बनाया जाता है यह वातकर्ता है।

पूरी-कफ, पित्तकर्ता और उष्ण वीर्य है। पिट्ठी से बने भोजन कफ पित्तकर्त्ता हैं।

मैदा के बने पदार्थ—वात पित्त नाशक और पुष्टिकर्ता हैं। इनमें से फेनी हृदय को हितकारी पथ्यतम और हल्की होती है।

उरद की दाल से बने हुए पदार्थ-विष्टम्भी, पित्त शमनकर्ता कफनाशक मल को फाड़ने वाले बलकर्ता और भारी होते हैं।

खोये से बने पदार्थ-भारी और कुछ पित्त करनेवाले हैं।

घृत पक्व घी में पकाये हुए पदार्थ हृदय को हितकारी, सुगन्धयुक्त पुष्टिकर्ता, हल्के वात पित्तहरता, बलकारक, वर्ण और दृष्टि को प्रसन्न करते हैं।

तैल पक्व- तैल में पकाये पदार्थ, भारी कटु पाकी उष्ण-दाह और दृष्टि के कम करने वाले, पित्त और त्वचा को बिगाड़ते हैं।

खीर-कब्ज़ा करनेवाली, बलकर्त्ता और वातनाशिनी होती है।

खिचड़ी-कफ पित्त करने वाली बलकर्त्ता और वातनाशिनी होती है।

शिखरण-पुष्टिकर्ता वीर्यवर्द्धक चिकनी, बलकारक और रोचक होती है। तीन प्रकार का जो पानक अर्थात् पना होता है वह कफ और मल दोषों को निकालता है गुड़ (खांड शक्कर गुड़ादि से बना हुआ) खट्टा भारी और मूत्र को लाता है और जो खांड दाख और शर्करा इमली सोंठ मिरच पीपल आदि डाल कर बनाते हैं वह बहुत उत्तम है।

सब प्रकारके शाक भोजन मिठाई

वा

पकवान बनाने की विधियां।

शाक।

आलू बनाने की रीति प्रथम आलुओं को उबाल कर छीलले फिर जितने आलू हों उनसे चौथाई घी कढ़ाई में डाल आलुओं को तले, फिर घर के मनुष्य के स्वभाव के अनुकूल गरममसाल और निमक मिर्च डाल यदि खुश्क करना हो तो थोड़ा सा पानी डाल उतार ले। यदि पतले करने हों तो बहुत पानी डाले। इसके उपरान्त यह भी याद रहे कि आलू नरम बक्कल के हों तो उबालने की जरूरत नहीं, केवल छील कर छौंक दे।

भिन्डी—यह दो प्रकार की बनती हैं एक मसालेदार, दूसरी सादी। मसालेदार भिन्डी बनानी हों तो उनको बीच से चीर ले और उन के पेट में भिन्डी के अनुकूल ही खटाई, सौंफ, धनियां, अदरक, लौंग, इलायची, मिर्च भर कढ़ाई में थोड़ा सा या जितनी रुचि हो घी डाल उस में हल्दी एवं अजवायन भून भिन्डी डाल दे और धीमी २ आंच से होने दे। सादी भिन्डियों को सिर्फ बघारले और नमक मिरच डालकर बनाले।

जमीकन्द—प्रथम जमीकन्द पर कपड़ा लपेट कर चिकनी मिट्टी भिगो कर उस पर लपेट अच्छे प्रकार भूने अथवा इमली के पत्ते वा उस की खटाई डाल कर उबाल ले, ऐसा करने से उसकी चरचराहट जाती रहती है, फिर उसको चाकू से तराश कर सोंठ, धनियां, मिरच इस मसाले को पीस घी में

भून जमीकन्द को डाल खूब भूने, फिर उसके पीछे थोड़ा सा दही छान कर उस पर डाले और पानी जले पर उस को उतार ले।

उत्तम घुइयां या अरवी-बड़ी २ लेकर उनको उबाल कर छील ले फिर मट्ठा जिसमें पिसा हुआ नमक पड़ा हो दो तीन दिन तक भिगोवे फिर निकाल कर सुखालेवे, जब वह करकरी हो जावे तब कड़ाई में घी छोड़ कर पूरी की भांति उतार ले और उसमें निमक काली मिरच और खटाई बारीक पीस कर मिला दे।

साधारण घुइयां—ये दो प्रकार की बनती हैं, एक सूखी दूसरी पतली। बनाने वाले चाहे छील कर बनावें चाहे उबाल कर। जब सूखी बनाना हो तो प्रथम कड़ाई में घी डाल कर उसमें अजवायन, मिरच, हल्दी आदि मसाले को अच्छे प्रकार भूने, जब भून जावे तब उसमें घुइयां डाले यदि उबाली हों तो पानी डालने की कुछ आवश्यकता नहीं वरन् थोड़ा सा पानी गलने के योग्य डाल दे, जब गल जावें तब उतार ले जो पतली रसे की बनाना हो तो जितना योग्य जाने पानी और नमक आदि मसाले भी अनुमान से छोड़ दे।

रतालू—इसको छील कर कतर ले और आलू की भांति बनाले।

करेले-प्रथम सेर भर करेलों को छील कर बीच से चीर ले और पिसा हुआ नमक भरके थोड़ी देर रख दे और जब नमक अच्छी तरह से भिद जावे तब अच्छी तरह से मसाला डाल दोनों हाथ से पानी निचोड़ कर अलग रख धनियां नमक छटांक भर, मिरच आधी छटांक, जीरा एक तोला, सौंफ आधी छटांक अमचूर आधी छटांक कूट कर भर दे और फिर घी में हींग और जीरे का बघार देकर भूनले और जब भुन जावें तो थोड़ा सा पानी डाल कर ढक दे और जब पानी जल जाय तो कछली से चला कर निकाल ले। अधिक हों तो अनुमान से मसालों को पता बढ़ा ले।

बैंगन-इनको प्रथम छील ले और फिर चाकू से तराश ले और बटलोई में घी डाल कर पिसा मसाला छोड़ कर भून ले, फिर बैंगन को कछली से चलावे और उसके अनुसार नमक डाले और एक कटोरे में पानी भर ऊपर रखदे और धीमी १ आंच दे और दो एक बार कछली से चला दे और जब गल जावें तो उतार ले।

बैंगन का भरता-बैंगन दो प्रकार के होते हैं- एक माऊ दूसरे बतिया,

परन्तु मारू का भरता अच्छा होता है। इसको प्रथम भाड़ अथवा चूल्हे में भुनवाले, फिर छिलके को छील हाथ में मल कर निमक मिलाकर हींग, गरम मसाला और अमचूर डाल घी में छौंक दे।

टेंडस व टिण्डे-इनको नरम २ लेकर छीलले और फिर बना कर नमक मिरच डाल छौंक दे।

गोभी-इसके फूल का साग अच्छा होता है परन्तु नरम डांडी भी इसके संग में बना लेते हैं, जो कड़ी हो तो उसका छिलका छील कर गूदा निकाल उसको धो लेवे और फिर हींग मसाले का बघार देकर उसमें धुली हुई गोभी और महीन पिसा हुआ मसाला और उसी के अनुसार नमक डाल खूब चलादे और फिर थोड़ा पानी और दही डाल कर ढक दे और जब गल जावे तब उतार ले।

हरे शाक बनाने की रीति।

प्रथम शाक अच्छे प्रकार बीनकर स्वच्छ करले, जिससे कोई सड़ा गला न रहे, फिर बनाकर बटलोई में उबाल ले, जब उबल जावे तब पृथक् रख ले, फिर कड़ाई में घी डाल कर मेथी आदि मसाला डाल कर शाक डाल दे और फिर अनुमान से नमक पीस कर डालदे और जब पानी न रहे तब उतार लें।

रोटी।

प्रथम गहूँ के आटे को छान अच्छी परात में माड़कर थोड़ासा पानी देकर लोचदे, उस आटे को भिगोकर रखदे, फिर थोड़ी देर के पीछे आटे कोमाड़ कर ठीक कर लेवे अर्थात् आटा बहुत अच्छे प्रकार लोचदार हो जावे, इतने में दाल को जो पहिले से चूल्हे पर होने को रखी थी उतार कर घये में रखले चूल्हे पर तवा रख दे, फिर छोटी लोई तोड़ चकले पर बेलन से बेले तवे पर सेंक घये अर्थात चूल्हे में अच्छे प्रकार सेंक लें पर रोटी जलने न पावे। लोई हाथ से बढ़ा कर सेकने से रोटी पाचक होती है चने गहूँ की रोटी बनानी हो तो गहूँ चने का आटा मिला कर माड़ लेते हैं, बाजरा, मक्का, ज्वार की रोटी करने में आटे को लोचदार उसी समय बनाते हैं जिसको ईछना कहते हैं। जो मीठी रोटी करना हो तो आटे में मीठा डाल माड़ लेते हैं फिर रोटी करने वा सेकने की वही रीत है जो ऊपर लिखी है।

पनपथी रोटी ।

जो बिना परोथन के केवल पानी के हाथ से बढ़ाते हैं और रोटी की भांति सेंक लेते हैं ।

उरद की दाल बनाने की रीति ।

उरद की दाल जो पहिले ही से स्वच्छ कर रक्खी हुई है प्रभातःकाल भिगोदे, जब भीग जाय तो हाथों से मल कर चलनी में रख कर पानी डाले तब छिलके ऊपर आ जावेंगे उनको उतार दे इसी भांति उसको पानी डालकर धोले तत्पश्चात् दालको फिर साफ करले अर्थात् उसमें के टोरे आदि निकाल कर बटले में पानी डाल चूल्हे पर रख गर्म कर दूसरे बर्त्तन में करले, फिर बटलोई में घी डाल ऊपर से वह गर्म पानी जो पहिले से कर रक्खा था इतना डालें कि दालसे दो अंगुल ऊपर रहे फिर अनुमान से नमक डाल, ढक, धीमी २ आंचदे, जब दालहोजाय उसको उतार अंगारों पर रखदे, फिर दाल में सोंठ धनियां पैसे २ भर, दालचीनी, कालीमिरच छदाम २ भर, इलायची दो इनको महीन पीस कर आधसेर में इस मसाले मेंसे आधा डालदे, फिर जीरा तथा राई का छौंकदे, मानो दाल बन गई ।

ऐसे ही मूंग, अरहर आदि की दालें बनाले अलबत्ता मसाला कम डाले क्योंकि दोनों दालें गर्म हैं, मूंगकी दालमें लौंगका छौंक देते हैं । और अरहर की एक सेर दाल में एक छटांक अमचूर वा दही डाल दें क्योंकि खटाई अधिक रहने से स्वादिष्ट होती है बहुधा स्त्रियां उरद मूंग की दालों के साथ पालक, सोया, मेथी आदि का शाक डाल देती हैं, उनको उचित है कि प्रथम शाक डाला कर पकालें फिर मसाले डालें तत्पश्चात् बघार दें तो अति श्रेष्ट दाला शाक बन जावेगी ।

कोई २ मूंग उरद वा चना आदि की दालों में से दोनों को मिला कर रांधते हैं, उनकी भी यही रीति है, यदि साबुत मूंग बनानी हो तो प्रथम बड़ी बड़ी रोला कर भाड़में बालू से अकुरवाले फिर गलाने पर चावलों का थोड़ा सा मांड डालदे तो बहुत सोंधी हो जायगी ।

गेहूं का दलिया ।

प्रथम गेहूँ को धो कर सुखाले फिर भाड़ में भुना उसे दलडाले, फिर घी डालाकर भून ले, इसके पश्चात् यदि दूध में बनाना हो तो दूध वरना बटलोई में पानी डाल चूल्हे पर चढ़ादे, जब पानी खूब गरम हो जावे तब

दलिये को डाल ढक दे, अगर निमकीन बनाना हो तो निमक या मीठे खाने हों तो मीठा डाल उतार ले।

चावल।

प्रथम स्वच्छ चावलों को फिटकरी के पानी से धोकर फिर तीन बार गर्म पानी से अच्छे प्रकार धो चूल्हे पर बटलोई आदि में चढ़ा उसमें छः वा सात अंगुल पानी डाल कर थोड़ी सी सोंठ अदरख कूट कर डालदे जिनसे उसकी बादी मारी जाती है, जब चावल की एक कनी रह जावे तो कपड़े या चलनी में पसा कर मांड को पृथक् कर अङ्गारों पर बटलोई को रखदे और थोड़ा सा शुद्ध घी डाल कर बासन को हिलादे, यदि सुगन्धित करना हो तो गुलाब या केवड़े के इतर का छींटा देदे।

मीठे चावल-एक पाव उत्तम धुले चावल उससे आधा घी और उतनाही दूध और एक छटांक चीनी (बूरा) सबको पाव भर पानी डाल चूल्हेपर चढ़ा धीमी २ आंचसे पकावे, पौन गल जाने पर कोयलों पर रखदे।

केसरिया चावल—चावलों को धो कर अदहनमेंचढ़ाकर एक सेर में ९ माशे केसर पीस कर डाले और गरममसाले का छौंक दे।

मीठे केसरिया-एक सेर उत्तम चावलों को तीन बार धो कर १॥ सेर पानी में १॥ तोला हरसिंहार की दण्डी और १ तोला केसर पीसले और सेर भर मिश्री की चाशनी करे, पाव भर घी बटलोई में डाल १५ लौंग, तीन माशे बड़ी इलायची का बघार दे, केशर का पानी उसमें डाडालदे और फिर ऊपर से चावल भी डालदे जब आधे गलजावें तब चाशनी को डाल धीमी धीमी आंच देकर पकावे, फिर जब पौन गल जाय तब छोटी इलायची तीन माशे जायफल, जावित्री एक एक माशा और पाव सेर मेवा डाल ढक कर कोयलों पर रखदे, फिर इसके आनन्द को देखे।

खिचड़ी-चूल्हे पर बटलोई को चढ़ा पानी गर्म होने पर चावल धोकर डाले, साथ ही अगर मूंग की खिचड़ी बनाना हो तो मूंगकी यदि उड़द की बनाना हो तो उड़द की दाल डालदे और अदहन का पानी एक अंगुल ऊपर रहे, फिर उसमें गरम मसाला और अनुमान से नोन डाल बटलोई को धीमी धीमी आंचदे, थोड़ी देरके पश्चात् एक चावल को निकाल टटोले जब वह गला जान पड़े तब उस में थोड़ा सा घी डाल ढकदे और उतार कर अङ्गारों पर रखदे।

नहरी व बड़ी चावल-बड़ियों को घी में भून कर चावलों के साथ उन्हीं की रीति से पकाले पर मसाले इनमें और डालदे।

खीर-कमोद या हँसराज अथवा बांसमती के चावलों को ले और शोधकर धोले, फिर दूध को कढ़ाई में अधौटा कर उतार ले, इसके पश्चात् उन धोये हुये चावलों को जो सूख गये हों उनको घी के हाथ से मले फिर बटलोई में उस अधौटे दूध को चढ़ा कर दूध में आधी छटांक सेर के हिसाब से चावल डाले और पौसेरी सेर का बूरा और कुछ मेवा डाल ढक कर धीमी आंच दे, जब पक जावे तो उतार ले।

शिखरन-ताजा, मीठा, चक्कादही को कपड़े में बांध पानी निचोड़ डाले जब पानी निचुड़ जाय तब कूंडी या कांच के बर्तन में रख उस में इलायची, कालीमिरच और स्वच्छ मिश्री वा उसी के अनुसार घी और कच्चा दूध मिला ले।

खुर्चन-दूध को रबड़ी की भांति लच्छे करे (जितने दूध का बनाना हो) जब सब दूध के लच्छे हो जावें तब उनको सावधानी के साथ (अर्थात् लच्छे टूटें नहीं) कढ़ाई में डाल घी में भूने, जब बहुत थोड़े नम रहें तब उनमें कन्द और बड़ी इलायची पीस कर मिला उतार ले और सुगन्धित के लिये गुलाब या केवड़े के इतर को छिड़क दे।

रबड़ी-मिश्री पाव भर छोटी इलायची १ तो०, इन को पीसकर रख ले फिर ५ सेर दूध कढ़ाई में डाल गरम करे जब अच्छी तरह से गरम हो जावे तब धीमी धीमी पंखे की हवा करे और दूसरे हाथ से पड़ती हुई मलाई को उतार २ कढ़ाई के किनारों में जमाता जावे और कभी कभी दूध को भी चला दिया करे, जब सेर एक रह जावे तब कढ़ाई उतार ले और थोड़ा सा गुलाब का इतर तथा किनारों में लगी हुई मलाई और पहिले की पिसी हुई चीजों को डाल मिला लो, उम्दा रबड़ी बनेगी।

❀ दूध की नमश ❀

चार सेर दूध को इतना औटावे कि आधा रहजावे, औटाने में ऐसा करे कि मलाई न पड़ने पावे, जब इस प्रकार दूध औटा चुके तो आग से उतार कर जिस पात्र में वह दूध हो उसे वस्त्र से ढांप कर रात को ठण्डे में रक्खे सवेरे आध सेर मिश्री, तीन तोले समुद्रझाग लेकर छिकड़ा उतार

वारीक पीस कर और आध पाव केवड़ा या गुलाव उस दूध में मिलावे, पुनः इन सव को रई से मथ कर जो झाग निकले उसे एक पात्र में धरता जावे, इसी झाग का नाम नमश है, वहुत स्वादिष्ट होती है।

पनीर-दही को मथ कर पतले वस्त्र में वांध कर लटका दिया जावे, सव जल निकल जाने से पनीर वन जाता है जिस में नमक कालीमिर्च डाल कर खाना योग्य है।

❀ कुलफ़ी की बरफ़ ❀

एक मोमवत्ती के सांचे के समान नली वना कर एक तरफ़ वन्द दूसरे मुंहका ढक्कन रक्खे, फिर गरम दूधसे उस नल को भर के उस में नीवू का रस, चीनी डाल कर मुंह वन्द करदे, उन कुलफियों को एक हांडी भर उन के ऊपर के भाग में थोड़ा सा नोन और वरफ़ डाल कर रक्खे, इस रीति से वरफ़ तैयार हो सकती है।

❀ वड़ी, मुङ्गौड़ी वा चुनौड़ी ❀

वड़ी उरद की दाल और मुङ्गौड़ी मूंग की दाल की या चुनौड़ी चने की दाल की होती हैं। इन सव के दो भेद हैं-एक टटकी, दूसरी सूखी। जव इनको वनाना हो तो दाल उरद वा मूंग व चने की भिगोदे, और भीग जाने पर साफ धो महीन पिट्ठी वनाले, यदि उरद की पिट्ठी हो तो सोंठ, तेजपात, मिर्च, लौंग, इलायची आदि पीस कर डाले और फिर हाथ में पानी का छींटा दे दे कर खूव फेंटे और चटाई या खाट पर मुंगौड़ी वा वड़ी तोड़ दे और जव सूख जावें तव उठा कर वरतनमें रखले वड़ियों की पिट्ठी को खट्टाकर वनाते हैं और चने की चुनौड़ी भी इसी भांति वना ले। जव किसी वड़ी मुंगौड़ी वा चुनौड़ी को रांधना हो तो वटलोई में घी डाल भून ले पश्चात् पानी डाल नमक, मिरच हल्दी को भी डाल रांध ले।

कढ़ी-यह वेसन की वनती है। पहिले छोटी वेसनकी पकौड़ी तोड़ घी में वना ले और कूंडी भर दही या मट्ठे में वेसन को घोल कढ़ाईमें चढ़ा दे और धीमी आग से होने दे, इसके उपरांत कलछी से चलाता भी जाय जितनी औटाई जावेगी उतनी ही अच्छी होगी। जव अधौटा होजावे तव वेसन की पकौड़ी डाल देवे।

झोर-यह मूंग की दाल की पिट्ठी, आलू वा आम की गुठलियों का वनता है। यह वहुत पतला रहता है और कढ़ी की भांति पकाया जाता

है, यदि मुंगौड़ी का बनाना हो तो मंगौड़ी पीस कर मिलादे, यदि आलू का बनाना हो तो आलू मिला कर बनालो । परन्तु आम का इस प्रकार से बनाना कि पके आम को उसका रस निकाल छिलके और गुठली को धो मिलादे, आम की झोरी मिट्टी की हांडी में बनाना योग्य है, क्योंकि पतीला या काँसे की बटलोई में पितला वा खराब हो जाता है ।

सिमई-यह सब्बलों पर बनती हैं सिमई को पतली बनाना चाहिये और इस भाँति पकाना चाहिये जिस से गरिष्ट न हो । सिमई को या तो पूरी की भांति घी में उतार ले और खाँड़ वा बूरे की चाशनी बना कर पागले । अथवा कुछ पानी डाल उबाल लें । और दूध में पकवाले तो गरिष्ट नहीं होतीं, अर्थात् जल्द पच जाती हैं ।

पूरी ।

कच्चे सिंघाड़े की पूरी-कच्चे सिंघाड़ों को छील, कतले कर कुछ धूप में फरेरे कर सिल लोढ़ी से पिट्ठी की भांत पीस लेवे, फिर उस में सूखा गेहूँ वा सिंघाड़े का ही आटा मिल सेंक लेवे ।

रामपूरी-प्रथम एक छटांक मैदा में तीन तोले दूध, डेढ़ तोला दही और छोटे बताशे मिलाकर नरम गूंधकर किसी मिट्टी तथा काठ या पत्थर के पात्र में धरदे, दस घंटे तक पड़ा रहने दे, परन्तु गरमी के दिनोंमें थोड़े समय तक जब खमीर उठ आवे तब उन को एक सेर मैदा, दारचीनी तीन माशा, समुद्रफेन ६ माशा २ तोले महीन नोन मिलावे, तीन छटांक मोयन दे कर, ३ तोला सौंफ थोड़ा जल में पीस छान उसे आध सेर दूध में मिलाकर मैदा गूंधे, शीतकाल में सारे दिन और गरमी में दोपहर तक दूध में पड़ा रहने दे । फिर तीन तोले की लोई बना उस को पटरे पर वेल खसखस धुली हुई या सफेद तिल्ली जिसको शोध लिया हो दही में मिला कर पूरी के ओर लगाय सेंक ले ।

मीठी पूरी—के लिये अधपई सेर के हिसाब से मोयन डाल लुचई बनाने योग्य मैदा गूंध, अन्दाजसे मिश्री और एक पाव पिस्ता, आधपाव बादाम, अदरक का रस २ तोला, दाल चीनी और लौंग २ आना भर पीस ले फिर कचौड़ी की भांति इसे लोई में भर घी में उतार लो ।

पूरी-मैदा गूंध लोई बना पटा बेलन से बढ़ा कढ़ाई में घी डाल चूल्हे पर साधारण आँचसे घी खौलने पर छोड़ उलट पुलट कर सेंक ले ।

कचौड़ी—पूरा से किसी क़दर ढीला आटा गूंध कर लोई बनावे और धोई पीसकर उसमें नमक, हींग सोंठ, वारीक पीसकर मिलावे और लोई के भीतर उसको भर कर हथेली के वरावर पटा वेलन से वड़ा पूरी की भांति सेंक ले।

नागौरी पूरी—पांच सेर मैदा में डेढ़सेर घी, डेढ़छटाँक नमक एक छटाँक अजवाइन डाल कर गुनगुने पानी से माँड़े और फिर पटे वेलन से पूरी की भांति वड़ा घी में सेंक ले।

खस्ता कचौड़ी—पाँच सेर मैदा, सेर भर घी, आध सेर तेल, दो सेर गुनगुना पानी, पौन पाव पिसा हुआ नमक डाल कर माँडले और सवा सेर उरद की पिसी पिट्ठी में एक छटाँक धनियाँ सोंठ, मिरच, लौंग, जीरा दो २ तोला अच्छे प्रकार पीस कर डाले फिर उस पिट्ठी को कढ़ाई में घी डाल कर खूब भूने और कुल्हड़ में हींग को पानी में घोल कर रख ले उसमें हाथ वोर २ कर पिट्ठी की लोई आटे की लोई में भर कर गोल करे फिर हथेली से चपटा कर कढ़ाई में छोड़ता जाय और अच्छे प्रकार सेंक कर निकाल ले यदि कम खस्ता वनानी हो तो घी या तेल थोड़ा डाले।

पूरन पूरी—आध सेर अरहर की दाल मुआफिक के पानी में उवाले जव गल जावे तव चूल्हे से उतार पानी निचोड़ दे और हाथ से मथ कढ़ाई में डेढ़ पाव घी डाल मथी हुई दाल और उसी में आध सेर चीनी ४ तोला सफेद इलायची वा पाव भर घी में भुना खोया, दो पैसे की किशमिश डाल दे, जव सव मिल जावे तव उतार ले और फिर लोई के भीतर कचौड़ी की तरह भर घी में सेंक ले।

टिक्कर या परावठे—पूरी के समान आटा माड़ कर लोई को वेल तवे पर इधर उधर थोड़ा घी डाल दोनों तरफ अच्छी तरह से सेंक लो और जव सिंक जावे तो उतार लो, इस रीति से घी कम लगता है, परन्तु उत्तम वनाने में घी अधिक लगता है और वड़ा स्वादिष्ट होता है। उसकी रीति यह है कि आटे को प्रथम दूध या मलाई डाल कर गूंध लो, फिर थोड़ा सा आटा ले पटे वेलन से वेल फिर घी लगाय कर लौटे और लोई करे, इसी प्रकार दो तीन वार कर उस आटे में से छोटी छोटी

लोई तोड़े, फिर एक लोई को लेकर कढ़ाई में अच्छे प्रकार घी देकर पूरी की भाँति सेंक ले, फिर इसके स्वाद को देखे, यदि इसमें घी कम लगाना हो तो परावठों की भांति सेंक ले।

———:o:———

* पक्वान *

ये दो प्रकार के होते हैं-एक जो मीठे से बनते हैं या ऊपर से उन में मीठा चढ़ाया जाता है। दूसरे नमकीन।

चाशनी—जितनी खांड हो उससे आधा पानी डाल भट्टीके ऊपर कढ़ाई में चढ़ा दे और खुसही (जो काठ की बनी होती है) से घोले और आंच दे, जब उफान आने लगे तब मन पीछे २॥ सेर पानी खड़े होकर ऊँचे से चारों ओर कढ़ाई में डाल दे, जब मैल फूल कर झाग बन जावे तब उसको पौना से (जो लोहे का होता है) उतार किसी वर्तनमें रखता जाय जब सब मैल पौने से ले चुके तब एक मन में सवा सेर दूध और ढाई सेर पानी मिला कर दो तीन वार में ऊँचे से उस कढ़ाई में छोड़ता रहे और मैल फिर पौना से उतार ले। फिर टोकरे या डलिया में स्वच्छ कपड़ा भिगो कर एक बड़े वर्तन के ऊपर टिकटी रख कर उस कढ़ाई के मीठे पानी को टोकड़े में डोई से डाल डाल कर छान ले इस छने हुए को वकवर कहते हैं।

लड्डू-यह अनेक प्रकार के बनते हैं, उन में से मोतीचूर, वेसनका लड्डू, मूंग की पिट्ठी, वखते का चून, तिल, गुड़धानी, मुरमुरा, मोथी, कंगनी और फाफड़ा के प्रसिद्ध हैं॥

मोतीचूर-इसको बून्दी और बुकती का भी लड्डू कहते हैं, इसके बनाने के लिये प्रथम चाशनी इस प्रकार से बनावे कि उसके स्वच्छ पानी को कढ़ाई में चढ़ा भट्टी पर रक्खे, जब उसमें चमकदार बुलबुले उठने लगें तब उसमें एक सींक लेकर अंगूठे पर लगा पास की उँगली से देखे, जब छः सात तार मालूम पड़ें तब कढ़ाई उतार ले और मन भर के पीछे पाव भर बताशे मींज कर डाले फिर बून्दी डाल लड्डू बांध ले।

अंगूरदाना अर्थात् बूंदी-जब चाशनी बन जावे तब वेसन से ड्योढ़ा उत्तम घी लेकर स्वच्छ कढ़ाई में चढ़ाकर जब वह बोलने लगे तो एक वर्तन

में बेसन को घोल पौने से उनको छांटे फिर निकाल निकाल कर चाशनीमें डाल एक कौंचे से भिगो भिगो कर कढ़ाई के किनारों की ओर जमाता जाय, बून्दी और दाना बनाना हो तो उनको निकाल कर इतर लगा दे, यदि लड्डू बनाना हो तो मेवा काट कर और बड़ी इलायची के दाने पीस कर उसमें मिला इच्छानुसार छोटे बड़े लड्डू बना ले।

बेसन के लड्डू-बेसन के बराबर घी लेकर कढ़ाई में चढ़ा दे और धीमी धीमी आग से भूने, जब भुन जाय और कच्चा न रहे और जलने पर आवे उसको उतार ठंडा कर के सवाया या ड्योढ़ा बूरा मिलावे और फिर बूरे और बेसन को एक रस करके मेवा डाल लड्डू बांध ले।

मूंग या उरद की पिट्ठी के लड्डू-दाल को पानी में भिगो कर खूब धोले कि छिलका न रहे, उसकी महीन पिट्ठी पीस बुकनी छांट ले और मोतीचूर की भांति बांधे। अथवा बड़ी बड़ी मूंग को छांट कर भाड़ में भुना ले और दल कर उसका छिलका उतार फटक चक्की से पीस ले, उसके चून से आधा घी डाल कर थोड़ा भून और फिर सेर आटे पीछे तीन पाव घी ढाई पाव बूरे के हिसाब से डाल कर खूब लड्डू बांध ले।

सूजी वा मगद का लड्डू-सूजी के बराबर घी कढ़ाई में चढ़ा कर मन्दी मन्दी आग से भूने, कौंचा से चलाता जाय जब उसका रंग बादाम का सा हो जावे और सुगन्ध उठने लगे तब उतार कर ठण्डा करले और सवाया बूरा और मेवा डाल कर लड्डू बाँध ले।

चने का लड्डू—छिले हुये चनों के छिलके उतार बहुत महीन पीसले और धीमी धीमी आंच से भून ले क्योंकि यह तनिक सी तेज आंच में जल जाते हैं और बूरा मिला कर ऊपर की रीति से बाँध ले।

मुठिये का लड्डू-एक सेर मैदा में अधपाव घी डाल कर हाथ से मसल ले और उनको पानी से उसन कर छटांक छटांक भर की मुठिया बना ले और घी में उतार ले और फिर कूट छान कर कढ़ाई में बचा हुआ घी भी उसमें मिला दे और उसी के बराबर बूरा और मेवा का कन्द डालकर लड्डू बनाले।

चूरमे, तिल, गुड़धानी मुरमुरे फाफड़ा—के लड्डू बनाना कुछ कठिन नहीं है। चूरी को मींज कर बूरा वा गुड़ मिला कर बांध लेते हैं और अन्य चारों को भून गुड़ वा बूरे की चाशनी करके इन्हें मिलाकर बांध

ले परन्तु चाशनी बनाने के समय यह देखले कि डालने से जमती है या नहीं ।

मेथी-उसके बीज को आठ दस दिन तक भीगने देवे और जब भीग जावे तो खूब मल कर के पानी से धो डाले और सुखा कर महीन पीस ले और उस में आधा गेहूँ का आटा मिला कर घी में भून ले और बूरा डाल कर लड्डू बांध ले ।

कांगनी—इसे खूब दलवा फटकवाकर महीन पीसले और फिर उस में गेहूँ का आटा मिलाकर घी में भून ले और बूरा डाल कर लड्डूबांध ले ।

मालपुआ—आधी छटांक सौंफ और कालीमिरच को आधपाव पानी में भिगो दे, थोड़ी देर पीछे स्वच्छ करले फिर छान कर एक सेर आटे में आध सेर शक्कर खांड, बताशे, मिश्री या गुड को छान कर डाले फिर सबको भले प्रकार मथे कि जिससे उनमें फेन उठ आवे, फिर कड़ाई में घी डाल कर आंच दे जब घी गर्म होजावे तब कटोरे अर्थात् बेले में उस घुले हुये आटे को ले फैली हुई रीति से कड़ाई में डाल उलट पुलट कर खूब सेंके फिर पौने या थापीसे निचोड़ कर निकाल कर रखता जाय । ऐसे ही थोड़े घी के चीले बनते हैं ।

जलेबी-जब बनाना हो तो प्रथम खमीर बनाना चहिये । जाड़ों में यह कई दिन में उठता है और गर्मियों में एक दिन में अर्थात् एक दिन पहले मैदा को मथ कर एक मिट्टी के बर्तन में रख दे तो दूसरे दिन खमीर उठ आवेगा और अगर जाड़े के दिन हों और शीघ्र बनाना हो तो गर्म पानी वा धूप और भट्टी के पास रखने से शीघ्र उठ आता है या सौंफ का पानी डालने से शीघ्र उठ आता है । सौंफ का पानी पकाने के लिये सौंफ को पचगुने पानी में औटावे ।

जलेबीकी चाशनी-बनानेकी पहचान यह है कि इसमें जब चार पांच तार देख पड़ें तब उतार कर रखले और जब करनेको बैठे तब खमीर को खूब फेंटले और एक छोटी सी मलिया के पेंदेमें कमल के बराबर मोटा छेद करले, घी को कड़ाई में दे भट्ठी पर चढ़ा दे जब घी हो जावे तब उस मलिया में खमीर को भरे और छेद को एक उंगली से दबाले फिर सीधा हाथ में उसको ले उंगली को हटा प्रत्येक जलेबी के लिये चार पांच चक्कर देकर कड़ाई वा तई में जितना हो सके करे फिर उस छेद को उस उंगली से बन्द करदे, जब वह सिक कर ऊपर आजावे तब बांस की आधी उंगली

बराबर मोटी और हाथ भर लम्बी और सीधी लकड़ी से पलट कर सेंके फिर उसी लकड़ी से निकाल निकाल कर चाशनीमें डाल पौना या कलछी से घोरे तथा निचोड़ कर अलग किसी थाल में रखता जाय। चाशनी मैदा से दुगुनी वा ढाई गुनी होनी चाहिये।

इमरती-उड़द की दाल को तीन पहर अच्छे प्रकार भिगो कर खूब धोवे जिसमें छिलका न रहे, फिर उसको बीन कर बहुत महीन पीसे और एक कपड़ा बालिश्त भर लम्बा चौड़ा लेकर उसके बीच में छेद कर उसको चारों तरफसे सींदे, फिर जितनी करनी हो उससे तिगुनी उपरोक्त प्रकार की चाशनी बना कर रखले, इस के पीछे भट्टी पर घी तई में चढ़ावे, और पिट्ठी को अच्छे प्रकार मथमथ कर या प्रथम ही से मथ ली हो अथवा अन्य कोई पुरुष मथमथ कर देता जाय उसको उस छेद वाले कपड़े में रख कर सीधे हाथ से घी खरा होने पर कपड़े को हाथ से दबा और फिरा कर एक छोटा सा गोलाकार बनावे फिर गोले के दाहिनी तरफ से छोटे छोटे गोल खारे एक तरफ बनाता जावे, इसी भांति इमरती तोड़े, फिर बांस की सींक से उलट कर सेंक ले और जलेबी की भांति निकाल कर चाशनी में डुबो अलग किसी थाल में रखता जाय।

पेड़े-गौ या भैंसका ढाई सेर उत्तम खोया लेकर उसको धीमी २ आंच से स्वच्छ कड़ाई में भूने और सेर भर कन्द या शक्कर डाले फिर थोड़ी देर चला कर उतार ले, जब ठण्डा होजावे तो शक्कर मिला कर खूब मले और इलायची, पिस्ता, गोला और चिरौंजी डाल कर छोटी छोटी लोई आड़े की तरह लोई ले हाथ या कड़ाई में दबा कर थाल में चुनता जाय।

बर्फी-गौ या भैंस का ताजा खोया ढाई सेर ले स्वच्छ कड़ाई में धीमी धीमी आंच से भून ले, जब अच्छी तरह भुन जावे तो उतार अलग रख दे और जब थोड़ा गर्म रहे तो डेढ़ सेर कन्द डाले फिर खूब हाथ से मिला घी चुपड़ी हुई थाली में ढुनढुना भर कर ऊपर से थोड़ा सा कन्द, पिस्ता, चिरौंजी, इलायची बुरकावे और फिर दो घण्टे बाद चाकू या छुरी से काट ले।

मलाई के लड्डू-गाय या भैंस का उत्तम खोया ढाई सेरले भूनले फिर [illegible] कर अलग रखदे। जब अच्छी तरह ठण्डा हो जावे तो डेढ़ सेर कन्द

और दो बून्द केवड़ा या गुलाव का इतर डाले हाथ से मल गोल लड्डू पैसे पैसे भर के बांध ले और कन्द से औडकर रखता जावे।

कपूर कन्द ६-उत्तम और तजी रामतुरई ले चाकू से इतना छीले कि उसमें हरियाली न रहे, फिर लोहे के पंजे से लच्छे उतार कर पानी में डालता जावे फिर चूना या फिटकरी के पानी में थोड़ी देर भिगोवे, फिर अच्छे स्वच्छ पानी में साफ करले और कड़ाई को स्वच्छ कर जलेवी की तरह चाशनी बनाले, रामतुरई के लच्छों को निचोड़ कर चाशनी में डाले और जब डालने के पीछे जलेवी की तरह चाशनी होजावे तब उतार कर घी डाल खुरपी से लौट पौट कर खुश्क ले फिर हाथ में केवड़ा या गुलाव का इतर लगा लच्छों को सुरक्षा किसी वर्तन में रखता जावे।

गुझिया-प्रथम आटेकी मोटी मोटी पूरियां बनाकर सेंक ले फिर उसको कूट कूट कर धूपमें सुखावे तत्पश्चात् चलनी में छान कर जो टुकड़े रह जावें वह चक्की में पीसलें फिर तीन सेर में सवा सेर खांड डाले यह गुली कहलाती है, फिर, गेहूँ के आटे को महीन वस्त्रमें छान कर (जिस को मैदा कहते हैं) माड़े, जितनी वड़ी बनाना हो उतनी वड़ी लोई काटकर पूरियां वेले, तिनमें उनके योग्य गुली भर फिर हाथ से गोंठ कड़ाई में घी डाल उत्तम प्रकार से सेंक ले।

अँदरसे-प्रथम ढाई सेर साठी वा कोदों के चावलों को तीन दिन तक पानी में भिगोवे, चौथे दिन मल कर साफ पानी से धोकर, सुन्दर सफेद वस्त्र फैला कर हवा लगने दे, जब सरदी दूर होजावे तव ऊखली मूसली से कूटे कूटते समय १ सेर खांड़ मिलादे पश्चात् थोड़ी दर तक एक वर्तन में रखदे फिर कढ़ाई में घी डाल पुओं की भांति घी में छोड़ सेंक कर रखले।

नानखताई-मैदा के बराबर घी और बूरा लेकर और एक सेर के पीछे ३ माशा समुद्रफेन डाल विना पानी के मांड आलूकी बराबर छोटी छोटी गोल लोई बनावे, फिर उसके दो भाग बराबर करे फिर तीन ईंटे रख कर उसमें पक्के कोयले सुलगावे और एक लोहे के तसले में कोयले सुलगावे फिर एक थाली में कागज बिछा उन टुकड़ों को थोड़ी २ दूर पर रख थाली को ईंटों के ऊपर रख दे, फिर उस तसला को जिसमें कोयले सुलग रहे हैं ऊपर से रख दे, जब वह सिक जावे और खिल कर बादाम की रंगत आजाय तब उतार ले इसी भांति और भी सेंक ले।

रहक-लौंग, सोंठ, मिरच, पीपल इनको पीस कर दही में मिलाकर मथे, फिर कपड़े में छान ले, ऊपर से अनारदाना और कपूर का चूरा बुरकावे इसका नाम प्रमेदक रहक है।

फेनी-स्वच्छ सफेद मैदा को मस कर तेज घी में पकावे, फिर उसे खांड की चाशनी में डालता जाय, तव फेके समान फेनी बनती है।

सोहन पपड़ी-सेर भर मैदा को आध सेर घी में मध्यम आंच से भून उतार ले और दो सेर शक्कर की चाशनी करे और जब चाशनी की गोली बने तब दांत से चबा कर देखे जब दांत में न चिपके तो उतार ले और फिर उस चाशनी को तयी या परात में ठण्डा करे फिर उसमें मैदा डाल फुरती से मिला बेलन से बेल दे इस प्रकार पपड़ी बनती है, इससे भी अधिक खस्ता बनाना हो तो अधिक घी डाले।

गुलाब जामन-सेर भर खोये में पाव भर कच्ची मैदा मिलाकर हाथ से फुलैंदा जसनी के बराबर गोल या लम्बी बना फिर स्वच्छ कड़ाई में घी डालकर सेंके और उस चाशनी में (जो जलेबी की भांति पहिले से तैयार कर लेनी चाहिये) डालता जावे।

खुरमा अर्थात् बालूसाई-यह दो प्रकार की होती है, एक सादी दूसरी दही की जिसको दही बड़ा भी कहते हैं। सादी सेर भर मैदा को आध सेर घी में माड़े और जिस कदर पानी की जरूरत हो उतना पानी भी डाल ले और डेढ़ २ पैसे भर की लोई तोड़ गोल कर हथेली पर रख दूसरी हथेली से दबावे और बीच में अंगूठा से धीरे से दबा कड़ाई में मध्यम आग से सेंके और जलेबी की भांति चाशनी में पाग ले। दूसरी प्रकार बनाने की रीति -सेर भर दही को कपड़े में बांध खूंटी में ६ या ७ घंटे तक टंगा रक्खे और पानी टपकने दे, फिर उसको कूण्डे में डाल मथे फिर जितनी मैदा उस में पड़ सके डाले और एक पैसा का सोडा खस्ता करने के लिये अवश्य डाल कर ऊपर की भांति बनाले।

रसभरी या रसगुल्ला-मूंग की पिट्ठी कर कूण्डे में डाल अच्छे प्रकार घपै और अगर रङ्गदार बनाना चाहे तो सिंगरफ या केशर की रङ्गत दे, गुल्ला बना जलेबी की भांति चाशनी में पाग ले।

दन्दान-खांड की सोहन पपड़ी के भांति चाशनी बना एक परात में घी चुपड़ चाशनी को उसमें लौटे, इकट्ठी कर काली मिरच डाल थोड़ी हवा लगा फौरन ही पट्टी की तरह लम्बी २ खींचले।

पेठे की मिठाई-पक्का पुराना पेठा लेकर साफ छील टके २ भर की कतलियाँ कर पानी में डालता जावे फिर सोडा के पानी से बार बार खूब धो सूजा से गोद जलेबी से २१ चाशनी में पाग ले। और खुशबू के लिये केवड़ा डाले।

❁ मोहनभोग वा हलुवा ❁

यह सूजी, गंगाफल, गाजर, आम, मलाई, हल्दी, चोबचीनी, सुपारी, छोहारा, केसर का बनता है।

सूजी-प्रथम सूजी रवे के बराबर कढ़ाई में घी डाल सूजी को खूब भूने, फिर सूजी से तिगुना खौलता हुआ गर्म पानी डाले वा इतना ही दूध। ड्योढ़ा बूरा डाल अच्छे प्रकार चलावे और मेवा डाल उतार ले।

इसी को मोहनभोग वा सूजी का हलुवा कहते हैं। ऐसे ही मैदा का हलुवा बनता है। ध्यान रहे हलुवा जरा मोटे आटे का अच्छा बनता है।

गंगाफल-इस को छील बीज निकाल टुकड़े कर उबाल ले, फिर काशीफल से दूनी मिश्री ले चाशनी कर उबले हुये को उस में डाल दे और कोंच से पाव घण्टे तक मिलावे और धीमी धीमी आंच से घोट हलुवा तैयार करले।

गाजर-मोटी मोटी गाजर लेकर उसको छील बीच से लकड़ी निकाल उबाल ले और घी में भून मीठा डाल खूब मिला उतार ले।

हलुआ आम का-मीठे आमों का रस तीन सेर, खांड़ १ सेर, घी आधसेर शहद पाव भर, बादाम की मींगी ४ तोला, सिंघाड़े का आटा ४ तोला, पहिले बादाम की मींगी और सिंघाड़े के आटे को घी में भून ले, फिर शहद और दूध को कलई के बर्तन में पकावे फिर सब वस्तुओं को डाल हलुआ बना ले।

मलाई का हलुवा-आधसेर कन्द पाव भर मलाई में डाल कर मन्द मन्द आंच पर धरे, फिर हिला २ पाव भर घी गरम कर के उस में मिलावे जब हलुवा बन जाय तब इलायची और मेवा डाल चांदी के वर्क यथा योग्य लगावे, यह हलुवा एक छटांक से आध पाव तक खाय तो बल बढ़े और वीर्य अधिक होवे।

बादाम-जितनी बादामों का हलुवा बनाना हो उतनों को फोड़ रात्रि को पानी में भिगोदे, प्रातः पानी में से निकाल छील, सिल लोढ़ी से

पिट्ठी की भांति बांट कढ़ाई में डाल ऊपर से घी और चीनी डाल हलुवा बनाले।

हल्दी-एक भाग हल्दी, गेहूँ का आंटा सफेद कन्द, गाय का घी हर एक तीन भाग आटे हल्दी को घी में भूने और कन्द की चाशनी बनाकर उसमें डालदे, यह धातु को रोकता है।

चोबचीनी-सवासेर गेहूँ के आटे को आध सेर घी में भूने फिर दो सेर शहद में मिला कर धीमी आंच दे और जब हलुवा की तरह बन जावे तब बादाम, पिस्ता, चिरौंजी इत्यादि हर एक चार चार तोला मिलावे उसके पीछे चोबचीनी सत्रह तोला कूटकर मिलावे, फिर लौंग छोटी इलायची, दालचीनी, सोंफ, अजवाइन, देशी इन्द्रजौ, पीपल नागरमोथा प्रत्येक पांच तोला कूट छानकर मिलावे। यह शरीर को बलवान् और पुष्ट करता है।

सुपारी-कपूर साफ १॥। माशे, तज पत्रज, नागकेशर, नागरमोथा पीपल, छोटी इलायची प्रत्येक साढ़े तीनमाशे तालीसपत्र, जावित्री, वंशलोचन, सफेद चन्दन, काली मिर्च प्रत्येक पौने दो माशे, जायफल सात माशे, जीरा सफेद चौदह माशे अरण्डी की जड़, पुष्प नीलोफर, बिनौले की मींग, कमलगट्टे की मींग, लौंग, धनिया, पीपल की जड़ प्रत्येक चौदह २ माशे, सिंवाड़ा शतावरि प्रत्येक पौने दो तोला, चिरौंजी बादाम की मींग दो २ तोला, पिस्ता मिर्च छः छः तोला, दक्खिनी सुपारी चौदह तोला इन में जो दवा कूटने पीसने छानने की हो उनको कूट पीस छान और मेवा को सिल लोढ़े से पीस ले और प्रत्येक सुपारी के चार टुकड़े कर पांच सेर गाय या भैंस के दूध में जोश दे कि वह सम्पूर्ण दूध पी लेवे फिर उनको कूट छान कर पृथक् रखदे फिर मिश्री आध सेर, शतावरि का शीरा एक करके चाशनी बनावे फिर गाय के आध सेर घी में पिसी हुई दवा और पिसी हुई सुपारियों को भून कर चाशनी में डाल कर हलुवा की तरह बनाले।

छोहारा-आध सेर छोहारे की गुठली निकाल ले, फिर एक रात पानी में भिगो कर सवेरे निकाल उनको महीन कूट ले, और फिर एक सेर गेहूँ के आटे को एक सेर गाय के घी में खूब भून कर एक सेर मिश्री में पानी डाल छुहारे पकावे, फिर भुना हुआ आटा डाल कर उतार ले फिर उसमें पिस्ता बादाम चिरौंजी चिलगोजा मिलाकर खावे।

केशर का हलुआ-गेहूँ के आन से। मैदा को आध सेर गाय के घी में भूने, फिर एक सेर मिश्री में दो सेर पानी, पाव भर शहद मिला कर पकावे, इसके पश्चात् उसमें मैदा मिला कर हलुआ की भांति पना ले और फिर केशर तीन माशे, स्वारेंन, बादाम, पिस्ता, चिलगोजा चिरौंजी दो दो तोला मिलावे।

मोहनथाल-यह चने के बेसन का बनता है। १ सेर बेसन, आध सेर खोवा, २ सेर भूरा, १ सेर घी, छोटी इलायची के दाने २॥ तोले, बादाम की मींग ५ तोले, गोला, किशमिश एक छटांक। मेवा को काट कर साफ करले। १ सेर बेसन को चलनी से छान पाव भर घी का मोयन दे फिर कढ़ाई में घी डाल आग पर खोवा भून ले फिर बचे सब घी में बेसन डाल खूब धीमी धीमी आंच से भूने जब लाल हो जावे तब उतार खोवा, चीनी और मेवा डाल घोट कर थाल में जमा दे बड़ा स्वादिष्ट, बल देने वाला है इसी प्रकार उड़द की दाल का बना सकते हैं।

—————:*:—————

* मुरब्बा *

यह आम, बादाम, कद्दू, गाजर, सेब, बिही, अनन्नास, हड़, आँवला, अदरक, अखरोट, छुहारा, पेठा इत्यादिकों का बनता है।

आमका मुरब्बा—हमेशा बड़ा और गूदेदार आम ले इसको छील भीतर कीगुठुलियां निकाल खांपेंकर कलई की हुई बटलोई में चूने के पानी में उबाल ले जब उबल जावे तब उतार चूने का पानी फेंक दे और उन खांपों को स्वच्छ पानी से इतना धोवे कि चूने का अंश बिल्कुल जाता रहे फिर सफेद कन्द की चाशनी कर उसमें डाल दे। यह बलवान करता तथा हाजमे को बढ़ाता है।

बादाम—बादाम की मींग को थोड़े शहद में उबाले तथा फिर चार दिन बाद ताजे शहद में उबाल इमरतबान में रखले। वह खांसी और खरखराहट को दूर करता है।

कद्दू-ताजे कद्दू को उबाल शहद की चाशनी में डाल दो वह हृदय और मसाने के लिये लाभकारी है।

गाजर-इनको छील बीचकी ठेठ निकाल कतले कर पानी में उबाल

कंद की चाशनी कर उसमें डाल दे। वह पुष्ट तथा मीठे स्वर, खांसी और नज़ले के लिये हितकारी है।

सेब-इसको छील टुकड़ेकर पानी में उबाल शहद या चीनी की चाशनी में डाल दो। वह हृदय और मस्तकको बलवान करता है।

बिही-उपरोक्त प्रकार से बिहीका मुरब्बा बना ले।

अनन्नास-इसके ऊपर और भीतर के भाग को दो लम्बे टुकड़े कर प्रथम भीतर लम्बे लम्बे टुकड़ों को कलई की बटलोई में बिछा पुनः ऊपर के टुकड़ों को उन पर बिछा बटलोई का मुंह बन्द करदे और मुलायम आग से उबाले जब वह गल जावे तब उतार उसको साफ कर मिश्री की चाशनी में डालदे यह दिलकी धड़कन को दूर कर दृढ़ करता है।

हड़--इसको हरी ले एक डेग में पानी डाल ग्यारह दिन तक भिगोवे और तिसरे दिन पानी बदलता रहे, बारहवेंदिन निकाल थोड़ा उबाल शहद की चाशनी में डाल दो। ये मस्तक और हृदय को ताकत और पेट को नरम तथा बवासीर को लाभदायक है।

अदरक-इसको पानी में उबाल शक्कर की चाशनी में डाल दो यह पेट के दर्द तथा मसाने के लिये लाभदायक है।

अखरोट-इसके छिलके को पृथक् कर गिरी को शक्कर की चाशनी में डाल ले। यह मेदे को ताकत तथा वीर्य को बढ़ाता है।

छुवारा-छुहारों को रातभर पानी में भिगो सबेरे निकाल गुठली अलगकर शक्कर की चाशनी में मुरब्बा डाल ले यह वीर्य्य को बढ़ाता है।

आंवला-आंवले को तीन दिन चूना मिले पानी में भिगो दे पानी रोज बदलता रहे चौथे दिन उबाले और धूपमें थोड़ी देर गुठली निकाल सुखाले फिर खांडकी चाशनी में डाल दे, चांदी के वर्कके साथ खाने से तीनों दोषों को हरता है अर्थात् खट्टे रससे वात, शीतल और मीठे अंशसे पित्त और रूक्ष तथा कषायके प्रभाव से कफ को नाश करता है।

पेठा-पेठाको छील भीतर का गूदा साफ कर चौकोर कतर कर थोड़े पानी में उबाले फिर कंदकी चाशनी कर उसमें डाले यह दिल और मस्तक को बलवान् करता है और इसके प्रातः और सायं काल खानेसे रक्त पित्त ज्वर, दाह, प्यास, श्वसांस आदिरोग जाते रहते हैं और धातुक्षीण वाले मनुष्य को विशेष लाभ करता है।

❀ गुलकन्द ❀

यह दो प्रकार से बनता है, एक अग्नि से द्वितीय सूर्य्य की गर्मी से इन दोनों में सूर्य्य की गर्मी से बना उत्तम होता है, उसीको हम लिखते हैं

गुलाब का गुलकन्द—गुलाब के फूल की पत्तियों को साफ कर के सफेद चीनी का बूरा मिला कर दोनों हाथ से मले और जब पत्तियां, सुकड़ जांय तब अमृतबान में डाल कर नित्यप्रति सूरज की धूप में रखे दो माह बराबर रखने से उत्तम गुलकंद तय्यार हो जाता है।

इसी तरह सेवती, बनफ़्सा, गावजुबां, नीलोफ़र, ब्राह्मी के बनते हैं, जिन के नाम तथा गुण निम्न लिखित हैं।

गुलाब का गुलकन्द-स्वास्थ्य, पाचनशक्ति को बढ़ाता है।

सेवती-हृदय मस्तक को बलवान् करता है।

बनफ़्शा-पाचन शक्ति को बढ़ाता है।

गांवजुबां-प्यास को कम करता है।

फूल फफूल-शीतल है और मस्तक की प्रत्येक प्रकार की गर्मी को लाभदायक है।

ब्राह्मी-गरम है, स्मरण शक्ति तथा बल को बढ़ाती है।

❀ नमकीन ❀

सेव—अच्छे चनों की उत्तम दाल महीन पीस बेसन के अनुसार लाहौरी निमक अजवायन मिरच पीस कर डाले और उसको कड़ा गाड़ कढ़ाई में घी चढ़ा मध्यम आग में पेंच या चलनी द्वारा सेव झांड़ कर सेक ले।

मूंग की दाल या चने की दाल—जितनी दाल बनानी हो उसको बीन कर रात में भिगो दे, फिर सुबह मल कर चार पानियों से धो कपड़े से पोंछ अर्थात् पानी को सुखा घी में तलले। फिर दालके अनुसार निमक मिलाले। ऐसे ही चो, मसूर आदि की बनती है।

सेम—सेर भर मैदा को पाव भर घी में आधी छटाँक अजवायन को साफ कर मिला आटे को माड़ले और रोटी की बराबर पड़े पर बेल चौरस्ता कर लम्बी लम्बी चाकूसे काट घी में मध्यम आगमें सेकले मठरी बनाना हो तो बालूसाई की भांति बनाले। और इसी भांति शकलपारे बनाले, बेलने में मोटे रक्खे और चौकोर काट उपरोक्त प्रकार से भूनले।

समोसे या तिकोने—ये कई प्रकारसे बनाते हैं आलूके और दाल (कूर) के प्रथम मैदा को ले मोयन डाल माड़ले फिर छोटी लोंई ले छोटे बेलन से लोग बेले उसको दो समभाग कर ले, फिर कूर भर हाथ से गोंठ कर अलग रख दे और जब सब गुठ जांय फिर कढ़ाई में घी डाल कर अच्छे प्रकार उलट पुलट कर सेंक ले।

कूर बनाने की रीति—प्रथम आलूको उबाल छील उसमें निमक, गरम मसाला, अमचूर, डाल अच्छे प्रकार पीस एक या दो दिन सुखा कर काम में लावे। द्वितीय तली मूंग की दालको पीस मसला डाल कर काम में लाओ। तृतीय झरबेरी के बेरों का छिलका उतार गूदा निकाल सुखा कर पीस ले और उसमें बूरा मिला कर बना ले।

मेवा के दही बरे—उरद की उत्तम धुली दाल में साधारण मसाला डाल कर अच्छे प्रकार पीस ले और एक गीले कपड़े को एक स्वच्छ तख्ते या चकले पर बिछा थोड़ी सी पिट्ठी की लोई ले उसको गोल कर उस कपड़े पर हाथ से पानी लगा गोल गोल चौड़ावे और उस पर भुना सफेद जीरा, गरम मसला, एक कालीमिरच, एक धुली हुई किशमिश कतरा हुआ पिस्ता और गोला, बादाम, चिरौंजी को रख एक एक दूसरी चौड़ाई हुई लोई को कपड़े पर से उसके किनारे मिला दे और फिर इसी भांति बना बना कर और कढ़ाई में सेंक कर पानी में डालता जाय, फिर उत्तम दही को मथ, छान जिसमें पिसा हुआ निमक कालीमिरच, भुना हुआ सफेद जीरा पड़ा हो पानी से निकाल कर डालता जाय।

कचरी—यह कार्तिक के महीने में होती है, जब यह अधपकी हो तो मोल ले उनको छील उन्हीं के अनुसार मट्ठा ले और उसमें निमक डाल कचरियों को ५। ६ दिन तक भीगने दे, फिर निकाल धूप में सुखा कतरे कर रख छोड़े, जब आवश्यक हो घी में तल ऊपर से निमक मिरच डाल कर खावे।

टेंटी—यह जेठ के महीने में होती हैं इनको एक मिट्टी के बर्तनमें पानी भर कम से कम १० दिन भीगने दे, तीसरे दिन पानी बदलता रहे, फिर निकाल धूप में सुखा रख छोड़े और कचरी की भांति भून कर खावे।

बड़ी—यह बेसन, मूंग और उड़द की बनती हैं बेसन की बनाने की यह रीति है कि प्रथम महीन बेसन को ले उसमें निमक, मिरच, अजवायन उसी के अनुकूल डाल खूब फेंटे और फिर हाथ से घी की कढ़ाई

में पकौड़ी तोड़ अच्छे प्रकार सेंकले, इसी भांति मूंग उड़द इत्यादि की बनती हैं।

मूलीकी उत्तम पकौड़ी--प्रथम इसके कतले को उबाल सिल बट्टे से, खूब महीन पीसे और खिले चनों का आटा पिसा हुआ और निमक, गरम मसाला मिलावे, फिर छोटे छोटे आलू के बराबर गोले बना कर धीमी धीमी आंच से घी में सेंकले इसी भांति बथुए के साग को उबाल कर पीस उसमें उपरोक्त वस्तु डाल गोले बना सेंक ले, ये दोनों बड़ी स्वादिष्ट पकौड़ियां होती हैं।

ऐसे ही बैंगन की पकौड़ी बनती हैं। बैंगन की पकौड़ी, केवल निमक मिरच डाल वेसन फेंट सेंक ले। अरवी रतालू के पत्तों की पकौड़ी बनाना हो तो इनका फेन गाढ़ा रहता है और वेसन में पत्तों को लपेट डोरे से बांध घी में पूरी की भांति उतारी जाती हैं। इसी भांति काशी-फल के फूल वा केले को भर कर बना ले। इसके अतिरिक्त सोआ पालक, पान, केले की नरम पत्तों पर वेसन लपेट कर बनाते हैं। ये भी खाने में स्वादिष्ट होती हैं।

बड़े--यह मूंग और उड़द दोनों की पिट्ठी के बनते हैं, पहिले जिसके करने हों उसकी पिट्ठी बना घी में पूरी की भांति सेंकले।

दही--गाय या भैंस का दूध लेकर उसमें अधपई सेर का पानी डाल औटावे इस प्रकार कि मलाई न पड़ने पावे और जब आध पाव सेर दूध पानी में से आधपाव कम सेर रहजावे तब उतार कर यदि जाड़े की ऋतु हो तो कुछ गर्म दूध में निखुट्टे हुए दही का जामन दे अर्थात् अच्छे प्रकार घोल दे और भूभल उसके नीचे रख कर ढकदे और यदि गर्मी होतो औटे हुए दूध को ठण्डा कर जामन दे ठण्डे स्थान में रखदे यदि किसी कारण से दही न जमे तौ ढाक का पत्ता वा कलदार रुपया डाल दे एक या दो घण्टे में अवश्य जम जावेगा।

रायता-यह अनेक प्रकार से बनता है इसमें बून्दी, आलू, लौकी पोदीना ककड़ी, केला, गाजर कद्दू, इत्यादि डालते हैं, इसमें सब से उत्तम बून्दी बनाने की रीति प्रथम लिख चुके हैं। जब रायता बनाना हो तो कढ़ाई से बून्दी को निकाल पानी में डालता जाय, रायता उत्तम बनाने के लिये दही अच्छा मीठा होना चाहिये जिस को छानने के समय पानी डाल कर बहुत पतला न करे, फिर उस में निमक पिसा हुआ और अन्य

मसाले पिसे हुये मिले हों और जिस बर्तन में रायता रक्खा जाय उसको प्रथम से धो सुखा फिर घी हींग का बघार देकर छने हुये दही को भर बून्दी पानी में से निकाल पोले हाथों से निचोड़ कर डालदे।

—— :x: ——

* अचार *

आमका अचार-गदर गदर आमों को लेकर प्रथम पानी में डाल अच्छे प्रकार धोकर स्वच्छ कर चाकू से चौफंका करे, परन्तु फांकें उसकी पृथक् पृथक् न होने पावें अर्थात् जुड़ी रहें कोई कोई आधी वा सारी गुठली भी उनकी निकाल डालते हैं फिर उनमें मसाला तेल में सानकर भरे। मसाला एक सेर के लिये छटांक भर मेथी और आधी छटांक पिसी हल्दी छटांक भर सौंफ और धनियाँ आधी छटांक लालमिरच, आधपाव निमक इन सबको कूट आमों में भर भर कर किसी चिकने घड़े में जिसका मुंह सकरा हो रखता जावे फिर उस घड़े को चार पांच दिन धूप और ओस में सुखा कर पीछे अच्छा कड़ुवा तेल जिसमें अन्य प्रकार का तेल न मिला हो दो चार अंगुल ऊँचा भर दे जिसमें फफूदन न आने पावे अथवा पानी डाल के तेल भर दे।

विना तेल का अचार-ढाई सेर आमों को चौफंका करे जिसकी फांकें पृथक् हो जावें और उनको अच्छे प्रकार धोकर स्वच्छ कर बड़े घड़े में भर दे, फिर उसमें काला व सेंधा निमक छटांक २ भर, खारी ६ छटांक साँभर डेढ़ पाव, काँच का नमक आधी छटांक इनको पीस बुरका कर धूप में रख दे। और नित्य प्रति हिला दिया करे।

अदरख-इसको छील पतले और लम्बे कतले कर उनमें अजवाइन निमक नीबू का रस डाल रखदे, यह दस दिनमें खाने योग्य हो जाता है।

हर्ड का अचार-१ सेर बड़ी बड़ी और मोटी हड़ें ले पत्थर वा काठ के बासन में चार अंगुल ऊपर तक नींबू का रस भर ७ दिन तक भीगने दे ८ वें दिन निकाल इसमें काली मिरच सोंठ पीपल सौंफ, धनियां, फूला सुहागा १ तोला, हींग ६ माशे, भुना हुआ जीरा ९ तोला, १५ तोले निमक, १४ तोले पोदीना, दालचीनी छः तोले, पत्रज ३ तोले, बड़ी इलायची के दाने छः तोले नींबू के रस में वा चूक में सान कर भरदे और

वह नींबू का पानी जिसमें हड़ भिगोई थी वहभी डाल दे। यह बड़ी पाचक होती है।

आक के पत्तों का अचार-आक के अधपके अथात् कुछ पीले और कुछ हरे पत्ते ले खौलते पानी में डाल थोड़ी देर तक ढके रक्खे फिर निकाल कपड़े से पोंछ फरेरे कर सौंफ़, सोंठ, धनियाँ बारह बारह भाग बड़ी इलायची ९ भाग, छोटी इलायची, काला जीरा, लौंग एक एक भाग पोदीना, सफ़ेद शुक्र जीरा दो दो भाग, दालचीनी ६ भाग काली मिरच ८ भाग, पीपल ३ भाग, जावत्री ६ तथा जायफल ४ भाग, और निमक १० भाग, लेकर दरदरा पीस पत्तों के ऊपर नीचे अच्छी तरह बुरका अचारी में भर कर रखदे, जब मन चाहे तो खावे।

नींबू-जब पांच सेर नींबू हों तो उनमें से आधों का रस निकाल उसमें एक सेर निमक और आध पाव लौंग काचूरा अर्क में डाले, फिर आधे नीबुओं को चौफंका कर डाल दे।

दूसरी रीति-१ सेर कागज़ी नींबू लेकर चौफंका कर ले जिसकी फांके जुड़ी हुई रहें, फिर उसमें सोंठ, पीपल, मिरच, बड़ी इलायची, सेंधा और काला निमक एक एक छटांक, धनियां आध पाव, जीरा आधी छटांक, लौंग एक तोला, काला जीरा डेढ़ तोला, कच्चा सुहागा १ छटांक छोटीइलायची ६ माशे, जवाखार पाव छटांक साँभर तीन छटांक को कूट पीस महीन कर भर कर रख दे।

मीठे नींबू-चौफंका कर सेर पीछे पाव भर गुड़ पावभर निमक डाल दे और नित्य उछाल कर धूप में रख दिया करे।

अचार निमक-प्रथम सौ नींबू का अर्क निकाल कर बुझावे फिर उसको छान कर उसमें २। सेर खांड और आध सेर सांभर की डलियां और पाव भर कालीमिरच, आध पाव इलायची इन सबको पीस अमृतबान में डाल दे १ महीने पश्चात् खावे।

अचार टेंडी-इसमें पानी भर आठ दस दिन तक धूप में रखदे जब खूब बास आने लगे अर्थात् उठ आवे तब तीन चार बार स्वच्छ जल से धो डाले इसके उपरांत हल्दी, लालमिरच, मकराराई पीस कर डाले।

गाजर-मोटी २ लेकर ऊपर से छील डाले और फांके कर थोड़ा सा उबालले, फिर टेंटी का मसाला डालदे, दो चार दिन में उठ आवेंगी।

अरवी और आलू-इनका अचार गाजर के समान होता है ।

लहसोड़े-कआ चार वनाने में इतनाही अन्तर है कि वे छीले नहीं जाते टोपी उतार और गुठली निकाल उवाल ले और उपरोक्त मसाला डाल दे ।

—:०:—

* चटनी *

चटनी बादाम-कद्दू और वादाम की गिरी पृथक् २ साढ़ेसत्रह माशे और ववूल का गोंद कतीरा, मौरेठी का सत यह तीन तीन तोला और कन्द सफ़ेद ९ तोला ले पीसकर उसमें इतना शहद मिलाये कि पतली रहे या कन्द की चाशनी कर मिला ले यह गले की खरखराहट और खांसी को दूर करती है ।

चटनी गोंद पिस्ता-सुरसुकी, केशर १७ माशा, काली मिरच चीनी नशास्ता, सोसन की जड़ अजवाइन, सिलारस प्रत्येक दो तोला, १० माशा, सोसन की शाख, ववूल का गोंद प्रत्येक ९ तोला, मीठी वदाम कड़वी वदाम प्रत्येक १९ तोला, अलसी भुनी हुई मुनक्का हर एक आध सेर सव को वारीक पीस शहद में मिलावे, यह गले की खरखराहट पीव खून और कफ थूकने को लाभदायक है ।

चटनी अलसी-भुनी हुई अलसी, वादाम की मींगी प्रत्येक पन्द्रह माशे कतीरा, मौरेठी चिलगोजा की मींगी, नशास्ता, गोंद ववूल सात माशे ले इनको कूट कर अंगूरे के पानी में उसको पका ले जव ३ भाग में एक भाग रह जावे तव उतार ले और मींग डाल ले ।

चटनी वनफशा-वनफशा ३ तोला, सकमुनिया भुनी हुई मौरेठी, कतीरा, निशास्ता प्रत्येक ३ माम कूट कर १० तोला शहद में वनावे यह खांसी को दूर करती है ।

चटनी खशखास-केशर एक माशा, मौरेठी का सत, निशास्ता प्रत्येक छः छः माशा गुलाव के फूल, ववूल का गोंद प्रत्येक एक एक तोला वंशलोचन एक तोला खशखास सफ़ेद महीन पिसा हुआ एक तोला ले और

नोट—आम के अतिरिक्त सव अचार १० या १५ दिन से अधिक नहीं ठहरते इस लिये ये तेल पानी के आचार कहलाते हैं, अगर इनको वहुत दिन तक रखना हो तो तेल पानी में डाल दे अथवा चार अंगुल अच्छा तेल भर दे ।

दस तोले शहद में तय्यार करे। यह छाती और फोड़े की प्रत्येक बीमारी को लाभदायक है।

चटनी गोंद बबूल-बबूल के गोंद को पानी में डालकर साफ करे इस के पश्चात् बादाम के तेल में पकावे, जब गाढ़ा हो जाय तो उतार ले, यह सूखी खांसी को दूर करती है।

चटनी छोहारा-जावत्री, केशर, इलायची छोटी· प्रत्येक छः माशा, जायफल तीन माशा, लौंग, पीपल, दारचीनी, पिस्ते के फूल, सुपारी के फूल, प्रत्येक एक२ तोला, छोहारा, नारियल हर एक २० तोला, बादाम की मींगी, गाय का घी प्रत्येक आध पाव, कस्तूरी ३ माशे, चाँदी के वर्क २० इनको कूट तीन पाव शहद में मिलावे· इस को बच्चा पैदा होने के बाद औरत को खिलावे तो रहम की बीमारी जावे।

नमकीन आम की चटनी—एक सेर आम को छील कर गूदा उतार ले और उसमें सांभर छटाँक भर, अदरक, लौंग दो दो माशा लाल मिरच, काली मिरच, धनियां एक एक तोला, जायफल, जावित्री, दारचीनी ३ माशे पोदीना सूखा एक तोला और एक छटांक नीबू का रस डाल खूब बारीक पीस ले और अमृतबान में भरकर रख दे।

मीठी चटनी—एक सेर आम को छील कर गूदा उतार ले और सेंधा नमक भर कर धनियाँ एक तोला, बड़ी इलायची ६ माशे, लौंग, जायफल, जावित्री, दारचीनी, एक एक माशे, पोदीना डेढ़ तोला, आधी छटांक अदरक को महीन पीस ले और बादाम की मींगी एक तोला पिस्ता ६ माशे, किशमिश आध पाव धोकर घी में भून ले और आध सेर खांड की चाशनी कर आधपाव छोहारे, शहत सब को खूब मिलावे और फिर उतार कर किसी अमृतबान में रख दे।

दूसरी प्रकार—आम का कच्चा गूदा ७ सेर, चीनी ५ सेर, सिरका अंगूर का दो बोतल, लाल मिरच ३ छटांक, बादाम की गिरी १ पाव, धनियां १ पाव, किशमिश ३ पाव, अदरक डेढ़ पाव इन सब को डाले यह चटनी दो प्रकार से बनती है एक में आम के कतले रहते हैं दूसरे में आम को पीस लुग्दी की जाती है। पहिले आम को छील महीन कतर सिल पर पीस ले फिर मिरच, धनियां, अदरक, को सिरका के रस में पीस ले बदाम को महीन कतर ले फिर सब चीज़ों को कलई के बरतन में भर चूल्हे पर रख धीमी धीमी आंच देकर पकावे और

कल से चलाता जावे, जब जाने कि खूब पक गई और महक आने लगी तो उतार कर कांच के वर्तन में रख ले यह चटनी अति स्वादिष्ट होती है।

चटनी गोखरू—हरे गोखरू लेकर इतने पानी में डाले कि वह तैरने लगें फिर उनको पानी निचोड़ शहद मिलाले।

शरबत।

शरबतबनफशा—आध सेर बनफशा लेकर तीन सेर पानी में रात को भिगो देवे सवेरे मसल कर आग पर चढ़ावे जब जलते जलते तीन पाव पानी रह जावे तब उतार ठंडा कर एक कलईदार डेगची में छान ले और साफ की हुई शक्कर सवा सेर डाल कर धीमी धीमी आंच से पकावे जब अंगुली में लेने से तार बंधने लगे तब उतार ठंडाकर बोतल में भर ले खुराक १ तोला से ३ तोले तक है इस के सेवन से अन्तःकरण की गर्मी, दाह, प्यास, बुखार, खांसी, जुकाम वा सिर दर्द दूर होता है।

शरबतअनार— बिलायती मीठे और बड़े बड़े पके हुए अनार ४ सेर ले और उन्हें फोड़ कर दाने निकाल चीनी या पत्थर के वर्तन में रखखे फिर हाथ से खूब मसल कर उनका अर्क निकले और कलईदार डेगची में अर्क छान ले फिर ४ सेर चीनी डाल एक तार की चाशनी आने तक आग पर पकावे फिर छान ठंडा कर बोतलों में भर ले खुराक एक तोले से तीन तोले तक। दिल दिमाग को ताकत देता है। नज़ला, प्यास और दाह को शान्त करता है। गर्मी के दिनों में अत्यन्त लाभ देता है। दिल की गर्मी को खोता और आंखों में तरावट पहुंचाता है।

शरबत उन्नाब—आधसेर बिलायती उन्नाब के दाने लेकर तीन सेर गरम पानी में रात भर भिगोदो सबेरे हाथ से खूब मल मल कर कड़ाही में कपड़े से छान दो और उस में दो सेर साफ शक्कर डाल कर उक्त प्रकार से शरबत तय्यार कर लो खुराक दो तोले [illegible] न के फिसाद को दूर करता है।

शरबत जामुन—पकी जामुन का अर्क १ सेर और गुलाब का अर्क आध सेर, इन दोनों को एक कलईदार डेगची में डाल कर ढक्कन से ढक

कर आग पर चढ़ा कर मंदाग्नि से पकावे जब तीन हिस्सा पानी जल जाय तब उतार कर कड़ाही में छान देवे और एक सेर शक्कर डाल कर ऊपर की रीति से शरबत बना ले खुराक १ तोले से २ तोले तक। वमन उबकाई को खाते ही बन्द कर देता है और खून के दस्त, संग्रहणी और बावासीर को दूर करता है।

शर्बत पोदीना—हरा पोदीना १ सेर लेकर तीन सेर पानी डाल कर किसी कलईदार बर्तन में काढ़ा बनावे जब दो सेर पानी जल जावे केवल १ सेर रह जावे तब उतार छान दो सेर शक्कर मिला शर्बत बनाले। खुराक १ तोला से २ तोला तक यह वमन उबकाई और हिचकी को दूर करता है भूख बढ़ाता और पाचन करता है।

शरबतगुलाब-आधसेर गुलाब के फूल लेकर आठ हिस्से कर लो फिर खूब महीन कपड़ों में ढीली ढीली आठ पोटली उन्हीं हिस्सों की बांध लो फिर एक बर्तन में आठ सेर पानी आग पर चढ़ावो उसी में एक पोटली डालदेओ और ढक्कन से ढक देओ जब १ सेर पानी जलजावे तब उसके भीतर की पोटली निचोड़ कर निकाललो और दूसरी डाल दो फिर १ सेर पानी जलजावे तब दूसरी पोटली को भी निकाल लो ऐसे ही जब आठो पोटली हो जावें तब आधसेर पानी जो रह जावे उस में सवासेर चीनी डाल शरबत बना लो। खुराक १ तोला से ३ तोला तक है यह प्यास, दाह, दिलकी गरमी, घबराहट को दूर करता है दिल और दिमाग को ताकत देता, मन को प्रसन्न करता, है बड़ा खुशबूदार है और वमन को भी बन्द करता है।

शरबत चन्दन—पाव भर सफेद चन्दन का बुरादा लेकर १ सेर गुलाब के अर्क में रात को भिगोदो सुबह आग पर चढ़ा मंदाग्नि से काढ़ा करें जब पाव भर जल कर रह जावें तब उतार कर मलकर छानकर १ सेर शक्कर डाल फिर पकावे चाशनी आने पर उतारले। खुराक १ से २ तोले तक, दाह, प्यास दिलकी गरमी, घबराहट और पागलपन को दूरकर दिलको ताकत देता है।

शरबतसेब--पके हुए सेब लेकर छीलले और बीज निकाल २ कर पत्थर की सिल पर पीस २ कर उनका अर्क निकाल ले। १ सेर अर्क में १॥ सेर चीनी डाल आम हर चाशनी करले। खुराक १ तोले से २ तोलले तक। यह शर्बत पित्त के दस्त-वमन को दूर करता है। मेदा और

दिलको ... है चित्त को प्रसन्न करता है। इसी तरह से शरबत ... नाशपाती केला-शन्तरा और अमरूद के भी बनते हैं। और शर्बत सेव की तरह फायदा करने वाले हैं।

शंतरा-नींबू जामन-इमली का शरबत मिट्टी की हांडी में बनाना चाहि और काठकी डोई से चलाना चाहिये।

---

* मांस खाने का निषेध *

अथर्ववेद काण्ड ४ सूक्त ३ मंत्र १५।

यः पौरुषेयेणक्रविषा समङ्क्ते यो अश्व्येन पशुना यातुधानः।
यो अघ्न्याया भरति क्षीरमग्ने तेषांशीर्षाणि हरसापि वृश्च।

राजाको उचित है कि जो पुरुष नर मांस घोड़े तथा अन्य पशु और पक्षियों का मांस खाता है और गौओं को मार कर दूध की न्यूनता करता है उसका राजा शिर कटवादे।

म० अ० ७ श्लोक ५० में लिखा है कि नशा पीना जुआ खेलना आखेट व्यभिचार ये चारों काम से उत्पन्न होते हैं जो बड़े दुःख के कारण हैं।

पानमक्षाः स्त्रियश्चैव मृगया च यथाक्रमम्।
एतत्कष्टतमं विद्याच्चतुष्कं कामजे गणे॥ ५०॥

ऋग्वेद अ० २ अ० ३ वर्ग ९ मं० १ अ० २२ सू० १६२ मं० १२ में लिखा है कि जो लोग अन्न और जल को शुद्ध कर उनका बनाना और भोजन करना जानते हैं वे उद्यमी होते हैं और यजुर्वेद अ० २५ मं० ३६ में लिखा है कि जो मनुष्य घोड़े आदि उपकारी पशुओं और उत्तम पक्षियों का मांस खावें उन सबको राजा अवश्य यथा योग्य दण्ड देवे। इसी प्रकार यजुर्वेद अ० २५ मं० ३७ में भी आज्ञा है कि जैसे विद्वान् मनुष्य मांसाहारियों को निवृत्त कर घोड़े आदि पशुओं की वृद्धि और उन की रक्षा करते हैं उसी भांति तुम भी करो। यजुर्वेद अ० ३ मं० ३७ में लिखा है कि हे मनुष्यो। तुम लोग पशुओंको मत मारो मैंने उनको तुम्हारी रक्षा के लिये बनाया है अर्थात् यजमान को पशुओं की पालना तथा रक्षा करनी उचित है। "यजमानस्य पशून् पाहि"॥

यजुर्वेद अ० ३६ मं० १८ में लिखा है कि मैं मित्र की दृष्टि से सब प्राणियों को भले प्रकार देखूं और यजुर्वेद अ० १२ मं० ५१ में लिखा है कि मनुष्यों को उचित है कि बकरी मोर आदि श्रेष्ठ पशु पक्षियों को न मारें किन्तु उनकी रक्षा कर उपकार लें। यजुर्वेद अ० १३ मं० ५० में लिखा है कि हे राजन् ! जिन भेड़ आदि के रोम और त्वचा मनुष्य के सुख के लिये होते हैं और जो ऊँट भार उठाते हैं और मनुष्य को सुख देते हैं उनको जो दुष्ट मारना चाहें उनको संसार का दुखदाई समझ अच्छे प्रकार दण्ड देना चाहिये और यजुर्वेद अ० १३ मं० ३९ में लिखा है कि हे राजपुरुषो ! तुम लोगों को चाहिये कि जिन बैल आदि पशुओं के प्रभाव से खेती आदि के कार्य होते हैं और जिन गऊ आदि से घी दूध आदि उत्तम पदार्थ होते हैं और जिनसे सब प्रजा की रक्षा होती है उनको कभी मत मारो जो मनुष्य इन उपकारी पशुओं को मारें उनको राजा आदि न्यायाधीश अत्यन्त दण्ड देवें। यजुर्वेद अ० १३ मंत्र ४६ में लिखा है कि एक खुर वाले घोड़े आदि और उपकारी वनके पशुओं का (जिन से जगत् का उपकार होता है) सदैव पालन पोषण करें परन्तु हानिकारक पशुओं को मारें और यजुर्वेद अ० १३ मं० ४७ में उक्त प्रकार की आज्ञा है, केवल इतनी विशेषता है कि जिन जङ्गली पशुओं से गांव के पशु, खेती और मनुष्योंकी हानि हो उनको राजपुरुष मारें अथवा बन्धन में डाल दें। इसके अतिरिक्त का० ५ वर्ग ३६ मं०७ व ८ और का० ५ वर्ग १९ मन्त्र १० वा १२ में मांस खाने वालों को राक्षस, पिशाच, दुष्ट वर्णन किया है और यजुर्वेद अध्याय ३४ मं० लिखा है—

नतद्रक्षांऽसिनपिशाचास्तरन्ति, देवानामोजःप्रथमजऽह्येतत्।

(रक्षांसि)—अन्यान् प्रपीड्यस्वात्मानमल्ये रक्षन्ति ते। (पिशाचाः) ये प्राणिनां प्रेषितं रुधिराधिकमात्रानदन्ति भक्षयन्ति ते हिंसका म्लेक्षाचारिणो दुष्टाः। अर्थात् वे राक्षस हैं जो औरों को दुःख देकर अपना प्रयोजन सिद्ध करते हैं और पिशाच वे हैं जो पशु पक्षियों के मांस आदि खाते और म्लेक्ष दुष्टाचारी होते हैं। इसी लिये कणादि मुनि ने वै० ६ अहिन० १ सूत्र ६ में लिखा है कि अभ्युदय न दुष्ट भोजन में नहीं होता यथा (तद् दुष्ट भोजनेनविद्यते) अ० ६ आह्नि० सू० ७ में लिखा है कि जिस में हिंसा हो वह दुष्ट भोजन है। सूक्त १० में लिखा है कि हिंसा रहित भोजनके करनें से ही उत्तम कार्यों में प्रवृत्ति होती है (पुनर्विशिष्टे प्रवृत्तिः)। इसके उप-

रांत अथर्व कां० ८ सू० ३ मं० १५ में स्पष्ट कहा है जो कोई पुरुष मनुष्य व घोड़े व अन्य पशु का मांस खावे या गौ को मार कर दूध को घटावे तो राजा उस का शिर कटवा दे।

यः पौरुषेयेण क्रविषा समङ्क्ते यो अश्व्येन पशुना यातुधानः।
यो अघ्न्याया भरति क्षीरमग्ने तेषां शीर्षाणि हरसापि वृश्च॥

इसके अनुकूल मनु ने अ० १० श्लोक ६३ में अहिंसा सत्य, चोरी का त्याग, शौच, इन्द्रियों का रोकना यह संक्षेप से चार वरणों का साधारण धर्म कहा है महा मुनि पतंजलि जीने योगशास्त्र पा० २ में लिखा है। अहिंसासत्यास्तेय ब्रह्मचर्य्य अपरि ग्रह यह पांच यम लिखे हैं।

इस पर व्यास जीने भाष्य करते हुए लिखा है कि सब प्रकार से सब काल में सब प्राणियों से विरोध त्याग को अहिंसा कहते हैं। जो मनुष्य इस को सिद्ध कर लेता है तब सब सिद्ध होते हैं। इस के ऊपर भोजदेव राजऋषि अपनी वृत्ति में कहते हैं कि किसी प्राणी के प्राण का वियोग करना हिंसा कहाती है (जो सब अनर्थों का कारण है) इसको न करने ही को अहिंसा कहते हैं, इस लिये यह सब प्रकार से त्यागने योग्य है। समाधि प्राप्त करने में पहिला साधन यम है और यम का पहिला लक्षण अहिंसा है, इससे प्रत्यक्ष प्रकट है कि मांसाहारी ईश्वर प्राप्ति की जड़ काटते हैं, और योग० सू० ३१ में लिखा है कि जाति, देश, काल और समय के विचारसे हिंसा चार प्रकार की होती है इस लिये सब जीवों को, सर्व देशों में, प्रात समय सब दिशाओं में अहिंसा धर्म का पालन करना चाहिये।

वैद्यक विद्या के शिरोमणि महर्षि धन्वन्तरि जी का ऐसा ही मत है कि अमेध्य पदार्थोंका कभी सेवन न करना चाहिये, जो पदार्थ बुद्धिको बिगाड़ते हैं उनका नाम अमेध्य है। क्योंकि ऐसेही वस्तुओं के खान पान से बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है जिस से 'आध्यात्मिक' 'आधिभौतिक' और आधिदैविक' ये तीनों प्रकार की तापें घेरे रहती हैं और सुख के स्वप्नमें भी दर्शन नहीं होते। इसी कारण मनुजी ने लिख दिया है—कि वर्ज्जयेन्मधुमांसंच-अर्थात् शराव और मांस आदि हानिकारकपदर्थों को भक्षण न करना चाहिये।

प्राचीन भारतखण्डीय मनुष्यों ने सर्व भूतों अर्थात् जीवधारियों को (जिनसे देश का उपकार होता है जैसे गाय, भैंस, वकरी, घोड़ा, हाथी इत्यादि की रक्षा का नाम) तीर्थ माना है।

इसी प्रकार चाणक्यमुनि ने ८ अध्याय के १३ वें श्लोक में लिखा है—

नतृष्णायाः परोव्याधिर्न च धर्मो दया समः ॥ १३ ॥

अर्थात् दया से बढ़ कर कोई धर्म नहीं है फिर मांस खाने वालों को यह बड़ा धर्म कैसे मिल सकता है? कदापि नहीं। जैसा कि कहा है—

लोभलुब्धे कुतो लाभो मांसाहारो कुतो दया ॥

इसी कारण तो कहा है कि 'विना दया के संत क़साई' महाभारत के अनुशासन पर्व अ० ११६ के १८ श्लोकमें लिखा कि 'अहिंसा परमोयज्ञ'। अहिंसा परम यज्ञ है अर्थात् हिंसा न करने से देश का बड़ा उपकार होता है और यज्ञ से भी देश की भलाई होती है परन्तु अहिंसा यज्ञ का मूल है क्योंकि हिंसा होगी तो घृत आदि पदार्थों की न्यूनता होगी तो फिर भला यज्ञ किस प्रकार होंगे। जैसा कि वर्तमान समय में आधसेर का घृत विकता है इसका मुख्य कारण हिंसा ही है। पूर्व मीमांसा में भी लिखा है— 'अहिंसा परमो धर्मः' महाभारत में लिखा है—

सर्वहिंसा निवृत्ति श्चनरः सर्वं सहाश्चये।
सर्वस्याश्रयभूताश्च ते नराः स्वर्गगामिनः ॥

और भी महाभारत के श्लोक ३७०२ में लिखाहै—

अभयं सर्वभूतेभ्यो यो ददाति दयापरः।
अभयं सर्वभूतानि ददति सनुशुश्रमन् ॥

इसी विषय में मनुस्मृति के अध्याय ५ श्लोक ४६, ४८, ५१ और पू० ५६ को विचारिये।

यो बंधनवधक्लेशान् प्राणिनां न चिकीर्षति।
स सर्वस्य हितप्रेप्सुः सुखमत्यन्तमश्नुते ॥

जो मनुष्य किसी जीव के वध तथा बन्धन का क्लेश देने की इच्छा नहीं करता है वही अति सुख को पाता है।

नाकृत्वा प्राणिनां हिंसा मांसमुत्पद्यते क्वचित्।
न च प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मांसं विवर्जयेत्

प्राणियों की हिंसा के विना मांस उत्पन्न नहीं होता और प्राणियों का वध स्वर्ग का हेतु नहीं इस लिये मांस न खाना चाहिये। इस कथन से प्रत्यक्ष प्रगट है कि हिंसा करना महा पाप है फिर न जाने भारत

वासियों ने कौन - से प्रमाण से मांस खाना स्वीकार किया है ? बहुधा जन यह भी कहते हैं कि जीव हत्या का दोष मारने वालों पर होता है खाने-वालों को क्या ? इस लिये उनको मनुजी महाराज के अध्याय ४ श्लोक १९ को देखना योग्य है।

अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी।
संस्कर्ता चोपहर्ता च खादकश्चेति घातकः

अनुमन्ता अर्थात् जिसकी सलाह से मारा जावे, विशसिता जो पशु के अङ्ग को शस्त्र से जुदा करे, और मारने, मांस को मोल लेने, माँस का वेचने, मांस का बनाने, परोसने, भोजन करने वाले, ये आठो घात करने वाले ही कहलाते हैं परन्तु अब विचार का स्थान है कि यदि सब जन मांस खाना छोड़ दें जैसा कि पहिले इस देश में था तो क्यों कसाई लोग पशुओं को मारें ? क्योंकि जिस पदार्थ की विक्री अधिक होती है उसीको वेचने वाले लाते हैं, इसलिये पशुओं के मारे जाने में खाने वाले ही मुख्य पापी हैं, शेष उसकी सहायता करने से दोष भागी हैं।

प्यारे भाइयो ! यदि वेद, स्मृति वा प्राचीन ग्रन्थ तथा अगले ऋषि मुनि और राजा प्रजा के खान पान पर आप दृष्टि डालें तो स्पष्ट प्रगट होता है कि उस समय मांस खाना प्रचलित न था क्योंकि पशुओं की रक्षा से ही देश का उपकार होता है यही पूर्व पुरुषाओं का मन्तव्य था। सूक्ष्म दर्शक यंत्र से यदि हम देखें तो पता लगता है कि हमारे शरीर को हानि पहुँचाने वाले वहुत से कीटाणु मांस में होते हैं। दूसरे कसावखाने में वेही जानवर काटे जाते हैं जो नहरुआ क्षय, सांकरिया, फोड़े के दर्द, दाद, खुजली, खखासा आदि अनेक वीमारियों से ग्रसित होते हैं। एक विद्वान अंग्रेज का कथन है कि यदि वीमार जानवर कसावखाने में कटने वंद हो जावें तो कसावखाने ही बन्द रखना पड़ें क्योंकि निरोग पशुओं को काटने के लिये मिलाना ही कठिन है। अतएव पाठकगण ! क्या आप की आत्मा को यह निश्चय नहीं है कि वीमार पशुओं का माँस हमारे शरीर में रोग उत्पन्न नहीं करेगा ? बहुतेरे पशुओं में छूत के रोग होते हैं जैसे कि चेप कंधों का सड़ जाना चांटे दाग आदि फिर वह मांस शरीर में अरोग्यता किस प्रकार स्थिर रख सकता है ?

सर रेलेनकेस्टर के० सी० वी० एफ० आर० एस० ने दिसम्बर सन् १९०९ ईस्वी के 'दीडेलीटेलीग्राफ' नामक पत्रमें लिखा है कि मनुष्य के

दांत नरम खुराक खाने के लिये गोलाकार पोले और चौरस बनेहैं इससे सिद्ध है कि मनुष्य स्वाभाविक रीति से मांस खाने वाला नहीं। मांस खाने वाले जीवों के दांत दृढ़ और नुकीले होते हैं अतः मनुष्यों को माँस कभी नहीं खाना चाहिये क्योंकि शारीरिक यंत्र प्रभुने मांसाहार के लिये नहीं बनाया। उपरोक्त सिद्धान्त का अनुमोदन करते हुए डाक्टर एलेक जेन्डरहेक एम. ए. एम. डी. ने यह भी कहा है कि मनुष्य की अँतड़ियों में मांस पाचन की शक्ति नहीं यही कारण है कि जो मनुष्य मांस खाना प्रारम्भ करते हैं उनकी नसनाड़ी थोड़े ही दिनों में कमजोर हो शरीर को दुर्बल कर देती है जिसके कारण मांसखाने वाले जीवों को गठिया, नाहरु, क्षय, आदि भयंकर बीमारियां हो जाती हैं। मांसखाने से उद्दीपनशक्ति बढ़जाती है जिससे थोड़े ही दिनों में कफ ठंड और सुस्ती के रोग हो जाते हैं गठिया रोग उत्पन्न होने का मुख्य कारण खट्टा खून है इसी खट्टे खून से कुष्ट और रक्तपात वगैरह रोग हो जाते हैं ऐसाही डा. डब्ल्यू. गीब्सवार्ड महोदय का मत है। प्रो० लारेन्स का कथन है कि मांस खाने से शक्ति और हिम्मत कम हो जाती है तथा उसके सेवन से ही विषाद रोग, दमा, उद्वेग, मधुप्रमेह, हृदय रोग, और अकाल मृत्यु के शरण होते हैं।

लोकमान्य लार्डरावर्टस हिन्दुस्तानी बहादुरों पर अपनी विजय का घमण्ड रखते थे उन्होंने यूरोपियन महायुद्ध के समय में कहा था कि हिन्दुस्तानी शूरवीरों में मांस न खाने से आत्मिक बल मौजूद है।

हमारे प्रतापी सम्राट शिरोमणि जार्जपंचम महाराज ने भी मांस और शराब से दूर रहने के लिये अपने योद्धाओं को यूरोपियन महायुद्ध में उपदेश किया था।

श्री रा. रा. श्रीलाभशंकर लक्ष्छीदास जी का कथन है कि यूरोपियन महायुद्ध के समय बीमारियों का मूलकारण समझकर मांस का बहुत कम व्योहार होने लगा यहां तक कि सिर्फ इंग्लेण्ड में ही ९००० से ज्यादह कसावखाने बंद हो गये और मांस की जगह लोग फलों का व्योहार करने लगे। सन् १०९८ में ६ महीने तक लन्दन की विजिटेरियन सोसाइटी के सेक्रेटरी मिस्टर एफ. आई. निकलने ने प्रति दिन १००० लड़कों को अन्न और फलों का आहार कराना शुरू किया और उसी समय लन्दन की काउन्टी कौंन्सिल के १००० लड़कों को ६ महीने तक मांसाहार दियागया ६ महीने के बाद दोनों प्रकार के लड़कों की डाक्टरी जांच की गई उससे

यह बात पूर्णतया साबित होगई कि वनस्पति आहार करने वाले लड़के मांसाहार करने वालों की अपेक्षा अधिक हृष्ट पुष्ट, बलवान, दृढ़शरीर और सुन्दर वर्ण वाले थे।

तदन्तर मांस खाना स्वाभाविक प्रकृति के प्रतिकूल भी है क्योंकि (१) जितने मांसाहारी जानवर हैं उनके शरीर से पसीना नहीं निकलता है, (२) मांसाहारी जीव चाब चाब कर नहीं खाते, परन्तु मनुष्य अन्न और वनस्पति खाने वाले पशुओं की तरह चाब चाब कर खाते हैं, (३) सर राबर्टहोम इत्यादि (जो इल्म नबातात के आलिम थे) लिखते हैं, कि मनुष्य के दांत और उनकी अंतड़ियां वा सम्पूर्ण शरीर की बनावट और स्वभाव से प्रकट होता है कि वह मांसाहारियों की भांति उत्पन्न नहीं हुआ, (४) जो जन्तु मांसाहारी नहीं हैं पानी को घूंट बांध कर पीते हैं, (५) मनुष्य की भांति वनस्पति खाने वाले जीवों के मुंह में जितना अधिक थूक रहता है उतना मांस खाने वाले जीवों के नहीं रहता।

पाठकवृन्द ! उक्त प्रमाणों से स्पष्ट प्रकट है कि मनुष्य जो सर्व प्राणी मात्र में उत्तम है उसको मांस भक्षी नहीं बनाया, वरन् वह अपनी स्वाभाविक प्रकृति को छोड़ मांसहारी बन गया। हा शोक ! हा शोक !! हा शोक !!! गाय, भैंस, घोड़ी, बकरी आदि जो मनुष्य से अत्यन्त निकृष्ट हैं वे तो अपने स्वाभाविक नियम पर चले जाते हैं, यदि कोई परीक्षा के अर्थ इन पशुओं के सन्मुख मांस का टुकड़ा डाल दे तो वह कदापि नहीं खाते परन्तु मनुष्य का यह हाल, तो क्या वह पशुओं से भी निकृष्ट कर्म नहीं करते।

बहुधा मांस भक्षी यह कहते हैं कि इससे शरीर में बल रहता है और शरीर का पुष्ट रखना भी योग्य है, इसके उत्तर में विचारना चाहिये कि जब अन्य २ पदार्थों के खाने पीने से अधिक पुष्ट और निरोग रह सकते हैं तो फिर भला इस हत्यारूपी कर्म को कि जिससे सर्व नाश होगया करना महा मिथ्या और पाप की बात नहीं है ? इसके उपरांत जो पुष्टता वा आरोग्यता आदि शुभगुण, अनाज, साक, पात, फल, फूल के खाने वालों में पाये जाते हैं वे इन मांसाहारियों में दर्शन मात्र को भी नहीं मिलते, क्योंकि वे स्वाभाविक और शारीरिक बनावट से मांसाहारी नहीं हैं।

इसके उपरांत हमारे प्राचीन पुरुष कि जिन के वृत्तान्त महाभारत रामायण इत्यादि इतिहासों में सुने जाते हैं क्या वे हम तुम से किसी बात में कम थे ? नहीं ! नहीं !! और जो कार्य उन्होंने किये वह इन मांसाहा-

रियों से कदापि नहीं होंगे किंतु यह प्रत्यक्ष प्रकट है कि हिंसासे कठोरता, निर्दयता, आलस्य, प्रमाद, रोग, व्यर्थ व्यय इत्यादि दुर्गुण फैल गये कि जिनके कारण कौड़ी के तीन तीन हो रहे हैं और ज़रा ज़रा से मनुष्यों से भय खाकर दुम दबा कर घर में स्त्रियों की भांति छिपते हैं और पुष्टता का दावा करते हैं। एक समय वह था कि जिसके रहते रहते सब के छक्के छूटते थे, सब यहां आकर शिरनवाते थे यथा नाना प्रकार की विद्याओं में उन्नति थी जिनके वर्तमान समय में चिह्न तक दृष्टि नहीं आते रोगों के मारे प्रतिदिन प्रत्येक गृह में द्वन्द पड़ा रहता है क्या इसी का नाम पुष्टता है ? प्यारे भाइयो ! मांस भक्षण से कोढ़, पथरी, अजीर्ण, पेचिस, गंज आदि रोग हो जते हैं और मांस खाने वालों का मांस छुड़ाने में अधिक ढीला पड़जाता है तथा वायु के विकार भी शीघ्र असर करते हैं उन के मुंह से दुर्गन्धि भी अधिक आती हैं, फिर भला बल का क्या कहना ?

इसके अतिरिक्त मांसमें केवल १०० में ३६ भाग वह सत्ता रहती है कि जिससे मनुष्य पुष्ट होता है, शेष ६४ भाग पानी परन्तु अनाज में ८० से ९० फी सैकड़ा वह सत्ता (ताक़त) होती है और सिवाय इसके मनुष्य की स्वाभाविक उष्णता (हरारत शरीरी) के लिये जिस उष्ण वस्तु की आवश्यकता है जिसको कारबोनिसश कहते हैं वह मरे हुवे पशु के मांसमें वनस्पति की अपेक्षा बहुत कम है और जिस वस्तु से हड्डियां बढ़ती वा पुष्ट होती हैं वह भी वनस्पति में अधिक होती है फिर क्या कारण कि मिथ्या पशु मार कर देश का सत्यानाश मार देवें और तनिक भी विचार न करें ? इसके उपरांत मस्तक शक्ति देखने से प्रकट होता है कि मांस का आहार मनुष्य के लिये उपयुक्त नहीं है, क्योंकि संसार में प्रायः जितने बड़े बड़े विद्वान और अनुभवी पुरुष हुये कि जिन्होंने अपनी बुद्धि बल से अनेकान् नवीन विद्याओं में योग्यता प्राप्त की है वे या तो सारी अवस्था में अथवा आयु के एक बड़े भाग में मांस त्यागी हुये हैं। जैसे मनु, पाणिनि, कात्यायन, पतञ्जलि, गौतम, कालिदास, धन्वन्तरि, अर्जुन, भास्कराचार्य, श्रीकृष्ण, व्यास, युधिष्ठिर, भीष्मपितामह, रामचन्द्र इत्यादि और अन्य देशों में प्लेटो, अफ़लातू, प्लेटामार्क, डायोजनीज़, तथा सेन्ट सेमस आदि (जो रूम के फ़िलाफ़सरों में सबसे बड़ा फ़िलासफ़र था) मांस त्यागी निश्चय किये गये हैं, इसी प्रकार और भी मनुष्य हुये हैं।

इसके सिवाय, मांसाहारी जीवों में मांस न खाने वाले बलवान् होते

हैं जैसा कि सिंह मांस खाता है उसके समक्ष गैंडा जो कि मांस नहीं खाता सिंह को धर दवाता है एवं अरनाभैंसा जो मांस नहीं खाता वड़ा वल्वान् होता है। इसी प्रकार मांसाहारी काबुली लोगों से इस देश के चौबे जो मांस नहीं खाते वल्वान् होते हैं इस समय जो ४० करोड़ बौद्ध मतवाले हिंदुस्तान, चीन, जापान में रहते हैं जो मांस खाने का नाम भी नहीं लेते, वे इन मांसाहारियों से वल, पौरुष, बुद्धि आयु आदि कौनसी बात में कम हैं वरन् अधिक हैं।

इसी भांति अन्यत्र देशों में जो मनुष्य मांस नहीं खाते कि जिनको 'विज़ीटेरियन' कहते हैं उन लोगों की समस्त आयु इस बात का प्रमाण है कि उनको मांसाहारियों की अपेक्षा शारीरिक रोग बहुत कम होते हैं। इन लोगों में बहुत व्यक्ति ऐसे भी पाये जाते हैं कि बुढ़ापे तकमें कठिनता से कभी एक दिन के लिये भी कोई रोगा हुआ हो।

इंगलैंड और अमेरिका के विज़ीटेरियन, लोगों में आज तक एक मेंसे कोई भी पुरुष विशूचिका (हैज़ा) के रोगों में ग्रसित नहीं हुआ। प्यारे सज्जनों ! इस पवित्र भारत देश में प्राचीन काल में हैज़ा एक अचम्भे की सी बात थी इस रोग के न फैलने का यही कारण था कि एतद्देश निवासी मांस भक्षण नहीं करते थे देखो स्पार्टी के रहने वाले जो दुनियां की समस्त जातियों के इतिहास में धैर्य, साहस, उद्योग, वल, वीरता और हृष्ट पुष्टता के विचार से अनुपम थे, मांस भक्षण नहीं करते थे। जिन दिनों ग्रीस (यूनान) और रूम (इटली की राजधानी) की समर विजय का झण्डा फहराता था उस समय उन विजयनी सेनाओं के लोग मांसाहारी न थे किंतु जबसे उन्होंने मांस खाने का आरम्भ किया तभी से उनकी अवनति का बीजारोपण हुआ, तद्यपि उनकी अवनति के कई कारण और भी थे इसमें कुछ संदेह नहीं। ग्रीसके साधारण अखाड़ों में नाना प्रकार के शारीरिक वल फुरती के अनेक दांव पेंच और करतव दिखाये जाते थे जब तक ये लोग मांसाहारी न थे अपने उक्त कर्त्तव्यों में एक शक्ति विशेष रखते थे किंतु जब से ये मांस के व्यसनी हुए क्रमशः अचेत और पराक्रम हीन होगये जिससे उनके शिर का मुकुट गिर गया इसके अतिरिक्त जो लोग मांस नहीं खाते वे मांसहारियों की अपेक्षा साधारणतया शरीर से दृढ़ (वज़नी) होते हैं और उनके पुट्ठे बहुत पुष्ट और वली होते हैं और वे कठिन काम करने में नहीं घवराते। प्रोफेसर फाइरिस ने इस

विषय में जो अनुभव किया है उसका सार यह है कि 'अङ्गरेजों की अपेक्षा जो अतीव मांस भक्षी हैं उनके भाई स्काटलैण्ड वाले जो मांस का कम और वनस्पति का अधिक आहार करते हैं शरीर की ऊँचाई बोझ और बल में अधिक उत्तम हैं। स्काटलैण्ड के निवासियों से आयरलैंड के वासी जो रोटी, दाल तथा आलू से निर्वाह करते हैं कई दर्जे श्रेष्ठता रखते हैं, डाक्टर लम्ब भी अपने अनुभव से इसी बातकी पुष्टी करते हैं। उनका विचार है कि—'लापलैंड के रहने वाले जो सिर्फ मांस खाकर जीते हैं पस्ते कद होते हैं और उन्हीं के आगे फिनलैंड वासी जो ठीक उसी भाँति के पवन पानी में रहते और जो अधिक वनस्पति खाते हैं, ऊँचे होते हैं।

अब उपरोक्त लेख से बलके अर्थ माँस खाने की भी आवश्यकता नहीं है वरन् उससे बलकी न्यूनता होती और आरोग्यता में अंतर पड़ जाता है, इसी कारण प्राचीन समय में भारत में क्या वरन् समस्त देशों में माँस खाना प्रचलित न था। हाँ जब से वेद धर्म को त्याग कर और और पुस्तकों को धर्म पुस्तक समझने लगे वा किसी किसी ने वेद और स्मृतियों के अर्थ अपने स्वार्थ के बना लिये, उसी समय से मांस खाने का प्रचार हुआ। पश्चात् उसके हेल मेल के कारण प्रतिदिन इस अभक्ष्य की अधिकता होती गई, यहां तक कि इस समय कोई जाति नहीं बची है। वरन् हमारे पूजनीय पुरुषों में से ब्राह्मण और विशेष कर कान्यकुब्ज महाशय यह कहते हैं कि पशु माँस यज्ञ में चढ़ाकर खाने में कुछ दोष नहीं है। इसी कारण उनके चेले और वे निर्भय होकर माँस भक्षण करते हैं और उस पशुको स्वर्ग में पहुँचाने का दावा करते हैं।

प्यारे भाइयो! जब मैं वेद स्मृति आदि के प्रमाणों से पूर्व ही अहिंसा को धर्म की जड़ सिद्ध कर चुका हूँ तो भला यज्ञ में पशु को काट कर चढ़ाने की आज्ञा वेद में कैसे हो सकती है। केवल अपने स्वाद पर संसार का नाश मार रहे हैं। सज्जनों! तनिक तो विचारो, यदि हवन में काट कर चढ़ाने से पशु स्वर्ग में पहुँच जाता है तो फिर बुड्ढे माता पिता भाई बंधु आदि को हवन में चढ़ाकर स्वर्ग क्यों नहीं पहुँचा देते, वे क्यों स्वर्ग में जाने के अर्थ नाना भांति के संयम नियम करते हैं और अनेक जन्म में स्वर्ग पाते हैं, भला आप उनको क्यों कष्ट देते हो? परंतु यह सब मिथ्या बातें हैं और इन मांसाहारियों ने कल्पित अर्थ कर मांस खाने का चसका डाल दिया और अनेकान सूत्र श्लोक नवीन बनाकर अनेक ग्रंथों से

पच्ची कर दिये जिनके कारण हिंसायुक्त यज्ञ होने लगे। देखिये—

यज्ञार्थं पशवः सृष्टाः स्वयमेव स्वयंभुवा।
यज्ञस्य भूत्यै सर्वस्य तस्माद्यज्ञे वधोऽवधः॥ १॥

ब्रह्माजी ने किसी की आज्ञा न पाके स्वयं यज्ञ के शोभा के लिये पशुओं को बनाया है अतएव यज्ञ में पशु वध करना योग्य नहीं।

प्राणस्यान्न मिदंसर्वं प्रजापतिरकल्पयत्।
स्थावरंजंगमं चैव सर्वं प्राणस्यभोजनम्॥

प्रजापति ब्रह्माजी ने इस संसार में जो कुछ बनाया है वह सब प्राणों का अन्न है स्थावर (अचर) और जंगम (चर) दोनों प्रकार के प्राण का अर्थात् जठराग्नि का भोजन है।

यज्ञाय जग्धिर्मांसस्येत्येषदैवोविधिस्स्मृतः।

यज्ञ करने में मांस का खाना यह उत्तम विधि है।

नियुक्तस्तुयथान्यायं योमांसंनात्तिमानवः॥
सप्रेत्यपशुतांयाति संभवानेकविंशतिम्॥

जो मनुष्य नियुक्त में यज्ञ के मांस को नहीं खाता है (सप्रेत्य) वह मर के २१ बार पशु योनि में रहता है।

मन्त्रैस्तुसंस्कृताश्नीयात् विधिमास्थितः।

मन्त्रों से संस्कार किये मांस को सनातन विधि का आश्रय लेकर खावे।

न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने

मांस खाने में और मद्य शराब के पीने में एवम् मैथुन में कोई दोष नहीं है, क्योंकि यह मनुष्यों का स्वभाव है।

अग्नीषोमीयं पशुमालभेत सौत्रामण्यं सुरांपिबेत्।

सोम यज्ञों में अग्नि सोम देवता वाले पशु वध करें और सौत्रायण यज्ञ में शराब पीवें, इन्हीं मांसाहारियों ने (राष्ट्रं वा अश्वमेधः) (गौः अध्न्या अश्वः) इत्यादि अर्थ भी घोड़े गाय आदि पशु मारकर होम करना बता भारतको हिंसक बना अहिंसा धर्म का लोप कर धर्म अर्थ, काम, मोक्ष चारों अमूल्य पदार्थों को खो दिया। अब उपरोक्त वाक्यों के सत्य अर्थों को श्रवण कीजिये। देखो जब राजा न्याय धर्मसे प्रजा पालन करे तथा विद्या आदि देकर पश्चात् अग्नि में घी आदि से हवन करे तो उसको 'अश्वमेध' कहते हैं अन्न इन्द्रियां किरण पृथ्वी को पवित्र रखना 'गोमेध' कहाता है, गो नाम पशु का है मेधा नाम विद्वान् का है। धन उपार्जन के अर्थ विद्वान् को योग्य है कि

गौ आदि उपकारी पशुओं की रक्षा करे, उसी का नाम 'गो मेध' है। इस के उपरान्त अब मख शब्द पर विचार कीजिये, देखिये निघंटु में 'यज्ञ' के निम्न लिखित पर्यायवाची शब्द लिखे।

यज्ञः वेनः अध्वरः मेधः विदथः नार्थः सवनम्
होत्रादृष्टि देवनात् मुखः पिष्णः छान्तुः।
प्रजापतिः धर्मः इति पंचदश यज्ञ नामानि।

इन शब्दों को व्याकरणानुसार साधन करने से किसी शब्द के अर्थ हिंसा के सिद्ध नहीं होते, इस कारण यज्ञ में हिंसा करना महापाप है।

इस लिये य० अ० २३ मं० १७ में स्पष्ट आज्ञा है कि हे मनुष्यों सब यज्ञों में अग्नि आदि को ही पशु जानों, किंतु प्राणी इन यज्ञों में मारने नहीं, न होमने योग्य है जो ऐसे जान कर सुगन्धित, आदि अच्छे २ पदार्थों को भली भांति आग में होम करने वारे होते हैं वे पवन और सूर्य को प्राप्त होकर वर्षा के द्वारा वहां से छूट कर औषधि, प्राण, शरीर और बुद्धि को क्रम से प्राप्त होकर सब प्राणियों को आनंद देते हैं। इस यज्ञ कर्म के करने वाले पुण्य की अधिकता से परमात्मा को प्राप्त होकर संस्कार युक्त होते हैं और यह भी लिखा है कि गावो घृतस्यमातरः अर्थात् घृतकी माता गौ है, क्योंकि गौ के समान घृत अन्य किसी पशु का नहीं होता, और मनुजी ने अ० ४ श्लोक २३ में प्राण निरोध का नाम लिखा है तथा वेद में पंचयज्ञ नित्य करने की आज्ञा है अर्थात् बलिवैश्व देवादि कर के भोजन करना चाहिये। वहां पर भी कहा है—

शुनां च पतितानां च श्वपचां पापरोगिणाम्।
वायसानां कृमीणां च शनकैर्निर्वपेद्भुवि॥

कुत्तों, कङ्गालों, कुष्टी आदि रोगियों, काक आदि पक्षियों और चींटी आदि कृमियों के लिये छः भाग अलग २ बांट कर देना और सदा उन को प्रसन्न करना उचित है। हा शोक! इन स्वार्थियों पर कि जिन्होंने उलटे चींटी आदिकी रक्षा करनेकी शिक्षा जब वेदने की है फिर भला गाय आदि पशु मारना किस प्रकार सिद्ध हो सकता है? कदापि नहीं।

❀ मछलियां और झींगा खाना ❀

उपरोक्त दोनों जीवों को परमपिता परमेश्वर ने पानी को शुद्ध रखने के लिये उत्पन्न किया है उनको भी खाना आरम्भ कर दिया। ये दोनों अत्यंत छोटे एवं इनका मांस भी गर्म, तिस पर तेल आदि गर्म वस्तुओं से

ही बनाते हैं जिनके खाने से ही धातुक्षीणता तथा गंजादि रोग बहुतायत से हो रहे हैं। इस लिये इनका भी त्याग करना उचित है।

:o:

* शिकार खेलना *

:*:

बहुधा मनुष्योंका यह कथन है कि जब मांस भक्षण करने की मनाई है तो शिकार खेलना भी अनुचित है। इसका उत्तर यह है कि प्रथम तो शिकार खेलना राजा ही का काम है, वह उन जानवरों का शिकार करे जिनसे प्रजा को नाना प्रकार के कठिन दुःख होते हैं जैसे शेर, भेड़िया आदि, क्योंकि राजा का मुख्य धर्म प्रजा की रक्षा करने का है, अतः राजा ऐसे पशुओं के शिकार करने में दोष भागी नहीं होता जैसे जो कोई जन मनुष्यों को दुःख देते हैं उनको दण्ड देना राजा का मुख्य कर्म है कि जिससे सब प्रजा को आन्नद हो, इसी भांति उन पशुओं के शिकार करने से वनवासियों तथा बटोहियों वा दीन पशुओं को सुख होता है, खेती की रक्षा होती है। परन्तु मांस उनका कोई नहीं खाता था वरन् पृथ्वी में गड़वा दिया जाता था हां जो राजा प्रजा में से सर्व हितैषी पशुओं का शिकार कर मांस खाते हैं वे महा पापी होते हैं। जैसे कि मनुजी ने अपनी स्मृति के अध्याय ५ श्लोक ५२ में लिखा है—

स्वमांसंपरमांसेन योवर्द्धयितुमिच्छति।
अनभ्यर्च्यपितृन्देवांस्ततोऽन्योनास्त्यपुण्यकृत्॥

अर्थात् जो मनुष्य अन्य के मांस से अपना मांस बढ़ाने की इच्छा करता है उससे अधिक कोई पापी नहीं बहुधा लोग रामचन्द्र महराज की गणना माँस खाने वालों में करते हैं, यह उनका कहना अत्यन्त ही मिथ्या है। क्योंकि महात्मा रामचन्द्र अपने धर्म की रक्षा करने और प्रजा के पालने, वेद वेदाङ्ग के तत्वों के जानने वाले, धर्मज्ञ, और सत्य प्रतिज्ञ, सब जीवों की रक्षा करने वाले, महा तेजस्वी परम साधु, प्रसन्न चित्त, महान् पण्डित, परम श्रेष्ठ और आर्य पुरुष थे, जो बालकाण्ड सर्ग १ श्लोक १२, १३, १४, १५, वा १६ से विदित है। इसके उपरान्त अयोध्या काण्ड सर्ग २० श्लोक ३० से प्रकट होता है कि जब रामचन्द्र जी महाराज वनयात्रा जाने के लिये तय्यार हुये

तब वह अपनी माता कौशिल्या के पास मिलने गये, उस समय उन्होंने कहा कि हे माता! मैं १४ वर्ष तक वन में जाकर मुनियों की भांति कन्द-मूल और फलों से अपना जीवन व्यतीत करता रहूँगा। इसके उपरान्त कौशिल्या जी की प्रार्थना और रामचन्द्र जी का सीता को समझाना के पाठ करने से अच्छे प्रकार प्रगट होता है कि वह मांसाहारी न थे, देखो अयोध्या काण्ड सर्ग २९। इसके उपरान्त जब श्रीरामचन्द्र जी भारद्वाज ऋषि से मिले हैं वहां भी रस अन्न फल आदि का भोजन किया है देखो अयोध्या काण्ड सर्ग २९ श्लोक ११ से १८ तक। इसके उपरांत भरत ने जब कौशिल्या जी से शपथ की है वहां पर लिखा है कि यदि रामचन्द्र मेरी सम्मति से वन को गये हों वह दोष मुझको लगे जो मद्य, मांस, विष इत्यादि निषिद्ध वस्तुओं को बेचकर कुटुम्बके पालन करने वालों को होता है। देखो अयोध्याकाण्ड सर्ग ७६ श्लोक ३८ और जब श्रीरामचन्द्र जी दण्डकारण्य में गये तो वहां के ऋषि मुनियों ने स्वस्तिवाचन उत्तम स्वरसे पढ़े और कन्दमूल पुष्पादि उनको दिये फिर अयोध्याकाण्ड सर्ग ४, १०९ श्लोक ३ वा ४ जहां अयोध्या का वर्णन है वहां कसाइयों की दूकानों का नाम भी नहीं और न उनके शिर काटने का कहीं कथन है। इस से भी स्पष्ट होता है कि उस समय आर्य पुरुष मांसाहारी न थे। इसी कारण उस समय अयोध्या स्वर्ग भूमि कही जाती थी परन्तु तो भी अनेकानू पुरुष यह कहते हैं कि रामचन्द्रजी ने हिरन का शिकार किया था। प्यारे मित्रों! शिकार खेलना राजा और राज कर्मचारियों का धर्म है जैसा कि हम इससे प्रथम वर्णन कर चुके हैं। इसी कारण रामचन्द्रजी ने भरत से भी कहा है कि पशुओं से मनुष्य और खेती की रक्षा करते रहना। कोई कोई यह भी कहते हैं कि रामचन्द्र मृग मारने के लिये गये थे, नहीं नहीं मुख्य बात यह है कि मारीच रावण के कहने से हिरन बनकर सीता के आगे गया जिस को देख सीता का मन ललचाया और उसने रामचन्द्र को पकड़ने के वास्ते भेजा, फिर लक्ष्मण जी भी गये। रामायण आरण्यकाण्ड सर्ग ४७ श्लोक २२ वा २३ में रामचन्द्र का वचन यह है कि–

> इदं हि रक्षो मृगसंनिकाशं प्रलोभ्य मामादुरमद्भुपयातम्।
> हतं कथंचिन्महता श्रमेण स राक्षसोऽभून्म्रियमाणएव ॥२२॥
> मनश्च मे दीनमिहाप्रहृष्टं चक्षुश्च सव्यं कुरुते विकारम्।
> असंशयं लक्ष्मणनास्ति सीता हृता मृता वा पथि वर्तते वा ॥२३॥

यह मृगरूपी राक्षस हमको ललचाय बहुत दूर चला गया बड़े परिश्रम से हमने उसको मारा और मरने के समय वह राक्षस हो गया। इसी विषय में हितोपदेश के कर्ता विष्णुशर्मा जी कहते हैं कि सोने का हिरन होना असम्भव है परन्तु फिर भी रामचन्द्रजी लालच में आगये।

असम्भवंहेममृगस्य जन्म तथापि रामो लुलुभेमृगाय।
प्रायः समापन्नविपत्तिकाले धियोऽपिपुंसां मालिना भवन्ति॥

फिर आपही स्वयं विचार करें कि जब वह राक्षस होगया तो फिर उनका मांस खाना कहां रहा। इसके उपरांत यदि किसी स्थान पर मांस का खाना रामचन्द्र जी के सिर पर लगाया गया है वह सब वाममार्गियों की करतूत है। देखिये वाल्मीक रामायण आरण्यकांड सर्ग १० श्लोक ६ में स्पष्ट लिखा है कि मांस खाना राक्षसों का काम है -

भक्ष्यन्तेराक्षसैर्भीमैर्नरमांसोपजीविभिः।
ते भक्ष्यमाणा मुनयो दण्डकारण्यवासिनः॥

इसी कारण यजु० अ० २६ मं० २१ में परमेश्वर ने राजा को आज्ञा दी है कि हे शक्तिमान् राजन्! जो स्त्रियों के बीच प्राणियों का मांस खाने वाला व्यभिचारी पुरुष वा पुरुषों के बीच उक्त प्रकार की व्यभिचारिणी स्त्री वर्त्तमान हो, उस पुरुष और उस स्त्री को बांधकर ऊपर को पग और नीचे को सिर करके ताड़ना कर अपनी प्रजा को सुखी करे इसी को न्याय कहते हैं।

मान्यवरो! पशु मनुष्य सम्पति का एक बड़ा अंश है उसी की रक्षा करना प्रत्येक का मुख्य धर्म है जिस समय इनका लालन पालन होता था भारत में दूधों की नदियां बहती थीं जिन के सेवन से बालक युवा और वृद्ध सभी हृष्ट पुष्ट दिखाई देते थे। धन धान्य की वृद्धि का मुख्य कारण पशु ही थे परन्तु आज हम नाम मात्र को माता मानते हैं। बंगाल को छोड़ कर सन् १९०० ई० में भारतवर्ष के पशुओंकी कुल संख्या ९०७ लाख थी और मांस भक्षकों की तादाद २० करोड़। इसी लिए जहां पशुओं की वृद्धि २६२८० लाख होनी चाहिए थी वहां १९१२ ई० में गाय और बैलों की संख्या १९०० लाख ही रह गई। जिस भारतदेश में १८९९ ई० से १९०९ ई० तक दश वर्षों में ३२०८८०९ जीवित पशु जिनका मूल्य २०९०४७३० रुपया था जहाज द्वारा बाहर भेजे और १९७९९२७ जीवित पशु जिनका मूल्य ९४७९९६९ रु० था खुश्की के मार्ग से ईरान और तिब्बत में भेजे जिससे उन्नति के स्थान में २९३७३ लाख पशुओं की कमी हो गई अर्थात्

इस समय ३१ करोड़ भारतवासियों का केवल दो करोड़ गाय भैंसों के दूध पर गुजर होता है औसत निकालने से १५ जन पीछे एक गाय या भैंस पड़ती है फिर बल पौरुष, धन और धान्य की वृद्धि कैसे हो इसलिए अथर्ववेद कांड १२ मं० १० की आज्ञानुसार मांसादि अभक्ष्य भोजनों को त्याग सदा दूध, घी, फल, गेहूँ, चने, चावल उरदआदि उत्तम पदार्थों के भोजन का अभ्यास डालिए। जैसाकि-

"पयश्चरसश्चान्नं चान्नाद्यं चसत्यचेष्टंचपूर्तंचप्रजांच पशुश्च"

—:o:—

नशों का वर्णन।

प्रिय सज्जन पुरुषों! वर्त्तमान समय में नशों का ऐसा बाज़ार गर्म हो रहा है कि कोई बिरले ही माईके लाल होंगे जो इनके फन्दों से बचे हों वरन् बड़े २ महंत, महात्मा, साधु, पण्डित, मुनियों की प्रशंसा लोग इन्हीं नशों के कारण करते हैं, जिसके कारण भारत चौपट हो गया।

शराब पीने का निषेध।

प्यारे सुजनो! मनुष्य का शरीर एक एंजिन के समान है। इस को नियमानुसार यथावत् रखने के लिए तो पूरी रक्षा करें परंतु अपने अनमोल शरीर रूपी एंजिन की जिसका बनाना मनुष्य के बल और बुद्धि से बाहर है उस को जान बूझकर ऐसी बुराइयों में डालकर सत्यानाश मार अपनी संतानों की भी रेड़ मारदें।

शराब एक प्रकार का विष है जिसको 'अलकोहल' कहते हैं। मदिरा मेदे में जाकर उसको पैदा करती है कि जिससे पाचन नहीं होता तथा अंग में नाना प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। तत्पश्चात् आमाशय से भोजनों का बहुत सा भाग रोगों के द्वारा कलेजे में पहुँचता है, तब कलेजा उन भोजनों के रस को पचाकर पित्त उत्पन्न करता है तथा लोहू बनाता है। परंतु शराब के पीने से उसके बारीक पुर्जे थोड़े ही काल में निकम्मे हो जाते हैं तथा कलेजा सुकड़कर बहुत छोटा होकर सूखजाता है और मनुष्य जलोदर आदि रोगों में फँस कर नाना दुःखों को सहन कर अपनी प्यारी जान से हाथ धो बैठते हैं। इसका प्रभाव मस्तक पर भी होता है जो शरीर कार्य अच्छे प्रकार से हो सकते हैं। शराब के पीनेसे मस्तक में लोहू जमा

हो जाता है जिस से लकवा या सक्ता आदि भयानक रोग उत्पन्न हो जाते हैं मुख्य प्रयोजन इस कथन का यह है कि शराबी शरीर रूपी वृक्ष के धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, चारों पदार्थों का नाश मार अपनी संतान की दुर्गति कर जाता है क्योंकि आरोग्यता तो नामको भी नहीं रहती बहुधा पीते पीते पागल हो जाते हैं, रक्त विकार के रोग उनको सदा घेरे ही रहते हैं इसी कारण धर्म शास्त्र में इसका निषेध किया है तथा इस के पीने वालों की गणना महापापियों में की है। जैसा कि मनुस्मृति अध्याय ११ श्लोक ५५ में लिखा है—

ब्रह्महत्या सुरापानंस्तेयं गुर्वङ्गनागमः।
महान्ति पातकान्याहुः संसर्गश्चापितैः सह ॥५५॥

अर्थात् ब्रह्महत्या, शराब पीना, चोरी करना, गुरु की स्त्री से विषय करना और ऐसे काम के करने वालों के साथ मेल मिलाप अर्थात् मित्रता करना, ये पांच महापातक हैं। और उसी अ० के ६४ श्लोक में लिखा है।

सुरावैमलमन्नानां पाप्मा च मल मुच्यते।
तस्माद् ब्राह्मणराजन्यो वैश्यश्च न सुरांपिवत् ॥

अर्थात् अंन के मल को शराब कहते हैं और मल त्याग करने योग्य है, इसलिये प्रत्येक को शराब न पीना चाहिए।

प्रिय सज्जनों! यदि आपको अपनी शारीरिक उन्नति वा धन प्राप्त करने तथा उसकी रक्षा का ध्यान है वा धर्म पालन वा नाना आपत्तियों से बचने तथा देश, जाति को आनंद मङ्गल में देखने की अभिलाषा है तो सदा इस ज़हरीले पानी से आप बचिये और औरों को बचाइये।

❀ अफ़ीम खाना ❀

(१) अफीम खाने से बुद्धि कम हो जाती तथा मस्तक में खुश्की बढ़ जाती है।। (२) मनुष्य न्यून बल तथा सुस्त हो जाता है। (३) मुख का प्रकाश कम हो जाता है। (४) मुंहपर स्याही आ जाती है। (५) मांस सूख जाता तथा खाल मुरझा जाती है। (६) वीर्य का बल निर्बल हो जाता है। (७) बच्चों पिनकी में पड़े रहते, रात्रि को नींद नहीं आती, प्रातःकाल सोते हैं। (८) दोपहर को शौचालय में घंटों बैठे रहते हैं। (९) समय पर अफ़यून खाने को न मिले तो आंखों में जलन पड़ती तथा हाथ पांव ऐंठते हैं। (१०) जाड़े के दिनों में पानी से डर लगता है कि जिससे

स्नान तक नहीं करते, शरीर में दुर्गन्धि आने लगती है। (११) रक्त पील पड़ जाता है खांसी आदि रोग हो जाते हैं। इस लिये इसको भी न खाना चाहिये।

तम्बाकू।

वैद्यक ग्रन्थों के देखने से स्पष्ट प्रकट होता है कि तम्बाकू संखिया से भी अधिक नशेदार बूटी है, अर्थात् किसी वनस्पति में इससे अधिक नशा नहीं है। डाक्टर टेलर साहिब का कथन है कि जो मनुष्य तम्बाकू के कारखानों में काम करते हैं उनके शरीर में नाना प्रकार के रोग हो जाते हैं इसी प्रकार बहुधा डक्टरों ने साबित किया है कि इसके धुएं में ज़हर होताहै अर्थात् इसका धुआँ भी शरीर की आरोग्यता को हानिकारक है अर्थात् जो मनुष्य तम्बाकू पीते हैं उनका जी मचलाने लगता और कै होने लगती है, हिचकी उत्पन्न हो जाती, दम कठिनता से लिया जाता है और नाड़ी की चाल धीमी पड़ जाती है। परन्तु जब मनुष्य को इसका अभ्यास हो जाता है तब ये सब बातें कम होजाती हैं।

डाक्टर स्मिथ का वचन है कि तम्बाकू के पीने से दिल की चाल पहिले तेज़ फिर धीरे धीरे कम हो जाती है। वैद्यक से स्पष्ट प्रकट है कि तम्बाकू बहुत ही ज़हरीली (विषैली) वस्तु है, क्योंकि इसमें नेकोशिया कारबोनिक एसिड, मेगनेशिया इत्यादि वस्तुएं मिली रहती हैं २४घंटे में एक पुराना तमाखू पीने या खाने वाला, जितना सेवन कर सकता है उतना नेकोशिया एक साथ खा लेने से तत्काल मृत्यु हो सकती है। अतः इसका सेवन दिलको निर्बल कर देता है जिससे खांसी, दमा, तिल्लीका चिररोग तथा भयानकक्षय, मन्दाग्नि, शिर का शूल, नेत्रों में कम प्रकाश का होना तथा अन्य स्नायु सम्बन्धी रोग एवं अन्य नाना प्रकार के रोगों के उत्पन्न होने से आरोग्यता में अन्तर पड़ जाता है। इसके अतिरिक्त स्त्रियां पुरुषों से स्वभावसिद्ध दुर्बल होती हैं अतः उनको पुरुषों से अधिक स्नायु सम्बन्धी रोगोंसे दुःख भोगना होता है। अब बुद्धिसे विचारिये कि मुसलमान तथा ईसाई आदिसे तो बड़ा परहेज़, परन्तु वाहरे तम्बाकू कि जिसकी प्रीति में धर्म कर्म की कुछ भी सुध नहीं। देखो मुसलमान तमाकू बनाने वाले अपने बर्तनों से ही अपने बड़ों का पानी डालते हैं वही सब मजे से पीते हैं इसके अतिरिक्त एकही चिलम को हिन्दू मुसलमान ईसाई आदि सब पीते हैं कि जिसके प्रभाव से आपस में अवखरात अदल बदल होते हैं, तो अब कहिये कि

हिन्दू तथा मुसलमान ईसाईयों में क्या अन्तर रहा ? क्या इसीका नाम शौच वा पवित्रता है ? इस हेतु स्कूल, कालिज तथा देशी पाठशालाओं के हेडमास्टरों को भी उचित है कि वे कभी हुक्के वा सिगरेट को न पियें कि जिनकी देखा देखी विद्यार्थीगण भी पीने लग जाते हैं। इसके अतिरिक्त तमाकू आदि पीने की आज्ञा किसी सत् शास्त्र में भी नहीं पाई जाती, देखिये ब्रह्माण्ड पुराण में लिखा है कि:—

प्राप्ते कलियुगे घोरे सर्व वर्णाश्रमे नराः।
तमालं भक्षितं येन सगच्छन्नरकार्णवे।

अर्थात् इस घोर कलियुग में जो तमाकू खाता अथवा पीता है वह नरक को जाता है। देखिये पद्मपुराण में भी लिखा है—

धूम्रपानरतं विप्रं दान कुर्वन्ति ये नरः।
दातारो नरकं यान्ति ब्राह्मणो ग्रामशूकरः॥

अर्थात् जो मनुष्य तम्बाकू पीने वाले ब्रह्मण को दान देताहै वह नरक को जाता है और ब्रह्मण ग्राम में सुअर का जन्म लेता है।

भंग—पीने से भी मस्तक में घुमनी आती, सिर दर्द उत्पन्न हो बुद्धि विपरीत हो जाती है, चुल्लू भर पीकर निर्बुद्धियों की सी बातें करने लग जाते हैं।

गांजा—इससे मुखड़े की शोभा जाती रहती है, खांसी उत्पन्न हो जाती है, चर्स पीने से 'दमा' हो जाता है जो दम के साथ ही साथ जाता है। चण्डू से सैकड़ों घर उजाड़ हो गये; मुंह पर हवाई उड़ती हैं, पग पग पर घुमनी आतीहै, निर्बलता अधिक हो जातीहै, पानी से भय होता है इस लिये सदा मैले कुचैले रहते हैं कभी २ मार्ग में गिर भी पड़ते हैं, मदक से भी शरीर की रगें नीली पड़ जाती हैं इसकी चाह में घंटों इधर उधर मारे २ फिरते हैं इन परोक्त हानियों के अतिरिक्त जितना २ अधिक पीने का अभ्यास हो जाता है उतना २ अधिक धन और समय व्यर्थ जाता है और भारत वर्ष का करोड़ों रुपया इन नशेबाजियों में फुंक गया। १९१२ ई० की की रिपोर्ट देखने से ज्ञात हुआ कि सिंध की आवादी ३० लाख है वहां १ लाख १९ हजार सेर भंग पी गई। बम्बई की जन संख्या १ करोड़ है उसमें ६० लाख ६४ हजार सेर नशा पिया गया। संयुक्तप्रांत ने १ करोड़ ६६ हजार सेर भंग और ६४ हजार सेर अफीम, पंजाब जिसकी जन संख्या बंबईके बराबर है १ करोड़ों २९ हजार सेर भंग और ६६ हजार सेर अफीम। बंगालमें

२ लाख ५१ हज़ार सेर भंग और ६७ हजार सेर अफ़ीम खाई गई। अर्थात् १९१८–१९ ई० में १९ लाख गैलन देशी शराव भारतमें खपी और १ करोड़ २ लाखकी आमदनी सरकार को हुई और १९१९–२० ई० में ११ लाख की विकी और १ करोड़ दस लाख की आमदनी हुई अर्थात् गत वर्ष से ८ लाख का आमदनी अधिक हुई और भंगभवानी से २८ फीसदी, चरस से १४ फ़ीसदी, गांजे से १६ और अफ़ीम से १९ फीसदी की अधिक आमदनी सरकार को हुई। हा! कैसे शोक का स्थान है कि—

यूरोप, अमेरिका और फ्रांस आदि देशों में इन बुरे व्यसनों के सेवन न करने के रूलपास हों पर भारतदेश जो प्राचीन समय में इन व्यसनों के स्वप्न में भी दर्शन नहीं करता था वह इस समय इन दुष्ट नशों में अपनी व्यापारी कमाई को ही चूरन नहीं करता किंतु देश निवासियों ने उपरोक्त नशों के कारण अपने शरीर को भी भस्मीभूत कर दिया। इसके उपरांत और भी शोक की वात है कि हमारे देश की स्त्रियां इन नशों का सेवन करने लगी हैं तो वतलाइये कि देश की सुदशा क्यों कर हो सकती है इस हेतु प्रत्येक स्त्री पुरुष को ध्यानपूर्वक उपरोक्त हानियों को जान कर इन नशों पर धता भेजनी चाहिये वरन् यह स्मरण रहे कि स्त्रियोंके नशों के अभ्यास से धन और समय के व्यर्थ जाने के उपरांत संतानों के बलिष्ट और अरोग्य एवं ज्ञानवान तथा पूर्णायु का होना असम्भव हो जायगा। इस लिये इस बुरी वला से प्यारी वहिनों और सुयोग्य स्त्रियों तुम सदावच अथर्वेद कांड १ अनुवाक २ सूत्र ४५ मं० १ के अनुसार सब स्त्री पुरुषों को विज्ञान पूर्वक देश, काल, अग्नि, जल, वायु, खान पान आदि पदार्थों का ठीक उपयोग कर अपने स्वास्थ्य और ऐश्वर्य्य को बड़ा आनन्द युक्त जीवन को व्यतीत करना चाहिये।

संस्कार *

मनुष्यों के १६ संस्कार गर्भाधान से लेकर मृत्यु पर्यंत अवश्य करना चाहिए, जैसा मनुस्मृति अध्याय २ श्लो० १६ में लिखा है—

निषेकादिश्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितो विधिः।

वे सोलह संस्कार ये हैं— गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म,

नामकर्ण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म, कर्णवेध, उपनयन, वेदारम्भ, समावर्त्तन, विवाह, वानप्रस्थ, संन्यास और अन्त्येष्टि।

व्यासस्मृति अ० १ श्लोक १९ में भी इन्हीं संस्कारों को बतलाकर १६ की गणना की है कि 'संस्काराः षोडशस्मृताः।

भविष्पुराण पूर्वार्द्ध के अ० १ में सुमन्त ने इन्हीं सोलह संस्कारों के लिये उपदेश किया है क्योंकि जो विवेक आदि वैदिक संस्कारों से पवित्र होते हैं वह अवश्य ही मुक्ति पाते हैं।

परन्तु किसी किसी स्मृति में १७ और किसी में १९ संस्कार पाये जाते हैं, इस न्यूनाधिकता का मुख्य कारण यही है कि किसीने दो संस्कार एक के अन्तर्गत कर दिया है, किसी ने पृथक् पृथक् माना है। अस्तु संस्कार १६ ही हैं, इसमें कुछ मत भेद नहीं पाया जाता। यद्यपि 'दश-कर्मपद्धति' पुस्तक बनाने वाले पण्डितों ने वर्तमान समय की रीत्यनुसार दश ही संसकार माने हैं, तो भी १६ का खण्डन नहीं किया। उस गणना से भी १६ संसकार सिद्ध हो जाते हैं। क्योंकि उन्होंने उपनयन, वेदारम्भ, समावर्तन, इन तीनों संसकारों को वर्तमान समय की रीत्यनुसार एक ही के अन्तर्गत कर दिया है और केशान्त संसकार को एक देशीय और सं-न्यास वानप्रस्थ और अन्तेष्टिकर्म प्रचार होने के कारण नहीं माने परन्तु इन सब के मिलने से १६ संस्कार हो जाते हैं। इसलिये मैं दशकर्म पद्धति बनाने वाले पण्डितों से प्रार्थना करता हूँ कि उस पुस्तक में उक्त तीनों संस्कारों की विधि बढ़ादें जैसा कि स्मृतिकारों ने आज्ञा दी है, जिससे संसार में संस्कारों की परिपाटी बनी रहे।

इसके अतिरिक्त इस समय भी जब कि भारत धर्मपरिपाटी बहुत अधो-गति पर है इनमें से आधे से अधिक संसकार प्रत्येक ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के यहां होते हैं, यद्यपि उनकी वेदानुकूल रीतें जाती रहीं और नाम मात्र के पौराणिक पण्डितों ने मनमानी रीतें प्रचलित करली है।

परन्तु शोक है! कि वर्तमान समय के बहुधा बड़े जन कि जिन्होंने ऋषि मुनियों के ग्रन्थों पर दृष्टि भी नहीं डाली जो वेद विद्या और उस के सिद्धांतों से बिलकुल अनजान हैं, या जिन्होंने अपनी सम्पूर्ण आयु को दूसरे देश की विद्या और उसके रहने वालों में रह कर उनके सिद्धांतों को सीख कर उनकी ही पुस्तकों को पाठ में व्यय की है, जो उन्हीं के गिरोहों में रहते हैं, इनके सूक्ष्म मर्म से निपट अज्ञान रहे। गर्भाधानादि सोलह सं-संस्कारों में नाना प्रकार की शंकायें उत्पन्न करते हैं और बहुधा नेचरिया

विवाह आदि दो एक संस्कार को तो मानते हैं परन्तु यज्ञोपवीतादि करने को वे वृथाही समझते हैं। इसका मुख्य कारण यही है कि वह यह नहीं जानते कि संस्कार का अर्थ क्या है और इस का फल कुछ होना है या नहीं? देखिये 'सम् पूर्वक' कृञ् धातु से संस्कार शब्द सिद्ध होता है जिस केअर्थ अच्छे प्रकार सुधार करना है।

यह दो प्रकार का होता है (१) शरीर सम्बन्धी (२) आत्मा सम्बंधी या अन्तःकरण सम्बन्धी। इन दोनों में आत्मासंबन्धी संस्कार अति उत्तम है, इसी कारण यज्ञोपवीत और वेदारम्भ मुख्य समझे जाते हैं।

प्रियवरो! जितनी वस्तुयें इस संसार में परब्रह्म परमेश्वर ने उत्पन्न की हैं, मैं जानता हूँ कि उन सबको सुधार की आवश्यकता है, यहां तक कि विना सुधार किये हम उनसे अपना कार्य भी नहीं ले सकते और न वे उत्तम जान पड़ती हैं, यथा आप नहीं देखते कि पत्थर जब तक वह अपनी स्वाभाविक दशा में होता है तो अच्छा नहीं मालूम पड़ता, परन्तु जब उस को कोई शिल्पकार दुरुस्त करता है तो वही पत्थर उत्तम जान पड़ता है और प्रत्येक मनुष्य उसको देख कर प्रसन्न होता है। इसी प्रकार हीरा आदि रत्न भी विना सान दिये बेडौल रहते हैं और सान देने पर उत्तम जान पड़ते हैं। यही सान देना एक प्रकार का संस्कार कहाता है। इसी प्रकार बुरी से बुरी और छोटी से छोटी भी वस्तु अच्छी और बड़ी हो सकती है। पक्षी की भाषा और रंग भी सुधार से उत्तम हो जाता है।

परन्तु शोक है कि हम पशु पक्षियों और घास आदि के सुधार के लिये नाना प्रकार के उपाय (संस्कार) करें और मनुष्य मात्र के सुधारके अर्थ संस्कार करना वृथा समझें। देखिये, जो मनुष्य वेदारम्भ संस्कार कर विद्या पढ़ लेते हैं वही सभ्य है ओ विद्या नहीं पढ़ते वही असभ्य कहाते हैं। इस लिये मान्यवरो! आप भी मनु महाराज के लेखानुसार वेदानुकूल संस्कार कर आनन्द उठाइये जैसा कि मनु० अ० २ श्लोक २६ में कहा है।

वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैर्निषेकादिर्द्विजन्मनाम।
कार्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च॥

द्विजातियों के गर्भाधानादि संस्कार वेद मंत्रों से होने चाहियें क्योंकि इससे शरीर और आत्माकी शुद्धि अर्थात् संस्कारों के करने से सन्तान शुद्धि निष्पाप और बड़ी धर्मात्मा हो जाती है।

❀ (१) गर्भाधान ❀

मित्र सभ्य महोदयो ! इसी संस्कार पर हमारी शारीरिक और आत्मिक उन्नति निर्भर है, देशोन्नति और अवनति का बीज इसी समय उत्पन्न होता है, कुल के सभ्य वा कीर्ति रूपी सूर्य से चमकने की नीव इसी समय पड़ती है, सांसारिक और परमार्थिक सुखों का प्रारम्भ यहीं से होता है, चारों आश्रमों के विधिवत पालन करने वाले पौधे का मूलारोपण इसी समय होता है, इसी संस्कार पर सम्पूर्ण सृष्टि के बनने और बिगड़ने का दायित्व है, फिर इतने बड़े महत्व के पौधे पर ध्यान न देना कैसे शोक की बात है। जैसे चतुर शिल्पी सांचे से मनमानी मूर्ति आदि गढ़ सकता है ठीक वैसे ही हम भी राम कृष्ण से पुत्र और सीता राधा दमयन्ती सी पुत्रियां उत्पन्न कर सकते हैं। परन्तु कब ! जब कि हमारे सारे कार्य विधि पूर्वक हों। लेकिन बाहरी सभ्यता ! इच्छा तो करते हैं कि यदि 'श्रवण' सा पुत्र हो तो सेवा खूब करे परन्तु इच्छा करने पर भी उन नियमों पर एक क़दम नहीं चलना चाहते, फिर अभीष्ट सिद्ध हो तो कैसे हो ? मूर्ख मनुष्य 'इमरती' खाना तो चाहता नहीं, फिर मज़ा मालूम हो तो कैसे हो इस हेतु ऐ देश हितैषी ! संसार के सभ्य महोदय ! यदि आप अपनी इच्छा पूर्ण किया चाहते हैं तो सबसे प्रथम इसी संस्कार पर आपको पत्नी सहित पूर्ण रूप से ध्यान देना चाहिये। क्योंकि जब तक इस संस्कार की प्रणाली न सुधारी जायगी तब तक अन्य १५ संस्कार भी पूर्ण रूप से फलप्रदाता न होंगे। क्या वृक्षकी जड़ काट उसके पल्लवित होने की आशा की जा सकती है ! नहीं, कदापि नहीं, ऐसा त्रिकाल में भी होना सम्भव नहीं ! अतएव प्रिय सभ्यगणों ! एवं प्यारी महिलाओ ! यदि तुम संसार को स्वर्णमय देखा चाहती हो, यदि मनुष्यश्रेणी की गणना से मूर्खों का बहिष्कार कर देना चाहती हो, यदि भारतको 'सितारे मुल्क' बनाया चाहती हो तो मनोयोग से इस संस्कार पर ध्यान दो। *

(२) पुंसवन।

यह संस्कार गर्भस्थिति के दूसरे वा तीसरे मास किया जाता है। पुंसवन पुनान्सूयतेअनेन—अर्थात् जिससे पुरुष उपजाता है। उसको पुंसवन कहते हैं तीसरे मास गर्भ में बच्चे का बनना शुरू हो जाता है इस लिये ईश्वर की कृपा का धन्यवाद दे गर्भस्थ बालक को वीर्यवान्-धनवान् धैर्यवान्

और शक्ति तथा शील आदि गुणों से युक्त होने के लिये माता पिताको ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिये जैसाकि यजु अध्याय १२ मंत्र ४ में उपदेश है। इसके उपरान्त।

जैसे वृक्ष सुन्दर शाखा पत्र पुष्प फल और मूलों से युक्त होकर शोभि। होते हैं। जैसे पशु पूंछादि से सुख को प्राप्त होते हैं और जिस प्रकार पक्षी अपने पंखों से ऊँचे आकाश में उड़ कर सुखी होते हैं वैसे ही गर्भस्थ बालक अपने अङ्ग और प्रत्यंग से वृद्धि को प्राप्त होता हुआ उत्तम विद्या और शिक्षा को प्राप्त हो पुरुषार्थ के साथ नाना प्रकार के सुखोंका अनुभव करे। ऋग्वेद ५। ७८। ९ में आदेश है कि।

जीव दस मास तक माता की कोख में रह कुमार बन जीवत औरबिना किसी कष्ट के जीती जागती माता की कोख से बाहर निकल आवे।

इसके उपरांत माता को बड़े यत्न से गर्भ की रक्षा करनी चाहिये बादी की चीजें और दस्त आने वाली वस्तुओं का सेवन न करे अत्यन्त गरम चीजों के खाने से गर्भश्राव का डर रहता है इस लिये गरम चीजें न खावे क्योंकि जैसे कोमल पौधों की रक्षा में बड़ी कठिनता होती है उसी प्रकार गर्भस्थ जीव की दशा बड़ी कोमल होती है यदि थोड़ी सी चोट लग जावे या और कोई आघात पहुँच जावे तो उसे मृत्यु के दुख में पतित हुआ ही समझिये। अतएव इस समय माता को बड़ी ही सावधानी रखनी चाहिये दिनका सोना रातका जागना-चिन्ता-भय-शोक ऊँचे नीचे चढ़ना उतरना शरीर के किसी भाग का खून निकलवाना-मल मूत्र के वेग को रोकना बासी-सड़ी-कड़ी चीजों के खाने भयंकर, दृश्यों के देखने, भयंकर शब्दों के सुनने से बचा रहना चाहिये। महर्षि सुश्रुताचार्य जी शारीरक०। ३। ६ में उदेपश करते हैं कि—

काशीफल-कटहल- निहार मुंह शरबत-अत्यन्त चावल आदि वातकारक पदर्थों के सेवन से और बाहर की चोट आदि के लगने से गर्भिणी के जिन जिन अङ्गों को दुःख पहुँचता है उसी से गर्भस्थ बालक भी पीड़ित होता है।

(३) सीमन्तोन्नयन।

उक्त संस्कार का समय चौथा, छठा और आठवां मास है गर्भिणी के

* इस संस्कारकी विधि एवं गर्भाधानके सम्पूर्ण विषय बनाई गई गर्भाधान विधि नामक पुस्तक में अवश्य देखिये मूल्य ≈)

मनको शान्त रखने तथा मानसिक उच्चविचारों से पूर्ण संकल्प विकल्प रखने की इस संस्कार में आज्ञा है क्योंकि चतुर्थ मास से ही गर्भजात बालक की मासिक उन्नति आरम्भ हो जाती है, इस हेतु गर्भिणी जिन २ विचारों को अपने मनमें आश्रय देगी उन विचारों का बच्चे पर अवश्य प्रभाव पड़ेगा, और अन्त में बच्चे की रुचि उन्हीं विचारों को अधिक रहेगी इसलिये विधि पूर्वक संस्कार की क्रियाओं को समाप्त करके पत्नी को आदेशानुसार कार्य करना अभीष्ट है।

❀ ४ जातकर्म ❀

यह संस्कार संतान की उत्पत्ति के समय होता है जब बालक उत्पन्न हो उसी समय उसको सुवर्ण मधु और गौ का घृत तीनों मिलाकर चटावे क्योंकि ये तीनों चीजें बुद्धि, आयु, आरोग्य और बल को बढ़ाने वाली हैं तत्पश्चात् नालच्छेदन का विधान करे।

❀ (५) नामकर्ण ❀

पुत्र या पुत्री के जन्म समय से १० दिन छोड़कर ११ वा १०१ वें दिन वा तीसरे वर्ष के आरम्भ में यदि पुत्र हो तो दो या चार अक्षर क घोष संज्ञक और अन्तःस्थ वर्ण अर्थात् पांचों वर्गों के दो दो अक्षर छोड़ कर जिसमें हों तीसरा चौथा पांचवां और य, र, ल, व, ये चार वर्ण अवश्य आवें, ऐसा नाम रक्खे। यदि पुत्री हो तो तीन वा पांच अक्षर का नाम रक्खे जैसे यशोदा, सुखदा इत्यादि। इनके उपरात इस बात का भी ध्यान रहे कि नाम बहुत लम्बा चौड़ा न हो, सुनने में प्रिय सार्थक हो और किसी वृक्ष पक्षी पर्वत आदि पर न हो और ऐसा भी नाम न रक्खे जिसके सुनने से भय मालूम हो। यदि ब्राह्मण हो तो शर्मा क्षत्रिय हो तो वर्म्मा, और वैश्य हो तो गुप्त नाम के अन्त में लगावे, जैसे-देवशर्मा, देववर्म्मा, देव गुप्त इत्यादि। ऐसे नामों के रखने का मुख्य तात्पर्य यह था कि प्रत्येक जान लेवे कि हम ब्राह्मण या क्षत्रिय या वैश्य हैं, इस लिये हमको सत्कर्मों में प्रवृत्त होना और बुरे कर्मों से घृणा करनी चाहिये। क्योंकि वर्तमान समय में भी रायबहादुर, सितारेहिन्द आदि नाम प्रतिष्ठित गिने जाते हैं और जिनको वह मिलते हैं उनको उतनाही अधिक ध्यान उत्पन्न कराते हैं और वह मानते हैं कि हमारा यह काम है, हम प्रतिष्ठित हैं हमको यह काम

× अधिक 'युवती रोग चिकित्सा' में देखिये मू० ।=)

करना योग्य है। परन्तु शोक है कि वर्त्तमान समय में इस उत्तम परिपाटी पर हमारे भाई बहिन कुछ भी ध्यान नहीं देते और अण्ड के संण्ड नाम रखते हैं।

(६) निष्क्रमण अर्थात् हवा खिलाना।

इसका समय जन्म से ४ मास तक है। संस्कार के पश्चात् बस्ती के बाहर जहां शुद्ध वायु धीरे २ चलता हो, शुद्ध पवित्र कपड़े पहना कर ले जावे और उस दिनसे नित्यप्रति संध्या, प्रातःकाल भेजा करे, जिससे उनकीशरीरिक उन्नति हो, यदि बालक निर्बल या रोगी हो तो विद्वज्जन कोई और समय नियत करलें।

(७) अन्नप्राशन अर्थात् चटाना।

किसी २ ऋषि ने इसका समय छटे महीने लिखा है और किसी ने लिखा है कि यह संस्कार उस समय हो जब बालक को पाचनशक्ति हो जावे क्योंकि इसका अभिप्राय यही है कि उस दिन से बालक को अन्न दियाजावे। संस्कार के पश्चात् बालक को भात में दही, घी और शहद मिला कर खिलावे। तत्पश्चात् उत्तम विधि से बना हुआ नरम थोड़ा भोजन दे जैसा गर्भाधान विषय में लिखा है ताकि बालक के रोग न हो।

(८,९) चूड़ाकर्म अर्थात् मुण्डन और कर्णवेध (कनछेदन)

इनका समय कम से कम ३ और ५ वां वर्ष है चूड़ाकर्म संस्कार के दिन चतुर नाई से बालक के बाल मुंडवावे। कर्णवेध के दिन चरक सुश्रुत वैद्यक ग्रन्थों के जानने वाले के हाथ से कर्णवेध करावे, जो नाड़ी को छोड़ कानबींधे तत्पश्चात् ऐसी औषधि उस पर लगावे जिससे कान न पके और शीघ्र आराम हो जावे।

(१०) उपनयन अर्थात् जनेऊ।

इस संस्कार का वेदानुकूल समय ब्राह्मण के लिये ८ वर्ष, क्षत्रिय को ११ और वैश्य के लिए १२ वर्ष है। जैसाकि मनु० अ० २ में लिखा है।

गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम्।
गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः ॥ ३६ ॥

और ऐसाही विष्णुस्मृति अ० १ श्लोक १३, १४, व्यासस्मृति अ० १ श्लोक १९, श्रीमद्भागवत, महाभारत, मार्कण्डेयपुराण, भविष्यपुराण,

और याज्ञवल्क्यस्मृति में भी लिखा है और य० अ० १६ मं० १७ में आज्ञा है कि यज्ञोपवीत धारण करे इसके उपरांत यह भी लिखा है कि यदि किसी कारण से उपरोक्त समय परयज्ञोपवीत न हो सके तो ब्राह्मण १६ क्षत्रिय के २२ और वैश्य के वालक का २४ वर्ष से पूर्व यज्ञोपवीत अवश्य होना चाहिये। तत्पश्चात् गायत्री का अधिकार नहीं रहता। जैसे मनु० अ० २ लिखा है पुरुषों की भांति स्त्रियों के भी उपनयन किये जाते थे। यमस्मृति में लिखा है।

पुराकल्पे तुमारीणां मौञ्जी बन्धनमिष्यते।
अध्यापनंचवेदानां सावित्री वाचनं तथा॥

अर्थात् प्राचीन काल में स्त्रियों के जनेऊ होतेथे और वह वेदोंको पढ़ती थीं तथा गायत्री का जप करती थीं।

इसी संस्कार के समय आचार्य्य वालक को गायत्री आदि वेदोक्त कर्मों के करने की शिक्षा करता है जिसको वह सदा करता रहे। इसी समय वालक ब्रह्मचारी होने का सर्व साधारण के सामने प्रण करता है। परन्तु शोक है कि वर्त्तमान समय में बहुधा क्षत्रिय और वैश्यों के यहां यह संस्कार नहीं होता। यदि उनसे पूंछा जावे तो वह कह देते हैं कि "हमसे नहीं सध सकता" और पौराणिक पितृकर्म आदि में पहन लेते हैं! बहुधा घरानों में जब घर का बूढ़ा मर जाता है तो उन के उन के पुत्रों में जो सब से बड़ा होता है विना वेदोक्त संस्कार किये जनेऊ धारण कर लेता है, जिसकी आज्ञा कहीं नहीं पाई जाती है। परन्तु शोक का स्थानहै कि सभ्यजन इस ओर कुछ भी ध्यान नहीं देते।

इस विषय में बहुधा ऋषियों का कथन है कि जिन का यज्ञोपवीत संस्कार क्रिया पूर्वक नहीं हुआ, मनुष्य मात्र उनसे विवाह आदिक किसी प्रकार का सम्बन्ध आपत्काल में भी न रक्खें न ऐसे मनुष्य गायत्री के अधिकारी रहते हैं, जब तक प्रायश्चित् न करावें जैसा कि मनु० अ० २ श्लोक ३९ वा ४० में लिखा है—इसके उपरांत इस संस्कार के न होने से वेदारम्भ संस्कार की आवश्यकत ही नहीं रही, फिर वेदों का प्रति दिन पढ़ाना क्योंकर हो सकता है अर्थात् पंचकर्म करने की शास्त्र की आज्ञा है वह भी नहीं हो सकती और न द्विज कहला सकते हैं। इसलिये विचार कर इस धर्म मर्यादा को प्रचलित कर संस्कार का उद्धार कीजिये। और वर्तमान समय में जो कंठ में कण्ठी बांधने की रीति अत्यन्त प्रचलित होगई जिसके

लिये कोई वेदोक्त आज्ञा नहीं है, मिथ्या जान ब्रह्मण, क्षत्रिय, वैश्य को इस की परिपाटी शीघ्र उठा देनी चाहिये । इसके उपरांत यह भी स्मरण रहे कि जब नवीन यज्ञोपवीत धारण करे तो इन मंत्रों को पढ़ कर पहने-

ओ३म् यज्ञोपवीतंपरमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात् ।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तुतेजः ॥ १ ॥
यज्ञोपवीतमसियज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि ॥ २

❀ (११) वेदारम्भ ❀

गायत्री मंत्र से लेकर सांगोपांग चारों वेदोंके अध्ययन करने के लिये नियम धारण करने का नाम वेदारम्भ-संस्कार कहता है । यह संस्कार उपनयन के दूसरे दिन या एक सालके भीतर किसी दिन होता है उस दिन-से ब्रह्मचारी गुरुकुल में जाकर विद्याध्ययन करता है कि जिससे मनुष्य के आत्मिक संस्कारों की उन्नति होना सम्भव है क्योंकि विना वेदादि विद्या पढ़े कभी धर्म के मर्म को नहीं जान सकता । पूर्व समय में इसी संस्कार पर अधिक बल दिया जाता था, क्योंकि विना इस संस्कारके कभी शरीर और विद्या की उन्नति नहीं होती । पूर्व ऋषियों ने इस विषय में बड़े बड़े ग्रन्थ लिखे हैं और हमारे प्राचीन पुरुषा उन के लेखानुसार यज्ञोपवीत संस्कार कराकर अपने पुत्र पुत्रियोंको गुरुकुलमें भेज यथावत् विद्योपार्जन कराते थे । और गुरुजन बड़े प्रेम और भक्ति से उन पुत्र-पुत्रियोंको अपनी निज सन्तान के समान लाडनपालन कर विद्या और ब्रह्मचर्य को पूरा कराने का यत्न करते थे । उसी समय भारत में सुपात्र धार्मिक गृहस्थ होते थे, जो नियमानुकूल वेदों की आज्ञाओं को पालन कर आगे आने वाली सन्तानों के लिये उदाहरण होते थे । परन्तु अब महानशोक का स्थान है कि माता पिता वेद विद्या से रहित होने के कारण अपनी सन्तानों का यथावत् उपकार नहीं कर सकते । जिसके कारण ब्रह्मण, क्षत्रिय, वैश्य से यह प्रथा उठ गई और विद्याहीन आचार्यों ने एक नया मिथ्या, ढकोसला निकाल कर भारत सन्तान का जड़ पेड़ से खोज मार दिया ।

प्रियवरो ! वर्त्तमान समयमेंजब यज्ञोपवीत संस्कार होता है तो उसी समय वेदा रम्भ संस्कार भी कराया जाता है और ब्रह्मचारी गायत्री का उपदेश लेकर विद्या पढ़ने के लिये काशी (जहां किसी समय में बड़ा भारी गुरुकुल था) जाने के लिये अपने हित और सम्बन्धियों से मार्गव्ययादि

के लिये भिक्षा मांग कर धन इकट्ठा कर लेता है। परन्तु शोक है उन अचार्य्य आदि पर कि जो खड़े होकर यह विश्वास देकर (कि हम तुमको यहीं विद्या पढ़ा देंगे) रोक लेते हैं और फिर उसकी कुछ भी सुध नहीं लेते और माता पितादि भी इस विषय में कुछ भी नहीं करते ब्रह्मचारी अपने रूप को बदल कर गृहस्थों की भांति गृह कार्यों में लग जाता है और फिर थोड़ेही दिनों में गृहस्थ बना दिया जाता है। बहुधा अब यह संस्कार विवाह समय में भी होने लगा है। सज्जन जन विचार करें इस का नाम हमारे ऋषि मुनियों ने ब्रह्मचर्याश्रम रक्खा था क्या प्राचीन आचार्य इसी भांति वेदारम्भ संस्कार कराकर गुरुकुल के जाने से झूंठा विश्वास देकर रोक लेते थे? नहीं २। यदि आप प्राचीन ग्रन्थों को देखेंगे तो स्पष्ट प्रकट हो जावेगा कि इन आचार्यों ने प्राचीन ब्रह्मचर्य का सत्यानाश मार दिया। प्रियवरो! यह रीति कौन से वेद या आचार्य की सनातन रीति है? क्या अचार्य का यही परम धर्म है कि अपने शिष्य को झूंठा विश्वास देकर उसकी आत्मिक उन्नति का नाश मार दे? क्या ऐसे आचार्य आत्मा के हनन करने वाले दोष के भागी नहीं होते? अवश्य होते हैं। इस लिये माता पिता को योग्य है कि यथावत् समय पर यज्ञोपवीत संस्कार कराकर गुरुकुल में भेजने की प्रथा को यथावत् प्रचलित् करें और जब तक वह विद्या को यथावत् प्राप्त न कर ले तब तक कदापि गुरुकुल से अपने घर पर न लावें, जैसा कि वेदादि सत्य शास्त्रों में आज्ञा है। उसी समय देश का कल्याण होगा।

❀ (१२) समावर्तन संस्कार ❀

जब ब्रह्मचारी एक दो तीन वा चारों वेदों को समाप्त करके विद्वान् होकर विद्यालय को छोड़ कर अपने घर को आता है उसीका नाम समावर्त्तन संस्कार है। मन्यवरो! जबवेदारम्भ संस्कार ही नहीं रहा, तो इसको कौन पूंछता है।

❀ (१३) विवाह संस्कार ❀

इस विषय में मैं पहिले पृष्ट १४१ में लिख आया हूँ देख लीजिये।

❀ (१४) वानप्रस्थ संस्कार ❀

जब गृहस्थीमें मनुष्य पूर्ण आनन्द उठा चुकै और अपने पुत्र पुत्रियों का ब्रह्म चर्यव्रत समाप्त होने पर विवाहादि कर चुकै और पुत्र के भी पुत्र

हो जावे तब सम्पूर्ण धन दौलत पुत्र को देकर अपनी स्त्री को साथ ले या बड़े पुत्र के आधीन करके वन में जाकर जितेन्द्रिय होकर रहे इसको वानप्रस्थ संस्कार कहते हैं। इसका समय ५० वर्षके उपरांत ही है। जब घर को छोड़े तो अपने साथ अग्निहोत्र की सामग्री ले जावे और अपने समय को वेदादि पुस्तकों के पठन पाठन में बितावे यदि स्त्री साथ हो तो भी प्रसंग न करे, भीक मांग कर खावे। सबसे मित्रभाव से वर्ते मनुष्योंको यथायोग्य ज्ञानोपदेश दे पञ्चयज्ञ करता रहे। भूमि पर सोवे।

(१५) संन्यास।

यह मनुष्योंके कर्त्तव्यका अन्तिम संस्कार है यह तीन प्रकारका होता है। एक तो वह जो क्रम से ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ को सेवन करके लेते हैं। यह सबसे श्रेष्ठ है। दूसरा यह जो गृहस्थाश्रम ही से संन्यास ले लेवे। तीसरा वह जो ब्रह्मचर्याश्रम से ही बिना गृहस्थ और वानप्रस्थ के ले लेते हैं। परन्तु यह अत्यंत कठिन है और यदि किसी का मन संसार के विषयानन्द से किसी युक्ति से ब्रह्मचर्याश्रम में ही हट गया हो तो अत्यंत उत्तम है। परन्तु ब्रह्मचर्याश्रम से प्रथम अर्थात् बिना विद्या पढ़े संन्यास बिलकुल वेदविरुद्ध है। मनुजी ने लिखा है कि ७० वर्षकी अवस्था में संन्यास लेवे।

संन्यासियों के कर्त्तव्य।

(१) अपने समय को वेदादि सत् विद्या के फैलाने और वेद विरुद्ध बातों को दूर करने के लिये सम्पूर्ण संसार में भ्रमण करे और मनुष्यों को सदुपदेश करता रहे। सत्य को ग्रहण करे, असत्य को छोड़ देवे (२) कहीं घर बना कर न रहे, जलको छान कर पिये और आचरण को सुधारे रहे। (३) सब सिर के बाल मुंडाए रहे, रंगे वस्त्र पहिने, जो मिले वह आनंद प्रसन्न होकर खावे, मद्यादि मादक द्रव्य कभी न पीवे। (४) किसीको पीड़ा न दे, क्रोध त्याग दे। (५) इंद्रियों को अपने वश में रक्खे और आठ प्रकार के मैथुनों को त्यागे। (६) मृत्यु तक हो जावे परंतु सत्य के कहने में न चूके। (७) परमेश्वर के सिवाय अन्य की उपासना न करे और अपने जीवन को परोपकार में लगावे। (८) सांसारिक पदार्थों में अपने चित्त को लगाने की चाहना न करे।

(१६) मृतक संस्कार।

इसका कोई समय नियत नहीं और न मनुष्य को यह संस्कार अपने

आप करना पड़ता है वरन् इसका करना मनुष्य के सम्बन्धियों का कर्म है। इसलिये उनको योग्य है कि जब मनुष्य मर जावे तब यदि स्त्री होतो स्त्री और पुरुष हो तो पुरुष स्नान कराकर, चन्दनादि लेपन कर के नवीन वस्त्र धारण करावे और जितना मनुष्य का शरीर हो उतने ही घृत में (यदि अधिक सामर्थ्य हो तो अधिक परन्तु आधा मन से कम किसी तरह न हो, चाहे मनुष्य कितना ही दरिद्री क्यों न हो, यदि उस मनुष्य के सम्बन्धी दरिद्री हों तो उस मुहल्ले के श्रीमानों को योग्य है कि इस का प्रबन्ध करादें) एक रत्ती कस्तूरी, एक माशा केशर और १ मन या आध मन घी के साथ सेर २ भर अगर तगर और यथायोग्य चन्दन का जूरा भी डालें और शरीर के भार से छः व ८ गुनी लकड़ी श्मशान भूमि में ले जाकर यथावत् रीति से वेदी बना कर वेदमंत्रों की विधि से मृतक का दाह कर्म करें फिर सब मनुष्य वस्त्रों को धोकर स्नान कर नगर में जाकर मृतक के घर पहुँचें, जो लीप पोत कर पहिले से स्वच्छ होगया हो वहां स्वस्तिवाचन, शान्तिप्रकरण और ईश्वरोपासना कर उन्हीं मंत्रों के द्वारा गृह में सुगंधित द्रव्यों सहित हवन करे। जिससे गृह में से मृतक की दुर्गन्धि निकल जावे और उत्तम वायु गृह में प्रवेश करे कि जिस से सब मनुष्यों के चित्त प्रसन्न हों इस के उपरांत तीसरे दिन मृतक का कोई सम्बन्धी अस्थि उठा कर एक स्थान पर रखदें। परन्तु वर्तमान समय में केवल लड़कियों में ही सबको रख कर जला देते हैं। देखिये इसी संस्कार के वेदरीत्यनुसार न होने से देश में अकाल और मरी रोगों की बहुतायत हो गई। पदार्थ विद्या के न जानने के कारण इस देश की अधोगति होती जाती है प्यारे बहिन भाइयो! टुक तो विचारो जब आप शरीर को लकड़ियों के साथ जलाते हो तो वह मांसादि जलकर दुर्गंधित वायु कर देता है; उसको मनुष्य पशु पक्षी इत्यादि सूंघते हैं, उनकी नाना भांति से हानि होती है और उन्हीं परमाणुओं से कालांतर में बादल बनते हैं, फिर मेह बरसता है, उससे अन्न, फल, फूल, होते हैं जिसको प्रति दिन खाते हैं नदियों, तालाबों, कुओं का भी पानी बिगड़ जाता है, उसको पीते हैं, इन्हीं कारणों से भारतवासियों की दिन पर दिन हीन दशा होती जाती है। उत्तम उत्तम भोजन करने पर भी नाना रोग घेरे रहते हैं। इस लिये अब आप इस हानिकारक प्रथा को दूर कीजिये, देखिये अयोध्याकाण्ड सर्ग ७६ श्लोक १६, १७, १८, में लिखा है कि जब श्रीमान् राजा दशरथ जी का देहांत होगया तो सरयू तीर पर लेगये।

वहां चन्दन, अगर, सालू काष्ट, देवदारू आदि से उत्तम चिता बनाकर उसमें सुगंधित पदार्थ डाल ऋत्विक लोगों ने राजा को अपने हाथों से उठा उसमें लिटाया।

चन्दना गुरु निर्यासान् सरलं पद्मकं तथा ॥

देवदारुणि चहृत्यक्षेपयन्ति तथा परे ॥ १६ ॥

गन्धानुच्चावचांश्चान्यांस्तत्रगत्वाथ भूमिपम्।

तत्र संवेशयामासुश्चितामध्येत मृत्विजः ॥ १७ ॥

इसके पीछे भरतजी ने चिता में अग्नि लगाई और ऋत्विक लोगपितृमेव यज्ञके मंत्र पढ़ने लगे और सामवेदपाठी लोग सामवेद गाने लगे।

तदाहुताशनंहुत्वाजेपुस्तयस्य तदृत्विजः।

जगुश्चते यथाशास्त्र तत्र सामानिसामगाः ॥

देवी भागवत् स्कंध २ अध्याय ११ श्लोक ३ में लिखा है कि जब राजा परीक्षित का देवलोक हो गया तब मंत्रियों ने गङ्गातट पर चंदनादि से चिता बनाकर वेद मंत्रों से उनकी सकल क्रिया की।

पद्म पुराण तृतीय सर्ग खण्ड अ० २० में लिखा है कि पुत्र को योग्य है कि पिता के शरीर को विधिपूर्वक स्थापित करके मंत्रपढ़ अग्नि देवे।

इस वैदिक रीत्यनुसार प्राचीन समय में दाह क्रिया होती थी, देखो य० अ० ३९ मंत्र ३ ईश्वर स्पष्ट आज्ञा देते हैं कि जो लोग सुगंध युक्त सामग्री से मरे शरीर को जलाते हैं, वे पुण्य सेवी होते हैं।

वाचे स्वाहा प्राणाय स्वाहा प्राणाय स्वाहा।

चक्षुषे स्वाहा चक्षुषे स्वाहा श्रोत्राय स्वाहा श्रोत्राय स्वाहा ॥

और मं० १३ में लिखा है कि जो सृष्टि विद्या को जान कर अन्त्येष्टि कर्म की विधि करते हैं वे सबकाल में सबके मङ्गल देने वाले होते हैं। इस प्रकार मृतक शरीर को जलाकर सबको सुखकी उन्नति करनी चाहिये।

प्यारे सुजनों! इस रीतिके अनन्तर जो दशगात्र, एकादशाह, द्वादशाह सिपिण्डी, मासिक, वार्षिक, गया श्रद्धादि किया जाता है सो यह सब ठगाई का जाल है क्योंकि वेदों में इन बातों का वर्णन लेशमात्र भी नहीं लिखा और उस जीव का संबन्धियों से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। यह जीव अपने कर्मों के अनुकूल यमालय को जाकर गर्भाशय में आता है जहां इसका सम्बन्ध हो जाता है वेदके अनुकूल शरीर छूटने पर वेद मन्त्र द्वारा उसका दाह होना लिखा है, उसको उठाकर अपने पेट में धरने के लिये उस

क्रिया को न कर पिण्ड आदि बनाकर नाना लीला रचते हैं और अच्छे प्रकार गफ्फा उड़ाते हैं इनारे भाई गरुड़ पुराण जो उन्हीं के पुरुषों ने बनाया है 'यम' की कथा सुना अपने संबंधियों के लिये डेरा, तम्बू, हाथी, घोड़ा सुद्रा आदि 'कट्टहा' जी की भेंट चढ़ाते हैं कि जिनके आशिर्वाद से ही पापी, कामी, हत्यारे आदि जीव स्वर्ग को चले जाते हैं और उन विद्याहीनों को यही निश्चय होरहा है कि 'कट्टहा' जी के कहने से ही अर्थात् सुफल बोलते ही हमारे माता पिता आदि 'यम' के कोप से बच कर स्वर्ग को चले जाते हैं प्यारे भाई बहिनों! टुक विचारो, क्या ईश्वर भी अन्यायी है जो अच्छे कर्म करने वालों को बिना सुफल के कहते ही स्वर्ग के जाने का हुक्म हो जाता है, जो 'कट्टहा' जी दस, पांच सौ दो सौ हजार आदि मिलने पर कहते हैं? क्या ईश्वर भी घूसिया है जो घूस मिलते ही डिगरी की डिसमिस और डिसमिस की डिगरी कर देता है? देखिये क्या अच्छा नुसखा निकाला है कि जिसमें जन्म भर के पाप 'कट्टहा' जी के प्रसन्न होते ही कट जाते हैं फिर क्या हमारे पुरुषों ने विद्या पढ़ आचरण सुधारे, आचार विचार किये जैसा कि जनक, दशरथ, रामचन्द्र श्रीकृष्ण, व्यास, वाल्मीक इत्यादि ने नाना प्रकार के कष्ट सहकर काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि को मारा। क्या उनके लड़कों के पास इतने रुपये न थे? प्यारे भाइयो! जन्म भर के पाप यदि इन कर्मों से जाते तो फिर क्या था, फिर तो पौबारे थे परन्तु आप तो कुछ भी विचार नहीं करते और ईश्वर आज्ञा के प्रतिकूल चलने का अपराध आपके शिरपर चढ़ा है। दूसरे इनका उद्धार कट्टहाजी क्योंकर कर सकते हैं वह तो आपही राग रंगोंमें रंग रहते हैं। विद्या का नाम नहीं जानते, नाना भांतिके कुकर्म करते हैं, उस धनको रण्डी भडुओं, भङ्ग चरस आदि में खाते हैं क्या ऐसे महा पापियों की बातें ईश्वर मानता है। इन्होंने तो ईसाइयों को भी मात कर दिया। प्यारे भाइयो! इन गपोड़ों को त्यागो, इस धोखे में अमूल्य रूपी कायाको वृथा मत खोओ हां जो कुछ दान आदि माता पिता आदि से कराना हो जीते जी कराकर (जैसा दान विषय में लिखा है वैसा) दान कीजिये अर्थात् पाठशाला, यतीमखाने, भूखे, नंगे को भोजन वस्त्र आदि उत्तम कार्यों में व्यय कीजिये, न कि इन निरक्षर महाचार्यों को जो मांस के अंध उसके मरने पर उसके मिलने की आशा पर थैली खोल देते हो। जिससे देशका कोई लाभ नहीं होता बरन् 'कट्टहों' की एक कौम (जिस में हजारों मनुष्य मरने की आशा पर आयु ही व्यतीत करते हैं) नि-

यत हो गई है अर्थात् निकम्मे निठल्ले मिथ्या वातों में समय खोते हैं। क्या यह आपके शिर पाप न होगा। इसके उपरांत 'यम' की कथा जो इन मिथ्याचार्यों के गुरुओं ने बनाई है, झूंठी है। क्योंकि वेदानुकूल निम्न लिखित पदार्थों का नाम 'यम' है।

पञ्चिमा आपणो दे, आहुति। ऋ० मं० १० सू० १६५ मं० १५। शकेम वाजिनो यमम्। ऋ० मं० २ सू० ५ मं० १॥ यमाय जुहुता हविः। यमह तशो नक्षत्रहि दूतो अरंकृता ऋ० मं० १० सू० १४ मं० १३ यमः सूयमानो विष्णुः संभ्रियमाणो वायुः पूयमानः। यजुर्वेद अ० ३८ मं० ५८। याजितं यमम्। ऋ० मं ८ सू० २२। यमं मात रिश्वान माहुः ऋ० मं० सू १६ मं० ४६।

(१) यहां ऋतिओं को यम (२) यहां परमेश्वर (३) यहां अग्नि (४) यहां वायु विद्युत और सूर्यको (५) यहां भी वायु को (६) और यहां परमेश्वर का नाम यम है। इस कारण पुराणों की कथा मिथ्या ही जानना और यम रूपी परमेश्वर के प्रसन्न होने के अर्थ वेदादि सत्य शास्त्रों को श्रवण करो और समय के अनुकूल आचरण करो, तब ही वह न्यायकारी परमेश्वर प्रसन्न होगा। उस समय हय आप नाना भांति के दुःख रूपी नरकों से बच सकते हैं न कि कहहा के सुरुज बोलने पर। यह सब मिथ्या है, धोके की टट्टी में शिकार खेलते हैं, इस लिये आप सत्य शास्त्रों को विचारो और बुद्धि से भी काम लो, नहीं तो यह 'कहहा' जी जो प्रातःकाल उठ कर मरने को ही स्मरण करते हैं कि इस महीने में भाग्यवान् अर्थात् रुपये वाला मरे। धन्य है ऐसे शुभचिन्तकों को दान देकर पुरुषों को स्वर्ग भेजने के भरोसे पर लाखों में पानी दे देते हो। क्या शोक की बात नहीं है? क्या इससे भी अधिक कोई अन्धेर होगा? ईसा से भी बढ़कर परमेश्वर के पिता ही बन गये, अर्थात् जो पोप जी कहेंगे वही परमेश्वर करेगा। इसके उपरांत बहुधा जन मुर्दों को पाप निवृत्ति और स्वर्ग प्राप्ति तथा मुक्तिका साधन समझ गङ्गा आदि नदियोंमें डाल देते हैं कि जिससे जल विकारी हो जाता है और जो कोई उसको पीते हैं उनको नाना प्रकार के रोग हो जाते हैं जिसके पापका बोझ भी पुत्रादि पर होता है। इस लिये गरुड़पुराण के ऐसे लेखों पर धता भेजनी चाहिये, गङ्गादि में डालने से मुक्ति कभी नहीं हो सकती है। (मुक्ति के साधन तीर्थ विषय में सविस्तार वर्णन किये गये हैं)।

इसके उपरांत-धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद, रेवती इन पांच नक्षत्रों में पंचक होते हैं। यदि इनमें मरण हो तो गङ्गादि नदियों

पर जाकर फूंक कर उनमें डाल देते हैं, यदि किसी कारण से गंगादि पर न पहुँच सके तो उनकी चिता में गाड़ी के पहिये का कोई टुकड़ा वा सम्पूर्ण पहिया भी रखकर जला देते हैं और कहते हैं यह तो कभी न कभी गंगाजल में स्नान कर आया होगा। इसके रखने से पंचकों का दोष जाता रहता है इस के अतिरिक्त अग्नि में जल कर मरने या सांपके काटने, कुएं में गिरने या दब कर मरने, नदी में डूब कर वा बिजली के गिरने से और स्त्रियों को संवर में मरने आदि को अकाल मृत्यु कहते हैं, जिसके दो भेद हैं। प्रथम मृतक का शरीर उपस्थित हो, दूसरी में मृतक का शरीर न मिले। प्रथम दशा में 'नारायनवलि' कहते हैं अर्थात् प्रेतयोनि से छुड़ाते हैं। दूसरी दशा में "राम वलि" करते हैं अर्थात् जब मृतक का शरीर नहीं मिलता तो फिर नये सिरे से जौ के आटे का पुतला मृतक के शरीर के बराबर बनाते हैं उसको मरा हुआ नहीं जानते वरन् बीमार समझते हैं, फिर उसी समय जिस समय उस मनुष्य के मरनेकी खबर मिली थी, एक संग घरके स्त्री पुरुष रोते पीटते चिल्लाते हैं अर्थात् उस समय उस को मरा जानते हैं, फिर नये सिरे से मृतक की सम्पूर्ण क्रिया करते हैं। ये सब बातें पोप जी ने अपने पेट भरने ही के अर्थ लिखी हैं, क्योंकि लोभ में मनुष्य माता पिता आदि को मार डालते हैं, सो इन्हीं वेद अर्थों को पलट कर धर्म को मार सर्व प्रकार से अपना ही पेट भरा। इस पर कल न पड़ी तो तेरहीं नाम से भी गप्पा लगाया, मासिक और वार्षिक पर भी हाथ मारा। मुख्य प्रयोजन यह है कि जिस प्रकार हो सका लूटने में किसी प्रकार कसर नहीं की। अब सत्य ग्रन्थों को श्रवण करो तो गरुड़पुराण और नाशकेत और कर्मविपाकादि पाखण्डों से छूटो, नहीं तो इन्हीं गपोड़ों में पड़े भारत का गारत कर दिया, परन्तु शोक तो इस बात का है कि सब कुछ जानने पर भी विचार नहीं करते। इसके उपरांत जब कभी मृत्यु हो तो अत्यन्त शोकातुर होकर रोना पीटना आदि कर्म न करना चाहिये। क्योंकि मरना जीना शरीर का धर्म है अर्थात् जो उत्पन्न होता है, वह मरता है और जो मरता है वह उत्पन्न होता है। इसी को आवागमन कहते हैं।

———o———

* आवागमन *

आवागमन का अर्थ आना और जाना है अर्थात् पाप पुण्य के अनुसार

इस संसार में सुख-दुःख भोगने के लिये बारम्बार उत्पन्न होना और मरना 'आवागमन' कहाता है। जिस को फारसी में 'तनासुख' और अङ्गरेजी में 'टिरेन्समिग्रेशन आफ सोल' कहते हैं।

मान्यवरो ! ऋषियों के जीवनचरित्र पाठ करने से जाना जाता है कि वह इन नियमों में किस प्रकार लिप्त थे सारे भारतवर्ष की धर्म परिपाटी की केवल यही जड़ है। यह उन मनुष्यों का सच्चा मित्र है जो सदा सच्ची ही मार्ग की ओर ले जाते हैं। यदि हम विचार दृष्टि से देखें तो हम को ज्ञात हो जावेगा कि भारतवासी जन अन्य देश वासियों से धर्म कार्य में क्यों बढ़े हुए थे, क्यों वह कहते थे कि 'अहिंसा परमो धर्मः' ? क्यों वह अपने समान सब को जानते थे ? क्यों वह नम्रतापूर्वक सब जीवों से बर्ताव करते थे ? किस कारण सांसारिक सुखों को 'हेच' (तृणवत्) समझते थे ?

इस का यही कारण था कि उनके पास यह सच्चा हितैषी था जो प्रति समय शिक्षा देता था कि हे सांसारिक सुखों की गहरी नींद में सोने वाले मनुष्यों ! सचेत रहो तुम केवल इस संसार में परीक्षा के लिये उत्पन्न किये गये हो और कुछ समय पश्चात् आप को न्याय कारी परमात्मा के पास फिर जाना होगा जो न्यायपूर्वक धर्मतुला में तुम्हारे कर्मों को तोलेगा, यदि कुछ भी हलचल हुए तो फिर पता कहां ? फिर भी नाना लोकों में उत्पन्न होकर सुख और दुःख उठाते रहोगे। इसी कारण देखिए मनु० अध्याय १२ श्लोक २३ में लिखा है कि मनुष्य का आवागमन पाप और पुण्य के कारण होताहै, इस कारण पुण्य की प्राप्तिका यत्न करना चाहिये।

और इसी अ० के २९ श्लोक में लिखा है कि कर्मों के कारण मनुष्य आवागमन में फंसा रहता है, और श्लोक ४० में कहा है कि सत्वगुणी देवरूप, रजोगुणी मनुष्य रूप और तमोगुणी पशुयोनि को प्राप्त होते हैं, यही आवागमन है श्लोक ७४ में लिखा है कि दुर्जन पुरुषों को निन्दित कर्म करने से निन्दित योनियों में जन्म लेने पड़ते हैं। और विष्णु स्मृति अ० २० श्लोक २९ में लिखा है कि जिसका जन्म हुआ है वह अवश्य मरेगा और जो मरेगा उसका अवश्य जन्म होगा। इस जन्म मरण के रोकने की सामर्थ्य किसी को नहीं।

इसी अ० के श्लोक ४३ में लिखा हैं कि कर्मों के अनुसार बारबार शरीर धारण करना पड़ता है और श्लोक ५० में लिखा है कि जैसेपुराने वस्त्र

को त्याग कर नवीन वस्त्र को धारण करते हैं वैसे ही जीव पुराने शरीर को त्याग अपने कर्मों के अनुसार नवीन शरीर को धारण करता है। इसके अतिरिक्त ऋग्वेद अ० अष्टक १ व० २३ मं० ६ वा ७ में लिखा है कि-

असुनीते पुनरस्मासु चक्षुः पुनः प्राण मिहानो धेहि भोगम्।
ज्योक पश्येम सूर्यमुच्चरन्तमनुमते मृडयानो स्वस्ति॥
पुनर्नो असुं पृथिवी ददातु पुनर्द्यौर्देवी पुनरन्तरिक्षम्।
पुनर्नः सोमस्तन्वं ददातु पुनः पूषा पथ्या३ या स्वस्ति॥

हे सुखदायक परमेश्वर! आप कृपा करके पुनर्जन्म में हमको उत्तम नेत्रादि सब इन्द्रियां दीजिये तथा प्राण अर्थात् मन बुद्धि चित्त और अहंकार बल पराक्रम आदि युक्तशरीर पुनर्जन्म में कीजिये। इस जन्म और परजन्म में हम लोग उत्तम २ भागों को प्राप्त हों तथा आप की कृपा से सूर्य लोक प्राण और आपको विज्ञान तथा प्रेम से सदा देखते रहें। हे अनुमते! सब जन्मोंमें हमलोगों को सुखी रखिये जिससे हम लोगों का भला हो।

हे सर्व शक्तिमान! आप के अनुग्रह से हमारे लिये बारम्बार पृथ्वी प्राण प्रकाश चक्षु अंतरिक्ष स्थानादि अवकाशों को देते रहें। दूसरे जन्म में सोम अर्थात् औषधियों का रस हमको उत्तम शरीर देने में अनुकूल रहे तथा पुष्ट करने वाला परमेश्वर कृपा करके सब जन्मों में हमको सब दुःख निवारण करने वाली पथ्यरूप स्वस्ति को देवे और य० अ० ४ मन्त्र १९ में लिखा है कि हे परमेश्वर! जब जब हम जन्म लेवें तब तब आप हमको उत्तम इन्द्रियां प्रदान कीजिये और हमारे शरीर का पालन कीजिये। निरुक्त अ० १३ खं० १९ में लिखा है कि मैंने अनेक बार जन्म धारण किया, हजारों गर्भाशयों का सेवन किया, अनेक माताओं का दूध पिया। इसकी पुष्टि योग शास्त्र में पतञ्जलि मुनि ने की है अमरीका का एमरसन नामक प्रसिद्ध विद्वान् एक बालक की ओर इशारा करके बोलता है कि 'इस बालक के भोले भेष पर मत भूलो, इस की अवस्था हजारों वर्ष की है'। इसके अतिरिक्त प्रोफेसर मैक्समूलरने कहा है 'जीव जैसा कर्म करेगा वैसा ही भविष्य में पावेगा'। प्लेटो पूर्वजन्म से पुनर्जन्म मानता था। इसके अतिरिक्त बालक जन्म लेनेपर भी वस्तुओं को देख देख कर प्रसन्न होकर हाथ पैर फेंकते हैं और अम्मा अम्मा शब्द शीघ्र कहने लगते हैं। (जिससे प्रकट होता है कि इस का कुछ कुछ ज्ञान उनको पूर्व जन्म से है।)

इत्यादि प्रमाणोंसे सिद्ध होताहै कि जीवका बराबर आवागमन होता रहताहै।
और गीता में लिखा है कि आत्मा को शस्त्र छेद नहीं सकता अग्नि जला नहीं सकती, जल गीला नहीं कर सकता, पवन सुखा नहीं सकता, यह निराकार और मन से परे है न फिर भला बहुत दिनों तक शोक रखना नाना भांति से रोदन करना व्यर्थ ही है कि जिसने क्लेश के अतिरिक्त कुछ हाथ नहीं आता और मृत्यु का कोई समय नियत नहीं न जाने कब आजावे और मृत्यु के आने पर किसी प्रकार के उपायों से हम लाभ नहीं उठा सकते और हमारी कोई सहायता भी नहीं कर सकता केवल उस समय पर धर्म ही हमारी सहायता करता है।

—:०:—

* धर्म *

वेदादि शास्त्रों के अवलोकन करने और ऋषि, मुनियों के जीवनचरित्रों पर ध्यान देने से स्पष्ट प्रकट होता है कि इस संसार में सुख प्राप्त करने और मरने के पश्चात् सुख से रहने का मुख्य कारण धर्मानुसार चलना ही है क्योंकि संसार के धनादि सब पदार्थ यहीं रह जाते हैं अर्थात् स्त्री, पुत्र, शरीर, सम्बन्धी, मित्र, धन, पशु और पक्षी इत्यादि ये सब प्राणयात्रा के समय पृथक् हो जाते और उसको ऐसे छोड़ देते हैं जैसेपक्षी फलहीन वृक्ष को, फिर उसके कमाये हुये धन का कोई और ही स्वामी हो जाता है और उसके शरीर की हड्डी, रुधिर, मांस को अग्नि भस्म कर देता है, परन्तु जीव के साथ उसका धर्म ही जाता है जैसा मनुस्मृति अ० ४ श्लोक २२९ में लिखा है और महाभारत में कहा है।

नजातु कामान्न भयान्नलोभाद्धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापिहेतोः।
धर्मोनित्यः सुखदुःखेत्वनित्ये जीवोनित्यो हेतुरस्यत्वनित्यः।
धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मानो धर्मो हतोवधीत्।

चाणक्य ऋषि ने भी स्पष्ट आज्ञा दी है, लक्ष्मी, प्राण, शीशमहल एक दिन चले जाते हैं और अन्त को संसार भी स्थिर नहीं रहता, हां केवल एक धर्म ही पूरा साथ देता है इस लिये वही उस का सच्चा मित्र कहाता है, जैसा 'धर्मोमित्रं मृतस्य च'। ऐसा ही अनुशासन पर्व अ० ११०

में वृहस्पति जी और शुक्र नीति अ० ३ श्लोक ९ में और वाल्मीकीय रामायण आरण्यकाण्ड स० ९ में सीता महारानी ने रामचन्द्र महाराज से कहा है कि सुख का मूल धर्म ही है। महात्मा भीष्म का वचन है कि जिस प्रकार सूर्य अन्धकार का नाश करता है उसी भांति धर्म पापों को नष्ट करता है, द्रोणाचार्य और कृष्ण महाराज ने कहा है कि धर्म से जय होती है परशुराम और युधिष्ठिर महाराज कहते हैं कि आपत्ति में भी धर्म को न छोड़ना चाहिये। इस लिये जो अधर्म को छोड़ कर सब प्रकार से धर्म का आचरण करते हैं उनके लिये पृथ्वी आदि सृष्टि के सब पदार्थ मंगलकारी होते हैं। जैसा य० अ० ३५ मं० ९ में कहा है।

कल्पन्तान्ते दिशस्तुभ्यमापः शिवतमास्तुभ्य भवन्तु सिन्धवः।
अन्तरिक्ष ँ शिवं तुभ्यं कल्पन्ते दिशःसर्वा॥

अथर्ववेद में लिखा है कि सब मनुष्यों को धर्म का सहारा ले भूत, भविष्यत और वर्तमान का विचार कर सब काल में सुरक्षित रह यशस्वी बनना चाहिये। धर्मात्मा पुरुषों को परमात्मा पुरुषार्थ, पराक्रम, वल, ज्ञान, धन और ऐश्वर्य देते हैं। जो मनुष्य धर्मात्माओं को कष्ट देते हैं वह ईश्वरीय नियम से नाना प्रकार के कष्ट भोगते हैं।

मनु महाराज ने भी कहा कि धर्म से धन सांसारिक सुख और ईश्वर की प्राप्ति होती है इस लिये प्रत्येकको धर्म का आश्रय लेना चाहिये कूर्म और स्कंद पुराणों में भी कहा है कि सुख और ज्ञान की प्राप्ति धर्म से ही होती है इस लिये विद्वानों को योग्य है, अन्य सब बातों को त्याग कर धर्म काही आचरण करे।

प्रह्लाद ने कहा है कि कुमार अवस्था ही से भगवद्भक्ति सम्बन्धी धर्मों में लग जाना चाहिये, क्योंकि प्रथम तो मनुष्य का जन्म ही मिलना दुर्लभ है, वह भी स्थिर नहीं न जाने कब छूट जावे इस लिये धर्म को सच्चा माता पिता, बन्धु और सुहृद समझ सदा मोक्ष के साधन में लगा रहना उचित है इस हेतु य० अ० २६ मं० २ में कहा कि प्राण आदि पदार्थों और सब साधनों सहित धर्म का आचरण करना चाहिये। बहुधा जन अधर्म से भी बढ़ती मानते हैं परन्तु प्यारे सुजनों ! इस विषय में मनुजी महाराज का कथन है कि अधर्म करने वाला शीघ्र बढ़ता है और विजय पाता है, फिर अन्त को मूल सहित नष्ट हो जाता है, जैसा मनु० अध्याय ४ में कहा है।

अधर्मेणैधते तावत्ततो भद्राणि पश्यति।

ततः सपत्नान् जयति समूलस्तु विनश्यति ॥

ऐसा ही य० अ० ६ मं० १२ में लिखा है इसी लिये ऋषिगण धर्म का उपदेश करते हैं श्रीमद्भागवत स्कंद ११ अ० १९ में लिखा है कि मनुष्यों का श्रेष्ठ धन धर्म ही है,—जैसा 'धर्म इष्टं धनं नृणाम् ।' इसी हेतु हमारे परम पूज्य नीतिज्ञ विदुर जी महाराज यह उपदेश करते हैं कि मनुष्य को आयु भर वह कार्य करना चाहिये, जिससे मरने के पीछे सुख हो ।

यावज्जीवेन तत्कुर्य्याद्येनामुत्र सुखं वसेत ॥

देखिये धर्म के सहारे ही सूर्य तप रहा है । पृथ्वी अपनी कील पर घूमती है । धर्म से बेड़ा पार होता है धर्मात्मा ही संसार के सुखों को भोगते हैं, धर्म से ही मनुष्य कहाता है और इसी धर्म के बल से मनुष्य को ऋषि मुनि महात्मा देवता आदि की पदवी मिलती है, धर्म ही से विजय होती है। धर्म से ही शरीर आरोग्य और बुद्धि प्रबल होती है । धर्मात्मा के ही सत्संकल्प पूर्ण होते हैं, धर्म से ही स्वर्ग के सुख और मोक्ष पद अर्थात् इस लोक और परलोक के महान् सुख मिल सकते हैं । धर्मात्मा भीष्म ने कहा है कि धर्म ही इसलोक और परलोक में सुख का कारण है । उसी से जय प्राप्तहोती है और अधर्मी पुरुषों को सदा दुःख उठाना पड़ता है बृहस्पति जी ने कहा है जैसे सूर्य अंधकार नाशक है उसी प्रकार धर्म पापों को नष्ट करता है । कुबेर जी ने कहा है कि जो अधर्म करता है वह नष्ट हो जाता है । द्रोणाचार्य ने कहा है कि धर्म ही जय का कारण है । संजय ने कहा है कि मनुष्य मात्र धर्म को न त्यागें । परशुराम जी ने कहा है कि धर्म ही उत्तम पदार्थ है इसी कारण विद्वान् अर्थ को छोड़ और हानि उठाकर उसको करते रहते हैं । वाल्मीकजी ने कहा है कि धर्म सम्पूर्ण वस्तुओं से बढ़कर है । युधिष्ठिरने कहा है कि धर्मही आपत्काल में सहायक होता है । मार्कण्डेय ऋषि ने कहा है कि धर्म से पापों का नाश होता है और धर्मात्मा मित्रों सहित स्वर्ग को जाता है ।

नागों ने कहा है कि अधर्म ही नाश का कारण है हनुमान जी ने कहा है कि विना धर्म के सुख कहां, धर्म के विना बृहस्पति के तुल्य जन भी नष्ट हो जाते हैं । श्रीकृष्ण महाराज ने कहा है धर्म से ही अर्थ और काम की सिद्धि होती है, जो मनुष्य धर्मात्माओं से अधर्म रूप से वर्तता है वह शीघ्र नष्ट हो जाता है ॥

अब पाठकगण सोचते होंगे कि जिस धर्म की इतनी प्रशंसा की गई वह क्या है ? उसके क्या लक्षण और वह किस प्रकार से जाना जाता है ? जिस

का मैं क्रम से वर्णन करूंगा। देखिये, जैमिन ने अपने मीमांसा दर्शन के अ० १ पा० १ सू० २ में लिखा है कि जिस कर्म में सर्वनियन्ता, सर्वान्तर्यामी परमेश्वर को प्रेरणा हो वही धर्म है, जैसे-(चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः)

इसके अतिरिक्त कणादने वैशेषिक शास्त्र में लिखा है कि जिससे शारीरिक और पारमार्थिक सुखों की उन्नति हो उसे धर्म कहते हैं, जैसाकि-

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।

और लिङ्गपुराण पूर्वार्द्ध अ० १० में लिखा कि उत्तम कर्मको धर्म और निकृष्ट को अधर्म कहते हैं अर्थात् जिसमें इष्ट फल की प्राप्तिहो उस का नाम धर्म और जिससे अनिष्ट फल मिले उसको अधर्म कहते हैं।

हे सुजनो! धर्म ईश्वर की आज्ञा पालन को कहते हैं जो हमको वेद द्वारा बतलाया गया है, वा उन कर्मों के अनुसार चलने का नाम धर्म है कि जिनसे परमानन्द और मोक्ष मिलती है। वेदोक्त न्याय से युक्त होकर, पक्षपात को छोड़ सत्य ही का आचरण और असत्य का त्याग करना भी धर्म कहाता है, वा जिस आचरण के करने से संसार में उत्तम और निःश्रेयस अर्थात् मोक्ष सुखकी प्राप्ति हो उसको धर्म कहते हैं, वा मनको पवित्र वा वेद विद्यायुक्त करना ही धर्म कहाता है, वा प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, ऐतिह्य, अर्थापत्ति असम्भव और अभाव इन आठ के द्वारा जो निश्चय होता है उसको धर्म कहते हैं जैसा यजुर्वेद अ० १८ मं० ५८ में कहा है-

यदाकूतात्समसुस्रोद्धृदो वा मनसो वा सम्भृतं चक्षुषो वा तम्
नुप्रेत सुकृतामु लोकं यत्रऽऋषयो जग्मुः प्रथमजाः पुराणाः॥

ऋग्वेद में लिखा है। कि मनुष्यों को इस संसार में धर्म और सुख से विरुद्ध कोई काम न करना चाहिये पुरुषार्थ से सुखकी उन्नति करे। ६५३।

❀ धर्म के लक्षण ❀

मान्यवरो! इस उपरोक्त धर्म रूपी गृह के मनुजी महाराज ने धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य और अक्रोध ये दश खम्भे बतलाये हैं, जैसाकि—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

और ऐसा ही याज्ञवल्क्य महाराज ने कहा है और इसी प्रकार महाभारत में व्यास जी का कथन है॥

प्रियवरो ! यही धर्म रूपी गृह के दश खम्भे अन्य शास्त्रों में भी पाये जाते हैं। आप जानते हैं जब तक खम्भे ठीक रहते हैं मकान उत्तम बना रहता है और रहने वाले सुख चैन से रहते हैं, और जब खम्भे ठीक नहीं होते तो मकान शीघ्र गिर कर चूर हो जाता है और रहने वालोंको नाना प्रकार के क्लेश होते हैं। इसलिये यदि आपको सुखपूर्वक रह कर परमानन्द प्राप्त करने की इच्छा है तो इन खम्भों पर पूरा ध्यान दें, क्योंकि ऐसे ही सज्जन पुरुषों को सुख और परमगति प्राप्त होती है। जैसा कि मनु० अ० १० श्लोक ६३ में लिखा है—

दशलक्षणानि धर्मस्य ये विप्राः समधीयते।
अधीत्य चानुवर्तन्ते ते यान्ति परमां गतिम्॥

प्यारे सुजनो ! उन्हीं उपरोक्त १० लक्षणों पर यथावत चलने की आज्ञा समस्त ऋषि और मुनियों ने दी है, इन्हींको स्वर्गका मार्ग बतलाया है, मनुजी महाराज ने अ० ६ श्लोक १ में स्पष्ट लिख दिया है, चाहे जिस आश्रममें रहे परन्तु इन दश लक्षणों का अच्छे प्रकार सेवन करता रहे।

अब मैं इन्हीं धर्म के दश लक्षणों अर्थात् खम्भों की व्याख्या वेद तथा प्राचीन ऋषि और मुनियों के अनुकूल करता हूँ। विचार कीजिये और यदि परमानन्द प्राप्त करने की इच्छा हो तो अवश्यमेव इन्हीं के अनुकूल अपने मन को निर्मल और शुद्ध कीजिये।

(१) धृति—नाम धैर्य धारण करने का है अर्थात् श्रेष्ठ मनुष्यों को चाहिये कि धीरज को कदापि त्याग न करें क्योंकि धैर्य करने से ही सांसारिक और पारमार्थिक कार्य्य सुगमता से होते हैं।

(२) क्षमा—अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक दुःख की प्राप्ति में न क्रोध करना और न हिंसा करना। प्रिय सज्जन पुरुषो ! इस से उत्तम संसार में कोई वस्तु नहीं, इसी से लक्ष्मी की शोभा होती है और परमेश्वर प्रसन्न होते हैं जैसा श्रीमद्भागवत के ९ स्कन्ध के १९ वें अध्याय में लिखा है और वनपर्व अध्याय २९ में युधिष्ठिर महाराज ने द्रौपदी से कहा है, क्षमा ही परम धर्म, क्षमा ही यज्ञ, क्षमा ही वेद, क्षमा ही ब्रह्म है, क्षमा ही सत्य, क्षमा ही जप, क्षमा ही पवित्र, क्षमा से ही जगत् स्थिर है, क्षमा ही दया, क्षमा ही तीर्थ रूप है, क्षमावान् ही स्वर्ग को जाते और उन्हीं को यश प्राप्त होता है। ऐसा ही व्रत गौतम संहिता में लिखा है और चाणक्य जी ने कहा है कि शान्ति से अधिक कोई तप नहीं 'शांति तुल्यं तपोनास्ति।'

व्यासस्मृति अ० २ श्लोक ४४ और आपस्तम्बस्मृति अ० ९ श्लोक ५,६ में लिखा है कि क्षमा करने वाले पुरुषों को इस लोक और परलोक में सुख मिलता है ।

(३) दमः–मनको विपरीत कर्मों से हटा कर सदा अच्छे कर्मों में लगाना ही दम कहाता है । मन अत्यन्त वेग से गमन करता है, वह बड़ा चंचल है कभी धनके उपार्जन में डूबता है कभी लड़ाई झगड़े पर उद्यत होता है कभीसम्पूर्ण सांसारिक वस्तुओं को छोड़ कर विरक्त बनता है । कभी स्त्रियों पर आसक्त होता है कभी उनको माता के तुल्य मानता है । कभी जंगलों में रहना स्वीकार करता है, कभी संसार के आनन्दों को छोड़ कर ऋषि मुनि बनना चाहता है । इसी के कारण बड़े बड़े महात्मा राजा महाराजा और विद्वानों ने अपयश मात किया है । इसी कारण वही ऋषि, मुनि और देव हैं जिन्होंने इस मनको वश कर लिया है । मन का एकत्र करना ही सब से बड़ी तपस्या है, क्योंकि इसके जीतने से सब इन्द्रियां निर्मल हो जाती हैं । और फिर कल्याण मार्ग दृष्टि आता है । और मनुस्मृति अ० २ श्लोक २ में भी ऐसाही लिखा है और गीता में श्रीकृष्ण महाराज ने कहा है कि बिना मन के संयम किये सब आचरण मिथ्या हैं । यह मनुष्य का शरीर रथ, मन रथवान् अर्थात् सारथी और इन्द्रिय घोड़े हैं । यदि यह रथवान् बुद्धिमान् है तो इन इन्द्रिय रूपी घोड़ों को अपने अधीन रख सकता है अन्यथा नहीं ॥ देखो य० अ० ३४ मंत्र ६ में लिखा है–

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिनइव ।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरञ्जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥

परमेश्वर उपदेश करता है कि मन की दो प्रकृति हैं । एक तो वह जब किसी वस्तु पर आसक्त होता है तो अपने इन्द्रियरूपी घोड़ों सहित उस की तरफ दौड़ता हुआ चला जाता है जिसके अनुसार मूर्ख कार्य करते हैं और कष्ट भोगते हैं । दूसरी वह जो इन्द्रियरूपी घोड़ों को अपने २ विषय से हटाकर अपने वश में कर विद्वान् पुरुष सुख भोगते हैं ।

(४) अस्तेय–नाम चोरी न करने का है, (१) कायिक (२) वाचिक, (३) मानसिक तीन प्रकार की होती है । (१) कायिक अर्थात् किसी के धन स्त्री आदि पदार्थ को ले लेना कहलाता है । (२) वाचिक अर्थात् वचन का चुराना ! यह दो प्रकार का होता है । एक तो सत्य का छिपाना, दूसरे असत्य बोलना । सत्य का छिपाना उसे कहते हैं कि हम किसी वार्ता को

अच्छे प्रकार जानते हैं और जब हम से कोई मनुष्य पूछे कि आप इस विषय में क्या जानते हैं तो हम किसी कारण से कह दें कि हम कुछ नहीं जानते। दूसरा असत्य बोलना अर्थात् जान बूझकर उलटी बात कहें। (३) तीसरी मानसिक चोरी अर्थात् मनके सिद्धान्त के विरुद्ध कार्य करना। जैसे कोई मनुष्य परमेश्वर का ध्यान कर रहा हो और उसका मन अन्य विषयों के विचार में लग रहा हो। इस लिये इन तीनों प्रकार की चोरियों का त्यागना अभीष्ट है।

(५) शौच अर्थात् पवित्र रहना और पवित्रता दो प्रकार की होती है। (१) बाह्य और (२) आभ्यन्तर। बाह्य अर्थात् वस्त्र गृहादि और शरीर को स्नान द्वारा पवित्र रखना जिसके लाभ आपको स्नान में बतलाये गये हैं॥ दूसरी आभ्यन्तरिक जो ईश्वराराधन, विद्याध्ययन, विषयवासना और कामादि दोषों के त्यागने से होती है। शुद्धि ही धर्म का मूल है और जो बाहर भीतर से शुद्ध हो वही धर्मात्मा हो सकता है। इस लिये महाशय, दोनों प्रकार की शुद्धि पर पूर्ण ध्यान रखिये।

(६) इन्द्रियनिग्रह—इन्द्रियों को विपरीत व्यवहार में न लगने देना अर्थात् धर्म पूर्वक कामों में इन्द्रियों की प्रेरणा करना।

जैसे विद्वान् सारथि घोड़े को नियम में रखता है वैसे ही मन और आत्मा को खोटे कामों में खींचने वाले विषयों में विचरती हुई इन्द्रियों के निग्रह में प्रयत्न सब प्रकार से करें क्योंकि जीवात्मा इन्द्रियों के वश होके निश्चय बड़े २ दोषों को प्राप्त होता है और जब इन्द्रियों को अपने वश करता है तभी सिद्धि को प्राप्त होता है।

इस विषय में गीता के १८ अध्याय के ३८ श्लोक में लिखा है कि विष खाने से तो प्राणी एक बेरमें ही मरता है इन्द्रिय विषयों के स्वाद भोगने से बारम्बार मरता ही चला जाता है जैसा कि—

विषयेन्द्रिय संयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम्।
परिणामे विषमिव तत् सुखं राजसं स्मृतम्॥

इसके उपरांत महात्मा अष्टावक्र जी ने कहा है कि हे प्यारे सुजनों! जो मुक्तिरूपी सुखों की इच्छा हो तो इन्द्रियों के विषय को विषवत त्याग दो और य० ३७ मंत्र १६ में लिखा है कि योगीजन जितेन्द्रिय हो कर नियम पूर्वक परमात्मा को पाकर आनन्दित होते हैं। सञ्जय ने धृतराष्ट्र से कहा है कि इन्द्रियों के जीतने वाले महात्मा ईश्वर के दर्शन करते हैं। श्रीकृष्ण

महाराज ने अर्जुन से कहा है कि इंद्रियों के जीतने से बुद्धि बढ़ती है। शांतिपर्व अ० १५९ में भीष्मपितामह ने कहा है कि चारों आश्रमों के बीच इन्द्रियनिग्रह ही उत्तम धर्म है। इस लिये आओ! ज्ञान के द्वारा विषय वासना में विचरती हुई इन्द्रियों को अपने आधीन कर सुख को प्राप्तकरें।

(७) धी-नाम बुद्धिका है अर्थात् जिस प्रकार से बुद्धि की उन्नति हो वह कार्य करना। मुख्य प्रयोजन यह है कि सदा विचारपूर्वक बुद्धि को अच्छे कर्मोंमें लगाना और इसकी वृद्धि के लिये यत्न करना, जिसकी तीन बातें हैं-(१) वेद शास्त्रों का विचार करना, (२) महात्मा और विद्वानों का सत्संग करना, (३) उत्तम २ गुणों को सीखना।

(८) विद्या-अर्थात् जिससे पदर्थों का सत्यरूप मालूम हो उसे विद्या कहते हैं, जैसा कि-'पदार्थान् याथातथ्येन वे त्तियया साविद्या'

और इसके विपरीत दशा को अविद्या कहते हैं अर्थात् नित्य को अनित्य अनित्य को नित्य, धर्म को अधर्म और अधर्म कोधर्म मानाना इत्यादि अविद्या हैं जैसा कि योगसूत्र में लिखा है-"अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्य शुचिसुखात्म ख्यातिरविद्या।" और ऐसाही प्रश्नोपनिषद् में भी लिखा है सचमुच विद्या से बढ़ कर कोई मित्र और अविद्या से बढ़ कर कोई शत्रु नहीं। विद्या के कारण मनुष्य इस संसार में सर्व प्रकार के आनन्द पाता है और अन्त को मोक्ष प्राप्त करता है परन्तु अविद्या सब क्लेश की जड़ है और भगवान् पतञ्जलि ने अविद्या, अस्मिता, रागद्वेष, अभिनिवेश पांच क्लेश माने हैं, जैसा कि-

अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पञ्च क्लेशाः॥

अविद्या ही के कारण यह देश अधोगति को प्राप्त हुआ, अविद्या ही के कारण हमने सज्जनों और विद्या को छोड़ कर मूर्खों की संगति में पड़ कर नाना प्रकार की बुराइयां सीखी हैं, अविद्या ही के कारण इस देश में वेश्या का नाच होने लगा, अविद्या ही के कारण हम अपने जीते माता पिताओं को दुःख देकर गयादि तीर्थों से उनको सुख पहुँचाने को कहने लगे, जिससे धर्म की परिपाटी में अंतर आ गया।

अब इस समय में महाशय! आप विद्या और अविद्या को जान कर ही कार्य कीजिये जिससे सर्व प्रकार के सुख मिलें और देश की यह दशा न रहे। मुख्य कथन यह है कि वेदोक्त कर्मों के करने को विद्या और वेद विरुद्ध कर्मोंके करने को अविद्या कहते हैं।

(९) सत्य—अर्थात् मिथ्या व्यवहार कभी न करना, इसी से मनुष्य को सर्व प्रकार के आनंद मिलते हैं ! यही मनुष्य को स्वर्ग में ले जाता है इसके बिना संसार का कोई कार्य नहीं चल सकता। सच तो यह है कि संसार के सम्पूर्ण कार्य इसी पर निर्भर हैं देखो चाणक्यजी लिखते हैं–

सत्य ही से पृथ्वी स्थिर है, सूर्य प्रकाशमान है, वायु चलता है और भी कहा है:–

> नहि सत्यात्परं धर्मो नानृतात्पातकं परम्।
> नहि सत्यात्परं ज्ञानं तस्मात्सत्यं समाचरेत्॥

सत्य से बढ़ कर कोई धर्म और अज्ञान तथा झूठ से बढ़ कर कोई पाप नहीं है। इससे सर्वदा सत्य बोलना चाहिये। शिव पुराण ज्ञान खण्ड अ० १० में लिखा है कि शूर की संग्राम में, मित्र की आपदा में, स्त्री की असमर्थ होने में, श्रेष्ठ कुल की विपत्ति में, स्नेह की दूर जाने में और सत्य की संकट प्राप्त होने पर परीक्षा होती है।

इसके उपरांत हनुमानजी, भीष्मपितामह, मार्कण्डेयजी, सनतसुजात मुनि, नारदजी, शकुंतला और भगुजी इत्यादि ने कहा है कि द्विजातियों का परम धर्म सत्य है, सत्य से आयु क्षीण नहीं होती, सब गुणों में सत्य ही प्रधान है, उसमें अमृत बरसता है, वही सब व्रतों में श्रेष्ठ है, सत्य ही परम धर्म, यही सब की जड़ है इसी के द्वारा स्वर्ग मिलता है, इसी से कल्याण और सुख होता है। और यजुर्वेद अ० १७ मंत्र १४ में लिखा है कि जो मनुष्य शास्त्र के अभ्यास, सत्य वचनादि से वाणी को पवित्र करते हैं वे ही शुद्ध होते हैं। परन्तु सत्य ग्रहण करने वाले को यजुर्वेद के ब्राह्मण पर भी पूरा ध्यान रखना चाहिये अर्थात् सत्य को मन से धारण करना, न कि मनुष्यों के दिखलाने के अर्थ, क्योंकि जो मनमें होता है वही वाणी में आता है और जैसा कर्म करता है वैसा फल भोगता है जैसा कि–

> यन्मनसा ध्यायति तद्वाचा वदति यद्वाचा वदति तत्।
> कर्मणा करोति यत्कर्मणा करोति तदभिसंपद्यते॥

अर्थात् जो मनुष्य सत्य का अनुष्ठान करते हैं वही सच्चे धर्मात्मा कहाते हैं, वह इसीके बल से भवसागर से पार हो जाते हैं। सचमुच सत्य ऐसा ही पदार्थ है, इस लिये सत्य को मन में ग्रहण करना चाहिये।

(१०) अक्रोध अर्थात् प्राणीमात्र पर क्रोध न करना। क्योंकि क्रोध

सम्पूर्ण पापोंकी जड़ है, इसी क्रोधमें आकर मनुष्य की विचारशक्ति नहीं रहती और बहुत सी हानि व्यर्थ कर बैठता है प्रसिद्ध है कि एक क्रोधी ने केवल एक ही को कष्ट देने के अर्थ अपने गृह में आग लगा दी थी। क्रोध ही इस संसार में परम शत्रु है, क्रोधी मनुष्य की कहीं प्रतिष्ठा नहीं है। अक्रोध ही को सब प्रकार के आनन्द मिलते हैं, वही अपने कार्य की सिद्धि कर प्रतिष्ठा पाता है। वही सबमें श्रेष्ठ और विद्वान् गिना जाता है। हनुमान जी महाराज ने सुन्दरकाण्ड में कहा है कि धन्य हैं उन पुरुषों को जो क्रोध रोक शान्ति का प्रसाद लेते हैं, ऐसे ही मनुष्यों को महात्माओं की पदवी मिलती है। आपस्तम्बस्मृति अ० ९ श्लोक ८ में लिखा है कि क्रोधी पुरुष के यज्ञादि उत्तम कर्मों का भी फल नष्ट होताजा है इस लिये उपरोक्त धर्म के लक्षणों को यथावत् पालन करते हुये धर्म मार्ग पर चलने का यत्न करते रहिये।

धर्म मार्ग।

प्रत्येक मनुष्य सदा सीधे और सुगम मार्गकी चाहमें रहता है क्योंकि ऐसे मार्ग पर चलने से मनुष्य को कष्ट नहीं होता और उसका प्रयोजन शीघ्र सिद्ध हो जाता है जिससे चलने वाले को थकावट नहीं होती इसके अतिरिक्त टेढ़े, कुमार्ग पर जाने से बहुना कष्ट उठाने पड़ते हैं और न बटोही अपने अभिप्राय को प्राप्त करते हैं। इस लिये सब प्राणी मात्र को धर्म के सीधे अर्थात् सत्य सनातन मार्ग को जान कर मोक्ष प्राप्त करना चाहिये।

प्रिय सज्जन पुरुषो! वर्त्तमान काल में सहस्रों मार्ग अर्थात् पंथ प्रचलित हो गये हैं। कोई इधर खैंचता कोई उधर पकड़ता है, कहीं बाममार्ग के लटके दिखलाये जाते हैं, कहीं फ्रमेशन की प्रशंसा बतलाई जाती, कहीं नानकपंथ, कबीर साहिब की साखी सुनाई जाती और वाहगुरु की ही विजय कान में फूंकी जाती है, कहीं शब्दज्ञान कराया जाता, कहीं जूंठे भोजन की महिमा सुनाई जाती, कोई गंगा और एकादशी आदि व्रत और मनमानी सत्यनारायण की कथा सुनने को ही धर्म मार्ग बतलाते हैं। बहुधा तुलसी शालिग्राम, महादेव पार्वती इत्यादि की पाषाण मूर्तियों के पूजन करने और उनके सन्मुख नाचने गाने को ही धर्म कहते हैं। और कोई बरगद, पीपल और केले आदि वृक्षों की पूजा से ही ईश्वर की प्राप्ति मानते हैं। कोई कोई नाना भाँति के तिलक छापे और ठाकुर प्रसाद और तुलसी शालिग्राम के

विवाह को ही धर्म कहते हैं। परन्तु हमारें प्राचीन ऋषियों ने और ही धर्म के मार्ग बतलाये हैं, जिन पर हमारें पुरुषाओं ने चलकर नाना प्रकार के सांसारिक सुखों के उपरान्त परमपद को भी प्राप्त किया है और उसी को सनातनधर्म कहते हैं, जिसको मनुजी महाराज श्रुति, स्मृति, सदाचार और अपनी आत्मा के कर्मों को धर्म मार्ग ठहराया हैं, जैसा।

श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः स्वस्यच प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः सक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्॥

भविष्यपुराण पूर्वार्द्ध के प्रथम अ० में भी श्रुति, सदाचार अपने मन की प्रसन्नता को ही धर्म माना है ऐसा ही महाभारत शांतिपर्व अ० २५८ और अनुशासन पर्व अ० १४८ में कहा है और लिंगपुराण अ० १० श्लोक ७ में लिखा है कि धर्म वही है जो श्रुति स्मृति के अनुकूल वर्णाश्रम धर्मों को जान कर करते हैं।

वर्णाश्रमेषु युक्तस्य स्वर्गादि सुखकारिणः।
श्रौतस्मार्तस्त धर्मस्य ज्ञानं धर्म तदुच्यते॥

ऐसा ही विष्णुस्मृति अ० १ श्लोक २४ और अत्रिस्मृति श्लोक ३९४ में भी लिखा है। और शिवपुराण विन्देश्वरी संहिता अ० १९ श्लोक ८४ में लिखा है कि जो वेद और स्मृति के कर्मको अनादर कर दूसरे कर्म को करता है उसको फल नहीं होता इसलिये वेदोक्त कर्म करने को ही धर्म मार्ग कहते हैं।

* वेद *

मनुमहाराज के लेखानुसार श्रुति वेद और स्मृति धर्म शास्त्र को कहतें हैं अध्याय १२ श्लोक १८ में लिखा है कि वेद सनातन विद्या है यही सृष्टि का आधार है इसी कारण जीवों के लिये उसी को सब से उत्तम उपाय सुखकी प्राप्ति का निश्चय करता हूँ।

विभर्ति सर्व भूतानि वेद शास्त्र सनातनम्।
तस्मादेतत्परं मन्येयज्जन्तोरस्य साधनम्॥

और अ० २ श्लोक ८ में लिखा है विद्वान को योग्य है कि विद्यासे समझ वेदोक्त धर्म को स्वीकार करे और श्लोक १३ में स्पष्ट लिखा है कि धर्म के जानने के लिये श्रुतिही प्रमाण है इसी हेतु नित्य कर्मो में प्रतिदिन वेद

पाठ करने की आज्ञा दी है इस के उपरान्त अ० १२ के ९७ श्लोकमें लिखा है कि चारों वर्ण तीनों लोक चार आश्रमों तीनों काल सब वेदसे ही जाने जाते हैं इसलिये मनुजी महाराज ने श्लोक १०६ में कहा है कि जो मनुष्य के अर्थ को जान कर उस के अनुकूल कार्य्य करता है वह चाहे जिसआश्रम में रहे जीवन मुक्ति को पाता है और श्रीमद्भागवत में लिखा है कि धर्म वही है जो वेदमें लिखाहै उसके अतिरिक्त अधर्म है और वेद नारायण कारूपहै ।

वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः ।

वेदो नारायणः साक्षात् स्वयंभूरिति शुश्रुमः ।

फिर इसी अ० में लिखा है कि जो वेद विरुद्ध कार्य करते हैं उनको नरक होता है और अ० ४ में ऋषभदेवजी ने अपने पुत्रों को श्रुतिस्मृति धर्म को मुख्य मान कर उसकी शिक्षा की है । स्कंध ११ अ० ३ के श्लोक ४३ में स्पष्ट कहा है कि वेदोक्त कर्म करने से मोक्ष होता है याज्ञवल्क्यस्मृति अ० २ श्लोक ४० में मनुष्य मात्र को आज्ञा की है कि द्विजों को यज्ञ, तप और शुभ कर्म इन सबसे उपकारक वेद को जानना चाहिये ।

यज्ञानांतपसांचैव शुभानांचैव कर्मणां ।

वेदएवद्विजातीनां निःश्रेयसकरः परः ॥

वेदों के विषय में वेदों में ही लिखा है कि वेद द्वारा विज्ञान प्राप्त कर बुद्धि, बल और कीर्ति बढ़ा आप सुखी हो अन्यों को सुख पहुँचावे वेद विद्या का भण्डार, ज्ञान का कोष धन सम्पत्ति के दाता, शिल्प के गुरु, पदार्थ विद्या के मर्मों के शिक्षक, मर्यादा पालक, आकाश, भूमि, भूगर्भ, कृषि और ज्योतिष आदि समस्त विद्याओं का ज्ञान कराने वाले हैं वेद के अनुगामी को सांसारिक सुखों के साथ साथ परलोक में मुक्ति की भी प्राप्ति होती है । स्मृति, पुराण, ऋषि और मुनियों ने वेदों का महात्म्य बड़े गौरव से वर्णन किया है इस लिये सभी को वेदों की आज्ञा पालन करना अभीष्ट है । जिस राजा के राज्य में वेदों का प्रचार नहीं वहां की प्रजा धर्मरहित, निर्बल और निर्धन बन तीनों तापों को भोगती हुई अन्न और यश आदिको भी प्राप्त नहीं कर सकती ।

लिंग पुराण पूर्वार्द्ध के ७८ अध्याय में स्पष्ट लिखा है कि जो मनुष्य वेद विरुद्ध व्रत आचार आदि करते हैं, श्रुति स्मृति से विमुख हैं, उत्तम वर्ण वाले उन नास्तिकों का स्पर्श तथा उनसे सम्भाषण न करें।

वेदबाह्यव्रताचाराः श्रौतस्मार्त्तबहिष्कृताः ।
पाषण्डिनइतिख्याता न सम्भाष्या द्विजातिभिः ॥

विष्णु पुराण अ० २ श्लोक ६ में लिखा है कि जो वेद विरुद्ध कार्य करते हैं उनको (सवन नाम) नरक और श्रीमद्भागवतके स्कंध ५ अ० २६ श्लोक १५ में लिखा है कि जो वेद मार्ग को छोड़ पाखण्ड मार्ग में चलते हैं वह कालसूत्र नामक नरक में जाते हैं और मनु अ० १२ श्लोक ८६ में कहा है कि वेदोक्त कर्म करने से मनुष्य सुपात्र होताहैं श्रीरामजी ने वाल्मीक रामायण में कहा है कि जो मनुष्य वेद मर्यादा को त्यागते हैं वह पापी होते हैं । इसके उपरान्त उन्होंने चित्रकूट पर भाई भरत को सदा वेदोक्त कार्य करने के लिये शिक्षा की है । शांतिपर्व अध्याय २०१ में बृहस्पति ने भी यही लिखा है श्रीकृष्ण महाराज ने गीता में कहा है कि वेद विरुद्ध कार्य करने वालों को तत्वज्ञान नहीं मिलता, इस हेतु उन्होंने उद्धव को उपदेश किया है कि वेद जानने वालेही सत्पुरुष को गुरु कहना चाहिये इसी प्रकार कौशिक नकुल, युधिष्ठिर, सनत्सुजात और कपिल आदि मुनि तथा सम्पूर्ण स्मृतिकार पुकार पुकार कर कहते हैं और पुराणों के कर्त्ता भी यही उपदेश करते हैं कि वेद ही के अनुसार कार्य करना अभीष्ट है देखो बृहन्नारदीय पुराण अध्याय ९ श्लोक १४१ में लिखा है कि जो सब प्राणियों में दयायुक्त और वेद मार्ग पर चलतेहैं और गुरुपूजा परायण हैं, वही परम स्थान को जाते हैं । अध्याय १४ में लिखा है कि जो वेद मार्ग से भ्रष्ट हैं वे पाखण्डी कहाते हैं । कूर्म पुराण में स्पष्ट लिखा है—

न च वेदादते किञ्चिच्छास्त्रं धर्माभिधायकम् ।
योऽन्यत्र रमते सोऽसौ न सम्भाष्योद्विजातिभिः

वेदको छोड़ कर एकभी ग्रंथ परमेश्वरका चिंतवन कराने वाला नहीं जो मनुष्य वेद को छोड़कर अन्य (पाखण्डी) मंत्रों को मानते हैं द्विजातीय उन से वार्तालाप न करें पद्म द्वितीय भूमि खण्ड अ० ६९ में राजा ययाति ने मातलि से कहा हैं कि जो कोई वेद की निन्दा करता है उनको ज्ञानीपंडितों ने महापापी कहा है बृहन्नारदीय पुराण में कहा है कि जो वेदोक्त धर्म छोड़ कार्य करता है वह महा पापी और आत्मघाती है और विष्णु पुराण अंश ३ अ० १७ में कहा है कि वेद मार्ग का त्यागने वाला महापापी और नंगा है आठवें अध्याय में मैत्रेय जी का भी यही वचन है अयोध्याकांड सर्ग ६७ श्लोक ३३ में कहा है जो लोग वेद शास्त्र की मर्यादा को उल्लंघन करते हैं उनको नास्तिक कहते हैं ।

'येहि संभिन्नमर्य्यादा नास्तिकाश्छिन्न संशयाः ।'

सर्ग १०० में रामचन्द्रजी ने भरतजी से कहा है कि तुम वेदशास्त्र के बिना पढ़े हुए अज्ञानी लोगों की सेवा तो नहीं करते ऐसे लोग परलोक विषयक ज्ञान कुछ भी नहीं मानते और अपने को वह पंडितही पंडित मानते हैं, वास्तव में उनको महा मूर्ख समझ उनकी मनमानी तर्कनाओं पर कुछ ध्यान नहीं करना चाहिये । इसलिये राजाका यही धर्म है कि वेदों को सदा पढ़ता रहे । सुन्दरकांड सर्ग २६ श्लोक २९ में सीता ने राक्षसियों से कहा है कि तुम्हारे सर्व कार्य शास्त्र के विरुद्ध हैं, इसलिये तुम्हारा नाश होना सम्भव है और सर्ग १०९ में लिखा है कि जो लोग वेदानुकूल कार्य करते हैं वही कुलीन तथा इससे विपरीति को अकुलीन कहते हैं देवी भागवत स्कंध १ अ० १८ श्लोक ४७ में राजा जनक ने कहा है कि प्राणी मात्र को वेदों के अनुकूल कार्य्य करना चाहिये ।

बृहन्नारदीय पुराण अध्याय ४ में लिखा है कि धर्म वेदसे प्रकट होताहै और वेद परमेश्वर से, इसलिये जिसकी श्रद्धा उसमें नहीं उससे परमेश्वर अति दूर है, अध्याय १९ श्लोक २० में लिखा है कि जो धर्म और अधर्म का ज्ञान वेद से कर उसके अनुसार कार्य करते हैं वे साधुजन कहाते हैं ।

देखो य० अध्याय २८ मंत्र ३९ में कहा है कि जैसे आकाश में सूर्य का प्रकाश बढ़ता है, उसी भांतिवेदों के अभ्यास करने से बुद्धिबढ़ती है, जो इस जगत में वेद द्वारा सब विद्याओं को जानते हैं वे सब ओर से बढ़ते हैं ।

देव बर्हिर्वयोधसं देवमिन्द्र मवर्द्धयत् । गायत्र्याछन्दसेन्द्रियं

चक्षु रिन्द्रवयोदधद्वसुवनेवसुधेयस्यवेतुयज ॥ साम० उत्तरार्चिके अ० ६

पवमानस्य विश्ववित्प्रते सर्गा असृक्षत सूर्यस्येव न रश्मयः ।

जिस प्रकार सूर्य की किरणें उदय होकर मनुष्यादि प्राणियों की आंखों को सहायता देती हैं उसी भांति परमात्मा से वेद प्रकट होकर मनुष्यों की बुद्धियों को सन्मार्ग में प्रवृत्त करते हैं जो अनादि हैं ।

वेदों के अनादि होने का प्रमाण ।

मान्यवरो ! यदि मुझ को कोई मनुष्य उत्पन्न होतेही एक गृह में बन्द कर देता और वहीं भोजनादि देता और मेरे सम्मुख कोई बात चीत भी न करता तो आशा है कि मुझ को बात चीत करना भी न आती, न किसी विद्या को जानता अर्थात् जो कुछ मैंने इस संसार में सीखा, पढ़ा, लिखा,

यह सब माता पिता और विद्वानों की संगति का ही गुण है। इसी प्रकार हमारे पिता ने सीखा और पढ़ा। परन्तु जिस समय संसार उत्पन्न हुआ उस समय केवल परमेश्वर ने अपनी कृपा और अनुग्रह से अपने वेदरूपी ज्ञानका अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिरा इनचार महर्षियोंके हृदयमें प्रकाश किया, जो उस समय से आज तक ऋग्, यजु, साम, अथर्व के नाम से प्रसिद्ध हैं। इससे प्रकट होता है कि वेद ही सनातनधर्म पुस्तक अर्थात् अनादि हैं। प्रकट हो कि आर्यावर्त के विद्वानों और बुद्धिमानों ने सृष्टि की आयु को १४ मन्वन्तरों पर बांटा है, इनमें से ६ मन्वन्तर व्यतीत हो चुके और सातवां अबवीत रहा है। १ मन्वन्तर में १७ चतुर्युगी होती हैं अर्थात् चारोंयुग ७१ बार बीतते हैं जिनमें सतयुग १७२८००० त्रेता १२९६००० द्वापर ८६४००० और ४३२००० वर्षों का कलियुग। इसी को चतुर्युगी कहते हैं यदि इसी को ७१ से गुना करदें तो एक मन्वन्तर हो जाता है इस प्रकार के १४ मन्वन्र बीतने पर संसार की आयु पूरी होगी। वर्तमान सृष्टि के १४ मन्वन्तरों में से केवल ६ मन्वन्तर और २७ चतुर्युगी बीतगई अब २८ वीं चतुर्युगी बीत रहीहै जिसमें सतयुग त्रेता द्वापर बीतगया चौथे कलियुग की सम्वत १९८२ तदनुसार सन् १९२५ ई० तक ५०२५ वर्ष बीत चुकी हैं और ४२६९७५ वर्ष भोगने को बाकी हैं अर्थात् सृष्टि की उत्पत्ति को १,९६०८५३०२५ वर्ष हो गई हैं।

※ स्मृति ※

द्वितीय धर्म का मार्ग स्मृति अर्थात् धर्मशास्त्र हैं, इन की संख्या १८ है जिन को मनु, अत्री, विष्णु, हारीत, याज्ञवल्क्य, उशना, अंगिरा, यम, आपस्तम्ब, सम्वर्त, कात्यायन, बृहस्पति, पराशर, व्यास, शंख, दक्ष, गौतम, शातातप, वशिष्ठ ऋषियों ने लिखा है कि जिन में उन्होंने वेद के गूढ़ मन्त्रों की व्याख्या पूर्णरूप से कर योग और नाना क्रियाओं से ज्ञान प्राप्त करके की थी। संसार की दशा सदा एक नहीं रहती, कभी वृद्धि को प्राप्त होती है और कभी हीन दशा हो जाती है। देखिये यही सूर्य जो प्रातः काल में प्रकाशित हो कर संपूर्ण जगत् को प्रकाशित करता है वही सायंकाल को हीन दशा को प्राप्त हो जाता है। इसी प्रकार जब

देश अविद्या को प्राप्त हुआ, नाममात्र के विद्वान् भी अपने लाभ के लोभ में फंस गये और लोभ में धर्म का विचार नहीं रहता। इस लिये उन्होंने भी स्वार्थसिद्धि के अर्थ अनेक श्लोक बना कर मिला दिये। इस कारण अब स्मृतियों और वेदों में भी बहुधा भेद हो गयाहै। परन्तु कुछ शोक नहीं क्यों कि हमारे ऋषि मुनि अपनी २ स्मृतियों में लिख गये हैं कि धर्म विषय में वेद ही का प्रमाण मानना चाहिये जैसा मैंने ऊपर वर्णन किया और जो स्मृतियां वेदानुकूल हों उनको भी मानना अभीष्ट है, परंतु वेदविरुद्ध स्मृतियों के मानने की मनु आदि ऋषि आज्ञा नहीं देते, पालन करना कैसा? देखिये मनुजी महाराज ने अ० १२ श्लोक ९५ में लिखा है जो स्मृति वेद विरुद्ध है उस से कुछ फल नहीं हो सकता, अतः समझ लेना चाहिये कि यह तमोगुणी पाखण्डियों की बनाई हुई है। यथा—

या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः।
सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः॥

इसके उपरान्त जब स्मृतियों में भी आपस में अंतर हो तो मनुस्मृति का लेख प्रमाण होगा, क्योंकि सामवेद के छान्दोग्य उपनिषद् में लिखा है कि जो कुछ मनु जी ने कहा है वह मनुष्य के लिये औषधि की औषधि है जैसा—"यद्वै किंचन मनुरवदत्तद्भेषजं भेषजतायाः" और बृहस्पति स्मृति में लिखा है।

वेदार्थोपनिबन्धृत्वात् प्राधान्यं हि मनोः स्मृतम्।
मन्वर्थविपरीता या सा स्मृतिर्नैव शस्यते॥

अर्थात् उस स्मृति की प्रशंसा नहीं होती जिस का लेख मनुस्मृति से नहीं मिलता। प्रिय सज्जन पुरुषो! मनुजी महाराज स्पष्ट आज्ञा देते हैं कि मैंने वेदानुकूल ही लिखा है और वेदानुकूल ही मेरी आज्ञा को मानना चाहिये अर्थात् मेरा लेख वही है जो वेद से मिलता हो। जैसा मनुस्मृति अध्याय २ श्लोक ७ में लिखा है-

यः कश्चित् कस्यचिद्धर्मो मनुना परिकीर्तितः।
स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः॥

फिर इसी अध्यायके ८ श्लोकोंमें और भी पुष्टताकी है तथा १२ अ० के ९५ श्लोक में स्पष्ट आज्ञा दी है कि जो स्मृतियां वेद के विरुद्ध हों वह माननीय नहीं, अर्थात् अठारह स्मृतियों में जिस स्थान पर वेदानुकूल न हो

वह प्रमाण के योग्य नहीं। इस कारण जब किसी विषय में स्मृतियों में अन्तर हो अथवा समझ में न आता हो या पेटार्थी जन कुछ का कुछ कहैं तो आप को योग्य है कि वेदों के प्रमाण से उस को प्रामाणिक अन्यथा अप्रामाणिक समझना चाहिये। और इसी प्रकार जब स्मृति और पुराणों में विरोध हो तो स्मृति के अनुसार कर्म करना चाहिये। तात्पर्य इस कथनका यही है जो मैंने ऊपर वर्णन किया, अर्थात् धर्म विषय में श्रुति ही स्मृति तथा पुराण परतः प्रमाण अर्थात् वेदानुकूल होने से प्रमाणिक हो सकते हैं, अन्यथा नहीं और ऐसे ही व्यासस्मृति अ० १ श्लोक ४ में लिखा है, जैसा कि—

श्रुति स्मृतिः पुराणानां विरोधो यत्र दृश्यते।
तत्र श्रौतं प्रमाणं तु तयोर्द्वैधे स्मृतिवर्म॥

सदाचार।

वेद में लिखा है जो सदाचारी शीलवान हैं परमेश्वर उनकी सदा रक्षा करता है तथा श्रेष्ठ पुरुषों की स्थिति का कारण शीलही है। मान्यवरो यह दोनों उपरोक्त धर्म मार्ग अत्यन्त कठिन हैं क्योंकि जब तक कोई मनुष्य विद्या पढ़कर विद्वान् न हो वह इनको पूर्ण प्रकार से नहीं जान सकता है और विद्वान् होने के लिये बहुत समय की आवश्यकता होती है। परन्तु धर्म का अंकुर बाल्यावस्था ही से बालक के हृदय में लगता है, इसलिए हमारे मुनियों ने तृतीय धर्मका मार्ग सदाचार माना है। यह शब्द 'सत्' और 'आचार' से संयुक्त है, अर्थात् जो कुछ सत्य धर्म अपने प्राचीन पुरुषाओं को करते देखा वा सुना अथवा उनकी लिखित पुस्तकों के द्वारा जाना गया हो, उसको करना। इस बात को सुनकर हमारे बहुधा भाई यह कह देंगे कि हम तो वर्तमान में वही कार्य करते हैं जो हमने अपने बाप दादे को करते हुये देखा है, फिर आप उसको क्यों नहीं धर्म मानते और क्यों नाना प्रकार की शंकायें करते हैं? प्यारे मित्रो! इसका मुख्य कारण यही है कि प्राचीन कालमें महाभारत के बड़े भारी संग्राम होने से लाखों विद्वान् मारे गये, फिर आलस्यादि दोष उत्पन्न होकर विद्यारहित होने लगे। इस के अनन्तर बौद्ध जैनमतों ने भारत वर्ष में अपना सिक्का जमा वेदादि रीति को उठा दिया। इसके पीछे मुसल्मानों ने राज्य किया कि जिनमें हमारे धर्म पुस्तक जलाये तथा डुबोये गये, हमारी कुंवारी लड़कियां छीन मुसल्मान बनाई गईं। रात दिन लूटे मारे गये, क्योंकि बारह सतंना मदद्कों

लूट की फिर शहाबुद्दीन ने ८ बार चढ़ाई की लाखों मनुष्यों को पकड़ ले गया और उनके खून से गारा बनवाया। फिर चंगेज़ ने द्वन्द मचाया। पुनः तैमूर ने दिल्ली, तुलम्बा, अटनेर आदि में हाहाकार मचाया तदनन्तर नादिर शाह ने आकर दिल्ली में ५ दिन तक क़तलआम कराया और इसके पीछे महमूदशाह ने तीन चढ़ाइयां कर लूट मार की। और सन् १६५७ ई० से १७०७ ई० तक औरङ्गज़ेब ने दिल्ली के तख्त पर बैठ कर सम्पूर्ण भारत वर्ष में भारत वासियों पर ज़ुल्म किये इसके बीच ही में नानक, कबीर आदि ने अपने २ पन्थ नियत किये। मेरे लिखने का मुख्य तात्पर्य यह है कि महाभारत के पश्चात् अंग्रेजी राज्य के आने तक हमारे पुरुषों को जान बचाने के लाले पड़ रहे थे, फिर भला ऐसे समयों में इन वेदानुकूल रीतों को कौन पूछता है। क्योंकि कहा भी है 'आपतकाले मर्यादा नास्ति' फिर उन पुरुषाओं का धर्म हमारे लिये क्योंकर माननीय हो सकता है। हां यदि हम उन मनुष्यों के धर्म पर चलें जो उस समय में रहते थे जब कि वेद विद्या का प्रचार था, बालक से लेकर वृद्ध तक उसी के अनुसार चलते थे, लोभ और कामादि के त्यागी थे, धर्म पर जीवन को न्योछावर कर, धन पर धता भेज धर्म को मुख्य समझते थे, इस लिये आप अपने कुल को दस बीस पीढ़ियों की रीति पर न चला सृष्टि के आरम्भ से आज पर्यंत वेदानुसार सनातन रीती पर ही चलाइये। अर्थात् जिस मार्ग पर हमारे सत्पुरुष, पिता और पितामह चले हों, उसी पर चलें और जो पितामह ने अनुचित कर्म किये हों तो उनके मार्ग को कभी स्वीकार न करें, जैसा मनुजी ने कहा है और ऐसा ही यजुर्वेद में लिखा है।

अनुत्वा माता मन्यतामनु पिताऽनुभ्राता सगर्भ्योऽनुसखा सयूथ्यः।
सा देव सोमच्छेन्द्रायसो अ॰ रुद्रस्त्वा वर्त्तयतु स्वस्ति सोमसखा पुनरेहि॥

और य० अ० २१ मंत्र ९० में लिखा है कि संतानों को योग्य है कि जो जो पितादि बड़ों का धर्मयुक्त कर्म हो, उस उस का सेवन करें और जो जो अधर्म युक्त हो उसको छोड़ देवें। श्रीकृष्ण महाराज ने कहा है जिस आचार पर श्रेष्ठ पुरुष चलते हैं उसी पर इतर जन चलते हैं ऐसा ही यजुर्वेद अ० १२ मं० १११ में आज्ञा है फिर भला आप क्यों प्राचीन पुरुषाओं की मर्याद को तोड़ कर नवीन पुरुषाओं के अनाचार का प्रमाण देते हो। जब कि पुरुषाओं ने जितेन्द्रियता को मेट विद्या का पठन पाठन

ही उठा दिया। आचारका क्या ठीक? देखिये मनु महाराज ने श्रेष्ठों के विषय में कहा है कि श्रेष्ठ उन ब्राह्मणों को समझना चाहिये जिन्होंने विधिपूर्वक मीमांसा सहित पढ़ा है। और जो वेदोक्त वाक्य को प्रमाण से समझ सकते हैं इसी कारण विदुर महाराज ने धृतराष्ट्र महाराज से कहा है-१ मतवाला, २ नशा पीने वाला, ३ वेहोश, ४ थका हुआ, ५ क्रोधी, ६ भूंखा, ७ शीघ्रता करने वाला, ८ लोभी, ९ डरपोक, १० कामी। ये दश मनुष्य धर्म को नहीं जानते, जैसा कि--

दश धर्म न जानन्ति धार्तराष्ट्र! निबोधताम्।
मत्तः प्रमत्त उन्मत्तः श्रान्तः क्रुद्धो बुभुक्षितः॥
त्वारमाणश्च लुब्धश्च भीतः कामी च ते दश।
तस्मादेतेषु सर्वेषु न प्रसज्जेत पण्डितः।

इसी हेतु अब आप व्यास, पाराशर, मनु, राजा दशरथ, राजा जनक, अर्जुन, भीम, श्रीकृष्ण आदि सनातन पुरुषाओं की रीति पर चलिये, क्योंकि अब वह समय नहीं है कि किसी धर्म सम्बन्धी परिपाटी में बाधा डाली जावे। वरन् सरकारी राज्य में शेर बकरी एक घाट पर और त्याग विहार कर रहते हैं; इसलिये आप भी इन प्रचलित रीतों को वेद से मिलाइये, यदि उनके प्रमाण वेद में मिल जावें तो स्वीकार कीजिये अन्यथा वेद विरुद्ध कार्य को कर पापभागी न बनिये, चाहे सहस्र जन क्यों न कहें। और धर्म के निर्णय के लिये प्रत्येक नगर वा बड़े २ नगरों में सभा नियत कर उसकी आज्ञानुसार कार्य कीजिये, उसी को धर्म्म सभा वा आर्य्य सभा कहते हैं। प्राचीन काल में ऐसा ही होता था। देखो य० अ० २ मन्त्र ४५ में ईश्वर उपदेश करते हैं कि आश्रम वाले मनुष्यों को मन, वाणी और कर्मों से सत्य का आचरण कर पाप वा अधर्म को त्याग कर के विद्वानों की सभा, तथा उत्तम उत्तम शिक्षा का प्रचार करके प्रजा की उन्नति करनी चाहिये॥

जिस सभा में तीनों वेद, मीमांसा, न्याय निरुक्त और धर्मशास्त्र के जानने वाला ब्रह्मचरी, गृहस्थ और वानप्रस्थ हों वह सभा दशावरा कहलाती है और जिसमें सम्यक् तीनों वेदों के ज्ञाता तीन सभासद हैं वह अवराकही जाती है। धर्म संशय में इन्हीं के द्वारा निर्णय होना चाहिये अथवा एक भी वेदवित् आपत्ति में जिस धर्म की व्यवस्था करे वह माननीय है, न

कि सहस्रों मूर्खों का कल्पित धर्म । सत्य भाषणादि व्रत से रहित, स्वाध्याय से भ्रष्ट केवल जाति के आश्रयसे आजीविका करने वाला सहस्रों मूर्खों के झुंड को सभा वा समाज नहीं कह सकते । ऐसे लोग धर्म के मर्म को नहीं जान सकते और न उनकी दी हुई व्यवस्था माननीय हो सकती है ऐसीही याज्ञवल्क्यस्मृति अध्याय १ श्लोक ९ और अत्रिस्मृति श्लोक १४०, १४१ में लिखा है और विदुरजी ने महाभारतमें कहा है कि वह सभा नहीं जहां वृद्ध न हों और वह वृद्ध नहीं जो धर्म को न कहे, वह धर्म नहीं जो सत्य न हो और वह सत्य नहीं जिस में छल हो, जैसाकि—

न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा वृद्धा न ते ये न वदन्ति धर्मम् ।
धर्मो नवैयत्र च नास्ति सत्यं सत्यं न तद्यच्छलमभियुक्तम् ॥

परन्तु शोकहै कि वर्त्तमान समय में मनुष्य जानकर इस वातपर कुछ ध्यान नहीं देते और शास्त्र के लेखानुसार विद्वान् धर्मात्माओं से धर्म की परीक्षा नहीं कराते आप और अपने आगे आनेवाली सन्तानोंका सत्यानाश कराते चले जाते हैं । प्रियवो ! थोड़े २ धन के निर्णय करनेके लिये बड़े २ वकीलों को सोने की परीक्षा के लिये चतुर सुनार को बुलाते हो तो क्या यह धर्म परीक्षा मूर्ख अविद्वान लोभी कर सकते हैं ।? कदापि नहीं ३ । इस लिये इस कार्य्य को महत्कार्य जान उत्तम पुरुषों से परीक्षा कराकर स्वीकार कीजिये जिस से भारत संतान को सुख प्राप्त हो ।

प्रियमात्मनः ।

जब शास्त्रों में धर्म मर्यादा के अनुसार किसी विषय में दो भिन्न २ आज्ञायें पाई जावें तो उसमें किसी एक के अनुसार (जो अपने मन बुद्धि और सामर्थ्य के अनुकूल हो) कार्य करना आत्म प्रिय कहलाता है पाठको ! इसी धर्म पर हमारे अनेकान जन्मों का सुधार निर्भर है, इस लिये लल्लो पत्तो में डालकर समय को वृथा न खोइये, वरन् अच्छे प्रकार तर्ककर धर्म को निश्चय कीजिये, मनुजी महाराज स्पष्ट आज्ञा दे रहे हैं ।

आर्षं धर्मोपदेशं च वेदशास्त्राविरोधिना ।
यस्तर्केणानुसंधत्ते स धर्मं वेद नेतरः ॥

इसलिये आप निर्भय हो शान्तिपूर्वक धर्म को निर्णय कर सत्या सत्य को विचार सनातन धर्म के अनुकूल पंच कर्मोंको विधि पूर्वक श्रद्धा और भक्ति से यथावत् कीजिये।

———— :o: ————

नित्य-कर्म ॥

प्रिय सज्जन पुरुषो ! कर्म दो प्रकार के होते हैं, एक नित्यकर्म जो प्रति दिन किये जाते हैं, दूसरे नैमित्तिक कर्म जो किसी नियत समय पर होते हैं। इस स्थान पर हम उन नित्यकर्मों अर्थात् पंच यज्ञों की व्याख्या करते हैं जिनकी आज्ञा सत्य शास्त्रों में पाई जाती है और प्राचीन पुरुषों ने इन यज्ञों को प्रति दिन कर महान् सुख उठाया था। परन्तु शोक ! वर्त्तमान काल में बहुधा जन इन यज्ञों के नाम तक भी नहीं जानते फिर करना कैसा ? प्यारे भ्रातृगणों ! इन पंचयज्ञों के करने से आत्मिक ज्ञान की उन्नति होती है, वरन् यों कहा जावे कि ये सब कर्म परमात्मा के पूर्ण ज्ञान के कारण हैं, इसलिए प्रति दिन इन के करने की आज्ञा है। देखिए विदुर जी महराज ने विदुरनीति में लिखा है—पंचयज्ञों को प्रति दिन यत्नपूर्वक करना उचित है। "पंचाग्नयो मनुष्येण परिचर्य प्रयत्नतः"।

यही पराशर स्मृति के १२ अध्याय के ५ श्लोक में आज्ञा है—

संध्या स्नानं जपो होमो देवतातिथिपूजनम्।

आतिथ्य वैश्वदेवं च षट् कर्माणि दिनेदिने॥

शंखस्मृति अ० ५ श्लोक २ और पाराशरस्मृति अ० २ श्लोक १५ में में लिखा है कि जो पंचयज्ञों का त्याग करता है, वह हिंसाओं का प्रतिदिन भागी होता है। सम्वर्त्तस्मृति के प्रथम अध्याय के श्लोक २५ में भी यही उपदेश है। "पंचमहायज्ञान्कुर्यादहरहर्द्विजो न हापयेत्"।

चाणक्य नीति में लिखा—

विप्रोवृक्षस्तस्यमूलंहि सन्ध्या वेदः शाखा धर्म कर्माणि पत्रम्

तस्मान्मूलं यत्नतोरक्षणीयो छिन्नेमूले नैवशाखा न पत्रम्॥

कि विचारवान् पुरुष उस वृक्ष की नाईं है जिस की मूल सन्ध्या और शाखा वेद हैं, उसमें धर्म रूप पत्ते लगे हुए हैं, अतएव मूल अर्थात् संन्ध्या का सेवन यत्न से करना चाहिये, क्योंकि मूल के नष्ट होने से अर्थात् सन्ध्या

का अभ्यास त्याग देने से न तो वेदरूपी शाखा और न धर्म कर्म रूपी पत्र ही स्थित रह सकते हैं, अर्थात् सब नष्ट हो जाते हैं। भविष्पुराण उत्तरार्द्ध के ७० अध्याय में लिखा है कि जो मनुष्य बिना पंचयज्ञ किए भोजन करते हैं वे मानों रुधिर पीते हैं। श्रीमद्भागवत स्कन्ध ९ अध्याय ६ श्लोक १८ में लिखा है कि ऐसे मनुष्य कौवों के समान हैं और मर कर ऐसे स्थान पर जन्म लेते हैं जहां कृमि भोजन को मिलते हैं। लिंगपुराण पूर्वार्द्ध के २६ अ० में यही आज्ञा है कि जो इन पंचयज्ञों के किए बिना भोजन करता है वह शूकर की योनि में जाता है, यथा:-

अकृत्वा च मुनिः पञ्चमहायज्ञान् द्विजोत्तमः।
भुक्त्वा च शूकराणान्तु योनौ वै जायते नरः॥

भविष्पुराण अध्याय १९ में कहा है, कि ब्रह्मयज्ञ, पितृयज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ और अतिथियज्ञ प्रति दिन करना चाहिए, इनके न करने से पञ्च सूना अर्थात् पांच प्रकार की हिंसाओं का भागी होता है। शिवपुराण धर्म संहिता में भी गायत्री मंत्र के जपने का उपदेश किया है। बहुधा हमारे प्राचीन ऋषिमुनि और प्राचीन पुरुष इसी मंत्र द्वारा परमेश्वर की उपासना करते थे। स्मृतिकारों ने भी इसकी बड़ी महिमा दिखलाई है। देखिए हारीतस्मृति अ० ३ श्लोक ४ में लिखा है-'गायत्रीं वेदमातरं' और व्यासस्मृति अ० १ श्लोक २१ मेंभी गायत्री को वेदमाता माना है। शंखस्मृति अ० १२ श्लोक ११ में लिखा है कि गायत्री वेदों की माता है, यही पापों का नाश करती है और अभीष्ट को देती है जैसा कि—

अभीष्टं लोकमाप्नोति प्राप्नुयात्काममीप्सितम्।
गायत्री वेदजननी गायत्री पापनाशिनी॥

और १२ श्लोक में लिखा है कि गायत्री से परे पवित्र करने वाला कोई मन्त्र नहीं, नरकरूपी समुद्र में पड़ने वाले मनुष्यों को हाथ पकड़ कर निकालने वाली गायत्री है। और श्लोक १६, १७ में इसके जप से स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति का महात्म बतलाया है। पद्मपुराण तृतीय सर्ग खण्ड अध्याय १६ में लिखा है कि प्रातःकाल गायत्री का जो कोई जप करता है वह चारों वेदों के फल को पाता है।

संवर्तस्मृति के ११ श्लोक में लिखा है कि सब पापों की शुद्धि के लिये वेदों की माता गायत्री का वन में नदी के तट पर जप करे, जैसा कि—

अभ्यसेच्च तथा पुण्यां गायत्रीं वेदमातरम् ।
गत्वारण्ये नदीतीरे सर्व पाप विशुध्यते ॥

और श्लोक २२८, २२९, २३०, २३१, २३२, २३४ में भी गायत्री के जप की आज्ञा तथा दक्षस्मृति के २ अ० के ४२ श्लोक में लिखा है कि 'गायत्री जप उच्यते' मनुस्मृति अ० ३ के श्लोक ८३ में लिखा है कि सर्वोपरि गायत्री मंत्र है, जैसाकि 'साविञ्यास्तु परं नास्ति'। फिर इसी के जप की आज्ञा ७६, ७७ श्लोक में की है, और श्लोक ७८ में लिखा है कि इसी के जप से मनुष्य बड़े पापों से छूट जाता है। और ८२ श्लोक में लिखा है कि परमपदको पाता है। याज्ञवल्क्यस्मृति अ० श्लोक २२, २३ और शिवपुराण विन्ध्येश्वरी संहिता अ० ३२ श्लोक १८ में गायत्री के जप की आज्ञा है हारीतस्मृति अ० ४ श्लोक ४९ में कहा है कि गायत्री के प्रति कथन है। इसलिये प्यारे सज्जनों! प्रेम और उत्साह के साथ इस सनातन आज्ञा के अनुकूल पंचयज्ञ करने का प्रचार करो और वह पंचयज्ञ यह हैं जैसा कि मनुस्मृति अध्याय ३ श्लोक ८० में लिखा है—

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञो ऽतिथिपूजनम् ॥

१—वेद के पढ़ने पढ़ाने संध्योपासन अर्थात् ईश्वर की स्तुति प्रार्थना उपासना करने आदि को ब्रह्मयज्ञ कहते हैं। २—अग्नि में पुष्टिकारक सुगन्धित, रोगनाशक, मिष्ट इन चार प्रकार के पदार्थों को मंत्र सहित डालने को देवयज्ञ कहते हैं। ३-माता, पीता, गुरु, आचार्य को श्रद्धा पूर्वक तृप्त करने का नाम तर्पण है। ४-भोजनों के समय मिष्टान्न को मंत्र सहित अग्नि में चढ़ाना फिर सब पदार्थों में से छः ग्रास निकाल कर कंगाल, रोगी, आदि को देने का नाम बलिवैश्वदेव है। ५-पूर्ण विद्वान परोपकारी जितेन्द्रिय, धार्मिक सत्योपदेशक, शान्तचित्त, निर्भय इत्यादि गुणयुक्त संन्यासी भ्रमण करता हुआ गृहस्थ के यहां आकर निवास करे तो उसका अच्छे प्रकार सत्कार करके तृप्त करने को अतिथियज्ञ कहते हैं।

ऐसा ही श्रीमद्भागवत स्कन्ध ११ अध्याय १७ श्लोक ५० में लिखा कि वेदाध्ययन से ब्रह्म को, श्रद्धा से स्वाध्याय करके पितरोंको स्वाहा कर के देवताओं को, बलिवैश्वदेव करके भूतों को, अन्न और जल से मनुष्यों को तृप्त करना परम आवश्यक है।

वेदाध्ययनं स्वधास्वाहाबल्यन्नाद्यैर्यथोदयम्।
देवर्षिपितृभूतानि मद्रूपाण्यन्वहं यजेत् ॥

इसी प्रकार याज्ञवल्क्यस्मृति के स्नान प्रकरण के प्रथम श्लोक और शंखस्मृति के अ० ५ के श्लोक ३, ४ और कात्यायन स्मृति खण्ड १३ श्लोक २ में आता है।

महायज्ञ।

सन्ध्या-प्रिय सज्जन पुरुषो ! संध्याकाल अर्थात् प्रातः और सायं समय ईश्वर की उपासना भी करनी चाहिये क्योंकि जो पंचयज्ञों को त्यागता है उसको सुरापान के समान पाप लगता है। विष्णुपुराण अ० ६ में लिखा है कि गृहस्थ पुरुषों को प्रति दिन पंचयज्ञ करना चाहिये मनु० अ० ३ श्लोक ६९ में कहा है कि गृहस्थों को प्रतिदिन के गृहकार्यों आदि से जो पाप होता है उसके प्रायश्चित के लिये महर्षियों ने पांच महायज्ञ रचे हैं, जैसा —

तासां क्रमेण सर्वासां निष्कृत्यर्थं महर्षिभिः।
पञ्चक्लृप्ता महायज्ञाः प्रत्यहं गृहमेधिनाम् ॥

देवी भागवत स्कंध ११ अध्याय २२ श्लोक २ में लिखा है कि देवयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, भूतयज्ञ, पितृयज्ञ मनुष्ययज्ञ, इन पांच यज्ञों को अवश्य करना अभीष्ट है।

देवयज्ञो ब्रह्मयज्ञो भूतयज्ञस्तथैव च।
पितृयज्ञो मनुष्यस्य यज्ञश्चैवस्तु पञ्चमः ॥

इसलिये इन सब बातों को जान प्रतिदिन पंचयज्ञ करते रहो क्योंकि जो मनुष्य अपनी शक्ति के अनुसार इन पचयज्ञों को नहीं छोड़ता वह गृह में रहता हुआ भी हिंसा के दोषों में लिप्त नहीं होता, जैसा कि मनु० अ० ३ श्लोक ७१ में कहा है —

पञ्चैतान्यो महायज्ञान्न हापयति शक्तितः।
स गृहेऽपि वसन्नित्यं सूना दोषैर्न लिप्यते ॥

विष्णुपुराण अंश ३ अध्याय १८ में मैत्रेयी जी ने कहा है कि जो नित्यकर्म त्यागन करता है वह पापी होता है बृहन्नारदीय पुराण अ० २५ श्लोक ३७ में कहा है कि जो पञ्चयज्ञों को त्यागन करता है वह ब्रह्महत्यारा होता है। वामनपुराण अ० १४ में लिखा है कि नित्य नैमित्तिक कर्म की हानि कभी न करनी चाहिये।

श्रीमद्भागवत स्कन्ध १० उत्तरार्द्ध अ० ८४ में लिखा है जब बलदेवजी महाराज संन्यास धारण करने को उद्यत हुये तब श्रीकृष्ण महाराज ने उन से कहा कि जो पुरुष गृहस्थ होकर देव ऋषि पितर का ऋण उद्धार किये विना पञ्चकर्मों को त्यागता है वह नाना प्रकार के नरक भोगता हैं। ऐसा ही तुलाधार ने जाजलि मुनि को उपदेश दिया है हारीत स्मृति अ० ४ श्लोक ४९ में कहा है कि गायत्री के प्रति दिन जप करने से पापों का नाश हो जाता है जैसा 'गायत्री यो जपेन्नित्यंस न पापेन लिप्यते' मनुजी महाराज ने प्रायश्चित् विषय में लिखा है कि जहां तक हो सके गायत्री का जप करे सावित्री च जपेन्नित्यं' और पाराशर स्मृति में गायत्री 'परमोत्तमा' अर्थात् गायत्री सब मन्त्रों से उत्तम है। संवर्त्तस्मृति श्लोक २२१ में पापियों के पाप का शोधक गायत्री से परे कोई मन्त्र नहीं, इस लिये ओंकार महाव्याहृति समेत गायत्री का जप करे। गरुड़पुराण अ० ८ में लिखा है कि जो प्रेतयोनि से छूटना चाहे वह नम्र होकर गायत्री का जप करे। लिङ्गपुराण अ० १९ में गायत्री के जपकी आज्ञा है कि और २३ अ० में बड़ी महिमा दिखलाई है। भविष्यपुराण अ० ३ में कहा है कि जो गायत्री जप करता है वह बड़े २ पद को पाता है। गीता अ० १० श्लोक ३९ में श्रीकृष्णमहाराज का वचन है कि सब मंत्रों में गायत्री श्रेष्ठ है शंखस्मृति अध्याय १२ श्लोक १ में गायत्री को श्रेष्ठ मन्त्र माना है 'सावित्री विशिष्यते'। चाणाक्यनीति अ० १७ श्लोक ७ में गायत्री को सब मन्त्रों से अधिक माना है इसके उपरान्त विष्णुपुराण अंश ३ अ० ११ में कहा है कि विना गायत्री जपे जो भोजन करता है वह पीव पीता है 'मूत्रकश्चनरकंगच्छेष्मभुग्जायतेनरः' ॥

पद्मपुराण तृतीय सर्ग खण्ड अध्याय १९ में लिखा है कि जो प्रतिदिन गायत्री का जप नहीं करता वह रक्त खाता और पीता है। अ० १७ श्लोक ११ में लिखा है कि जो ब्राह्मण संध्योपासन नहीं करता वह ब्राह्मण का मारने वाला कहाता है और नरक को जाता है। और अ० ३१ श्लोक १०६ में लिखा है कि जो जन्म भर स्नान, सन्ध्या नहीं करता वह प्रेत होता है। शिवपुराण ज्ञानसंहिता अध्याय ७८ में लिखा है कि सन्ध्याहीन पापी होता है।

शिवपुराण विद्येश्वरी संहिता अ० ११ में गायत्री जपने की आज्ञा है। अयोध्या कां० श्लोक ९ से प्रत्यक्षप्रकट है कि श्रीरामचन्द्र महाराज संध्या

कर गायत्री का जप करते थे और श्रीमद्भागवतसे श्रीकृष्ण महाराज का गायत्री मंत्री से परमात्मा की उपासना करना प्रकट है।

प्रिय मान्यवरो! जब सम्पूर्ण ऋषि मुनि हमको गायत्री का उपदेश करते हैं और प्राचीन पुरुषाओं ने इसके जपने से महान् सुणगोंको प्राप्त किया फिर हम नहीं जानते सर्वमान्य मंत्र को त्याग कल्पित और आधुनिक मंत्रों का क्यों जाप करते हैं, जिनकी किसी स्मृति के कर्ता ने आज्ञा नहीं दी और हमारे परम पूज्य श्रीरामचन्द्र और श्रीकृष्ण इत्यादि ने उन मन्त्रों को मान्य भी नहीं किया, अर्थात् आप भी इसका जप नहीं किया वरन् उसी परम पवित्र वेदोक्त मंत्र ही का जप कर संसार के लिये उपदेश भी किया। वर्तमान् समय में ऐसे मन्त्रों की संख्या अगणित होगई और उनके जप के बड़े महात्म्य भी स्वार्थीजनों ने बना लिये हैं। इसलिये इसको मिथ्या जान शीघ्र त्याग कर गायत्री मन्त्र से ही परमेश्वर की उपासना करो। क्योंकि अत्रि ऋषि ने अत्रिस्मृति श्लोक ६३ में लिखा है कि जो मनुष्य सायंकाल और प्रातःकाल प्रमाद से सन्ध्या का त्याग करते हैं वे एक हजार गायत्री के जप से शुद्ध होते हैं। मनुस्मृति अ० २ श्लोक ८० में लिखा है कि जो ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य गायत्री का जप नहीं करता और अपने धर्म को नहीं करता तो उसकी साधुजन निन्दाकरते हैं। और इसी अध्याय के १०२ श्लोक में लिखा है, जो द्विज प्रातः और सायंकाल में संध्या के समय गायत्री का जप नहीं करता वह शुद्र के समान है अतः द्विजों के समान कर्म करने का अधिकारी नहीं रहता, जैसा कि—

न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम्।
स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद्द्विजकर्मणः॥

देवी भागवत् स्कन्ध ९ अध्याय २६ में भी यही उपदेश है तथा मंत्र २९ में यह भी लिखा है कि संध्या हीन पुरुष को सदा अशुचि कहा है 'सन्ध्याहीनो अशुचिः' स्कन्ध ११ अध्याय २४ में लिखा है कि विना सन्ध्योपासन किये अन्य किसी कार्य का अधिकारी नहीं रहता। अ० ४९ में नरस्कार मुनि की स्त्री ने कहा है, सूर्य अस्त होने वाला है यदि हमारे स्वामी सायं सन्ध्या न करेंगे (जो प्रतिदिन करते हैं और ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य को करनी चाहिये) तो ब्रह्म हत्यादि का पाप उनको होगा इसलिये उनको सोते से जगा दिया और पाप से बचाया।

बृहन्नारदीय पुराण अ० २५ में लिखा है कि जो धूर्त द्विज स्वस्थ हुआ भी संध्या नहीं करता उसको सब धर्म्मों और वर्णों से बाहर जान पखंडी जानना चाहिये इस लिये 'ओं नमो नारायण' और 'ओंनमोभगवते वासुदेवाय' इत्यादि मन्त्रों को त्याग ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य जिनको द्विज कहते हैं एकही गायत्री से परमात्मा की उपासना करना चाहिये, क्योंकि तीनों वर्णों को द्विज कहा है, तीनों को वेद के पढ़ाने का अधिकार है और यह मन्त्र भी यजुर्वेद के ३६ वें अ० का तीसरा मंत्र है, फिर इसके भिन्न होने का क्या करण ? श्री रामचन्द्र और श्रीकृष्ण आदि ने भी गायत्री के कहीं भेद नहीं लिखे। मनु जी महाराज ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य के यज्ञोपवीत मेंखला, दण्ड में तो भेद लिख दिया, परंतु तीनों वर्णों की तीन गायत्री होने वा जप करने का उपदेश नहीं किया, वरन मनुस्मृति अ० २ श्लोक ७७, ७९ में ओं भूः भुवः स्वः' और गायत्री के तीनों पाद जो तीनों वेदों से निकाले हैं तीनों वर्णों को गांव के बाहर इनके जप करने की आज्ञा है, जैसा—

सहस्रकृत्वात्वभ्यस्य वहिरेतत्त्रिकं द्विजः।
महतोप्येनसो मासात् त्वचेव ऽहिर्विमुच्यते।

फिर भेद कैसा ? इसके उपरांत तीनों वर्ण के यहां १६ संस्कार होते हैं उनके यहां यहीः—

गणानांत्वा गणपतिॐहवामहे० इत्यादि॥
शन्नोदेवीरभीष्टये आपो भवंतु पीतये शंयोरभिस्रवन्तुनः।
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्तिनः पूषाविश्ववेदाः इत्यादि।
त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम्॥

इत्यादि वेद मंत्र पढ़े जाते हैं और शनैश्चर, वृहस्पति की प्रसन्नता और अकालमृत्यु से बचने के लिये पुरोहित जी अपने यजमानों से इन्हींका जप कराते हैं। इसके उपरांत सम्पूर्ण सत्य शास्त्रों में वेदारम्भ संस्कार के समय प्रथम गायत्री के उपदेश की आज्ञा है, इसी कारण गुरुमुख से सुने जाने को गुरुमुख कहते हैं। किसी और मंत्र के उपदेश के सुनाने की आज्ञा किसी स्मृतिकार ने नहीं दी, और न उपदेश किया कि ब्राह्मण को ब्रह्म और क्षत्रिय को क्षत्रीय और वैश्यको वैश्य गायत्री सुनाना इसके अतिरिक्त ब्रह्म गात्री के तो यही अर्थ हैं कि ऐसा छन्द जो ब्रह्म अर्थात् पर-

मेश्वर का ज्ञान करता है जिसकी सबको आवश्यकता है परन्तु क्षत्रिय गायत्री और वैश्य गायत्री के क्या यही अर्थ हैं जो उस समय के लिये आवश्यक हैं ? कदापि नहीं। इसके उपरांत पुराणों में भी तीनों वर्णों के लिये ब्रह्म-गायत्री के जपने की आज्ञा है।

देखिए लिंगपुराण उत्तरार्द्ध के अध्याय २० में लिखा है कि हमारी पूजा के अधिकारी ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य हैं, फिर अध्याय, २२ में पूजा की विधि इस प्रकार वर्णन की है।

ओं भूः ओं भुवः ओं स्वः ओं महाः जनः ओं तपः ओं सत्यम् ओं ऋतः ओं ब्रह्म. इस नवाक्षरी मंत्र और ओं भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

अब आप को प्रकट हो गया कि ब्राह्मण, वैश्य को एही गायत्री मंत्र से पूजा करने की आज्ञा पुराण दे रहे हैं, केवल 'ओं नमः सूर्याय खखोल्काय नमः' यह मंत्र अपनी ओर से लगा दिया है, वरन् आप ही पण्डित जी से पूंछिये कि यह कौन से वेद का मंत्र है ?

फिर इसी उत्तरार्द्ध के ५१ अध्याय में शत्रुनाशनी विद्या लिखी है, उसमें गायत्री मन्त्रही लिख कर उसके आगे (ओं फट् जहिहुँफटछिं धिं भि धि जहि पन हन स्वाहा) इतना विशेष लिखा है । प्यारे सज्जन पुरुषों ! यह तो कोई देखने वाला ही नहीं कि यजुर्वेद अ० ३६ मं० ३ में तो लिखा हा नहीं, पण्डित जी कहां से ले आये ? शोक तो इस बात का है कि दूध में पानी मिलाने आदि को तो पापी कहें, परन्तु वेद मन्त्रों में अनगढ़ और बेजोड़ मन्त्रों को मिलाने वाले तथा सत्य के छिपाने वालों को आप पण्डित जी ही कहते चले जाते हैं। देखिये भविष्यपुराण अ० २ में लिखाहै कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इस गायत्री का जप करें जिसको ब्रह्माने तीनों वेदों से निकाला है और पद्मपुराण तृतीय सर्गखण्ड अध्याय १६ में ब्रह्माजी ने गायत्री जप का बड़ा माहात्म्य बतलाया है जिसको सुन कर नारदने पूंछा कि वह गायत्री कौन सी है ? तब ब्रह्मा ने उत्तर दिया—

सविता देवता यस्य मुखमग्निस्त्रिपात्स्थिता।
विश्वामित्र ऋषिश्छन्दो गायत्री सा विशिष्यते ॥

कि जिसका गायत्री ही छन्द, सूर्यदेवता, अग्नि मुख और विश्वामित्र ऋषि है ऐसा शंखस्मृति अ० १२ श्लोक २ तथा दक्षस्मृति अ० २ श्लोक

४३ में लिखा है, अर्थात् जो य० अ० ३६ मंत्र३ में लिखा है और जिस में उपरोक्त सब बातें उपस्थित हैं, सब से श्रेष्ठ, प्रसिद्ध और जपने योग्य है। देखो विदुरजी ने महाराज धृतराष्ट्र को उपदेश किया है—

नवै भिन्नाजातु चरन्ति धर्मं नवै सुखं प्राप्नुवंतीह भिन्नाः।
नवै भिन्ना गौरवं प्राप्नुवन्ति नवै तेभ्यः प्रशमं रोचयन्ति॥
नवै तेषां स्वादते पथ्यमुक्तं योगक्षेमं कल्पते नैव तेषाम्।
भिन्नाना वैमनुजेन्द्र परायणं नविद्यते किञ्चदन्यद्विनाशात्॥

हे राजन्! जिन मनुष्यों में भिन्नता होती है वे न धर्म का आचरण कर सकते हैं, न सुख गौरव और शांतिको प्राप्त करते हैं न उनको हित की बात अच्छी लगती और न योगक्षेम पदार्थों की प्राप्ति और रक्षा में समर्थ हो सकते हैं, अर्थात् भिन्न पुरुष का परिणाम सिवाय नाश के कुछ नहीं। ऋ० अ० ८ व० ४९ मंत्र में लिखा है—

समानोमन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सहचित्तमेषाम्।
समानं मंत्रमभिमंत्र येवः समानेनवोहविषा जुहोमि॥

हे मनुष्यों! तुम्हारा विचार और तुम्हारी सभा और तुम्हारे सब आशय और तुम्हारा पुरुषार्थ आदि सब समान अर्थात् अभिन्न हों और समान ही मंत्रसे संसार वा परमार्थ का विचार करने के लिये मैं तुमको आज्ञा देता हूँ।

यथेमां वाचं कल्याणि मावदानि जनेभ्य।
ब्रह्म राजन्याभ्यांशूद्राय चार्य्याय चस्वाय चरणाय॥

जैसा मैंने इस कल्याणकारिणी वेदरूपी वाणी सब मनुष्यों के लिये उपदेश किया है वैसा तुम परस्पर इस का उपदेश या प्रचार करो। इसके उपरान्त यजुर्वेद अ० १२ मं० ५८ में लिखा है।

सवा मनांसि संव्रता समचित्तान्याकरम्।
अग्ने पुरीष्याधिपा भवात्वेनइषमूर्जंयजमानायधेहि॥

ईश्वर स्पष्ट आज्ञा देते हैं कि उपदेशक मनुष्य को चाहिये कि जितना सामर्थ्य हो उतना सब मनुष्यों का एक धर्म और एक कर्म, एक प्रकार की चित्त वृत्ति, बराबर सुख दुख जिस प्रकार का हो, उसी प्रकार की शिक्षा करें, सब स्त्री पुरुषों को योग्य है कि विद्वान् ही को उपदेशक और अध्यापक नियत कर सेवा करें और उपदेशक और अध्यापकों को योग्य

है कि उनके ऐश्वर्य और पराक्रम को बढ़ावें, क्योंकि सब मनुष्यों में एक धर्म के बिना आत्माओं में मित्रता नहीं हो सकती और मित्रता के बिना निरन्तर सुख भी नहीं मिल सकता।

प्यारे स्त्री पुरुषों! इसी भिन्नता ने तो भारतको चौपट कर दिया, अब ध्यान पूर्वक विचार कर एक ही गायत्री मंत्र से दोनों काल परमात्मा की उपासना कीजिये, क्योंकि वेद में भी उपसना के दो ही समय बतलाये हैं। देखो यजुर्वेद में लिखा है कि जो पुरुषार्थ मनुष्य सूर्य चन्द्रमा अर्थात् सायं-काल और प्रातःकाल की वेलाके समान नियम के साथ उत्तम २ यत्न करते हैं, तथा इन ही दोनों वेलाओं में सोने और आलस्य आदि को छोड़ कर ईश्वर का ध्यान करते हैं वे बहुत धन अर्थात् उत्तम सुखों को पाते हैं अथर्व कां० ९१ मं० ३–४ अनु० ७ में लिखा है—

सायं सायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातः प्रातः। सौमनस्य दाता वसोवसुदान॥
एधिवयंत्वेत धानास्तन्वं पुषेम। प्रातः प्रातर्गृहपतिर्नो अग्निः सायं सायं सौम-
नस्य दाता। वसोर्व सोर्वसुदान एधीन धनास्त्वाहानहिमाऋधेम्॥

अर्थात् हे आरोग्य आनंद सब उत्तम पदार्थों के दाता वसुदेव परमेश्वर हम लोग सायं २ प्रातः २ अर्थात् सुबह शाम आपकी उपासना करते हुए सौ वर्ष तक ऋद्धि सिद्ध और पुष्टि को प्राप्त हों।

उद्यन्तमस्तयान्तमादित्यमभिध्यायेन कुर्वन्॥
ब्राह्मणो विद्वान् सकलं भद्रमश्नुते॥ तैत्तरीय आ० २ प्रपा० २अनु०२॥

सूर्य के उदय और अस्त होते हुए परमेश्वर का ध्यान करता हुआ ब्राह्मण सब ऐवर्श्य को प्राप्त होता है। और कोठोपनिषद् में लिखा है—

स्वप्नान्तं जागरितान्तैर्योभौमेनानुपश्यति।
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति॥

मनुष्य स्वप्नके अंत अर्थात् प्रातःकाल और जागृतके अंत अर्थात् सायंकाल इन दोनों में परमात्मा को यथार्थ देखता है अर्थात् ध्यान लगाता है, वह ध्यान शील ज्ञानी ईश्वर को सर्वोत्तम और व्यापक जान कर व्याकुल नहीं होता। मनु महाराज ने अ० १ श्लोक १०१, १०२, में लिखा है कि—

पूर्वां सन्ध्यां जपंस्तिष्ठेत् सावित्रीमार्कदर्शनात्।
पश्चिमांतु समासीनः सम्यगृक्षविभावनात्॥
पूर्वां सन्ध्यां जपं स्तिष्ठन्नैशमेनो व्यपोहति।

पश्चिमांतु समासीनो मलं हंति दिवाकृतम् ॥

प्रातःकाल खड़ा होकर गायत्री का जप करने से मनुष्य का रात का किया हुआ पाप छूट जाता है और सायंकाल खड़ा होकर गात्री का जप करने से मनुष्य का दिन का किया हुआ पाप छूट जाता है।

जो द्विज प्रातःकाल खड़ा होकर और सायंकाल बैठकर जप नहीं करता वह शूद्र के समान है और आर्यों के कर्म करने का अधिकारी नहीं रहता। याज्ञवल्क्य स्मृति में लिखा है कि—

प्राणायामम् संप्रोक्ष्य ऋचेमाब्दैवतेनतु।
जपन्नासीत सावित्री प्रत्यगातारकोदयात् ॥
सन्ध्यां प्राक्प्रातरेवंहितिष्ठेदासूर्यदर्शनात् ॥
अग्निकार्य ततःकुर्यात्संध्ययाकमयोरपि ॥

प्राणायाम करके मार्जन के मन्त्र से सिर पर जल छिड़क कर सन्ध्या समय में जब तक तारे निकलें गात्री जपता रहे इसी प्रकार प्रातःसंध्या को भी सूर्योदय तक करे, अनन्तर दोनों संध्याओं में अग्निहोत्र भी करे और भी लिखा है—

शरीर चिंतां निर्वर्त्य कृतशौचविधिर्द्विजः।
प्रातः सन्ध्यामुपासीत् दन्तधावन पूर्वकम् ॥
उपास्यपश्चिमां सन्ध्यां हुत्वाग्नींस्तानुपास्य च।
भृत्यैः परिवृतोभुक्त्वा नातितृप्त्याथसंविशेत् ॥

अर्थात् द्विज प्रातःकाल शौच और दातौन कर संध्या को करे, इसी प्रकार सायं सन्ध्या और अग्निहोत्र कर नौकरों की सुधिलेकर आर सूक्ष्म भोजन कर शयन करे देवलस्मृति में लिखा है कि प्रातः काल सायंकाल संध्या करनेही से मनुष्य शुद्ध होता है महाभारत वन पर्व अ० १९९ श्लोक ८१ में मार्कण्डेय मुनि का वचन है कि जो पुरुष प्रातः सायंकाल की सन्ध्या में गायत्री का जप करते हैं वह पापरहित और पवित्र हो जाते हैं भविष्य पुराण अ० ३ में लिखा है कि प्रातः काल सूर्योदयपर्यंत और सूर्यास्त से पहिले ही सायं सन्ध्या का आरम्भ करे और तारादर्शन तक गायत्री का जप करे। अ० ७१७ सदाचार निरूपण, में कहा है कि ब्रह्म मुहूर्त में उठ धर्म और अर्थ का चिन्तवन करे और आचमन स्नानादि कर, प्रातः सन्ध्या को मौन से करे फिर सायंकाल को भी सन्ध्या वन्दन करे मार्कण्डेय पुराण के ३४ अध्याय में महारानी मन्दालसा ने जो अलर्क को

उपदेश किया है वहां दो संध्याओं का वर्णन है श्री मद्भागवत में भी भगवत् भजन के दो ही समय वतलाए हैं स्कंध यु० अ० ११ के श्लोक १ में नारद महाराज ने युधिष्ठिर जी से कहा है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य यथाक्रम से जनेऊ कराकर गुरुकुल में जाकर वेद पढें, और इंद्रियजित रहकर सायंकाल और प्रातःकाल गायत्री मन्त्र से सनातन ब्राह्म की उपासना करें, जैसा।

सायंप्रातरुपासीतगुर्वग्न्यर्कसुरोत्तमान्।
उभे सन्ध्ये च यतवान् जपन ब्रह्मसनातनम्॥

वाल्मीकीय रामायण के बालकाण्ड सर्ग ३९ श्लोक २० में लिखाहैः-

सुप्रभाता निशा राम पूर्वा संध्याप्रवर्तते।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते गमनाया भिरोचय॥

हे रामचन्द्र प्रातः काल हुआ, उठिए और प्रातःकाल की सन्ध्याकर चलने की तैयारीकीजिए। अयोध्याकाण्ड सर्ग४९ श्लोक १३ मेंलिखा है।

उपास्यंतु शिवांसंध्यां दृष्ट्वारात्रिमुपागताम्।
रामस्यशयनं चक्रे सूतः सौमित्रणा सह॥

सायंकाल की सन्ध्या कर जब रात्रि हुई तो सुमित्रा लक्ष्मण जीने शयन करने के लिये स्थान बनाया। सर्ग ७२ श्लोक ४३ में भरत ने कहा कि जिसकी अनुमति से वड़े भाई राम को वनोवास हुआ हो उसको वह पाप लगे जो प्रातःकाल और सायंकाल की सन्ध्या में शयन करने वाले को लगता है। देवी भागवत स्कंध १ अ० १७ श्लोक ६४ से प्रकट है कि व्यास जी के पुत्र शुक्राचार्य सायं सन्ध्या वन्दनांतर शयन करते और फिर पहर रात्रि रहे ईश्वर ध्यान करते थे—'उपास्य पश्चिमां सन्ध्या ध्यान मेवान्वपद्यत शिवपुराण विन्ध्येश्वरी संहिता अ०-९ श्लोक ३७, ३८ और अ० १९ श्लोक १८ में भी दोनों काल संध्या करने की आज्ञा है देवी भागवत स्कंध १२ अ० १ में प्रातःकाल और सायंकाल सन्ध्या करने की आज्ञा है और अ० ४ में लिखाहै जो प्रातः काल और सायंकाल ईश्वर का ध्यान करता है मानो उसने सब तिर्थों के स्नान कर लिये और नरसिंह पुराण अ० ५८ में लिखा है कि जो मोह से संध्या का उलघंन करता है वह नरक को जाता है, विष्णुपुराण अ० ३ भू० ११ मन्त्र ९७ में लिखा है कि जो कोई दोनों काल की संध्याओं में सोता है और संध्योपासना नहीं

करता वह पापी होता है और बिना प्रायश्चित् किये छुटी नहीं पाता, जैसा कि—

सूर्ये णाभ्युदितोयश्चत्यक्तः सूर्येण च स्वपन्।
अन्यथातुरभावात्तु प्रायश्चित्तयते नरः ॥

पद्मपुराण तृतीय सर्ग खण्ड अ० १३ के श्लोक ५५३ वा ५५४ वा ५५५ में 'वारीक' ने अपने मित्रों से कहा है कि सूर्य पश्चिम दिशा को चले जाते हैं देखो संध्या हुआ चाहती है, ब्राह्मण लोग आराधना करने के लिये जलाशयों को जारहे हैं, फिर जब प्रातःकाल सूर्य निकल कर संसारको प्रकाशित करेंगे तब फिर इसी प्रकार मुनि लोग सन्ध्या वन्दन करेंगे जैसी अब कर रहे हैं। इस से भी दो काल संध्या प्रकट होती है।

बृहन्नारदीय पुराण अ० ९ श्लोक ८ वा ९ से प्रकट होता है कि नित्यकर्म प्रातः और सायंकाल करे। पद्मपुराण सर्गखण्ड अ० ४ के श्लोक ९३ से प्रकट होता है कि श्रीरामजी ने सायंकाल आने पर मुनियों के साथ सायंकाल की संध्या की। नरसिंह पुराण अ० ५८ श्लोक ५६ में लिखा है प्रातः और सायं सन्ध्या का उल्लङ्घन न करे। और अ० १३ के श्लोक ४२२ से प्रकट होता है कि महादेव जी संध्योपासन के लिये मन्दाकिनी नदी के तट पर सन्ध्या करने जाया करते थे। तुलसीकृत रामायण से श्री राम का सन्ध्या करना प्रकट होता है।

निशि प्रवेश मुनि आयसु दीना। सबही संध्या वन्दन कीना।
सकल शौचकरि जाय न्हाये। नित्यनिवाह गुरुहि शिरनाये ॥

वाल्मीकि रामायण के देखने से प्रकट होता है कि सीता जी नित्यप्रति सन्ध्या किया करती थीं क्योंकि जब हनुमान जी लंका गये और सीता जी को न पाया तो कहने लगे कि चन्द्रमुखी देवी जानकी यदि जीती है तो सायंकाल के समय शीतल एवं निर्मल जल वाली इस नदी पर सन्ध्या करने अवश्य आवेगी जैसा कि—

सन्ध्याकालमनः श्यामा ध्रुवमेष्यति जानकी।
नदीञ्चेमांशुभजलां सन्ध्यार्थे वरवर्णिनी।
यदिजीवतिसादेवी ताराधिपनिभानना।
आगमिष्यतिसावश्यमिमांशीतजलां नदीम् ॥

रघुवंशसर्ग २ श्लोक २३ में राजादिलीप ने गौ सेवा करते हुए सन्ध्या का त्याग नहीं किया अत्रिस्मृति और विष्णु स्मृति से भी दो काल सन्ध्या

प्रकट होती है इसके उपरांत हारीत स्मृति. अ० ३ संवर्त, बृहस्पति, और कात्यान स्मृति से दो काल सन्ध्या करना प्रकट होता है। शंख स्मृति अ० १० में भी दो काल सन्ध्या करना बतलाया है इसके अतिरिक्त ऐतरेयब्राह्मण में भी दो काल सन्ध्या की आज्ञा है।

तस्माद् होरात्रस्य संयोगे ब्राह्मणः सन्ध्या मुपासीत।

बुद्धि से विचार करने से भी जाना जाता है कि यही दोनों समय सन्ध्या करने के उत्तम हैं क्योंकि विद्या प्राप्त करने और सांसारिक कार्य्यों के अर्थ भी बहुत से समय की आवश्यकता है अतः सिवाय प्रातःकाल और सायंकाल के मन का एकाग्र होना कठिन है और बिना मन की एकाग्रता के बेगार टालने से कुछ लाभ नहीं होता। अथर्ववेद काण्ड १ अनुवाक ५ सूक्त १२ के मंत्र २ में उपदेश है कि प्रातः और सायंकाल की किरनें तिरछी पड़ती हैं इसलिये लाल दीखती हैं वायु शीतल, मन्द और सुगंध वाला चलता है अतः उत्तम वैद्य को योग्य है कि रोगियों को इस समय की वायु सेवन करा और औषधिविद्या आरोग्य करे। इसके अनुकूल मनुने दो काल सन्ध्या का उपदेश किया क्योंकि वेदों में शारीरक व्याधियों के दूर करनेके लिये औषधिकाविधान दोबार तथा आत्मिक रोगों के दूर करणार्थ ईश्वर का ध्यान भी दोबार हीं बतलाया है। ऋग्वेद अ० १ सूक्त ४८ मं० ४ में उपदेश है कि एकान्त और पवित्र निरुद्रव स्थान में जप-उपासना और नव अंगोंका अभ्यासकरे तब ही मनुष्य श्रेष्ठ ज्ञानी शुद्ध अन्तः करण और आत्मयोग के अधिकारी होते हैं।

सन्ध्या शब्द के अर्थ मिलने के हैं, जैसा दिन रात या रात दिन प्रातःकाल सायंकाल समय आपस में मिलतेहैं, वैसे समय पर जीव और परमात्मा भी आपस में मिलते हैं और इन्हीं दोनों समयों पर एक विशेषगुण यह भी है कि स्वाभाविक रीत से मनुष्य को इन दोनों समयों पर भी प्रसन्नता और मनकी एकाग्रता होती तथा पेट भी खाली होता है कि जिस के कारण अच्छे प्रकार मन लगा कर परमेश्वर का ध्यान हो सकता है, जो और किसी प्रकार से नहीं हो सकता। शोक का स्थान है कि हमारे स्वदेशीय भाइयों ने अन्य देशीय लोगों की देखा देखी मध्यान्ह काल में भी संध्या करने का समय नियत कर दिया। यदि मध्यान्ह काल के समय दोनों पहर मिलते हैं तो प्रत्येक गण्टे और प्रत्येक मिनट और सेकेण्ड और पल पर दो मिनट सेकेंड और दो पल भी मिलते हैं यदि इनका मिलना भी संध्याके

अर्थ में समझा जाय, तो फिर यही योग्य है कि प्रत्येक समय संध्या के उपरांत कोई सांसारिक कार्य न करना चाहिये। फिर विचारिए कि सांसारिक कार्य क्योंकर होंगे। इसी कारण हारीत स्मृति अ० ४ में लिखा है कि जो द्विज प्रातःकाल तथा सायंकाल संध्या को त्यागता हैं; वह नरक में जाता है।

तस्मान्नलंघयेत्सन्ध्यांसायं प्रातः समाहितः।
उल्लंघयति यो मोहात्स यातिनरकं ध्रुवम्॥

अत्रिस्मृति अ० १ श्लोक ६२ में लिखा है कि जो प्रमाद से प्रातः सायंकाल की सन्ध्या का त्याग करे वह स्नान कर एक हज़ार गायत्री के जप से शुद्ध होता है। इसके अतिरिक्त प्रातः संध्या पूर्वाभिमुख और सायं संध्या पश्चिमाभिमुख करने की आज्ञा है, परन्तु जिन पुराणों में तीन काल संध्या करने की आज्ञा की है, उनमें मध्यान्ह काल में किसी दिशा का कोई विधान नहीं किया।

इस लिये संध्या दो ही समय करना योग्य है। हां यह बात ठीक है कि परमेश्वर को सर्वव्यापक जान कर किसी समय और किसी स्थान पर उनको यदि मन से दूर न करे, परन्तु जप उसी समय हो सकता है कि जब हम परमेश्वर के गुणों से जानकार हों, उसी के अनुसार अपने आचार को सुधारें। जैसे परमेश्वर सत्यरूप हैं वैसेही मनुष्य को योग्य है कि किसी काल में सत्य को हाथ से न जाने दे, अर्थात् सत्य ही बोले, सत्य ही कहे सत्य ही माने, यही परमेश्वर का प्रत्येक समय का जप है।

प्यारे सज्जन पुरुषो! इसका नाम जप नहीं है कि हाथ में गज़ भर की माला और जिह्वा से प्रत्येक समय राम राम कृष्ण २ ओं ओं शिव २ आदि की रट लग रही है और मन में नाना भांति के रागद्वेष भरे हुये हैं। इस जप से कुछ भी नहीं होगा, जब तक उसके गुणों को जान कर उनको काम में न लाया जावै जैसा कि मिश्री मिश्री कहने से कुछ लाभ नहीं हो सकता (या इस बात के जान लेने से कि मिश्री मीठी होती है) जब तक मिश्री खाई न जाय वा मिश्री का नाम लेकर संखिया खा लिया जावे तो उससे मुंह मीठा न होगा, वरन् उलटा कड़वा हो जायगा जिसका अंतिम फल मरण होगा, अर्थात् जब तक राम शिव ओं आदि शब्दों के अर्थ मालूम न हों और उन पर वर्ताव न हो तब तक कुछ लाभ नहीं हो सकता जैसा कि कहा है।

मला तेरी काठ की, थोगा दई पिरोय ।
मन में गाँठी पाप की, राम भजे क्या होय ॥

ऐसा ही य० अ० ६ मंत्र ६ में लिखा है कि धर्म का मूल अचार ही है जैसा किः—

स्वांकृतोऽसिविश्वेभ्यऽइन्द्रियेभ्योदिव्येभ्यः पार्थिवेभ्योमनस्त्वाष्टु ।
स्वाहा त्वा सुभव सूर्याय देवेभ्यस्त्वा मरीचि पेभ्यऽउदानाय त्वा ॥

जब तक मनुष्य श्रेष्ठाचार करने वाला नहीं होता तब तक ईश्वर भी उसको स्वीकार नहीं करता और जब तक जिसको ईश्वर स्वीकार नहीं करता तब तक उसको पूरा पूरा आत्मबल नहीं होता और बिना आत्मबल के पूर्ण सुख नहीं मिल सकता । वसिष्ठस्मृति में लिखा है ।

आचारहीनस्य तु ब्राह्मणस्य वेदाः षडंगा अखिलाः सपक्षाः ।
न प्रीतिमुत्पादयितुं समर्था अन्धस्य दारा इव दर्शनीयाः ॥

जैसे अन्धे मनुष्य को रूपवती स्त्री से सुख नहीं होता वैसे ही जिन के आचार अच्छे नहीं उनको वेद, उनके अंग पढ़ने और यज्ञ करने से कुछ फल नहीं मिलता क्योंकि आचार ही परम धर्म है महर्षि पराशर और दक्ष ने कहा है कि चारों वर्णों को आचार से रहना धर्म है और जो भ्रष्ट होते हैं वे धर्म नहीं जानते मनुमहाराज ने कहा है कि जिसके कर्म अच्छे नहीं होते उसकी निंदा होती है वही सदा दुखी रहता है नाना प्रकार के रोग उसका पीछा नहीं छोड़ते और उसकी आयु क्षीण हो जाती और भी कहा हैः—

वेदास्त्यागाश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसि च ।
न विप्रदुष्टभावस्य सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित् ॥

जिसका मन विषय भोग में लगा हुआ है उसको दान, यज्ञ, नियम तप किसी का फल नहीं मिलता । मुख्य कथन यह है कि बिना शुद्ध आचरण के कुछ लाभ नहीं इसी लिये य० अ० ९ मंत्र २ में आज्ञा दी है कि गायत्री का जप करते हुये उसके ही अनुकूल आचरण सुधारते हुये उपासना करने से लाभ होता है, अन्यथा नहीं । इसलिये वेद के पढ़ने, उपकार और पंचयज्ञों के करने में सदा तत्पर रहना चाहिये जैसा मनुजी ने लिखा है ।

वेदोपकरणे चैव स्वाध्याये चैव नैत्यके
नानरोधोऽस्त्यनध्यायो होममन्त्रेषु चैव हि ।

परन्तु आज कल के पण्डित सूतक पातक के ढकोसलों की टट्टी की

आड़ में नित्य कर्म करने में पाप बतलाते हैं, यह अत्यन्त अज्ञानता की बात है क्योंकि श्वास प्रश्वास प्रति दिन चलते रहते हैं खाना पीना प्रतिदिन होता है, फिर क्या कारण है अच्छे कर्म सूतक पातक के मिथ्या प्रपंचों के कारण छोड़ दिये जायें ! देखिये अत्रिस्मृति श्लोक १०० जहां सूतक का वर्णन है वहां लिखा है कि वेद और स्मृतियों में कहे हुये नित्यकर्म (संध्या आदि) नैमित्तिक कर्म, काम्य यज्ञादि जो स्वर्ग के साधन (ज्ञानादि) है उन्हें सदा करता रहे—

तस्मात्कर्म सदा कुर्यात् श्रुतिस्मृत्युदितं च यत्
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं यच्च स्वर्गस्य साधनम् ॥

देखो झूठ बोलने से सदा पाप होता है, उसी प्रकार सत्य बोलने से पुण्य होता है तो फिर भला क्या अच्छे कर्म करने से किसी समय पाप हो सकता है ? कदापि नहीं । दक्षस्मृति अ० ५ श्लोक ८ में लिखा है कि स्नान, आचमन, जप, दान और होम बिना किये जो भोजन करते हैं उन सब को जीवन पर्यन्त अशौच रहता है । जैसाकि—

स्नात्वाऽचम्य जपित्वा न हुत्वा दत्त्वा च भुञ्जतः ।
एवं विप्रस्य सर्वस्य यावज्जीवं हि सूतकम् ॥

तो फिर भला क्या अच्छे कर्म करने से किसी समय पाप हो सकता है ? कदापि नहीं ।

❀ कहानी ❀

एक योग्य पुरुष बहुत दिनों से बीमार थे, जिसके कारण उनसे चलना फिरना न होता था, रात दिन चारपाई पर पड़े रहते थे परन्तु स्थिर स्वभाव और समय के पाबन्द थे । प्रति दिन प्रातःकाल और सायंकाल चारपाई ही पर पड़े पड़े ईश्वर का ध्यान किया करते थे, एक दिन प्रातःकाल एक तरुण मित्र उनसे मिलने को गये तो देखा कि आप भजन में मग्न हो रहे हैं इस लिये चुप चाप बैठ गये । जब वह सज्जन पुरुष निश्चिन्त हुये तब उस मित्र ने उन से कहा कि अजी साहिब ! चारपाई पर पड़े २ अशुद्ध दशा में भजन करना योग्य नहीं, ऐसे भजन से न करना भला है । तब सज्जन ने पूछा कि हे मित्र ! किस दशा में ईश्वर को भूलना चाहिये ? तो उसने उत्तर दिया कि जब ऐसी दशा हो जैसी आप की । इस बात के के सुनते ही सज्जन पुरुष की आंखों से आंसू निकल

पड़े और चिल्ला उठे कि यदि इस अशुद्ध दशा में ईश्वर मुझे भूल जाता तो मेरी क्या दशा होती ?

फिर पण्डित जी तुम किस प्रमाण से कहते हो कि आज हम सूतक पातक के कारण भजन नहीं कर सकते। जब ईश्वर सब दशा में तुम्हारी सुध लेता है तो तुम्हें कब योग्य है कि उसके धन्यवाद करने से बन्द रहो, इसके उपरांत शरीर भी अनित्य पदार्थ है, इसीलिये धर्म करने में कभी किसी दशा में न रुकना चाहिये। क्या ऐसी दशा में परमेश्वर की प्रजा नहीं रहती जो उसकी आज्ञा को उन दिनों नहीं मानती ? क्या पवन पानी को ग्रहण नहीं करता ? क्या अन्न का भोग नहीं लगाते ? फिर बड़े शोक की बात है कि शरीर का नित्यकर्म किसी दशा में बन्द न हो और आत्मिक पञ्चयज्ञ बन्द कर दिये जावें ? यह अज्ञान नहीं है तो क्या है ? इस लिए किसी दशा में शुभकर्मों को न त्यागना चाहिए। ऐसा ही यजुर्वेद अ० ४० मंत्र २ में लिखा है कि संसार में कर्मों को करता हुआ सौ वर्ष पर्यन्त अर्थात् जब तक जीवन हो तब तक कर्म करता हुआ जीने की इच्छा करे। क्योंकि सांसारिक फल भोग की इच्छा से पृथक् होकर काम करते हुए मनुष्य में वैदिक कर्म नहीं लिप्त होते जैसा कि--

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः।
एवंत्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरः॥

नित्य और नैमित्तिक कर्मों को जो लोग त्याग कर, नगर को छोड़ जंगल चले जाते हैं वा नगर में रहते और कहते हैं कि हम निष्काम हो गए अर्थात् काम के बन्धन से छूट गये, उनको यह स्मरण रखना चाहिए कि जब तक स्थूल शरीर विद्यमान् है तब तक कर्मों से छुटकारा नहीं हो सकता।

ब्राह्मण ग्रन्थों और उपनिषदों में स्पष्ट लिखा है और मनुजी महराज भी यही कहते हैं, गीता में भी इसकी साक्षी मिलती है, फिर भला कर्मों से कैसे कोई पृथक् हो सकता है ? जो मनुष्य ऐसा कहते हैं वह पुरुषार्थी नहीं, आलसी हैं और ईश्वरीय नियमों से या तो वह बिल्कुल अनजान हैं या अपने घमण्ड के कारण उस सच्चे नियम अर्थात् गायत्री मंत्र पर दृष्टि नहीं डालते, वह यह है--

ओं भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि धियो योनः प्रचोदयात्॥

अर्थ-(ओम् भूर्भुवः स्वः) जो अकार उकार और मकार के योग से (ओम्) यह अक्षर सिद्ध है सो यह परमेश्वर के सब नामों से उत्तम नाम

है जिसमें सब नामों के अर्थ आ जाते हैं जैसा पिता पुत्र का प्रेम सम्बन्ध है वैसा ही ओंकार के साथ परमात्मा का है, इससे सब नामों का बोध होता है जैसे अकार से 'विराट्' जो विविधि जगत् का प्रकाश करने वाला है 'अग्नि' जो ज्ञान स्वरूप और सर्वज्ञ प्राप्त हो रही है। 'विश्व' जिस में सब जगत् प्रवेश कर रहा है, जो सर्वज्ञ प्रविष्ट है इत्यादि नामार्थ आकार से जानना। हिरण्यगर्भः, जिसके गर्भ में प्रकाश करने वाले सूर्यादि लोक हैं और जो सूर्यादि लोकों के प्रकाश करने वाले हैं इससे ईश्वर को हिरण्यगर्भ कहते हैं। ज्योति के अर्थ हिरण्य, अमृत और कीर्ति है। वायु जो अनन्त बलवाला और सब जगत् का धारण करने वाला है। 'तैजस' जो प्रकाश स्वरूप और सब जगत्का प्रकाशक है इत्यादि अर्थ उकार से जानना चाहिए।

'ईश्वर' जो सब जगत् का उत्पादक सर्वशक्तिमान् स्वामी और न्यायकारी है। आदित्य, जो नाश रहित है। 'प्राज्ञः' जो ज्ञानस्वरूप और सर्वज्ञ है इत्यादि अर्थ मकार से समझ लेना चाहिए।

यह संक्षेप से ओंकार का अर्थ किया। अब महाव्याहृतियों का अर्थ लिखते हैं-(भूरिति प्राणः) जो सब जगत् के जीवन का हेतु और प्राण से भी प्रिय है इस से परमेश्वर का नाम 'भूः' है। (भुवरित्यपानः) जो मुक्ति की इच्छा करने वालों और अपने सेवक धर्मात्माओं को सब दुखों से अलग करके सर्वदा सुख में रहता है इसलिए परमेश्वर का नाम 'भुवः' है। (स्वरिति व्यानः) जो सब जगत् में व्यापक होके सब को नियम में रखता है और सबको ठहरने का स्थान तथा सुखस्वरूप है इससे परमेश्वर का नाम स्वः है। यह व्याहृतियों का संक्षेप से अर्थ लिखा गया।

अब गायत्री मंत्र का अर्थ लिखते हैं (सवितुः) जो सब जगत् का उत्पन्न करनेहारा और ऐश्वर्य का देनेवाला। (देवस्य) जो सबके आत्माओं का प्रकाश करने वाला सब सुखों का दाता। (वरेण्यम्) जो अत्यन्त ग्रहण करने के योग्य है। (भर्गः) जो शुद्ध विज्ञान स्वरूप है, (तत्) उन को, (धीमहि) हम लोग सदा प्रेम भक्ति से निश्चय करके अपने आत्मा में धारण करें। किस प्रयोजन के लिये कि (यः) जो पूर्वोक्त सविता देव परमेश्वर है वह (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को (प्रचोदयात्) कृपा करके बुरे कर्मों से पृथक् करके सदा उत्तम कर्मों में प्रवृत्त करे।

इसलिये सब मनुष्यों को योग्य है सच्चित् आनन्द स्वरूप, नित्यज्ञानी नित्यमुक्त अजन्मा, निराकार सर्वशक्तिमान, न्यायकारी सर्व व्यापक, कृपालु,

संसार को धारण करने वाले परमेश्वर की यथा विधि सदा प्यारयुक्त उपासना करें, तो फिर किसी प्रकार के पाप नहीं लगते अर्थात् ऐसे पुरुष किसी प्रकार के पाप कर्म का मन से भी विचार नहीं करते।

❀ वेदपाठ अर्थात् स्वाध्याय ❀

प्यारे सुजनों! संध्या करने के पश्चात् प्रति दिन वेद पाठ करने की आज्ञा है, देखो व्यासस्मृति अ० ३ श्लोक ९, १०, । दक्षस्मृति अ० २ श्लोक २० । विष्णुस्मृति अ० २ श्लोक ३३ और मनु जी महाराज आज्ञा देते हैं कि जिस कार्य के करने से वेद पाठ करने में विघ्न हो और धन भी मिलता हो तो भी उस वेद पाठ को न छोड़े क्योंकि वेद के पढ़ने से सब कार्य सिद्ध होते हैं अथर्वेद में कहा है कि वेद के अभ्यास और प्रकाश से कामनायें पूर्ण होती हैं।

और अ० ४ श्लोक १९ में भी वेद पढ़ने की आज्ञा है श्रीकृष्ण महाराज ने गीता में कहा है कि स्वाध्याय से ज्ञान की वृद्धि होती है। याज्ञवल्क्यस्मृति में लिखा है कि जो द्विज प्रतिदिन वेद पढ़ता है वह बड़े फल को पाता है। संवर्तस्मृति के ९ श्लोक में कहा है कि गायत्री के जप के पीछे वेद पढ़ने का आरम्भ करे। लिंग पुराण पूर्वार्द्ध अध्याय २९ में लिखा है कि पितर, ब्रह्म, विष्णु, शिव सब ब्रह्मयज्ञ से प्रसन्न होते हैं। प्यारे पाठकगण! इसी प्रकार बहुधा आज्ञायें पाई जाती हैं कि संध्या करने के पीछे वेद पाठ करना अभीष्ट है। यथार्थ में इसमें अनेक लाभ हैं प्रथम तो वेद उपस्थित रहते थे। द्वितीय कोई धोखा नहीं दे सकता। तृतीय वेदानुकूल कर्म होते थे किसी प्रकार की भूल नहीं होती थी। चौथे संतानों के लिये दृष्टान्त हो जाता था पांचवें वेदपाठ से उनके पठन पाठन की प्रथा प्रचलित रहती थी कि जिसके कारण देश में आनंद ही आनन्द दृष्टि आता था। अब वह प्रथा उठ गई अर्थात् गायत्री मन्त्र के स्थान पर अनेक मन्त्र हो गये गायत्री भी एक नहीं वरन् २४ हो गई जिनको आपके अवलोकनार्थ हम यहां लिखते हैं—

१ गणेश गायत्री—ओं तत्पुरुषाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि तन्नो गणेशः प्रचोदयात् । २ परमहंस—ओं सोऽहं हंसाय विद्महे परम हंसाय धीमहि सोऽहं तन्नो हंसः प्रचोदयात् । ३ विष्णु—ओं नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात् । ४ शिव—ओं तत्पुरुषाय

विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नोरुद्राय प्रचोदयात् । ५ नरसिंह-ओं वज्रकाय विद्महे दिवाकराय धीमहि तन्नो नरसिंहः प्रचोदयात् । ६ सूर्य—ओं भास्कराय विद्महे दिवाकराय धीमहि सूर्यः प्रचोदयात् । ७ अग्नि-ओं वैश्वानराय विद्महे कपिलाय धीमहि तन्नो अग्नि प्रचोदयात् । ८ ब्रह्म-ओंभुः ओं भुवः ओं महः ओं जनः तपः ओं सत्यम् ओं तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि धियो योनः प्रचोदयात् ओं आपोज्योतिरसोमृति ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोंततः सूर्यश्चमेति ब्रह्मा ऋषिर्गायत्री छंदः सूर्योदेवता,अयायुपस्पर्शने विनयोगः । ९ दुर्गा ओं कात्याय विद्महे कात्यांकुमारी धीमहि तन्नो दुर्गा प्रचोदयात् । १० बलभद्र ओं तांव पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो परामुख प्रचोदयात् ।११गरुड़ ओं तत्पुरुषाय विद्महे महास्वधाय धीमहि तन्नो गरुड़ः प्रचोदयात् । १२ दत्तात्रयी—ओं दत्तात्रयाय विद्महे दिगम्बराय धीमहि तन्नो दत्तः प्रचोदयात् । १३ ब्रह्मा-ओं चतुर्मुखाय विद्महे कमण्डलाय धराय धीमहि प्रचोदयात् । १४ सरस्वती-ओं सरस्वत्याय विद्महे शशुनराय धीमहिः तन्नो देवी प्रचोदयात् । १५ क्षत्रिय-ओं तत्पुरुषाय विद्महे भूतयात्रे धीमहि तन्नो क्षत्री प्रचोदयात् । १६ वैश्य-ओं तत्पुरुषाय विद्महेत्रयो देवाय धीमहि तन्नो वैश्य प्रचोदयात् १७ शूद्र गा०-ओं तत्पुरुषाय विद्महे महासेनाय धीमहि तन्नो शूद्राः प्रचोदयात् । १८ भाट गा०-ओं चन्द्रेश्वराय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो चन्द्रः प्रचोदयात् । १९ पशुगा०-ओं पशुपतायै विद्महे महादेवाय धीमहितन्नो पशु प्रचोदयात् । २० निरञ्जन गा०-ओं सूर्यात सोमायनिरंजन निराभापयते प्रचोदयात् २१-वनस्पति गा०-ओं स्थावराय विद्महे महा वनस्पतये तन्नो वृक्षप्रचोदयात् २२-साम गा०-ओं सोमाय विद्महे, निरञ्जनाय धीमहि तन्नो मे प्रचोदयात् । २३-जल गा०—ओं जलेश्वराय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नोजलप्रचोदयात् । २४- पृथ्वी गा०-ओं वसुंधराय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो भूमि प्रचोदयात्।

मान्यवरो ! जिस प्रकार एक गायत्री के स्थान पर चौबीस गायत्री हो गईं वैसे ही वेद पाठ के स्थान पर सूर्य महात्म, गंगालहरी, हनुमानचालीसा विष्णुसहस्रनाम, गोपाल सहस्रनाम, पञ्चरत्न इत्यादि पुस्तकों का पाठ होने लगा, इसलिये आप मिथ्या प्रपंचों को छोड़ वेदानुकूल गायत्री मंत्र से दोनों समय शुद्ध आचरण करते हुये वेदादि सत्य शास्त्रों के पाठ का नियम प्रति दिन कीजिये तब ही हमारा और आप का कल्याण होगा ।



प्रकट हो कि वेदादि सत्य शास्त्रों में दोनों काल हवन करने की आज्ञा

है इसी को देव यज्ञ कहते हैं देखिये य० अ० मंत्र १२ में कहा है कि जो मनुष्य अग्निहोत्र से जलादि पदार्थों को शुद्ध सेवन करते हैं उनके लिए सुख रूप अमृत की वर्षा निरन्तर होती है। जैसा कि:—

शन्नो देवी रभिष्टये आपोभवन्तुपीतये। शंयोरभिस्रवन्तुनः॥

और य० अ० १८ मंत्र ४२ में लिखा है कि जो मनुष्य अग्निहोत्र आदि यज्ञों को प्रतिदिन करते हैं वे समस्त संसार के सुखों को बढ़ाते अर्थात् आप सुखी होकर औरों को भी सुख देते हैं जैसाः—

भुज्यः सुपर्णोयज्ञो गन्धर्वस्तस्य दक्षिणा अप्सरसस्तावा नाम।
स न इदं ब्रह्मक्षत्रं पातु तस्मै स्वाहाः वाट्ताभ्यः स्वाहाः।

और भी कहा है।

सायं सायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातः प्रातः सौमनस्य।
धाता वसोर्वसोर्वसुदान एधिवयं स्वेन्धानास्तन्वं पुषेम।

यह हमारा गृहपति अर्थात् घर और आत्मा का रक्षक यज्ञ प्रति दिन सायंकाल और प्रातःकाल अच्छे प्रकार से किया जावे। यह यज्ञ जिसप्रकार आरोग्यता आनन्द को देने वाला है उसी प्रकार उत्तम से उत्तम वस्तुओं और धन का देने तथा बढ़ाने वाला प्रसिद्ध है इस लिये ईश्वर आज्ञा करते ह कि हे मनुष्यो! इस यज्ञको करते हुए अपने शरीर और आत्मा को पुष्ट करो ऐसा ही चारों वेद में कहा है।

इसी के अनुसार छांदोग्य उपनिषद में लिखते हैं, (त्रयोधर्मस्कन्धाः यज्ञाध्ययन दानादि इति प्रथमस्तेय) इत्यादि। धर्म के उत्तम अंग तीन हैं: यज्ञ अध्ययन और दान, इन सब में भी सबसे पूर्व यज्ञ आवश्यकीय बतलाया गया है। और सम्वर्तस्मृति अ० १ श्लोक ८ में लिखा है 'अग्निकार्यंश्चकुर्वीत' और व्यासस्मृति अ० १ में आज्ञा है 'मन्त्रहुतिक्रिया' कात्यायन स्मृति खंड ३१७ में भी, दोनोंसमय अग्निहोत्र की आज्ञा है। दक्षस्मृति अ० २ श्लोक २३, ३८ में भी यही उपदेश है 'सन्ध्या कर्मावसाने तु स्वयं होमो विधीयते, विष्णु स्मृति अ० २ श्लोक ३३, ३७ हारीतस्मृति अ० १ श्लोक २८ 'कृतहोमस्तु भुंजीत सायं प्रातरुदीरवी' और अ० ४ श्लोक २० शंखस्मृति अध्याय श्लोक १९ 'सायंप्रातस्च जुहुयादग्निहोत्रं यथा विधि।' याज्ञवल्क्य स्मृति अ० २ श्लोक २९ अग्निकार्यं ततः कुर्यात्। गीता अ० ३ श्लोक १४ में उपदेश है कि सकल प्राणियों का जीवन अन्न से होता है और अन्न वर्षा से होता है और वर्षा यज्ञ से होती है, यथा—

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्न संभवः ।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्म समुद्भवः ॥

और ऐसाही विष्णु पुराण अ० १ मं० ६ श्लोक ८ में लिखा है ।

पद्मपुराण अ० ३ में कहा है कि यज्ञ करने से देवता प्रसन्न हो कर जल बरसाते हैं जिससे मनुष्य की उन्नति होती है इस कारण यज्ञ ही सब धर्मों की जड़ है और कल्याण का हेतु है । ऐसा ही विष्णु पुराण अं० १ अ० ६ में लिखा है ।

नरसिंह पुराण अ० ५८ से स्पष्ट प्रकट होता है कि संध्या करने के पश्चात् अग्निहोत्र करे । अ० १३ में लिखा है कि जब राजा वेन ने यज्ञादि कर्मों को बंद कर दिया तब ऋषिजनों ने उस से जाकर कहा, कि हेराजन् ! यज्ञादिकर्म करनेकी आज्ञादीजिये जिससे धर्मका नाश न हो यह सब संसार यज्ञ करने से ही चला जाता है और धर्म के क्षीण होने से जगत् भी क्षीण हो जाता है । देवी भागवत स्कंध ३ अ० ६ श्लोक ४२ में लिखा है कि जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य यज्ञों को करते हैं उन को सुख प्राप्त होते हैं ।

ब्राह्मणः क्षत्रिया वैश्य नाना यज्ञैः सदक्षिणः ।
यजिष्यन्ति विधानेन सर्वाग्धः सुसमाहिताः ॥

पद्म पुराण तृतीय खण्ड अध्याय १६ में ब्रह्मा ने नारद जी से कहा है कि जो मनुष्य ब्राह्मणों की पूजा कर विप्रों से श्रद्धा पूर्वक यज्ञादि कर्म करते हैं उन की आयु, यश, विद्या और धन की वृद्धि होती है पद्म पुराण द्वितीय भूमिखण्ड अ० ५१ में गोमिल ने कहा है कि जो ब्राह्मण अग्निहोत्र का कभी त्याग नहीं करता वह ब्रह्मलोक को जाता है—

चाणक्यनीति में लिखा है "अग्निहोत्र फलो वेद" अर्थात् पढ़ने का फल उसी समय होता है जब मनुष्य अग्निहोत्र करता है । इसी प्रकार विदुरनीति में आज्ञा है और ऐसा ही नारद जी ने युधिष्ठिर से कहा है । शान्तिपर्व में नकुल महाराज का वचन है कि यज्ञ करने से ज्ञान की वृद्धि होती है । देवीस्थानी महर्षि का वचन है कि यज्ञ करने से मनुष्य की सम्पूर्ण कामनायें सिद्धि होती हैं यम ने गौतम से कहा है कि अश्वमेध यज्ञ करने से उत्तम लोक मिलता है । राजा जयति का वचन है कि यज्ञ करने सेदीर्घायु होती है । विदुर महाराज कहते हैं कि यज्ञ करना धर्म का एक लक्षण है भीष्म जी कहते हैं कि अग्निहोत्र करने से स्वर्ग मिलता है । इसी पर्व के अ० ९६ से प्रकट है कि श्रीकृष्ण महाराजा प्रतिदिन हवन किया करते थे और ऐसा ही

श्रीमद्भागवत स्कंध १ उत्तरार्द्ध अ० १ श्लोक २४, २५ में लिखा है अयोध्याकाण्ड सर्ग ३२ श्लोक २ से प्रकट होता है कि लक्ष्मण महाराज अपने गुरुपुत्र के यहां गये थे तो उस समय वह वहां अग्निहोत्र करने के लिये अग्नि स्थापन कर रहे थे। सर्ग ९९ से स्पष्टरूप से विदित होरहा है कि जब भरत जी रामचन्द्र जी से मिलने चित्रकूट पर गये तो वहां रामचन्द्र अग्निहोत्र कर चुकेथे। सर्ग १० श्लोक २ से प्रकट है कि जब भरतजी रामचन्द्र जी से मिले तो श्रीरामजी ने पूंछा कि तुमने अग्निहोत्रादि कर्मों को विधि से जानने वाले मतिमान सरल स्वभाव पुरोहित को नियत किया है। सर्ग १२५ भरत आदि प्रातःअग्नि होत्र जपादि कर श्रीराम के पास गये थे।

लङ्काकांड सर्ग ३५ में माल्यवान ने रावण से कहा कि श्रीरामजी विधि पूर्वक नित्य अग्नि में आहुति देते हैं।

अयोध्याकांड सर्ग २० श्लोक १५ वा १६ से विदित है कि जबराम-चंद्रजी महाराज वन जाने के लिये उद्यत हुये और जिस समय माता कौशिल्या से आज्ञा लेने गये थे, उस समय मांताजी रेशमी वस्त्र धारण किये परमानन्द के साथ नित्यव्रत में लगी हुई मंत्र पढ़कर अग्नि में आहुति दे रही थीं,

> क्षौमवसनाहृष्टा नित्यं व्रतपरायणा।
> अग्निं जुहोतिस्मतदा मन्त्र वत्कृतमंगला॥ १६॥
> प्रविश्यतु तदारामो मातु रन्तः पुरंशुभम्।
> ददर्श मातरं तत्रहा यजन्तो हुताशनम्॥ १७॥

सर्ग ५८ से प्रकट है कि श्री रामचंद्र जी महाराज ने सुमन्त मन्त्री के द्वारा माता कौशिल्या जी से कहला भेजा था, जिस प्रकार तुम सदा नित्य धर्म में लगी रहती थीं उसी भांति अब अग्निहोत्रादि करती रहना।

उत्तरकांड सर्ग २४ से विदित होता है कि सीता जी प्रातःकाल से मध्यान्हसमय तक देव कार्य करती थीं।

पद्मपुराण तृतीयसर्गखंड अध्याय २४ श्लोक १२ से प्रत्यक्ष प्रकट होता है कि अहिल्या अपने पति के बाहर जाने पर अग्निहोत्रादि सर्व क्रियाएं अपने आप करती थीं। पुराणों के पाठ करने से प्रकट होता है कि जब पुराणों की कथा को सुने तो प्रथम यज्ञ करावे और जब समाप्त हो तो यज्ञकरे। पद्मपुराण षष्ठउत्तर खंड अ० २२ में लिखा है कि जो नित्य हवन करता है वही वैष्णव है वामन पुराण अ० ११ में लिखा है, यज्ञ करना धर्म है।

इसके उपरांत गंगा के तट पर दक्ष प्रजापति ने, पुष्कर में ब्रह्मा ने, यमुना के तट पर इंद्र ने विस्तृत यज्ञ किया था जिस में ब्रह्मा, शिव, विष्णु के अतिरिक्त अन्य देवता भी पधारे थे। स्वयंभुव मनु ने पूर्व समय में मन्दर पर्वत पर यज्ञ किया था, राजा दशरथ ने पुत्रेष्टी और अश्वमेध यज्ञ किये थे और इनके राज्य में प्रति दिन हवन करने वाली प्रजा थी। राजा अम्बरीष और श्री रामचन्द्र जी ने अश्वमेध और राजा युधिष्ठिर ने राजसूय, और पञ्चाल देश के राजा ने पुत्र के निमित्त यज्ञ किया कि जिससे धृष्टद्युम्न पुत्र और द्रौपदी सी सुकन्या उत्पन्न हुई थी। राजा बलि ने सिद्धाश्रम पर और राजा जनक ने मिथला देश में बड़ा भारी यज्ञ किया था। श्री रामचन्द्र को विश्वामित्र महाराज यज्ञ की रक्षा के निमत्त लेगये थे और उन्होंने रावण को मार अयोध्या में राजसूय यज्ञ किया था। शिवपुराण ज्ञान खंड अ० ७ श्लोक २ में लिखा है जब शिव और दक्ष का विरोध होगया था तबदक्ष ने देवताओं के समीप जाकर यज्ञ किया था। नरसिंह पुराण अ० १७ में लिखा है कि कुरुक्षेत्र में परशुराम जी ने यज्ञ किया था।

इसके उपरांत प्राकृतिक नियमों के देखनेसे ज्ञात होता है कि वायु शुद्धि के दो ही मुख्य उपाय हैं आंधियों का चलना, द्वितीय वायु में सुगन्धित पदार्थों का मिलना। आंधी आने का मूल कारण अग्नि है, सूर्य की गर्मी का हवा पर बहुत असर होता है इससे आंधी चलती है अर्थात् सूर्य की उष्ण किरणें वायु के परमाणुओं को स्थूल से सूक्ष्म कर देती हैं जिससे एक स्थान की हवा हलकी होकर दूसरे स्थान में जाती है और उसके स्थान पर दूसरी हवा आती है इस परस्पर की टक्कर से हवा बहने लगती है। अग्नि का यह स्वाभाविक गुण है कि जिसपर बल करती है उसके परमाणुओं को छिन्नभिन्न कर देती है इसके प्रभाव से हवा का परिचालन हो अधिक टक्कर से आंधियां आती हैं कि जिनसे बहुत दिनों का बसा हुआ दुर्गंधित वायु प्रचण्ड वेग के कारण सब बाहर निकल जाता तथा स्वच्छ वायु आजाता है इसके उपरांत वृक्षोंसे भी सदा सुगंधित वायु जिसको प्राणप्रद वायु कहते हैं निकला करता है मानों परमेश्वर जगत् रक्षक स्वंय वायु की शुद्धि के लिये सूर्य को अग्नि और वृक्षों के साकल्य द्वारा हवन कर जीवों को उपदेश करता है कि तुम लोग भी इसी भांति करो, बस इस शिक्षा और लाभदायक कार्य के अर्थ सुगंधित रोग नाशक पुष्टि कारक पदार्थ जलाये जाते हैं।

क्योंकि वायु की दुर्गंध दूर करने से आरोग्यता मिलती है। यह तो

सब मनुष्य जानते हैं कि पवन पानी के बिगड़ने से रोगों की बहुधा उत्पत्ति होती है और उसी के अधिक बिगड़ने से विशूचिका आदि बड़े २ रोगों की उत्पत्ति हो जाती है जिससे सहस्त्रों जीवों की हानियां हो जाती हैं। डाक्टर बर्मन ने कपूर अर्क को बनाकर हजारों हैज़ा के रोगियों को अच्छा किया है, लाखों शीशियां उनकी प्रति वर्ष बिकती हैं वही कपूर हवन में पड़ता है इसी भांति और पदार्थों के गुणों को जानो जो हवन में पड़ते हैं यदि उन पदार्थों के अलग २ गुणों की व्याख्या की जाय तो एक पुस्तक बन जायगी, इस लिए प्रत्येक के गुण नहीं लिखे अग्नि में जो वस्तु पड़ती है उसके परिमाण भिन्न २ होकर वायु मण्डल में मिल जाते हैं क्योंकि प्राकृतिक नियम है कि हलकी वस्तु ऊपर को जाती है और भारी नीचे को आती है, जैसे तेल पानी से हलका होने के कारण ऊपर रहता है और घी आंच पर रख कर देखिए कि पिघल कर पतला हो जाता है और भाप उठने लगती है, थोड़ी देर पीछे देखिये तो कुछ नहीं रहता। क्या वह नष्ट हो गया नहीं, वह सूक्ष्म होकर हवा में मिल गया। इसी लिये प्रत्येक प्राणी को हवन करना अभीष्ट है।

❀ पितृयज्ञ ❀

चारों वेद पुकार पुकार कहरहे हैं कि माता पिता की सेवा करना परम धर्म है वयोवृद्धि विद्यावृद्धि पितरों का भली भांति सत्कार करे उन से शारीरिक आत्मिक और सामाजिक उन्नति की शिक्षा लेवे उनकी सेवा और पुरुषार्थ से अपने जीवन को निर्विघ्न बनावे देखो अथर्व वेद श्लोक २२ में लिखा कि उत्पत्ति के समय जो क्लेश माता पिता सहते हैं उस से मनुष्य सौ वर्ष में भी उऋण नहीं हो सकता। परन्तु माता इन सबसे बड़ी है जैसा कि।

यमाता पितरौ क्लेशं सहेते सम्भवे नृणाम्।
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि॥

हारीतस्मृति अ० ३ श्लोक ११ में भी यही उपदेश है कि इन तीनों की सेवा करने से सब देवता प्रसन्न होते हैं। शंखस्मृति अध्याय २ श्लोक ४ में लिखा है कि माता पिता और गुरु की सदा पूजा करे, जो इन तीनों का आदर सत्कार नहीं करता उसकी सब क्रिया निष्फल है जैसाकिः—

माता पिता गुरुश्चैव पूजनीयस्सदा नृणाम्।
क्रियास्तस्याऽफला सर्वा यस्यैतेऽनादृतास्त्रयः॥

वनपर्व अ० २१४ में धर्म व्याध ने एक उत्तम ब्राह्मणको उपदेश किया है कि मैं माता, पिता को परम देवता समझता हूं। और इन्द्र के समान मैं इनका सन्मान करता हूं गृहस्थ का परम धर्म यही है कि इनकी सेवा टहल करता रहे यही शान्तिपर्व अ० ११९ में गौतमऋषि ने यम से और अ० २१ में इन्द्र से प्रह्लाद से, कुन्ती ने कर्ण से और श्रीरामचन्द्र से कौशिल्या ने कहा है कि माता पिता की आज्ञा मानना पुत्रका धर्म है श्री कृष्ण महाराज ने श्रीमद्भागवत स्कन्ध ११ अ० ४५ में कहा है कि माता पिता धर्म अर्थ काम मोक्ष देने वाले शरीर को उत्पन्न करते हैं इसलिये सौ वर्ष तक सेवा करने पर भी उद्धार नहीं हो सकता जो पुत्रसमर्थ होने पर शरीर अथवा धन से माता पिता की सेवा नहीं करते उनको परलोक में यम दूत उनका ही मांस काट २ उसी को भोजन कराते हैं।

प्रियवरो ! इस पितृयज्ञ के दो भेद हैं एक श्राद्ध दूसरा तर्पण। श्राद्ध अर्थात् श्रत् नाम सत्य का है 'श्रत्सत्यं दधाति या क्रिया श्रद्धा श्रद्धया यत् क्रियते तच्छ्राद्धम्' जिस क्रिया से सत्य का ग्रहण किया जाय उसको श्रद्धा और जो श्रद्धा से किया जाय उसका नाम श्राद्ध है। और 'तृप्यन्ति तर्पयन्ति येन पितृन् तत्तर्पणम्' जिस कर्म से तृप्त अर्थात् विद्यमान माता पितादि पितर तृप्त हों उसको तर्पण कहते हैं। सच तो यह है। कि बालक और बालिकायें अपने माता पिता की सेवा और आज्ञा पालन कर पितृऋण से उद्धार पाते हैं। उनको सब प्रकार के आनन्द और सुख मिलते हैं अन्यथा प्रतिदिन क्लेशों ही में फंसे रहते हैं। हे प्यारे बालकों ! माता पिता कैसे ही क्यों न हों परंतु उनकी, सेवा टहल यथा योग्य करना तुम्हारा परम धर्म है। क्योंकि तुम्हारे माता पिता ही ने तुमको सर्व गुणालंकृत किया है उन्हों ने तुम्हारे अर्थ अपना तन मन धन लगा कर तुमको इस पद पर पहुँचाया है। फिर तुम उनको विद्या आदि गुणहीन होने से तुच्छ दृष्टि से देखते हो। धिक्कार तुम्हारे विद्या और गुणों पर ! क्योंकि यदि वह अपना आत्मवत् तुमको न जानते और न मानते तो तुम आज क्या इस पद पर होते ? नहीं, सच पूछो तो यह सब उन्हीं का प्रभाव है। इस लिये तुम उनकी सेवा टहल सदा नम्रता पूर्वक करते रहो और धर्म सम्बन्धी आज्ञाओं को मानो। देखो प्राचीन समय में श्रीरामचन्द्रजी महाराजने अपनी सौतेली माता की आज्ञा मान धन सम्पत्ति राज्य त्याग कर १४ वर्ष जङ्गल में व्यतीत किये, जहां उनको नाना भांति के क्लेश और दुःख उठाने पड़े परन्तु

अपनी माता की आज्ञा को यथार्थ पालन किया। सचमुच वीरता, भाग्यशीलता के यही लक्षण हैं जिनके करता श्रीमन् का नाम जगत् में सदा ही बना रहेगा। परन्तु वर्त्तमान समय को देखिये कि जहां पुत्र को होश आया और बाहर भीतर आने जाने लगे और प्राण प्यारी के दर्शन हुए फिर तो हरदम तिउरी चढ़ी हुई, बात सीधी करना कठिन होगया। माता पिता प्रेम के करण अपने प्राण तक न्योछावर किए हुए फूले नहीं समाते, परन्तु उनको बात करना बुरा जान पड़ता है। प्रथम तो मुखारविंद से बात करते ही नहीं यदि कुछ कहा भी तो उस समय इस प्रकार से वर्तालाप करते हैं मानों किसी सेवक को शिक्षा कर रहे हों। धन्य आपकी विद्या और बुद्धि को! क्या आपको वह समय स्मरण नहीं रहा जब माता अपने ही दूध से तुम्हारे प्राणों की रक्षा करती थी प्रत्येक समय छाती से लगाए रहती थी सोने उठने बैठने खाने पीने का समय सदा स्मरण कर तुम्हारा पालन करती थी। हाय शोक कि उसी माता की बात तक नहीं सुहाती! धिक्कार है।

जब माता पिता की यह कुदशा है फिर गुरु और पाठकके ऊपर कृपा दृष्टि का क्या कहना। आप तो सदा प्राणप्यारी के साथ वा किसी और मित्र के सङ्ग प्रतिदिन हलुआ पूरी उड़ाते, पान चबाते, स्वच्छ वस्त्र पहनते उत्तम पलंग पर शयन करते, गर्मियों में खस की टट्टियां लगाते, नौकर चाकार सेवकाई में उपस्थित रहते परन्तु माता पिता दो दानों को तरसते हैं, कोई यह भी नहीं पूंछता कि तुम कौन हो! सचमुच उन्होंने ऐसा ही अपराध किया है। आप तो गर्मियों में ओले का शरबत पीते हैं। परन्तु माता पिता को शीरा तक नहीं मिलता। प्रतिदिन स्वच्छ वस्त्र धारण किये इतरफुलेल लगाये हुए अपने मित्रों के साथ बाजारों में फिरते हैं परन्तु माता पिता मैले कुचैले कपड़े पहिने लज्जा के कारण घर ही में छिपे बैठे रहते हैं और बाहर आने में लज्जित होते हैं कि कोई हमारी यह कुदशा देख हमारे पुत्रकी निंदा न करे! देखिये और विचारिये कि माता पिता इस दशा में भी प्रेम के वशीभूत हो पुत्र की निन्दा करना भला नहीं समझते, चाहे आप मर तक जायें। धन्य है २! सारांश यह है कि वर्त्तमान समय में मिथ्या कार्यों में हजारों फूंक देते हैं, परन्तु माता पिता को फूटी कौड़ी देना मानों हलाहल पीना है। परमेश्वर जगत् का कर्त्ता हमारे प्यारों को सुबुद्धि दें और इस पाप से बचावे।

मेरे प्यारे ! इस कथन से आपको अत्यन्त क्लेश हुआ होगा और मेरे लिये भी मनमें कटु वचन उच्चारण करते होंगे, परन्तु यदि ध्यान लगा कर विचार करोगे तो मैं आपको सच्चा हितैषी जान पडूंगा क्योंकि मित्र वही है जो अपने मित्र के अवगुणों को जान कर उनका यथार्थ प्रकाश कर शुभ गुणों के धारण करने के अर्थ प्रयत्न करे और वैरी वह है जो उनके अवगुणों को प्रकाश न करे। इस लिये विचार पूर्वक माता पिता गुरु इत्यादि की तन मन धन से सेवा करो कि जिससे संसार में यश और सुख तथा परलोक में आनन्द प्राप्त हो नहीं तो इसी पाप में आपको नाना भांति के क्लेश उठाने पड़ेंगे, संसार में अपयश होगा, परलोक में भी घोर नरक के दर्शन करने पड़ेंगे।

इसके उपरान्त कनागतोंमें कैसा पानी देते हो और ब्राह्मणों को नाना भांति के भोजनों से परिपूर्ण कर देते हो अर्थात् उत्तम वस्तु हलुआ, पूरी, खस्ता कचौरी, दूधलपसी, मोहन भोग, लड्डू, पेड़े, भांति की २ तरकारियां, अचार मुरब्बा, सोंठ, पापर इत्यदि खिलाते हो और कहते जाते हो कि महाराज दो पूरी और खा लीजिये और दूध पी लीजिये तो अच्छा हो, अब आपसे मैं यह पूंछता हूँ कि क्या अपने विद्यमान माता पिता की भी इस प्रकार सेवा टहल की थी ? या मरने पर ही आपको प्रेम अधिक आ गया ? यदि आप उनके रहते इस भांति आदर सत्कार करते तो क्या भारत का गारत हो जाता।

इसके उपरांत वर्षी चौवर्षी इत्यादि में कैसे पदार्थ ब्राह्मणों को देते हो आगे चल कर गयाजीका सामान करते हो, सौ दोसौ रुपये वहां इस प्रयोजनके अर्थ देतेहो कि हमारे माता पिता इत्यादि वैकुण्ठ चले जावें और प्रेत योनि से छूट जावें। हाय ! कैसे शोक का स्थान है कि इन मिथ्या कार्यों के लिये तो आप तन मन धन सब अर्पण करदो परन्तु जीते माता पिता के नाम एक कौड़ी देना भी कठिन होजाता है जैसा किसी ने कहा है—

जियत न देहौं कौरा, मरे डुलेहौं चौरा।
जियत पिता से जंगी जंगा, मरे पिता पहुंचाऊ गंगा।
जियत पिताकी पूंछे न बात, मरे पिताको दाल और भात।

इस लिये जीते माता पिता आदि की यथावत् सेवा टहल करना योग्य हैं। देखो गीता के अनुसार जीव एक शरीर छोड़ कर दूसरा शरीर धरलेता

है, फिर भला तुम जो नाना लीला रच कर हजारों रुपयों पर भी पानी फेर देते हो, कहीं यह भी सुना है कि हमारे पिता जी अमुक स्थान पर बैठे हैं, आप तो कभी रुपये की रसीद भी नहीं चाहते, वैसे तो एक रुपये के लिये अच्छे प्रकार लिखा पढ़ी करा लेते हो परन्तु यहां टस्स से मस्स भी नहीं करते।

प्यारे भाइयो ! जीते माता पिता की सेवा टहल का ही नाम श्राद्ध और तर्पण है फिर भला ब्राह्मणों को भोजनादि का कराना और नाना भांति से द्रव्य भेंट करना आदि श्राद्ध कहां से जाना ? यदि ऐसा ही मान लिया जावे तो विचारिये कि जब वह विद्यमान थे उस समय वे रात दिनमें दो तीनबार भोजन करते और चार पांच दफे पानी भी पीते थे और जब मरने के पीछे उनको साल में एक बार भोजन करने और कनागतों में पंद्रह दिन पानी पीने की आवश्यकता होती है, साल भर तक बिना भोजनों और पानी के व्यतीत कर देते हैं, भूंख प्यास नहीं लग सकती, भला यह आपने कैसे ठीक जान लिया और एक दिन भोजन पर एक वर्ष भूंख न लगना कैसे माना ? इसके उपरांत जब आवागमन ठीक है तो फिर मरे हुओं का श्राद्ध और तर्पण कैसा ? वह तो दूसरी जगह तुरन्त ही चले जाते हैं, इसके अतिरिक्त पितृ के अर्थ संस्कृत में पालन करने वाले के हैं और आप पितृ से मरे हुए बाप दादे को समझते हैं।

देखिये पितृ शब्द निघण्टु ४ मंत्र १ में पिता पद आया है। पिता का बहुवचन पितरः है, निरुक्त। ४। ११। में पितर पदके व्याख्यान में नीचे लिखा मंत्र ऋग्वेद १। १६४। ३३ का प्रमाण दिया है।

द्यौर्मे पिता जनिता नाभिरत्र० इत्यादि।

फिर निरुक्तकार इसके अर्थ करते हुये पिता पद का अर्थ इस प्रकार करते हैं-"पिता माता वा पालपिता वा" अर्थात् पिता पालन वा रक्षा करने से कहा जाता है, ऐसाही स्वामी जी ऋग्वेद भाष्य में लिखते हैं। तात्पर्य यह है कि रक्षा को पालने वाले जनकादि मनुष्य वर्ग राजा, सूर्य चन्द्र किरण वायु भेद जिसका राजा यम कहाता है इत्यादि रक्षकों और पालन करने वालों का नाम पितर है। वेदों में बहुत स्थानों में पितरों को राजा लिखा है जैसे मनुष्यों का राजा मनुष्य, मृगों का राजा मृगराजसिंह औषधियों का राजा सोम नामक औषधि, ऋतुओं का राजा ऋतुराज वसंत है, इसी प्रकार वायु भेद जो हमारे पालक हैं उनका राजा 'यम' वायु है।

इसके अतिरिक्त वेदकी शिक्षा है कि प्रत्येक लिंगशरीरजीवात्मा स्थूल शरीर को छोड़ कर आकाश में १२ दिन तक १२ आकाशी पदार्थों से (डेवलप) होता है, तब इसे किसी लोक में कर्मानुसार जन्म मिलता है, हां जिनका लिंग शरीर छूट जाता है उन पुरुषों की यह अवस्था नहीं होती।

हे मनुष्यों ! इस जीव को (प्रथमे) पहिले (वाहम) दिन (सविता) सूर्य (द्वितीय) दूसरे दिन (अग्नि) अग्नि, तीसरे वायु, चौथे वा ५ वें दिन चन्द्रमा, छटे वसन्तादि ऋतु, सातवें मरुत, आठवें सूत्रात्मा, नवें प्राण, दशवें उदान, ग्यारहवे विजुली, और बारहवें दिन सब दिव्य प्राण प्राप्त होते हैं।

इससे भी जाना जाता है कि सूर्य, अग्नि, वायु चन्द्र, प्राण, उदान विजुली और आकाशवत् अन्य सब दिव्य पदार्थों का (जो देवता कहाते हैं) हवन करने से सुधार होता है इसी को तृप्ति और अनुकूलता भी कहते हैं, इससे अग्नि होम द्वारा पृथ्वी अन्तरिक्ष और भूलोक इन तीनों की शुद्धि वृद्धि और तृप्ति होने से आकाशवत् पितरों और वायु, (वायुविशेष) का भी उपकार सम्भव है परन्तु मृतक प्राणी किसी प्रकार परमात्मा की व्यवस्थानुकूल १२ दिन में भिन्न २ नियत पदार्थों को छोड़ अन्यत्र कहीं नहीं जा सकते और इस के अनन्तर स्थूल शरीर पाय, जन्म लेकर भी एक लोक से दूसरे लोक में नहीं जा आ सकते; इस लिये प्रचलित श्राद्ध दानादि कार्यों के पदार्थों की प्राप्ति ब्राह्मणों द्वारा पितरों को सर्वथा असम्भव है।

इस के लिये हम भविष्योत्तर पुराणान्तर्गत ऋषि पंचमी व्रतोद्यापन विधि में एक ब्राह्मण का किया श्राद्ध उसके माता पिता को जो उसीके घर में कर्मानुसार कुतिया और बैल की योनि पाकर रहते थे उनको नहीं पहुँचा यह सब मूल और उसका हिंदी अनुवाद मुरादाबादी पं० व्रजरत्न (महर्षि कुमार भट्टाचार्य) के हिंदी अनुवाद से जो बम्बई गणपतिकृष्ण जी के प्रेस में छपा है उसमें लिखते हैं, देखिये विचार कीजिये।

"अत्रार्थे यत्पुरा वृत्तं प्रवक्ष्यामिकथानुकम् । पुराकृतयुगे राजाविदर्भायां वभूवाह ॥ १६ ॥ श्येनजिन्नाम राजर्षिश्चातुवर्ण्यांतुमालकः । तस्यदेशेऽव सद्विप्रो वेदवेदांगपारगः ॥ १७ ॥ सुमित्रा नाम राजेन्द्रसर्वभूतहितेरतः । कृषिवृत्त्यासदायुक्तः कुटुम्बप्रतिपालकः ॥ १८ ॥ तस्यभार्या सुसाध्वी चपतिशुश्रूषणेरतः । जयश्रीनाम व्याख्याता बहुमृत्युसुहृज्जना ॥ १९ ॥ अतिचिन्तांधि तासां च प्रावृट्कालेसुमध्यामा । क्षेत्रादिपुरता साध्वी ध्मानुकूलकृतमानसा ॥ २० ॥ एककदासात्मानः प्राप्तमृतुकालेव्यलोकयत् । रजस्वलापि

साराजन् ! गृहकर्म चकार ह ॥ २१ ॥ भाण्डादीन्नस्पृशद्राजन्नृतौ प्राप्ते ऽभिमानिनी । कालेन बहुना साध्वी पंचत्वमगमत्तदा ॥ २२ ॥ तस्या भर्तापि विप्रो ऽसौ कालधर्ममुपेयिवान् । एवं तौ दम्पती राजन् ! स्वकर्मगौ वशतदा ॥ २३ ॥ भार्या तस्य जयश्रीः माकृतसंपर्कदोषतः । शुनीयोनिमनुप्राप्तसुमित्रो ऽपि नरेश्वर ॥ २४ ॥ तस्याः सम्पर्क दोषेण बलीवर्दो बभूव ह । एवं तौ दम्पती राजन् ! स्वकर्म वशगौ तदा ॥ २५ ॥ ऋतुसम्पर्कदोषेण तीर्यग्योनिमुपागतौ । स्वधर्माचरणाज्जाताबुभौ जातिस्मरौ तथा ॥ २६ ॥ सुतस्यैव गृहे राजन् स्मरन्तौ पूर्व पातकम् । ऽसुमित्रस्य च पुत्रो ऽभूद्गुरुशुश्रूषणेरतः ॥ २७ ॥ सुमतिर्नामिविज्ञोदेवतातिथिपूजकः । अथक्षयाहे संप्राप्ते पितुस्तु सुमतिस्तदा ॥ २८ ॥ भार्यां चंद्रवती प्राह सुमितिः श्रद्धयान्वितः । अद्य सांवत्सरदिनं पितुर्मे चारुहासिनि ! भोजनीयाद्विजा भीरु ! पाकसिद्धिर्विधीयताम् । तयाकृता पाकसिद्धः सुमतिर्भर्तुराज्ञया ॥ ३० ॥ मुक्तं पायसभाण्डे वै सर्पेण गरलंततः दृष्ट्वा ब्रह्मवधाद्भीता शुनी भाण्डादिसा ऽस्पृशत् ॥ ३१ ॥ भार्या च तां दृष्ट्वा उल्मूकेन उघानहा । भाण्डादीनि च प्रक्षाल्य त्यक्ता पाकं सुमध्यमा ॥ ३२ ॥ पुनः पाकश्च कृत्वा तु श्राद्धं कृत्वा विधानतः । ततो भुक्तेषु विप्रेषु नोच्छिष्टं च ददौ बहिः ॥ ३३ ॥ भूमोक्षिमं शुन्याऽपवासस्तदाभवत् । ततो रात्र्यां प्रवृत्तियां साशुनीक्षुता शम् ३४ बालीवर्दमुपागत्य भर्तारमिदमब्रवीत । क्षुभुक्षिताद्य हे भर्ते न दत्तं भोजनादिकम् ॥ ३५ ॥ ग्रासादिकं च न प्राप्तं क्षुधमां बाधते भृशम् । अन्यस्मिन्दिवसे पुत्रो मम लेह्य प्रदात्यासौ ॥ ३६ ॥ अथ मह्यं किमप्येष उच्छिष्टमपि नाददौ । पायसान्ने पपाताद्य गरलं सर्पस्वभवम् ॥ ३७ ॥ मायाविचिन्त्य मनसा मरिष्यन्ति द्विजोत्तमाः । सम्पृष्टं पायसं गत्वा गद्धवाहं ताड़िता भृशम् ॥ ३८ ॥ दुःखितेन मे गात्रं कटिर्भग्न करोमि किम् तया प्राह स चानड्वान् भद्रे ते पापसंग्रहात् ॥ ३९ ॥ किं करोमि ह्यशक्तो ऽहं भारवाहः स्वमागतः अद्याहमात्मनः क्षेत्रे वाहितः सकलमिदम् ॥ ४० ॥ मारितश्चात्मजेनाहं मुखं बद्धवा बुभुक्षितः । वृथा श्राद्धं कृते न जाताद्य मम कष्टा ॥ ४१ ॥ कृष्णउवाच ॥ तयोः संवदतोरेव माता पित्रोश्च भारत ! श्रुत्वा पुत्रस्तथा वाक्यं यदुग्रं च तदोभयोः ॥ ४२ ॥ पित्तरौ तौ विदित्वा तु दत्तवान्सुमतिस्तदा । तस्यां रात्र्यां तत्काले ददौ तस्मै च भोजनम् ॥ ४३ ॥

भाषार्थ-इसी बीच में जो प्राचीन कथा का वृत्तान्त है सो मैं कहता हूँ, पहिले सतयुग में विदर्भ नगरी में चारों वर्णों को पालने वाले राजाओं में ऋषि के समान एक राजा श्येनजित हुये थे, उनके देश में अङ्गों सहित

वेदों का जानने वाला ॥ १६,१७ ॥ सम्पूर्ण प्राणियों के हितका करनेवाला खेती के कर्म से कुटुम्ब का पालन करने वाला एक सुमित्र नामक ब्राह्मण रहता था ॥ १८ ॥ बड़ी पतिव्रता, पति की सेवा में तत्पर, अनेक भृत्य (नौकर) कुटुम्बियोंसे युक्त जयश्री नामवाली उस ब्राह्मणकी एक स्त्री थी॥१९॥ एक समय वर्षाकाल में अत्यंत चिंता से युक्त सुन्दर कमरवाली खेत के काम में लगी हुई उस पतिव्रता का चित्त अत्यन्त व्याकुल हुआ ॥ २० ॥ एक समय उस स्त्री ने अपने ऋतुकाल को आता देखा और हे राजन् ! वह रजस्वला होकर भी घरके कामको करती रही ॥ २१ ॥ हे राजन् ! ऋतुकाल प्राप्त होने पर भी उसने भण्डादिक सब छुये और वह स्त्री थोड़े ही समयमें मृत्यु को प्राप्त हुई ॥ २२ ॥ और उसका पति भी समयानुसार मृत्यु के वश हुआ । इस प्रकार वे दोनों स्त्री पुरुष अपने कर्मों के वश हुये ॥ २३ ॥ उस की वह स्त्री जयश्री ऋतुकाल संगति के दोष से कुतिया की योनीको प्राप्त हुई और हे राजन् ! वह सुमित्र ब्राह्मण भी ॥ २४ उस स्त्री के संगके दोष से उस समय बलीवर्द (बैल)हुआ । हे राजन् तब वे दोनों स्त्री पुरुष इस प्रकार अपने कर्मों के वशीभूत हुये ॥ २५ ॥ ऋतुकाल की संगति के दोषसे दोनों पशु योनि को प्राप्त होकर अपने अपने धर्म के प्रतापसे अपने पूर्व जन्म को याद करते हुये ॥ २६ ॥ राजन् ! उसी प्रकार अपने किये हुये पहिले पाप को याद करते हुये पुत्र के ही घर उत्पन्न हुए । गुरुकी अत्यन्त शुश्रूषा करने वाला, धर्म का जानने वाला, देवता और अभ्यागतों की पूजा करने वाला सुमति नाम सुमित्रा का पुत्र था, फिर पिताके क्षयान्द के प्राप्त होने पर वह सुमति २७,२८ ॥ श्रद्धासे युक्त अपनी चन्द्रवती स्त्री से बोला कि मनोहर हास्य करने वाली । आज मेरे पिताकी वर्षी का दिन है ॥२९॥ हे अधिक भय करने वाली ! आज ब्राह्मणों को भोजन कराना उचित है, सो तू पाक (भोजन) तयार कर ।।अपने पति सुमतिकी आज्ञा से उस चंद्रवती ने सब भोजन बनाये ॥३०॥ तदनन्तर खीरके पात्र में सर्प ने विष छोड़ दिया, उसको देख कर ब्राह्मणों के मर जाने के भयसे खीर के पात्र को उस कुतिया ने छू दिया ॥३१॥ पात्र को छूती हुई उस कुतिया को देख करउस ब्राह्मण की चन्द्रवती स्त्रीने उसे जलती हुई लकड़ी से मारा और उस सुन्दर कमरवाली चन्द्रवतीने भोजन को छोड़ सब बर्त्तनों को धोकर ॥३२॥ फिर दूसरा पाक बनाकर विधि से श्राद्ध करके ब्राह्मणों के जीम जाने पर उसने जमीन में पड़ी हुई ब्राह्मणों की जूठन बाहर नहीं दी, तब यह कुत्ती

भूखी ही रही, फिर रात होने पर अत्यंत क्षुधा (भूख) लगी ॥ ३३, ३४॥ तब अपने पति वली वर्द के पास आकर वह बोली कि हे नाथ! आज मैं भूखी हूँ किसी ने मुझे भोजनादि कुछ भी नहीं दिया ॥ ३५ ॥ आज तो एक ग्रास तक भी मैंने नहीं पाया इस कारण भूक मुझे अधिक सताती है। अन्य दिन तो यह हमारा पुत्र मुझे भोजन देता था ॥ ३५ ॥ आज तो एक ग्रास तक भी मैंने नहीं पाया इस कारण भूख मुझे अधिक सताती है अन्य दिन तो यह हमारा पुत्र मुझे भोजन देता था ॥ ३६ ॥ आज तो इस ने मुझे ज़रा जूंठन तक भी नहीं दी। आज खीर में सर्प का विष गिर गया था ॥ ३७॥ सो यह बड़े बड़े ब्राह्मण मर जायेंगे ऐसा मैंने विचार कर जाके खीर को छू दिया, इस कारण बांध कर मुझे बहुत मारा ॥ ३८ उस मारने से मेरा शरीर बहुत दुःखित हुआ और मेरी कमर टूट गई, सो मैं क्या करूं ? यह सुन कर बली वर्द बोला, कि हे सुभगे ! तेरे पाप के संग्रह से ॥ ३९ ॥ मैं भी असक्त हूँ सो क्या करूं ? बोझ के उठाने को प्राप्त हूँ आज के दिन मैं अपने पुत्र के खेत में सारा दिन चलाया गया ॥ ४० ॥ और इस मेरे पुत्र ने भूंख प्राप्त हुये मेरे मुखको बांध कर मुझे बहुत मारा, इससे आज श्राद्ध वृथा ही किया क्योंकि मुझे तो आज बड़ा कष्ट हुआ ॥ ४१ ॥ इतनी कथा सुनाय श्रीकृष्ण जी बोले हे युधिष्ठिर ! उन दोनों माता पिता के इस प्रकार कथन करते समय जो कुछ उन दोनों ने कहा उस को उनके पुत्र सुमित ने सुन कर अपने मात पिता जान कर उसी रात्रि में उसी समय अपने उन माता पिता को भोजन दिया ॥ ४२ ॥ इस लिये इस मिथ्या लीला को छोड़ जीते माता पिता का प्रति दिन श्राद्ध और तर्पण कीजिये। इसके उपरांत भला यह तो बतलाइये कि मरे हुये माता पिता आपका किस प्रकार पालन कर सकते हैं ? कैसे शोक का स्थान है कि जीते माता पिता जो हमारा सब प्रकार से पालन करते हैं उनको पितृवत् समझ कर नाना प्रकार के क्लेश देते हैं और मरने के पीछे पितृयज्ञ की आशा पर कठिन कठिन काम करते हैं और कुछ विचार नहीं करते अब तो आप समझ गए होंगे कि श्राद्ध तर्पण जीते माता पिता का सम्भव है कि और मरे हुओं का असम्भव तथा बुद्धि के विपरीत है। अब मेरे प्यारे भाइयो ! इसी प्रकार पण्डि देना और एकादशाह करना या ब्राह्मण को माल असबाब इत्यादि देना, वर्षी चौबर्षी करना गया जाना इत्यादि सब मिथ्या और धोखे की टट्टी है। जैसा कि मरे हुओं का श्राद्ध तर्पण और पण्डि देना। पण्डि शब्द के अर्थ शरीर के

है और शरीर बनाना माता पिता का काम है, किसी और का नहीं और वह भी रीत्यनुसार, तो फिर जब माता पिता का काम पिण्ड देना है तो बड़े शोक की बात है कि लड़का बाप और मां को पिण्ड देता है और उसको अपने लिये योग्य समझता है और जानता है कि मैं उनके हक्क से अदा हो गया, क्या इस का नाम बुद्धि है ? टुक तो विचार कीजिये कि आप अपने माता पिता के कौन ठहरे, अपने ही जी में समझ जाइये मुझे कहते लाज आती है, । यदि कोई आप से ऐसी बात कहे तो आशा है आप बहुत अप्रसन्न होवें परन्तु पिंड देने के समय बुद्धि से कुछ काम नहीं लेते । इसके उपरांत जो दूसरे शरीर में चला गया तो फिर आपके पिण्ड देने की क्या आवश्यकता है, वह तो बिना आपके पिण्ड दिये पिंड पाता है । वर्षी पर दृष्टि डालिये, यह सब झूंठी बातें हैं क्योंकि जो जीव तुरन्त दूसरे शरीर में चला जाता है और एक क्षणमात्र भी नहीं ठहरता वह किस प्रकार से एक वर्ष ठहर सकता है जिसके लिये आप वर्षी चौबर्षी करते हैं । अब गया जाने के विषय में विचार कीजिये तो प्रत्यक्ष प्रकट है कि वेदादि सत्य शास्त्रों में लिखा है कि जीव अपने कर्मानुकूल शरीर धारण करता है और अन्यत्र भी ऐसा ही लिखा है ।

अब बतलाये कि गया जाने से आपके माता पिता आदि क्या अपने कर्मों के फल से पृथक् हो सकते है ! कदापि नहीं, हां एकादशाह इत्यादि छोटे २ उस्तादों की उस्तादी है और यह बड़े उस्तादों के बड़े हथकंडे हैं । यदि गया जाने का फल ठीक है तो वेद और शास्त्रों में आवागमन झूंठ है फिर मनुष्य के अच्छे कर्मों की क्या आवास्यकता है ? यह तो बहुत ही सहल गुटका हाथ आगया कि सौ दो सौ रुपये में पाप से छूट जाता है । भाई टुक तो विचारो क्या आप यहां बुद्धि से काम नहीं लेते ? और कामों में तो आप सब प्रामाणों की छानबीन करते हैं परन्तु यहां कुछ भी नहीं ? इसके उपरान्त गया के पंडे जो धन आपका लेते हैं वह सब मिथ्या कर्मों में व्यय कर पाप भागी बनते हैं, यह सब पाप आपके सिर पर है । देखिये इन कर्मों के करने से आपका धन व्यर्थ जाता है और परिश्रम भी होता है और पापभागी भी बनना पड़ता है, फिर बुद्धिमान ऐसे कर्मों को क्योंकर करें जिसमें अंतको कुछ लाभ न हो । इसी भांति 'कट्टहा' के देने में पाप होता है क्योंकि यह कर्म वेद विरुद्ध होने से प्रमाणिक नहीं तिस पर प्रसन्न हो कर हाथ जोड़ अपने मरे हुओंको वैकुण्ठ जानेकी आशा करते हैं मानों वैकुण्ठ

का ठेका महाब्राह्मण के हाथमें समझ लिया है और यह भी विचार न किया कि नरक स्वर्ग किसका नाम है और उसका दाता कौन है ?

सुनिये, संसार में वेदानुकूल फल मोक्ष प्राप्तकरने ही का नाम वैकुण्ठ है और उसके विरुद्ध ही नरक और दुःख। दुःख सुखको देने वाले मनुष्यकेकर्म हैं। अब बतलाइये कि 'कट्टहा' जी किस प्रकार से वैकुण्ठ को भेज सकते हैं कि जिसके लिये नाना भांति से भेंट चढ़ाते हो। और वहां उसने प्रसन्न चित्त हो कर आपकी पीठ पर हाथ फेर दिया और सुफल बोली उसी समय आप फूले नहीं समाते मानों स्वर्ग में भेज ही दिया क्याही सोच की बात है।

प्यारे सज्जन जनों ! स्वर्ग और नरक कोई विशेष स्थान नहीं है, वरन् पूर्ण सुख का नाम स्वर्ग और विपरीत दशाको नरक कहते हैं जो कर्मानुकूल प्राप्त होते हैं, देखिये—

विष्णुपुराण अंश अध्याय २ में लिखा है, धर्मात्माओं के लिये स्वर्ग पृथ्वी पर ही है। चाणक्यनीति अध्याय २ श्लोक ३ में लिखा है कि जिस का पुत्र वश में रहता है स्त्री इच्छानुसार चलती है जो विभवमें संतोष रखता है उसको स्वर्ग यहां ही है।

यस्य पुत्रो वशीभूतो भार्याछन्दानुगामिनी।
विभवेयश्च सन्तुष्टस्तस्य स्वर्गइहैवहि॥

और अध्याय ६ में लिखा है कि जिस कार्य के करने से मन प्रसन्न हो और कोई निन्दा न करे उसी का नाम स्वर्ग है।

इसलिये स्वर्ग के सुख भोगने के लिये वाल्मीकीय रामायण अयोध्या कांड सर्ग १०९ श्लोक ३१ में रामचन्द्रजी ने कहा है कि सत्य, धर्म और प्राणियों के ऊपर दया, प्रिय वचन बोलना ब्राह्मण देवता अतिथि की पूजा करना, पण्डित लोग इन्हीं को स्वर्ग जाने का मार्ग बतलाते हैं।

मत्स्यपुराण अध्याय ३९ श्लोक २२ में राजा ययाति ने कहाहै कि तप, दान, शम, दम, लज्जा, सरलता और सब भूतों पर दया ये सात बातें स्वर्ग के बड़े द्वार हैं।

तपश्च दानश्च शमो दमश्च ह्रीरार्जवंसर्वभूतानुकम्पा।
स्वर्गस्य लोकस्य वदंदि सन्तो द्वाराणि सप्तैव शुभनिपुंसाम्॥

वामनपुराण अध्याय ६१ में ब्रह्मा ने कहा है कि पराई स्त्रियों से गमन, अति पापियों का उपसेवन, सब प्राणियों की निन्दा करनी यह प्रथम नरक है। फलों की चोरी और फल से हीन, वृथा गमन और वृक्षों के

समूह को काटना यह दूसरा नरक है वर्जित पदार्थों को ग्रहण करना दुष्टता, और विना मारने योग्य को मारना बन्धन विवाद और झूठका बोलना यह तीसरा नरक है। सब प्राणियों को भयदेना, धनका नाश, धर्मोंका त्याग यह चौथा नरक है। प्राणियों का मारना, मित्र से कुटिलता, झूठी शपथ खाना और मिष्ट पदार्थोंको अकेला खाना यह पांचवां नरक है। पुरका नाश, मिथ्या पत्रका बनाना और विना अपराध के दण्ड देना, और योग का नाश करना, सवारी का पहिया वा जुआ आदि का चुराना, यह छटा नरक है। छिपा कर राजा के भाग रहना, राजा की भार्या से भोग करना, राज्य में अहित करना यह सातवां नरक है। लोभपन, चंचलता, और लम्पटपन धर्म और धनको नाश करना, देव ब्राह्मण के द्रव्य को हरना और ब्राह्मणों की निन्दा करना, बन्धुओं के साथ उग्र विरोध करना, यह आठवां नरक कहा है। शिष्टों के आचार का विनाश, और शिष्ट पुरुष से वैर भाव, बालक को मारना, शास्त्र की चोरी, धर्म का नाश यह नवां नरक है। राज्य सम्बन्धी छः अंगों का नाश करना छः गुणों का प्रतिषेध करना, यह सत्पुरुषों ने दसवां नरक कहा है। सब काल में सत्पुरुषों से वैर करना, अनाचार विविध क्रिया और संस्कार से हीनपना, यह ग्यारहवां नरक है। धर्म अर्थ काम और मोक्ष इनका नाश करना बारहवां नरक है। कृपणता, धर्म से हीनता, आग का लगाना, यह सत्पुरुषों ने निन्दितरूप तेरहवां नरक कहा है अज्ञान और पराये गुणों में दोषका आरोपण करना, मलीनपना अशुद्धवाणी और झूंठा वचन बोलना, यह चौदहवां नरक है। आलस्य, और विशेषक्रोध करना और सज्जनों के मारने में उद्यत रहना, और बसने योग्य स्थानों में आग लगाना, पर स्त्री में इच्छा करनी और सब जीवों में ईर्षा करनी, यह निन्दित व्रत पन्द्रहवां नरक है।

अब तो आपको प्रत्यक्ष प्रकट हो गया कि नरक दुःखों को और स्वर्ग सुख को कहते हैं-इसलिये स्वर्ग और नरक के विशेष ज्ञान मनुष्य जीवन में प्रतीत होता है और यही शरीर उसके प्राप्त करने का साधन है। इस कारण इसी पृथ्वी पर जिस स्थान पर आप उत्पन्न हुये हैं वहां ही वेदोक्त कार्य को कर स्वर्ग के सुखों को भोगिये। देखिये चाणक्यनीति अ० २ श्लोक २ में इस का अच्छे प्रकार उत्तर दे दिया है इसके उपरांत अ० ७ में कहा है।

स्वर्गस्थितानामिहजीवलोके चत्वारि चिन्हानि वसन्ति देहे।

संसार में आने पर स्वर्गवासियों के शरीर में चार चिन्ह होते हैं—

दान का स्वभाव, मीठा वचन, देव अर्थात् विद्वानों की पूजा और ब्राह्मणों का तृप्त करना। श्री मद्भागवत् स्कन्ध ११ अ० ४९ में अक्रूरजी महाराज ने धृतराष्ट्र जी से कहा है कि जीव अकेला ही जन्म लेता है, और अकेला ही पाप पुण्य को भोगता है, जैसा।

एकः प्रसूयते जन्तुरेक एक प्रलीयते।

एकोनु भुंक्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम्॥

इस से प्रत्यक्ष प्रकट है कि जिस मनुष्य ने अपने जीवन में धर्म का सञ्चय किया उस को अवश्य ही सुख मिलेगा, वरन् मरने पर अन्य सम्बन्धी किसी कार्य को कर उस को सुखी नहीं पहुँचा सकते। इस के उपरान्त पौराणिक मतानुसार मां बाप के मरने के पश्चात् गया को जाते हैं और वहां श्राद्ध करते हैं तत्पश्चात् फिर श्राद्ध करने की आज्ञा नहीं है इससे श्राद्ध नित्यकर्म नहीं हो सकता परन्तु वेदादि सत्शास्त्रों में नित्य श्राद्ध करने की आज्ञा पाई जाती है। इकसे उपरान्त जहां वस्तु और सुख का भोक्ता होता है, वहीं सुख होता है, अन्यथा नहीं जहां जल होता है प्यास वहीं शान्ति होती है जहां दीपक होता है वहीं उजाला होता है। फिर भला यदि अपने पुरुषाओं को सुख पहुचाने के लिये ब्राह्मणों को भोजन भी कराए, तो क्या उनको सुख मिल सकता है? कदापि नहीं क्या मैं खा कर आप की तृप्तिकर सकता हूँ यदि ऐसा हो सकता है तो अति ही सुन्दर है इससे हमारे परदेश में रहने वालों को भोजनादि बनाने और खाने पीने का भी कष्टदूर होना सम्भव था, परन्तु ऐसा नहीं होता। यदि मरों ही का श्राद्ध करना सनातन समझा जावे तो अवश्यबतलाइए कि सृष्टि की आदिमें जो ब्रह्मादि उत्पन्न हुए थे उन्हों ने किसका श्राद्ध किया होगा? यदि जीव ही श्राद्ध में जाते हैं तो जब तक वह वहां रहे उसका शरीर मर जाना चाहिए। परन्तु यह हम को दृष्टिगोचर नहीं होता। वह प्राणी अन्य ही लोकों में उत्पन्न होते हैं तो पृथ्वी पर यह नये आत्मा कहां से आते हैं! यदि आत्मा असंख्य माने जावें तो भी इस दशामें उनका अन्त होना सम्भव हुआ क्यों कि जिस मनुष्य के पास धन हो और आमदनी कुछभीन हो वरन् व्यय ही होता रहे तो कभी उसके धन का अन्त अवश्य होगा।

यदि जीवात्मा नया उत्पन्न होता है तो उसके शरीर के तुल्य मरना भी सम्भव होगा, फिर कर्मों का भोगने वाला कौन रहा कि जिस को वेदादि शास्त्र पुकार कर कह रहे हैं क्या यह सब झूठे हैं? नहीं

नहीं, नहीं, यदि जीवात्मा नयाही शरीरके साथ उत्पन्न हुआ तो उसको विशेष दुःख सुख क्यों हुव, क्योंकि वह पहिले कभी उत्पन्न नहीं हुआ था और बुरा भला कर्म भी नहीं किया था, यदि ऐसा माना जावेगा तो मनु आदि ऋषियों के वाक्य झूंठे हो जावेंगे कि सत्वगुणी लोग देवता होते हैं, रजोगुणी मनुष्य और तमोगुणी पशु आदि योनियोंमें होते हैं जैसाकिः—

देवत्वं सात्विकायान्ति मनुष्यत्वञ्च राजसाः।
तीर्यक्त्वं तामसा नित्यमित्येषा त्रिविधागतिः॥

चाणक्य जी ने कहा है।

अत्यन्तकोपः कटुका च वाणी दरिद्रता च स्वजनेषुवैरम्।
नीचप्रसंगः कुलहीनसेवा चिन्हानि देहे नरकस्थितानाम्॥

अत्यन्त कोष, कटुवचन, दरिद्रता अपने जनों में वैर, नीच सङ्ग कुलहीन की सेवा यह नरक वासियों की देही में रहते हैं।

इस लिए हे मेरे भाइयो! झूंठी और मिथ्या वार्तोको छोड़कर जितना रुपया मरे पितरों के श्राद्ध और तर्पणमें व्यय करते हो वह विद्वान पितरोंके आदर सत्कार में व्यय कर वेदोक्त आज्ञाओं को पूर्ण कर स्वर्ग के सुखों को भोगिए। वहुधा जन ऐसा कहते हैं कि राजा कर्ण जो वड़ा दानी था जब मरा तो मुक्त होकर स्वर्ग में पहुँचा उस ने रुपया और जवाहरात वहुतायत से पुण्य किए परन्तु अन्न वहुत कम, इसी लिए उसके आगे स्वर्ग में सोने और जवहिरात के ढेर लग गये परन्तु भोजनों को कुछ नहीं तव राजा साहव ने उसका वृत्तांत पूछा तो जाना कि तुम ने अन्न वहुत कम पुण्य किया है, तव उन्होंने पंद्रह दिन की और भी आज्ञा मांगी कि मैं जाकर अच्छे प्रकार दान करलूं। यह प्रार्थना उसकी स्वीकृत हुई और उनने आकर पंद्रह दिन तक अच्छे प्रकार के भोजन कराए, यहां तक कि उसको इतना छुटकारा न मिला कि वाल वनवाता और वस्त्र धुलवाता अव देखना चाहिए कि मोक्ष सर्व दुःख के छूटने को कहते हैं अर्थात् सदा परमानन्द में रहने का नाम मोक्ष है, फिर जव वह मुक्त हो गए फिर भी खाने का दुख ही वना रहा और स्वर्ग के अर्थ ही नहीं समझे। इस के अतिरिक्त और भी विचार करो कि जव उसकी यह प्रार्थना स्वीकृत हुई तो वतलाइए राजा ऊपर से किस प्रकार से आया अर्थात् गर्भाधान की रीति से या ऊपर से गिरपड़ा? और आते समय उसकी अवस्था क्या थी। लड़कपन तरुणाई वा बुढ़ापा? यदि कहो गर्भाधान के द्वारा उत्पन्न हुआ तो राज्याधिकारी होना कठिन है और इस कार्य के अर्थ बहुत

समय की आवश्यकता है, क्योंकि ९ महीने गर्भ में रहेगा फिर उत्पन्न होकर बड़ा होगा, तब ब्राह्मण खिलाने योग्य होगा। और उसको आज्ञा पंद्रह दिन तक रहने ही की थी। यदि कहो कि ऊपर से गिर पड़ा तो यह कर्म सृष्टि कर्मकेविपरीति है न कभी ऐसा हुआन होगा। दूसरे यहकि जीव तोमुक्त होकर स्वर्ग को गया था और शरीर यहां जला दिया गया था तो बताओ वह जीव दूसरा शरीर धारण करके ऊपर से आया था, नहीं तो बिना जीव संसार को पहचानना अत्यन्त कठिन है इसके उपरान्त कर्ण कलियुग के आदि में हुए हैं इससे ज्ञात होता है कि दान देना उचित है वह किस प्रकार से दिया जाय तो, हम कहते हैं दान देना अत्यन्त ही योग्य है, परन्तु जब लोग गपोड़े मार कर माता आदि के नाम से धोखा देकर ठगई का बाज़ार गर्म करके लूटते चले जावें, यह पुण्य नहीं कहावेगा। इस लिए इस प्रकार कदापि पुण्य न करना चाहिए। इसके उपरान्त इन दिनों में वर्षा के अत्यन्त होने से वायु बिगड़ जाती है और भोजनों में पूरी, कचौड़ी पुड़ियां इत्यादि बराबर पंद्रह दिन तक समय और कुसमय पर खाने में आती हैं इससे विशेष कर हैज़ा आदि रोग उत्पन्न होकर नानाभांति से दुःख देते हैं और अनेकान यमपुर को भी चले जाते हैं, तो बतलाइए कि इसका अपराध यजमानों के सिर पर है या ब्राह्मण या पुरुषाओं या राजा कर्ण के ?

हे प्यारे सुजनों यह बातें मिथ्या हैं और स्वार्थियों ने अपने पेट भरने के लिए राजा कर्ण का नाम लेकर अपना प्रयोजन निकाला है। यदि राजा कर्ण की मोक्ष होगई तो फिर उनको किसी बात की भी कमी नहीं रह सकती और यह भी तो नहीं मालूम कि उन्होंने किस प्रकार किस योनि में जन्म लिया ? इस लिए राजा कर्ण से पहिले जैसे हमारे और आपके पुरुषे जिस रीति पर चलते थे उसी रीति अर्थात् वेदानुकूल ही चलना चाहिए जैसा कि यजुर्वेद अ० २० मन्त्र ३४ में।

ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम्।
स्वधास्थ तर्पयत मे पितॄन्॥

ईश्वर आज्ञा देता है कि सब मनुष्यों को पुत्र और नौकर आदि को आज्ञा देके कहना चाहिए कि हमारे पितर अर्थात् पिता माता आदि विद्या के देने वाले प्रीति से सेवा करने योग्य हैं जैसाकि उन्होंने बाल्यावस्था वा विद्या दान के समय हम और तुमको पाला है वैसेही हम लोगों को भी सब काल

में उनका सत्कार करना योग्य है, जिससे हम लोगों के बीच से विद्या का नाश और कृतघ्नता आदि दोष कभी न प्राप्त हों।

अथर्व वेद में स्पष्ट आज्ञा है गृहस्थ लोग विद्वान् गुणी माता पिता आदि बड़ों की सेवा घृत दुग्ध आदि से किया करें जिससे वे पितर लोग बलवान रह कर उत्तम २ कर्म करने में समर्थ होवें। इसके उपरांत गरुड़ पुराण में लिखा है कि जीव अंगूठे के समान प्रेत होकर घूमता है इसलिए दस दिन तक एक२ पिंड आटे का इसको खिलाते हैं दसवें दिन जब वह पिंड खाकर मोटा ताजा हो जाता है तब ग्यारवें दिन एक बड़ा भारी पिंड जिसको संपिडी कहते हैं बनाते हैं फिर मंत्रों के बल से उस प्रेत को बुलाते हैं फिर एक कुश के तिनके से महाब्रह्मण सपिंडी के तीन बराबर भाग करता है और प्रत्येक भाग को ऊपर के पितरों में मिला देता हैं अर्थात् एक भाग को बाप में दूसरे को दादा में और तीसरे को परदादा में, इसी भांति स्त्रियों को मानों एक प्रेत को काट २ कर तीन स्थानों में मिलाते हैं तब वह प्रेत से पितर हो जाते हैं। इसके उपरांत जानना चाहिये कि गरुड़पुराण जो गरुड़ एक प्रकार का पक्षी है इसके और परमात्मा के प्रश्नोत्तर हैं और उस परब्रह्म ने गरुड़ से सब वृतान्त कहा है। अब आप टुक तो विचार कीजिये कि यदि ईश्वर को वर्णन करना ही आवश्यक था तो क्या कोई मनुष्य इस योग्य न मिला कि जिसमें सब वृत्तान्त कहते ? दूसरे गरुड़से मनुष्यके मृतक संस्कार का हाल कहने से क्या लाभ ? यदि गरुड़ को बताना ही था तो सांपों को बताना था कि अमुक स्थान पर सांप है और अमुक समय पर हमको मिल सकते हैं तो आशा है कि वह अपना भक्षण पाकर प्रसन्न होता। यह मिथ्या और बुद्धि के विरुद्ध बातें हैं केवल प्रत्येक प्रकार से अपना ही प्रयोजन निकाला है। मान्यवरो ! यदि आप मरे हुओं का श्राद्ध तर्पण मानेंगे तो बहुत ही शंकायें इस विषय में उत्पन्न होंगी कि जिनका समाधान होना बिल्कुल असम्भव हो जायगा। प्रथम तनिक ध्यान दीजिये कि श्राद्ध क्यों किया जाता है ? तो ज्ञात होता है कि अपने २ पुरुषाओं को आराम देने के अर्थ। क्या महाशय ! आप किसी प्रकार अपने मरे हुए पुरुषाओं को आराम पहुँचा सकते हैं ! कभी नहीं क्योंकि वेदादि सत्य शास्त्र पुकार २ कर कह रहे हैं कि मनुष्य को अपने ही किये हुए कर्मों का फल मिलता है, मरने पर माता पिता पुत्रादि कुछ नहीं कर सकते। देखिये, य० अ० २ मंत्र २८ में लिखा है—

शुभं प्रतपते ब्रह्मचरिर्यं तद्वशकम् ।
तन्मेराघी दमहं य एवास्मि सास्मि ॥

जैसा प्राणिमात्र कर्म करते हैं वैसेही फलको पाते हैं, प्राणी मात्र अपने कर्म के विरुद्ध फल को कभी नहीं प्राप्त होते इस लिए सुख भोगने के लिए धर्म युक्त कार्यों को करे जिससे कभी दुःख न हो । और मनु० अ० ४ श्लोक २३८ में भी ऐसा ही लिखा है, जैसाकि ।

नामुत्रहि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः ।
न पुत्र दारं न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलः ॥

प्रत्यक्ष प्रकट है कि जो मनुष्य भोजन करता है उसकी भूख जाती है और जो औषधि पान करता है उसी का रोग नाश होता है इसके विपरीति कभी दृष्टिगोचर नहीं हुआ, फिर भला आपके कर्म आपके पुरुषाओं को क्यों कर आराम पहुँचा सकते हैं ? तुलसीदास जी ने भी कहा है—

कर्मप्रधान विश्व कर राखा, जो जस करै सो तस फल चाखा ।

क्या कोई कार्य संसार में ईश्वरीय विषय के विरुद्ध भी हो सकता है ? कदापि नहीं । गीता में कृष्ण महाराज ने कहा है धर्मयुक्त कार्य करने से किसी की दुर्गति नहीं होती । महाभारत में लिखा है एक ही मनुष्य पाप करता है वही भोगता है । श्रीमद्भागवत स्कन्ध १० अ० २४ पूर्वार्द्ध श्लोक १४ में लिखा है कि कर्मका फल कर्ता ही को मिलता है, अन्य को नहीं ।

इस उपरोक्त बातों से सिद्ध हुआ कि मरों का श्राद्ध करना वेद और बुद्धि के विपरीत है, इस लिये इसका कारण यही जान पड़ती है कि पहले समय में मनुष्य विद्वान् धर्मात्मा ब्राह्मण और अपने पुरुषाओं को भोजनादि से तृप्त करते परन्तु जब ब्राह्मणों ने अपने कर्म धर्मों को त्याग दिया और अविद्यारूपी अन्धकार छागया तो उन्होंने जाना कि अब हमारा श्राद्ध (अर्थात् सेवा सत्कार) न होगा इस लिये उन्होंने यह परिपाटी चलाई होगी कि जो तुम हमको खिलाओगे तो तुम्हारे बाप दादे को मिलेगा, क्योंकि संसार में प्रत्येक मनुष्य अपने लिये मांगना बुरा समझता है ।

प्यारे भाइयो ! इन सब बातों से सिद्ध होता है कि जीते माता पिता की सेवा टहल ही श्राद्ध और तर्पण है, फिर भला ब्राह्मणों के खिलाने गया आदि जाने और महाब्राह्मण (कट्टहा) के देने से क्या लाभ हो सकता है ? वरन् पाप भी होता है क्योंकि उपरोक्त जन इस प्रकार पाये हुये धन को बुरे कामों में व्यय करते हैं जिनका पाप दाता ही के सिरे होता है । इस

के अतिरिक्त इन कर्मों के करने से सत्यग्रन्थों की आज्ञा भंग होती है। देखिये श्रीमद्भागवत स्कन्ध १० पूर्वार्द्ध अध्याय १ श्लोक ३९, ४० में लिखा है कि जिस समय शरीर का अन्त होता है उस समय जीवात्मा अपने कर्मों के अनुसार परवश हो देहको प्राप्त होता और पूर्व देहको त्यागता है जैसे चलते समय मनुष्य अगले पांव को धर लेता है तब पिछले पांवको उठाता है और जोंक भी इसी भांति अगले तृण को पकड़ कर पिछले को छोड़ती है 'उसी भांति जीवात्मा' जैसा कि—

देहे पञ्चत्वमापन्ने देही कर्मानुगोऽवशः।
देहान्तरमनुप्राप्य प्राक्तनं त्यजते वपुः॥
व्रजस्तिष्ठं पदैकेन यथैवैकेन गच्छति।
यथा तृण जलोकैवदेही कर्मगतिं गतः॥

फिर आप की वर्षी और चौवर्षी और कनागत में धनादि व्यय करने से क्या लाभ? पाठक गणों! कैसे अन्याय की बात है कि आप केवल अपने मां बाप दादा दादी के अर्थ तो कनागतों में ब्राह्मणों को नाना प्रकार के उत्तम २ भोजन खिलाते हैं और उनके बाप दादों आदिका ध्यान नहीं करते, क्या वह आपके पूज्य नहीं थे! क्या आप उनके वंश में नहीं हैं! क्या यह आपके बाप दादों को प्रिय हो सकता है? जब कि उनके माता पिता उनके सम्मुख भूखे बैठे रहे जिनको वह भोजन कराकर आप भोजन करते थे। मान्यवरो! क्या यह बातें आपके धर्मशास्त्रों पर धब्बा नहीं लगातीं! अवश्यही यह विषय वेदादि ग्रन्थों में नहीं है हां वेदों का वचन है कि मनुष्य को अपने माता पिता दादा दादी परदादा परदादी को धन्यवाद पूर्वक आयु पर्यन्त नित्यप्रति सेवा करनी चाहिये क्योंकि इस असार संसार में सम्भव नहीं है कि कोई मनुष्य अपने दादे के पिता की भी सेवा कर सके, इस लिये विद्यमान माता पिता आदिका शिष्टाचार नम्रता पूर्वक करना योग्यहै। क्योंकि शिष्टाचार मनुष्यों को सत्स्वभाव का दर्पण स्वरूप निर्मल और प्रशांत नदीके तट पर वृक्ष लतादिकों का प्रतिबिम्ब जिस प्रकार परिलक्षित होता है इसी प्रकार बोल चाल आचार व्यवहार के देखने से भीतरी भाव का अनुभव होता है, चाहे कोई किसी अवस्था में क्यों न हो शिष्टाचार के द्वारा अवश्य वे प्रशंसा लाभ कर सकते हैं क्योंकि मधुर वचन के बोलने से सम्पूर्ण जीव संतुष्ट होते हैं, जैसा कि कहा है।

मधुर वचन से जाय मिट, उत्तम जन अभिमान।

तनक शीत जल सों मिटै, जैसे दूध उफान॥

इस कारण जो कोई इसका त्याग करता है मानों वह अपनी जड़ आप काटता है, क्योंकि वह ऐसा मंत्र है कि जिसके धारण करने से सब जीव वश में हो जाते हैं। जो शिष्टाचार सहित प्रिय बचन बोलते हैं वह बड़ी २ आपदाओं को सुगमतासे टाल देते हैं और जिन पुरुषों में यह शक्ति होती है वही देश का नाना भांति से उपकार कर सकते हैं क्योंकि शीतलता से कार्य सिद्ध होते हैं इसके द्वारा सहस्रों जनों को अपना वश राज्य कर लेते हैं। यह वह पदार्थ है कि जि जिससे सिंह से घातक जीव आधीन होजाते हैं शत्रु के मन में शीतलता दया आजाती है, सच पूंछो तो वशीकरण मंत्र यही है, जैसा कि कहा है—

तुलसी मीठे वचन से, सुख उपजत चहुँओर।
वशी करण यह मंत्र है, तज दे ऊ वचन कठोर॥

प्यारे भाइयो ! जो संसार में सुखकी इच्छा हो तो कदापि कटुवचन और व्यङ्ग शब्द न उच्चारण करो यह विदेश में भी अपमान कराता है और विदुर जी ने भी कहा है कि सुन्दर वाणी के बोलने से संसार में अनेकान सुख मिलते हैं। देखो श्रीरामचन्द्र जी अपने मधुर और शीतल वचनों से परशुराम के क्रोध को ऐसा शान्त किया कि वह मारने के पलटे आशीर्वाद देकर वनको चले गये ?

सत्य तो यह है कि जिन मनुष्यों में यह शक्ति है वही यथार्थ मनुष्यहै वह अपने सेवकों और टहलुओं से भी ऐसा काम ले सकते हैं कि अन्य की सामर्थ्य नहीं हो सकती, इसके अतिरिक्त राजाओं में प्रतिष्ठा मिलती है और सामान्य जन उनका सत्कार करते हैं !

इस लिये सर्वशास्त्र और बुद्धिमानों की यही शिक्षा है कि अपने बड़ों का शिष्टाचार नम्रता पूर्वक प्रिय वाक्यों से करें क्यों कि इसी से सर्वजीवों को आनन्द प्राप्त होता है, जैसा चाणक्य ऋषि ने कहा है:—

प्रियवाक्यप्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः।
तस्मात्तदेव वक्तव्य वचने का दरिद्रता॥

इस लिये माता पिता के उपरांत मामा, चाचा, श्वसुर, ऋत्विज और गुरु को जो अवस्था से छोटे भी हों तो भी उनको शिष्टता से युक्त अभिवादन (नमस्ते) करना योग्य है।

———

नमस्ते ।

शोक है कि वर्त्तमान समय में संस्कृत विद्या का प्रचार न होनेके कारण देशभाषा के शब्द प्रतिदिन छूटते जाते हैं और दूसरी भाषा के शब्द प्रसन्नचित्त होकर बोलते और अनेकान् पुरुष नमस्ते शब्द का कुछका कुछ अर्थ समझा देते हैं कि जिसके कारण बहुधा हानि हो रहा है ।

प्यारे सुजनों ! 'नमस्ते, यह शब्द यौगिक है, 'नम+ते' 'नमः' का अर्थ झुकना, नवना, मान करना, सत्कार करना । 'ते' युष्मद् शब्द की चौथी विभक्ति है, जिसके अर्थ तुमको और तुम्हारे लिये हैं अब यह दोनों शब्द मिलतेहैं तो व्याकरण रीतिसे नमः के विसर्ग का 'स्' होजानेसे 'नमस्ते' वाक्य बन जाता है जिसका अर्थ है कि आपके सम्मुख झुकता हूँ आप का मान करता हूँ, बड़ा समझता हूँ, इत्यादि । मुख्य अभिप्राय छोटों को बड़ों का शिष्टाचार करने का है और शिष्टाचारके अर्थ सत्कार के हैं जैसाकि बड़ों के आने पर उठ कर खड़ा होना, शिर झुकाना व शिर नवाना अर्थात् 'नमस्ते' करना, ऊँचे स्थान पर बिठाना, प्रियभाषण करना आदि शिष्टाचार कहलाता हैं, जैसा वर्त्तमान समय में प्रचलित है अर्थात् सब कोई मनुष्य छोटे के स्थान पर जाता है, व अन्य स्थान पर मिलता है तो नवता है और नाना भांति से आदर सत्कार करता है । आज कल जो नमस्ते कहना अच्छा नहीं जानते परन्तु उसके अर्थों पर प्रति दिन चलते हैं उसका कारण अविद्या ही है ।

पौराणिक महाशय कहते हैं कि गद्य में तव को ते आदेश नहीं होता किन्तु पद्य में ही तथा-'श्रीशस्त्वावतुमापीह ! ' अच्छा जब पद्य में ही ते आदेश होता है तो सिद्धांत कौमुदीकार ने – 'शालीनांते ओदनंदास्यामि' यहां गद्य में तव को ते आदेश क्यों किया ? कारण यह है कि पौराणिक महाशयों ने भली भांति सिद्धांतकौमुदी को नहीं देखा, उसमें स्पष्ट 'समान वाक्ये निघातयुष्मदादेशावक्तव्याः' 'अपि च एतवांनावादयो अन्वादेशे वावक्तव्याः' इनदोनों वार्त्तिकों से कार्य किया है और सुप्तिङन्तंपदम् १--४-१४ के सूत्र से सुबन्त की और तिङन्त दोनों की पद संज्ञा है, अतएव यह कहना कि पद्य २ में सम्बन्धी कार्य नहीं तो केवल साहसमात्र है । नमस्ते तो 'पदात्' ८, ११७ से तो सर्वथा सुगमता से ही सिद्ध है ।

दूसरे यह कहना कि (मेरे लिये) ऐसा अर्थ कहने से बड़ोंका अनादर

होता है तो क्या प्राचीनकाल के सब ऋषि आप से बड़ों का अनादर ही करते थे नहीं नहीं, वे सब आदर वा प्यार से 'त्वं' 'ते' आदि शब्दों का प्रयोग करते थे। देखिये, कठोपनिषद् में नचिकेता यम से कहता है—

"देवैरत्रापि विचिकित्सितं किलत्वं च मृत्यो यन्न सुविज्ञेयमात्थ वक्ता चास्य त्वादृगन्यो न लभ्यो नान्यो वरस्तुल्य एतस्य कश्चित् पुनः न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो लप्स्यामहे वित्तमद्राक्ष्म चेत्त्वा। जीविष्यामो यावदीशिष्यसि त्वं वरस्तु मे वरणीयः स एव।"

इन श्लोकों में स्पष्टरूप से 'त्वम्' 'त्वादृग्' 'त्वा' इत्यादि शब्द पड़े हैं और ऐसे वाल्मीकीय में यह 'त्वं समर्थोऽसि' स्वागतं ते महामुने, किमते 'करमकार्षम्' प्रश्नोपनिषद् में 'तं त्वा पृच्छामि' 'तेतमर्च यन्तं त्वं' इत्यादि बहुत स्थान पर तू तुम का प्रयोग किया है। इस से पौराणिकों का कथन महा मिथ्या प्रतीत होता है।

इसके उपरांत स्वार्थी जनों ने नमस्ते के अर्थ इस प्रकार सुना दिये हैं कि 'मस्ते' माथे अर्थात् मस्तक को कहते हैं न निषेध का चिन्ह है, अर्थात् नमस्ते के अर्थ 'बेसिर' के हैं, हा शोक! ३।

प्यारे सुजनों! यह संस्कृत विद्या त्यागने ही का कारण है यदि हम व्याकरण जानते तो पण्डित जी के ऐसे अनगढ़ बे जोड़ अर्थ को न सुनते परन्तु सत्य छिपाये से भी नहीं छिपता। यदि आप कुछ भी बुद्धि से विचारें तो स्पष्ट सिद्ध हो जावेगा कि नमस्ते के अर्थ बेसिर के नहीं हैं क्योंकि बहुधा ग्रन्थों में नमस्ते पद आया है, जिन पुस्तकों का प्रायः नित्यप्रति पाठ करते वा उनकी कथा सुना करते हैं, तिस पर भी यह अंधेर? देखिये—

विष्णुसहस्रनाम श्लोक १३४, १३५ में लिखा है—

वसनाद्वासुदेवस्य वासितं भुवनत्रयं। सर्व भूतनिवासोऽसि वासुदेव नमोऽस्तु ते॥ १३४॥ नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः॥ १३५॥

पार्थिवपूजन में लिखा है—

नमस्ते भगवन् रुद्र देवाय रसानां पतये नमः।
सर्वोपासितरूपाय सुरासुर पतये नमः॥

श्रीमद्भागवत में नमः, नमो, नमस्ते पद आया है। और पाण्डव गीता में लिखा है कि 'गोविन्द नमो नमस्ते'।

या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धा रूपेण संस्थिता।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः॥

देवी भागवत में लिखा है—

"नमस्तेशरण्येशिवेसानुकम्पे नमस्ते जगद्व्यापिके विश्वरूपे।
नमस्ते सदानन्दरूपे नमस्ते जगत् तारिणि त्राहि दुर्गे नमस्ते॥

सारस्वत सूत्र २५८ में लिखा है—

"नमस्ते भगवन्भूयोदेहिमेमोक्ष मव्ययम्।

सत्यनारायण में लिखा है—

नमस्ते वाङ्मनोतीतरूपायानन्तशक्तये।

दुर्गापाठ के ५ अ० के श्लोक १६ से लेकर ७९ तक अनेक स्थनों पर नमस्ते शब्द आया है। शिवपुराण उत्तरखण्ड अ० १४ श्लोक २४,२८,२९।

"तवाववोधो भगवन् भूतानामु-दयाय च प्रलयाय भवेद्द्वाश्चिन्नमस्तेकाल रूपिणे॥ २४॥ जगदीशस्त्वमेवासि त्वत्तोनास्त्येव ईश्वरः। जगदादिरनादिस्त्वं नमस्ते स्वात्मवेदिने॥ २८॥ नमस्समुद्ररूपाय सदा वकटिनाय च स्थूलायजुरुवेतुभ्यं कृपात्मायलघवे नमः॥ २९॥

इसी भांति और और पुराणों में भी यह शब्द पाया जाता है अब तो स्पष्ट प्रकट हो गया होगा कि नमस्ते के अर्थ 'वे सिर' के नहीं हैं। और भी सुनिये कि आज कल के पण्डित और अनपढ़ ब्राह्मण जब आपसमें मिलते हैं तो नमस्कार करते हैं। जो इसी नमस्ते शब्द का अपभ्रंश स्वरूप है।

क्या उसके भी वेसिर वाले अर्थ हैं? कदापि नहीं, कदापि नहीं, कदापि नहीं। हां इतना अन्तर अवश्य है कि 'नमस्कार' ब्राह्मणों ने इस समय अपने लिये बना लिया है और अन्यवर्ण के लिये 'राम राम' बता दी है इस कारण 'नमस्ते के अर्थ उलटे समझते हैं, धन्य पण्डित जी! आपने तो वेद मन्त्रों के 'नमस्ते' पद का अर्थ पलट दिया। क्यों न हो पंडिताई तोइसी का नाम है। यजु० अ०१६ मंत्र २१ में लिखा है:—

'नमस्ते अस्तुविद्यतेनमस्तेस्तनपिवे॥'

भ्रातृगणों! वैद्यकग्रन्थ के कर्ता वाग्भट्टजी ने इस विद्या के पूर्व आचार्यों को नमस्ते किया है। देखो सूत्रस्थान श्लोक २-'नमोस्तु'-क्या यहां भी 'नमस्ते' अर्थ वेसिर के हैं? कदापि नहीं।

प्रिय सज्जन पुरुषों! उपरोक्त कथन से प्रत्यक्ष प्रकट होगया कि अनादिकाल से नमस्ते पद चलाआता है, यही कारण है कि प्राचीन पुरुष मिलने

के समय नमः नमस्ते करते थे, देखो श्रीमद्भागवत स्कन्ध १ अ० ४९श्लोक १३ में कुन्ती ने श्रीकृष्ण महाराज को (नमः) अर्थात् नमस्ते किया—

नमः कृष्णाय शुद्धाय ब्रह्मणे परमात्मने ॥

ऐसा ही प्रश्नोपनिषद् अध्याय ६ श्लोक ८ में पिप्पलादि ऋषियों को सुकेशादि ऋषियों ने (नमः) ही पद उच्चारण किया है श्रीमद्भागवत स्कंध ११ अध्याय ९२ में श्रीकृष्ण महाराज ने उत्तम ब्राह्मणों को 'नमस्ते' किया है ।

विप्रान् स्वोलाभसन्तुष्टान् साधून् भूतसुहृत्तमान् ।
निरहंकारिणः शान्तान् नमस्ये शिरसाऽसकृत् ॥

कर्मविपाक ग्रन्थारम्भ श्लोक १० अ० १ में लिखा है कि शिष्य आचार्य के लिये नमः अर्थात् नमस्ते करे ।

पुत्रकामसमृद्ध्यर्थं पूजांगृह्णीष्वते नमः ॥

देखो बृहदारण्यक उपनिषद् में लिखा है कि राजा जनक ने आसन से उठकर याज्ञवल्क्य को नमस्ते कर कहा है हे भगवान् ! मेरे को बढ़ाओ ।

जनकोह वैदेहः कूर्चादुपावसर्पन्नुवाच नमस्ते ॥

गीता अ० ११ श्लोक ३९ से स्पष्ट प्रकट है कि अर्जुन ने श्रीकृष्ण महाराज को नमस्ते किया था ।

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशांकः प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च ।
नमोनमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः पुनश्च भूयोऽपिनमोनमस्ते ॥ २८ ॥

वाल्मीकीय रामायण बालकाण्ड सर्ग ५० श्लोक १७ में लिखा है ।

सर्वथा च महाप्राज्ञः पूजार्हणसपूजितः ।
नमस्तेस्तु गमिष्यामि मैत्रेणेक्षस्वचक्षुषा ॥

अर्थात् विश्वामित्र जी वसिष्ठ जी से बोले कि हे महाराज ! आप मेरे पूजनीय हैं, मेरा जैसा आदर होना चाहिये वैसा आपने किया, अब मैं आपको 'नमस्ते' अभिवादन करके जाता हूँ, मुझ पर कृपा दृष्टि रखिये ।

प्यारे सुजनों ! जब हमारे प्राचीन पुरुष नमस्ते करते थे, फिर हमको क्या सन्देह ? क्योंकि इतर जनों को वही कर्म करने चाहियें जिनको श्रेष्ठ पुरुषों ने किया हो । सत् शास्त्रों की आज्ञा है । इसके उपरांत सीता महारानी ने विराध नाम राक्षस से कहा कि हे राक्षसों में उत्तम ! मैं तुम को नमस्ते करती हूँ, मुझे इस वनमें शार्दूल और रीछ खा जायंगे तू मुझ को

हर ले और राम लक्ष्मण को छोड़ दे । देखो बाल्मीकि रामायण आरण्य-काण्ड सर्ग ४ श्लोक ३ ।

मामृक्षा भक्षयिष्यन्ति शार्दूलद्वीपिनस्तथा ।

मांदरोत्सृज काकुत्स्थ नमस्ते राक्षसोत्तम ॥

और अथर्व वेद १० । १० । १ में भी स्त्री के प्रतिनमः पद आया है जैसा 'नमस्ते' जायमानाय जाताये उतते नमः ।, और अथर्व वेद ६।५।६ । २ में पुत्रके प्रति नमः शब्द आया है अर्थात् पिता पुत्र के लिये नमः शब्द का प्रयोग करे ! जैसाः-

नामस्त्वसिताय नमति राइत्र रावये ।

स्वजाय वभ्रवे नमो नमो देव जनेभ्यः ॥

इसके उपरान्त य० अ० १६ मं० २६ में वहरा, कुम्मार, खड्ग बन्दूक और तोप आदि के बांधने वाले, निषाद बनादि पर्वत के रहने वाले कुत्तों की शिक्षा देने वालों को नमः करने की आज्ञा है तो फिर हम सब को आपस में नमस्ते करना क्या अनुचित है ! और हम रामराम कहते हैं और इस कारण राम नाम परमेश्वर का है, इसका स्मरण रखना अच्छा ही है परंतु शिष्टाचार के समय रामराम कहने से आदर सत्कार का कोई अर्थनहीं निकलता, इसलिये प्रत्येक शब्द के अर्थ को समयानुकूल बोलना सभ्यता है । इसके उपरान्त जब हम किसी ब्राह्मण व पण्डित से मिलें तो कहते हैं कि महाराज पालागें, अर्थात् मैं पैर छूता हूँ वा पांव पकड़ता हूँ, तब वह उत्तर देते हैं, कि प्रसन्न रहो आनन्द रहो । और जब वह आपस में मिलें तो एक दूसरे से कहते हैं 'नमस्कार ।' कैसे शोक की बात है कि जब हम आपस में अपने बड़ों से मिलें तो उनका शिष्टाचार न करें और परमेश्वर का स्मरण करें यह हमारे पूज्य ब्राह्मण जब आपस में मिलें तो दूसरे का शिष्टाचार करें । क्या अपने लिये राम राम उत्तम पद का स्मरण करना उत्तम नहीं समझते ? इसी स्वार्थ ने तो देश को साफ कर दिया । इसी लिये मान्यवरो ! अब इन उपरोक्त बातों को स्मरण कर शिष्टाचार के अनुसार प्रत्येक स्त्री पुरुषों को नमस्ते शब्द का प्रचार करना अभीष्ट है क्योंकि परमात्मा वेद में हमको आज्ञा देते हैं ।

यजुर्वेद अ० १६ मंत्र ३२ में लिखा है कि जब परस्पर मिलते समय सत्कार करना हो तब 'नमस्ते' इस वाक्य का उच्चारण करके छोटे बड़ों, बड़ों छोटे, नीच उत्तमों, उत्तम नीचों और क्षत्रियादि ब्राह्मणादिकों वा

ब्राह्मणादि क्षत्रियादिकों का निरन्तर सत्कार करें, जैसाकि ।

नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च नमः पूर्वजाय चापरजाय च ।

नमो मध्यमाय चापगल्भाय च नमो जघन्याय च बुध्न्याय च ।

इसके उपरान्त मौसी, सास, फूफी, भी गुरुकी स्त्री के समान है इस लिये उनकी भी सेवा टहल गुरुजी की भांति करना चाहिये और फूफी और बड़ीमौसी को माताके तुल्य समझना उचित है, शिष्टाचार करने के समय और अन्य अस्थानों पर भी शील को न त्यागना चाहिये। देखिये मनुजी ने लिखा है कि जो मनुष्य सदा नम्रतायुक्त शील सहित प्रतिदिन विद्वान् और वृद्धों को अभिवादन और उन की सेवा करते हैं उन की आयु, विद्या, कीर्ति और बल ये चार पदार्थ बढ़ते हैं जैसा किः-

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनाः ।

चत्वारि तस्य वर्द्धन्ते आयुर्विद्या यशोबलम् ॥

फिर भला ऐसी सेवासे उपरोक्त फल मिलतेहैं कि जिनका प्रत्यक्ष प्रमाण भी है तो कैसे शोक और पश्चात्ताप का स्थान है कि किसी प्रकार के घमंड आदि शिष्टाचार को त्याग अप्रिय कठोर और असत्य वचन बोल कर चारों पदार्थों को खो दें ।

इन बातों के उपरांत यह भी स्मरण रखना योग्य है कि जिस आसन पर बड़े मनुष्य बैठे हों उस पर आप न बैठे, यदि आप आसन पर बैठा हो तो उठ कर आसन छोड़ कर उनको प्रणाम करे और स्थान दे, और कभी ऐसे परोपकारी सज्जन पुरुषों के सम्मुख पैर फैला कर अथवा सहारा देकर न बैठे और न प्रश्न के अतिरिक्त अधिक उत्तर दे, और उनके पीछे गमन, भाषणादि की नकल न करें ।

बलिवैश्वदेव

यह चतुर्थ नित्य कर्म है, देखो मनुस्मृति अ० ३ श्लोक ४८ में स्पष्ट आज्ञा है कि यथावत् प्रति दिन बलिवैश्वदेवतकरना चाहिये ।

वैश्वदेवस्य सिद्धस्य गृहेऽग्नौविधिपूर्वकम् ।

आभ्यः कुर्यादेवताभ्यो ब्राह्मणो होममन्वहम् ॥

और गीता अ० ४ श्लोक ३१ में लिखा है कि जो यज्ञ करने के पीछे

अमृतरूपी अन्न भोजन करते हैं वह सनातन ब्रह्मको पाते हैं और जो इन यज्ञों को नही करते उन को इस लोक और परलोक से सुख नहीं मिलता और अ० ३ श्लोक ३३ में भी इस कार्य की प्रसंशा की है, और ऐसा ही याज्ञवल्क्यस्मृति अ० ५ में भी लिखा है। इनके अतिरिक्त व्यासस्मृति अध्याय २ श्लोक २८। विष्णुस्मृति अध्याय २ श्लोक ३५, हारीतस्मृति अध्याय १ श्लोक २६ में भी प्रतिदिन बलिवैश्वदेव करने की आज्ञा है। आरण्यकाण्ड सर्ग १२ श्लोक २७ से प्रकट है कि महर्षि अगस्त के आश्रम पर जब रामचन्द्र गये थे तब उन्होंने बलिवैश्वदेव विधि से अग्नि में आहुति देकर भोजन किया था देवी भागवत स्कंध ११ आध्याय २२ में लिखा है कि जो विप्र बिना बलिवैश्वदेव के भोजन करते हैं वह महारौरव नरक को जाते हैं।

वैश्वदेवकृतं दोषं शक्तोभिक्षुर्व्यपोहितुम्।
नतुभिक्षुकृत दोषं वैश्वदेवो व्यपोहति॥

अतिथि-सेवा।

मान्यवरो! गृहस्थ पुरुषों के उद्धार के अर्थ अतिथि ही देवता स्वरूप है, जैसा तैत्तरीयोपनिषद् में लिखा है-"अतिथि देवोभव" और यथार्थ में यही साक्षात् मूर्तिपूजा है क्योंकि अतिथिकी यथावत् सेवा करने से ब्रह्मज्ञान की प्राप्तिहोती है, अर्थात् इन्हीं के सत्संग से मनुष्य दोनो लोकों में आनन्द उठाता है, प्रियवरो! इस असार संसार के पार करने के लिये अतिथिही नावरूप हैं, इसी कारण प्रतिदिन अतिथि सेवा करने की आज्ञा वेदादि सत्य शास्त्रों में पाई जाती है। देखिये, य० अ० ३ मं० ४२ में लिखा कि जो परोपकार करने वाले विद्वान् अतिथि लोग हैं उनकी सेवा गृहस्थों को निरन्तर करना चाहिये, औरों की नहीं। जैसा कि-

येषामध्येति प्रवसन्येषु सौमनसो बहुः।
गृहानुपह्वयामहे ते नो जानन्तु जानतः॥

अथर्ववेदकांड १५ सूत्र ११ में लिखा है कि जब कोई विद्वान् अतिथि घर पर आवे तो उसकी प्रीति वचन-जल अन्नादि पदार्थों से सेवा करे।

तद्यस्यैवं विद्वान् व्रात्योऽतिथिर्गृहानागच्छेत्॥

मनुस्मृति अ० ३ श्लोक ९४ में मनु जी ने स्पष्ट आज्ञा दी है कि

बलिवैश्वके पश्चात् अतिथिको भोजन कराये और विधि पूर्वक संन्यासी और ब्रह्मचारी को भिक्षा दे ।

कृत्वैतद्बलिकर्मैवमतिथिं पूर्वमाशयेत् ।
भिक्षां च भिक्षवे दद्याद्विधिवद्ब्रह्मचारिणे ॥

और ऐसा ही व्यासस्मृति अ० ३ श्लोक ३६,४० और विष्णुस्मृति अ० २ श्लोक ३८,३९ हारीतस्मृति अ० ४ के श्लोक ९७ और शंखस्मृति अ० ५ के श्लोक १३ और याज्ञवल्क्यस्मृति अ० ५ श्लोक १०७ में भी लिखा है । वृहन्नारदीय पुराण अध्याय १३ में लिखाहै जो भक्ति से पैर धोवे वह सुख को पाता है ।

इन सब श्लोकों का तात्पर्य यह है कि जब गृह पर अतिथि पधारे तब उठ कर नम्रता पूर्वक उसको आसन दे, पैर धोवे, उत्तम भोजन करावे फिर विद्या का विचार करे । यही अतिथि यज्ञ स्वर्ग की प्राप्ति का द्वारा है इसी से गृहस्थकी उन्नति होती है । और कात्यायनस्मृति खं० १२ में लिखा है कि अतिथि पूजन को ही मनुष्ययज्ञ कहते हैं । लिंगपुराण अ० २९ श्लोक ४८ में लिखा है कि अतिथि का अपमान न करे क्योंकि अतिथि साक्षात् शिवका स्वरूप है, इस लिये अतिथि सेवा में अपने शरीर को अर्पण करने में कुछ संदेह न करे अर्थात् अच्छे प्रकार सेवा करे ।

विदुरजी ने कहा है कि जो अतिथियों का यथायोग्य सत्कार करता है उसका इस संसार में यश होता है । वनपर्व अ० २ में युधिष्ठिर महाराज ने कहा है कि अतिथि सेवा करना परम धर्म है और अध्याय १८४ में महात्मा 'वक' ने इन्द्रको उपदेश किया है कि अतिथि के आदर सत्कार से गोदान के समान फल होता है । शांतिपर्व अ० १२१ में भी भीष्मपितामह ने कहा है कि जो मनुष्य अतिथियों को प्रति दिन भोजन कराते हैं उनको अमृताशी, कहते हैं और अ० २२४ में लिखा है कि अतिथि की यथावत् सेवा करने से चन्द्रलोक मिलता है अनुशासन पर्व के अ० १ में गृहस्थ का परम श्रेष्ठ धर्म अतिथि सत्कार कहा है । आरण्य काण्ड में अगस्त्य मुनि का वचन है कि हे रामचन्द्र ! जो तपस्वी होकर अतिथियों का सत्कार नहीं करता वह झूठी साक्षी देने वाले के समान परलोक में जाकर अपना मांस आप भोजन करता है । प्रियवरो ! जब तपस्वियों की यह दशा होगी तो फिर गृहस्थोंकी दुर्दशा का क्या ठीक ? मनुजी ने कहा है कि जो गृहस्थ अतिथि से प्रथम आप भोजन करता है उसको दूसरे जन्म में कुत्ते और गिद्ध खाते हैं । श्री-

मद्भागवत स्कंध ९ अ० २६ श्लोक २९ में लिखा है जो गृहस्थ अतिथि को बारम्बार क्रोध दृष्टि से देखते हैं उनकी आंखें मरने पर गिद्ध, कौआ, बटेर इत्यादि निकालते हैं। पारासरस्मृति श्लोक ४६ में लिखा है कि जो अतिथि का सत्कार नहीं करते उसको हजारों दहे पूनके होमसे कुछ लाभ नहीं होता और श्लोक ४७ में लिखा है कि जो बलिवैश्वदेव और अतिथि सत्कार नहीं करते वे नरक वा कौवे योनि में जाते हैं।

भ्रातृगणों! वैदिक समय में ब्रह्मचारियों, संन्यासियों और वानप्रस्थियों की अतिथियों में गणना की गई थी कि जो अपनी आयुके दो या तीन भाग सांसारिक आनन्दों में व्यतीत करके सब प्रकार सन्तुष्ट हो जाते थे। जिससे उनका मन फिर सांसारिक वस्तुओं की ओर कभी स्वप्न में भी न झुकता था। संसार के सम्पूर्ण भेदों को जानकर नियमपूर्वक संन्यासी होते थे, जिनकी कहीं भी नियत कुटी नहीं होती थी, जो प्रत्येक नगरों में जाकर भयरहित होकर वेदरूपी सद्धर्म को करते थे इसी कारण उनकी सब प्रकार सेवा करना हमारा परम धर्म था, हम उनकी सेवा के अर्थ तन मन धन से उद्यत रहते थे। परन्तु शोक है कि वर्त्तमान समय में इस उत्तम परिपाटी का कहीं पता भी नहीं चलता जिधर दृष्टि उठाकर देखते हैं एक झुण्ड अनपढ़ नाम मात्र के संन्यासियों का देख पड़ता है, जिनकी शारीरिक दशा का कुछ वर्णन नहीं हो सकता। कोई भुस खाता है, कोई बड़े बड़े लकड़ीके गट्टों की माला पहने होते हैं, बड़े २ बाल बढ़ाये हुये हैं, कोई हाथी आदि उत्तम सवारियों पर चलते हैं। कोई दिन और रात चरस का दम लगाया करते हैं। सचमुच यह भी सांसारिक मनुष्यों की भांति नाना प्रकार के सुखों के अभिलाषी होते हैं। जैसे हमारी आप की स्त्रियां होती हैं उनके साथ भी स्त्रियां होती हैं जिनको बाईजी कहते हैं हम अपने निवास स्थान को गृह कहते हैं और इनका निवास स्थान कुटी कहलाता है जिनमें सब प्रकार की वस्तु जिनकी गृहस्थी में आवश्यकता होती है, भरी हुई पाई जाती है। सचमुच ये गृहस्थी हैं, परन्तु जीविका के अर्थ ये वेष धारण कर लेते हैं और नाना प्रकार से धन उत्पन्न कर कुकर्म्मों में व्यय करते हैं किसी के साथ एक झुण्ड आठ आठ, दस दस वर्ष के बालकों का (जो इस संसार के तृणमात्र से भी निपट अज्ञानी होते हैं) होता है। ये सब संन्यासियों के भेस में रहते हैं। मान्यवरो! ये कदापि संन्यासी नहीं कहे जा सकते। देखिए,

शातातप जी कहते हैं कि संन्यासी वही हैं जिनकी सब सांसारिक पदार्थों में अप्रीति हो जैसाकि—

सदा सर्व पदार्थेषु वैराग्यं यस्य जायते।
अधिकारी स विज्ञेय इति शातातपोऽब्रवीत् ॥

इनका तो केवल यही उद्देश्य है कि प्रातःकाल होते ही नगर की ओर जाते हैं, घर पर जाकर घण्टों खड़े होकर मांगते फिरते हैं जिसकी निंदा बहुत प्रकार से की गई है, देखिए-

आहार मात्रेऽपि या निस्पृहा कर्तासंन्यासिनेति।
भिक्षाप्रकरणवाक्यात् प्रतीयते ॥
नेक्षयेद्द्वाररन्ध्रेण भिक्षालिप्सुः क्वचिद्यतिः।
न कुलाद्दे क्वचिद् घोषं न द्वारं ताडयेत् क्वचित् ॥
देहीति यो ब्रूयाल्लवण व्यञ्जनादिकम्।
गोमांस तुल्यं तद्भक्ष्यं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥

अर्थ-संन्यासियों को आहार मात्रमें भी बहुत इच्छा न करनी चाहिए यहां तक कि भिक्षा की इच्छा करता हुआ द्वार में न देखे, न मांगे, न दरवाजे को खटकावे। लाओ २ ऐसा शब्द कहता, लवण या व्यञ्जनादि भोजन मांगता है वह गोमांस तुल्य होता है, उसको खाकर चन्द्रायण व्रत करने से शुद्ध होता है। फिर कहिये कि यह संन्यासी कैसे ? वह तो केवल अपनी स्त्री माता पितादि से लड़ झगड़ वा सांसारिक आनंदों से निराश होकर देश देशान्तरों में भ्रमण कर देश की रेड़ मार रहे हैं। इस लिए आप जान बूझ कर कार्य कीजिए। देखिए लिखा है कि वेद विरुद्ध कार्य करने वाले, झूठ बकने वाले, तथा बगुला और बिलाव की वृत्ति रखने वाले, दुष्टों का वाणीमात्र से भी सत्कार न करना चाहिए।

पाषण्डिनो विकर्मस्थान् वैडालव्रतिकान् शठान्।
हैतुकान्बकवृत्तींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत् ॥

इस लिए मान्यवरो ! केवल उन्हीं पुरुषों का सत्कार कीजिए जो अपने अपने वर्णों के धर्मों को पूर्ण रूप से करने में उद्यत हैं अन्यथा कुछ लाभ नहीं वरन् जितने पाप कर्म ऐसे जन आपका धन पाकर करते हैं उनके पाप के भी आप भागी होते हैं। इसके उपरांत यहजन आपही की लड़ैती सन्तान को स्वप्नवत् सुख दिखला कर रंगे स्यार बना कर ले जाते हैं कि जिनके दुःखों में आप प्राणगमाने तक को उद्यत हो जाते हैं, इस लिए शास्त्रानुसार

अतिथियों की परीक्षा करके वेदानुकूल अतिथि सेवा का प्रचार कीजिए। देखिए य० अ० २१ मं० १४ में लिखा है कि धर्मात्मा और विद्वान् अतिथियों की सेवा करे। सचमुच ऐसी आज्ञाओं पर चलनें से इस अभागे भारत की सुदशा हो सकती है।

पुराण-परीक्षा।

इसी विषय को मैंने योग्य पण्डितों द्वारा बड़े परिश्रम से तीन भागों में पुराण तत्वप्रकाश नामक ग्रन्थ में मुद्रित कराया है। जो पवलिक की कदरदानी से हाथों हाथ बिक रहा है। कदाचित् आपने अभी तक अद्योपान्त न पढ़ा हो तो आप कृपा कर एक प्रति वी० पी० द्वारा मंगा स्वयं अवलोकन कर अपने गृह के स्त्री पुरुषों को सुनाइये और विचारिए कि उपरोक्त पुराण महर्षि व्यास प्रणीत हैं या नहीं? इनके लेख वेदानुकूल हैं वा नहीं? उनके विषय में ईसाई मुसल्मानादि क्या २ शंकायें करते हैं। यथार्थ में यह पुराणों की सैरवीन और कच्चा चिट्ठा है। चमत्कार वा तिलस्मातों का भण्डार हैं उनमें **ब्रह्मा, विष्णु, शिव और देवी महाराणी** की करतूत अर्थात् महादेव का विष्णु की तपस्या कर वर मांगना, उनका कंगाल होना, और्व नाम महात्मा का महादेव को शाप देना, फिर उनका पाप मोचन करना, महादेवको युद्धमें जीतना, पार्वती की प्रार्थना पर उसका मुक्त होना। विष्णु की आज्ञा से शिव जी का भस्म, हाड़, चर्म का धारण करना। तामस पुराणों का रचना, जिनके अनुसार कार्य करने वाले को नरक में जाना। कृष्ण का शिवपूजन कर मंगल और पुत्रकी प्राप्ति करना। ब्रह्मा और विष्णु का महादेव को वर देना। विष्णु का नेत्र उखाड़ शिव पर चढ़ाना रामचन्द्र जी का ब्रह्महत्या दूर करने के लिए शिव की उपासना करना। महादेव का अतिथि रूप में चमत्कार दिखाना, विष्णु जी की निन्दा दूर करने के लिए ब्रह्मा जी का बकरी को उत्पन्न कर, उनके शिर का लवण समुद्र में गिरना और घोड़े का शिर जोड़ना। विष्णु, ब्रह्मा, शिव का स्त्री होना। विष्णु के

काल के मैल से मधु कैटभ का उत्पन्न होना इन्द्र, चन्द्र, सूर्य, वशिष्ठ, विश्वामित्र, बृहस्पति, शुक्र की अपार लीला, त्रिदेव अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, शिव के अनोखे कर्तव्यों का फोटो। कलिमाहात्म्य और उसके दूर करने का सरल उपाय। तीर्थ व्रत के मुख्य अभिप्राय बताने का मंत्र। गङ्गामहारणीकी विचित्रउत्पत्ति। गङ्गामहारानी का सब पाप मोचन करना राजा वेन के मरने पर उसकी भुजाओं से निषाद और पृथु का उत्पन्न करना। वृक्षों से मरीषा का जन्म, रेवती के छोटे करने की अजीब तरकीब राजा निमि का मरना फिर उससे पुत्र उत्पन्न करना, बलदेव जी का मदिरा पान कर यमुना जी का खींचना, बलि के शरीर से सोना चांदी आदि का उत्पन्न होना, राजा सगर की रानी के साठ हजार पुत्रों का उत्पन्न होना, देवताओं से वृक्षों की उत्पत्ति, ब्रह्मा जी के कान से दिशाओं की उत्पत्ति, एक राजा का हिरणी के साथ वार्तालाप, मनु की पुत्री का पुत्र हो जाना। 'कच' का टुकड़े कर राक्षसों का खाना फिर उसे जीवित निकालना, हिरणी के पेट से शृंगी ऋषि का उत्पन्न होना राजा की कोखसे पुत्रका जन्म, जन्तु नाम पुत्री की चर्बी से हवन कर उस शेरनी के पुत्र होना अरनी, से शुक, वनिता से अरुण और गरुड़ की उत्पत्ति-अद्भुत रीति से सौ पुत्रों का पैदा होना। वृद्धावस्था के बदले युवावस्था देना। अष्टावक्र का गर्भ के भीतर से बोलना और पिता के शाप से आठ जगह से टेढ़ा होना। एक मछली का बहुत बड़ा शरीर कर प्रलय के समय नाव रोकना। राज्य गंगास्वन का स्त्री बन आना और तपस्या से सौ पुत्रों का उत्पन्न करना इत्यादि बातों के उपरान्त गणेश महाराज की अद्भुत उत्पत्ति और मृतक श्राद्ध का भी वर्णन है।

प्यारे सज्जन पुरुषों! कहां तक वर्णन करूं इनमें सैकड़ों अद्भुत २ बातों का उल्लेख है जिनके पढ़ते २ व्यास महाराज की अनोखी सृष्टि रचना पर हंसी आती है। कृपा कर एकबार अपनी गृहणियों को अवश्य सुनाइये जो इन पर तन, मन धनको न्योछावर करती हैं। इसको सुन सत्यासत्य, मृतादेव, का निर्णय कर अपने जीवन को सुफल करें प्यारे भाइयों! आपके हितार्थ ऐसी अमूल्य पुस्तक का करीब ७०० पृष्ठ होने पर मूल्य केवल २) रक्खा है डा० व्यय ।।=)

* वेदों का ईश्वरकृत होना *

मान्यवरो ! ईश्वरकृत पुस्तकें वही हो सकती हैं जिनमें निम्नलिखितबातें पाई जावें।

(१) यह कि वह किसी देश की भाषा न हो क्योंकि अगर अरबी होगी तो अरब वालों को, फ़ारसी होगी तो फारस वालोंको अङ्गरेजी होगी तो इङ्गलिस्तान वालोंको, हिन्दी होगी तो हिन्दुस्तान वालों को सुगम होगी पस ऐसी विद्या सिवाय संसकृत के कोई नहीं है, क्योंकि वह भाषा किसी देश की भाषा नहीं है, इसमें सम्पूर्ण देश निवासियों को एकसा परिश्रम करना पड़ता है यदि किसी देश की भाषा होती तो उसने परमेश्वर में पक्षपात अर्थात् विकार पाया जाता और वह निर्विकार है, इस लिये ऐसी भाषा में वेदों को प्रकट किया है कि वह किसी देश की भाषा नहीं है। २-किसी कौम की तरफ़दारी न हो। ३-सृष्टि की उत्पत्ति के साथ ही प्रकट हुई हो, न कि थोड़ा या बहुत समय व्यतीत होने पर। ४ उस की आज्ञा सब जगह एक सी ही हो ऐसा न हो कि एक आज्ञा उसकी दूसरी आज्ञा को काट सके। ५-सृष्टि नियम जो उसी का रचा हुआ है उसके विपरीति न हो। ६-न्याय और खगोल भी उसको झूंठा न कर सकें। ७ किसी खास मनुष्य पर ईमान लाने की आज्ञा न हो वरन् उसमें केवल एक ईश्वर ही माननीय पूजनीय हो। ८-मनुष्यों की बुद्धि को उन्नतिकरने वाली हो। ९-उसमें किस्सा कहानियां न हों। १०—जितनी विद्या दुनियां में प्रचलित हैं उन सब का कोष हो-इन गुणों से परिपूर्ण जो कोई पुस्तक इस संसार में हो वह ईश्वरकृत हो सकती है।

इन वेदों के पूर्ण ज्ञान होनेके लिये हमारे प्राचीन ऋषियों ने ४ उपवेद ६ अंग और ६ उपांग बनाये, इस लिये जो इनको प्रथम अच्छे प्रकार नहीं पढ़ते तब तक उनको वेदोंका यथावत् तत्वज्ञान नहीं होता। यही कारण है कि वर्तमान में वेदों के तत्व के जानने वाले बहुत न्यून हैं।

उपवेद—आयुर्वेद (वैद्यकशास्त्र), २ धनुर्वेद (युद्धशास्त्र), ३ गन्धर्ववेद (गानविद्या), अथर्ववेद (शिल्पशास्त्र)।

अंग शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष, छन्द।

उपांग-वैशेषिक, न्याय, सांख्यशास्त्र, पूर्वमीमांसा, उत्तरमीमांसा तथा वेदान्त।

* मूर्तिपूजा-विचार *

सबसे प्रथम यह जानना चाहिये कि मूर्ति किसको कहते हैं ? देखिये बृहदारण्यकोपनिषद् में लिखा है ।

देवा ब्रह्मणोरूपे मूर्तचैवामूर्तं चतदेतन्मूर्तं यदन्यद्वायोश्चान्तरिक्षाच्च ।
अथामूर्तं वायुश्चान्तरिक्षं चेत्यादि ॥

ईश्वर की सृष्टि में दो प्रकार के पदार्थ हैं, एक मूर्त, दूसरे अमूर्त । इनमें आकाश वायु से भिन्न सब मूर्त और आकाश वायु अमूर्त हैं अर्थात् पञ्चभूतों में पहले दो अमूर्त और अन्त में तीन स्थूल हैं और इन तीनों भूतों के विकार भूत सभी पदार्थ स्थूल (मूर्त) हैं और इसी को आकृत कहते हैं अर्थात् जो नेत्र द्वारा प्रत्यक्ष हो उसी को मूर्त वा मूर्ति कहते हैं । और कोष के अनुसार मूर्ति शब्द के दो अर्थ हैं--"मूर्तिंकाठिन्यकाययोः" ।

अर्थात् कठिनाई और शरीर का नाम मूर्ति है और इसीसे मूर्तिमान् शब्द भी बनता है । इससे प्रत्यक्ष प्रकट है कि पाषाणादि से बनी हुई मूर्तियों ही का नाम मूर्ति नहीं है, जिनको सम्प्रति मंदिरों और ठाकुरद्वारों में ताले के भीतर बंद रखते हैं ।

अब यह विचार करना चाहिये कि मूर्ति शब्द के साथ जो पूजा शब्द लगा है उसका क्या अर्थ है, तो प्रत्यक्ष प्रकट है कि सत्कार करने का नाम पूजा है । किसी प्रकार के कोष वा व्याकरण के प्रमाण से पूजा शब्द का अर्थ धूप, दीप, नैवेद्य वा चन्दनादि पदार्थ जड़ वस्तु पर चढ़ाने का प्रसिद्ध नहीं है । हां पूजा शब्द का अर्थ चेतन वस्तुओं के प्रसंग में आता है । अमरकोष में जहां पूजा शब्द आया है उस प्रकरण को देखने से निश्चय होता है कि इस पूजा के शब्द का अर्थ चेतनों से सम्बन्ध रखता है । देखो अमरकोष के द्वितीय खण्ड के सप्तम ब्रह्मवर्ग में पूजा शब्द आया है वहां उससे पहिले अतिथि और पाहुन का प्रसंग है, इस लिये ठीक सिद्धि है, जो शब्द चेतन सम्बन्धी है और सर्व चेतनों के बीच में मनुष्य ही बुद्धिमान है, इस लिये इसकी ही पूजा करना योग्य है । जैसा कि मनु जी महाराज ने कहा है ।

आचार्य्यो ब्रह्मणो मूर्त्तिःपिता मूर्तिः प्रजापतेः ।
माता पृथिव्या मूर्तिस्तु भ्रातास्वोमूर्तिरात्मनः ॥

आचार्य गुरु ब्रह्म की मूर्ति है अर्थात् जिस भावना से आचार्य की पूर्ण सेवा करेगा वही अभीष्ट सिद्ध होगा। ब्रह्म नामवेदवा परमेश्वर का है अथावत् ज्ञान गुरुकी पूजा के आधीन है, जब गुरु सन्तुष्ट होगा तो उसको सुगमता पूर्वक वेद वा ईश्वर का ज्ञान प्राप्त करा देगा। ईश्वर और शब्दार्थ सम्बन्ध रूप वेद दोनों अपूर्व हैं, परन्तु आचार्य के अंतः करण में स्थित हैं, इस कारण आचार्यको ब्रह्मकी मूर्ति कहाहै। जिसको ब्रह्मकी पूजा करना अभीष्ट हो वह आचार्य की पूजा करे, क्यों कि धर्मशास्त्र आज्ञा देता है कि ब्रह्म की मूर्ति आचार्य है। और ऐसा किसी ने नहीं कहा कि 'पाषाणो-ब्राह्मणो मूर्तिः' क्यों कि ऋतेज्ञानान्न मुक्तिः अर्थात् ज्ञान के विना मुक्ति नहीं होती और पाषाणादि जड़ पदार्थ ज्ञान होने में सहायता नहीं दे सकते, क्योंकि वह स्वयं ज्ञान रहित हैं। इस लिये आचार्य गुरुकी ठीक ठीक सेवा किये विना ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती और पिता सृष्टिकर्त्ता की मूर्ति है, उसी से शरीर रूप पुत्र होता है, अर्थात् पिता उस पुत्र रूप शरीर का बनाने वाला है इस लिये जहां सृष्टिकर्त्ता की मूर्ति पूजना हो वहां साक्षात् पिता की मूर्ति को पूजे, जिससे ऋण का उद्धार हो। माता पृथ्वी की मूर्ति है, क्योंकि 'इयंभूमर्हि भूतानां शाश्वती योनिरुच्यते' अन्नादि की उत्पत्ति के समान प्राणियों की उत्पत्ति का स्थान भूमिस्थानी माना है। जिसने सब प्रकारके क्लेश सहके उत्पन्न कर पालनपोषण कर बड़ा किया उसकी साक्षात् मूर्ति पूजनी चाहिये और सहोदर भाई अपनी मूर्ति हैं अर्थात् एक स्थान और एक पिता से उत्पन्न होने के कारण सब भ्राता एक ही मूर्ति हैं, इस लिये जितनी सेवा भ्राता की करे वह जानो अपनी मूर्ति की पूजा है, जैसा कि —

आचार्यश्चपिता चैव माता भ्राता च पूर्वजः।
नार्तेनाप्यवमन्तव्या ब्राह्मणेन विशेषतः॥

आचार्य, माता, पिता और ज्येष्ठ भाई ये यदि किसी प्रकारका दुःख भी दें तथापि इनका अपमान कदापि न करे, यह उपदेश सब वर्णों के लिये है परन्तु ब्राह्मण के लिये विशेष है क्यों कि वह धर्म की मर्यादा को अधिक जानता है।

प्यारे भाइयो ! इसी प्रकार मूर्तिपूजा प्राचीनकाल से आर्यों में चली आती है और इसी प्रकार की पूजा का आर्य ग्रन्थोंमें बहुत उपदेश है जैसा इन तीनों की सेवा से तप की समाप्ति मनुस्मृति में लिखी है वैसे पाषाणादि

मूर्तियों के पूजने से तारका पूर्ण होना किसी ऋषिकृत ग्रन्थमें नहीं लिखा। अब बहुधा लोग मूर्ति-पूजन को ईश्वर की उपासना के सम्बन्ध में लगाते हैं कि ईश्वर के अवतारों की प्रतिमा बना कर पूजने से ईश्वर में भक्ति और उसका ज्ञान होगा। उनको विचार करना चाहिये कि जब न्यायादि शास्त्रके अनुसार रूपादि गुण जीवात्मा के नहीं मानते अर्थात् जड़स्वरूप पञ्चभौतिक गुणों के रूपादि हैं किंतु चेतन में रूपादि का अभाव होने से उसको इंद्रिय-गोचर नहीं कह सकते तो उस परमात्माकी प्रतिमा कैसे बनी। यद्यपि अवतार शब्द और उसके वाच्यार्थ का विचार करना इस प्रसंग में अभीष्ट नहीं है तथापि जो जो लोग श्रीरामचन्द्रादि को ईश्वर का अवतार मानते हैं। उनसे केवल इतना ही निवेदन है कि आप यदि चिदात्मवाद को लेकर रामचन्द्रजी आदि को ईश्वर मानें तो चेतन वस्तु उनके शरीर में भी गुप्त रहता ही था कोई कदापि त्रिकाल में भी सिद्ध नहीं कर सकता था, अगुप्त चेतन की मूर्ति में निरूपत्वादि गुणयुक्त देखी तो अवतारों के शरीर की (कि जो पृथ्वी का विकार है) ही प्रतिमा बन सकती है किंतु उनके शरीरों में जो आत्मा है उसकी प्रतिमा बनाना सर्वथा असम्भव है और यदि देहात्मा को मानते हो अर्थात् भौतिक शरीर को आत्मा मानते हो तो यह अविद्या का फल है क्योंकि योगशास्त्र में कहा है कि अनात्मा शरीरादि में आत्मा बुद्धि करना अविद्या का लक्षण है और किसी शास्त्रका सिद्धांत नहीं कि शरीर को आत्मा माना जावे, इस लिये परमेश्वरकी प्रतिमा बनाना सर्वथा असम्भव है। यदि मनुष्यों की स्वाभाविक वृत्ति पर ध्यान दिया जावे कि वे अपना उपास्य देव कैसा मानना चाहते हैं तो यही सिद्ध होगा कि हमारा उपास्यदेव वही होना चाहिये जिससे ऊपर कोई न हो। यदि हमारे उपास्य देव के ऊपर उसको दबाने वाला कोई अन्य भी हुआ तो हमारा उपास्यदेव छोटा हो जायगा, फिर हम यथावत् उसकी भक्ति न कर सकेंगे और यही चित्त में आवेगा कि अपना उपास्य उसी को मानें जो सर्वोपरि है। तात्पर्य यह है कि जब हम किसी पुरुष विशेष पर दृष्टि देवें तो शास्त्रों के अनुसार उन उन पुरुषों के ऊपर भी ऐश्वर्यवान् प्रतीत होते हैं क्योंकि जिन लोगों ने अवतार माने हैं उनका यही सिद्धांत है कि नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव ब्रह्म का अवतार नहीं होता तो प्रतिमा कैसे बन सकेगी। रहे तो ब्रह्मादि सर्वतंत्र सिद्धांत से संसारांतर्गत हैं; क्योंकि ब्रह्मा से लेकर स्थावरांत जगत् कहाता है। जब संसार में हैं तो विशेष विभात वाले होकर भी कर्मानुसार

शुभाशुभ कर्म फल के भागी होते हैं। जैसा हमारा राजा विशेष विभूति और ईश्वर है पर भोग उसको प्रतिमा कर्मानुसार मिले हैं तो जिनको ऐश्वर्य मान कर उनकी प्रतिमा बनाना चाहते हैं और वे साक्षात् परमेश्वर नहीं तो उन प्रतिमाओं से परमेश्वर की पूजा क्योंकर कही जावे। यदि अस्मादादि की अपेक्षा विशेष ऐश्वर्यवान् होने से वह ईश्वर माने जावें तो आज कल के राजा लोग क्यों नहीं माने जाते, और राजादि का ईश्वर नाम केवल ऐश्वर्य ही के कारण है किंतु उपास्यदेव की दृष्टि से नहीं है तो जिनका अवतार मानते हैं वे उपास्य प्रकरण में ईश्वर ही नहीं फिर उनकी आकृति (तस्वीरों) के बनाने और पूजने से किस प्रकार अभीष्ट सिद्ध हो सकता है? और अवतार मानने वालों से यह भी निवेदन है कि जब चौबीसअवतार हुये मानते हो तो सब अवतारों की प्रतिमा क्यों नहीं बनाई गई और पांच ही प्रकार की मूर्तियां क्यों बनाईं यदि शूकर देव वा कच्छपादि की मूर्ति बना कर पूजी जातीं तो लोग क्या ही प्रसन्न होते कि बहुत अच्छे अवतार की प्रतिमा है! कदाचित शूकरादि की प्रतिमा इसी लज्जा से पूजा में न ली गई हो। सो यदि लज्जा है तो क्या ऐसे अवतार मानने में लज्जित न होना चाहिये! हां श्रीमान् राजा रामचन्द्रादि की प्रकृति किसी ने प्रचलित की तो बहुत अच्छे विचार से की होगी, किंतु ईश्वर का अवतार समझ कर नहीं की। यदि अवतारोंकी ही प्रतिमा बनानेका कोई नियम किया चाहे तो ठीक नहीं क्योंकि महादेवादि की प्रतिमा बनती है और वे अवतारों में नहीं गिने जाते तो यह कहना भी नहीं बनता कि जिन जिन ने मनुष्यादि योनि में शरीर धारण किया उन्हा की प्रतिमा पूजनार्थ बनाई गई और यह भी विचारणीय है कि कैसे महादेव जो शरीरधारी नहीं थे तो उनके····की प्रतिमा कैसे बनी, यदि साकार मानें तो उनके·····················की प्रतिमा जैसे बन गई वैसे ही विष्णु भी साकार हो सकते हैं और उनकी बिना शरीर धारण किये भी प्रतिमा बन सकती है, फिर शरीर धारण अर्थात् विष्णु का अवतार लेना व्यर्थ है क्योंकि जब पहिले ही साकार थे तो शरीर धारी के तुल्य दैत्य वध आदि काम कर सकते थे।

अब इसके तत्व पर दृष्टि डालिये कि प्रतिमा पूजन की जड़ क्या है तो यह प्रतीत होता है कि प्रतिकृति (तसवीर वा फोटो) के बनानेकी परिपाटी तो सदासे है और होना भी चाहिये क्योंकि इससे अनेक प्रयोजनों की सिद्धि समझी गई है। जब किसी के साथ अधिक प्रीति होती है तो देशान्तरमें होने

के समय वा शरीरांत होने के पश्चात् उसकी प्रतिकृति सामने रहने से उस के गुणों का स्मरण करते हैं और उससे चित्त को संतोष पहुँचता है तथा अनेक भद्र पुरुषों की तस्वीर देख उनके सुन्दर गुण और कर्मों का स्मरण होताहै इससे मनुष्य को गुणवान् होने में सहायता मिलती है और यह भी विचार होता है कि जब ऐसे ऐसे गुणी लोग संसार में न रहे तो क्या हम रह सकते हैं ? हमको भी कभी न कभी यह सब छोड़ना ही है इससे विषयासक्ति कम होती है इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं जिनके लिये तो प्रतिकृति विचार बहुत ही उत्तम है परन्तु मुख्यप्रयोजन जो उससे निकालते हैं उनसे यथावत् काम लेना विद्वानों का काम है। जब समय के हेर फेर से विद्या और शिक्षा प्रणाली आर्यवर्त में घटती गई तो सामर्थ्यहीन होने से उन प्रतिमाओं को ईश्वर की प्रतिमा मानने लगे । क्योंकि जिन दिनों अपने सामने श्रीराम चंद्र जी आदि ऐसे गुणी पराक्रमी कोई नहीं हुए तो उनही को ईश्वर मानने लगे, सो सब अविद्या देवी का प्रताप है क्योंकि जिसने अच्छे विद्वानों की विद्वत्ता को नहीं जाना वह यदि लालबुझक्कड़ को बड़ा पण्डित कहे तो कुछ आश्चर्य की बात नहीं है जैसे आज कल भी बहुत से ग्रामीण मनुष्य रेल के इंजन को काली देवी की सक्षात् मूर्ति मान कर घी गुड़ से पूजते हैं अर्थात् जिसने विद्या. शिक्षा वा सत्संग के यथावत् न होने से परमेश्वर के गुण, कर्म स्वभावों को यथावत् नहीं सुना वह विशेष ऐश्वर्य वाले शरीर धारियों के गुण कर्मों को सुनके उनको ईश्वर माने वा उनकी प्रतिकृति को ईश्वर की प्रतिकृति समझे तोइस में कुछ आश्चर्य नहीं है। इस से यही प्रतीत होता है कि जो जो महात्मा सज्जन धार्मिक विद्वान् पराक्रमी हुए उनकी प्रतिकृति बनी तो देखने आदिके लियेथी, पर अविद्या के प्रताप से उनका अभिप्राय लौट कर कुछ का कुछ हो गया और अब यह भी निश्चय नहीं कि जो जो प्रतिमा प्रचलित हैं वे वे उन उन महात्माओं की आकृति के अनुसार हैं। हमको कदापि प्रतीति नहीं होता कि राजा रामचन्द्र जी वा श्री कृष्णचन्द्र जी की आकृति ऐसी ही हो कि जैसी भयानक प्रतिमा अक्खड़दासी वैरागियों ने त्रिवेणी आदि पर रक्खी हैं। यदि उन महात्माओं की ठीक ठीक प्रतिमा जैसी उनकी आकृति थी मिले और कोई अनेक प्रकारों से निश्चय करा देवे कि अमुक महात्मा ऐसे ही थे तो प्रायः लोग ऐसे प्रतिकृतियों को अपने पास रखने की अवश्य चेष्टा करेंगे और उनकी प्रतिकृतियों को देख देख आर्यों को बड़ा

सन्तोष होगा ? जब लोगों ने मन मनी आकृति बना ली तो प्रतिकृति से जो लाभ होना सम्भव था सो भी कठिन हो गया। और प्रतिमा बनाने का प्रचार प्रथम प्रायः ऐसा है कि शरीर के अन्य अवस्थाओं की प्रतिमा नहीं बनाते अर्थात् कटिभाग से ऊपर की तसवीर प्रायः बनाई जाती है। यदि कोई सर्वाङ्ग भी बनावें तो उसका अभिप्राय भी ऊपर के भाग पर ही अधिक होता है और यही होना भी चाहिये क्योंकि मुख का नाम उत्तमांग है, मुख की पहचान ही मुख्य समझी जाती है यदि किसी का शिर नहो तो केवल मदिरा मे पहिचान होना कठिन है और विषयाशक्ति लोगों की विषयों में रुचि बढ़ाने के लिये उन २ अवयवों की स्पष्ट और शृंगारादि सहित भी शिल्पी लोग प्रतिमा बनाते हैं परन्तु केवल······की कोई तस्वीर नहीं बनता, क्योंकि यह तो मूत्र का मार्ग है उसकी तस्वीरसे क्या प्रयोजन होगा। अब यदि कोई प्रश्न करे कि महादेव जी जिनको योगिराज मानते हैं उनके···की प्रतिमा क्यों बनाई गई ? क्या उनके मुख नहीं था ! जब उनकी जटा जूट में गंगा फिरती रही और उसका पार नहीं मिला तो हजारों कोस बनके समान केश होंगे उसमें शिर भी बड़ा भारी होगा, तीन नेत्र के कहने से भी शिरका होन सिद्ध होता है, कण्ठ में विष पी लिया इससे भी कण्ठ और शिर का होना सिद्ध है तो सब शरीर वा उत्तमांग की तस्वीर क्यों न बनाई गई ? क्या करण जो महादेव जी के·········की तस्वीर बनाई गई ? अवश्य इसमें कोई विशेष कारण है। जिसको अपना पूज्य वा बड़ा मानते हैं उसके पग पूजा करते हैं यही शिष्टों का व्यवहार है। महादेव जी को ऐसा पूज्य मानकर उनके···· की पूजा चलाई गई, इसमें यही कारण प्रतीत होता है कि विषयी लोगों ने वाममार्ग चलाने के लिये यही जड़ रक्खी है। यदि विरक्त से तात्पर्य था तो पद्मासन विभूति रमाये समाधिस्थ महादेव जी की प्रतिमा बनाते जिससे सज्जनों को हर्ष होता।

ऐसे प्रश्न सबके अन्तः करण में नहीं उठते, अनेक लोग तो यह भी नही जानते कि महादेव जी के···की यह आकृति है, किन्तु जो पूजना उनको बताया गया है सो करते जाना उनका काम है इसमें उनका क्या दोष है जो लोग आग्रही वा पक्षपाती हैं उनसे ऐसा प्रश्न किया जाय तो वे नास्तिकादि कह कर गालियां प्रदान के विना अन्य कुछ भी उत्तर नहीं देते।

इस लिये वेदानुकूल माता पिता आचार्य आदि मूर्तिमान देवों का सदा आदर सत्कार करना अभीष्ट है।

अनेक लोग कहते हैं कि वह पाषाणादि मूर्तियों का पूजन मूर्खों के लिये है क्योंकि वे ईश्वर की भक्ति वेद मन्त्रादि द्वारा नहीं कर सकते और जब उनके चित्त में प्रेम बढ़ते बढ़ते ज्ञान हो जायगा तो आप ही उसको छोड़ देंगे। जैसा छोटी २ लड़कियां पहिले गुड़ियों द्वारा खेला करती हैं और जब उनको सच्चे पति का ज्ञान हो जाता है तब वह इस खेल को आपही छोड़ देती हैं, उसी भांति मूर्ख लोग ज्ञान होने पर इसको त्यागन कर देते हैं। यदि ऐसा ही हो तो अभी तक ऐसा देखने में नहीं आया कि किसी मूर्ख मण्डली को पाषाणादि मूर्तियों की पूजा करते २ ईश्वर का ज्ञान हुआ हो और उन्होंने मूर्ति पूजन छोड़ दिया हो। हां यह तो देखने में आया है कि सहस्त्रों मूर्ख जन्म जन्मांतरों तक मूर्ति पूजन कर २ मर जाते हैं परन्तु किसी को ज्ञान नहीं होता। इसका कारण यही है कि वह उन मूर्तियों में स्वयमेव ज्ञान का लेशमात्र भी नहीं होता तो भला फिर सेवकों को कहां आजावेगा? क्योंकि जो पदार्थ जिसके पास होता है अर्थात् चेतन मूर्तियों की यथावत् सेवा करना उससे अवश्य ज्ञान हो सकता है। इसके उपरांत यह भी विचार करना योग्य है कि यदि मूर्खों के लिये पाषाणादि पूजन हो तो किन मूर्खों के लिये? अर्थात् एक तो जन्म से, दूसरे बाल्यावस्थाते सभी मूर्ख होते हैं तथा एक मूर्ख वे हैं कि जिन को बड़ी अवस्था में किसी प्रकार की विद्या वा सत्संग से ज्ञान हुआ। यदि बालकों के लिये है तो उनको सन्ध्योपासना का विधान जैसा ब्रह्मचर्य आश्रम से ही धर्मशास्त्रों में किया गया है वैसा धर्मशास्त्र का उपदेश क्यों नहीं किया गया और उन बालकों को सन्ध्योपासनादि वा विद्याभ्यास से जब ज्ञान हो जाय तो उनके लिये पाषाण पूजन का उपदेश निरर्थक है दूसरे प्रकार के मूर्खों को इस मूर्ति पूजा से ज्ञान होना भी असम्भव है। कदाचित् मान भी लिया जावे कि मूर्खों के लिये है तो फिर विद्वान् लोग क्यों करते हैं? यदि कोई कहे यह सब पूजन शूद्रों के लिये है तो भी उनको कालान्तर में ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती। हां विद्वान् महात्माओं की सेवा उन शूद्रों और मूर्खों से कराई जावे जिस से उन को भी सत्संग रूपी गंध पहुँच कर उनके अन्तःकरण की धीरे २ शुद्धि होने लगे। शूद्रों को तीनों वर्णों की सेवा करना बतलाया गया है, बहुधा जन यह भी कहते हैं कि प्रतिमा में

मन लग जाता है परन्तु उपासना प्रकरण में वेद वा किसी सत्य शास्त्रकार ने प्रतिमा में मन को ठहरा कर उपासना करना नहीं लिखा। फिर किस प्रकार से माना जावे ? देखिये अर्जुन ने श्रीकृष्णचन्द्र जी महाराज से कहा है कि मन बड़ा चंचल है, इस का रोकना अत्यन्त कठिन है, जैसा कि—

चंचलं हि मनः कृष्ण ? प्रमादि बलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्॥

इस पर श्रीकृष्ण जी महाराज ने उत्तर दिया कि सच मुच मन ऐसा ही चंचल है उसका ठहरना बहुत कठिन है, तथापि अभ्यास और वैराग्य से ठहराया जाता है। ऐसा ही योग सूत्र में भी लिखा है।

अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः।

अर्थात् चित्त का निरोध अभ्यास और वैराग्य से करना चाहिये। मन को स्थिर करने के लिये प्रति दिन अभ्यास और जिन वस्तुओं के लिये मन अधिक चलता है उन से वैराग्य करके रोकना चाहिये, क्योंकि जिसकी उपासना करना चाहते हैं उस आत्मा में चित्त को स्थित करने के लिये वार वार यत्न करने को अभ्यास कहते हैं, तथा सांसारिक वा पारमार्थिक सम्बन्धी सुखों के भोग की तृष्णा को छोड़ना वैराग्य कहाता है। और ऐसा ही भगवद्गीता में लिखा है—

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्॥

स्थिरता रहित चंचल मन जिधर को निकले उधर से वार वार रोक कर अन्तःकरण के वशीभूत करे इत्यादि प्रकार से मनके रोकने के अनेक उपाय शास्त्रकारों ने लिखे हैं, पर यह किसी ने नहीं लिखा कि ईश्वरकी प्रतिमा पाषाणादिकी बनाकर उसमें चित्तको ठहरावे। तो किस प्रकार मान लिया जावे कि चित को स्थिर करने के लिये प्रतिमा होनी चाहिये ? और यह बात युक्ति से भी सिद्ध नहीं कि जो विषय भौतिक इन्द्रियों के द्वारा प्रत्यक्ष करें उसी को हम जान सकें। यदि ऐसा हो तो भूख प्यास दुःख हानि लाभ आदि अनेक विषय हैं जिनको हमने कभी इन्द्रियों के द्वारा न प्रत्यक्ष किया और न कर सकेंगे कि भूख इतनी लम्बी चौड़ी मोटी पतली काली पीली आदि है परन्तु अवश्य जानते हैं कि यह भूख प्यास आदि है किन्तु उस निराकार भूख प्यास आदिके जानने के लिये किसी पाषाणादि की प्रतिमा बनाने की आवश्यकता नहीं पड़ती और मूर्ख पंडित सभी उसको जानते हैं

तो निराकार ईश्वर को जानने के लिये पाषाणादि निर्मित प्रतिमा की क्या आवश्यकता ? देखिये श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध उत्तरार्द्ध अ० ८४ श्लोक १३ में लिखा है ।

यस्यात्मबुद्धिःकुणपे त्रिधातुके स्वधीःकलत्रादिषु भौम इज्यधीः ।
यत्तीर्थबुद्धिः सलिलेनकर्हिचित जनेष्वभिज्ञेषुसएवगोखरः ॥

अर्थात् जो धातु आदि में आत्म बुद्धि करते हैं और नदी नाले पहाड़ आदि स्थान में तीव्र बुद्धि और स्त्री पुत्रादि में ममता रखते हैं वे मनुष्यों के बीच में गधे हैं। महाभारत में लिखा है—

तीर्थेषु पशुयज्ञेषु काष्ठपाषाण मृण्मये ।
प्रतिमादौ मनो येषां ते नरा मूढचेतसः ॥

तीर्थ और पशुओं के यज्ञ, काष्ठ, पाषाण मिट्टी की प्रतिमा अर्थात् तसवीरों में जिन का मन हैं वे मनुष्य मूर्ख हैं, और भी कहा है—

मृच्छिलाधातुदार्वादि मूर्त्तावीश्वरबुद्धयः ।
क्लिश्यन्ति तपसा मूढा परां शान्तिं न यान्तिते ॥

जो जीव सर्व व्यापक परमात्मा न्यायकारी की धातु पत्थर, लोहा, पीतल, चांदी, सोना, आदि किसी भांतिकी मूर्ति बनाते हैं वे अज्ञानी हैं। और गीता में लिखा है—

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यंते मामबुद्धयः ।
परं भावं न जानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम् ॥

अविवेकी विचार रहित मुझ निराकारको मूर्तिमान् मानते हैं वह मेरे परमभाव अर्थात् मुख्य प्रयोजन को नहीं जानते । यजुर्वेद अध्याय ३२ मन्त्र ३ में लिखा है—

नतस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः । हिरण्यगर्भ इत्येष मा मा हिंसीदित्येषा यस्मान्नजात इत्येषः ॥

जो परमेश्वर न कभी माता के संयोग से उत्पन्न हुआ न होता है न वह होगा न शरीर धारण करके बालक तरुण और वृद्ध होता है उसकी प्रतिमा अर्थात् पाप का साधन प्रतिबिम्ब और उसके सदृश चित्र किसी प्रकार का नहीं है: क्योंकि वह मूर्तिरहित, अनन्त, सबसे रहित और सब में व्यापक है, जो तेजवाले सूर्यादिकोंकी उत्पत्तिका कारण है उसी की उपासना करने योग्य है अन्य की नहीं । यजुर्वेद अध्याय ३१ मंत्र १८ में यह बात प्रकाशित की है कि पदार्थ को जान के मनुष्य ज्ञानी होता है (वेद कहता

है) कि परमेश्वर को पदार्थ जानके ठीक २ ज्ञानी होता है जो सब से बड़ा सबका प्रकाश करने वाला है, अविद्या अन्धकार और अज्ञानादि दोषों से पृथक् है वही परमेश्वर सबका इष्टदेव है जिसको जाने बिना कोई मनुष्य पूर्ण ज्ञानी नहीं होता उस परमात्मा को जान और प्राप्त होकर निःसंदेह मरणादि क्लेशों के समुद्र से पार होकर परमानन्द अर्थात् मोक्ष प्राप्त होता है। परमात्मा के उपरांत मुक्ति का कोई मार्ग नहीं।

श्वेताश्वेतर उपनिषद् अध्याय ६ अनु० ११ में लिखा है, कि-

एकोदेवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासःसाक्षीचेतः केवलोनिर्गुणश्च॥

ईश्वर एक है यह सबका प्रकाश करने वाला, चेतन स्वरूप, सब जगत् के भूतप्राणियों में व्यापक, अन्तर्यामी कर्मों का अधिपति, स्वामी सबका आधार भूत सबका साखी और सहायता देने वाला है, (परन्तु वह आप किसी की सहायता कभी नहीं लेता) और वह जगके गुणों से रहित (अर्थात् कभी साकार नहीं होता) है। बृहन्नारदीय पुराण अध्याय ११ श्लोक ३३ में लिखा है कि जो आप ही सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म, अजन्मा, परेसे भी अत्यन्त परे प्रभु है उसको मैं किस प्रकार धारण करूं।

इसके उपरांत फिर लिखा है कि परमात्माका जगत् में कोई पति नहीं और न कोई उसको जानता है, वह सबका कारण है और जीवों का वह पति भी है, उसका न कोई उत्पत्तिकर्त्ता और न अधिपति है। केन उपनिषद् में लिखा है कि जो वाणीका साधन नहीं अर्थात् अविद्यायुक्त वाणियों से प्रसिद्ध नहीं हो सकता, जो सबकी वाणियों को जानता है उसी को परमेश्वर जानो और को नहीं।

योगशास्त्र में लिखा है कि ईश्वर अविद्यादि क्लेशों से रहित है, फलदायक कर्मों की वासना से भी पृथक्, सब जीवों से श्रेष्ठ और व्यापक है।

तैत्तिरीय उपनिषद् में लिखा है कि ब्रह्म सत्स्वरूप, ज्ञानस्वरूप, अनन्तस्वरूप है जो वेदके द्वारा योग से प्राप्त होता है।

देवीभागवतस्कन्ध ३ अध्याय ६ श्लोक ७० में लिखा है कि जितने पदार्थ संसार में दृष्टिगोचर होंगे वे सब त्रिगुणयुक्त होंगे क्योंकि निर्गुण तो संसार में न हुआ न होगा, निर्गुण तो वही परमात्मा है जो कभी भी क्षय नहीं होता।

दृश्यं च निर्गुणं लोके न भूतं न भविष्यति।

निर्गुः परमात्माऽसौ न तु दृश्यः कदाचन ॥ ७० ॥

स्कन्ध ३ अ० ७ श्लोक ९ में ब्रह्माजी ने कहा है निर्गुण का रूप नहीं होता, जो कि दृष्टिगोचर होसके क्योंकि जो पदार्थ दीख पड़ता है उस का नाश अवश्य होता है अल्प दृष्टि में नहीं आता !

निर्गुणस्य मुने रूपं भवेद्दृष्टिगोचरम् ।
दृश्यं च नश्वरं यस्माद्रूपं दृश्यते कथम् ॥ ९ ॥

वृहन्नारदीय पुराण अ० ३ श्लोक २३ में लिखा कि जो परब्रह्म है सो तो निर्मल, तेजस्वी, मन वाणी का अगोचर अर्थात् जो कहने समझने में न आवे, ऐसा है ।

पद्मपुराण षष्ठ उत्तरखण्ड में एक वार लक्ष्मीजी ने भगवान से पूछा कि आप किस हेतु दुग्ध के समुद्र में शयन करते और लोकों में उदासीन की नाईं ऐश्वर्यका स्थापित सा करते हो, तब लक्ष्मी का यह अभिमान से भरा हुआ वचन सुन भगवान् विष्णुजी ने कहा कि हे सुन्दर मुखवाली ! मैं सोता नहीं हूँ । अपने महेश्वर शरीरको तत्वके अनुवर्तिनि भीतर डूबी हुई दृष्टि से देखता हूँ । हे देवी ! कुशाग्रबुद्धि से जिससे योगी जन हृदय के भीतर देखते हैं और वेदों के सारकार वारम्वार विचारते हैं । वही अक्षर ज्योति, आत्मरूप, रोगरहित, अखण्ड, आनन्द के समूह को निषमादन करने वाली द्वैत से वर्जित है । जिसके आश्रय संसार की वृत्ति है जो हम भी धारण करते हैं यह संसार का तत्व स्थावर जंगम नीति से रहित है । विष्णुपुराण अंश २ अध्याय १४ श्लोक २९ में लिखा है कि वह एक सर्व व्यापक, समान रूप शुद्ध, निर्गुण प्रकृति से परे जन्म बुद्धि मरणादि से रहित; सब में गत अव्यय आत्मा है ।

एको व्यापीसमः शुद्धो निर्गुणः प्रकृतेः परः ।
जन्मवृद्ध्यादिरहित आत्मा सर्वगतोऽव्ययः ॥ २९ ॥

पद्मपुराण प्रथम सृष्टि खण्ड द्वितीय अध्याय में पुलस्त्यजी ने ब्रह्मा से कहा है कि सब परोंसे परे हैं इस लिये परमात्मा कहाते हैं, वेरूप वर्णादिकों से रहि हैं वा महत्वादि से विवर्जित हैं ।

वृद्धि वा नाशसे भी रहित है इससे उनका अन्त कभी होता ही नहीं वह सत, रज, तम तीनों गुणों से भी रहित हैं वे केवल सदा प्रकाशित रहते हैं । और इसी के तीसरे खण्ड में लिखा है कि वह पद हीन, कर रहित, अकर्ण और मुख वर्जित हैं, परन्तु तीनों लोकों के रहने वालों के

क्षण क्षण के सब कर्मों को देखता रहता है वा लोगों के कहे हुये व अन्तःकरण के सब वचनों को अच्छे प्रकार सुन लेता है, गतिहीन होने पर सब कहीं चला जाता है वा उसका कुछ रूप नहीं वा पदार्थों को अच्छे प्रकार ग्रहण करता है। वह पदहीन है पर अति वेग से दौड़ता है वह सब कहीं दिखलाई देता है और बिना पैरों के सब कहीं पहुंचता है वा जिनको सब देवेन्द्र तथा मुनि लोग भी नहीं देखते परन्तु वह उन सबों को प्रत्यक्ष देखता है, चाहे इसी लोक में रहें वा अन्य लोक में। गीता अ० ९ श्लोक ११ में लिखा है कि मूर्ख लोग परमेश्वर को मनुष्य का शरीर धारण करने वाला और उत्पन्न हुआ जानते हैं परन्तु वह सब का महेश्वर अर्थात् स्वामी है और सर्वव्यापक होने से एक स्थान पर मूर्तिमान नहीं हो सकता बृहन्नारदीय पुराण अध्याय ३३ में लिखा है कि स्वयं प्रकाश नित्य परमात्मा है और हे विप्र! जो अङ्ग रहित है तिसके जन्म कर्म कैसे होसकते हैं, जो केवल ज्ञान ही से जानने योग्य, अजर, अमर, सनातन परब्रह्म, परिपूर्ण सच्चिदानन्द हैं और जिससे परे और कोई नहीं।

सपर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥

उक्त मंत्र में अकाय, अव्रण, अस्नाविर जो ईश्वर के विशेषण दिये हैं इस से स्पष्ट जाना जाता है कि ईश्वर निराकार है, क्योंकि काय नाम शरीर का है जिसके काया शरीर नहीं वह अकाय कहाता है तथा वेदों में और भी बहुत मंत्र हैं जिस में ईश्वर को निराकार कहा है तथा उपनिषदों में भी लिखा है।

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम्॥

अर्थात् वह ईश्वर हाथ पैरों से रहित है, पर वेगवान् और ग्रहण करने वाला है वह नेत्रवान् नहीं पर देखता है, वह कानों रहित है पर सुनता है वह सब को जानता है परन्तु उसका जानने वाला कोई नहीं, उसको अग्र पुरुष पुराण परमात्मा कहते हैं।

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथारसं नित्यमगन्धवच्च यत्।
अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं निचाय्य तं मृत्युमुखात्प्रमुच्यते॥
दिव्यो ह्यमूर्तः पुरुषः स बाह्याभ्यन्तरो ह्यजः।
अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो ह्यक्षरात्परतः परः॥

इत्यादि वाक्यों में जो अशब्द, अस्पर्श, अरूप तथा अनादि, अनन्त

अमूर्ति और नित्य आदि विशेषण ईश्वर के लिये दिये हैं; इस से निश्चय है तथा वेदों में अन्य भी अनेक मंत्र हैं जो ईश्वर को निराकार, प्रतिपादन करते हैं और युक्ति से भी ईश्वर निराकार है, क्योंकि जो पदार्थ साकार है वह एक देश में रह सकता है सर्वव्यापक कभी नहीं हो सकता, ईश्वर सर्व व्यापक है तो फिर वह साकार कैसे हो सकता है? हां अंतर्यामी सर्वोपरि विराजमान सनातन आदि गुण सहित परमेश्वर की उपासना करने को सगुण और 'आकाश' अर्थात् काया से रहित पापाचरण कभी नहीं करता, सुख दुःख कभी नहीं होता इत्यादि गुणों से पृथक् मान कर जो उपासना करते हैं वह निर्गुण उपासना कहलाती है। देखिये य० अ० १० मंत्र २५ में परमात्मा आज्ञा देते हैं कि जो मनुष्य अपने हृदय में ईश्वर की उपासना करते हैं वे सुन्दर जीवनादि के सुखों को भोगते हैं और कोई भी पुरुष ईश्वर के आश्रय के विना पूर्ण बल और पराक्रम को प्राप्त नहीं हो सकता जैसा कि:—

इयदस्यायुरस्यायुर्मयि धेहि युङ्ङसि वर्चोऽसि वर्चो मयि धेह्यूर्गस्यूर्जं मयि धेहि इन्द्रस्य वां वीर्यकृतो बाहू अभ्युपावहरामि॥

और ऐसा ही इसी अ० के २४ वें मं० में भी लिखा है, इस लिये प्यारे सांसारिक भाइयो! आओ हम सब मिल कर उस परमेश्वर को वेद द्वारा जानकर नाना प्रकार से उसकी स्तुति प्रार्थना, उपासना सदा करें और कभी किसी समय में भी उस परम पिता अंतर्यामी को क्षणमात्र के लिये भी त्याग न करें, क्योंकि वही हमारे आत्मिक रोगों का नाश करने वाला डाक्टर है, वही हमारा पालन करने वाला हमें ज्ञान देने वाला और हमको दुःखों से छुड़ा कर सुख प्रदान करने वाला है, उसके उपरान्त कोई दूसरा नहीं।

—०—

* त्यौहार *

इस समय भारतखंड में त्यौहारों की धूम धाम है, कोई महीना ऐसा न होगा कि जिसमें कोई त्यौहार न होता हो, वरन् दो दो, चार चार त्यौहार एक २ महीने में आन पड़ते हैं जिनके नियत करने के कारण भी पृथक् पृथक् हैं, परन्तु अब कुछ के कुछ समझे जाते हैं और प्राचीन समय में इतने त्यौहार न थे। हां जब से भारत में विद्या का प्रकाश कम हुआ और अविद्या ने अपना राज किया, तब से स्वार्थियों ने नाना लीला रच कर

अपने अपने मतलब गांठने के अर्थ अनेकान् त्यौहार नियत कर लिये जिनका ब्यौरेवार वर्णन किया जावे तो एक बड़ी पुस्तक बन जावे इस कारण हम श्रावणी, दशहरा, दिवाली, देवोत्थान्, वसन्त होली जो सबसे प्राचीन त्यौहार हैं उनका संक्षेप से वृत्तान्त और मुख्य प्रयोजन लिखते हैं कि जिस कारण त्यौहार नियत किये गये हैं। और ऐसा गड़बड़ कर लिया है उसका भी सज्जनों के सन्मुख प्रकाश करता हूँ। अब निष्पक्ष हो विचार पूर्वक प्रत्येक त्यौहारके मुख्य कारणको जान यथार्थ व्यवहार करना उचित है और इन सम्पूर्ण व्यवहारों में जो मिथ्या वार्त्ता है उनका त्यागना अभीष्ट है जिससे आपको सुख हो।

❀ ऋषितर्पण वा श्रावणी ❀

अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूज्यानां च व्यतिक्रमः।
त्रीणि तत्र भविष्यन्ति दुर्भिक्षं मरणं व्यथा॥

इस श्लोक के अर्थो से प्रकट होता है कि इस ऋषितर्पण का अशुद्ध नाम 'सलोनो' प्रसिद्ध है, अब हम इसके तात्पर्य को प्रकाश करते हैं कि मुख्य प्रयोजन इसका क्या है और हमको क्या करना चाहिये ? प्यारे सुजनो ! यह बात स्पष्टरूप से प्रकट है कि संसार में विद्वानों और महात्माओं की प्रतिष्ठा करना ही सुख का हेतु और भलाइयों का मूल है और जिस स्थान पर ऐसे गुणी और सत्पुरुषों का अच्छे प्रकार से आदर सत्कार नहीं होता वहीं नाना प्रकार के उपद्रव मचते हैं जैसाकि उपरोक्त श्लोक के अर्थो से प्रकट होता है जहां अपूज्य अर्थात् मूर्खों की पूजा और ज्ञानी महात्माओं का असत्कार होता है वहां तीन बातें होती हैं अकाल, मरी, व्यथा, जो अधर्म के फैलने से प्रकट होती हैं। हमारे प्राचीन सत्य शास्त्रों में भी तीन प्रकार के क्लेश लिखे हैं पहिला 'अध्यात्मिक' जोकि ज्वरादि रोगों से शरीर में पीड़ा होती है। दूसरा 'आधिभौतिक' जो प्राणियों से होता है। तीसरा 'आधिदैविक' जो मन, इंद्रियों के विकार, अशुद्ध और चंचलता से होता है। यदि ध्यान लगा कर देखा जावे तो ये तीनों दुःख विद्वान् और महात्माओं के निरादर करने से ही उत्पन्न होते हैं, क्योंकि अध्यात्मक जो अन्तःकरण के दोषों से होता है और उसकी शुद्धि और अन्तःकरण की शुद्धि सत्योपदेश से होती है, सत्योपदेश विद्वानों का (जो ऋषि मुनि वा देवता के नाम से पुकारे जाते हैं) काम है। इसके उदाहरण उपनिषद् और ब्राह्मण ग्रन्थों में पाए जाते हैं कि मन की शांति के लिए बड़े २ विद्वान् सत्योपदेश सुनने को आत्मविद् ज्ञानियों के निकट जाया करते थे। आधिभौतिक, दुःख रोगों वा

घातक जन्तुओं से होता है जिससे आराम पाना वैद्यक क्रिया के आधीन है जो पूर्ण विद्वानों के सत्संग से जाता है, तीसरा 'आधिवैदिक' जो सर्दी गर्मी वर्षा न्यूनाधिकत्व से होता है, उसका उपाय और दूर होना भी महात्माओं यासद्वैद्यों के हाथ है, क्योंकि यह सज्जन सदा हर एक ऋतु और मौसम के अनुकूल योग्य पदार्थों से हवन यज्ञ करते थे जिसके प्रभाव से शुद्ध और स्वच्छ होकर समय समय पर यथावत् वर्षा होती थी, और कभी मरी, ववा और हैजा का नाम न सुना जाता था। और जो दुःख चोर डाकू और घातक जन्तुओं से होते हैं उनका प्रबन्ध राजऋषि करते थे। इस उपरोक्त व्याख्यान से स्पष्ट प्रगट हो गया है कि सब प्रकार के दुःख विद्वानों और महात्माओं के परिश्रम से दूर हो सकते हैं, परन्तु जहां विद्वानों की प्रतिष्ठा नहीं वहां उनका मिलना दुर्लभ है। ऐसा ही वेदों में भी पाया जाता है जैसाकि यजुर्वेद के प्रपाठक ३९ कांड १९ अनुवाक १ मंत्र १४ में लिखा है—

शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिः सर्वे मे देवा।

अर्थ—सम्पूर्ण देवता (विद्वान्) लोग प्रत्येक प्रकार के दुःख दूर करके शांति करने वाले हों।

इसी प्रकार और भी अथर्ववेद में लिखा है कि जो विद्वानों में श्रेष्ठयज्ञ करने वाले हैं और जो यज्ञमें सत्कार करने योग्य हैं जिनके लिये हव्य अर्थात् उत्तम सामग्री से भाग किए जाते हैं और वह सब विद्वान् (देवता) अपनी स्त्रियों के साथ आकर इस यज्ञ का उत्तम वृद्धि से पूर्ण करते हैं।

ये देवानामृत्विजो ये च यज्ञियायेभ्यो हव्यं क्रियते भागधेयम्।

इमं यज्ञं सह पत्नीभिरेत्यावन्तोदेवा स्तविषा मादयन्ताम्॥

इन मंत्रों से स्पष्ट है कि हमारे सम्पूर्ण कार्य विद्वान् महात्मा और ऋषियों के द्वारा ही हो सकते हैं, यही कारण था कि प्राचीन राजा महाराजा विद्वानों और ज्ञानियों का आदर सत्कार तन मन से करते थे। देखिए महाराजा दशरथ ने श्रीविश्वामित्रजी महाराज (जो वनके रहने वाले एक ऋषि थे) जब महाराजा के निकट आये तब उन्होंने उन का यहां तक मान और सत्कार किया कि अपने प्यारे कुलभूषण श्रीरामचन्द्रजी को यज्ञ की रक्षा और उनकी सेवा सहायता के अर्थ साथ कर दिया। इसी प्रकार राजा और प्रजा अपनी शक्ति के अनुकूल इन सत्यपुरुषों की सहायता और सेवा करते रहते थे परन्तु वर्षा के इन चार महीनों में विशेषकर सेवा और सत्कार का अधिक प्रचार था, क्योंकि इन्हीं दिनों में वर्षा की अधिकता के कारण

व्यापार कम होता था व्यापारी जन अपने घरों पर निवास करते थे और ऋषि महात्मा विद्वान् लोग जंगल पहाड़ों से आकर नगरों या उनके समीप में निवास करते थे। इसलिए यह समय सत्संग के लिए अत्यंत उचित और योग्य था। घर से मनुष्य उनके पास जाकर उनके सत्संग से नाना लाभ उठाते थे। अषाढ़ और सावन दो महीने के सत्संग से गृहस्थ और राजपुरुष लोग विचारते थे कि अमुक ऋषि वा महात्मा इस सत्कार वा सम्मान के योग्य हैं, वैसा ही पूर्णमासी के दिन जो श्रावण महीने का अन्तिम दिवस है, प्रत्येक ऋषि महात्मा विद्वान् के साथ यथा योग्य वित्त समान दान देते थे, और जो मनुष्य यज्ञोपवीत से भ्रष्ट होते थे उनको यज्ञोपवीत दिए जाते थे और जो कुसंग के कारण पतित हो जाते थे उनको भी इस समय पर शुद्धि किया जाता था वह सम्पूर्ण महात्मा इन गृहस्थी और राज पुरुषों से सन्मान पाकर धर्मोपदेश किया करते थे और राजा प्रजा को हवन यज्ञ की ओर रुचि दिलाते और अपने हाथों से भी करते कराते थे। यज्ञ के लाभ अनेक हैं जिनका वर्णन पञ्चयज्ञों में किया गया है।

इन ऋतुमें अधिक यज्ञ करने की प्रेरणा इस कारण है कि इन दिनों में स्थान २ पर पानी रुककर वायुको बिगाड़ देताहै कि जिससे नाना रोगों के पैदा होने का भय रहता है, इस कारण प्राचीन समय के ऋषि मुनियों ने इन सब बुराइयों के मेटने का उपाय एक यज्ञ करना ही विचारा था और वह आप इन परोपकारी यज्ञों में वेद मन्त्रों का उच्चारण करतेथे जिन में यज्ञ की रीति और फल, ईश्वर की उपासना और प्रार्थना होती है, करते कराते थे। कैसा शुभ समय वह होता होगा क्योंकि प्रथम तो वर्षाऋतु के कारण हरे २ पोदों की हरियाली आंखों को आनन्द देती होगी, दूसरे 'यज्ञ' के होने से उसकी सुगन्धों की लपटें सब स्थानों और शरीर को सुगंधित कर देती होगी, तीसरे ऋषि और महात्माओं के सत्योपदेश से अंतःकरण के मल दूर होते होंगे, तदनन्तर वह सर्वजन उन सत्पुरुषों और ऋषि मुनि महात्माओं का आदर सत्कार कर विदा करते थे उसी समय वे महात्मा जन उनको आशीर्वाद देते थे जिसको ऋषितर्पण कहते हैं। आर्यों में जो देवयज्ञ करने की शिक्षा है वे विशेष कर उन्हीं महीनों में पूर्ण होते थे, राखी व कलावा हाथ में बांधने की रीति जो अब तक प्रचलित है यह चिन्ह था। जो मनुष्य इन दिनों में महात्माओं के सत्संग और उपदेश से लाभ उठाते, उनके हाथमें यह शुभ चिन्ह बांधा जाता था।

❀ दशहार ❀

यह हमारे देश का प्रसिद्ध त्यौहार है जो धर्मात्मा परोपकारी श्रीरामचन्द्र के स्मरण का दिन है कि जिनके नाम का स्मरण प्रत्येक की जिह्वा पर है। जिनको मरे हुए लाखों वर्ष हो गये परन्तु उनके गुणों की प्रशंसा प्रत्येकजन करता है। यह महात्मा उस समय के मनुष्यों में सर्वोपरि थे जिनके समान इस समय पृथ्वी पर श्रीकृष्ण महाराज के सिवाय और कोई नहीं हुआ। देखिए श्रीराम ने पिता की आज्ञासे राज्य के सुखों को त्याग कर चौदह वर्ष वन में रहना स्वीकृत किया और वहां सेना के न होने पर भी बनवासियों के दुःख को दूर किया। चौदह वर्षकी आयु में विश्वामित्र ऋषि की सेवा टहल कर अनेक दुष्टों को मारा और सदा सत्य को ही सम्पूर्ण कार्यों में प्रधान समझ कर उसका कभी त्याग न किया। इसी कारण सम्पूर्ण प्रजाजन उनको अधिक चाहते थे। आपही ने राजा जनक का प्रणपूरा कर जानकी के साथ विवाह किया था, यह आपही की सामर्थ्य थी कि उनके बीच में होने पर भी दुष्ट राक्षसों को मार कर बनवासियों को आराम दिया। क्या कोई नहीं जानता कि इन्हीं प्रतापी महात्मा ने लङ्का के राजा रावण को मारा था। वह राजा भी महाबली और बलवान् था। जिस दिन इस दुष्ट को मारा वह दिन कुआर सुदी १० मी जिसको विजयदशमी कहते हैं जो श्री महाराज के स्मरणार्थ आज दिन तक उसी दिन पर त्यौहार मनाया जाता है। दूसरे वर्षा के दिनों में सम्पूर्ण असबाब राजाओं का पड़ा रहता है, क्योंकि वर्षा के दिनोंमें चढ़ाई आदि बहुत कम होती हैं और हथियारों पर भी मैल जम जाता है, इस लिये वर्षा के अंत में एक दिन नियत किया गया कि उस तारीख को सम्पूर्ण माल असबाब ठीक हो जावे और बड़ी धूमधाम की जावे और वर्ष भरका हिसाब किया जावे इत्यादि बातों के लिये यह त्यौहार किया जाता है।

परन्तु कैसे शोक का स्थान है कि वर्त्तमान समय में मुख्य अभिप्राय को छोड़ कर ऐसा आश्चर्ययुक्त रंगाचार है जो बुद्धिके अत्यंत विरुद्ध है क्योंकि ऐसे सच्चे परोपकारी धर्मात्मा के स्थान पर ऐसे २ मूर्ख लड़कों के स्वांग बनाकर दिखलाते हैं जिनको किसी प्रकार का ज्ञान नहीं तिसपर उनके चाल चलन ऐसे खराब होते हैं कि जिनकेकथन मात्रसे लाज आती है जो लुच्चों की गोदमें सोते हैं उन्हीं का नाम राम लक्ष्मण आदि होता है? तिस पर दूसरे की नक़ल बनाना बहुत बुरा है जैसा मनुजीने लिखा है—

दशसूनासमश्चक्रं दश चक्रसमो ध्वजः ।
दशध्वजसमा वेशो दशवेशसमो नृपः ॥

अर्थात् किसी की नक़ल बनाने में मनुजी ने १००० गोहत्याका पाप लिखा है, भांट भड़ैले बहुरूपिये आदि तो इस पापकर्मसे सदा अपना जीवन ही व्यतीत करते हैं परन्तु स्वांग रामलीला तथा कृष्णलीला बनाने वाले अपना धन व्यय करके नक़ल बना कर इस पाप में क्यों पड़ते हैं।

❀ दिवाली ❀

इसके विषय में पुराणों के वचन सुनाते हैं देखिये कार्तिक महात्ममें शिक्षा है कि प्राचीन समय में एक ब्राह्मण था जो धन की लालसा में विष्णु महाराज जी की सेवा करने लगा, थोड़े दिनों में जब विष्णुमहाराज उसके तप से प्रसन्न हुए तो उसके निकट पहुँचे और पूछा कि तुम क्या चाहते हो ? उसने धन (लक्ष्मी) के मिलने की प्रार्थना की उन्हों ने कहा कि तुम अपने स्थान पर जाकर राजा से यह मांगो कि मिती कार्तिक वदी अमावस की रात्रि को कोई नगर में दिया न जलाने पावे जब यह प्रार्थना अंगीकार हो जावे तो तू अपने घर में अच्छे प्रकार से दियों को जलाना उस दिन लक्ष्मी उस नगर में आवेगी और सब नगर में अंधेरा होने के कारण घबड़ा कर तेरे घर में घुस पड़ेगी । इस वरदान को पाकर घर आ विष्णु की आज्ञानुसार उसने राजा से प्रार्थना की जो तुरन्त स्वीकार हुई । तब उस ब्राह्मण ने वैसा ही किया जब आधी रात का समय हुआ और लक्ष्मी जो आई तो चारों ओर नगर भर में अंधेरा फैला हुआ देख कर उसी ब्राह्मण के घर में (कि जो नाना भांति से सजा हुआ प्रकाशित होरहा था) घुस गई तब ब्राह्मण डण्डा लेकर पीछे पड़ा कि तू मेरे घर से निकल तू बड़ी चंचल विष्णु की स्त्री है, तू कहीं नहीं ठहरती मेरे घर में भी नहीं ठहरेगी, इसलिये मैं तेरी अपने घर में रक्षा न करूंगा, लक्ष्मी ने अत्यंत विनती की और प्रण किया कि मैं तेरे घर से कभी न जाऊंगी वह ब्राह्मण लक्ष्मी के कारण धनाढ्य होगया; लोगोंने उसे धनवान् देखकर लक्ष्मी की चाहना में उसी अनुसार उस दिन सब घरों को स्वच्छ और सुथरा कर दीपमालिका की । उसी दिन से यह रीति चली आती है जिससे इसी के कार्यकर्त्ता धन दौलत से भरे पुरे रहते हैं ।

अब इस उपरोक्त लेख पर दृष्टि डालने से प्रत्यक्ष प्रकट होता है कि ब्राह्मण ने दुःखी होकर धन (दौलत) की प्रार्थना की थी न कि विष्णु

महाराज की स्त्री की फिर श्री विष्णु जी ने लक्ष्मी प्राप्ति का यह अनोखा उपाय ब्राह्मण को क्यों बतलाया ? ऐसे विष्णु को आप क्या कहेंगे कि जिसने अपनी स्त्री के मिलने का उपाय दूसरे को बतलाया और आपने सदा के लिये अपनी स्त्री की पृथक्ता स्वीकार की । यदि उस शहर वा नगर में राजा के हुक्म से अंधेरा था तो और आस आप के नगर गांव में तो प्रकाश था वहां क्यों न चली गई । जिस पर भी उस ब्राह्मण के कटु वचन सुन कर उसके गृह में सदा के लिये रहना स्वीकार किया पर यही नहीं लिखा कि वह क्यों कर लक्ष्मी की बदौलत धनवान् होगया क्योंकि वह अपने साथ कुछ लाई न थी उपाय क्या किया कि जिससे वह ब्राह्मण द्रव्यवान् हो गया ?

अब देखिये इसके विरुद्ध शिवपुराण में दिवाली के विषय में इस प्रकार लिखा है-

श्रीकृष्ण महाराज ने युधिष्ठिर से कहा कि हे राजन ! प्राचीन समय में विष्णु महाराज ने वामन अवतार राजा बलि के फुसलाने के अर्थ लिया और इन्द्र को राज्य दिलाकर बलि को पाताल में नियत किया और केवल एक दिन इस पृथ्वी पर राजा बलि को राज्य के अर्थ नियत किया इसलिये कार्तिक बदी आमावस को पृथ्वी पर दैत्यों का राज्य होता है और वह अपने स्वभाव के अनुकूल कार्य करते हैं, इसीसे उस दिन जुआ खेलने की आज्ञा है ।

प्यारे सुजनो ! अब विचारिये कि 'दिवाली' जिसके अर्थ दो । वह भी एक दूसरे के विरुद्ध, तो बताइये किसको सच कहैं और किसीको झूठ यदि उस दिन दैत्यों का राज्य मानते हो तो दैत्यों के कार्य में शामिल होना और त्योहार मान कर खुशी करना वृथा और अनुचित है ।

अब हम आपको ठीक २ वृत्तान्त इस त्योहार का सुनाते हैं उसको विचारिये और सच को मानिये ।

यह त्यौहार वर्षा के समाप्त होने पर होता है । अत्यन्त वर्षा होने के कारण सम्पूर्ण मकानों की शकल सूरत बुरी और भोंडी हो जाती है । हमारे बड़े २ ऋषि, महात्मा, जो पदार्थ विद्या को यथावत् जानते थे और शौच को धर्म का एक लक्षण मानते थे, वह एक दिन इसी लिये नियत किया था, उसी दिन तक प्रजा के सब मकानों की सफाई ठीक २ हो जावे कि जिससे उनकी सुन्दरता में अन्तर न हो जावे और वायु अशुद्ध न होने

पाये, इस कारण इस कार्य को आवश्यक समझ कर इस दिन त्योहार मान लिया कि जिससे सम्पूर्ण स्थानों में यह कार्य हो जावे।

अब रहा दीपमालिका का होना, यह भी प्रयोजन से पृथक् नहीं है क्योंकि बुद्धि से ऐसा जाना जाता है कि श्री रामचन्द्र जी विजयादशमी को रावण को मार कर कार्तिक बदी अमावस्या को अयोध्या में पधारे थे। क्योंकि राजा रामचन्द्र जी महाराज चौदह वर्ष पश्चात् वन से आये थे जो प्रजा के अत्यंत प्यारे थे, इस लिए प्रजा ने अपनी प्रसन्नता को प्रकट करने के लिए 'दीपमालिका' नवीन अन्न इत्यादि का हवन और परमेश्वर का धन्यवाद देकर प्रसन्नता मनाई थी। यह यादगार अब तक चली आती है और ऐसे ही चली जायगी।

देवोत्थान् अर्थात् ड्योठान।

यह त्योहार मिती कार्तिक सुदी ११ को होता है। पूर्वकाल में ऋषि मुनि, देवता विद्वान् महात्मा जोकि वर्षा ऋतु में शहरों में आ जाते थे इस तिथि से फिर अपना दौरा आरम्भ करते थे इस समय तक ज्वार, बाजरा आदि अन्न और गन्ना भी तय्यार हो जाता था। इसलिए इसदिन सम्पूर्ण जन हवन करके अनेक प्रकार के पदार्थ विद्वानों को अर्पण करके प्रार्थना करते थे कि हे विद्वानों! आप संसार के भिन्न २ भागों में जाकर अपने सदुपदेश से मनुष्यों को धर्मात्मा बनाइए। बहुधा मनुष्य ऋतु की नई २ वस्तुयें भी इसकारण इस तिथि तक नहीं खाते थे क्योंकि वे अपक्क रहती हैं, इसलिए आज हवन करके विद्वानों को खिला कर गन्ना आदि खाते थे। वर्त्तमान समय में भी स्त्रियां एक पत्ते के नीचे दिये और ऋतु पदार्थ रख कर सम्पूर्ण गृह के स्त्री पुरुष कहते हैं कि 'उठो देव बैठो देव' पामरिया चटिकावो देव, आदि। इन से भी वही अभिप्राय पाया जाता है, जो ऊपर वर्णन हुआ है। इससे ज्ञात होता है कि मनुष्य मात्र मुख्य अभिप्राय को भूल गये, मगर लीक पीटते चले जाते हैं।

हिमेष्टि अर्थात् बसन्त।

यह त्योहार मिती माघ सुदी ९ को होता है, क्योंकि इस ऋतु में नई नई कोपलें और हरे पत्ते दरख्तों से निकलते हैं, पुष्प भी खिलते हैं और वसंत ऋतु आरम्भ हो जाती है फसल रबी भी फूलने लगती है जिससे प्रजा का पालन होता है इसलिए सब मनुष्य मिलकर यज्ञ करके परमात्मा से

धन्यवाद पूर्वक प्रार्थना, करते थे कि यह फसल अच्छे प्रकार से निर्विघ्न समाप्त हो, परंतु अब तो केवल गेहूँ, जौ की बाल और सरसों, राई और आम के फूलों को ब्राह्मण लोग लाकर धनिक लोगों को प्रसन्न करने के अर्थ देकर कुछ प्राप्त करते हैं।

होली।

यह त्यौहार फसल रबी का उत्सव है, इस बसन्त ऋतु में वह अन्न फल फूल पैदा होते हैं कि जिन से मनुष्यों का जीवन आधार है। होली पर सब अन्न आधे पक जाते हैं इसलिए इस त्यौहार का नाम होलिका रक्खा है। क्योंकि संस्कृत में अर्द्धपक्वमन्नम् होलिका, अर्थात् आधे पके अन्न को होलिका कहते हैं। यह बात प्रत्यक्ष प्रकट है कि चनों के बूट जो बहुधा गांव के लोग भून लेते हैं उनको होले कहते हैं, जो कुछ पक्के और कच्चे होते हैं इससे जाना जाता है कि होलिका अर्थात् आधे पके नाज का पूजन इसके सिवाय और कुछ नहीं हो सकता कि उसको आग में भूना व पकाया जाय क्योंकि पूजा शब्द का यही अर्थ है कि जो पदार्थ जैसा है उसके साथ उसी प्रकार का वर्ताव किया जावे। इसलिए होली का जलाना अर्थात् नाज का भूनना उसकी पूजा है परन्तु बड़े शोक की बात है कि जिसको हम देवी जान त्यौहार मनावें फिर उसी को जला कर राख की ढेरी बना प्रसन्न हों।

हमारे देश में होलीके विषय में यह बात प्रसिद्ध है कि प्रह्लाद परमेश्वर का बड़ा भक्त था, उसका बाप हिरण्यकशिपु नास्तिक था और प्रह्लाद को ईश्वराराधन करने को मना करता था, परन्तु वह इसको नहीं मानता था इससे उसको नाना भांति से कष्ट देता था। यहां तक कि उसको आग में डाल दिया। यह भी प्रसिद्ध है कि हिरण्यकशिपु की बहिन कि जिसको यह आशीर्वाद था कि वह आग में न जलेगी, उसके साथ बिठाई गई, परन्तु वह तो जल गई और प्रह्लाद को परमेश्वर की कृपा से आंच भी न आई। इस पर जो हरिभक्ति थे उन्होंने अधिक प्रसन्नता की और कहा कि प्रह्लाद तू बच गया और वह (होली) जल गई। निदान यह वही होली है, इसी कारण इसका यही नाम पड़ गया।

प्यारे सुजनो! यह बात मिथ्या है क्योंकि आग में डालने से कोई बच नहीं सकता चाहे कैसा ही भक्त हो यह कभी हो नहीं सकता कि दो मनुष्य आग में बैठें एक उन में से मर जाय और दूसरे को कुछ आंच न आये। यदि परमेश्वर अपने भक्त को भक्ति करने के कारण जलने न दे तो

वह न्यायकारी नहीं रहता अर्थात् जो नियम और सृष्टिक्रम रचा है वह जाता रहे, सो यह असम्भव है। इसलिए परमेश्वर के प्रतिकूल कोई कार्य नहीं हो सकता यदि ऐसा ही मान लिया जावे तो हरिभक्त के बचने की प्रसन्नता में जो आनंद मनाया जावे उसमें शराब, भंगपीना, माजून नशे खाना, खाक उड़ाना, कीच फेंकना आदि मिथ्या प्रपञ्च क्यों रचे जायं? ऐसे समयों पर तो परमेश्वर के गुणानुवाद गाना और हवन आदि यज्ञ करके जगदीश्वर का धन्यवाद गाना चाहिए कि जिसने ऐसी कृपा की थी। भला बताओ तो सही यह कौन सी नीति और धर्म की बात है कि परमेश्वर तो ऐसी असीम कृपा करें और हम तुम उसके पलटे में और अशुभ कार्य करें। इसके उपरांत इसी त्यौहार के साथ एक त्यौहार धुरहड़ी का भी है। यदि होली की व्युत्पत्ति यही मानी जाय तो धुरहड़ी का कारण क्या है? इसका सबब यों वर्णन करते हैं कि धुरहड़ी के दिन जो राख उड़ाई जाती है यह उसी आग की राख का चिन्ह है। परन्तु हम नहीं जानते कि इससे क्या उत्तम बात प्राप्त होती है। यदि राख उड़ाते तो राक्षस उड़ाते कि जिनके अफसर की बेटी आगमें जल गई थी। हरिभक्तों को खाक उड़ाने से क्या प्रयोजन? इसके सिवाय प्रह्लाद रात्रि के समय आग में डाला गया था, चुनांचे होली भी रात को ही फूंकी जाती है, इससे प्रकट है कि होली फूंकने की रात्रि से पहिले दिन खुशी करने का समय नहीं है, वरन् उस दिन रञ्ज करने का समय है, क्योंकि उस दिन प्रह्लाद के जल जाने का संदेह था, फिर इसका क्या कारण है कि रञ्जके दिनखुशी मनावें और उसके अगले दिन खाक उड़ावें? योग्य तो यह था कि धुरहड़ी के दिन खुशी मनाई जाती और होली के दिन रञ्ज किया जाता। इस को भी जाने दीजिये अब ज़रा विचार कीजिये कि जिस आग को जलाकर हम और आप पूजते हैं, यह सचमुच राक्षसों की चिता है मानों आप होली की पूजा नहीं करते वरन् राक्षसों की कबर अर्थात् चिता को पूजते हो। इसी प्रकार की और भी सहस्रों शंकायें उत्पन्न होती हैं कि जिनका उत्तर कुछ नहीं, इससे प्रत्यक्ष प्रकट है कि होली और धुरहड़ी की व्युत्पत्ति महामिथ्या है। और होली का मुख्य वही प्रयोजन है जो हमने ऊपर वर्णन किया और धुरहड़ी की व्युत्पत्ति यह है कि त्यौहार चैत बदी अमावस को होता था जैसाकि वर्तमान समय में दक्षिण में अब भी होता है और उसके अगले दिन चैत सुदी प्रतिपदा को महाराज विक्रमादित्य के गद्दी पर बैठने का दिन है। पस श्री महाराज के गद्दी पर विराजमान होने के

पीछे होली के बाद यह दूसरा त्यौहार बढ़ाया गया।

इन सबके सिवाय अबीर, गुलाल उड़ाने, रंगपोशी करने की जो रीति प्रचलित है यदि पौराणिकों से उसका कारण पूंछा जावे तो वे कुछ नहीं बताते सिवाय इसके कि कृष्णचन्द्र महाराज ने गोपियों के साथ रंग खेला है कि जिसका किसी पुस्तक में प्रमाण नहीं। इससे यह कहना मिथ्या जान पड़ता है बुद्धि से विचार करने से जाना जाता है कि यह केसर कस्तूरी आदि सुगन्धित वस्तुयें हवन यज्ञ करते समय गुलाब आदि में पीस कर केवड़ा गुलाब की भांति गुलाबपाश में भर कर जैसा कि विवाह आदि में छिड़के जाते हैं छिड़के जाते होंगे।

* ज्योतिष *

प्रकट होकि ज्योतिषशास्त्र का नाम लेकर वर्तमानसमयमें नाममात्रके पण्डित लोग जातकर्म, नामकरण, विवाह और नक्षत्रादि में ग्रहों की दूकान खोल नाना भांति से धन हरण करते हैं। यह केवल हमारे आपके संस्कृत विद्या के न जानने ही का कारण है, प्यारे भाइयों ज्योतिषशास्त्र छः शास्त्रों में से एक शास्त्र है उसमें गणित मुख्य है, शेष फलित अनुमान मात्र है। परन्तु आजकल इस फलित के द्वारा लाखों के धन हरण करते चले जाते हैंजिसके मुहूर्त चिन्तामणि, लघुजातक, नीलकण्ठी, जातकाभरण आदि नवीन ग्रन्थ बनते चले जाते हैं। शोक तो हमको अपने देशीय भाइयों पर है जो यह भी विचार नहीं करते कि भूत, भविष्य, वर्तमान इन तीनों कालों का जानने वाला सिवाय उस परमात्मा सर्वव्यापक के कोई नहीं हो सकता फिर भाषा के जानने वाले पत्रापांडे कैसे जान लेते हैं जैसा कि उत्पन्न होने के समय और अन्य अन्य समयों पर जन्म पत्री बनाकर सुनाते हैं कि इस लड़के को चौथे आठवें महीने बड़ी कठिनता से व्यतीत होंगे इसके यह नवसाल के लिये उत्तम हैं, परन्तु माता के लिये उत्तम नहीं हैं धन स्थान में इसके ऐसा ग्रहपड़ा है जो बाप के धनको भी सोख लेगा, मृत्यु स्थान में सौम्य ग्रह बैठा है इस लिए इसके जीवन में खटका है इत्यादि बातें महामिथ्या हैं कि जिनके सुनने से हानि के अतिरिक्त और कुछ भी लाभ नहीं होता। हां जन्मपत्री अवश्य बनानी चाहिये, क्योंकि सर्कार दर्बार विवाह आदि में अवस्था तिथि आदि की आवश्यकता पड़ती है, इसमें वार, तिथि मास संवत् बाप दादे का नाम ही लिखना योग्य है।

इसलिये हमारे पुरुषों ने इसको बनवाया। इसके उपरांत जो ग्रह इत्यादि लिखे जातेहैं यह सब अनुमान मात्र हैं जिनसे हानि के अतिरिक्त कोई लाभ नहीं जान पड़ता। प्यारो! ज्यों २ इन जन्मपत्रियों की दक्षिणाअधिक मिलती गई त्यों त्यों इसकी भी दशा पलटती गई अर्थात् वहुत वड़ी नाना प्रचार के रंगों और चित्रों समेत बनने लगी जिसमें अष्ठोत्तरी विंशोत्तरी जंमकुंडली, चंद्रकुंडली आदि नवग्रहों, तिथि, वार लग्न इत्यादि के भाव लम्बे चौड़े लिख कर यजमान को देते हैं। बीमारी के समय तो वह अच्छे प्रकार हाथ मारते हैं अर्थात् पत्रा और जन्मपत्री को खोल कुंभ, मीन मेष कहमुंह बिगाड़ अपने चेलों से यों कहते हैं कि सूर्य और चंद्र अरिष्ट पड़े हैं और इस वर्ष जंमलग्न भी एक ही है। इतनी बात के सुनते ही यजमान के मुखड़े का प्रकाश फीका हो जाता है और गिड़गिड़ाय पंडित जी के पैरों पर गिर कर कहते हैं कि गुरु जी! अब आप हमारे ऊपर कृपा कीजये और इससे छूटने का कोई उपाय बतलाइये। सचतो यह है कि हमारे सीधे भोले भाले भाई उन पण्डितों को परमेश्वर ही मानते हैं और पण्डित जी भी परमेश्वर का भय न कर परमेश्वरीय नियमों को तोड़ कर यजमान से कहते हैं कि दिस लक्ष दुर्गा जी का पाठ और सूर्य चन्द्र इत्यादि का दान करा दो तो कष्ट दूर हो जावे गा और यदि वहुत वड़े साहूकार हुये तो उनको गोसठ तुलसी सालिग्राम का विवाह, ब्रह्मभोज महामृत्युञ्जय आदि का जप बता कर हजारों रुपये चट कर जाते हैं। हमारे प्यारे भाई बहनें पण्डित जी के भरोसे पर रहते हैं यहां तक कि जप होतेर दम निकल जाता है और मुख्य उपाय अर्थात् चिकित्सा कराने से बेसुध रहते हैं या उधर पूरा ध्यान नहीं देते और कोई पण्डित जी से कहता है कि यह जप आपने कैसा किया? तब अति क्रोधित होकर कहते हैं कि 'कर्मगति कौन जाने' हम क्या परमेश्वर से बड़े हैं जो मृत्यु से बचा सकें उसकी मृत्यु बदी थी।

पस सोचने का स्थान है, जब उनके कहने के अनुसार मारने वाले को कोई नहीं बचा सकता फिर ग्रह के नाम पर दान और उनके जप से क्या लाभ? क्योंकि जिसका जीवन होगा वह अवश्य ही बच जावेगा, इस लिये बीमारी के समय औषधि करना योग्य है और यथा योग्य रीति पर दान करना उत्तम है न कि धोखे की टट्टी में शिकार मारना।

इसके उपरान्त जब यह पत्रापांडे आप वा उनके घरों में कोई बीमारी होती है तब वह क्यों वैद्य की चिकित्सा कराते हैं? यह आप उस समय जप

और ग्रहों के दान कराकर क्यों नहीं बीमारी को दूर करा देते ? यह प्रत्यक्ष प्रकट है कुछ कहने की बात नहीं क्योंकि हमारे भाई प्रतिदिन देखते हैं कि पण्डित साहब शीशी लिये वैद्यों और डाक्टरों के यहां मारे २ फिरते हैं बड़े शोक का स्थान है कि यह ज्योतिषी हमको तो जप और ग्रहों के दान में फंसाकर सत्यानाश कर देवें और आप अपनी और अपने बच्चों की औषधि कर २ जान बचा लेवें। हाय! क्या ही अचम्भे की बात है कि अपने घर के तरुण बच्चे को तो मर जाने दें और हमारे घर के लोगों को जप ग्रहदान से बचाने का उपाय रचें हाय मूर्खता तेरा मुंह काला हो!

इसी प्रकार जब कोई मुकद्दमा होता है तो एक पण्डित मुद्दई और दूसरा मुद्दालेह को जाकर घेरता है और दो चार बातें इधर से कह सुन कर मुकद्दमे की चर्चा छेड़ते हैं और उपदेश देते हैं यदि आप शिवजी इत्यादि किसी देवता का जप करादेवें तो आपकी जय हो जायगी और हमारी आपकी एक बात है जो कुछ आप देदेंगे वह हम लेलेंगे, क्योंकि आप हमारे यजमान हैं। इसमें बड़ी बड़ी मिहनत करनी पड़ेगी, रात्रि में जप जङ्गल में जा करना होगा, जिसकी दक्षिणा इतनी है परन्तु आपके मन में आवे सो दे देना क्योंकि आपके घरसे हमको प्रतिवर्ष मिलता ही रहता है लेकिन दस रुपये की सामग्री आप आजही घर पर भेज दें और दो पण्डितों के भोजनों का आप प्रबंध करादें। अब विचार करने का स्थान है कि दोनोंमें एक की जीत तो अवश्य ही होगी। पण्डित जी के ठहराये हुए रुपये चित्त हो गए और उसके घर तथा मित्रों में ज्योतिष की प्रतिष्ठा सदा के लिए होगई। प्यारे भाइयो! मुकद्दमे का मंत्र कानून सरकारी सुबूत आदि है नकि ग्रहों का जप और दान यदि आपको ग्रहोंपर ही ऐसा विश्वास है तो वकील आदिकी सम्मत्यनुसार सुबूत आदि न दीजिए फिर हम देखें कि ज्योतिषी जी का जप किस प्रकार डिगरी करता है, और जब आप दोनों बातें करते हो मानो डिगरी हो भी गई तो आपको यह कैसे ज्ञात हुआ कि आपकी जीत ग्रहों के दान से हुई या सुबूत आदि से?

इसके उपरांत ज्योतिषियों पर भी डिगरी होती है क्यों जप से डिसमिस नहीं करा देते। हाय अंधेर! यही हाल प्रश्नों का है क्योंकि हमने और हमारे मित्रोंने बहुधा निश्चय किया तो प्रश्नका उत्तर कभी ठीक नहीं आया। हां वह प्रश्न कुछ २ ठीक होते हैं कि जिनके वृत्तान्त से वह कुछ जानकर होते हैं, बहुधा देखा गया है कि जब बाहर के पण्डित किसी नं-

गर में आते हैं तब वहां के पण्डित जन उनसे मिल कर अनेक वृत्तांत सेठ, साहूकार, नौकरों चाकरों को बता देते हैं, वेही पण्डित नगर में उनकी ज्योतिष की प्रशंसा अपने यजमानों से करते हैं और उनको लेजाकर उन को मान कराते हैं और भेद दिखलाते हैं और प्राप्ति में उनका चौथायाई ठहरा लेते हैं। अनेकों को पण्डितजी जपके बहानेसे अपने पास लगा लेते हैं और यजमानों से मुद्रा दिलाते हैं और हमारे ज्योतिषी पण्डित प्रकट लक्षणों को देख कर जन्मपत्री का फल वर्णन करते हैं, जैसा कि किसी को दुबला पतला देख कर कहेंगे कि तुमको कोई धातु की बीमारी है। दूसरे यह बातें जो प्रत्येक को अच्छी जान पड़ती हैं जैसे कि तुम जिस किसी के साथ भलाई करते हो वह तुम्हारे साथ बुराई करता है तुम्हारी भलाई वृथा जाती है, जितना रुपया पैदा करते हो तुम्हारे हाथ में नहीं ठहरता, तुम्हारा मन किसी से लगा है वह किसी उपाय से मिल सकता है, इस पर तुर्रा यह कि वहां नगर के चार पण्डित भी होते ही हैं जो ज्योतिषीजी के मुंहसे यह निकलते ही रजिस्टरी करा देते हैं चाहे यजमान के जी में कुछ ही हो, यथार्थ में हमारे ज्योतिषी जी का कहना बहुत ही ठीक है क्योंकि वह समयकी दशा देख कर धातुकी बीमारी बतलाते हैं जो प्रत्यक्ष प्रकट है कि वर्तमान में न्यून अवस्था का विवाह प्रचलित है जिस पर तुर्रा ...... वेश्यागमन आदि की अधिक चर्चा है, इस कारण भारत में बहुत ही न्यून मनुष्य निकलेंगे जिनको धातुक्षीण की बीमारी न हो।

दूसरे हमारे देश में अविद्या के कारण लालच में अक्सर बहुधा मित्र बन जाते हैं और प्रयोजन निकलने पर बात नहीं करते फिर उपकार का मान किसको कहते हैं, क्या पण्डित साहिब प्रतिदिन अपने प्रयोजन के लिये ऐसी बातें नहीं मिलाते? तीसरे हमारे देश में रुपया उन्नति करनेका उपाय केवल नौकरी रह गई है तिस पर विवाह मरण आदि में मिथ्या व्यय इसके उपरांत नशापीना, मांसखाना, लौंडेबाजी, रण्डीबाजी आदि नाना लीलाओं में धन व्यय होता है जिसको पण्डित साहब आंखों से देखते हैं यथार्थ में ज्योतिषी इसी का नाम है।

वर्तमान समय में इश्क हुसन की चर्चा है, ऐसे बहुत थोड़े मनुष्य हैं जो इस बला से बचे हों वरन् कोई किसी स्त्री पर मरता है कोई लौंडे पर, यह बात बताना भी तो ज्योतिषी जी का ही कार्य है, उपाय वहीं के जप और दान पण्डित जी जानते ही होंगे।

सच पूछो तो हमारे भाइयों को ग्रहों में इन पण्डितों ने ऐसा फांसा है कि बिना सायत पूछे कहीं जाना आना भी नहीं होता चाहे कैसा ही काम क्यों न बिगड़े पर बिना मुहूर्ति पूछे जाना कैसा ?

हमारे पण्डित जी कहते हैं कि नीचे लिखे के प्रतिकूल जो कहीं का यात्रा करेगा वह अवश्य आपत्ति में पड़ेगा, जैसा कि—

सोम शनिश्चर पूर्व काला; रवि शुकर पश्चिम में वासा ।
मंगल बुद्ध उत्तर में रहही, रहे बृहस्पति दक्षिण माही ॥

इसी भांति और दो बातें का भी विचार सुनाते हैं, प्यारे भाइयो ! हजारों मनुष्य शनिश्चर और सोमवार को रेलगाड़ी में पूर्व को जाते हैं इसी भांति शुक्र और इतवार को पश्चिम को जाते हैं जिन पर दिशाशूल का कुछ भी प्रभाव नहीं होता इसके उपरांत ईसाई और मुसल्मान तो ग्रहों को मानते ही नहीं यह ग्रह उन पर अपना प्रभाव क्यों नहीं करते यदि कहो कि वह म्लेच्छ हैं इसलिये उन पर कुछ प्रभाव नहीं होता आश्चर्य की बात है कि उत्तमोंको दण्ड मिले और दुष्ट चैन करें, क्या इसीका नाम न्याय है ? देखिये जब कोई धूपमें खड़ा होता है तो सबको गर्मी एकसी ज्ञान पड़ती है वही दशा सर्दीकी है क्योंकि यह ग्रह आर्य जो अपनेको हिंदू बोलते हैं उन्हें दण्ड देते हैं ! अतः यह सब मिथ्या है, कौन नहीं जानता कि जब मुहम्मद गजनवी ने मंदिर सोमनाथ पर चढ़ाई की थी उस समय इन ग्रहोंकी दूकान राजाके समीप खुली हुई थी और वह पंडित लोग कहते थे कि लड़नेकी कोई आवश्यकता नहीं क्योंकि आपके फलां २ ग्रह बड़े अच्छे पड़े है और हम सब जप करते हैं तीसरे दिन शत्रु अपने आप आपके चरणोंमें गिरेगा वा फिरके चला जायगा । अंत को ऐसा हुआ कि वह सब पंडित अपने ग्रहों की शूरवीरता सुनाते रहे कि वह मन्दिर में घुस आया और मूर्तिको तोड़ कर दस करोड़ का माल लेकर चला गया । इसके उपरांत जब वह लोग अपनी पुत्रियों का विवाह करते हैं तो सब प्रकार से विधि मिला लेते हैं परन्तु फिर भी इन्हीं लोगोंमें विधवा अधिक देखी जाती हैं। यदि यह ज्योतिष की रीति ठीक होती तो पंडितों अर्थात् ज्योतिषियों की पुत्रियां रांड न होतीं । इस पर भी तो आपको ज्ञान नहीं होता कि यह सब मिथ्या है, इनका मुख्य प्रयोजन टकाही है । बहुधा जन यह भी कहते हैं कि तुम ज्यतिषियों के फलित को गलत कहते हो देखो वह कितने दिन पहिले ग्रहण बता देते हैं कि फलां तिथि को ग्रहण होगा और वैसा ही

होता है। प्यारे सुजनों ! हम प्रथम ही कह चुके हैं कि ज्योतिष में गणित बहुत ठीक है परन्तु फलितका फल प्रत्यक्ष ठीक नहीं मिलता और ग्रहण बताना हिसाब का काम है देखो गोलप्रकाश*में दोसो वर्ष तकके ग्रहण निकालकर रख दिये हैं, हां यदि कोई ज्योतिषी यह कहे फलां ग्रहण के होने का यह फल होगा तो मैं कह सकता हूँ कि फल अवश्यमेव गलत पड़ता है और पड़ेगा।

इन्हीं कारणों से हमारे पुराने पुरुषा फलां देश को मानते न थे। इसमें किसी को संदेह नहीं कि प्राचीन समयमें विद्या की बड़ी चर्चा थी और प्रत्येक विद्या के बड़े २ महात्मा, ऋषि, मुनि, विद्वान् विद्यमान थे, परन्तु उस समयमें किसीने गृहोंका जपदान करके किसीके दिलको क्यों नहीं फेर दिया वा आपस में क्यों नहीं मिला दिया वा एक को क्यों नहीं मार डाला वा अपने आधीन कर लिया ? यदि ऐसा होता तो अयोध्यापुरी के सुजन अवश्य कैकेयी के मनको फिरवा देते और वनवास न होता। इस के उपरांत सीता हर जाने पर भी रामचन्द्रजी ने बहुत विचारांश किये और हनुमान आदिको सुध लेनेके लिये भेजा, क्यों नहीं एकाध रुपया देकर ज्योतिषी ही से पूंछ लिया होता कि जिससे उनको ज्ञात होजाता कि रावण हर ले गया है। सुग्रीव ने अपने भाई बालि को जप कराकर क्यों नहीं प्रसन्न कर लिया ? इसी प्रकार रावणने विभीषणको क्यों नहीं मिला लिया किजिनकेसम्पूर्ण वंशका नाश मारदिया। लक्ष्मण जीके शक्ति लगजाने पर श्रीमहाराज जी ने संजीवनी नाम बूटी को क्यों मंगया क्यों नहीं गृहों का जप कराकर आराम करलिया !

इसके उपरांत युधिष्ठिर और दुर्योधन कि जिनकी लड़ाई होने से

*एक पुस्तक जिसको अंग्रेज ने लिखा है।

भारत का गारत हो गया क्यों नहीं गृहों के पज से सम्मति करा दी ? इसके अतिरिक्त श्री कृष्णजी महाराज ने कंस को क्यों मारा ? क्या उस समय ज्योतिषी उपस्थित न थे जो आप से आप काम कर देते।

वर्तमान समय में जब कोई कहीं चला जाता है तो हमारे ज्योतिषी जी यह कहते हैं कि वह पूर्व को गया है और अभी इतना अन्तर है यदि वह वार्ता सच होती तो क्यों दमयन्ती नल के मिलने को नाना प्रकारके उपाय करती झट ज्योतिषी से पूंछ कर ढूंढ लेती, इत्यादि अनेक प्रकार की गपशप ज्ञात होती है।

—:*:—

* रसायन मन्त्र और तन्त्र *

इसके उपरान्त रसायनियों के धोके में न आओ जो तुम्हारा मालदार अपनी रसायन बना लेते हैं। यदि उनको आती तो पहिले अपने भाई बन्धु लड़के आदि को करोड़ों रुपये बना कर साहूकार कर देते, सो तो कुछ न हुआ वरन् ऐसा गुण और फिरें मारे मारे। इस लिये यह सब मिथ्या हैं। वह भी एक प्रकार के ठग हैं। सच पूंछो तो अपनी रसायन बना ले जाते हैं और तुम लालच में जो कुछ होता है देदेते हो। इसी धनको परदेश में जाकर दो तीन रुपये रोज खर्च करतेहैं, रुपये को रुपया नहीं गिनते। हमारेभई लोग उन को रसायनी जान कर उनी सेवा करते हैं। किसी किसी को वह हाथ की चालाकी से बना कर दिखा देते हैं फिर उन्हीं के हाथ से विकवाते हैं। वे विचारे सीधे साधे भोली बुद्धि के शत्रु को झट स्त्री तक का माल उतार कर देदेते हैं, फिर बावाजी के पते तक नहीं मिलते, सिर पीटते रहजाते हैं। भला अब बताओ कि किसकी रसायन बनी ?

इसके उपरान्त भूत, शाकिनी, डाकिनी आदि जो भ्रमजाल और नाना भांति के रोगों में आप औषधि नहीं कराते और उन धूर्त महामूर्ख कुकर्मी, भङ्गी, चमार आदि के भरोसे जो अनेक प्रकार से छल कपट डोरा धागाबांध धन हरण करते हैं उनमें मिथ्या धन व्यय न करो, और इन सब बातों को सत्य सत्य जानने के अर्थ सत्य ग्रन्थों को देखो, तब प्रत्यक्ष प्रकट हो जायगा कि ये सब ठगों के जाल हैं। कि जो उत्पन्न होकर वर्तमान समय में न रहे सो भूतस्थ होने से भूत कहाता है, जैसा कि सृष्टि की आदि से लेकर आज तक लाखों करोड़ों मर गये और फिर कर्मानुसार जन्म लेते गये, वे सब उन नामों से न रहने के कारण हैं। उसी भांति मृतक शरीर को प्रेत और दाह करने वाले को प्रेतहार कहते हैं परन्तु जैसा इस समय में गोलमाल हो रहा है यह सब मिथ्या है इसकारण इस मिथ्या विचारों को छोड़कर सनतानों को भी सत्योपदेश करते रहो। इस के अतिरिक्त मंत्र यंत्र इत्यादि प्रकट फैले हुए हैं कि जिस के कारण यह देश और भी अधोगति को पहुँच रहा है। मंत्र शब्द का अर्थ गुप्तभाषण का है परन्तु वर्तमान काल में उससे यह प्रयोजन लेते हैं कि कोई मनुष्य मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण के अर्थ जप करे। इसी भांति मंत्र, सब्द के अर्थ युक्त क्रियाओं के करने के लिये कोई जा कर उसमें कुछ संख्या वा शब्द वाक्य लिखते हैं, इसी प्रकार 'मंत्र'

शब्द के अर्थ यह लेते हैं कि औषध्यादि के मेल से कुछ आश्चर्य जनक क्रिया दिखलाना।

जिधर हम देखते हैं उधर ही पण्डित ब्रह्मचारी जती (यती) काज़ी पीरज़ादे इत्यादि सभी मंत्रादिक के सहारे से शिकार मांगते दृष्टि आते हैं विद्वान से तो यह मनुष्य दृष्टि तक नहीं मिलाते परंतु मूर्ख पुरुषों की सभा वा इस देश की अनपढ़ी स्त्रियों में पैर फैलाते हैं जब वहां से कुछ मिल जाता है तब उसका पीछा छोड़ते हैं और जो स्त्री पुरुष उन को कुछ नहीं देते तो यह कहके कि देखना हम तो जाते हैं परंतु भगवती, हनुमान, भैरव, वैताल, नरसिंह वा पीर ने जब कुछ किया तो पछताओगी फिर पैरों पड़ोगी इसी प्रकार बहुत बातें बनाते हैं कि जिनको वह भोले भाले मनुष्य सुनकर फिर कुछ दे दिला कर राज़ी करते हैं।

मंत्र संस्कृत, अरबी, फ़ारसी, उर्दू, व्रजभाषा, पंजाबी महाराष्ट्र इत्यादि भाषाओं में हैं और प्रतिदिन नवीन बनते जाते हैं इस देश में यह बात प्रसिद्ध है कि कामरू देश में 'कामाक्षा देवी' और 'इस्माइल' योगी सिद्ध हैं योगी के प्रताप से मंत्र तत्काल सिद्ध होता है और मूर्ख जन ऐसा निश्चय रखते हैं कि इस देश का मनुष्य कामरू देश में जाय तो वहां की स्त्रियां उसको मन्त्रों से बांध सदैव रात्रि को पुरुष और दिन में हल आदि में जोतने के बैल बना लिया करती हैं। लाखों मंत्रों में कामरू देश कामाक्षा देवी जहां बसे अस्मायल (इस्माइल) योगी यही पाया जाताहै। बड़े अश्चर्य की बात है कि कामरू देश में सहस्रों मनुष्य आते जाते हैं परन्तु तब भी हमारे भोले भाई वैसा ही निश्चय किये बैठे हैं।

इन मंत्र बनाने वालों और जप करने वालों ने एक बड़ी आड़ यह भी बना रक्खी है कि इनके देवता ३३ करोड़ हैं जब एक के नाम से काम नहीं होता तो दूसरे के आश्रय, फिर तीसरे, चौथे आदि के। मुख्य यह है कि सारी उमर जप करते करते मर जायं पर इनकी कभी हार नहीं होती है, धन्य है इन पुरुषों को ?

वेदों में तैंतीस देवता व्यवहार प्रयोजन के अर्थ माने हैं और वह तैंतीस देव ये हैं—आठ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य, एक इन्द्र, एक प्रजापति। इनमें से आठवसु ये हैं, अग्नि, पृथ्वी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्यौ, चन्द्रमा और नक्षत्र इनका नाम वसु इसलिये है कि सब पदार्थ इन्हीं से बसते हैंऔर यही सबके निवास करने के स्थान हैं। ११ रुद्र ये कहाते हैं जो शरीर में

प्राण हैं अर्थात् प्राण, अपान व्यान, समान, उदान, नाग, कूर्म, देवदत्त, धनंजय, और ११ वां जीवात्मा क्योंकि मरण होने के समय जब ये शरीर से निकलते हैं तब उसके सम्बन्धी लोग रोते हैं और वे निकते हुए उनको रुलाते हैं इस लिये इन का नाम रुद्र है। इसी प्रकार आदित्य १२ महीने को कहते हैं क्योंकि ये सब जगत के पदार्थों का आदान अर्थात् सबकी आयु को ग्रहण करते चले जाते हैं इसी से इन का नाम आदित्य है। ऐसे ही इन्द्र नाम बिजली का है क्योंकि वह उत्तम ऐश्वर्य की विद्या का मुख है और यज्ञ को प्रजावान् इसलिये कहते हैं कि इससे वायु वृष्टि जल की शुद्धि द्वारा प्रजा पालन होता है तथा पशुओं की यज्ञ संज्ञा होनेका कारण यहहै कि उनसे भी प्रजा का पालन होता है। सब मिल कर अपने अपने गुणों से तैंतीस देव कहते हैं।

प्यारे सुजनों यह सब व्यवहार के अर्थ हैं और उपासना के अर्थ केवल एक परमेश्वर ही है, जैसा कि शतपथ ब्राह्मण में लिखा है:—

योऽन्यां देवतामुपास्ते पशुरेवꣳसदेवनाम्।

अर्थात् जो मनुष्य ईश्वर को छोड़कर अन्यकी उपासना करता है वह पशु के समान है।

परन्तु अब तो लोगों को तैंतीस कोटि से भी तृप्त न हुई तब मरे हुये क़ब्र निवासी मुसलमान पीर औलिया मियां आदि को भी मानने लगे हाय! लज्जा भी नहीं आई। इसी कारण इनके पूजने वालों की भी कुगति हो गई कि जिसने भारत के ऐश्वर्य को खो दिया।

इस लिये हे गृहस्थो इन बातों में न फंसो और कृपा कर वेदादि सत्य शास्त्र पढ़ो वा सुनो और पूर्ण विद्वान् और सत्य वक्ताओं का सत्संग करो तो यह मिथ्या पोल स्वयमेव खुल जावे।

पाठक गणों के समझाने के अर्थ कुछ उदाहरण लिखता हूँ—

(कृत्रिम सोना चांदी बनाने का मंत्र)

ओं नमो हरिहराय रसायन सिद्धिं कुरु २ स्वाहा।

इस मंत्र को २१ दिन तक १०८ बार जपनेसे सोना चांदी बनता है।

(चौकी सुट्टी पीर की)

बिस्मिल्ल अर्रहमान अर्रहीम साहचक्र की बावड़ी।
गले मोतियन का हार लंकासी कोट समुद्र सी खाई॥
जहां फिरै मुहम्मदा वीर की दुहाई कौन वीर आगे।

चले सुलेमान बीर चले दुर्रानी वीर चले नादिरशाह ॥
पीर चले मूठी चले नहीं तो हज़रत सुलेमान ।
की सात दुहाई शब्द सांचा चलो मन्त्रो ईश्वर वाचा ॥

इस मंत्र का ४० दिन तक १०००० मन्त्र जपे तो वीर हाज़िर होकर काम करे ।

(मार्ग में बाघ (सिंह) के प्रबन्ध का मन्त्र)

बघ बांधु बघायन बांधु बघ के सातो बच्चे बांधु राह बाट मैदान बांधु बसुदेव की दुहाई लोना चमारी की ।

इसको सात बार सात मंगल जपे तो सिंह पर फूंक दो वा सोते समय अपने ऊपर फूंक लो तो सिंह आधीन हो जावेगा ।

(बवासीर दूर करने का मन्त्र)

सम्मुन बुकसुन उपयुन फहुम लापर जठना ।

(१)	(मन्त्र)	(२)
९३ । ९९ । २ । ७		तं । तं । तं । तं
६ । ३ । ९६ । ९३		पं । पं । पं । पं
९८ । ९३ । ८ । १		दं । दं । दं । दं
४ । ९ । ९९ । ९७		लं । लं । लं । लं

(१) इस मन्त्र के लिये लिखा है कि पीतल के पात्र में घर के पीछे लिखे तो दिन से रात में दिखलाई देने लगे ।

(२) इसके विषय में लिखा है कि सिरस के वृक्ष के नीचे बैठ के लिखे तो भूत प्रेत देवीयक्ष आदि सब प्रसन्न हों ।

इसी प्रकार के अनेक मंत्र तन्त्र कपोल कल्पित और मिथ्या बातें फैल रही हैं ।

मैं पहिले लिख चुका हूँ कि आधुनिक लोग औषधादि के मेल से आश्चर्यजनक क्रिया कर दिखलाने को तन्त्र कहते हैं, अब मैं इस विषय में लिखता हूँ ।

हम स्वीकार करते हैं कि औषधादि ईश्वर कृत अनेक पदार्थ हैं उनको परस्पर मिलाने से बहुत आश्चर्यजनक क्रिया हो सकती हैं । हम नित्य देखते हैं कि रोग के निवारणार्थ सब लोग नाना प्रकार की औषधियों का सेवन करते हैं और उनके यथा योग्य सेवन से रोगों की निवृत्ति होती है रेल तारा-

दिक इन्हीं पदार्थों के सेवन से चलते हैं परन्तु इनको सदैव देखते हैं इस कारण से आश्चर्य नहीं होता, हां जो लोग प्रथम देखते हैं उनको आश्चर्य होता है।

इस वर्णन से यह सिद्ध हुआ कि पदार्थों के मिलने से उन के गुणानुसार चमत्कारिक बातें हो सकती हैं परन्तु वे भी ऐसी होती हैं कि जिन को बुद्धिमान लोग सम्भव जानते हैं। कुछ ऐसाही नहीं है कि पदार्थों के नाम लिख दिये सो हो जायें जैसाकि 'तन्त्र महार्णव' नामक तन्त्र ग्रंथ के वशीकरण प्रकरण में लिखा है—

तुलसीरसंगृहीत्वा धात्रीरससमन्वितं।
तुलसीबीजसंयुक्तं हरतालमनः शिलम्॥
देहान्ते तिलक कृत्वा यमदूतो वशी भवेत्।
पापीचैव महापापी वैकुण्ठं गच्छते नरः॥

अर्थ तुलसी और आंवले का रस बराबर लेकर उसमें तुलसी के बीज हड़ताल और मैनसिल मिलाकर मरण समय में उसके तिलक करने से यमदूत मृतक के वश में हो जाते हैं, इस कारण से पापी भी वैकुण्ठ को चला जाता है।

प्यारे सुजनों! इन लेखों को ज्ञान दृष्टि से विचारो तो स्पष्ट प्रकट होगा कि मंत्र तन्त्र आदि मिथ्या बातों ने ईश्वर की आज्ञा को भी तोड़कर अपना दखल कर लिया। आप की समझ में आता है कि परमेश्वर की आज्ञा को कोई भंग कर सके? ये सब इनके मिथ्या प्रपंच है। सच पूछो तो वर्त्तमान समय में नाना प्रकार के ढंग ठगों के हैं। जैसाकि कोई कोई इन मंत्र तन्त्रादि के तावीज बनाकर बाजारों में पैसे दो दो पैसे में बेचते हैं और भूत पलीत आदि खोते फिरते हैं। हे भारत वासियो! तुम कदापि इन मिथ्या प्रपंचों में न फंसो, सदा वेदादि में लिखे सत्यगुणों का अवलोकन करो तो आप को इन सबका भेद यथावत् प्रकाश हो जावेगा।

देखिये बीमारियों के अर्थ परमेश्वर ने वैद्यक विद्या को बनाया है यदि मारण मोहन वशीकरण उच्चाटनादि मंत्र वेद में पाये जांय तो सब हो सकते हैं, सो इनका कहीं पता तक भी नहीं। इसके उपरांत कुछ बुद्धिसे विचारना भी योग्य है कि ऐसे मंत्र वेदोक्त हैं या नहीं? यदि ऐसे मंत्र वेद में हों कि जिनके पढ़ने आदि से मनुष्य मर जावें तो बतलाइये यह पाप परमेश्वर को होगा या मारने वालेको? उत्तर यही होगा कि परमेश्वर को, तो इन मन्त्रा-

दिकों के मानने वालों ने परमेश्वर को भी पापी बना दिया। सो वह पापी नहीं हो सकता यथार्थ में पापी वही हैं। क्योंकि कोई मन्त्र ऐसे नहीं हैं कि जिनसे मनुष्य मर जावें, हां कई प्रकार की औषधि ऐसी है कि जिनके खिलाने से मनुष्य मर जाते हैं सो यह पापी उनके नौकर आदि को लालच देकर खाने पीने आदि में ज़हर दिलवा देते हैं कि जिससे मनुष्य मर जाते हैं फिर अपनी सिद्धि प्रकट करते हैं। यदि इन को ऐसे ही मन्त्र आते तो क्यों नहीं महमूद ग़ज़नवी, नादिरशाह, तैमूरलङ्ग आदि को मार डाला कि जिन्होंने भारत के मनुष्यों को क़तल कराया। यदि आप को इतने पर भी विश्वास न हो तो आप एक शीशी में जिस में वायु आती हो मक्खी बन्द करके अपने पास रख लीजिये और उनसे कहिये कि इसको मन्त्र से मारिए, यदि वह मर जावे तो सच, नहीं तो मिथ्या।

प्यारे भाई बहिनों! यदि इनको मारण आता तो स्वामी दयानन्द सरस्वती जी को कि जिन्होंने भारत के पण्डित और वर्त्तमान धर्म की पोल खोल दी क्यों नहीं मार डाला। इसके अतिरिक्त समस्त आर्यों पर जो सम्पूर्ण देश में कोलाहल मचारहे हैं, जिससे नाममात्र में पण्डितों की प्रतिष्ठा भंग हो रही है क्यों मारण मंत्र नहीं चलाते वा मोहन मन्त्र से मोहित और वशीकरण से वश नहीं कर लेते जो इन मिथ्या मन्त्रों की पोल खोल मन्त्रादिक के करने वालों की आमदनी का नाश मार रहे हैं सो कुछ भी न हुआ मैं नहीं जानता कि इन गपोड़ों में आप पड़ कर क्यों अपने देश का सत्यानाश मारते चले जाते हैं। इस लिए अब विचार कर प्रत्येक कार्य का करना अभीष्ट है! प्यारे सुजनों! इन्हीं कार्यों के करने से हमारे देश का नाम आर्य्यावर्त्त से हिन्दुस्तान रख दिया गया, आप विचार कीजिए।

—:o:—

आर्य्य, शब्द।

यह शब्द ऋगतौ धातु से 'ऋहलोर्ण्यत्' इस सूत्र द्वारा 'ण्यत्' प्रत्यय लगाने से सिद्ध होता है और ऋग्वेद मंडल १ सू० १०३ मंत्र ३ तथा ऋग्वेद मंडल १९ सू० १ मं ८ में -

विजानीह्यार्यान्ये च दस्यवो बर्हिष्मते। रन्धया शासदव्रतान्।

सत्यमहं गभीरः काव्येन सत्यं जातेनास्मि जातवेदाः॥

और अथर्व० कां० ५ अ० २० ११ में मनुष्य की गणना आर्य और दास नामों से की है ।

नमे दासो नमे आर्यो महित्वमतंमीमायदहंचरिये ॥

य० अ० १६ मं० ३२ और य० अ० ३३ मं० ८२ में लिखा है कि जिस राजा के सब आर्य रक्षक और आज्ञापालक हैं वहां सब प्रकार के आनन्द रहते हैं-"यस्यायंविश्व आर्योदास" ।

वशिष्ठ स्मृति में वशिष्ठ जी महाराज ने लिखा है कि जो कर्तव्य कर्मों का सेवन करता है और अकर्त्तव्य कर्मोंका परित्याग करता है वह आर्य है। गीता अध्याय २ श्लोक २ में श्रीकृष्ण महराज ने अर्जुन से कहा है कि आर्य पुरुषों को मोहवश होकर अनार्यों की भांति कार्य न करना चाहिए।

ऐसा ही विदुर जी ने विदुर नीति में कहा है और मनुजी ने अ० ४ श्लोक १७५ में अध्यापकों को उपदेश दिया कि आर्य पुरुषोंकी भांति सदाचार कर उसी प्रकार अपने शिष्यों को सिखलाओ ।

सत्यधर्मार्यवृत्तेषु शौचे चैवारमेत्सदा।
शिष्यांश्च शिष्याद्धर्मेण वाग्बाहूदरसंयतः ॥

हितोपदेश के सन्धि प्रकरण में राजा को शिक्षा की है यह विजय पाने के अर्थ अनार्य और आर्य से सन्धि करले जैसा कि 'सत्संधार्मिकोऽनार्यो' न्यायदर्शन अ० १ सूत्र १० वात्स्यायन भाष्य 'ऋण्यार्य्य अष्टाध्यायी अध्याय ४ पाद १ सूत्र ३० ।

केवलमामक भागधेयपापापरसमानार्यकृतसुमंगलमेषाद्य ।

महाभारत आदिपर्व अ० १५४ वा १५८ सभापर्व अ० ६४ वा ७३ तथा उद्योगपर्व अ० ३१ श्लोक ११३ वा ११४ में लिखा है कि जो शान्त चित्त रहते हैं, वैर को नहीं बढ़ाते, घमण्ड नहीं करते, उद्योग से कार्यों को करते हैं, जो गिरी दशा में भी चोरी आदि कार्य नहीं करते और अपने सुख में हर्ष और दूसरे के दुःख में आनन्दित नहीं होते वही आर्य हैं, और वनपर्व अ० २९७ वा १९७ शान्तिपर्व अ० ६३, ६४, ६५ वा १४० वा २९२ इत्यादि स्थानों पर 'आर्य' शब्द का प्रयोग किया है और ऐसा ही भीष्मपर्व अ० २५ में लिखा है वाल्मीक रामायण बालकाण्ड सर्ग १० श्लोक १६ वा ३५ । और तुलसीकृत रामायण में लिखा है-

आरज सुत पद कमल बिनु ।

विष्णुपुराण तृतीय अध्याय ७ श्लोक ३१ में यमराज ने विष्णुभक्तों के

लक्षण वर्णन किये हैं वहां पर लिखा है कि जो मनुष्य अशुभ गति असत्कार्यों और अनार्यों के साथ निरन्तर रहता है वह विष्णु का भक्त नहीं है।

अशुभमति रसत्प्रवृत्तिरासक्तः सततमनार्यविशालसंगमत्तः।

अनुदिनकृतपापबन्धयत्नः पुरुषपशुर्नहि वासुदेव भक्तः॥

अर्थात् विष्णु के भक्त वही जन हैं जो प्रति दिन शुभ कर्मों को कर आर्य पुरुषों का सत्संग करते हैं। पद्मपुराण तृतीय सर्ग खण्ड अध्याय ९ श्लोक ४८ में लक्ष्मी जी ने सावित्री जी से कहा है कि हे आर्ये! तुम शीघ्र उठ कर चलो। मत्स्य पुराण अ० ४९ श्लोक ३ में लिखा है कि जो सरल मार्ग पर चलता है वह आर्य कहाता है। इसके अनन्तर नया गुटका जो मिडिल क्लास में पढ़ाया जाता है जिसमें 'मुद्राराक्षस' नाम नाटक जिसको कवि विशाखादत्त ने (जो महाराज पृथु का बेटा था) बनाया है जिसकी भाषा बाबू हरिश्चन्द्र जी ने की है। उसके सफ़े ६९, ७०, ७२, ७३, ७४, ७५, ७६, ७७, ८४, ८६, ९०, ७९१ में भी आर्य शब्द आता है। इसी कारण इस देश का नाम भी आर्यावर्त्त कहलाया, देखिये अमर कोष प्रथम काण्ड भूमिवर्ग अष्टमपद्य में लिखा है आर्यावर्तः पुण्य भूमिर्मध्यं विंध्यहिमालयो, अर्थात् उस पवित्र भूमि को आर्यावर्त्त कहते हैं जो हिमालिया और विंध्याचल के बीच में है और जैनकृत अमरकोष द्वितीय काण्ड के भीतर 'ब्रह्मवर्गस्य' तृतीय श्लोक को देखिये महाकुल, कुलीन, आर्य, सभ्य, सज्जन, साधु ये छः नाम श्रेष्ठ पुरुष के हैं।

अयोध्या काण्ड सर्ग ७५ श्लोक २० में भरत जी ने कौशिल्या से कहा कि आर्ये! हमारी प्रीति श्रीराम में कितनी है सुन्दर काण्ड सर्ग २८ श्लोक १० में सीताने रामचन्द्र, लक्ष्मण को आर्यपुत्र कहाहै। सर्ग ३५ श्लोक ४४ और सर्ग ३६ श्लोक ३७ में हनुमानजी ने सीता से कहा है कि हे आर्ये! किष्किंधाकांड सर्ग १९ श्लोक २८ में तारा ने अपने मरे पति को देख कर कहा है कि आर्य पुत्र! सर्ग ४३ में सीता ने लक्ष्मण जी से वार वार आर्य पुत्र कहा, और श्लोक १८ में सीता जी ने फिर कहा है कि इस मृग को पकड़ कर लाइए क्योंकि यह आर्यपुत्र भरत और सासुओं को विस्मित करेगा, लङ्काकांड सर्ग ३२ श्लोक २९।

इसके अतिरिक्त अयोध्याकाण्ड में राजा दशरथ ने कैकेई से कहा है कि लोग मुझ को कामी और अनार्य कहेंगे, और सर्ग ६६ में कौशिल्या ने कैकेई से कहा है। सर्ग १०९ श्लोक ४ में अनार्य शब्द आया है। सुन्दर

काण्ड सर्ग ९ में हनुमान ने और सर्ग २२ में सीता ने रावण से अनार्य कहा है। इसके उपरान्त बहुधा स्थानों पर आर्य और अनार्य शब्द आये हैं, सर्ग ९९ श्लोक ३७ वा ३८ में भरत महाराज ने चित्रकूट पर श्रीराम को आर्य कहा है और सर्ग १२१ श्लोक १२ में भरत ने फिर राम से कहा है कि हे आर्य! खड़ाउओं पर चरण रख दीजिये। इन सब बातों के अतिरिक्त भरत जी ने महात्मा भरद्वाज जी को अपनी माताओं को बताते हुये सर्ग ९२श्लोक २६ में कहा है कि जो क्रोध ही सदा किये रहती, बुद्धि नहीं रखती, अहंकार युक्त अपने को सदा सुभगा ही मानती है, सदा अपना ही ऐश्वर्य चाहती, बड़ी अनारिन है पर अपने को आर्य रूप मानतीहै जिसका नाम कैकेई है। नरसिंह पुराण अध्याय ३४ में विश्वामित्र जी ने राजा दशरथ जी से कहा है कि हे नृपश्रेष्ठ! रामचन्द्र अनार्य नहीं हैं। इसके उपरान्त बाबा तुलसीदास जी ने भी आर्य (आरज) पद प्रयोग किया है।

वेदमें अर्य औरआर्य दो शब्द आतेहैं। आर्य शब्द ईश्वरके अर्थोंमें कई जगह आया है। इसी लिये निघन्टु २। २२ में आर्य शब्द ईश्वर केनामों में पढ़ा है। पाणिन मुनि की अष्टाध्यायी ३-१-१०३ सूत्र में आर्य शब्द स्वामी और वैश्य के लिये भी आया हैं जैसा कि (अर्यःस्वामिवैश्ययोः)

अर्य शब्द से अपत्य अर्थमें अष्टाध्यायी के ४ १-९२ सूत्र (तस्यापत्यम्) से अण प्रत्यय लगा देने से आर्य शब्द बन जाता है अर्थात् आर्यस्यापत्यमार्यः (ईश्वर के पुत्र को आर्य कहते हैं) भास्काचार्य जी ने भी आर्य शब्द का ईश्वर पुत्र यही अर्थ किया है।

हमारे प्राचीन पुरुषा सद्गुणों के धारण करने से ही आर्य कहलाये उनकी जाति भी आर्य जाति और देश आर्यवर्त के नाम से प्रसिद्ध हुआ देखिये महाभारत उद्योग पर्व अ० ९९ में लिखा है:-

वृत्ते नहि भवत्यार्योनधेनेननविद्यया।

अर्थात् विद्या और धन से आर्य नहीं होता किन्तु सदाचारी बनने से ही आर्य कहलाता है भगवान् मनु ने अ० १० श्लोक ६७ में कहा है :-

' जातोनार्यामनार्यायां मर्यादार्यो भवेद्गुणैः।
जातोप्यनार्यादार्यायाम नार्य इति निश्चयः॥

आर्यपुरुष से अनार्य स्त्री में उत्पन्न हुआ बालक गुणों से आर्य होगा और अनार्य पुरुष से स्त्री में उत्पन्न हुआ गुणों से रहित पुत्र अनार्य ही कहलायेगा यही मेरा निश्चय है। इसके प्रमाण के लिए देखिए कि अनार्य

नारी में आर्य पुरुष से उत्पन्न हुई गुणवती शकुन्तला की मोहनी सूरत पर मोहित होकर जब राजा दुष्यन्त मन में विचारते हैं कि इस सुन्दरी को देख कर जो मेरा मन ललचायमान हो गया है कहीं यह अनार्य शील तो नहीं ? अन्त में शकुन्तला के गुणों को देखता हुआ क्षत्रिय कुमार राजा दुष्यन्त यही आत्मा से निश्चय करते हैं कि निःसन्देह यह क्षत्राणी है और जब कि मेरा मन इस में अनुरक्त हुआ है तो मेरी वीर पत्नी होने योग्य ही है शकुन्तला नाटक में लिखा है।

असंशयंक्षत्रपरिग्रहंक्षमायदार्यमस्यामभिलाषिमेमनः ।

और यह बात भी सत्य है कि संदेह वाली बातों के विषय में आर्य पुरुषों के मन प्रवृत्तियां ही प्रमाण भूत होती हैं जैसे कि:—

सतांहि संदेहपदेषुवस्तुषुप्रमाणमन्तः करणप्रवृत्तयः ॥

शारान्श यह है कि आर्यमन स्वभाव से उसी में प्रवृत्त होगा जो उसके लिये धर्म है। यद्यपि शकुन्तला का जन्म अनार्या स्त्रीमें हुआहै परन्तु क्षत्रिय वीर से उत्पन्न हुई शीलादि गुणोंसे युक्त यह मेरी पत्नी बनने ही योग्यहै।

❀ हिन्दू ❀

यह शब्द हमारे देशवासियों का नहीं, न किसी संस्कृतकी पुस्तक तथा वेद शास्त्र, पुराण और सत्यनारायण की कथा जिस को बने हुए थोड़े ही दिन हुये उस में भी कहीं नहीं लिखा। द्वितीय प्रति दिन के लिखे वही तिथि पत्रा और जन्म पत्री आदि में भी हिंदू वा हिंदी हिन्दुस्तान नहीं लिखा। तृतीय जो पुस्तकें मुसलमानी राज्य से पहिले भाषा में बनी उनमें वरन् जो मुसलमानी राज्य में लिखी गईं उन में भी यह शब्द नहीं और न अब तक किसी धर्म सम्बन्धी कार्य में हिन्दू शब्द का उच्चारण होता है, इसलिये किसी प्रकार से हमारा नाम हिन्दू नहीं है।

पादरी लोग यह कहते हैं कि हिंदू शब्द सिन्ध नदी से बना है, क्योंकि बहुधा शब्द संस्कृत से जो फ़ारसी में लिये गये हैं वे इसी प्रकारसे हैं। जैसा सप्ताह से हफ्ता, दशम से दहम, सहस्र से हज़ार। इसी भांति सिंधु हिन्दू होगया जान पड़ता है जिससे प्रयोजन सिंध नदी के तटस्थ वासियों का है, इससे इतना तो प्रकटही है कि पादरी लोग यह तो मानते हैं कि यह शब्द फ़ारसी का है परन्तु संस्कृत से आया हुआ अर्थात् संस्कृत के सिन्धु से हिंदू बना है। मित्रो ! यह भी मिथ्या है क्योंकि यूनानी लोग रूम यूनान और अफ़ग़ानिस्तान की राह से आर्यवर्त में आए और मार्ग में जैसा

किसी देश का नाम सुना वैसा ही लिखा अक्षर 'स' का 'ह' से पलटना हमने माना परन्तु फ़ारसी में। संस्कृत में किसी प्रकार नहीं हो सकता। देखो निघंटु १-१३ उणादि कोष १-११ दोनों नाम नदी के हैं, परन्तु सिंधु कभी आर्यवर्त के निवासियों के लिये नहीं कहा गया और न ठीक है। कोई कोई पादरी आदि यह भी कहते हैं कि हिन्दू नाम इन्दू से बना है, हम जानते हैं कि हिन्दू चन्द्रमा को कहते हैं अब यह बतालाइये कि संस्कृत में यह किस प्रकार से बन गया। इस के उपरांत सम्पूर्ण हिंदू चंद्रवंशी या सूर्यवंशी हैं। ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र, नहीं हैं, इन्दु केवल चंद्रमा को कहते हैं वंशी कहां से आया ? किसी संस्कृत पुस्तक में तो आज तक नहीं लिखा गया और क्या चंद्रवंशी के उपरांत अन्य जन अपने आप को हिन्दू नहीं कहते या सूर्यवंशी से कोई नाम नहीं निकला है। क्या आपके अतिरिक्त संसार भरमें और किसीको यह नाम मालूम नहीं, इसलिये ठीक नहीं। वर्त्तमान समयमें जो हमारे सनातनी पण्डित संकल्प पढ़ते हैं उसमें साफ़ इस देशका आर्यावर्त्त तथा हमारा नामआर्य प्रतीत होता है, जैसा—

'ओं विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः अद्येत्यादि परमात्मने श्रीपुराण पुरुषोत्तमाय द्वितीय परार्धे श्रीश्वेत वाराह कल्पे वैवस्वत मन्वंतरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे कलि प्रथम चरणे जम्बूद्वीपे भरतखण्डे आर्यावर्ते पुण्यक्षेत्रे वर्त्तमान नाम सम्वत्सरः प्रवर्तते तत्र अमुकायने अमुक ऋतौ मासानांमासोत्तमेमासे अमुक पक्षे अमुकतिथौ अमुक वासरान्वितायाम् अमुकगोत्रोत्पन्नोऽमुंनाम धर्मार्थमहं करिष्ये।' इसके अनन्तर रघुवंश सर्ग २ श्लोक ३३, राजा दिलीप की कथा में सिंह ने दिलीप से आर्य सखा कहा है जैसा—

अमार्य गृह्यं निगृहीत धेनुर्मनुष्यवाचामनुवंशकेतुम।
विस्माययन्विस्मितमात्मवृत्तौसिंहोरुसत्त्वं निजगादसिंहः॥

इसके उपरांत बहुधा पुस्तक रचना करने वाले पण्डितजन आर्य शब्दका प्रयोग करते हैं, और महात्मा हंसस्वरूप जी ने जो धर्म सभा के महोपदेशक हैं अपनी त्रिकुटीविलास नामक पुस्तक के सफ़ा १४ वा १९ में इस देश वासियों को आर्य नाम से सूचित किया है। फिर हम नहीं जानते कि क्यों कर हिन्दू कहलाते चले जाते हैं जिसके अर्थ गुलाम काफ़िर चोर और लुटेरे कई जो 'गयासुललुग़ात' के सफ़े २०० में लिखे हैं। हा शोक, हा शोक ! कि क्या समय आया जो जान बूझ कर भी हम कुएं में गिरते चले जाते हैं और प्रसन्नता प्रकट करते हैं। प्यारे भाइयो ! यह शब्द प्राचीन नहीं है और न

किसी प्राचीन पुस्तक में लिखा है । हां मुसलमानों ने इस देश को विजय किया तो पक्षपात के कारण इस देश का नाम हिंदुस्तान रख दिया जो हिंदुस्थान से बना है जिसके अर्थ काफिर आदि की जगह के हैं क्योंकि फ़ारसी में 'स्तान' कल्माज़र्फ़क अर्थात् स्थान का है, यथा गुलिस्तां, बोस्तां, अफ़गानिस्तान । इसलिये प्यारे सुजनों ! एक सम्मति हो शीघ्र इस अपवित्र नाम को त्याग दो और वेदानुकूल प्राचीन पुरुषों की भांति आर्य शब्द का प्रचार करो । अब विद्या का प्रकाश होरहा है जिससे हिन्दू शब्द के अर्थभी मानते हैं और फिर उसी क़ौम में जिससे हम प्रत्येक प्रकार से प्रधानता रखते हैं उन्हीं में बैठे हुए हिन्दु कहलाने पर प्रसन्न रहें । प्यारे ! विचारो और इस कलंक को जहां तक हो सके शीघ्र मेट आर्य शब्द और उसकी सनातन परिपाटी का प्रचार करो जिससे तुम्हारा यश हो और सभ्य मण्डलियों में तुम्हारी सभ्यता का परिचय हो ।

व्रत और तपस्या ।

मान्यवरो ! जब देश से वेदरूपी सूर्य छुप गया और ऋषिमुनि आदि ने धर्म की धुनि से आज्ञान में पड़े हुए मनुष्यों को चिताना त्याग दिया तब से अधर्मरूप अंधकार ने संसार को आ घेरा पुराण रूपी नाना सितारे अपने धुंधले प्रकाश से चमकने लगे । काम, क्रोध, लोभ अज्ञान रूपी चोरोंने बरसाती मेंढ़क की भांति समय पाकर अपनी कमर बांधी और अधर्म की घोर निद्रा में सोते हुए मनुष्यों के ग्रह में घूम कर उनकी धर्म रूपी माया को यहां तक लूटा कि उनके पास कुछ भी न रहा और जैसे धनादि के आने से मनुष्य निर्बुद्धि हो जाता है जिससे वह अंटसंट बकता है, मार्ग कुमार्ग को नहीं पहिचानता, इसी प्रकार धर्मरूप माया के जाने से मनुष्य मात्र अपने पुरुषों के उत्तम नियमों को यहां तक भूल गये कि उनके मुख्य अभिप्राय को भी नहीं जानते । एक परमदेव परमात्मा के स्थान पर तेंतीस करोड़ देवता मानने लगे जोकि भारतवासियों की मनुष्य गणना से भी अधिक हैं इसके उपरांत नाना मत मतान्तर रूपी मार्गों को इस घोरअंधकार में उत्तम समझ और स्वर्ग रूपी फल पाने की आशासे चलने लगे । व्रत के अभिप्राय ही को भूल गये, इतने व्रत बढ़ा दिये कि साल के दिनों से भी दुचन्द हो गये । देखिये आदित्य पुराण के अनुसार रविवार को शिव

पुराण के अनुसार सोमवार और तेरस, चन्द्र खण्ड के अनुसार, मंगल, बुध, वृहस्पति, शुक्र और शनैश्चर को व्रत रहना आवश्यक हैं और यही सप्ताह में सात दिन होते हैं अर्थात् सम्पूर्ण साल व्रती रहने की आज्ञा दे रहे हैं। और भी सुनिये कि विष्णु की एकादशी, वामन द्वादशी नरसिंह की अनन्त चौदश, चन्द्रमा की पूर्णमासी, दिक्पाल की दशमी, दुर्गा की नवमी वसुओं की अष्टमी, मुनियों की सप्तमी, स्वामिकार्तिक की छठ, नागपञ्चमी, गणेशचौथ, गौरी की तीज, अश्वनी कुमार की दोज, आद्या देवी की परेवा भैरव की अमावस, और २६ एकादशियों को भी व्रत रहे इसके अतिरिक्त प्रत्येक माह में दो चार त्यौहार माने हैं जिन में स्त्री पुरुष दोनों वा केवल स्त्री और पुरुष ही व्रत रहते हैं जैसा—

चैत्र के कृष्ण पक्ष में शीतला की अष्टमी और वारुणी स्नान।

चैत्र के शुक्र पक्ष में परिवा से नवमी तक नवरात्रि का, अष्टमी को देवी की तीज की (गननौर)

वैशाख के कृष्ण पक्ष में सप्तमी और अष्टमी।

वैशाख के शुक्रपक्ष में तीज (अछय तृतीया)।

जेष्ठ में वरसाते (वटसावित्री) शीतला की अष्टमी सप्तमी।

आषाढ़ में सप्तमी और दहवैठौनी अष्टमी।

सावन में सलूनो।

भादों कृष्णपक्ष चौथ (वगुला चौथ) छठ (हरछट) कन्हैया अष्टमी।

भादों शुक्रपक्ष तीज (गौरी) चौथ (सिद्ध विनायक) ऋषि पंचमी और बड़ा इतवार।

कुआर शुक्रपक्ष परिवा से नवमी तक नवरात्रि व्रत दशहरा चौदश।

कार्तिक कृष्णपक्ष चौथ (करवाचौथ) यहोई अष्टमी, दिवाली द्वादशी।

कार्तिक शुक्रपक्ष दोज (भाई दोज) चिरया गौर नवमी से एकादशी तक दशमी से पूर्णमासी तक भीष्मपञ्चक।

अगहन शुक्रपक्ष पञ्चमी, छठ और अष्टमी।

माघ कृष्णपक्ष चौथ (गजश चौथ पञ्चमी, एकादशी।

फाल्गुन कृष्ण पक्ष अष्टमी, तेरस (शिवतेरस।

फाल्गुन शुक्रपक्ष होली आदि दिन भी व्रत के हैं

इनके अतिरिक्त और भी बहुत से व्रतों की आज्ञा धर्मसिंधु और निर्णयसिन्धु में पाई जाती है। इन सब दिवसों में सम्पूर्ण दिन या किसी भाग

तक सम्पूर्ण स्त्री पुरुष बालक भूखे रहते हैं और तत्पश्चात् अन्न को छोड़कर घुइयां, सकरकन्दी, फाफड़ा सिंघाड़ा आदि वस्तुएं खाते हैं, परन्तु इन सब में निर्जल रहना अर्थात् दिन रात कुछ न खाना सबसे उत्तम माना गया है, क्योंकि अन्न में पाप एकादशी आदि को होता है। भूखे रहने से कहते हैं कि आत्मा को मार कर एकाग्रचित होकर परमेश्वर का भजन करते हैं जबसे इस देश में व्रतों का प्रकाश हुआ तभी से नाम मात्र के पण्डितों ने बहुतसी कथायें भी लिख मारीं जो इन्हीं व्रतों के दिन सुनाई जाती हैं, जिनमें बहुधा उत्तम भी हैं और बहुतों में केवल गपोड़ पन्थ ही भरा हुआहै और बतला दिया कि इन व्रतों के रहने से और इन कथाओं के सुनने से वही फल प्राप्त होता है जो सहस्र अश्वमेध, सहस्र गोदान, सौ कन्यादान और सहस्र उपकारादि उत्तम कर्मों के करने से प्राप्त होता है और ऐसे पुरुषों को संसार में धन धान्य सन्तानादि से सर्व प्रकार के आनन्द मिलते हैं। इन फलों को सुन कर वर्तमान समय में निर्धन धन के, बीमार आरोग्यता के, बे औलाद सन्तान के और स्त्रियां पतिव्रत धर्म पूर्ण करने के अर्थ भेड़चाल की भांति बिना सोचे समझे व्रत रहती चली जाती हैं। बहुधा निमक और आग छोड़ देती हैं अर्थात् आग से बना हुआ भोजन न कर केवल ऋतु आदि के फलों पर निर्वाह करती हैं।

परन्तु जब हम धर्म शास्त्र पर दृष्टि डालकर इन उपरोक्त व्रतों की जांच करते हैं तो कहीं बिना अजीर्ण के भूखे रहने की आज्ञा नहीं पाई जाती क्योंकि भूख के मारने से मन्दाग्नि हो जाती है, मनुष्य निर्बल हो जाते हैं, किसी की बात अच्छी नहीं लगती, अच्छी को बुरी समझते हैं सूरत भयावनी हो जाती है। बहुत लिखने की क्या आवश्यकता है आप नित्यप्रतिदेख सकते हैं कि जो स्त्रियां अन्नादि छोड़ देती हैं उनकी क्या दशा हो जाती है जिसके कारण वह गृहस्थी के कार्यों को नहीं कर सकतीं और उनके गर्भाशय में अंतर पड़जाता है जिससे आने वाली सन्तानों में नाना प्रकार के दोष हो जाते हैं और पुत्र पुत्री आदि को पूर्णरूप से लालन पालन नहीं कर सकतीं।

अब रही चित्त एकाग्रता और ईश्वर का भजन। यदि यह दोनों कार्य भूखे रहने से होते तो आज कल बहुधा जन बिना अन्न के मारे मारे फिरते हैं, फिर उनका एकाग्र चित क्यों नहीं होता और वह ईश्वर के भजन में लिप्त क्यों नहीं रहते? आप जानते हैं कि एक दिन भोजन न मिलने से मनुष्य व्याकुल हो जाता है उसको दुनियां और दीन दोनों दीख पड़ते हैं, बुद्धिमें

अन्तर आता है कुछ का कुछ सुनता और समझता है, दिल भटकता रहता है फिर ईश्वर का भजन कैसा ? यही कारण है कि बहुत जन व्रती रहकर नाना कथायें वर्षों तक सुनते रहतेहैं परन्तु सौ में दो मनुष्य भी ऐसे न निकलेंगे जो उन कथाओं को सुना सकें फिर उन कथाओं पर चलना कैसा ?

यदि भूखे रहने से ही चित्त की एकाग्रता होती तो हमारे ऋषि मुनि क्यों इतना कष्ट उठाते और जंगलों में रह यम और नियमों का सेवन कर योगाभ्यास करते । इन सब हानियों के अतिरिक्त एक बड़ी हानि इन व्रतों से यह हो रही है कि स्त्रियों ने इसको ही मुक्ति का द्वार समझ कर पति सेवा को बिलकुल त्याग दिया । पति कुछ कहता वह कुछ करती हैं जिससे गृहस्थाश्रम में प्रेम नहीं आता दिन और रात झगड़े पड़े रहतेहैं । हे प्यारी बहिनों ! कदापि इन व्रतों के रहने से स्वर्ग नहीं पासकती वरन् नाना प्रकार के कष्ट उठाती हो तुम्हारा तो परम देव पतिहै, वही तुम्मारा तीर्थ है उसी की सेवा टहल से तुम आनन्द उठा सकती हो । जो फल यज्ञादि उत्तम कर्मों के करने से प्राप्त होता है वह तुमको केवल पति सेवा से ही मिल सकता है जैसा कि मनु अध्याय ९ श्लोक १३९ और शंखस्मृति अ० ९ श्लोक ८ में लिखा है—

> नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषितम् ।
> पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे महीयते ॥
> न व्रतैर्नोपवासैश्च धर्मेण विविधेन च ।
> नारी स्वर्गमवाप्नोति प्राप्नोति पतिपूजनात् ॥

मारकण्डेय जी महाराज ने युधिष्ठिर से कहा कि स्त्रियों को केवल पति सेवा ही से स्वर्ग मिलता है । परन्तु शोक है कि वर्तमान समय में इन उक्त वचनों पर कोई ध्यान नहीं देतीं किन्तु अधर्म में पड़कर अपने पति की आयु को हरती हैं और आप नरक को जाती हैं । जैसा कि विष्णुस्मृति अ० २९ श्लोक १९ और मनुस्मृति श्लोक १३४, १३९ में लिखा है:—

> पत्यौ जीवति या योषिदुपवासव्रतञ्चरेत् ।
> आयुः सा हरते भर्तुर्नरकंचैव गच्छति ॥
> जीवद्भर्तरि या नारी उपोष्यव्रत चारिणी ।
> आयुष्यं हरते भर्तुः सा नारी नरकं व्रजेत् ॥

मान्यवो ! जब यह अहंकार बहुत बढ़ा और सबको अत्यन्त दुःखदाई हुआ तो बहुत सज्जनों ने कोतवालों की भांति संसार के हितार्थ उद्योगरूपी

घोड़ोंपर चढ़ धर्म रूपीतलवार अपने हाथ में ले जीवन के भय को छोड़ कर काम, लोभ और अ[illegible]नरूपी शत्रुओंके मारनेको सारे संसार में फिरना प्रारम्भ किया और भिन्न २ स्थानों पर ज्ञानरूपी दियासलाईके वेद शास्त्ररूपी मसाले फिर जलाए। उन्हीं के प्रकाश से आज हम जान गये हैं कि पूर्व समय में ये व्रत प्रचलित न थे। वरन् और ही थे और उनसे हमको नाना प्रकार के सुख मिलते थे जिनको मैं भी आपके हितार्थ वर्णन करता हूँ। देखिये व्रत के अर्थ नियम के हैं अर्थात् वेदादि सत्य विद्याओं का पालन करना व्रत कहाता है, जैसा कि य० अ० १९ मं० ३० में लिखा है—

व्रतेन दीक्षमाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम्।
दक्षिणाश्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते॥

दक्षस्मृति अ० १ श्लोक ७ हारीतस्मृति अ० ३ श्लोक ५ में लिखा है कि जब वेद आरम्भ करे तो उसकी सिद्धिके लिये गुरुकुल में वेदोक्त व्रतों को करे। जैसे कि—

स्वीकरोति यदा वेदं चरेद्वेदव्रतानि च। दक्ष०॥
तस्माद् वेद व्रतानीय चरेत्स्वाध्याय सिद्धये। हारीत०॥

और ऐसा ही शंखस्मृति अ० ३ श्लोक १५ तथा विष्णुस्मृति अ० १ श्लोक २१ में लिखा है कि यज्ञोपवीत संस्कार होने के पश्चात् गायत्री मंत्र से लेकर वेद तक जिस २ ग्रंथको पढ़े उस उसका व्रत करे अर्थात् ब्रह्मचर्य रह कर वेदविद्या पढ़नेका नाम व्रत है। अनुशासनपर्व अ० १४२ में महेश्वर ने उमासे कहा कि वेद व्रतोंको धारण करना अति उत्तम है सब से उत्तम और शारीरिक वा आत्मिक बल का देने वाला व्रत ब्रह्मचर्य ही है जिसकी प्रशंसा प्रथम होचुकी है, इसी को परमोत्तम व्रत वेदादि सत्शास्त्रों में माना है, जैसा कि अथर्व० २ कां० ११ प्रपा० २४ वा १६ मंत्र२६ में लिखा है कि—

तानिकल्पद्ब्रह्मचारी सलिलस्य पृष्ठे तपोऽतिष्ठत्तप्यमानः।
समुद्रस्नातोबभ्रुः पिंगलः पृथिव्यां बहु रोचते॥

जो ब्रह्मचारी समुद्र के समान गम्भीर बन बड़े उत्तम ब्रह्मचर्य पूर्वक निवास करता है वह महा तप को करता हुआ वेद पठन, वीर्य निग्रह और आचार्य के प्रिय चरणादि कर्मोंको पूराकर स्नानादि करके विद्याओंका धरता तथा सुंदर वर्णयुक्त होकर पृथ्वी पर अनेक शुभ गुण कर्म स्वभावसे प्रकाशवान् होता है, वही धन्यवाद के योग्य है, और याज्ञवल्क्य स्मृत अ० ५१ में लिखा है—

गुरवेतु वरं दत्वा स्नायीत तदनुज्ञया।
वेद व्रतानि वा पारं नीत्वाह्युभयमेव वा॥

गुरुको दक्षिणा देकर उसकी आज्ञा से वेद समाप्ति या व्रतको पूरा कर वा दोनों को पूर्ण कर समावर्तन संस्कार करे। व्यासस्मृति अ० १ श्लोक ४० में लिखा है कि जो ब्रह्मचर्य व्रतको पूर्ण करता है वह स्वर्ग को जाता है।

शान्तिपर्व अ० १६० में भीष्मपितामह का वचन है कि चारों आश्रमों के लिये इन्द्रिय-निग्रह ही उत्तम व्रत है। महाभारत उद्योगपर्व अ० ४४ में लिखा है कि जो मनुष्य ब्रह्मचर्य व्रत को पूर्ण रूप से पालन करता है वह इस लोकमें शास्त्रकार होता है और अन्त को मोक्ष पाता है इन्हीं कारणों से मनुजी ने अ० ११ श्लोक १२१ में लिखा है कि जो द्विज अपनी इच्छा से अपने ब्रह्मचर्य को गिरा देता है उसका व्रत नष्ट हो जाता है, जैसा कि—

मारुतं पुरुहूतं च गुरुं पावकमेव च।
चतुरो व्रतिनोऽभ्येति ब्राह्मं तेजोऽवकीर्णिनः॥

और श्रीमद्भागवत स्कन्ध ११ अध्याय १७ में लिखा है कि ब्रह्मचारी गुरुकुल में रह विषय भोग से वच कर जब तक विद्या पूर्ण हो तब तक अखण्डित व्रत धारण करे, जैसा कि—

एवम्वृत्तो गुरुकुले वसेद्भोगविवर्जितः।
विद्या समाप्यते यावद्बिभ्रद्व्रतमखण्डितम्॥ ३०॥

मार्कण्डेयपुराण अ० ४१ में लिखा है कि ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्यमें स्थित रह कर चोरी, लोभ और हिंसाका त्याग करे ये ब्रह्मचारी का व्रत है जैसा—

अस्तेयं ब्रह्मचर्यं च त्यागोऽलोभस्तथैव च।
व्रतानि पंच भिक्षूणामहिंसापरमाणि वै॥

ऐसा ही लिंगपुराण अ० ८९ श्लोक २४ में लिखा है, जैसा कि—

अस्तेयं ब्रह्मचर्यं च अलोभस्त्याग एव च।
व्रतानि पंच भिक्षूणामहिंसापरमाणिह॥

वाल्मीक रामायण आरण्यकांड सर्ग ४७ में जब रावण संन्यासीका रूप धारण कर सीता के पास भिक्षार्थ आया और उनका वृत्तांत पूछा तब उन्होंने कहा कि हमारे स्वामी श्रीरामचन्द्र जो पिता की आज्ञा में दृढ़ व्रत थे, १४ वर्ष वन में रहने के लिये उद्यत हो गये, क्योंकि उन्होंने दो बातों की प्रतिज्ञा की थी-प्रथम तो दान दें परलें न और सदा सत्य बोलें। हे ब्राह्मण! श्रीरामचन्द्रजी ने ये उत्तम व्रत धारण किये हैं।

सर्वलक्षमण सम्पन्नं न्यग्रोधपरिमण्डलम् ।

सत्यसन्धं महाभोगमहं राममनुबूना ॥ ३४ ॥

पद्मपुराण द्वितीय खण्ड अध्याय ६६ में सुकर्मा ने पिप्पल से कहा है कि हम तो माता पिता की सेवा करना ही एक व्रत जानते हैं ।

नरसिंहपुराण अ० ५८ श्लोक २१ में लिखा है कि ब्रह्मचारी वेदपाठ की सिद्धि के लिये नियमित व्रतों को धारण करे । पद्मपुराण सृष्टि खं० अ० १९ में कश्यपजी ने कहा है कि सब अश्वमेधादी यज्ञों में एक यम अर्थात् इंद्रियों को सब विषयों से निवृत्त करना ही उत्तम व्रत है, इससे अब हम वे चिन्ह बताते हैं जिनके शांत होने से हित होता है ।

नम्रता, मधुरता, संतोष, शास्त्रपढ़ना, किसीकी निंदा न करनी, गुरुका पूजन करना सब प्राणियों पर दया रखना, अपमान मे कोप न करना सम्मान में बहुत हर्षित न होना सदा सुख दुख में सम रहना ही शांति कहाता है और ऐसे ही पुरुष सुखको भोगते हैं क्योंकि शास्त्र के पढ़ने का मुख्य अभिप्राय इंद्रियों का दमन करना ही है । यही सनातन धर्म है, इस लिये सब व्रतों में भी परायण दमन ही है । इससे इंद्रियों का दमन करना आवश्यक है । पद्मपुराण पष्ठ उत्तर खंड अ० ७४ में महादेव जी ने पार्वती जी से कहा है कि सात्विक तपस्या से स्वर्ग मिलता है और राज स्वभाव से राजस उत्पन्न होता है क्रूर कर्म करने वाला निठुर मनुष्य तापस भावसे जो तपस्या करता है वह राक्षसों का तप कहलाता है ।

जो मनुष्य पांचों इद्रियों का निग्रह रूप तप करता और बुरे कर्मों में जी नहीं देता तो राग से निवृत मनुष्य को घर ही तपोवन है ।

महाभारत उद्योगपर्व में सनत सुजात मुनिका वचन है कि (१) अपने वर्ण और आश्रम के अनुसार कर्म करना, (२) सत्य बोलना, (३) इंद्रियों को वशमें रखना, (४) किसी की उन्नति देख कर न जलना, (५) निन्दा न करना, (६) यज्ञ, (७) दान, (८) अर्थ समेत वेद को पढ़ना, (९) कोपको रोकना, (१०) आपत्ति के समय में भी सत्यको न त्यागना ये ही व्रत हैं । जो इन व्रतों को धारण करता है वह सम्पूर्ण पृथ्वी को अपने आधीन कर सकता है । जो मनुष्य ब्रह्मचर्य रख कर विद्या को प्राप्त कर उपरोक्त गुणों को धारण करता है वह मनुष्य ऋषि, देवता, मुनि, और महात्मा कहाता है और यही मोक्ष का उपाय है ।

इसके अतिरिक्त शान्तिपर्व अध्याय २२१ में युधिष्ठिर महाराज ने

भीष्मपितामहसे प्रश्न किया है कि साधारण लोग जो देहपीड़ा कर उपवास को तपस्या कहा करते हैं, क्या यही तपस्या है ? तब भीष्म ने उत्तर दिया कि साधारण लोग जो ऐसा समझते हैं एक महीना वा एक पक्ष उपवास करने से तपस्या होती है सो यह आत्म विद्या की विघ्न स्वरूप तपस्या है। इस लिए यह वृत अच्छे पुरुषों की सम्मति के विपरीति हैं हां जो गृहस्थ होकर अनुगामी होते और सन्यास वृत को धारण करते अतिथि की सेवा, प्राणी-मात्र पर दया करते हैं वे ही सच्चे वृती हैं। ऐसाही शान्तिपर्व अ० ७८ में कहा है। और अत्रिस्मृतिमें भी यही उपदेश मिलता है कि आश्रमोंके धर्मों को यथावत् करना परम वृत है।

अनुशासनपर्व अ० १४३ में महेश्वरने व्रत किया है, श्रीमद्भागवत स्कन्ध ६ अ० १८ में कश्यपजी ने दिति को पुंसवन वृत बताया है, उसमें लिखा है (१) अहिंसा, (२) दुर्जनों से वार्त्ता न करे, (३) झूठ न बोले, (४) क्रोध न करे, (५) मांस न खाय, (६) सत्य और प्रिय भाषण करे, (७) दिन में न सोवे, (८) सदा पवित्र रहे और पतिका पूजन आदि नियम पालने की आज्ञा है। और अ० ११ में इसकी विधि का विस्तार किया है, जहांप्रति दिन हवन करने की भी आज्ञा दी है और यह भी लिखा है कि जो इन वृतों को धारण नहीं करते उनके वृत नष्ट हो जाते हैं और धारण करने वालों को सर्व प्रकार के सुख मिलते हैं।

प्रियवरो ! जैसी दुर्दशा वर्त्तमान समय में व्रतोंकी हो रही है, उससे अधिक तपस्या की है, कोई एक पैर से वा हाथ उठाकर रहने को तपस्या कहते हैं, कोई झूलना में पड़े रहने को उग्रतप कहते हैं और कोई अन्न छोड़ने आदि को। परन्तु यह सब मिथ्या है, देखिये श्रीकृष्ण महाराजने गीता में कहा है कि तपस्या तीन प्रकार की है। शारीरिक, वाचिक और मानसिक, और जब यह तीनों प्रकार की तपस्या इकट्ठी हो जावें तब वह मनुष्य तपस्वी कहलाता है। इन तीनों की व्याख्या इस भांति की है जो मनुष्य देव, ब्राह्मण, गुरु, तत्वज्ञानी इनकी पूजा करे और बाहर भीतर से पवित्र रहे और नम्रता पूर्वक रहे ब्रह्मचर्य का साधन करे और हिंसा न करे तो उसको शारीरिक तप कहते हैं जैसा कि-

देवद्विजगुरुप्राज्ञ पूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ॥

ऐसा वचन कहे जिससे किसी को किसी प्रकार का भय न हो सत्य

प्रिय और हितकारक हो, ऐसे वचन वेद शास्त्र के अभ्यास से होते हैं यही वाचिक तप है जैसा कि—

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यप्रिय हितं चयत्।
स्वाध्यायाभ्सनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते॥
मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपोमानस मुच्यते।

मन प्रसन्न और निर्मल रहे, क्रूर न हो मन में ईश्वर स्वरूप की भावना हो, विषय से निवृत्ति होय लोकव्यवहार में कपट से रहित हो उस को मानस तप कहते हैं।

व्यास जी महाराज ने कहा है कि मनको एकाग्र करके इन्द्रियों को वश में रखना यही तप कहाता है क्योंकि मन बड़ा चंचल है, इसको अधीन कर लेना ही परम तप है। मनुस्मृति अ० २ श्लोक १६९ में कहा है कि यदि तप करना हो तो वेदका सदा अभ्यास करे क्योंकि यही परम तप है और श्लोक १६७ में कहा है कि जो ब्रह्मचर्य पूर्ण कर प्रति दिन द्विज गृहस्थ हो कर वेदाध्ययन करता है वह नखसे शिख तक परम तप करता है और श्लोक २२७ से २२९ तक में कहा है कि माता पिता और आचार्य इन तीनों के प्रसन्न होने पर सम्पूर्ण तप पूर्ण हो जाते हैं क्योंकि इन तीनों की सुश्रूषा परम तप कहाती हैं।

पद्मपुराण भूमि खण्ड अध्याय १९ में सुमना ने सोमदत्त को उपदेश किया है कि सदा आचार से रहे, काम, क्रोध से वर्जित प्राणियों के हित का उद्यम करे उसको तप कहते हैं तृतीय सर्ग खण्ड में श्रीरामचन्द्र जी ने कहा है कि स्वर्ग पाने के लिये सत्य बोलना परम तप है।

नरसिंह पुराण अध्याय ५४ में लिखा है कि सत्य तप से रहित होने से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र के समान होंगे और वनपर्व अध्याय २०० में मार्कण्डेय ने युधिष्ठिर से कहा है कि अन्न न खाना सहज है परन्तु अन्न खाकर इन छः चंचल इन्द्रियों का रोकना कठिन है, इसलिये इन्द्रियों का वश में रखना उग्र तप है। और मनु० अ० ११ श्लोक २३५ में ब्राह्मण का तप धर्म शास्त्र का पढ़ना, क्षत्रिय का तप प्रजा की रक्षा करना वैश्य का तप नित्य व्यापार और शूद्रका तप नित्य सेवा करना है। अर्थात् वर्णाश्रम धर्मों को करना यथार्थमें तप है जैसाकि—

ब्राह्मणस्य तपोज्ञानं तपः क्षत्रस्य रक्षणम्।

वैश्यस्य तु तपो वार्ता तप शूद्रस्य सेवनम् ॥

और इसी अ० के २४६ श्लोक में नित्य वेद पढ़ना और यथाशक्ति यज्ञ करना और धैर्य रखना और श्लोक २४७ में बारम्बार वेद पढ़ने को ही परम तप कहा है और याज्ञवल्क्य जी महाराजने अ० श्लोक १०१ में स्पष्ट कह दिया है कि सम्पूर्ण बातों को छोड़कर आत्मा में लिप्त रहनेको तप कहते हैं। इस लिये मान्यवरो ! आप इन मिथ्या व्रत और तपको छोड़ वेदानुकूल उपरोक्त व्रतों को वेद द्वारा जान उनके पूर्ण करने के अर्थ सत्य प्रतिज्ञा कीजिये जब ही आनन्द मिलेगा अन्यथा नहीं।

* तीर्थ और मोक्ष *

मान्यवरो ! प्रत्येक ऋषिग्रन्थोंमें उनके जीवन चरित्र और उनके नियत किये हुये नियम प्रत्यक्ष प्रकट कर रहेहैं कि इस संसारमें उनका मुख्य कर्तव्य क्या था। वह धन के अभिलाषी नहीं थे और न अन्य सांसारिक वस्तुओं में अपने चित्त को लगा देते थे किन्तु उनका सच्चा प्रेम परमात्मा को प्राप्त करना ही था। इस अभिलाषा के सिद्ध करने के अर्थ उन्हों ने कठिन कठिन नियमों को अति सुगम समझा इस लिये उन्हों ने अपनी आयु का अधिक भाग इसी अभिप्राय के सिद्ध करने के लिये नियत किया था और यह आयु के प्रथम अमूल्य भाग में सब से प्रथम नियम पूर्वक विद्याध्ययन करते हुये ब्रह्मचर्य को पूर्ण करते थे इसका समय ४८ वर्ष तक था। विद्या से आत्मिक और ब्रह्मचर्य से शारीरिक बल प्राप्त होता था। जिनकी अति आवश्यकता है। आत्मिक बल से सत्य और असत्य का निर्णय और शारीरिक बल से उसके पूर्ण करने को कटिबद्ध रहते थे तत्पश्चात् गृहस्थ होते थे। यद्यपि यह समय गृहस्थी के भोग विलास और सन्तानोत्पादनार्थ था परन्तु इन आनन्दों में पड़ कर भी वह अपने पवित्र आशय को न भूलते थे। वरन् नाना प्रकारके तप, व्रत और तीर्थ यज्ञादि नित्य करते थे। परन्तु शोक कि वर्त्तमान समय में इनके मुख्य आशय को बहुधा जन नहीं जानते और नाना प्रकार के प्रपञ्च रचते हैं कि जिन को अन्य देशीय जन जान कर नाना दोष बतलाते हैं। मान्यवरो यह परिपाटियां अति विचार और बुद्धिमानी से नियत की गई थीं क्या कोई जन ऐसा संसार में जान पड़ता है जो उनके मुख्य आशय को जान उन में

शंका उत्पन्न कर सके ? व्रत और तपस्या का मुख्य अभिप्राय मैं आपको बतला चुका हूँ, अब आपको संक्षेप से ऋषि तीर्थों का वृत्तान्त सुनाता हूँ, देखिये तीर्थ शब्द 'तृप्लवनसंतरणयोः' इस धातु से औणादिक 'थक्' प्रत्यय करने पर सिद्ध होता है, 'तरन्ति येन यस्मिन् वा तत्तीर्थम्' अर्थात् जिससे जन तरते हैं वा जिसमें जन तरते हैं उसको तीर्थ कहते हैं।

यजुर्वेद अध्याय १६ मंत्र ६१ में लिखा है कि मनुष्योंके दो प्रकारके तीर्थ हैं उनमें पहिले तो वे हैं जो ब्रह्मचर्य गुरु की सेवा, वेदादि शास्त्रों का पढ़ना पढ़ाना, सत्संग, ईश्वर की उपासना, सत्य सम्भाषण आदि दुःख सागर से मनुष्यों को पार करते हैं और दूसरे वे समुद्रादि जलाशयों के पार आने जाने में समर्थ होते हैं, जैसा कि—

> ये तीर्थानि प्रचरन्ति सृकाहस्ता निषङ्गिणः ।
> तेषाᳪसहस्रयोजनेऽवधन्वानि तन्मसि ॥

किसी महात्मा का वचन है—

> सत्यं तीर्थं क्षमा तीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः ।
> सर्वभूत दयातीर्थं सर्वत्रार्जवमेव च ॥
> दानं तीर्थं दमस्तीर्थं सन्तोषस्तीर्थमुच्यते ।
> ब्रह्म चर्यं परम तीर्थं तीर्थं च प्रियवादिता ॥
> ज्ञानं तीर्थं धृतिस्तीर्थं पुण्यं तीर्थमुदाहृतम् ।
> तीर्थानामपि ततं तं विशुद्धिर्मनसः परा ॥

सत्य जो कुछ देखा सुना हो और जानता हो वही बिना कुछ अपनी ओर से मिलाये वर्णन करना तीर्थ है।

क्षमा समर्थ होने पर भी क्षमा करना तीर्थ है।

इन्द्रियनिग्रह—पांच कर्म इन्द्रिय और पांच ज्ञान इन्द्रिय को अपने २ विषयों से रोकना तीर्थ है।

दया—अपने आत्मा के सदृश औरों के आत्मा का जानना तीर्थ है।

दान-पुस्तकालय, विद्यालयादि को खोलना, विद्यार्थियों और अनाथों आदि भूखों की यथा योग्य सहायता करना तीर्थ है।

दम पांच कर्मेन्द्रियों को बाह्य विषयों से रोकना और दुःख सुख को समान जानना तीर्थ है।

संतोष-सत्य कार्यों के द्वारा जो कुछ प्राप्त हो उस में जीवनिर्वाह करना तीर्थ है।

ब्रह्मचर्य—सब प्रकार से वीर्य की यथावत् रक्षा करना परम तीर्थ है।

ज्ञान—भूत अभूत वस्तुओं का जानाना तीर्थ हैं।

धृतिः–सत्य प्रतिज्ञाओंका पालन करना तीर्थ है।

पुण्य:—जो ब्राह्मणादि देश की उन्नति में बाधक नहीं हैं और न देश को उन्नति कर सकते हैं उनको अन्न जल से तृप्त करना तीर्थ है।

मन का शुद्ध करना—मन सत्य बोलने से शुद्ध होता है, यह परम तीर्थ है। और भी कहा है—

मनोविशुद्ध पुरतस्तुतीर्थं वाचायमस्त्विन्द्रियनिग्रहस्तपः।
एतानि तीर्थानि शरीरजानि स्वर्गस्य मार्गं प्रति वेदयन्ति॥

मन की पवित्रता, सत्य और विषयों को वश में रखना मनुष्यों के तीर्थ हैं और यही सुख के दाता है। मनुस्मृति अध्याय १२ श्लोक १२६ में लिखा है, कि-

एतमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम्।
इन्द्रमेकेऽपरे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम्॥

उस परमेश्वर को कोई अग्नि, कोई मनु, कोई इन्द्र, कोई प्राण और कोई तीर्थ कहतेहैं।

और वृद्ध गौतमसंहिता में भी कहा है कि 'क्षमावांस्तीर्थ मुच्यते' कि क्षमावान ही तीर्थ स्वरूप हैं। शांति पर्व अ० १३३ में देवता, ऋषि पितर अतिथि आदि की पूजा करने को तीर्थ स्वरूप वर्णन किया है। इस के अतिरिक्त हमारे पूर्वज भी इस विषयको अच्छे प्रकार जानते थे कि संसार में रहना अति दुर्लभ है, गृहस्थी अति अगाध समुद्र है, इसमें कभी मनुष्य लोभ के कारण ऐसा हो जाता है कि जिससे वह सत्य असत्य को कुछ नहीं जानता प्रति समय धन ही की लालसा में लगा रहता है न धर्म को जानता है न अधर्म को बहुतोंको कष्ट देता है कभी मोह अपना प्रचंडबल दिखलाता है जिससे वह स्त्री पुत्र आदि संबन्धियों के झूठे प्रेम में ऐसा फस जाता है कि परमेश्वर को भूलो लगता है। अन्याय से बहुधा वस्तुयें अपने कुटुम्ब के अर्थ सञ्चय करता रहता है, कभी काम में आकर अपना राज्य करता है कि जिसके कारण धन और धर्म को भूलकर नाना प्रकार के अत्याचार करता रहता है, कभी क्रोध में ऐसा लिप्त हो जाता है कि उस समय किसी का ध्यान नहीं करता, चाहे सर्व नष्ट हो जावे। यही मनुष्य के महा शत्रु हैं और सदा धर्म से हटा कर अधर्म की ओर उनका ध्यान ल-

गाया करते हैं, इस लिए इन को सदा वश में करने का वे उद्योग करते रहते थे, क्योंकि बिना इनके वश किए आत्मज्ञान नहीं हो सकता और यह वेदादि शास्त्रों के उपदेश से अपने आधीन हो जाते हैं, इस कारण कभी २ वह नियमपूर्वक उन ऋषि मुनियों के समीप जाया करते थे जो अति विद्वान् थे, सांसारिक सुखों के त्यागी हो परमात्मा के भजन में लगे रहते थे और जो मनुष्यों को सत्योपदेश देने को उद्यत रहते थे और जो उनकी शंकाओं का समाधान कर अनेक प्रकार के सुखों का उपाय बतलाते थे।

इतिहास से ज्ञात होता है कि यह ऋषि मुनि सदा ऐसे स्थानों पर कुटी बना कर रहा करते थे जहांका जल वायु आरोग्यदायक होता था, जहां बड़े २ बन उपवन थे और जहां उन के भोजनादि की सम्पूर्ण वस्तुयें सुगमता से मिलती थीं, ऐसे स्थानों को वह तीर्थ कहा करते थे क्योंकि उनका सत्योपदेश उनके चित्त को सांसारिक विकारों से हटाकर परमात्मा की ओर लगा देता था जिससे वह सर्व प्रकार के आनन्द भोगते हुए मोक्ष को प्राप्त करते थे। देखिए मार्कण्डेय जी महाराज ने कहा है कि वेद के जानने वाले, व्रत करने वाले, ज्ञानी, तपस्वी, ऋषि, मुनि, ब्राह्मण जहां रहते हैं वह भी तीर्थ हैं चाहे गांव और जंगल क्यों न हो। और श्रीमद्भागवत स्कंध ३ अ० १ श्लोक १६ में विदुरजी के चरणों और ऋषियों के निवास स्थान को तीर्थ कहा है, जैसाकि—

सनिर्गतः कौरवपुण्यलब्धो गजाह्वयात्तीर्थपदः पदानि।

और एक स्थान पर श्रीकृष्ण के चरणों को तीर्थ बतलाया है क्योंकि वह ज्ञानमय मूर्ति और योगिराज थे। इसके अतिरिक्त जब श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेव जी महाराज रानियों समेत कुरुक्षेत्र को गये तब वेदव्यास, नारद, देवल, विश्वामित्र, भरद्वाज, गौतम, भृगु, कश्यप, अत्रि, बृहस्पति, याज्ञवल्क्य आदि अनेक ऋषि वहां पधारे, बहुत आदर सत्कार करने के पश्चात् श्रीकृष्ण महाराज जी बोले कि आज हमको इन ऋषियों के दर्शनों से अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ यही सच्चा तीर्थ और तप है।

बनपर्व अ० ८५ में नारद मुनि ने बहुत से तीर्थों का वर्णन कर के अन्त को कहा है कि तीर्थों के जाने का प्रधान फल यही है कि वहां पर बाल्मीक, देवल, गौतम आदि अनेक ऋषियों के दर्शन होते हैं। देखिये श्री रामचन्द्र महाराज ने भी बनवास के समय उन्हीं स्थानों पर निवास किया था जहां ऋषि मुनि निवास करते थे। रामायण से प्रकट होता है कि श्रीराम

ने सुगन्धित धुआं को देखकर प्रयाग तीर्थ की परीक्षा की थी जहां भरद्वाज मुनि रहते थे वहां उनकी भेंट की, जिन्हों ने नाना प्रकार के उपदेश श्रीमान् को किये। वहां से चल कर चित्रकूट पर (जहां अनेक ऋषि रहते थे) तत्पश्चात् वाल्मीक के आश्रम को सिधारे, फिर वहां से अत्रि के आश्रम को गये जिनकी स्त्री अनुसुइया जी ने महारानी सीता जी को अति उत्तम पतिव्रत धर्म का उपदेश किया था तत्पश्चात् शरभङ्ग, सुतीक्ष्ण, अगस्त आदि महात्मओं से मिले और सतोपदेश सुने जिससे उनको मन में बड़ा आनन्द होता था।

मान्यवरो ! प्राचीन पुस्तकों से जाना जाता है कि विद्वान् से विद्वान् पुरुष भी इन तीर्थों में जाने से प्रथम बहुत प्रकार के नियमों का पालन करते तत्पश्चात् बहुत थोड़े मनुष्यों के साथ जाते थे, क्योंकि उत्तम से उत्तम परीक्षित औषधियां कुछ भी लाभ नहीं देतीं यदि उनके सेवनीय नियमों पर न चलाजावे इसी भांति ऋषियों वा उपदेश मोक्ष का सुखका देने वाला होता था परन्तु यदि कोई मनुष्य सावधान चित्त होकर न सुने तो किस प्रकार स्मरण रह सकता है फिर उनके अनुसार कार्य करना कैसा और सुख कहां ? इसी लिये महाभारत में शौनक मुनिने युधिष्ठिर महाराज से कहा है कि तीर्थयात्रा का फल उन्हीं मनुष्यों को मिलता है जो अपने हाथ पांव और मनको आधीन कर लेते हैं और निरभिमानी युक्ताहार और शीलवान् होते हैं। और लोमष मुनि ने महाभारत वनपर्व अ० ९२ में युधिष्ठिरजी से कहा है कि तीर्थों में बड़े ऋषि निवास करते हैं जो सब प्रकार के आनन्द देनेवाले हैं, परन्तु पापी अबुद्धि इन के फलों को नहीं पाते। तीर्थयात्रा को जाने के लिये उपस्थित हुए तब व्यासजी ने उनको शिक्षा की हे पाण्डव ! मनको शुद्ध कर शान्ति सहित तीर्थों को जाइये। मन के शुद्ध होने से बुद्धि पवित्र होती है जिससे आप शारीरिक व्रतों और नियमों को अच्छे प्रकार धारण कर सकते हैं और अगस्त मुनिने कहा है कि जिनकी सब इन्द्रियां वश में होती हैं जो सब प्राणियों को समान जानकर सत्य का आचरण करते हैं और किसी प्रकार का अभिमान नहीं करते स्वल्पाहारी होते हैं उन्हीं को तीर्थों का फल मिलता है। और व्यासस्मृति अ० ८ श्लोक ८५ में लिखा है कि पराई स्त्री और पराये धन का चुराने वाला मनुष्य तीर्थों को भी जावे तो भी उसका किया हुआ पाप नष्ट नहीं होता। जैसा कि—

परदारान् परद्रव्यं हरते यो दिने दिने।

सर्वतीर्थाभिषेकेण पापं तस्य न मुच्यते ॥

और शंखस्मृति अ० ८ श्लोक १९ में कहा है जिनके हाथ पैर मन विद्या, तप कीर्ति अपने वश में है वही तीर्थ के फल को भोगते हैं। परन्तु शोक कि वर्तमान समय में हमारे अनपढ़ अज्ञानी भाइयों ने काशी, प्रयाग मथुरा, बद्रीनारायण, केदारनाथ, जगन्नाथ, नैमिषारण्य और अनेक गंगातटों को तीर्थ मान रक्खा है कि जिनके महात्म्य भी वर्तमान समय के नाममात्र के पण्डितों ने लोभ वश होकर किसी न किसी पुराण के अंतर्गत करदिये हैं जिनको बहुधा जन अनेक अवसरों पर सुनते रहते हैं प्रत्येक महात्म्य बतला रहा है कि इसी एक तीर्थ विशेष वा गंगा स्नान से वह फल होगा जो संसार में किसी सत्क्रिया से नहीं हो सकता! देखिये पद्मपुराण में श्री यमुना जी के जल बिना गति नहीं हो सकती, श्रद्धादि उत्तम कर्म फल देने वाले हैं वह यमुना के स्नान मात्र से ही प्राप्त होते हैं। सतयुग में तप त्रेता में यज्ञ, द्वापर में पूजा और कलयुग में यमुना स्नान सब सुखों का दाता है व्रत, दान, तप से हरि प्रसन्न नहीं होते किन्तु श्री यमुना जी के स्नान से प्रसन्न होते हैं। और गङ्गा के दर्शन करने से सौ जन्म के पीने से तीन सौ जन्म के, और स्नान करने से हज़ारों जन्म के पाप कलयुग में नाश होते हैं, जैसाकि।

दृष्ट्वाजन्म शतं पापं पीत्वाजन्मशतत्रयम्
स्नात्वा जन्म सहस्राणि हन्ति गंगा कलौयुगे ॥

और भी लिखा है कि गङ्गा का नाम सौ योजन से भी ले तो पाप का नाश हो जाता है और विष्णुलोक को पाता है, जैसा कि—

गंगा गंगेति यो ब्रूयात् योजनानां शतैरपि।
मुच्यते सर्व पापेभ्यो विष्णु लोकं सगच्छति ॥

गया के महात्म्य में कहते हैं कि 'जो गया न गया सो भया न भया' और बद्री नारायण के जाने वाले कहते हैं जो जावे बदरी, न आवे उदरी। जो आवे उदरी, कभी न होय दरिद्री।' सुदामापुरी में अठारा कुठरियों में फिरने से ८४ योनियों से छुटकारा होता है। इसी प्रकार अनेक श्लोक और कथायें लिखी हुई हैं जिससे प्रकट है कि महा पापी मनुष्य भी एक वार गङ्गा यमुना, बद्रीनारायण आदि के दर्शन से मुक्त हो जाते हैं!

मान्यवरो! जहां तक मैं जानता हूँ इसके दर्शन या स्नान से कदापि मोक्ष नहीं हो सकती और यदि होसकती है तो अब तक जिन जिन मनुष्यों

ने स्नान दर्शनादि निरन्तर किये हैं उनकी मुक्ति हो जानी चाहिये थी सो क्यों न हुई ! यदि कहो कि शरीर त्याग के पश्चात् मुक्ति होगी, तो उनमें जीवन्मुक्ति के लक्षण राग द्वेष, लोभ, मोह क्रोध का त्याग वैराग्य, ध्यान समाधि के लक्षण होने चाहियें। जिससे निश्चय हो जाय कि इनकी मुक्ति शरीरान्त समय हो जायगी यदि कहो कि पापों से मुक्ति होने का अभिप्राय है तो विचारना चाहिये कि पाप क्या वस्तु है क्या शरीर के ऊपर मैल के समान है जो गङ्गामें धोये जांयगे। संचित पापोंकाअन्तः करण स्थान जिस में दुष्ट वासना रूप से पाप रहते हैं उनका प्रकार शोधन तप करने द्वारा से हो सकता है, जलादि से नहीं। मनु० अ० ५ श्लोक १०९ में लिखा है।

अद्भिर्गात्राणि शुद्ध्यन्ति मनः सत्येन शुद्ध्यति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यति॥

जलसे केवल शरीरशुद्ध होता है, मन सत्यसेशुद्ध होता है, आत्मा विद्या और तपसे शुद्ध होता है बुद्धि ज्ञानसे पवित्र होती है। और भी लिखा है कि

क्षान्त्या शुद्ध्यन्ति विद्वांसो दानेनाकार्य्यकारिणः।
प्रच्छन्नपापा जप्येन तपसा वेदवित्तमाः॥

विद्वान लोग शांति से शुद्ध होते हैं न करने योग्य कर्मोंके करनेवाले दान अर्थात् विद्यादि देने वा अनाथ दीन वा सुपात्र विद्वानों को अन्नादि उत्तम पदार्थ देने से शुद्ध होते हैं, जिनके पाप छिपे हुये हैं। वे गायत्री आदि वेद मंत्रों को निरन्तर विधिपूर्वक जप करने से, और वेद के ज्ञाता निरंतर विधिपूर्वक तप करने से शुद्ध होते हैं।

बृहन्नारदीयपुराण अध्याय ३१ में लिखा है कि बाह्य और अभ्यन्तर भेद से दो प्रकार का शौच है। सो मृतिका और जलसे तो बाहर की शुद्धि और भाव शुद्धि से भीतर की पवित्रता है। हे ऋषियो ! अंतःकरण की शुद्धि बिना जो यज्ञ आरम्भ किये जाते हैं वे फलित नहीं होते जैसे भस्म में होम क्रिया निष्फल है, इस लिये जिनका भाव शुद्धि नहीं है उनकी सम्पूर्ण क्रिया निष्फल हैं, इस लिये स्नेहादिकों का परित्याग करके सुखी होना अभीष्ट है। हे ऋषियो ! दुष्ट चित्त जन हजार बार मृतिका और करोड़ कलशों के जलों से शौच करें पर वह चाण्डाल ही कहलाता है। जो मनुष्य अन्तःकरण की शुद्धि के बिना बाहरकी शुद्धि करता है वह सजाये हुये मदिरा के घड़े के समान है इस लिये जो कोई बिना चित्त शुद्धि किये तीर्थ यात्रा करते हैं तो उनको तीर्थ पवित्र नहीं करते, जैसे मदिराके पात्रको नदियां पवित्र नहीं करसकतीं।

हे पाठकगणों ! तनिक ध्यान दीजिये यदि जल में स्नान करने वा दर्शन या रेणुक के मुंहमें डालनेसे ही मुक्ति और पापोंकी निवृत्ति होती तो फिर वेदोंके वह उपदेश कि वेदादि विद्या पढ़ो, ब्रह्मचर्य धारण करो, धर्मानुसार धन को उपार्जन करो, सत्पुरुषों का संग करो, सत्पुरुषोंको दान दो यम, नियमका पालन करो, योगमें चित्त लगाओ इत्यादि सब मिथ्या ही हो जायेंगे ।

इसके उपरांत जब स्नान करनेही से मोक्ष होती है तो फिर यह कहना भी मिथ्या हुआ जाता है कि 'ऋतेज्ञानान्नमुक्तिः' यदि स्नान ही मुक्ति का कारण है तो प्रयागमें भरद्वाज, हरिद्वार में मैत्रेयजी आदि ऋषि मुनि हवनादि यम नियम योगाभ्यास में नाना प्रकार के कष्ट निष्फल ही उठाया करते थे ? वर्त्तमान समय में भी देखा जाता है कि दर्शन से ही मुक्ति होती है फिर स्नान करके क्या आवश्यकता ? इससे यदि स्नान भी किये फिर नाना प्रकार दान करने की क्या आवश्यकता ? इससे भी विदित हुआ कि स्नान होने के पिछे भी दानादि उत्तम कर्म करने की आवश्यकता है । हम देखते हैं कि कोई गंगा पर बैठ कर जपादि भी करते हैं, यदि यही मुक्ति का कारण होता है तो जपादि की क्या आवश्यकता है ?

इसके उपरांत श्रीरामचन्द्र महाराजने रामायणमें निज मुखसे वर्णन किया है कि वेदोक्त कर्मों के करने से मनुष्यों को मोक्ष प्राप्त होती है, इसकी क्या आवश्यकता थी ? राजा दशरथ जी महाराज ने राजसूय यज्ञ किये थे श्री कृष्ण महाराज ने भी अर्जुन को गीता में वेदोक्त कर्मों के करनेका महात्म्य वर्णन किया है । इसके अतिरिक्त श्रीकृष्ण महाराजने कुरुक्षेत्र में महर्षियोंके बीच वर्णन किया है कि महात्माओं के दर्शन करने से मनुष्यों को नाना प्रकार के लाभ होते हैं । इसके उपरांत जब गंगा स्नान से ही मुक्ति होती है तो फिर श्रीमद्भागवत में नाना कर्मों का व्याख्यान व्यास जी महाराज ने संसार को भ्रम में डालने के लिये क्यों किया ? इनके अतिरिक्त देखिये पुराण भी पुकार करकह रहे हैं कि चाहे पर्वत के बराबर मिट्टी मिले और गंगा के सारे जलसे मृत्यु पर्यंत स्नान करता रहे तो भी दुष्ट स्वभाव और दुष्ट विचार वाला मनुष्य शुद्ध नहीं हो सकता जैसा कि--

गंगातोयेन कृत्स्नेन मृद्भारैश्च नगोपमैः ।
आमृत्योः स्नानश्चैव भावदुष्टो न शुद्ध्यति ॥

भागवत स्कन्ध १० अ० ९४ श्लोक में लिखा है कि जलमय स्थान को

तीर्थ तथा मृण्मय पाषाण मूर्ति को देवता नहीं कहते हैं, जैसा कि—

नह्यम्मयानि तीर्थानि नदेवामृच्छिलामयाः ।

लिंगपुराण अ० २५ में लिखा है कि जिसका अंतःकरण शुद्ध न हो वह चाहे जितने जल से स्नान करे परन्तु शुद्ध नहीं होता, अर्थात् स्वभाव पुरुष का किसी नदी वा सरोवरमें स्नान करने से से शुद्ध होना अति कठिन है। मनुष्यों का चित्त कमल अज्ञानरूपी रात्रिसे संकुचित हो रहाहै इसको ज्ञान रूपी सूर्य की किरण से विकसित करना उचित है, जैसा कि—

भावदुष्टोऽम्भसिस्नात्वा भस्मना च न शुद्ध यति ।
भावशुद्ध स्वरेच्छौचमन्यथा न समाचरेत् ॥ १० ॥
सरित्सरस्तडागेषु सर्वेष्वाप्रलयं नरः ।
स्नात्वा भावदुष्टश्चेन्न शुद्धयतिन न संशयः ॥ ११ ॥
नृणां हि चित्तकमलम्प्रबुद्धमभवद्यदा ।
प्रबुद्ध नमथाज्ञानं भानोर्भासा सदा शुचिः ॥१२॥

अर्थात् वार्ता यहहै कि जलके स्नान करनेसेमुक्तिनहींहोतीवरन् आत्मिक ज्ञानही मुक्तिका कारण है, जैसा यजुर्वेद अ०३१ मंत्र १८ में लिखाहै-

तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ।

उसी एक सर्वसाक्षी परमात्माको जान कर जन्म मरणसे छूट सकता है, अन्य कोई मुक्ति का मार्ग नहीं है। और मनु अध्याय १२ श्लोक ८३ में लिखा है वेद का पढ़ना और उसके लेखानुसार तप करना, आत्मज्ञान, इंद्रियोंको वशमें करना किसीको दुःखन देना और गुरुकी सेवा करनाइन छः कर्मों से मोक्ष होती है।

वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानमिन्द्रियाणांच संयमः ।
अहिंसागुरुसेवा च निश्रेयसकरं परम् ॥

परन्तु इनमें भी आत्मज्ञान को मुख्य माना है, जैसा इसी अध्याय के ८४ श्लोक में लिखा है।

सर्वेषामपि चैतेषामात्मज्ञानं परंस्मृतम् ।
तद्ध्याग्रयं सर्वविद्यानां प्राप्यतेह्यमृतं ततः ॥

नरसिंहपुराण अध्याय ६७में मनुजीने भारद्वाजसे कहा है कि पृथ्वीतीर्थ जो मैंने ऊपर वर्णन किये हैं उनसे मानसी तीर्थ विशेष फलदायक हैं उनको सुनिये। मनका निर्मल रखना, रोगादिकों से व्याकुल न होना, सत्य सबके ऊपर दया करना, इन्द्रियों को जीतना, गुरुकी, माता पिता की सेवा करना,

अपने धर्मका करना, अग्नि की उपासना अर्थात् होम करना, यह सब प्रत्येक तीर्थ हैं, इनको ही पुण्यतीर्थ कहा है।

शिवपुराण ज्ञानसंहिता अ० ३५ में लिखा है जो माता पिता को छोड़ कर तीर्थ को जाता है उसको माता पिता के मारने की हत्या होती है, पुत्र को पिता के चरणों की ही सेवा करना महातीर्थ है, स्त्री का तीर्थ उसका स्वामी है।

और श्लोक ३४५ में स्पष्ट कहा है कि दम से हीन पुरुषों को वेद पवित्र नहीं कर सकते, चाहे उसने षडंग सहित वेद पढ़ा हो, उसी भांति सांख्ययोग उत्तम कुल में जन्म, तीर्थों में स्नान करना सब निरर्थक है बृहन्नारदीय पुराण अ० ३१ में लिखा है जो निर्मल मन से धर्म करते हैं उनका फल अक्षय सुखदायक होता है।

देवी भागवत स्कंध ४ अ० ८ श्लोक २८ से ३४ तक। जिनके मनवाणी शुद्ध हैं उन्हें तीर्थ पग पग पर हैं, मलिन चित्त को गङ्गा कुछ नहीं कर सकती अर्थात् जब मन शुद्ध हो जाता है तब तीर्थ भी पवित्र करते हैं नहीं तो गङ्गा के तीर पर मनुष्य, पशु, पक्षी आदि सब ही गङ्गाजल पीते हैं परन्तु एक भी शुद्ध नहीं होता। जिनका मन विषय वासना से हट गया है उन्हें तीर्थ क्या कर सकता है, इसलिये प्रथम मन की शुद्धि है जिस के शुद्ध होने से द्रव्य शुद्धि तत्पश्चात् शौचादि आचार शुद्ध ठीक करके तीर्थ में जाय तो अवश्य तीर्थ फल यथा योग्य प्राप्त होता है। अर्थात् मनकी पवित्रता और शुद्धाचरण तीर्थ है।

नीवाक्काय शुद्धानां राजस्तीर्थं पदे पदे।
यता मलिन चित्तानां गंगापि कीकटाऽधिका ॥ २८ ॥
प्रथमंचेन्मनः शुद्धि जातं पाप विवर्जितम्।
तदा तीर्थाणि सर्वाणि पावनानि भवन्तिवै ॥२९॥
गंगातीरं हि सर्वत्र वसन्ति नगराणि च।
व्रजाश्चैवाकराग्रामाःसर्वे खेटास्तथापरे ॥ ३०॥
निषादानां निवासाश्च कैवर्त्तानां तथापरे।
हूणवंगखसानां च म्लेच्छानां दैत्यसत्तम ॥ ३१ ॥

देवीभागवत स्कन्ध ३ अ० ८ में ब्रह्मा जीने कहा है कि जब तक काम क्रोध, लोभ, मोह तृष्णा, द्वेष, राग, मद, निंदा, ईर्षा, अक्षमा और अशांति ये नहीं गये तब तक पाप युक्त समझना चाहिये, अर्थात् तीर्थ करने पर ये

दोष शरीर से न गये तो श्रम वृथा ही जानना चाहिये।

पाप देह विकारा रे कामक्रोधादयः परे।
लोभो मोहस्तथा तृष्णा द्वेषो रागस्तथा दमः ॥ २३ ॥
असूर्या क्षमा शान्तिः पापान्येतानि नारद।
न निर्गतानि देहात्तु तावत्पापयुतोनरः ॥ २४ ॥
कृते तीर्थऽदेतानि देहान्ननिर्गतानिचेत्।
निष्फलः श्रमएवैकः कर्षकस्य तथा तथा ॥ २५ ॥

अर्थात् इन दोषों का न होना ही तीर्थ का फल देता है इस से इनका त्यागना सच्चा तीर्थ है। और वशिष्ठस्मृति अ० ३० श्लोक ८ में लिखा है कि मानस यज्ञ करने से मोक्ष होती है कि जिस में ध्यान को यज्ञ का, अग्निऔर सत्य को यज्ञ का ईंधन, धैर्य को यज्ञ अभिनान के त्याग को यज्ञ का श्रुवा, अहिंसा को यज्ञकी सामग्री, संतोष को यज्ञस्थान और सम्पूर्ण जीव की रक्षा करने की प्रतिज्ञा को जो वहुत कठिन है यज्ञ कराने वाले की दक्षिणा समझना माना है, जैसाकिः—

मानसिक यज्ञ करणान्मोक्षो भवति। मानसिकयज्ञो ध्यानां यज्ञाग्निः सत्यमिंनम्। धैर्य यज्ञः अभिमानत्यागो यज्ञश्रुवः। अहिंसायज्ञसामिग्री। सन्तोषो यज्ञस्थानम्। सम्पूर्ण जीवरक्षा कराकर प्रतिज्ञादक्षिणा च उच्यते।

और ज्ञानसंकलिनी मंत्र श्लोक ४८ और ४९ में भगवान शङ्करनेकहा है-

इदं तीर्थमिदं तीर्थं भ्रमन्ति तामसाजनः।
आत्मतीर्थं न जानन्ति कथं मोक्षो वरानने ॥

हे पार्वती! तमो गुण युक्त लोग मन को, कहीं शिव को, कहीं अन्य स्थान और शक्ति को, कहीं अन्यत्र जान कर ,यही तीथ है, और यही तीर्थ है, ऐसे भ्रम में पड़ कर सर्वत्र घूम रहे हैं वरानने! आत्मतीर्थ के ज्ञान विना और किसी प्रकार मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकती।

प्रियवर्गो! हां यह सम्भव हो सकता है कि जिन तीर्थ स्थानों को आप नाना प्रकार के कष्ट और धन व्यय करके जाते हैं ये वही स्थान हों जहां पर आपके ऋषि मुनि पूर्व समय में रहते हों और जहां पर हमारे आपके पुरुषाओं ने जाकर सत्य उपदेश सुन के आनन्द उठाये हों, परन्तु अव आप उन स्थानों को बुद्धि की दृष्टि से देखिये कि वहां की क्या अवस्थायें

है ? क्या प्रयागराज में कोई ऋषि इस समय भरद्वाज के समान उपस्थित है जिनके आश्रम को श्रीरामचन्द्रजी महाराज ने वेदोक्त चिन्ह पाकर दूर से जान लिया था और जिन्होंने उक्त महाराज को नाना प्रकार की शिक्षायें कीं ? क्या हरिद्वार पर मैत्रेय के तुल्य ऋषि हैं ? जिनसे हमारे परम नीतिज्ञ विदुर जी ने अपनी शंकाओं का निवारण किया था। क्या सोम तीर्थ पर कोई ऋषि उपस्थित है ? जहां पर हमारे ज्ञान परिपूर्ण कण्वजी महाराज आनन्द उठाने के लिये गये थे। क्या अनुसुइया के समान कहीं स्त्रियां हैं जिन्होंने सीता जी को पतिव्रत धर्म पूर्ण करने के अर्थ शिक्षादि क्या हमको उन स्थानों में अत्रि, वशिष्ठ, वाल्मीक, शरभंग सुतीक्षण, अगस्त के समान ऋषि मिल सकते हैं। कदापि नहीं। सच तो यह है कि इस समय ही ने हमको बड़ा धक्का दिया। इसने हमारे बने बनाये कार्य को बिगाड़ दिया उन ऋषि मुनियों को कि जिन्होंने सारे संसार को अपने ज्ञान से प्रकाशित कर रक्खा था ऐसे विनष्ट होगये कि उनका कहीं पता नहीं चलता इस भारत को जो कि एक समय में उन्नति की ऊँची सीढ़ी पर चढ़ा हुआ था, ऐसे गिराया कि कुछ भी ठीक न रहा। हमारे पवित्र नियमों को ऐसा बिगाड़ा कि हम पर अन्य देशी जन हंसते हैं। तीर्थों की यह दुर्दशा की है कि जहां ऋषिगण यज्ञ करते थे वहां भंग चरस उड़ता है। जहां उनके वेदोक्त सत्योपदेश से आत्मिक उन्नति होती थी वहां सण्ड मुसण्ड नाना रूप धारण कर अनेक प्रकार से ठगते हैं लड़कों के नाच दिखलाये जाते हैं, पण्डों की स्त्रियां भी यात्रियों की खबर लेती रहती हैं, रण्डियों के समूह वहां जाते हैं और तबला खड़कता है अर्थात् इसी प्रकार के अनेक उपाय दर्शाये जाते हैं जिनका मैं विस्तार भय से वर्णन नहीं करता, आप प्रत्यक्ष विलोकन कर लीजिये।

मान्यवरो ! संस्कृत विद्या के न जानने से या यों कहिये कि जिन प्रयोजन के साधन के लिये लोभी गुरुओं ने वेदादि सत्शास्त्रों के शब्दोंके मुख्य अर्थ को छोड़ उन शब्दों से मनमाना अर्थ निकाल कर संसार को भ्रमजाल में डाल दिया जो अब तक भेड़ियाधसान की भांति एक दूसरे के पीछे विना देख भाल किये चले जाते हैं। जैसाकि वेदोंमें तीर्थ, व्रत श्राद्ध, तर्पण इत्यादि शब्दों के मुख्य अभिप्राय को हमने वेदादि सत् शास्त्रों के प्रमाणों से सिद्ध किया है, उसे उड़ाकर निज प्रयोजन निकाला। इस के अतिरिक्त और भी देखिये 'शन्नो देवी० गणानान्त्वा०' इत्यादि में देवी शब्द से कालिका की

मूर्ति की पूजा करवाते हैं, द्वितीय में 'गण' शब्द से मिट्टी के गणेश जी बना कर पुजवाते हैं। ऐसा ही बृहत्साम ब्राह्मण के गङ्गा और यमुनादि शब्दों के मुख्य अभिप्राय को न समझ कर पृथ्वी पर की बहती हुई गङ्गा और यमुनादि नदियों में नहाने से मुक्ति मानने लगे, देखिये बृहत्साम ब्राह्मण में लिखा है—

इडा भगवती गंगा पिंगला यमुना नदी।
तयोर्मध्ये प्रयागस्तु यस्तं वेद स वेदवित्॥

इडा नाड़ी गङ्गा के नाम से और पिंगला नाड़ी यमुना के नाम से प्रसिद्ध है, इन दोनों के बीच में जो हृदय आकाश है उसको प्रयाग कहते हैं, जो मनुष्य इनको जानता है वह वेदका जानने वाला है। और 'याज्ञवल्क्य शिक्षा' में लिखा है:—

कालिन्दी संहिता ज्ञेया पदयुक्ता सरस्वती।
क्रमेण कीर्तिता गङ्गा शंम्भोर्वाणीतु नान्यथा॥

अर्थात् कालिन्दी वेद संहिता का नाम है यदि और वेदमन्त्रों के पदों को पृथक् २ पढ़ा जावे उसका नाम सरस्वती है और जो वेद मन्त्रों का क्रम से पढ़ा जाय उसको विद्वान गङ्गा के नाम से निरूपण करते हैं, वही शंभु अर्थात् महादेव जी की वाणी है, और महाभारत में लिखा है—

आत्मा नदी संयमपुण्यतीर्था सत्योदका शीलतटादयोर्मिः।
तत्राभिषेकं कुरुपाण्डुपुत्र! नवारिणा शुध्यति चान्तरात्मा॥

यह रूपकालंकार है, जो परमेश्वर सर्व व्यापक है वही एक नदी है उस नदी में अपने मन इन्द्रियों का लगाना वही पुण्य तीर्थ है अर्थात् तरना है, उस नदी में जो सत्य है वही जल है, उस नदी का किनारा शील और दया उसकी लहरें हैं। सो हे युधिष्ठिर! तुम आ कर ऐसी नदी में स्नान करो क्योंकि वारि अर्थात् धरती परकी नदियों के पानी में स्नान करने से आत्मा शुद्धि नहीं होता। इसलिये आओ सज्जन पुरुषो! हमभी उन उपरोक्त प्रकार की गङ्गा, यमुना और सरस्वती में योगाभ्यास द्वारा स्नान करने का उद्योग करें कि जिसके प्रताप से मोक्ष रूपी अमृत फल मिलता है, क्योंकि बाईं ओर पिंगला और दाहिनी ओर इडा और बीच में प्रयाग के अर्थ योग के हैं अर्थात् जिस स्थान पर जीवको सर्वव्यापक परमेश्वर के दर्शन होते हैं उसी को प्रयाग कहते हैं।

———:०:———

* योग का वर्णन *

प्यारे सुजनों ! चित्त की वृत्तियों के निरोध का नाम योग है जिसके विना जीवात्मा नाना क्लेशों को भोगता तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूपी पदार्थों को देखता है, इस लिये श्रेष्ठ पुरुषों को चित्त के निरोध करने के निमित्त योग रूपी मार्ग में पूर्ण सामर्थ से पग रखना योग्य है। परन्तु वर्तमान समय में 'योग' शब्द के अर्थ ऐसे समझ रक्खे हैं कि जो भिक्षुक गेरुये कपड़े पहन कर किसी विद्या न जानने के कारण विना परिश्रम किये आलस्य में चूर होकर उदर पोषण के अर्थ घर घर भीख मांगते हैं उन को ही योगी जी कहते हैं, कोई ऐसा भी सुनाते हैं कि जो परिवार छोड़ जंगल में चला जाय वही योगी है। हे भाइयो ! यह सब मिथ्या बातें हैं। योग के अर्थ जङ्गल जाने कपड़े रंगाने और कनफटे बनाने की कुछ आवश्यकता नहीं। क्योंकि योग का सम्बन्ध चित्त से है। न कि जङ्गल वा कपड़ों से। हे बांधवों ! यदि कोई जङ्गल में जावे तो उस की इन्द्रियां उसके आधीन न हों तो वह वन में जाकर क्या ख़ाक छानेगा ? इस लिये यह सब मिथ्या बातें हैं क्योंकि चित्त की स्थिर वृत्तियों का नाम योग है न कि इस प्रकार की दिखावट और दुकानदारी का। इसके उपरान्त जब हम प्रति दिन देखते हैं कि बहुधा औरतें शिर पर घड़े पर घड़ा ले जाती हैं नट रस्से पर डोले आता है, निशानची निशाना मार देता है तो फिर संसार में योग न होने का क्या कारण है, प्यारे बन्धुवर्गो ! यह भी तो योग ही के लक्षण हैं अर्थात् विना चित्त को स्थिर किये कभी ऐसा नहीं कर सकते तो फिर योग से डरने और जङ्गल ही में जाने की कौन आवश्यकता है ? प्यारे सुजनों ! प्राचीनकाल में इसी भारतवर्ष में अनेक जन इस विद्या में पूरी योग्यता रखते थे, क्या आप राजा जनक का नाम जो मिथिलापुरी में राज्य करते थे नहीं जानते, जिन्होंने योग विद्या में ऐसी योग्यता प्राप्त की थी कि उस समय के ऋषि लोग उनकी प्रतिष्ठा करते थे और श्रीकृष्ण जी महाराज भी योग विद्या में निपुणता रखते थे। इनके उपरांत अनेक स्वजनों ने इस विद्या में अच्छी योग्यता प्राप्त की थी और उन्होंने उसी योगबल से नाना भांति की युक्तियें और गुण निकाले थे जिनको इस समय में रेल तारादि को देख कर आश्चार्य करते हैं परन्तु प्राचीन समय में योगविद्या के जानने वाले ज्ञाताजन हजार कोस पर बैठ कर आपस

में बातें करते थे। इसकी आठ सीढ़ी हैं जिनका वर्णन पतञ्जलि महर्षि ने अपने बनाये हुए योगशास्त्र में अच्छे प्रकार लिखा है। यथार्थ में प्राणायाम करने से प्रतिदिन अज्ञान का नाश और प्रकाश होता है, इस लिए जब तक मुक्ति न हो तब तक इस क्रिया को सदा करता रहे—

प्राणायामादशुद्धिक्षय ज्ञानदीप्तिरविवेकख्याते।

इस विषय में मनुजी ने भी लिखा है—

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां च यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्॥

अर्थात् जैसे अग्नि में तपाने से सुवर्णादि वस्तुओं के मल नष्ट हो जाते हैं ऐसेही प्राणायाम करने से मन आदि इंद्रियों के दोष क्षीण होकर निर्मल हो जाते हैं अर्थात् मन एकाग्र हो जाता है जो उपासना के समय किसी सांसारिक कार्य में नहीं जाता जो उपासना का मुख्य काम है इस लिये प्राणायाम प्रति दिन करना चाहिये, ऐसा ही गीता में भी लिखा है—

अपानेजुह्वति प्राणेऽपानं तथा परे।
प्राणापानगतीरुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः॥

अर्थात् जो अपान में प्राण को और प्राण में अपान को हवन करते वा लय करते वा मिलाते हैं, उनके प्राणकी गति रुकने से मन उसकेसाथ रुक जाता है, इस लिए प्राणायाम करना उचित है।

मुख्य प्रयोजन इस कथन का यह है कि जब प्राणायाम के करने से प्राण अपने वशमें हो जाता है, तो मन और इन्द्रियां भी स्वाधीन हो जाती हैं जिनसे पुरुषार्थ बढ़ कर बुद्धि तीव्र होती है जो कठिन से कठिन और सूक्ष्म विषय को शीघ्र ग्रहण कर लेती है। इसी से वीर्यवृद्धि होकर शरीरबल पराक्रम युक्त हो जाता है और भय का उसके चित में अंश भी नहीं रहता। वही निर्भय होकर संसार का सब प्रकार उपकार करता है और उपासना के समय उसका मन इधर उधर को नहीं जाता, वरन् परमेश्वर को ध्यान में मग्न होकर आनन्द तथा मोक्ष सुखको पाता है, इसलिए अवश्यमेव थोड़ा २ अभ्यास करना परम आवश्यक है। परन्तु उन्हीं सज्जनों को सिद्ध होता है जो संयम नियम का यथावत् सेवन करते हैं। इसके उपरांत इस वृति में शीघ्रता करने की आवश्यकता नहीं और प्रथम इसमें कठिनता भी जान पड़ती है परन्तु जब अंतःकरण की रजोगुणी और तमोगुणी वृति कम हो जाती है और मुक्ति की इच्छा, विवेक, वैराग्यादि वृति जब प्रधान होती है तब यह

सुगम जान पड़ती है और जब यथार्थ में अंतःकरण का रजोतम दूर होजाता है तब वह सुख प्रकट होता है कि जिसका पारावार नहीं और उसका कोई वर्णन नहीं कर सकता। । यजु० अ० १२ मं० ६० में लिखा है।

सीरायुञ्जन्ति कवयोयुगाविम्वते पृथक् धीरा देवेषुसुम्नयां।

अर्थात् योगी पुरुष अपने ज्ञान के बढ़ाने में तन मन लगाकर लगातार पुरुषार्थ से ऐसे ज्ञान को प्राप्तहोते हैं जहां किसी प्रकार का संशय और भ्रम नहीं रहता, उनके लिये सीधा और स्वच्छ मार्ग है ऐसी दशा में पहुँचे हुए महात्माओं की वे ही मनुष्य प्रतिष्ठा करते हैं जो विद्वान् होते हैं और अविद्वान मनुष्य योगियों की बात और उनके मर्म समझ ही नहीं सकते उनके विचार ही में नहीं आते, क्योंकि धर्म चक्षु नहीं, इसलिए वह योगियों के गुणों को देख नहीं सकते, हां विद्वान् मनुष्य जानते हैं कि योगी ने जिस की प्राप्ति की है वह अति कठिन है, संसार भर की विद्या उसकी समानता नहीं कर सकती, जो जड़ पदार्थों से सम्बन्ध नहीं रखती वरन् उसका सम्बन्ध सूक्ष्म पदार्थ से है, इस लिए विद्वान् मनुष्य योगियों का आदर सत्कार करते और उसके चरणों के सेवक होते हैं।

धन्य हैं वे सुजन जिनका विद्वान आदर सत्कार करते हैं परन्तु वह ब्रह्मज्ञान योगियों को सहज ही में नहीं मिलता वरन् विद्वान् योगी महात्मा और धीर पुरुष ही योगी विभाग से नाड़ियों द्वारा अपने आत्मा में धारण करते हैं अर्थात् बड़े २ साधनों से अमूल्यरत्न मिलता है जिनकी व्याख्या पतञ्जलि महार्षि ने की है जिसका हम संक्षेप से वर्णन करेंगे।

इसलिये सज्जन पुरुषों को आलस्य त्याग प्रति दिन आठों अङ्गों का सेवन युक्ति पूर्वक करना चाहिये, क्योंकि यह सब यज्ञों से श्रेष्ठ हैं इस बात को श्रीकृष्णचन्द्रजी महाराज ने गीता में बारह प्रकार के यज्ञों में प्राणायाम अर्थात् प्राणनिरोध करना सब से श्रेष्ठ कहा है।

(अष्टांग योगके आठों अंगों का वर्णन)

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहार ध्यानधारणासमाध योऽष्टावङ्गानि।

अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि, ये योग के आठ अङ्ग हैं।

(यम का वर्णन)

अथाहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहायमः।

अर्थात् (१) अहिंसा (२) सत्य (३) अस्तेय, (४) ब्रह्मचर्य, (५) अपरिग्रह ।

१ अहिंसा, किसी से बैर भाव न करना, अर्थात् सुख सम्भोगयुक्त प्राणियों में मैत्री और दुखियों पर दया पुण्यात्माओं में मुदितता और पापियों में उपेक्षा करना चाहिये ।

२ सत्य जैसा अपनी आत्मा में हो वैसा कहें और माने, जो मनुष्य ऐसा करते हैं उनकी वाणी से जो निकलता है वैसा ही होता है ।

३—अस्तेय किसी प्रकार की चोरी न करना, जो उसको यथावत् सेवन करता है उसको सब पदार्थ मिल जाते हैं ।

४-ब्रह्मचर्य २५, ३०, ४०, ४८ वर्ष वा इससे आगे वीर्य को स्खलित न होने देना, अर्थात् जो वीर्य की पूर्ण रक्षा करता है वह पूर्ण ज्ञानी और महात्मा होने के योग्य होता है ।

५-अपरिग्रह, जब मनुष्य यथावत् इन्द्रियों को अपने वश में कर लेता है तब उसके मनमें यह विचार आता है कि मैं कौन हूँ और कहां से आया हूँ और क्या करता हूँ, मुझको कुछ करना चाहिये । और मेरी किस बात में भलाई है इत्यादि बातों के विचार का नाम अपरिग्रह है ।

(नियम)

शौचसन्तोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ।

(१) शौच, (२) सन्तोष (३) तप (४) स्वाध्याय, (५) ईश्वर प्रणिधान, ये पांच प्रकार के नियम हैं ।

१ शौच यह दो प्रकार का है एक शारीरिक दूसरा आत्मिक शारीरिक शुद्धि जल और खान पान आदि से होती है और आत्मिक वेदादि विद्या पढ़ने और धर्म पर चलने और सत्संग से होती है ।

२ सन्तोष, उसको कहते हैं जो सदा धर्मानुकूल कार्यों को करता हुआ नाना प्रकार से क्लेश होने पर भी धैर्य को नहीं छोड़ता, आलस्य का नाम संतोष नहीं है ।

३—तप, जैसे सोना चांदी आदि अग्नि में तपाने से स्वच्छ हो जाते हैं वैसे ही आत्मा और उनके धर्माचरणरूपी शुभ गुणों को तपा कर निर्मल करने का नाम तप है । जिनके मुख्य तीन भेद हैं । मनसा, वाचा, कर्मणा इन तीनों को धर्माचरण में लगाना ही तप कहाता है, अग्नि जला कर बीच में बैठने का नाम तप नहीं ।

४ ईश्वर प्रणिधान, सामर्थ्य सर्व प्राण आत्मा और मन के प्रेम भाव से आत्मादि सत्य द्रव्यों को ईश्वर के लिये समर्पण करने को कहते हैं ।

(आसन)

आसन उसको कहते हैं कि जिसमें शरीर और आत्मा सुख पूर्वक स्थिर हों इसलिये जैसी रुचिहो वैसा आसन करे, जब आसन दृढ़ हो जाता है तब उपासना करने में परिश्रम जान नहीं पड़ता और सरदी गर्मी आदि नहीं व्यापती, यह उपासना का तीसरा अङ्ग अर्थात् सीढ़ी है !

प्रकट हो कि उपासनों के भेद अनन्त हैं और वे आसन सम्पूर्ण योग के विषय ज्ञाता मनुष्य को उपकारी होते हैं। कुछ आसनों का संक्षेप से वर्णन यहां किया जाता है।

योग शास्त्र में ८४ आसन लिखे हैं उनमें से स्वस्तिक, गोमुखी, पद्म, कुक्क, उत्तान, कूर्मक, धनुष, मत्स्व, मयूर, सर्प, सिंह, भद्र, सिद्ध, दण्डासन पन्द्रह के नाम ये हैं, उनमें से बहुधा आसनों से शरीरका रोग निवृत्त होता है, और कई एक ब्रह्मानन्द समाधिमें उपयोगी हैं इन उपरोक्त लिखे आसनों में सिंह, भद्र, पद्म, सिद्ध ये चार ही मुख्य ठहराये गये हैं और इनमें से भी पद्म और सिद्ध विशेष हैं और सिद्ध आसन को वृत्तासन, मुक्तासन और गुप्त आसन भी कहते हैं। इस विषय में गीता में लिखा है—

शुचौ देशो प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः।
नात्युच्छितंनातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम्॥

अर्थात् आसन पवित्रभूमि में अचल लगाकर अभ्यास करे, आसन न बहुत ऊंचाहो, न बहुत नीचा, छत और मुरेड़ी पर आसन न लगाना चाहिये जो मनुष्य आसन सिद्ध नहीं करता उसको द्वन्द्व दुःख देते हैं और आसन सिद्ध होने से यह उसको दुःख नहीं देते इस लिये आसनका अभ्यास अवश्य करना चाहिये। (पद्मासन)

चौ०-पहिले बामा पैर उठावे। दाहिनी जंघा ऊपर लावे॥
विधि इमि दक्षिण पैर उठाना। बामि जंघा परिधर आना॥
बामा कर पीछे पुनि लावे। बाम अंगूठा नहि वनु लावे॥
योंही दक्षिण कर को लावे। दहना दृढ़ अंगुष्ट करावे॥
ग्रीव लटिक चिबुक हिये करिये। नाशा आगे दृष्ट सुधरिये॥

(सिद्धासन)

दोहा—गुदामध्य धरि बामपद, दक्षिण लिंग दबाय।
दृष्टि धरे भृकुटी विषे, चिदानन्द चितलाय॥

इन आसनों के अभ्यास से सम्पूर्ण नाड़ियों के मल नष्ट होजाते हैं, यह ८४ आसनों में श्रेष्ठ हैं। (प्राणायाम)

स्थिर होने से जो प्राण की गति का अवरोध होता है उसे प्राणायाम कहते हैं, यही चौथा अङ्ग अर्थात् सीढ़ी है।

आसन सिद्ध होनें पर जो वाहर से वायु भीतर को जाता है उसको श्वांस कहते हैं और जो भीतर से वाहर जाता है उसे प्रश्वांस कहते हैं और इन दोनों की गति के अवरोध कोप्राणायाम कहते हैं। वह चार प्रकारका है।

(१) वाह्य, (२ आभ्यन्तर, (३) स्तम्भ वृत्ति, (४) वाह्याअभ्यतन्राक्षेपी

(१), वाह्य, वह है कि जव भीतर से वायु वाहिर को निकले उसको वाहर ही रोकदे।

(२) आभ्यन्तर, उसे कहते हैं किजव वाहर का वायु भीतर जावे तव जितना हो सके भीतर रोके।

(३) स्तम्भवृत्ति, उसको कहते हैं कि प्राण को वाहर को निकाले न वाहर से भीतर को ले वरन् जितनी देर हो सके सुख पूर्वक जहां का तहां ज्योंका त्यों रोक दे।

(४) वाह्याअभ्यान्तराक्षेपी--जव श्वांस भीतर से वारह को जावे तव वाहर ही थोड़ा २ रोकता रहे और जव वाहर से भीतर को जावे तव उस को भीतर ही थोड़ा २ रोके।

(प्राणायाम करने की विधि)

प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य।

जिस प्रकार कै होती है जिसको छौटी वा वमन कहते हैं, जिसके होने से भीतर पेट के अन्न और जल वाहर निकल आते हैं, उसी प्रकार प्राण को वल से वाहर फेंक के वाहर ही यथाशक्ति रोक देवे और जव वाहर निकालना चाहे तो मूलेन्द्रिय को ऊपर खींचे रक्खे। जव तक प्राण वाहर निकले और जव घवराहटहो तव धीरे २ भीतर ले जाय और जितना हो सके रोके, इसी प्रकार जितनी सामर्थ्य हो धीरे २ वढ़ावे।

प्रकट हो कि उदरस्थ प्राण वायु को नासिका के नथुनों से प्रयत्न पूर्वक निकालने को 'प्रच्छर्दन' खींचने को 'विधारण' कहते हैं।

(प्रत्याहार)

'प्रत्याहार' उसको कहते हैं कि जव मनुष्य अपने मन को जीत लेता है तव सव इन्द्रियां अपने आधीन कर लेता है क्योंकि मन ही इन्द्रियों का चलाने वाला है जैसा कि य० अ० ३४ मंत्र १ में लिखा है—

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति ।
दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥

अर्थात् जो भागता हुआ दूर दूर जाता है और सुषुप्ति में भी उसके दूर जाने का स्वाभाव है जो प्रकाशित पदार्थों का भी प्रकाश करने वाला है वह मेरा मन, हे परमात्मन् ! बड़ा शीघ्रगामी, आप की कृपासे मुझे कल्याणकारी हो।

सचमुच मन ही इन्द्रियों का चलाने वाला है, इन्द्रियां कभी काम नहीं करतीं जब तक कि मन इन्हें प्रेरणा नहीं करता। निश्चय जानों कि जितने विकार और दुष्टभाव इन्द्रियों के द्वारा प्रकट होते हैं सब मन के ही उत्पन्न किये हुये होते हैं महात्माओं ने मनुष्य के शरीर की बनावट को एक रथ के समान माना है, बुद्धि रूपी रथवान् मनकी रासों से इन्द्रियों के घोड़ोंको अपने आधीन रख सकता है पर जिस प्रकार रासों के घुमाने से जिधर को चाहो घोड़ों को फेर सकते हो उसी प्रकार मन जिधर चाहता है उधर इन्द्रियों को घुमाता है। इस प्रकार कर्म ठीक करने के अर्थ मनको निर्दोष किया जावे यह मन बड़ी बड़ी दूर जाता है जो देश और काल की रुकावट में नहीं आता, इससे अधिक प्रबल चाल वाला कोई नहीं, सो यह मन जीवात्मा के आधीन है परन्तु जीवात्मा उसको अपने आधीन न रख स्वयं उसके आधीन होकर नाना प्रकार के दुःखों को झेलता है। इस लिये ईश्वर से प्रार्थना की गई है कि इस मनको हमारे आधीन सदा बनाये रहें न कि हमको उसके। सो मन की चंचलता प्राणायाम साधन से जाती रहती है, इसलिये शान्ति ढूंढने वालो ! इस विद्या को जान मनको आधीन कर आनन्द भोगो।

(धारणा)

धारणा उसको कहते हैं कि मनको चञ्चलता से छुड़ाकर जिस स्थान पर जिस विषय में चित्त को लगावे वहीं चित्त ठहर जावे अर्थात् जिस विषय में चित्त लगाना हो उसको छोड़ कर कहीं न जावै।

प्रकट हो कि उस समय मन 'ओं' का जप करता जाय क्योंकि 'ओं' परमेश्वर के सब नामों में उत्तम है कि जिसमें परमेश्वरके सब नामोंके अर्थ आ जाते हैं जैसा हमने गायत्री के अर्थों में लिखा है, और ऐसा ही गीता अ० ८ श्लोक १३ में लिखा है।

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥

अर्थात् ध्यान समय 'ओं' के अर्थों को विचारने और उसके अनुकूल आचरण होने से परमगति मिलती है क्योंकि—

ओंकारः सर्ववेदानां सारस्तत्त्वप्रकाशकः ।
तेन चित्तसमाधानं मुमुक्षूणां प्रकाश्यते ॥

ध्यान—धारणा के पीछे उसी देश में ध्यान करे, आश्रय देने के योग्य जो अन्तर्यामी व्यापक परमेश्वर है उसी के प्रकाश आनन्द में अत्यन्त विचार और प्रेम भक्ति के साथ इस प्रकार प्रवेश करना जैसे समुद्र के बीच में नदी प्रवेश करती है, उसमें ईश्वर को छोड़ किसी अन्य पदार्थ का स्मरण नहीं करना, उसी परमेश्वर के ज्ञान में मग्न होने को ध्यान कहते हैं, शिवपुराण ज्ञानसंहिता अ० २६ श्लोक १० में लिखा है कि ध्यान से परे कुछ नहीं, ध्यान ही ज्ञान का साधन है, ध्यान से ही योगी ब्रह्म को अपने निकट देखता है।

समाधि—जैसे अग्नि के बीच लोहा भी अग्नि हो जाता है उसी प्रकार परमेश्वर के साथ में प्रकाशमय हो के अपने शरीर को भूले हुये के समान जान आत्मा को परमेश्वर के प्रकाश स्वरूप आनन्द और ज्ञान से परिपूर्ण करने को 'समाधि' कहते हैं।

ध्यान और समाधि में इतना अन्तर है कि ध्यान में तो करने वाला और मन जिसका ध्यान करता है ये तीनों विद्यमान रहते हैं, परन्तु समाधि में केवल परमेश्वर ही आनन्द स्वरूप ज्ञानमें मग्न हो जाता है। वहां तीनों का भेदभाव नहीं रहता जैसे मनुष्य जल में डुबकी मार के थोड़ा समय भीतर ही रुका रहता है वैसे ही जीवात्मा परमेश्वर के बीच में मग्न होकर फिर बाहर को आजाता है और जिस देश में धारणा की जाय उसी में ध्यान और उसीमें समाधि अर्थात् ध्यान करने के योग्य परमेश्वर में मग्नहो जानेको 'संयम' कहतेहैं, जो एक ही काल में तीनों का मेल होता है अर्थात् धारणा से संयुक्त ध्यान और ध्यान से संयुक्त समाधि होती है। उनमें बहुत सूक्ष्म काल का भेद रहता है परन्तु जब समाधि होती है तब आनन्द के बीच में तीनों का फल एक ही हो जाता है। उस काल के आनन्द की महिमा अकथनीय है ऐसा ही अन्य-शास्त्रकारों ने लिखा है।

समाधिनिर्धूतमलस्यचेतसो, निवेशितस्यात्मनि यत्सुखंभवेत ।
न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा, स्वयंतदन्तःकरणेन गृह्यते ॥

अर्थात् समाधि रूप नदीमें गोता लगाने से जिसका मैल धोया गया ऐसा

चित्त जब आत्मा में लगाया जाता है तब जो सुख होता है उसका वर्णन वाणी से नहीं हो सकता किंतु उसका स्वमेव अंतःकरण से ग्रहण होता है और भगवद्गीता में श्रीकृष्णचंद्र जी ने कहा है—

सुखमात्यन्तिकं यत्त द्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम् ।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्वतः ॥

अर्थात् समाधि अवस्था का जो अनंत सुख है उसका इन्द्रियोंसे ग्रहण नहीं होता किंतु उसी उपासक को इन्द्रिय द्वारा पहुँचने वाले विषयों की चञ्चलतासे रहित अर्थात् वायु विषयोंसे उठने वाली वृत्तिरूपी जल तरंगों से रहित अधिकारिणी सूक्ष्म बुद्धि से ही ग्राह्य है, उस समाधि अवस्था में न कुछ बाह्य विषय जनता और विषयादिके साथ अपने स्वरूप को डिगाता है, जितने देखे हुए और सुने हुए विषयों में से जो आनंद के देने वाले हैं किसी की चाहना न करना वैराग्य कहाता है ॥

प्यारे सुजनों ! जो मनुष्य धर्माचरण परमेश्वर और उसकी आज्ञामें अत्यंत प्रेम करके आचरण अर्थात् शुद्ध हृदय रूपी वनमें स्थिरताके साथ निवास करते हैं वे परमेश्वर के समीप निवास करते हैं, और जो लोग अधर्म के छोड़ने और धर्म के करने में दृढ़ तथा वेदादि सत्य विद्याओं में विद्वान् हैं, जो भिक्षाचार्य आदि कर्म करते संन्यासी वा किसी अन्य आश्रम में हैं, इस प्रकार के गुण वाले मनुष्य प्राण द्वारा परमेश्वर के सत्य राज्य में प्रवेश करके सब दोषों से छूट के परमानंद मोक्ष को प्राप्त होते हैं। जहां कि पूर्ण पुरुष सब में भरपूर सबसे सूक्ष्म अविनाशी जिसमें हानि लाभ कभी नहीं होती, ऐसे परमेश्वर को प्राप्त होके सदा आनंद में रहता है, जिस समय इन उपरोक्त साधनों से परमेश्वरकी उपासना करके उसमें प्रवेश किया चाहे उस समय इस रीति से करे।

कण्ठ के नीचे दोनों स्थानों के बीच में और हृदय के ऊपर जो हृदय देश है कि जिस को ब्रह्मपुर अर्थात् परमेश्वरका नगर कहते हैं उसके बीच में जो गर्त्त है उसमें जो सर्व शक्तिमान् परमात्मा बाहर भीतर एक रस होकर रम रहा है वह आनंदस्वरूप परमेश्वर उसी प्रकाशित स्थान के बीच में खोज करने से मिल जाता है, दूसरा उसके मिलने का और कोई उत्तम स्थान वा मार्ग नहीं क्योंकि इस हृदय आकाश में सूर्य आदि प्रकाशक तथा पृथ्वीलोक अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र, बिजली और सब नक्षत्र लोक भी ठहरते हैं। जितने देखने वाले और न देखने वाले पदार्थ हैं व सब उसी की

सत्ता के बीचमें स्थिर हो रहे हैं और इस ब्रह्मपुर में जो परिपूर्ण परमेश्वर है उसको न तो कभी वृद्धावस्था होती है और न कभी नाश होता है उसका नाम सत्य ब्रह्मपुर है कि जिसमें सब काम परिपूर्ण हो जाते हैं। वह सब पापों से रहित, शुद्ध स्वभाव, जरा अवस्था रहित, शोक रहित, जो खाने पीने की कभी इच्छा नहीं करता जिसके सब काम तथा सम्पूर्ण संकल्प भी सत्य हैं उसी प्रकाश में प्रलय होने के समय सब प्रजा समा जाती है और उसी के रचने से उत्पत्ति के समय फिर प्रकाशित होती है।

इस उपरोक्त उपासना से उपासक लोग जिस काम, जिस २ जिस देश और जिस जिस क्षेत्र भाग अर्थात् सावकाश की इच्छा करते हैं उन सबको वे सब यथार्थ प्राप्त होते हैं।

इसलिये उपासको! मोक्ष की इच्छा रखने वालो! शुद्धाचरण पूर्वक योग द्वारा परमात्माके जानने की इच्छा करो, तभी मुक्ति मिल सकती है अन्यथा कदापि नहीं। हे परमात्मन्! आप त्रिकालदर्शी, सर्व सामर्थ्यवान् हैं आप से हमारी दुर्दशा छिपी नहीं है। अपने सामर्थ्य के कोष से कुछ सामर्थ्य हम भारतवासियों को प्रदान कीजिये, हमको आप उद्योगी बनायें अब हम सब आप की शरण हैं, इस विपत्ति के समय में शुद्ध बुद्धिका हम को दान दीजिये, इस अपार दुःखके बीच साहस प्रदान कर हमारी रक्षा कीजिये। हे तेजःस्वरूप परमात्मन! हम को शांति अर्पण कीजिये। हमारे पिता, बन्धु सहोदर और स्वामी आप ही हैं। बल, वीर्य तेज का प्रसाद देकर हमारे सब संकट निवारण कीजिये॥

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

स्त्रियों और पुत्रियों के यह बड़े काम की है क्योंकि स्त्रियां ही पुराणों के लेखों पर मोहित होकर तन, मन, धन न्योछावर कर पुरुषों को भी वैदिक सिद्धान्तों से गिरा देती हैं, अतएव युवतियों तथा बहिनों को अवश्य पाठ कराइये जिससे उनका हृदय ज्ञान से पूरित हो जावे। इसके अतिरिक्त इसमें बड़ा मज़ा यह है कि आप इस अमूल्य पुस्तक को बगल में दबा सनातनी भाइयों एवं पण्डितों से धड़ाधड़ शंका समाधान कर अपने चित्त को शान्त कीजिये, इसमें मालूमात का खज़ाना बहुत है, इस लिये हमारे सनातनी भाइयों के लिये भी यह बड़ी उपयोगी है क्योंकि जिन्हा ने अठारह पुराणों के कभी दर्शन नहीं किये उनको इस से सनातन महिमा का यथार्थ ज्ञान होता है। इस लिये प्रत्येक मनुष्य को पाठ कर सत्यासत्य का विचार करना चाहिये कि क्या अठारह पुराण महर्षिव्यास के बनाये हुये हैं ? किताब क्या है पुराणों का पूरा खाका इसके अन्दर है। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, देवीमहारानी की करतूत, तामस पुराणों की रचना, ब्रह्मा, विष्णु, शिव का स्त्री होना, विष्णु के कान के मैल से मधुकैटभ का उत्पन्न होना, इन्द्र चन्द्र सूर्य वशिष्ठ विश्वामित्र बृहस्पति तथा शुक्र की अपार लीला, त्रिदेव के अनोखे कर्तव्यों का फोटो, कलि महात्म्य और उसके दूर होनेका सरल उपाय, गङ्गामहारानी की विचित्र उत्पत्ति, गङ्गा महारानी का स्वपाप मोचन करना, राजा वेन के मरने पर उसकी भुजाओं से निषाद और पृथु का उत्पन्न होना करना, वृक्षों से मरीषा का जन्म, रेवती के छोटे करने की अजीब तर्कीब, राजा मिनि से पुत्र का उत्पन्न होदा, बलदेवजी का मदिरापान कर यमुना जी को खींचना, बल के शरीर से सोना चांदी आदि का उत्पन्न होना, राजा सगर की रानी के साठ हज़ार पुत्रों का उत्पन्न होना देवताओं से वृक्षों, ब्रह्माजी के कान से दिशाओं की उत्पत्ति, राजा का हिरणी के साथ वार्त्तालाप, मनु की पुत्रीका पुत्र हो जाना, कच का टुकड़े कर राक्षसों का खाना फिर उसे जीवित निकालना, हिरणी के पेट से शृंगी ऋषि का, राजा की कोख से पुत्र का होना इत्यादि बातों के उपरान्त गणेश महाराज की अद्भुत उत्पत्ति और मृतक श्राद्ध आदि आदि का बड़ी खूबी से वर्णन है, प्यारे पाठको ! एक बार अवश्य ही इसका पाठ कर अक्षय सुख का अनुभव कीजिये, तिस पर तीनों भागों का मूल्य केवल २) डा० व्यय ॥=)

इसके लिये लोगों की सम्मति।



श्री १०८ स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी और स्वर्गवासी श्रीब्रह्मचारी नित्यानन्द जी सरस्वती—

इस पुस्तक के नाम से ही इसका रहस्य विज्ञ पाठकों को ज्ञात हो सकता है। महाशय…जी की लेखशैली कैसी उत्तम होती है, इसका परिज्ञान इनके बनाये नारायणी शिक्षादि ग्रन्थों से पाठकों को अवश्य हो ही चुका है। पुराणों के परताल की आवश्यकता थी, इस शुभकार्य्य का आरम्भ भी उक्त महोदय द्वारा हो गया है। हम पाठकवृन्द से अनुनय साग्रह निवेदन करतेहैं कि इस पुराणतत्व को मँगा कर इससे लाभ उठावें और ग्रन्थकर्ता महानुभाव के श्रम को सफलकरें ताकि ग्रन्थकर्ता का उत्साह बढ़े और अन्य उत्तमोत्तम ग्रन्थ निर्माण द्वारा ग्रन्थकर्ता पाठकवृन्द की सेवा कर सकें।



बा० फूलचन्द जी बेंकर वा मंत्री आ० स० नीमच—

आपका पु० त० प्र० नामक पुस्तक जैसा सुनते थे, वैसा ही पाया। इस बहुमूल्य पुस्तक में आपने पुराणों का खण्डन ही नहीं किया किन्तु उसमें 'वेदप्रतिपादक' प्रकरण देकर पुस्तक को परमोपयोगी बना दिया है। पुस्तक क्या है मानों १८ पुराण के स्वरूप देखने का दर्पण है। मैं आपके इस परोपकारी कार्य्य की प्रशंसा करता हुआ अनेकशः धन्यवाद देता हूं।



सर्दारनी सदाकौर रसूलपुर जिला बहरायच—

यह बहुत उत्तम तरीके में लिखी गई है। १८ पुराणों का निचोड़ इसमें लिख दिया है। चूँकि लोगों को पौराणिक भाइयों से बहुत वास्ता पड़ता है, इस लिये सर्व साधारण वा आर्य भाइयों को एक एक पुस्तक अवश्य ही अपने पास रखनी चाहिये।

इसके अतिरिक्त बाबू गुज्जमल जी गुप्त भारतीभवन फ़ीरोज़ाबाद, श्री दुलीचन्द बिशनपुर गोरखपुर, श्री कन्हैयालाल जी पटवारी राजलपुर मैनपुरी, आदि आदि अनेक महाशयों के प्रशंसायुक्त पत्र आ चुके हैं।

नारायणीशिक्षा अर्थात् गृहस्थाश्रम

जो

आपके हाथमें है उसकी बाबत विदेशियों की सम्मति ।

श्री० एन निरञ्जनस्वामी फाइफमेजर बूशयर—

इसके पढ़ने से मेरी आत्मा को जितना आनन्द मिला वह किसी प्रकार नहीं लिख सकता, वास्तव में आपने गागर में सागर को भरने का यत्न किया है; योग्य गृहस्थ आपकी इस पुस्तक को पढ़ बिना धन्यवाद दिये नहीं रह सकता।

श्री० पं० विदेशी लालजी शर्मा—दर्बान (नेटाल अफ्रीका)

जिस तरह धातु में सुवर्ण, वृक्षों में आम, रसों में मिश्री, दुग्ध में घृत, मीठे में शहद, जीवों में मनुष्य, पुण्यों में ब्रह्मचर्य, प्रकाश में सूर्य श्रेष्ठ हैं वैसे ही आपकी पुस्तक नारायणीशिक्षा सम्पूर्ण स्त्रियों के लिये उपयोगी है । मैं आशा करता हूँ कि विचारशील पुरुष अवश्य इस अमूल्य पुस्तक से लाभ उठा कुटुम्बियों सहित आनन्द भोगने की चेष्टा करेंगे ।

देखिये भारतीय जन क्या कहते हैं—

श्रीमान् पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी, सम्पादक "सरस्वती" प्रयाग ।

'सरस्वती' भाग १०संख्या ७ में प्रकाशित करते हैं कि "नारायणीशिक्षा— सम्पादक बाबू निरमनलाल वैश्य, पृष्ठ संख्या ६१२ । साँचा बड़ा, कागज़ अच्छा छपाई बंबई के टाइप की, इस इतनी सस्ती परन्तु उपयोगी पुस्तक का दूसरा नाम गृहस्थाश्रम शिक्षा है पुस्तक कोई २७ भागों में विभक्त है । गृहस्थाश्रम से सम्बन्ध रखने वाली शिशुपालन, शरीररक्षा, ब्रह्मचर्य, विवाह, पति पत्नी धर्म, नित्यकर्मादि कितनी ही बातों का इसमें वर्णन और विचार है । श्रुति, स्मृति, उपनिषद्, पुराणादि से जगह जगह पर विषयोपयोगी प्रमाण उद्धृत किये गये हैं । पुस्तक में सैकड़ों बातें ऐसी हैं जिनका जानना गृहस्थ के लिये बहुत ज़रूरी है । इस पुस्तक को लोगों ने इतना पसन्द किया है कि आज तक इसके ६ संस्करण हो चुके हैं ।

श्रीमान् पं० विष्णुलालजी साहब शर्मा सबजज—

My Dear M. Chimman Lall, Ji.

The Narayani Shiksha is a library in itself, being a work of Cyclopedia information. No subject theoretical or Practical, which is useful to a house holder has been left untouched. The style is simple yet impressive. I am not aware of a better boek for females in hindi, and am of opinien that no Hindu family should be with out a copy of your book.

——:::——

श्रीमान बाबू रामनारायण साहब तिवारी—

Dear Sir'

I have read the Narayani Shiksha or Gribasta-Ashram compiled by you. I do not know of any other book in Hindi which gives in suca a short compass everything that a Grihastha or a householder, shonld know besides I find you book a valuable additeruinn to the literature for Hindu women. It is a pleasure to see that the book is so cheap a lesson that other authors on popular subjects might well learn from you: I think a bock on vedic principles should be as cheap as possiblo and no one will I am surf grumble to spend two rupees more forten large and useful marters contained in you book.

स्वर्गीय श्रीब्रह्मचारी नित्यानन्द जी सरस्वती—

मैंने आपकी बनाई पुस्तकों को अच्छे प्रकार से देखा। ये सब किताबें पब्लिक की शारीरिक, सामाजिक और आत्मिक उन्नति करने वाली हैं। विशेष खूबी यह है कि प्रत्येक विषयके साबितके करने लिये वेद, स्मृति, पुराण इत्यादि के प्रमाण अच्छे प्रकार से दिये हैं, जिसके कारण इन पुस्तकों के पढ़ने वाले पूर्ण लाभ उठाते हैं। दौरे में मुझसे आपकी पुस्तकों की अनेकान पुरुषों ने प्रशंसा की, वास्तव में वह प्रशंसा ठीक है, क्योंकि आपने इनके लिखने में बड़ा परिश्रम किया है। इस लिये मेरा चित्त आप से बहुत प्रसन्न है। मैं परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि आप अपने जीवन भर इस उपयोगी कार्य्य को सदा करते रहें जिससे देश में वैदिक ख्यालात की उन्नति होकर सब प्रकार आनन्द हो।

बा० नन्दलालसिंह जी बी०ए०, बी०एस०सी०, एल एल०बी०

उपमन्त्री आर्य्यप्रतिनिधि सभा यू० पी०——

सिहर के ······ जी ने यह पुस्तक लिखकर स्त्री जाति का बड़ा उपकार किया है। हम मुं० जी को इस सफलता के लिये बधाई देते हैं। इसमें प्रायः उन सब बातों का समावेश है जो बालिका, युवती और वृद्धा तीनों के लिये विशेष उपयोगी हैं। यदि इस शिक्षा को स्त्री-उपयोगी बातों का विश्वकोष कहें तो उचित है। प्रत्येक को अवश्य रखनी चाहिये।

—~~~~~—

सम्पादक 'इन्दु' मासिक पत्र बनारस——

इसमें गृहस्थाश्रम के प्रायः सभी ज्ञातव्य विषयों पर विशद रूप से निबन्ध लिखे गये हैं, हम निःसंकोच कहते हैं कि यह निबन्ध विद्वता के साथ लिखे गये हैं।

——~~~~——

श्री महाराजा महेन्द्रपाल सिंहजू देव बहादुर छुरी बिलासपुर

बेशक आपने इस पुस्तक से सम्पूर्ण गृहस्थियों का बड़ा उपकार किया है।

——~~~0~~~——

स्वर्गीय श्री० पं० तुलसीराम वेदभाष्यकार, मेरठ——

मुं० ·············· जी कृत यह ग्रन्थ प्रसिद्ध है, स्त्री वर्ग के उपयोग में इससे उपकारक पुस्तक कोई ही होगी। ऐसी उपयोगी पुस्तक होनेपर मूल्य बहुत स्वल्प है। एक २ प्रति प्रत्येक गृहस्थ को देखने योग्य है।

—~~~0~~~—

बाबू गोकुलसिंह जी हेडमास्टर, आर्य्य स्कूल, होशियारपुर—

मेरी स्त्री ने आरम्भ से लेकर आखिर तक भली भांति पढ़ा और मैं ने भी कहीं कहीं देखा, सचमुच स्त्री और पुरुषों के लिये बड़ी लाभदायक है, मैं ने और मेरी धर्मपत्नी ने स्त्री-शिक्षा की अनेक पुस्तकों को पढ़ा है परन्तु ऐसी उत्तम और लाभदायक किसी पुस्तक को नहीं पाया। आपने यथार्थ में आर्य्य जाति पर महान् उपकार किया है जो ऐसी उत्तम और धार्मिक आकर्षण और चित्त पर प्रभाव डालनेवाली पुस्तक निर्माण की, तिस पर लुत्फ़ यह है कि मूल्य भी बड़ा ही स्वल्प यानी ६०० पृष्ठ की पुस्तक २) को देते हैं यह और सुगन्ध है। कृपाकर अपनी लेखनी को इस कार्य्य में लगा यश के पात्र बनिये।

—~~~0~~~—

श्रीयुत गोविंदजी मिश्र ६५ । ३ बड़ाबाज़ार, कलकत्ता—

आपकी पुस्तक को पढ़ कर मेरी आत्मा को जितना आनन्द मिला है, वह किसी प्रकार से लिख कर नहीं बता सकता। वास्तव में आपने सागर को गागर में भरने का साहस किया है। गृहस्थाश्रम के आवश्यकीय प्रायः समस्त विषयों का संग्रह किसी पुस्तक में सिवाय नारायणी शिक्षा के नहीं देखा। इस एक ही पुस्तक से मनुष्य अपना प्रयोजन पूर्णरूप से साधन कर सकता है। ऐसी ऐसी पुस्तकों की रचना प्रायः उस कक्षा की धार्मिक आत्माओं के द्वारा ही हुआ करती है।

——:०:——

श्री प्रतापनारायण सिंहजी, गाज़ीपुर——

यह एक अति उत्तम पुस्तक है और प्रत्येक घरों में रहने लायक है। मेरा ऐसा विचार है कि हमारे भारतवासी स्त्री-पुरुषों के लिये जो कि इसको एक बार भी पढ़लेंगे तो अति लाभदायक और उपयोगी होगी। मैं आपके इस परिश्रम और आपके उस अमूल्य समय के व्यतीत करने के लिये जो आपने हम भारतवासियों के लाभार्थ उठाया है, शुद्ध चित्त से प्रशंसा करता हूं।

——~~~~——

इनके अतिरिक्त श्रीमान् राजा फतेहसिंह साहब बहादुर पुवायां, श्री पण्डित मोहनप्रसाद जी डिप्टीकलेक्टर, म० रामचरण जी साहिब हास्पिटल असिस्टेन्ट सर्जन सराना, बाबू कृपालसिंहजी डिप्टी इन्सपेक्टर इन्दौर, बाबू बलदेवप्रसाद वकील व प्रधान कायस्थ कान्फ्रेन्स, बाबू मथुराप्रसाद साहिब सब इंजिनीयर सीतापुर, बाबू जगदीश नारायणजी मक्कलीन हाइस्कूल जौनपुर, श्रीज्वालाधरदासवीर शर्मा जौनपुर, पं० देवदत्तजी शर्मा आमघाट गाज़ीपुर, श्रीरामदयालजी शाहपुरा, श्री विद्याधरजी गुप्त राजा का रामपुर, श्रीराजेन्द्रनाथजी स्कूल फ़ीरोज़ाबाद बाबू सालिग्रामजी सुपरवाइज़र दफ्तर मर्दुमशुमारी मिर्ज़ापुर, श्रीयुत गंगाप्रसाद जगन्नाथजी हल्द्वानी, श्रीयुत शम्भुनारायणजी शर्मा झरिया मातभूमि, बा० उदयनारायण बलदेवप्रसादजी मैथिल दानलाद प्रांत इटावा, श्रीयुतमास्टर शिवप्रसाद जी वर्मा मुरादाबाद, मुंशीलालमणि छपरा, बाबू मोहनसिंहजी सागूसिंहजी देहरादून, श्रीमहाशय वीरवर्मा स्वामी यन्त्रालय देहरादून, श्री कालिकाप्रसाद जी कलाईघाट (सिलहट), श्रीयुत नत्थूरामजी आचार्य तलावरा (होशियारपुर), श्रीयुत लाला रामप्रसादजी बड़ा बाज़ार भरतपुर, श्रीयुत मंगलदेव शर्मा कोटला (आगरा) एवं सम्पादक श्रीमहात्मा मुंशीरामजी 'सद्धर्मप्रचारक' म० एडीटर आर्यावर्त्त दानापुर, श्री० सम्पादक मोहमप्रकाश, श्री० सम्पादक भारतसुदशाप्रवर्त्तक आदि अनेक सभ्य पुरुषों के प्रशंसायुक्त पत्र आ चुके हैं।

——~~~~——

आप से भी सादर प्रार्थना है कि हमारी समस्त पुस्तकें जो आपने देखीहैं उनकी बाबत उचित सम्मति शीघ्र ही डाक द्वारा भेज कृतार्थ करें।

चिम्मनलाल वैश्य ।

सरस्वतीन्द्र जीवन।

अर्थात्

महर्षि दयानन्द के पवित्र जीवन चरित्र को घर २ पहुँचाने के लिये।

तथा

श्रेष्ठ धनी महानुभावों को ऋषि जीवन बांटने का अपूर्व अवसर।

साइज़ २०×२६=८ पेजी पृष्ठ संख्या ३२५ चित्र ३ (यदि इसको छोटे साइज में छपवाया जाता तो पृष्ठ संख्या ७०० हो जाती)। मूल्य केवल लागत-मात्र १=) डा० व्यय ||=)

(१०० जिल्द एकदम मंगाने पर और रुपया पेशगी भेजने पर किराया रेलहम देंगे)

हिन्दी जगत में यह जीवन ही प्रसिद्ध है।

तृतीय वार छप कर आया है।

———o———

पत्रों और विद्वानों की कुछ सम्मतियां।

श्री० पं० महावीरप्रसाद जी द्विवेदी, सम्पादक "सरस्वती" प्रयाग।

स्वामी दयानन्द सरस्वती के जितने जीवन चरित्र प्रकाशित हो चुके हैं उनमें से श्रीयुत लेखराम जी का उर्दू में लिखा हुआ जीवनचरित्र सर्वश्रेष्ठ है। उसी के आधार पर यह सरस्वतीन्द्र जीवन लिखा गया है। आपने लेखराम जी की पुस्तक से प्रायः सारी मुख्य मुख्य घटनाओं की सामग्री उद्धृत करके इस पुस्तक की रचना की है। इनके सिवाय मास्टर आत्मारामजी तथा लाला राधाकृष्णजी के लेखों से भी आपने सहायता ली है। पुस्तक में स्वामी जी के साधारण चरित्र

के अतिरिक्त उनके शास्त्रार्थ उनके धर्मोपदेश और उनके ग्रन्थ-निर्माण आदि की भी बातें हैं। पुस्तक बड़े बड़े कोई ४७० पृष्ठों में समाप्त हुई है। टाइप अच्छा कागज़ मोटा है। स्वामी जी, पं० लेखराम जी और पं० गुरुदत्त जी विद्यार्थी के हाफ़टोन चित्र भी पुस्तक में हैं। इस पर भी इतनी बड़ी पुस्तक का मूल्य सिर्फ १=) है। महात्मा जन चाहे जिस देश, जाति, धर्म और सम्प्रदाय के हों उनका चरित्र पढ़ने से कुछ न कुछ लाभ अवश्य ही होता है। जो ऐसा समझते हैं उन्हें स्वामी जी का चरित्र भी पढ़ना और अपने संग्रह में रखना चाहिये। आदि आदि—

श्री पं० भवानीदयाल जी

सम्पादक हिन्दी जैकोन्स-नैटाल साउथ अफ्रीका

वर्तमान भारत के जन्मदाता महर्षि दयानन्द सरस्वती के विस्तृत जीवन वृत्तान्त का यह तृतीय संस्करण है इसमें महर्षि के एक अध्ययोगासनरूढ़ चित्र के अतिरिक्त धर्मवीर पं० लेखरामजी और पण्डित गुरुदत्त के चित्र भी सुशोभित हैं। प्रवासी भारतीयों को महर्षि दयानन्द का परिचय देना मानों दिवस के मध्यान्ह काल में दीपक का प्रकाश करना है प्रत्येक धर्म और प्रत्येक सम्प्रदाय के भारतवासी उनके पुनीत नाम से परिचित हैं। महर्षि दयानन्द उस समय संसार के रंगमंचपर आये जिस समय संसार के अधिकांश प्राणी प्रकृतिवाद से तबाह हो रहे थे। महर्षि दयानन्द ने परमात्मा प्रकृति और जीवात्मा का सच्चा ज्ञान प्रकाश कर मानव जाति का जो कल्याण किया वह भारतवर्ष के ही नहीं प्रत्युत संसार के इतिहास के पृष्ठों पर स्वर्णाक्षरों में सदैव अङ्कित रहेगा। अहा! उस महान् पुरुष के आत्मिक बल पर तो ज़रा विचार कीजिये जब कि भारत के भिन्न २ सम्प्रदायों और पंथों के तीस करोड़ मनुष्य एक ओर खड़े होते हैं और उनके अन्ध श्रद्धा और अन्ध विश्वास पर प्रहार करके वैदिक धर्म और आर्य सभ्यता प्रचार के अभिप्राय से दूसरी ओर खड़ा होता है एक लंगोटबन्द संन्यासी! अतएव ऋषि दयानन्द जी की जीवनी संसार के धार्मिक इतिहास में एक अपूर्व घटना और आर्य जाति की एक अमूल्य सम्पत्ति है। हमने महर्षि के अनेक जीवन पढ़े किन्तु तिलहर ज़िला शाहजहांपुर यू० पी० निवासी

श्री० मुंशी चिम्मन लाल जी कृतः—

सरस्वतींद्र-जीवन अति उत्तम है इसमें श्री पण्डित लेखराम जी लिखित जीवन चरित्र की प्रायःसभी बातें आगई हैं तथा अन्य कतिपय ज्ञातव्य घटनायें

भी संकलित हैं लेखक ने इसे अत्यन्त परिश्रम से लिखा है भाषा भी सरल और रोचक है छपाई आदि भी अच्छी है और यह सुरदूपस्य इस योग्य है कि प्रत्येक गृहस्थ के गृह की शोभा बढ़ावे।

— —o——

पं० विष्णुलाल जी एम० ए० लखनऊ—

मैंने आपके छपाये सरस्वतीन्द्र जीवन को पढ़ा। पं० लेखराम जी स्वर्गवासी के लघु तीन चरित्रों को छोड़ शेष अब तक जितने छपे हैं उनसे इस में अधिक हाल पाये। वास्तव में आपने उर्दू के सारगर्भित लेखों को (जिन के आनन्द से बिना उर्दू जाननेवाले वञ्चित रहते थे) भाषा करके बड़ा उपकार किया है। मैं समझता हूं कि आप ने इस इतिहास के लिखने में श्री स्वामी जी के कार्यकाल को यथाक्रम रक्खा है। पुस्तक की छापाई अति सुन्दर है और चित्र भी सर्वांग उत्तम हैं। मूल्य १=) अधिक नहीं है। मैं आपको इस कार्यपूर्ति का धन्यवाद देता हूं।

——:※:——

स्वर्गीय श्रीमान् ठाकुर गिरवरसिंह साहिब पूर्वोक्त अवैतनिक उपदेशक श्रीमती आ० प्र० सभा संयुक्त प्रदेश आगरा वा अवध—

मैंने मु० चिम्मनलाल जी वैश्य लिखित सरस्वतीन्द्र जीवन को देखा और ध्यान से पढ़ा और बहुधा स्थलों पर अन्य जीवनोंसे मिलान किया तो जान पड़ा कि इसमें उपयोगी और लाभदायक अनेक घटनाओं का वर्णन किया गया है भाषा सरल प्रियचित्त को लुभाने वाली और स्त्रियों तथा पुरुषों के समझने वाली है।

——※——

श्रीमान् पण्डित निरंजनदेवशर्मा उप० श्रीमती प्रतिनिधिसभा—

मैंने इस जीवन को विचार पूर्वक पढ़ा, बड़ा ही रोचक है। इस पर भी भाषा सरल, अनेक ऐसे विषय इसमें पेश हैं जो अभी तक नागरी के जीवन चरित्रों में नहीं छपे। कम पढ़े मनुष्य और स्त्रियां भी भले प्रकार समझ सकती हैं। इस की उत्तमता वास्तव में पढ़ने से ही प्रतीत होगी। सचतो यह है कि अनेक प्रकार से उत्तम और तीन मनोहर चित्रों सहित होने पर भी इस पुस्तक का मूल्य १=) सजिल्द १॥) है अतः मैं आर्य पबलिक तथा अन्याय श्रेष्ठ पुरुषों से सिफारिश करता हूं कि एक एक जिल्द मँगा कर आप देख अपनी पुत्रियों, स्त्रियों, पुत्रों को अवश्य दिखलावें।

श्रीमान् पं० सदानन्द जी पेशकार तहसील किचहा ज़िला नैनीताल

मैं आपके सरस्वतीन्द्र जीवन को देख हार्दिक धन्यवाद देता हूं, दरअसल यह पुस्तक अति सराहनीय है। तिस पर भी मूल्य बहुत ही सस्ता है।

—:※※※:—

अन्य आदर्श जीवन-चरित्र

श्री पं० लेखरामजी का जीवन१॥) दशरथ=) राम=) लक्ष्मण=) भरत-)॥ युधिष्ठिर।-) अर्जुन≡) भीमसेन≡) द्रोणाचार्य≡) विदुर≡) धृतराष्ट्र≡) पं० गुरुदत्त-) महात्मापूर्ण भक्त-)। महारानी मन्दालसा।)॥ हमारे छोटे २ जीवनों की बाबत देखिये लोग क्या कहते हैं:-

बाबू नन्दलालसिंह जी, बी० एस सी, एल० एल० बी० उपमंत्री आर्य प्रतिनिधिसभा, यू० पी०—

दशरथ, राम, लक्ष्मण भरत ये चारों जीवन चरित्र रूप से श्रीयुत……गुप्त जीने प्रकाशित किये हैं, आर्य भाषा की सेवा जिस प्रकार मुंशी जी करते हैं उसे प्रत्येक भाषा भाषी जानता है।

लाला जीके पुस्तक का उद्देश्य मुख्यतया बालक और बालिका एवं स्त्रियों का हित होना है ये भी इसी विचार से लिखी गई हैं इङ्गलिश में इस प्रकार की पुस्तकें निकलने का क्रम प्रचलित ही था परन्तु अब आर्य भाषा में भी वही बात देख कर प्रसन्नता होती है। वास्तव में आदर्श पुरुषोंके चरित्र का पाठकों के हृदयों पर बहुत प्रभाव है। विदुर, धृतराष्ट्र, युधिष्ठिर, दुर्योधन ये चारों महाभारत, के पात्रों के सम्बन्धमें लिखी गई हैं। महाभारत विस्तृत ग्रन्थ को संपूर्ण तथा देखे बिना किसी भी व्यक्ति का पूरा हाल ज्ञात नहीं हो सकता। परन्तु उक्त ग्रन्थ को सम्पूर्ण देखना सहज काम नहीं लेकिन यह कठिनता इनसे दूर हो गई। चरित्र लेखक ने जहां अपने "नायकों" की प्रशंसा कि है वहां तक सम्बन्धी प्रत्येक घटना को ठीक एवं स्पष्ट भी बहुत कुछ करने का ध्यान रक्खा है जो लेखक के लिये आवश्यक है। छपाई खासी, मूल्य स्वल्प है।

श्रीयुत सम्पादक 'आर्य-मित्र' आगरा-

तिलहर के महाशय..........जी वैश्य ने महात्मा विदुर, युधिष्ठिर, तपस्वी भरत जी के जीवनचरित्र लिखकर प्रकाशित किये हैं। इस प्रकार के ऐतिहासिक चरित्रों से आर्य्य साहित्य को बहुत लाभ पहुँच सकता है। इनकी भाषा सरल और रोचक है, तिस पर मूल्य भी अति स्वल्प है। वास्तव में आपका यह प्रयत्न अत्यन्त प्रशंसनीय है।

श्रीयुत सम्पादक 'भास्कर' मेरठ, भाद्रपद ३-

तिलहर निवासी महाशय............ने इन जीवनों को लिखकर प्रकाशित किया है। इस तरह के ऐतिहासिक चरित्रों से आर्य सभा के साहित्य को बहुत कुछ लाभ पहुँचने की सम्भावना है। आपका यह प्रयत्न श्लाघनीय है।

श्रीमान् सम्पादक 'भारतोदय' ज्वालापुर।

तिलहर के मुंशी.......जी को प्रायः आर्य समाज में सब ही जानते हैं। आपने अनेक उपयोगी सामयिक पुस्तकों को प्रकाशित कर अच्छा नाम पाया है आप की नारायणी शिक्षा आदि प्रसिद्ध पुस्तकें ही हैं। अब आप ने छोटे २ जीवनचरित्रों के प्रकाशित करने का क्रम बाँधा है। इन छोटी और स्वल्प मूल्य वाली पुस्तकों से सर्व साधारण को अच्छा लाभ पहुँच सकता है अतः यह प्रत्येक हिंदु और आर्य घरों में अवश्य होना चाहिये। लेकिन आप को विज्ञापन की सच्चाई तब ही मालूम होगी जब आप स्वयं इन की प्रतियां मंगा कर देखेंगे



बांटने योग्य पुस्तकें।

मूर्तिपूजाविचार ।) संध्या ।) हवन ।)

पुत्री उपदेश

अर्थात् नारायणी शिक्षा का दूसरा भाग मूल्य १) मात्र।

इसमें बतलाया गया है कि भाग्य क्या है? उसको कौन बनाता है। गृहस्थाश्रम से शांति और सुख साधन क्या हैं? गृहप्रबन्ध की उत्तम मीमांसा धन की प्राप्ति क्योंकर हो सकती है और उसके सदुपयोग करने की विधि। नर नारियों के मुख्य कर्तव्य क्या हैं? संसार में कीर्ति अमर है कीर्ति कैसे प्राप्त होती है और वह अमर कैसे होती है। मान का अधिकारी कौन है? राजा की अवश्यकता और प्रजा का धर्म। गृहस्थ के मुख्य उद्देश्य क्या हैं? और देश की उन्नति कैसे हो सकती है मनुष्य जीवन सफल क्योंकर हो सकता है। माता पिता भाई बहन पति पत्नीमें खटपट बनी रहती है इसका परिणाम क्या होता है और उसके दूर करने के उपाय क्या हैं? परिवार में प्रत्येक का क्या अधिकार है? मर्यादा क्या वस्तु है? अनधिकार चेष्टा से क्या हानियां होती हैं। इत्यादि विषयों की आलोचना अच्छे प्रकार की गई है।



इसकी बाबत लोगों की सम्मतियां

बा० पूर्ण चन्द्रजी बी० एस० सी० आगरा।

वास्तव में पुत्री उपदेश कन्याओं और स्त्रियों के लिये अत्यंत शिक्षापूर्ण पुस्तक है। स्त्रियों के लिये जितनी बातें आवश्यक तथा उपयुक्त हैं उन पर शास्त्रों तथा नीतिज्ञोंके वचन लिखकरउनको भलीभांति समझाया है। बहुधा स्त्रियां जानती भी हैं परन्तु उनके कारण तथा उपयोग से अनभिज्ञ हैं उनका साफ २निर्णय इस पुस्तकमें किया गया है यह इस पुस्तकमें एक विशेष गुण है। लेखक महाशय का उद्योग सराहनीय है यदि पुस्तक विवाह के उपहार में तथा कन्यापाठशालाओं में पारतोषिक के रूपमें दी जावे तो इसका वास्तविक उपयोग हो सकता है। कागज़ छपाई आदि अच्छी है।मूल्य १) डाक व्यय।~)



श्री० सम्पादक महोदय'प्रतिभा' सनातन धर्म प्रेसमुरादाबाद

"गृहस्थाश्रम जिन बातों से सुखद होता है इस पुस्तक में प्रायः उन सब बातों का थोड़ा बहुत वर्णन है ब्रह्मचर्य की महिमा अच्छी तरह सम-

छाई है। हृदय की पवित्रता और व्यवहार शुद्धि भी लेखक ने अपने ढंग पर खूब लिखा है अपने देशकी बहुत सी बातोंका दूसरा देशों से मिलाना करके अपने देश की हीनता दिखाई है जिसे पढ़ कर अपनी अवस्था का बहुत कुछ ज्ञान हो जाता है ऐसे ही अनेक काम के विषयों की इसमें चर्चा है पुस्तक लेखक आर्यसमाजी विचार के पुरुष हैं पर उनकी इस पुस्तक से सब विचार की स्त्रियाँ और पुरुष भी लाभ उठा सकते हैं"

श्रीमती सम्पादिका स्त्रीदर्पण इलाहाबाद।

इस पुस्तक में लेखक ने अपनी पुत्री को उपदेश दिये हैं परन्तु वे सभी पुत्रियों क्या, उनकी माताओं को भी पढ़ने योग्य हैं। सभी सांसारिक बातों का निर्णय इन उपदेशों में है.........पुस्तक अपने ढंग की अच्छी है सच्चे जीवनचरित्र आदि बहुत से हित कर विषयों के कारण स्त्री पुरुषों दोनों के काम की है।

भारतके प्रसिद्ध उपदेशक स्वर्गीय श्रीपं० हरिशंकर मुरार व्यास।

गृहस्थाश्रम के दूसरे भाग को मैंने आद्योपांत पढ़ा सुन्दर लेख शक्ति उच्च भाव मनोहर वाक्य रचना बतला रही है कि लेखक का जीवन पवित्र है यदि प्रत्येक गृह में इस पुस्तक का नियम पूर्व स्वाध्याय हो तो निःसन्देह पुत्र पुत्रियों का जीवन आदर्श बन सकता है इस लिये मैं जोर के साथ प्रत्येक गृहस्थ से प्रार्थना करता हूँ कि इस उपयोगी पुस्तक को मंगा कर अपने गृहों की शोभा को बढ़ावें।

उपमन्त्री आ० प्र० नि० सभा संयुक्तप्रान्त

वास्तव में यह पुस्तक स्त्रियों और कन्याओं के लिये अत्यन्त शिक्षापूर्ण है उनके लिये जिन जिन बातों का जानना जरूरी है वे सब बातें इस पुस्तक में अच्छे प्रकार वर्णन की गई हैं लेखक महाशय का उद्योग सराहनीय है।

श्री स्वामी अच्युतानन्द सरस्वती।

यह पुस्तक धार्मिक सुधार के लिये अत्युत्तम पुस्तक है जो आर्य देवियां

श्रीयुत सम्पादक नागरीप्रचारक, लखनऊ।

प्रेमधारा स्त्रीजाति के उपकारार्थ कासगंज निवासी बाबू...... ने प्रकाशित की है वा नर नारियों के लभार्थ अनेकान उपदेश ग्रन्थ के रोचक तथा प्रसङ्ग में दिये गये हैं, अवश्य ही इसको पढ़ कर बालिका और महिलाओं का विशेष उपकार होगा। धर्म-मार्ग सिखाने के निमित्त इस प्रकार के ग्रन्थों का प्रचार करना सरल उपाय है। ईश्वर प्रार्थना के सत श्लोक बहुत ही ललित दिये हैं। हम ग्रन्थकर्ता को, उनके उत्तम और समाजसुधार के लिये यत्न करने के निमित्त बारम्बार प्रशंसा करते हैं।

श्रीमती हरदेवी जी धर्मपत्नी बा० रोशनलालजी, बैरिस्टर ऐटला लाहौर-तथा सम्पादिका भारतभगिनी।

मैंने इस पुस्तक को आद्योपांत पढ़ा, स्त्री और कन्याओं को बड़े धार्मिक उपदेश मिलेंगे। यह पुस्तक बहुत ही प्रशंसा के योग्य है और विशेष कर आर्यकन्याओं के लिये तो पथ दर्शक तथा अमूल्य रत्न है।

बा० भूरालालस्वामी असिस्टेन्ट स्टेशनमास्टर— निम्बा हेड़ा।

मैंने आपकी बनाई हुई प्रेमधारा को पढ़ा, पढ़ कर बड़ा चित्त प्रसन्न हुआ। ईश्वर ने आपको इसी योग्य बनाया है कि आप अपनी अमृतरूपी लेखनी से मनुष्यों की अज्ञान रूपी निद्रा को छिन्न कर रहे हैं। आपके उक्त निबन्ध पढ़कर मुझ सा अज्ञानी इसके महत्व जानने व वर्णन करने में असमर्थ है। तो भी इतना ही कहूंगा कि यह मूर्ख नर नारियों की फूट व लड़ाइयों के दूर करने की एकमात्र औषधि है। प्रत्येक गृह में रहने योग्य है।

श्रीयुत शिवलाल जी आनरेरी उपदेशक श्री मद्दयानन्द अनाथालय, अजमेर—

श्रीमान् परममित्र ....जी नमस्ते, आपकी बनाई "नारीभूषण उर्फ प्रेमधारा" देखी। यह नाविल के ढङ्ग पर उत्तमोत्तम नवीन नवीन नवीन कहानियों और शिक्षाओं से भरी हुई है। वास्तव में जैसा इसका नाम है वैसा ही पुस्तक है सचमुच प्रेमधारा है। मेरी सम्मति में प्रत्येक गृहस्थी स्त्री पुरुषों को इसकी एक एक प्रति मँगवा कर अवश्य पढ़नी चाहिये। इसके अतिरिक्त गृहस्थाश्रम आदि सभी पुस्तकें देखने योग्य हैं।

नति का क्या कारण है ? अब उन्नति कैसे हो सकती है ? और गृहस्थाश्रम स्वर्गमय कैसे बन सकता है, इत्यादि कई विषयों का आन्दोलन किया गया है। मूल्य =)

पं० भवानीदयाल जी जैकोन्स (साउथ अफ्रीका)

उपर्युक्त तीनों पुस्तकों की रचयिता श्रीचम्मनलाल जी की सुयोग एवं विदुषी पुत्री प्रियम्वदा हैं। तीनों पुस्तकें कल्पित उपाख्यान स्वरूप हैं। इन पुस्तकों में विशेष रूप से स्त्रियों की वर्त्तमान दशा पर प्रकाश डाल कर उसके सुधार के उपाय बतलाये गये हैं उन्हें आरम्भ करने पर आद्योपान्त पढ़े बिना जी नहीं मानता। विशेष प्रवासी बहिनों के लिये ये पुस्तकें बहुत उपयोगी हैं और कथा के रूप में होने के कारण जो बहिनें थोड़ा भी पढ़ना जानती हैं वे भी इनके पाठ से लाभ उठा सकती हैं। और सहज ही में बहुत सी आवश्यक बातें जान सक्ती हैं। इसका हम इस लिये भी हार्दिक स्वागत करते हैं कि यह एक आर्य देवी की कीर्त्ति है। भाषा सरल है, शैली श्रेष्ठ है, कथायें रोचक हैं और मूल्य भी अधिक नहीं है। आदि आदि॥

अन्य प्रसिध्द उपयोगीपुस्तकें।

क्या हम रामायण पढ़ते हैं ?

आपने अब तक अनेकों तरहकी रामायणें पढ़ीं परन्तु जब आप एक बार इसे पढ़ियेगा तब आपको मालूम होगा कि यथार्थ में आप रामायण पढ़ते हैं या नहीं मूल्य केवल =)

गर्भाधान विधि—यह १९ वीं बार छप चुकी है। इसमें धातु और उसके गुण, स्त्री प्रसंग, गर्भविधन, उत्तम संतान की विधि, गर्भ परीक्षा, उसकी रक्षा, गर्भ में पुत्र और पुत्री की पहिचान, गर्भवती का कर्तव्य, गर्भपात के लक्षण और उसकी चिकित्सा, प्रसवकालमें प्रसूतकी रक्षा, स्त्री पुरुषोंमें सन्तान न होने के कारण के अतिरिक्त शिशुपालन और अनेक कठिन रोगों की चिकित्सा का वर्णन हैं। मूल्य ≡)

वीर्य्यरक्षा—यह पुस्तक सुखकी खानि है, अवश्य आप देख कर सन्तानों को दिखाइये और उनको भयानक रोगों से बचाइये क्योंकि वी-

र्य्यरक्षा करना सुखों का मूल है । शोक कि सन्तानें इसके लाभों को न जान कर कुमार्गियों के सङ्ग पड़ कर कुसमय कुरीतों से वीर्य्यका सत्यानाश कर भारत को गारत करते चले जाते हैं । मूल्य =) यह ९ वीं बार छपी है ।

हम शीघ्र क्यों मरते हैं ?——वर्त्तमान समय में मौत का औसत २३ वर्ष पर आगया है जिसके कारण भारत में रात दिन रुदन मचा रहता है अनेकाल पुरुष इसके लिये ज्योतिषियों से जप कराते और गंडे तावीज बाँधते हैं परन्तु फिर भी अल्पायु में मरते चले जाते हैं । इस दुःख से बचने के लिये मैंने चरक सुश्रुत और वेदके अनुसार सच्चे नुसखे और पथ्यापथ्य लिखा है । देखिये, अमल कीजिये, ताकि भारत से ये दुःख चले जावें । मूल्य -)॥

सत्यनारायण की प्राचीनकथा—मित्रों सहित सुनिये । देखिये, कैसी अच्छी और उपयोगी कथा है । आठवीं वार छपी है मूल्य =)

मौत का डर—इसके पढ़ते ही पढ़ते देखिये मन में क्या २ लहरें उठती हैं । दुःख दूर हो शांति की प्राप्ति होती है । मूल्य -)॥

भरतोपदेश— इसमें श्रीरामचन्द्र जी का उपदेश है ।

यथार्थ शांतिनिरूपण ≡) **शान्तिशतक** =) **संध्यादर्पण** -) **द्वैतप्रकाश** -) **संसारफल** -) **प्रेमपुष्पावली** -)॥ **नीत्युक्त स्त्रीधर्म** ≡) **स्मृत्युक्त स्त्री धर्म** =) **चित्रशाखा**)॥ **पूर्णभक्त** -)॥

भजनों की पुस्तकें ।

श्रीज्ञानगजरा प्रथम भाग)॥ द्वितीय भाग -)॥ भजन सार संग्रह -)॥ संगीत रत्नप्रकाश पूर्वार्द्ध १) उत्तरार्द्ध १) सत्यार्थ प्रकाश ॥=) संस्कार विधि ।=) दयानन्द चित्रावली १) मनुस्मृति २) भास्कर प्रकाश २॥) गल्पांजलि ॥) धर्म धुरीण प्रताप ॥) अमरीका की स्वाधीनता ॥) राष्ट्री आन्दोलन १॥) तिलक जीवनादर्श ।) स्वराज्यकी झंकार ≡)स्वराज्यदर्शन भारत की वीर विदुषी स्त्रियां ॥०) दृष्टान्तसागर १) सच्ची देवियां ॥) उपनिषद प्रकाश २॥) गृहणी सुधार ॥) कुरान १॥=)

चित्र ! चित्र !! चित्र !!!

पाठकगण ! मैंने भारतवर्ष में असभ्य चित्रों का प्रचार देखकर भारत संतान को अनेक दुःखों से बचाने के लिये उत्तम पुरुषों, और ऋषियों और महात्माओं के चित्र का प्रचार देने के लिए यत्न किया है जिससे भारतवासियों को अपूर्व लाभ होने की आशा है, द्वितीय उनका मूल्य बहुत ही स्वल्प रक्खा है जिससे प्रत्येक पुरुष चित्रों को लेकर लाभ उठायें। महाशयगण ! ये चित्र विद्वान् महात्मा योग्य पुरुषों के हैं जिनके देखने से आपके तथा आपकी सन्तानों के चित्त पर बड़ा उत्तम प्रभाव होगा।

ये सम्पूर्ण चित्र जगत्प्रसिद्ध इण्डियन प्रेस प्रयाग में छपाये गये हैं।

(१) श्रीस्वामी विरजानन्दजी दण्डी का चित्र मूल्य -) (२) श्रीस्वामीदयानन्द जी सरस्वती -) (३) पं० लेखरामजी -) (४) पं० गुरुदत्तजी -) (५) लालामुंशी रामजी अधिष्ठाता गुरुकुल कांगड़ी -) (६) महात्मा हंसराजजी प्रिन्सपिल दयानन्द ऐङ्गलो वैदिक कालिज लाहौर -) (७) एक चित्र जिसमें सात चित्र हैं मूल्य -)॥

श्रीमहाराजाधिराज पञ्चमजार्जजी का दम्पती सहित रंगीन चित्र =) परिवार सहित।का चित्र मूल्य =)

——:o:——

वैदिक पुस्तकालय कलकत्ता के चित्र

श्री स्वामी विरजानन्दजी १८ × २३ मूल्य ।।।) ऋषि दयानन्द जीका तिरङ्गा ।=) तथा व्याख्यान देते समय का चित्र ।) पं० लेखराम १५ × २० मूल्य ॥) पं० गुरुदत्त १५ × २० मूल्य ॥)

मंडप सजाने के चित्र।

ओ३म्, नमस्ते, स्वागतम्, वन्देमातरम्, आर्यसमाज के नियम, गायत्री मन्त्र, चिश्वानिदेव, सहनाववतु, धृतिक्षमा, त्वमेवमाताच पितात्वमेव, असतोमासद्गमय जीवन मृत्यु के प्रश्न, अहिंसा परमो धर्म, तुलसी आहि गरीब की, दया धर्म का मूल है यह सब चित्र रंगीन वेल बूटेदार छपे हैं साइज़ ११ + १४ मूल्य प्रति चित्र -)॥ है।



हो, यदि सुन्दर बलिष्ट और बुद्धिमान् संतान उत्पन्न कर देश के ऋण से उद्धार होना, हो यदि विवेक, वैराग्य, तप, ब्रह्मचर्य, जप, ध्यान, दान, शम, दम आदि की महिमा जानने की इच्छा हो, यदि सत्कर्मी, सत्यवादी और सच्चे त्यागी तथा सत्यसंकल्पी बनने की अभिलाषा हो, यदि आशा, ममता और तृष्णा के असली स्वरूप को देखने की चाह हो तो बड़े परिश्रम से प्रकाशितः—

शम्पाक–हारीत–पिङ्गल–बोध्य–मंकि–हंस उतथ्य और वामदेव

नामक आठ गीताओं का पाठ परिवार सहित कीजिये मूल श्लोकों का अनुवाद इस प्रकार की सरल एवं रोचक भाषा में किया है कि पुत्रियां और स्त्रियां भले प्रकार समझ सकती हैं मूल्य केवल ॥)

—:o:—

दयानन्द दर्शन

यह पुस्तक अपने ढङ्ग की अनूठी है अर्थात् स्वामी दयानन्दजी की शिक्षा का क्या प्रभाव हुआ और आगे उनके मिशन की पूर्ण उन्नति तथा भारतवर्ष में सुख की लहर क्योंकर विस्तार पूर्वक बह सकती है इत्यादि बातों का दिग्दर्शन इसमें किया गया है मूल्य ~)

—:o:—

भारतमाता का रुदन

ऋषि दयानन्द जन्म शताब्दी के समय भारत माता का हृदयद्रावक रुदन भारतवर्ष के सभी सपूतों को सुनना एवं पढ़ना योग्य है साथही इस पवित्र समय के माता के आदेश का पालन करना और तन मन एवं धन से उसको पूर्ण करना हर एक नवयुवक का परम धर्म है।

पुस्तक जिन करुणा जनक शब्दों में लिखी गई है वह पाठ करने से ही ज्ञात होगा मूल्य केवल =)

—:o:—

चिकित्सा-प्रसव के बाद रोगों का इलाज-पेट के नलों और दूधकी चिकित्सा तथा स्त्रियों के प्रबल रोग हिस्ट्रिया आदि १०५ रोगों की चिकित्सा का वर्णन सरल सरल अनुभूत नुसखों द्वारा किया गया है आशा है मातायें और बहनें इस पुस्तक का पाठकर दुःखों से छुटकारा पा हमारे परिश्रम को सफल करेंगे। मूल्य केवल लागत मात्र ।=)

—※※※—

बालरोग चिकित्सा ।

जिन घरों में सुन्दर-बलवान और निरोग संतानें विद्यमान हैं वेही भाग्यशाली परिवार कहाते हैं परन्तु वर्त्तमान समय में बिरले ही कुटुम्बी होगें जिनको यह अपूर्व सुख प्राप्त हो क्योंकि बालकों की उत्पत्ति वृद्धि और रक्षाका भार मुख्यतया माताओं के आधीन होता है और भारत की मातायें अज्ञान एवं अविद्या के कारण न गर्भाधान की रीति को ही जानती हैं न गर्भ रक्षा की क्रिया को। फिर प्रसव के ढोंग बनाने वाली ठगनी स्त्रियों के हाथ। जिससे कुलवती माताओं की गोद पुत्र रत्न से शून्य ही दिखाई देती है और बिलखती हुई माताओं का हृदय द्रावक वृतान्त यह लेखनी नहीं लिख सकी। उसी दुःख से दुःखी हो आज मैं आपके सम्मुख यह बालरोग चिकित्सा नामक पुस्तक प्रस्तुत करता हूं आशा है इसकी दवाइयों को यथा समय हमारी मातायें और बहनें आजमाकर अपने प्यारे पुत्रों का लालन पालन करेंगी इस पुस्तक में बालरोग परीक्षा बालकका वजन वा आकार-नाल काटने में सावधानी-उनका नहलाना-सुलाना आदि शिशुचर्या औषधि देने के नियम दूध पिलानेका समय-धाय रखने में सावधानी दूध शुद्धिके उपाय-अनेक जन्म घुटियां-ज्वर-खांसी-दस्त बन्द करने को-दस्त कराने को-हिचकी स्वर भेद-गले की घरघराहट संनिपात, होने हंसली उतर जाने, मुंहा, तालु आजाने, गला आजाने, पेट फूलना, पेटका दर्द, उल्टी प्यास दांतोंकी तकलीफ, आंख दुःखना कानके रोग, सिरके रोग, नाभिरोग, लू लगना, नाकसे खूनगिरना, खुजली, अंधौरी फुड़िया, छाछ्‌प, काच निकलना, भगन्दर चिनग, बालामृत, ब्रह्मघ्न, ? कुष्ठंकार, तड़का, अभिष्यन्द, पारिगर्भिक, ग्रहपीड़ा, पसुली, जमोघा, सूखा, शीतला, मृगी आदि रोगों की चिकित्सा सरल अनुभूत प्रयोगों द्वारा लिखीगई है पुस्तक सफेद कागज़ पर मोटे अक्षरों में छपाई गई है मूल्य केवल ।=)

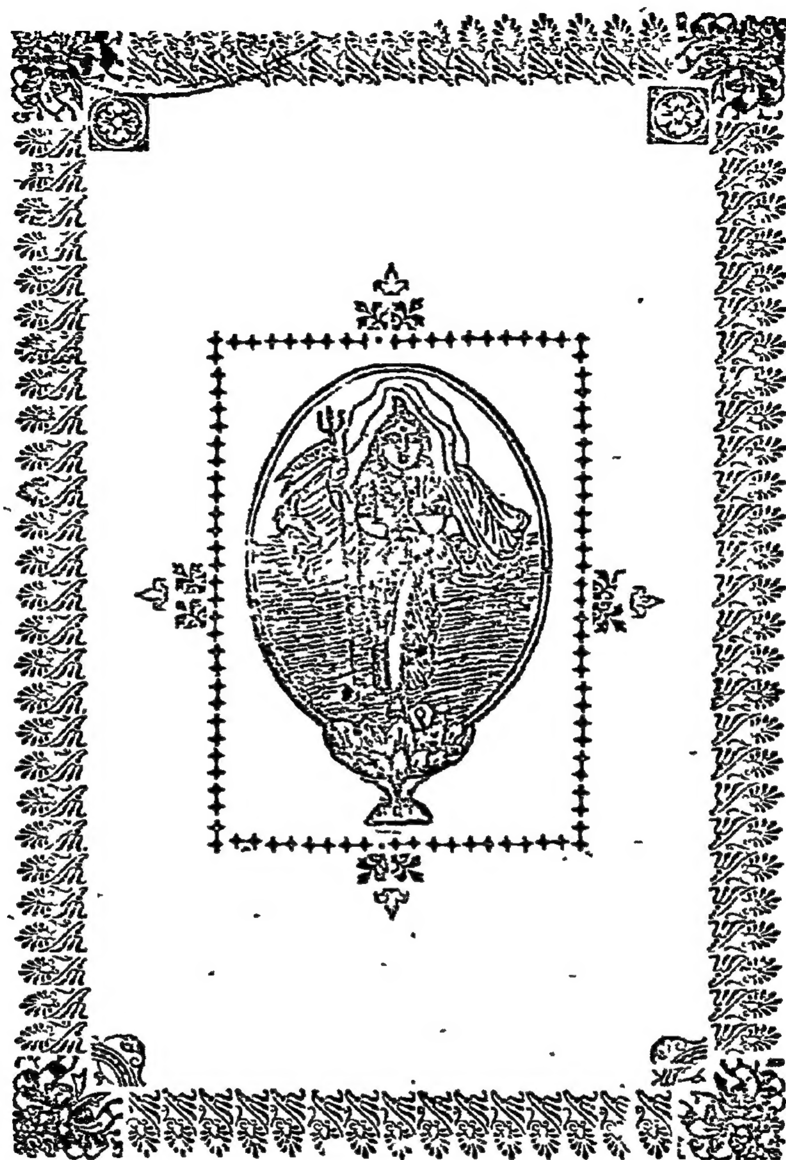
वैद्यहस्तभूषण

अर्थात्

घरका हकीम ।

भारत वर्ष में आज तक रोगों की जितनी भरमार है उसको आप सभी जानते हैं उसपर भी शहर नगरों एवं विशेष कर ग्रामों में उत्तम वैद्यों के न मिलने से भारत जननीकी अनेक आत्मायें अनेक रोगों में फंस दुःख उठा रही हैं और कुसमय में काल की ग्रास बन जाती हैं इस दुःख को दूर करने के लिये यह पुस्तक लिखी गई है वास्तव में यह एकही पुस्तक गृहस्थमात्र के लिये विशेष उपयोगी है क्योंकि इसमें सिरदर्द नजला, जुखाम, सरसाम, मृगी, सकता, नींद का ज्यादह आना नींद का कमआना, उठते बैठते आंखों के नीचे अंधेरा आना, आधा सीसी, आंख का दर्द, सूजन, छल पड़ जाना आदि आंख के सम्पूर्ण रोग, नाक के सम्पूर्ण रोग कान के सम्पूर्ण रोग, मुख के, हलक के, दान्त, हृदय के सब रोगों तथा दमा, खांसी, सिल, दिक, सब प्रकार के ज्वर, दस्त आदि पेट के सब रोग प्रमेह, सूजाक, मूत्रकृच्छ, बवासीर, गठिया आदि बातके रोग अर्थात् शरीर में होने वाले समस्त रोगों की चिकित्सा अनेक बार के आजमाये हुए अनेकों अनुभूत प्रयोगों द्वारा लिखी गई है प्रत्येक नुसखे के बनाने की विधि दवाइयों के नाम तौल सरल भाषा में लिखी गई है। वर्तमानकाल में अनुभूत प्रयोगों की कितनी ही पुस्तकें छप चुकी हैं परन्तु साधारण गृहस्थी उनकी दवाइयों के नाम तौल संस्कृत में होने के कारण कोई भी प्रयोग ठीक नहीं बना सके अतः पाठकों की यह कठिनाइयां दूर करदी हैं एकबार मंगाकर पढ़िये फिर आप को बाहर से हकीम डाक्टरों के बुलाने का ही झंझट न करना पड़ेगा मूल्य केवल १) डा० का० ।≈)





माल मंगाने का पता—

चिम्मनलाल भद्रगुप्त,

तिलहर ज़िला शाहजहाँपुर।

* वैद्यहस्तभूषण *

अर्थात्

घरका हकीम ।

जिसमें
सिर से पैर तकके समस्त रोगों की चिकित्सा
देशी अनुभूत प्रयोगों द्वारा
लिखीगई है। ३०० पृष्ठ की पुस्तक होने पर भी
मूल्य केवल १) डा० व्य० ।≤)
ऐसी सरल, सस्ती और उपयोगी पुस्तक
प्रत्येक गृहस्थ को रखना
योग्य है।
